कीर्ति-स्तम्भ

(आचार्य ज्ञानसागर प्रणीत "वीरोदय" महाकाव्य का समीक्षात्मक अनुशीलन एवम् अजमेर चातुर्मास १९९४ में सम्पन्न विविध ऐतिहासिक आयोजनों का चित्रण)

-: प्रकाशक :-

श्री दिगम्बर जैन समिति
एवं
सकल दिगम्बर जैन समाज, अजमेर

सम्पादक

डॉ. अरुण कुमार जैन, शास्त्री

निदेशक : आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र
पन्नालाल ऐ.दि.जैन सरस्वती भवन,
सेठ जी की नसियाँ, ब्यावर (राज.)

प्रेरक प्रसंग : प. पू. आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परमशिष्य युवा-मनीषी, आध्यात्मिक संत मुनि पुंगव श्री सुधासागरजी महाराज, क्षु. श्री गम्भीरसागरजी, क्षु. श्री धैर्यसागरजी महाराज के श्री सोनी जी की नसियाँ, अजमेर के ऐतिहासिक चातुर्मास १९९४ के उपलक्ष्य में प्रकाशित।

❖

प्रतियां : 1000

❖

संस्करण : प्रथम

❖

मूल्य : 185/-

❖

प्राप्ति : श्री दिगम्बर जैन समिति
अजमेर (राज.)

कीर्ति-स्तम्भ

(आचार्य ज्ञानसागर प्रणीत "वीरोदय" महाकाव्य
का समीक्षात्मक अनुशीलन एवम् अजमेर चातुर्मास
१९९४ में सम्पन्न विविध ऐतिहासिक आयोजनों का चित्रण)

-: सान्निध्य एवं आशीर्वाद :-
पू. मुनि पुंगव श्री सुधासागरजी महाराज, क्षु. श्री गम्भीरसागरजी महाराज,
एवं क्षु. श्री धैर्यसागरजी महाराज

सम्पादक
डॉ. अरुण कुमार जैन, शास्त्री
निदेशक : आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र
पन्नालाल ऐ.दि.जैन सरस्वती भवन
सेठ जी की नसियाँ, ब्यावर (राज.)

-: प्रकाशक :-
श्री दिगम्बर जैन समिति
एवं
सकल दिगम्बर जैन समाज, अजमेर

-: मुद्रक :-
निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्टस
पुरानी मण्डी, सुभाष गली—अजमेर ✆ 22291

महाकवि बा. ब्र. परम् पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज

परम् पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

पू. क्षु. श्री गम्भीरसागरजी महाराज

पू. क्षु. श्री धैर्यसागरजी महाराज

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चतुर्थ खण्ड

पञ्चम खण्ड

सम्पादकीय ....

आयुर्वेद शास्त्र में हरीतिकी (हरड) के स्वास्थ्यकर गुणवर्णन के प्रसङ्ग में कहा गया है कि "कदाचित् कुप्यते माता, न कदापि हरीतिकी" माता तो कदाचित् कुपित होकर बालक को किञ्चन हानिकर हो जावे, परन्तु हरीतिकी अपथ्य कदापि नहीं, उसी तरह कहा जा सकता है "कदाचित् कुप्यते माता, न कदापि सुधागिर:" अर्थात सुधाचन्द्र (सुधासागर मुनि रुप चन्द्र) के आगम निष्ठ, आत्मध्यान रुप सागर से नि:सृत आगम और अनुभवगम्य- सुधा वचन (अमृतमयवचन) कदापि अपथ्य नहीं हो सकते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रमुख आधार- जिनधर्म की गहन आराधना पूर्वक विविध शास्त्रों के सागर में निज मेधा का अवगाहन कराकर आत्मकल्याणक एवम् जगदुद्धारक तत्त्व रूप मुक्ताफलों निकालकर जो वितरित करके नये समाज के निर्माण में एक महती भूमिका के जो समर्थ निर्वाहक हैं, पुरातन श्रमण संस्कृति के दृढ़ आधार तीर्थक्षेत्रों के जो जीर्णोद्धार एवम् समुद्धारक हैं, जो व्यसनलिप्त मानव को आधियों / व्याधियों से निवारित कर सुस्वस्थ एवं सबल राष्ट्र के निर्माता है, आत्मवैभव के परिचायक हैं धर्म, समाज और राष्ट्र विषयक वैज्ञानिक सुलझी एवम् परस्पर -अविरोधी दृष्टि युक्त देशना के शास्ता हैं, जिनकी तप: पूत एवम् ज्ञानराधन प्रसूत ओजस्वी सिंह - निनादमयी वाणी में सदा पू. आचार्य समन्तभद्र पू. आ. कुन्दकुन्द निनादित होते हैं, ऐसे सद्धर्म मण्डक मिथ्यात्व भञ्जक, दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक सन्त- व्यक्तित्व की इस विषय काल में विश्वपटल पर अविस्थिति इतिहास की अनोखी घटना है। भारत के सामाजिक , सांस्कृतिक इतिहास नवाध्यायों के इस महान् प्रणेता ने निज- विहार से राजस्थान की शुष्क-मरुधरा में अध्यात्म और दर्शन की सरस धारा को प्रवाहित कर दी है और उस सरस वाग्धारा के निर्बन्ध प्रवाह ने सामाजिक कुरीतियों पूर्वाग्रह से व्याप्त मिथ्याधारणाओं की मार्गरोधी चट्टानों को तोड़ते हुए अजमेर नगरी को रससिक्त कर दिया। अजमेर नगरी अलकानगरी की छवि को फीकी करने लगी । किंवा अरिहन्त प्रभु के जन्मोपरान्त अयोध्या नगरी से अजमेर ने होड़ करना प्रारम्भ कर दिया ।

परमपूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागरजी महाराज, सन्त कबीर की सी पैनी दृष्टि सम्पन्न समाज सुधारक एक महान् क्रान्तिकारी सन्त प्रवर हैं, आगम की यथार्थ उद्घोषणा करने में तथा सामाजिक विद्रूपताओं, विसंगतियों, कुरीतियों, मिथ्याडम्बरों का निरसन करने में आप कतई संकोच नहीं करते हैं । आपकी सत्प्रेरणा एवम् मंगल आशीष के छाँव तले देवगढ, ललितपुर, अशोकनगर, आगरा एवम् सांगानेर में इतिहास निर्मापक अनेक कार्य सम्पादित हो चुके थे । अत: आपश्री के अजमेर पधारने के पूर्व ही आपकी यश: सुरभि ने नगर में प्रवेश कर नगर में प्रसृत होना चालू कर दिया । अत: आपके जग-सुहित-कर सब अहित-हर, श्रुति-सुखद सकल संशयोच्छेदक सुधावचनों (अमृत वचनों) के श्रवण हेतु लालायित अपार जनसमूह के कारण सोनी जी की विश्वविख्यात नसियां का विशाल प्राङ्गण भी छोटा पड़ गया । मुनिश्री के मुखचन्द्र से चार मास पर्यन्त हुई इस सुधा वृष्टि से न केवल अजमेर नगर अपितु सम्पूर्ण अजमेर अञ्चल के संसारी जनों का ताप शमन होने लगा, मन का कालुष्य धुलने लगा, चहुँ और प्रवचन सुधा वृष्टि से श्रमण संस्कृति के सभी प्रमुख स्तम्भों को, जो कि सामाजिक संगठनादि के अभाव, में युवजनों की अरुचि एवम् तथा कथित ठेकेदारों के एकाधिकार के कारण जीर्णप्राय हो रहे थे । सुदृढ़ परिणाम स्वरुप अनेक संस्कृति संरक्षक - दिशा- प्रेरक चारित्र निर्मापक साहित्य प्रकाशक श्रावकाचार संस्कार बीजवपक, व्यसन मोचक, थोथी रुढ़ि निवारक, आस्था केन्द्रों के स्थापक एवम् समुद्धारक भव्य कार्यक्रमों के आयोजनों से अजमेर नगर की यश: सुरभि दिग -दिगन्तों में व्याप्त हुई है ।

उक्त सकल कार्यक्रमों की सुखद स्मृतियों को चिरस्थायित्व हेतु तथा सांस्कृतिक एवम् साहित्यिक उपलब्धियों के अंकन हेतु चातुर्मास व्यवस्थापक समिति संस्था श्री दिगम्बर जैन समिति, अजमेर द्वारा पू. मुनिपुङ्गव श्री के चातुर्मास में सम्पन्न सभी कार्यक्रमों समायोजनों के विवरण प्रकाशन का निर्णय लिया गया । इस ग्रन्थ के माहात्म्य वर्द्धनार्थ "वीरोदय- अनुशीलन" अ. भा. विद्वत संगोष्ठी में पठित सकल शोध पत्रों / निबन्धों का के संकलन के साथ पुण्यमुनि पुंगव श्री के निर्मल चारित्र एवम् ज्ञान ध्यान- तपोलीनतादि गुणों से प्रभावित विद्वज्जनों / समाजसेवियों/ प्रशासकों द्वारा कृत भाव -वन्दनों को स्थान दिया गया है। जिससे इस ग्रन्थ की अर्घ्यता चतुर्गुणित हुई है ।

पू. मुनिपुंगव के चातुर्मास की उपलब्धियों का सकल अंकन पत्रिका में संभव नहीं मुनिश्री के प्रबल पुण्य प्रताप के कारण नितप्रति नवीन कार्यक्रमों की रूपरेखाएँ / योजनाएं बनती, तथा उन्हें पूरा करने के लिये टीम जुट जाती, आर्थिक सौजन्य प्रदान करने हेतु दातारों में होड़ा होडी चलने लगती । अत: सभी कार्यक्रमों का सटीक चित्रण एवम् उनकी उपलब्धि का बखान सम्भव है ही नहीं । तथापि कार्यक्रमों को झलकियों के रूप में इस कीर्तिस्तम्भ" नामक ग्रन्थ में विवृत किया गया, जिसे चार खण्डों में विभाजित किया गया है ।

प्रथम-खण्ड

इस खण्ड में वीरोदय-महाकाव्य पर आयोजित अ. भा. विद्वत् संगोष्ठी में अखिल भारत प्रसिद्ध भावक- विद्वानों के द्वारा गोष्ठी में पठित विद्वत्तापूर्व लेखों का संकलन है ये लेख आचार्य जैन वाङ्मय के सभी आत्मक एवं तुलनात्मक अनुसंधान अध्ययन की दिशा में मील के पत्थर साबित होंगे। गोष्ठी के सत्रों में विद्वानों द्वारा निबन्धों / शोधपत्रों के प्रस्तुतीकरण पश्चात् शोध-पत्रों के विषयों पर परमपूज्य मुनिपुंगव श्री का सारगर्भित प्रवचन होता था । इन प्रवचनों में मुनिश्री द्वारा निबन्धों के कथ्य और तथ्य का स्पष्टीकरण किया जाता था, आगत शंकाओं का समुचित समाधान किया जाता था ।

मुनिश्री के इन सरस रोचक और प्रमाणिक प्रवचनामृत का पान करने की ही इच्छा से विशाल श्रोता-समुदाय गोष्ठी में उपस्थित रहता था, तथा सामान्य श्रोता विद्वानों के ज्ञानगरिष्ठ शोध-पत्रों को सुन लेते थे, जिससे विद्वत् संगोष्ठी जनसामान्य से जुड़ी रही और सफलता की चरमता को अधिगत हो सकी। पूज्य मुनिश्री के उक्त मूल्यवान् संगोष्ठी प्रवचनों को 'सत्र-समीक्षण' शीर्षक के अन्तर्गत संकलित किया है 'सत्र-समीक्षण' शीर्षक के अन्तर्गत अंकित 'प्रवचनसार' सकल निबन्धों के सार-नवनीत को संक्षेप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। ये प्रवचन इस संगोष्ठी खण्ड रूप कनक-प्रासाद पर मणिमय कलश हैं। सत्र-समीक्षण का विषय विद्वज्जनों के साथ जन सामान्य को भी अत्युपयोगी सिद्ध होगा।

पूज्य मुनि प्रवर द्वारा गोष्ठी पूर्व वीरोदय ग्रन्थ का गहन अध्ययन एवम् पर्यालोचन किया गया था, स्वाध्याय के काल में पूज्य मुनिश्री द्वारा निजी उपयोगार्थ उस पर कुछ समीक्षात्मक नोट्स लिखे थे, उन्हें ग्रन्थ हेतु अति उपयोगी समझकर विशेष आग्रह पूर्वक मुनिश्री से प्राप्त कर "वीरोदय की सैद्धान्तिक विशेषताओं का समीक्षात्मक अध्ययन" शीर्षक से इसमें सम्मिलित किया गया।

द्वितीय-खण्ड

इस खण्ड में सम्पन्न श्रावक संस्कार शिविर द्वादशम-दीक्षा समारोह, शाकाहार सम्मेलन, अहिंसक कवि- सम्मेलन विकलांगों को ट्रायसाइकिल वितरण आदि अनेक सांस्कृतिक सामाजिक मानव सेवा समन्वित समारोहों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय-खण्ड

इस खण्ड में पू. मुनिप्रवर श्री के सरल सौम्य प्रभावक मनोज्ञ, जन मन मोहक, अनुपम व्यक्तित्व एवम् उनकी गहन साधना एवम् उग्र तपस्या से अभिभूत भक्त जनों के हार्दिक उद्‌गारों का संकलन है। खण्डवर्णित विषय पाठक के हृदय में निश्चय ही गुरुभक्ति के बहुमान को जागृत कर सकेगा।

मुनि-जन-तिलक के क्षुल्लकद्वययुक्त चरणन्यास से जिस नगर ने स्वयं को धन्य किया उस नगर के सांस्कृतिक वैभव विशेषत: जिन धर्मायतनों का प्रतिपादन भी आवश्यक था, जिसे चतुर्थ खण्ड में स्थान दिया गया।

प. पूज्य मुनि कुलगौरव के प्रबल पुण्य के सूर्य का प्रताप ही ऐसा है कि प्रतिगामी प्रतिक्रियावादी विध्वंसक तत्व अंधकार की भांति न जाने कहां तिरोहित हो जाते हैं और दूसरी ओर रचनात्मक चिन्तन शील कार्य को पूर्णता: का अन्जाम देनेवाले समाज के दातार जनों के छिपे रत्नों में दुगुनी द्युति एवम् ओज की वृद्धि हो जाती है, ऐसे में उनके चातुर्मास में कुछ आश्चर्यजनक एवम् यकायक अविश्वसनीय सी घटनाएं चरितार्थ हो जावें तो कोई अजूबा नहीं। पूज्य श्री की वीतरागी निर्विकल्प प्रेरणा ही अजयमेरु के इतिहास में इन स्वर्णिम पृष्ठों की निर्मात्री है। और अजमेर की सकल दिगम्बर जैन समाज के आबालवृद्ध सदस्यों ने जिस उत्साह उमंग और आन्तरिक लगन से सभी कार्यक्रमों में अपनी सम्पर्णपूर्ण सेवाएं दी हैं। कार्यक्रम की सफलता में उन्हें भी कम नहीं आंका जा सकता।

समाजों एवम् समिति के पदाधिकारियों से लेकर छोटे से छोटा व्यक्ति प्रत्येक आयोजन में मुनिश्री की दिगम्बर जैन धर्म और संस्कृति से संरक्षण एवम् प्रचार प्रसार की भावनाओं को मूर्त करने में जुटे रहते थे। इस चातुर्मास के माध्यम से अजमेर समाज ने प्राचीन मन्दिरों के जीर्णोद्धार सहित विद्यातीर्थस्थली की बहुआयामी योजना को हाथ में लेकर देवभक्ति एवम् राजस्थान की मरुभूमि में साहित्य गंगा के भगीरथ महाकवि ज्ञानसागर के समग्र साहित्य का प्रकाशन कर शास्त्र भक्ति तथा पूज्य मुनिवर श्री के प्रेरणानुरुप सभी कार्यों की सफलता को चरम सीमा पर पहुंचाकर गुरु भक्ति प्रकट की है। इस प्रकार इस चातुर्मास के आयोजन से अजमेर समाज को देव शास्त्र और गुरु इन तीनों की सातिशय भक्ति एवम् महत्-पुण्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

दिगम्बर जैन समिति के सभी पदाधिकारी अध्यक्ष श्रीमान् भागचन्द जी गदिया, मंत्री श्री राजेन्द्रकुमार जी ढिलवारी तथा उनकी सक्रिय टीम साधुवाद की पात्र हैं। संगोष्ठी हेतु अपना सौजन्य प्रदान करने वाले भद्र परिणामी श्रीमान् राजेन्द्र कुमार जी अजयकुमार जी दनगसिया की जितनी प्रशंसा की जाये, कम है। संगोष्ठी के संयोजक बहुश्रुत विद्वान् डॉ. श्रेयांस कुमार जैन एवं डॉ. अशोक कुमार जैन का कुशल संयोजन एवम् संगोष्ठी के व्यवस्थापकद्वय श्री निहालचंद जैन प्राचार्य व श्री पद्मकुमार जैन एडवोकेट की श्रम साध्य प्रबन्धन कला ने गोष्ठी को ऊँचाईयाँ प्रदान की। चातुर्मास के सकल आयोजन विश्व विख्यात सोनी जी की नसियाँ में आयोजित हुये, जिसके लिये श्री धर्मनिष्ठ एवं गुरु भक्त सोनी परिवार धन्यवाद का पात्र है। प्रूफ संशोधन में गुरुभक्त श्रीमान् कमल कुमार जी बडजात्या, अजमेर ने अपनी श्रम पूर्ण सेवायें प्रदान की है। धर्मकार्यों में वृद्धि हेतु उन्हें मंगल कामनायें संप्रेषित हैं।

आशा है "कीर्ति स्तम्भ" ग्रन्थ आगामी श्रमण संस्कृति के इतिहास में प्रकाश स्तम्भ बनकर विज्ञ जनों के कण्ठ का हार बनेगा। अन्त में पूज्य प्रवर आचार्य ज्ञानसागर जी की वाग्गरिमा, संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागरजी महाराज के सच्चारित्रवृद्धि अभिमान, एवं मुनिवर सुधासागरजी महाराज की युवा सचेतक को प्रणाम शत शत नमन, जिसमें समाज को बोधित करने, धर्म में प्रवृत्त कराने और सभी मिथ्यात्वों से बचाने की चामत्कारिक अपूर्व सामर्थ्य है। किम् बहुना।

अरुणकुमार शास्त्री, ब्यावर

एस. बी. श्रीवास्तव

सदस्य
राजस्व मण्डल राजस्थान
अजमेर 305 001

दिनांक 10-10-1994

प्रिय श्री जैन,

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि राजस्थान की पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नगर अजमेर में दिगम्बर जैन समिति की वर्षायोग स्मारिका निकाली जा रही है जिसमे जैन सम्बन्धी विचार एवं ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश किया जायेगा । यह जानकर भी अत्यन्त गौरव का अनुभव हुआ कि इस स्मारिका को परम पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त हैं ।

जैन धर्म व उसका इतिहास अत्यन्त अनूठा एवं सुसंस्कृत है इस सम्बन्ध में जितनी जानकारी समाज को दी जा सके उतना ही अच्छा है और उसके लिये जो भी प्रयास किया जावे वह सराहनीय है ।

मै इन सब समारोहों तथा स्मारिका के लिये अपनी शुभ-कामनाएं देता हूं तथा विश्वास प्रकट करता हूं कि इन सबका लाभ सम्पूर्ण समाज को होगा।

सद्भावी

(एस.बी.श्रीवास्तव)

रायबहादुर सेठ चम्पालाल रामस्वरूप रानीवाला

रानीवाला मेन्सन
ब्यावर 305 001.

शुभ सन्देश

परमपूज्य १०८ मुनिवर श्री सुधासागर जी महाराज के अजमेर नगर में सम्पन्न चार्तुमास की पुण्य स्मृतियों के स्थायित्व हेतु तथा पूज्य मुनि श्री के मंगल उपदेशों को जनजन तक पहुंचाने के दृष्टि से दिगम्बर जैन समिति, अजमेर द्वारा ''भव्य स्मारिका'' के प्रकाशन से अज्ञानान्धकार के मेघों का नाश होगा एवम् जैनशासन के सूर्य का प्रताप दिगदिगन्त तक व्याप्त होगा।

मै तपः पूत मुनिश्रेष्ठ पूज्य सुधासागर जी महाराज के पावन चरण कमलों में अपनी विनयाञ्जलि प्रस्तुत करते हुए समिति के सभी उपक्रमों की सफलता हेतु कामना करता हूं।

(सज्जनकुमार रानीवाला)

जयकुमार बड़जात्या

ब्यावर (राज.)

श्रीमान् अध्यक्ष महोदय,

आपके पत्र दिनांक 03/10/94 द्वारा मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ कि समिति पूज्य आध्यात्मिक सन्त 108 सुधासागर जी महाराज के ऐतिहासिक अजमेर चार्तुमास के गौरव को चिरस्थायी बनाने हेतु एवं देव-शास्त्र गुरु का गुणानुवाद कर अपनी विनयान्जलि प्रस्तुत करते हुए एक भव्य "स्मारिका" का प्रकाशन करने जा रही है । परम पूज्य मुनि श्री व उनका संघ मंगल है, उनका चार्तुमास मंगल है । अतः निश्चिय ही इस चार्तुमास काल में सम्पन्न मंगलमयी धर्म प्रभावना का विवरण प्रस्तुत करने वाला यह सुभव्य ग्रन्थ (स्मारिका) भी मंगलवर्धक होगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

ऐसे अनुकरणीय एवम् स्तुत्य प्रयासों के लिये मेरी सद्भावनाएं सदा आपके साथ है ।

भवदीय

जयकुमार बड़जात्या जैन

(जयकुमार बड़जात्या)

अध्यक्षीय - अभिवन्दना

कृतज्ञता - आभार

'ज्ञानअरु' विद्या की प्रतिमूरत, धन्य सुधासागर अनगार
चरण - कमल पावन पधराये, ''अजयमेरु'' नगरी सुखकार
वर्षावास बना स्वर्णिम यह, भाग्योदय हम सब जन का
चिरंजीवो, गुरु , सिद्ध बनो तुम, जगा भाव ''शील'' मन का

साधर्मी समाज/ बन्धुवर,

दिनांक 16 जुलाई 1994 की शुभ प्रभात बेला अजमेर नगर के सकल नरनारियों के लिए बहार लाई थी, जब परम पूज्य दीक्षा गुरु आचार्य शिरोमणी 108 श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य अध्यात्म प्रवक्ता महान धर्म प्रभावक, पूज्य 108 सुधासागर जी महाराज के चरण कमल (ससंघ क्षुल्लक 105 श्रीगम्भीर सागर जी, क्षुल्लक श्री 105 धैर्यसागर जी एवम् ब्रह्मचारी भैया श्री संजय जी व ब्र. श्री अजित जी)सर्वधर्म समभाव नगरी अजयमेरु की रज पवित्रता को प्राप्त हुई थी। दिनांक 21 जुलाई की वह पावन बेला तो अजमेर दिगम्बर जैन समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित की जावेगी जब हजारों नरनारियों के मध्य अजमेर के जिलाधीश श्री देवेन्द्र भूषण गुप्ता एवम् नगर विकास न्यास के अध्यक्ष श्री ओंकार सिंह जी लखावत की उपस्थिति में संघ ने वर्ष 1994 के लिए अजमेर के वर्षावास की विधिवत् घोषणा कर प्यासे चातक रुपी भक्तजनों को प्रवचन रुपी स्वाति जल की बूंद मिलने की निश्चतता प्रदान की थी । तब से लगाकर आज तक अजमेर नगरी मानों धर्म नगरी में हजारों नर- नारियों के मध्य परिवर्तित हो गई और ऐसा लगने लगा कि हम पंचम काल के नहीं अपितु चतुर्थ कालीन श्रावक बन गये हैं। सम्पूर्ण वर्षावास में ऐसे अद्वितीय, अविस्मरणीय, कीर्तिधारक, धार्मिक कार्य सम्पन्न हुए कि जिसकी कल्पना की कल्पना तक भी नहीं की जा सकती थी । प्रतिदिन महाराज श्री के श्री मुख से प्रवाहित होने वाली प्रवचन सुधा-गंगा की शीतलता में अवगाहन करने वाले श्रावकों/श्रोताओं का उमड़ता सैलाब इस बात का प्रमाण बना कि महाराज श्री के प्रवचन वास्तविकता, यथार्थता एवम् सत्यता आदि से सुगंधमयी सुवास से परिपूरित थे । बाल-प्रवाल, स्त्री पुरुष जैनाजैन आदि के भेद/ प्रभेदों से दूर हजारों की संख्या में श्रोताओं ने प्रतिदिन प्रवचन सुन कर उसे अपने आचरण में ढालने के संकल्प किये ।

मांसाहार का त्याग/ अंडो के सेवन का त्याग/जुआ लाटरी का त्याग/दहेज का त्याग/अभक्ष भक्षण का त्याग/ नशीले पदार्थों यथा गुटखा, तम्बाखू, पान पराग, रजनीगंधा, सिगरेट, शराब आदि का त्याग/ चमड़े एवम् चमड़े की बनी वस्तुओं का त्याग/ मृत्युभोज प्रथा का त्याग/ अशिष्ट ढंग से भीड़ भरे वातावरण में सामूहिक भोजन यथा बफर खाने की प्रथा का त्याग/ सामूहिक रात्रि भोजन का त्याग/ प्रतिदिन देव दर्शन / देवपूजा एवम् स्वाध्याय का बिना किसी दबाव के स्वेच्छा से हजारों नर-नारियों के द्वारा किये गये संकल्प आचरण विशुद्धि के मार्ग में बढ़ता कदम ही माना जावेगा ।

अपने मांगलिक प्रवचनों में महाराज श्री में निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, अकालमरण, काललब्धि, उपास्य-उपासक, उपासना, पूजा- पूज्य आत्मा-परमात्मा सम्यक दर्शन ज्ञान चारित्र, श्रमण एवम् श्रावक धर्म आदि अनेकानेक गूढ़ एवम् व्यर्थ के विवादास्पद विषयों को पूरी रहस्य के साथ उद्घाटित कर भ्रम को दूर हटाया है तथा अनेकान्त का मार्ग दर्शाया है ।

श्रावकाचार को सुदृढ करने के मार्ग में तो आपकी प्रेरणा से वर्षावास में सम्पन्न श्रावक संस्कार शिविर अपने आप में चमत्कार तथा नया आयोजन माना जायेगा । श्रावक संस्कार शिविर में सम्मिलित देश के कोने-कोने से आये लगभग 700 शिविरार्थी अपने आपको इस हेतु धन्य मानते हुए संघ के प्रति नतशीश कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए अभी भी नहीं ऊचाते हैं ।

पूज्य महाराज श्री के द्वाद्रश दीक्षा जंयती समारोह के अवसर पर आयोजित शाकाहार तथा व्यवसनों परआधारित झाकियों ने सकल अजमेर नगर वासियों के हृदय को झकझोर कर ''परस्परोपग्रहो जीवानाम् '' के सूत्र का हृदयंगम कर जीवों पर करुणा

की भावना का अपने मन में बीजारोपण किया जो निश्चित ही भविष्य में बड़ा सुखद परिणाम देकर देश को पर्यावरण प्रदूषण की तथा अन्य समस्याओं से मुक्त कराने में सहायक सिद्ध होगा ।

पूज्य महाराज तथा सकल संघ की साहित्य के प्रति अभिरुचि एवम् बहुमान की भावना तथा कृपा प्रसाद के परिणामस्वरुप केवल मात्र 2 मास की अल्पावधि में परम् पूज्य आचार्य 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज द्वारा विरचित 24 ग्रंथों (काव्य/ महाकाव्यों) का सकल समाज ने अपने आर्थिक सौजन्य से पुन: मुद्रण एवं प्रकाशन का बीड़ा उठाकर सफलता प्राप्त की । यह तो विद्वानों के लिए भी आश्चर्यजनक बात है । इन ग्रन्थों को समिति के माध्यम से देश के सकल विश्वविद्यालयों/ महाविद्यालयों के पुस्तकालयों तथा शोधपीठो में शोधार्थ प्रेषित कियां जायेगा । यह समिति सकल मुनिसंघों तथा दिगम्बर जैन जिनालयों में भी स्वाध्यायार्थ भेजा जायेगा । इस क्रम में वीरोदय महाकाव्य पर देश के कोने- कोने से आये संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा की गई विद्वद् गोष्ठी भी अपने आप में अनूठा कार्यक्रम रही ।

देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले प्लेग "रोग" से पीड़ित मानवता के कल्याणार्थ आपके ह्रदय कमल में व्याप्त जीवदया एवम् कल्याण की भावना के परिणामस्वरूप पंच दिवसीय णमोकार मंत्र का अखण्ड पाठ कर कल्याण की भावना मापी गयी।

वर्षावास समापन की बेला पर श्री इन्द्रध्वज महामंडल विधान, विश्व शांति महायज्ञ तथा भव्य रथयात्रा का आयोजन अजमेर नगर के इतिहास में चमत्कार माना जा रहा है । नंगे पांव लाखों की संख्या में जनता का रथयात्रा के साथ चलना, रथयात्रा के मध्य सुपारी तक न खाना एवं 500 इन्द्र -इन्द्राणियों द्वारा हाथों में भक्ति के प्रतीक केसरिया ध्वज लेकर चलना रथयात्रा की शोभा को द्विगुणित कर रही थी । और इन सबसे ऊपर हुआ कीर्तिमान चमत्कार **सकल दिगम्बर जैन समाज के व्यक्तियों का सपरिवार स्नेह भोज** चातुर्मास का वास्तविक सफल माना जा रहा है कि समाज ने वाल की दीवाल (यथा खण्डेलवाल, जैसवाल, पल्लीवाल, पोरवाल, अग्रवाल आदि) को तोड़कर परस्त धार्मिक एवम् सामाजिक एकता की पृष्टभूमि बनाई। इस हेतु सकल समाज पूज्य महाराजश्री की कृपा को चिरकाल तक विस्मृत न कर पायेगी । महाराज श्री के आशीर्वाद से सकल दिगम्बर जैन समाज अजमेर को अरावली पर्वतमाला की अजमेर श्रृंखला पर भव्य धार्मिक क्षेत्र बनाने हेतु स्थान उपलब्ध होने की मनोभावना सक्रिय सहयोग से यह सब कुछ संभव हो पायेगा ऐसा विश्वास है ।

अन्त: में यह लिखने में कोई अतिशयोक्ति है कि यह वर्षावाद तथा संघ का प्रवास अजमेर नगर वासियों में धार्मिक/ आध्यात्मिक / सांस्कृतिक / सामाजिक एवं पारमार्थिक चेतना के उत्पन्न में सोने में सुहागा जैसा बना हैं । मैं कामना करता हूँ कि हमारे चार्तुमास को वास्तविक उपलब्धि होगी यदि हम व्यक्ति / पंचायत / धड़े / संस्था / पंथ आदि अपने आपको कषायों की मन्दता की और अग्रसर कर सके एवं सभी का आत्मिक कल्याण हो । मै सकल दिगम्बर जैन समाज अजमेर एवं दिगम्बर जैन समिति अजमेर की ओर से सकल संघ के प्रति नतशीस कृतज्ञताजंली अर्पितु करता हुआ संघचरणों में वन्दना करता हूं।

आभार :-

इस भव्य एवं कीर्ति युक्त चार्तुमास की सफलता को चरम सीमा पर पहुँचाने में सकल दिगम्बर जैन समाज के बाल प्रवाल एवम नर-नारियों का सक्रिय सहयोग रहा है । जिसमें अजमेर नगर का तथा समाज का गौरव बढ़ाया है । एतदर्थ सकल समाज/ पंचायत / संस्थाओं / दानदाताओं / सामाजिक एवं सास्कृतिक संस्थाओं / समिति के पदाधिकारियों एवं सदस्यों / विभिन्न कार्यक्रमों के संयोजकों / मुद्रकों तथा प्रकाशकों तथा प्रत्यक्ष एंव परोक्ष रुप में न्यूनाधिक्य सहयोग देने वाले कार्यकर्ताओं के प्रति आभार व्यक्त करता हूं ।

वर्षावास की सारी सफलता का श्रेय सकल समाज को है तथा रहे कोई भी अभाव / त्रुटियों / कमियों को मै अपनी मानकर आपसे भुलाने का निवेदन करते हुए समाज के संगठन को सुदृढ बनाने में पंथ व्यामोह / पक्षपात को त्याग कर इसी प्रकार के सहयोग की आंकाक्षा करता हूं ।

पूज्य श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज की जय

भागचन्द गदिया
अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जैन समिति, अजमेर ।

जीवन्त अनुभूति

अजयकुमार दनगसिया
महामंत्री
दिगम्बर जैन समिति, अजमेर

कुमुदचंद सोनी
महामंत्री
दिगम्बर जैन समिति, अजमेर

महामंत्री की कलम से......

श्री दिगम्बर जैन समाज अजमेर का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज राजस्थान का यह परम् सौभाग्य है कि परम् पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के द्वारा दीक्षित किसी शिष्य का ससंघ चार्तुमास वीर प्रसवा भूमि राजस्थान में हुआ है। यह अतिशयशक्ति प्रथम सौभाग्य राजस्थान के ह्दयस्थल सांस्कृतिक एवं धार्मिक समभावनगरी, आचार्य श्री की दीक्षास्थली अजमेर को प्राप्त हुआ है।

यह स्वर्णिम चातुर्मास उत्कृष्ट धार्मिक प्रभावना एवं अनेक चारित्रिक व सामाजिक उपलब्धियों के साथ निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न हुआ है। विशेष रुपसे हमारी डगमगाती हुई श्रद्धा एवं मुनियों के प्रति समाप्त प्राय: होती हुई आस्था को पुन: जीवित कर दृढ़ चारित्र रुपी जीवन्त सस्थां का निर्माण आगम का अगाध ज्ञान रखने वाले जैन सिद्धान्तों को अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा जनमानस तक पहुँचाने वाले अत्यन्त सिद्ध हस्त कुशल शिल्पी तीर्थोद्धारक, नवतीर्थ प्रणेता एवं निर्दोष चर्या के पालन करने व करवाने वाले युवामनीषी पूज्य मुनिराज श्री 108 सुधासागर जी महाराज द्वारा हुआ है।

परम् पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के चरण सानिध्य में विधिवत् दिगम्बर जैन समाज के प्रतिनिधि के रुप में सर्व श्री राजेन्द्र कुमार जी दनगसिया, श्री भागचन्दजी गदिया, श्री कुमुदचंदजी सोनी, श्री तिलोक चंद जी गदिया एवं श्री कपूरचंदजी सेठी, अजमेर में चार्तुमास करने हेतु विनति करने फरवरी 1994 में सर्वोदय तीर्थ अमर कंटक पहुँचे। आचार्य श्री के सन्मुख अजमेर नगर की वेदना प्रस्तुत की गई। आचार्य श्री ने हमारी प्रार्थना सुनी एवं राजस्थान वासियों पर करुणा करके अपने सुयोग्य शिष्यों को अजमेर चार्तुमास हेतु निर्देश देकर जो हम पर महान् उपकार किया है उसके लिये हम परम् पूज्य आचार्य श्री के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुये उनके चरणों में नमोस्तु करते हैं।

वर्षावास में मुनिराज एक स्थान पर लगभग 4 माह के लिये विराजते है यह अवधि श्रावकों के लिये आध्यात्म मार्ग की ओर बढ़ने के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। अजमेर नगर के विशेष पुण्योदय से यहाँ पर पूज्य सुधासागर जी महाराज का ससंघ चार्तुमास के अर्न्तगत विराज रहे हैं। इस सन्तसमागम में श्रावक अपने आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। दैनिक कार्यक्रम के अर्न्तगत प्रात: आचार्य भक्ति 5.45 पर व्याकरण की कक्षा से आरम्भ होकर रात्री मे क्षुल्लक श्री 105 गम्भीर सागर जी कथाकथन एवं ब्र. संजय भैया द्वारा शास्त्र सभा तक नशियांजी में मैला सा लगा रहता है।

पुज्य मुनिसंघ के अजमेर नगर में पदार्पण से लेकर आज तक अवाधरुप से चली आ रही सार्वजनिक प्रवचन श्रंखला में इतना अधिक जनसमूह मंत्रमुग्ध होकर प्रवचन सुन रहा है जिसकी मिसाल अजमेर के पूर्व इतिहास में उपलब्ध नहीं होती है। प्रवचन का समय जो सवा घण्टे तक नियत था वह धारा प्रवाह अथक अविराम दो-दो घण्टे तक चलता है और श्रोतागण सुधावर्षा में ऐसे मारोकार हो जाते हैं कि उन्हें पता ही नही लगता कि कितना समय पूर्ण हो चुका है।

प्रवचन सुधा के माध्यम से पूज्य मुनि श्री ने सार्वजनिक रुप से अनेक कुरुतियों का उन्मूलन रात्रीभोजन, मांसाहार, चमड़े की वस्तुओं का उपभोग, नशीले पदार्थों के साथ गुटखा, तम्बाखू आदि पदार्थों का त्याग सहज भाव से कराया ही है इसी के साथ गृहित मिथ्यात्व को छुड़ाते हुये, एकान्त मार्ग का खन्डन कराते हुये समाज को मूल मार्ग की धारा से जोडने का गुरुतर कार्य किया है। विस्मृत होती हुई समीचीन पूजा पद्धति सिखलाते हुये गृहस्थों को आम्नायवाद से दूर हटाते हुये सच्चा आगम मार्ग आपने बतलाया है।

मां सरस्वती के अनन्य उपासक एवं अपनी गुरु परम्परा की उज्जवल कीर्ति के संस्कारत्व के रुप में आप अपने प्रवचनो में परम् पूज्य युगप्रवर्तक चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी एवं आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज एवं पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के गुणस्मरण किये बिना नहीं रहते। आपसे प्रेरणा पाकर ही अजमेर दिगम्बर जैन समाज ने परम् पूज्य आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा रचित अनुवादित संपादित आदि 25 ग्रन्थों का प्रकाशन 2माह की अल्पावधिमें न केवल करवा के वरन उन्हें देश के विभिन्न मन्दिरों पुस्तकालयों, साधुसंन्तों, विद्वानों के पास यथा शीघ्र भेजते हुये प्रमुख विश्वविधालयों, महाविधालयों की पुस्तकालयों में भी प्रतिप्रेषित करवाया है।

देवगढ़ सांगानेर आदि तीर्थों के जीर्णोद्धार तो आपके चरण सान्निध्य में हुआ ही है। अजमेर में भी आपके प्रवचनों से प्रेरणा पाकर सरकार ने करीब 150 बीघा जमीन नवतीर्थ विद्यागिरि के निर्माण एवं समाजोपयोगी संस्थाओं यथा महाविद्यालय, चिकित्सालय, गौशाला आदि के लिये देने का संकल्प किया है।

श्रावक संस्कार शिविर के माध्यम से शिवीरार्थीयों को धार्मिक शिक्षण तो आपने दिया ही है वरन उनमें संयमी जीवन के संस्कार रोपित करके उन्हें संयमित जीवन जीने की कला सिखाई है। वस्तुत: पूज्य सुधासागर जी महाराज के अजमेर जिले की जैन समाज पर इतने उपकार हैं कि हम आपसे इस जीवन में तो कदापि उऋण नहीं हो सकते।

सार्वजनिक प्रवचन के अलावा मध्यान्ह 2 बजे से 4.30 बजे तक सर्वार्थ सिद्धी एवं गौमट्टसार जीवरान्द की स्वाध्याय कक्षा के माध्यम से गूढ़ से गूढ़तर विषयों को भी बडे आसान तरिके से समझाकर ज्ञान पिपासुओं की प्यास बुझाई है। ऐसे सतमार्ग प्रदर्शक गुरु ने अजमेर में चार्तुमास कर हम अजमेर वासियों पर महान उपकार किया है अत: हम नमोस्तु अर्पित करते हैं।

संघस्थ पूज्य 105 श्री गम्भीर सागरजी महाराज जो अपने आत्म कल्याण के प्रति गम्भीर हैं रात्री में कथा कथन पर आधारित सार्वजनिक प्रवचन के माध्यम से प्रथमानुयोग के महत्व को उजागर किया है एवं विशेषरुप से समाज के युवा वर्ग में धार्मिक चेतना जगा रहे हैं। पूज्य क्षु. 105 श्रीधैर्य सागरजी महाराज जो कि करुणा की साक्षात मूर्ति हैं प्रात: प्रवचन के तत्काल पश्चात् प्रवचन पर आधारित प्रश्नमंच के माध्यम से श्रोताओं में प्रवचन को ठीक तरह से सुनकर उनके उत्तर देने की कला को विकसित कर रहे हैं एवं स्वाध्याय के पृच्छन्ना अंग के महत्व को उजागर किया है। विशेषरुप से बालकों को धार्मिक संस्कार देकर प्रारम्भ से ही धार्मिक जीवन जीने की प्रेरणा दे रहे हैं। ताकि भविष्य में श्रोत श्रावक बनकर आत्म कल्याण के मार्ग की ओर अग्रसित हो सके। ब्र. संजय भैया जो प्रेम एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति हैं। शास्त्र सभा एवं विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों से शास्त्र स्वाध्याय एवं सुसंस्कृत जीवन जीने के प्रेरणा दे रहे हैं।

वस्तुत: पूरे संघ के सानिध्य में जो दैनिक कार्यक्रम के साथ अनेक भव्य आयोजन हो रहे हैं उससे हमें एक कल्पना करने का अवसर मिल रहा है कि चोथा काल कैसा होगा। इस पूरे संघ के प्रति कृतज्ञामति अर्पित करते हुये क्रमश: इच्छामि एवं वंदना करते हैं।

चातुर्मास को स्वर्णिम बनाने में स्वर्णमियी अयोद्या नगरी एवं संसार में विशालतम मानस्तभ वाली विश्व प्रसिद्ध लाल नशियांजी के ट्रस्टीगण श्रीमान् निर्मलचन्द सोनी श्री सुशीलचंद सोनी एवं श्री प्रमोदकुमारजी सोनी का भी महत्वपूर्ण योगदान मिल रहा है, संघ की आवास व्यवस्था, प्रवचन स्थल की सुन्दर व्यवस्था के साथ-साथ माईक, विद्युत, टेंट आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था आपके ही सानिध्य में हो रही है। इसी प्रकार दर्शनार्थियों के लिये आवास व्यवस्था, चौका लगाने के लिये स्थान उपलब्ध करवाने व भोजन व्यवस्था के लिये आवश्यक स्थान व उपकरण उपलब्ध करवाने के लिये क्रमश: सोनी परिवार व समाज की माननिय पंचायतों का हम आभार व्यक्त करते हैं।

हम आभारी हैं अजमेर के जिला कलेक्टर श्रीमान् देवेन्द्रभूषणजी गुप्ता एवं नगर सुधार न्यास के अध्यक्ष श्री ओंकार सिंहजी लखावत के जिनके निर्देशन में प्रशासन का पूर्ण सहयोग मिला। श्रीमान् राजेन्द्र कुमारजी दनगसिया, श्री छीतरमलजी गंगवाल, श्री ज्ञानचन्दजी जैन, श्री तिलोकचंदजी गदिया, श्रीमति उर्मिला सोनी, श्री हीरालालजी कोठारी श्री विरेन्द्र नेता जिन्होंने मार्ग में चौका लगाकर अजमेर में आने का मार्ग प्रशस्त किया इसी प्रकार श्री देवेन्द्र कुमारजी जैन संघ के साथ मथुरा से अजमेर तक पैदल चले श्री बंटी गदिया, श्री भुवराम जी जैन एवं अनेक उन महानुभावों का जिन्होंने संघ को अजमेर लाने में योगदान दिया हम उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

हम आभारी है श्री राजेन्द्र कुमारजी दनगसिया एवं उनके परिवार के प्रति जिन्होंने विरोदय महाकाव्यपर अखिल भारतवर्षीय विद्वत् संगोष्ठी को सौजन्यता प्रदान की इसी प्रकार श्रीमान् भागचन्दजी पहाडिया, पद्मावति मार्बल वाले जिन्होंने श्रावक संस्कार शिविर को सौजन्यता प्रदान की इसी तरह उन सभी महानुभावों के जिन्होंने अपनी चपला लक्ष्मी का सदुपयोग विभिन्न आयोजनों में एवं अतिथि सत्कार में किया है। विशेष रूप से हम आभारी हैं माँ जिनवाणी की सेवा में जिन्होंने अपनेपन का सदुपयोग किया है, उन सभी के प्रति हम आभार प्रकट करते हैं।

मैं आभारी हूँ समस्त दिगम्बर जैन समाज अजमेर का एवं श्री दिगम्बर जैन समिति के समस्त पदाधिकारियों एवं प्रत्यक्ष व परोक्ष कार्यकर्ताओं का जिन्होनें अपना पूर्ण सहयोग देकर इस चातुर्मास एवं उसके अर्न्तगत विभिन्न आयोजनों को ऐतिहासिक सफलता प्रदान की है। हम आभारी हैं हमारे सुयोग्य युवा अध्यक्ष श्रीमान् भागचंदजी गदिया के जिनके प्रगतिशील नैतृत्व में हमें अभूतपूर्व सफलता मिली है।

समाज के एक मूक कार्यकर्त्ता श्री कमलचंद जी जैन जिन्होनें इतने अल्प समय में ही समस्त ग्रन्थों की प्रूफ रीडिंग की है जिससे साहित्य इतना शीघ्र सभी पाठकों के हाथ में है इसी प्रकार श्री भीकमचंदजी पाटनी जिनके प्रभाव से साहित्य को यथास्थान पहुँचाने में सहायता मिली है ये दोनों अभिनन्दन के पात्र हैं।

अतं में मैं आभारी हूं मेसर्स निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्टर्स के प्रिन्टर्जी का जिन्होंने अल्प समय में ही इतने अधिक ग्रन्थों एवं स्मारिका का प्रकाशन किया है।

❑❑❑
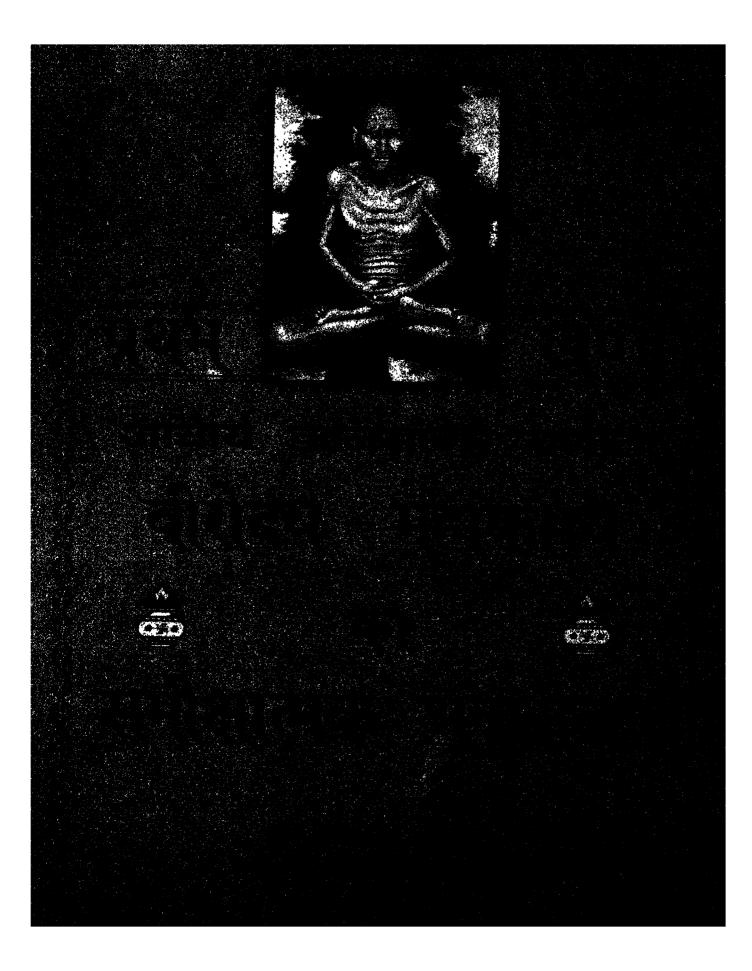
-: प्रसंग :-

आचार्य ज्ञानसागर प्रणीत

वीरोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अनुशीलन

संगोष्ठी- दिनांक 13, 14 व 15 अक्टूबर 1994

स्थान- सेठ सा. की नसियाँ, अजमेर

-: आशीर्वाद एवं सान्निध्य :-

मुनि 108 श्री सुधासागरजी महाराज

क्षुल्लकद्वय श्री गंभीरसागरजी, श्री धैर्यसागरजी

-: संगोष्ठी संयोजक एवं सम्पादक :-

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन

प्रवक्ता दिगम्बर जैन कॉलिज बड़ौत (यू.पी.)

डॉ. अशोक कुमार जैन

प्रवक्ता जैन विद्या विभाग लाडनूं-नागौर (राज.)

-: व्यवस्थापक :-

(1) प्राचार्य निहालचन्द जैन, अजमेर

(2) पद्मकुमार जैन, एडवोकेट अजमेर

-: संगोष्ठी सौजन्य :-

श्री राजेन्द्रकुमार, अजयकुमार, विजयकुमार दनगसिया, अजमेर

-: प्रकाशन सौजन्य :-

श्रेष्ठी श्री निर्मलचन्दजी, सुशीलचन्दजी, प्रमोदचन्दजी सोनी

श्री ज्ञानसागर दशक मस्तोत्रम्

[रचयिता- पं. महेन्द्रकुमारो "महेश:" शास्त्री ऋषभदेववास्तव्य:]

य: यर्वाङ्गमनोहरो यतिवरश्चासीत्तपस्वीमहान्
सम्यग्दर्शन-बोध वृत्तसहितो, विद्वान् मुनीशो बभौ ।
धर्मिष्ठस्य चतुर्भुजस्यतनयो, भूरामल: शांतिद:,
स्तुत्य: साधु जनैश्च पण्डितवरै:, श्रीज्ञानसिन्धुर्जयेत् ॥ १ ॥

यो ज्ञान सिन्धुर्भुवि भव्य बन्धु:,
सद्ज्ञानचारित्रयुत: पवित्र: ।
काव्यप्रणेता यतिवृन्दनेता,
तं ज्ञानसिंधुम् प्रणमामि नित्यम् ॥ २ ॥

य: श्रेष्ठिवर्यस्य चतुर्भुजस्य,
सुपुत्ररत्नो विदुषां वरेण्य: ।
यो बाल्यकालो गृहतो विरक्त:
तं ज्ञान सिन्धुम् प्रणमामि नित्यम् ॥ ३ ॥

अगाधपाण्डित्ययुत: प्रसिद्ध:,
यो रागरोषादिकषायमुक्त: ।
दैगम्बर: शांतिदयासमुद्र:,
तं ज्ञानसिन्धुम् प्रणमामि नित्यम् ॥ ४ ॥

क्षमादि धर्मप्रतिपालकश्च,
महामुनिश्चात्र बभौ कवीश:, ।
मोहाद्विरक्तो मुनिमार्गरक्त:,
तं ज्ञानसिन्धुम् प्रणमामि नित्यम् ॥ ५ ॥

काले कलौ पञ्चमदु:खमे च,
एतादृशा: साधुजनाश्चलोके ।
ध्यानैकनिष्ठा: विरला: लभन्ते,
तं ज्ञानसिन्धुम प्रणमामि नित्यम् ॥ ६ ॥

आसन् पुरासाधुजना: विशुद्धा:,
आसीत्तथाऽयं भुवि साधुवर्य: ।
गायन्ति सर्वे विबुधा: गुणान्ते,
तं ज्ञान सिन्धुम प्रणमामि नित्यम ॥ ७ ॥

धन्या च माता जनकश्च धन्य:,
धन्या च भूर्यत्र बभूव जन्म ।
धन्यश्चयो भूरमलोसुपुत्र:,
सं ज्ञानसिंदुम् प्रणमामि नित्यम् ॥ ८ ॥

हे ! ज्ञानसिन्धो ! तवपादपद्मे,
मग्ना: नरा: शांतिसुखंलभन्ते ।
शिष्या: प्रशिष्या: सततम् स्मरंति,
तं ज्ञानसिंधुम् प्रणमामि नित्यम् ॥ ९ ॥

सकल मुनिगणेशो, मोक्षमार्गे प्रवृत्त:,
सुरनरगणवंद्यो, रागदोषादि मुक्त: ।
विबुधनिचय सेव्य:, सर्वसङ्गाद्विरक्त:,
जयतु जगति साधु ज्ञानसिन्धु र्मुनीश: ॥ १० ॥

ज्ञानसिन्धोर्मुनीन्द्रस्य, स्तोत्रम् वै दशकम् मया ।
रचितम् भक्तिभावेन, महेशाख्येन शान्तिदम् ॥

आइरिय - णाणसायरमुणी

डॉ. उदयचन्द जैन
अरविन्द नगर, उदयपुर (राज.)

लोए महा - गहिर-सायर - णाण - सिन्धु
विंदू समा लहु जणा महणिज्ज होंति ।
णाणन्हि दंसण-गुणे चरणे परित्तं
हं णाणसायरमुणिं पणमामि णिच्चं ॥ १ ॥

बालो वि बालगुण -मुत्त-अणेग-रूवं
पत्तेदि णाणगुणधिं नुषणेण णिच्चं ।
राणोलि-गाम-गद-बालग-बाल-जुत्तो
हं णाणसायरमुणिं पणमामि णिच्चं ॥ २ ॥

धण्णा पिदू चदुभुजो चदुरो हि लोए
मादाधिदावरिमहा जगदम्हि अस्सि ।
णाणादु भूरमल अव्वग-भादु-मज्झे
हं णाणसायरमुणिं पणमामि णिच्चं ॥ ३ ॥

वादे सियादवद-वादमहाहि धाणे
विज्जालयम्हि रद-णाण-गुणे च विज्जं ।
अज्झाइ-झाइ-दिढ विण्ण-विसाल-णाणे
हं णाणसायरमुणिं पणमामि णिच्चं ॥ ४ ॥

जो विज्जावरं च लहिदुं सखदं पिवासु
साहू सहाव-धरणम्हि सदा च साहू ।
णाणा-पुराण-णय-णाय-धरंत-धारं
हं णाणसायरमुणिं णिच्चं ॥ ५ ॥

सो सक्कयस्स महणीय-गुणाण जुत्तो
कव्वाण कव्व-महकव्वपुराण-कव्वं ।
अज्झेदि झेदि सददं णिय-सत्ति-भावं
हं णाणसायरमुणिं पणमाणि णिच्चं ॥ ६ ॥

सो पागिदं पगदि-गम्य-सहाव-धारं
धोरेदि सो समयसार-रहस्स-भावं ।
कुन्द गुणेहि णियणाण-सुणाण-णाणं
हं णाणसायरमुणिं पणमामि णिच्चं ॥ ७ ॥

जो वीर-धीर-चरणं धरणं हि अत्थि
वीरोदयो जयदयो महकव्य कव्वं ।
णेगाणि कव्व-करणे वरदे च लोए
हं णाणसायरमुणिं पणमाणि णिच्चं ॥ ८ ॥

उदयो गदो मुणिवरो जगदे महणिज्ज-विसाल-जादो ।
धम्मं धुरं धरणं वि ण हु. अस्सिं समिदा-सरुवं ॥

"वीरोदय महाकाव्य"
अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत
डॉ. अशोककुमार जैन, लाडनूं

राजस्थान प्रान्त की सुरम्य नगरी अजमेर में, राजस्थान के वरद् सरस्वती पुत्र, संस्कृतज्ञ, महाकवि परम दार्शनिक परमपूज्य आचार्य श्री 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज के साहित्य जगत् में अवदान का मूल्यांकन करने हेतु, "वीरोदय" महाकाव्य पर एक अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी परमपूज्य संत शिरोमणि आ. विद्यासागरजी महाराज के शिष्य आध्यात्मिक संत श्री 108 सुधासागरजी महाराज, पूज्य क्षुल्लक श्री 105 गंभीरसागरजी महाराज एवं धैर्यसागरजी महाराज के पुनीत सान्निध्य में, सोनीजी की नसियां में दि. 13, 14 एवं 15 अक्टूबर, 94 तक आयोजित की गई । इस महान ज्ञानयज्ञ में देश के 40 मूर्धन्य विद्वानों ने अपनी उपस्थित एवं आलेख पाठ के माध्यम से "वीरोदय महाकाव्य" के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालकर संगोष्ठी को गरिमामय बनाया ।

संगोष्ठी के कुल 8 सत्र सम्पन्न हुए, जिनका विवरण इस प्रकार है:-

:: प्रथम् सत्र ::

दिनांक 13 अक्टूबर को प्रात: 7 बजे परमपूज्य गुरुवर श्री सुधासागरजी महाराज एवं पू. क्षुल्लकद्वय के मंगल सान्निध्य में ब्र. बहिनों द्वारा मंगलाचार के उपरान्त परम मुनिभक्ति उदारमना श्रेष्ठी श्री राजेन्द्रकुमार दनगसिया (राजभवन वाले अजमेर) द्वारा मंगलकलश की स्थापना एवं उनके सुपुत्र श्री अजयकुमार जैन ने पू. आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के चित्र का अनावरण किया। श्रीमति कान्ता आहूजा (कुलपति अजमेर विश्वविद्यालय) ने दीप प्रज्ज्वलित कर संगोष्ठी का उद्घाटन किया गया । चारों अनुयोगों की शास्त्रों के स्थापना क्रमश: सर्वश्री राजेन्द्रकुमार, अजयकुमार, विजयकुमार एवं श्री निर्मलकुमारजी सोनी ने की । श्री रवीन्द्रकुमार जैन द्वारा मंगल-गीत के प्रस्तुतीकरण के बाद समागत सभी विद्वानों का पुष्पहार, श्री फल एवं बैज के माध्यम से स्वागत किया गया । इसी अवसर पर सांगानेर में सम्पन्न संगोष्ठी के आलेखों की संग्राहिका- "आचार्य ज्ञानसागर की साहित्य साधना" कृति का विमोचन श्री राजेन्द्रकुमार जैन ने किया । पं. विश्वनाथ मिश्र (लाडनूं) की अध्यक्षता में सर्वप्रथम युवा मनीषी डॉ. अशोकुमार जैन (प्रवक्ता जैन विद्या विभाग जैन, विश्वभारती संस्थान, लाडनूं) ने "वीरोदय" महाकाव्य में वर्णित जैन न्याय शास्त्रीय मीमांसा" विषय पर अपना सारगर्भित आलेख प्रस्तुत किया । पं. महेन्द्रकुमार " महेश" ने पू. ज्ञानसागरजी के व्यक्तित्व-कृतित्व पर "संस्कृत सत्रोम में " प्रस्तुत किया ।

अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि के सम्बोधन के उपरान्त परमपूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज ने अपने मंगल आशीर्वाद देते हुए कहा है कि यह संगोष्ठी पू. ज्ञानसागरजी महाराज की महानता के प्रति एक लघु विमयांजलि है हमें, उनके महाकाव्य "वीरोदय" में वर्णित साहित्य साधना को आदर्शता का रुप देना है ।

मुख्य अतिथि डॉ. कान्ता आहूजा ने "वीरोदय" को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में रखवाने हेतु आश्वासन दिया ।

:: द्वितीय सर्ग ::

दि. 13 अक्टूबर को दोपहर 1 बजे संगोष्ठी का द्वितीय सत्र डॉ. उदयचंद जैन के मंगलाचरण एवं डॉ. श्री रंजनसूरिदेव (उपनिदेशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना) की अध्यक्षता एवं डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) के संयोजन में डॉ. अजितकुमार जैन (आगरा) ने "वीरोदय" महाकाव्य में कथोपकथन", डॉ. प्रेमचंद रांवका (जयपुर) ने "वीरोदय महाकाव्य में वर्णित नीतितत्व, पं. विश्वनाथ मिश्र (लाडनूं) ने "वीरोदय का व्याकरणगत वैशिष्ट्य डॉ. भागचन्द "भास्कर" (नागपुर) ने "वीरोदय में प्रतिपादित भूगोल -खगोल" तथा डॉ. शीतलचंद जैन (जयपुर) ने "वीरोदय की अवान्तर कथाओं का सामाजिक अध्ययन" विषय पर शोध पत्रों का वाचन किया । अध्यक्षीय सम्बोधन के बाद पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज ने मंगल आशीर्वाद देते हुए सभी शोध पत्रों पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण एवं समाधान दिया ।

:: तृतीय सत्र ::

इसी दिन सांय 7 बजे से डॉ. सुदर्शनलाल जैन (अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू वि. वि. वाराणसी) की अध्यक्षता एवं पं. अरुणकुमार जैन (ब्यावर) के संयोजकत्व में डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने "आचार्य ज्ञानसागर व्यक्तित्व एवं कृतित्व" डॉ. कैलाशपति "पांडेय (गोरखपुर) ने "वीरोदय का महाकाव्यत्व" एवं डॉ. अभयप्रकाश जैन ने "वीरोदय का संगीत पक्ष " विषय पर शोध पत्रों का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य डॉ. जैन ने दिया ।

:: चतुर्थ सत्र ::

दिनांक 14 अक्टूबर, 94 को प्रात: डॉ. रतनचंद जैन (अध्यक्ष प्राकृत एवं भाषा विज्ञान विभाग, भोपाल विश्वविद्यालय) की अध्यक्षता एवं डॉ. अशोकुमार जैन (लाडनूं) के संयोजन में सम्पन्न हुई । इस सत्र में प्राचार्य निहालचंदजी (बीना) ने "वीरोदय महाकाव्य एवं पर्यावरण" डॉ. रमेशचंद जैन (बिजनौर) ने "वीरोदय में उल्लिखित आचार्य तथा डॉ. जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर) में "वीरोदय का मूल स्रोत उत्तर पुराण की महावीर कथा" विषय पर शोध पत्र का वाचन किया । इसी सत्र में महावीर विकलांग साहयता समिति अजमेर की ओर से 10 विकलांगों, को ट्रायसाईकिल, श्रवणयंत्र तथा कृत्रिम पैर प्रदान किए गए । सभी विकलांगो ने आजीवन अंडा,मांस, शराब, तम्बाखू, गुटका, आदि से रहित व्यसनमुक्त जीवन जीने की शपथ ली । इस अवसर पर मुख्य अतिथिके रूप में पधारे श्री जी. एल. गुप्ता (अतिरिक्त कलेक्टर, अजमेर) एंव श्री उदयलाल कोठारी एवं युवराजजी कासलीवाल ने उक्तकार्य की सराहना की तथा पू. मुनि श्री के चरणों में विनयांजलि अर्पित की । पूज्य मुनि श्री ने इस दान कार्य की भूरि -भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि जिसने पैरों का दान किया है, वह कभी लगंड़ा नहीं होगा, जिसने श्रवणयंत्र प्रदान किए हैं वह कभी बहरा नहीं होगा आदि - आदि कर्म सिद्धान्त के आधार पर समीक्षात्मक विश्लेषण किया ।

:: पंचम् सत्र ::

दि. 14 अक्टूबर को दोपहर 1 बजे से डॉ. भागीरथप्रसाद वागीश, शास्त्री (निदेशक: अनुसंधान विभाग, डॉ. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणासी) की अध्यक्षता एवं प्राचार्य डॉ. शीतलचंद जैन (जयपुर)के संयोजन में सम्पन्न इस पंचम सत्र में डॉ. शिवसागर त्रिपाठी (जयपुर) ने "वीरोदय में राष्ट्र चिन्तन" डॉ. श्रीयांसकुमार सिंघई ने "वीरोदय में उल्लेखित पौराणिक व्यक्तित्व" पं. उत्तमचंद "राकेश" (ललितपुर) ने वीरोदय में वर्णित प्रकृति", डॉ. सीमा जैन (ललितपुर) ने "वीरोदय में प्रतिपादित महावीर साधना" डॉ. एस. के पाण्डेय (बडौत) ने "वीरोदय में रस वैशिष्ट्य" डॉ. रतनचंद जैन (भोपाल) ने "वीरोदय का शैली वैज्ञानिक अध्ययन", डॉ. आराधना जैन "स्वतंत्र" (गंजबासौदा) ने "वीरोदय में नारीवर्णन" एवं डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन बडौत) ने "वीरोदय में प्रतिपादित समाज एवं अर्थव्यवस्था" विषय पर शोध लेख का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य के उपरान्त पू. मुनि श्री ने "वीरोदय पर पढ़े गए आलेखों के विषय में अपना मन्तव्य दिया ।

:: षष्ट सत्र ::

इसी दिन सांय 7 बजे डॉ. भागचन्द "भास्कर" (नागपुर) एवं डॉ. रमेशचंद जैन (बिजनौर) के संयोजन में सम्पन्न इस रात्रिकालीन सत्र में डॉ. जगन्नाथ पाठक (इलाहाबाद) ने "वीरोदय का कलापक्ष एवं कथ्य",डॉ. सुदर्शनलाल जैन (वारणसी) ने "वीरोदय का ऋतुवर्णन" डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन "भारती" (बुरहानपुर) ने "वीरोदय मे आगत जैनेतर प्रसंग", डॉ. कमलेश कुमार जैन (वारणसी) ने वीरोदय में अलंकार एवं छन्दो योजना" एवं डॉ, उदयचंद जैन (उदयपुर) ने "वीरोदय में प्रयुक्त प्राकृत शब्द " विषय पर शोध पत्र का वाचन किया ।

:: सप्तम् सत्र ::

दिनांक 15 अक्टूबर को प्रात: 7 बजे से सप्तम सत्र डॉ. रमेशचंदजी जैन (अध्यक्ष संस्कृत विभाग, वर्द्धमान कालेज, बिजनौर, उ. प्र.) की अध्यक्षता, पं. सुमतिचन्द्र शास्त्री (मौरेना) के मुख्यातिथ्य एवं डॉ. कमलेशकुमार जैन (वाराणसी) के संयोजन में सम्पन्न हुआ । पं. निहालचंद जैन, प्राचार्य (बीना) के द्वारा मंगलाचरण करने के उपरान्त डॉ. प्रेमसुमन जैन (उदयपुर) नें प्राकृत में वर्णित "महावीर कथा एवं वीरोदय", डॉ. श्रेयांसकुमार जैन ने "वीरोदय का आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक वैभव", डॉ. वागीश शास्त्री (वाराणसी) ने शब्दकोषीय परिप्रेक्ष्य में "वीरोदय की समालोचना", डॉ. फूलचंद प्रेमी (वाराणसी) ने "वीरोदय की प्रस्तावना का रस वैशिष्ट्य" डॉ. एवं श्री रंजनसूरिदेव (पटना) ने "वीरोदय में वर्णित पशु-पक्षी एवं पर्यावरण विषय पर शोध पत्रों का वाचन किया । मुख्य अतिथि एवं अध्यक्षजी ने अपने वक्तव्य दिए । पू. मुनिश्री ने अपना समीक्षात्मक मंगल आशीर्वाद दिया ।

:: अष्टम् सत्र ::

इसी दिन दोपहर 2 बजे, डॉ. प्रेमसुमन जैन (उदयपुर) की अध्यक्षता एवं डॉ. श्रेयांस कुमार जैन (बड़ौत) के संयोजन में सम्पन्न इस अष्टम समापन सत्र में डॉ. अशोककुमार जैन (लाडनूं) के द्वारा मंगलाचरण पाठ के उपरान्त डॉ. कमलेश जैन (वाराणसी) ने "वीरोदय की दार्शनिक एवं पारिभाषिक शब्दावली का परिभाषिक विश्लेषण", डॉ. गुलाबचंदजी (अजमेर) ने "वीरोदय काव्य की त्रैकालिक अवस्थाओं का प्रासंगिक चित्रण", पूर्व प्राचार्य श्री निहालचंद जैन (अजमेर) ने "वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वीरोदय महाकाव्य का सन्देश" एवं पं. अरुणकुमार जैन (ब्यावर) ने "वीरोदय काव्य में आगत दार्शिनिक शब्दाब्ली" विषय पर शोधपत्रों का वाचन किया ।

सम्पूर्ण सत्र की उपलब्धियों पर डॉ. वागीश शास्त्री एवं डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव ने प्रकाश डालते हुए इस संगोष्ठी को इतिहास में अद्वितीय निरुपित किया । इस अवसर पर पू. ज्ञानसागरजी महाराज की पुनः प्रकाशित 16 कृतियों का डॉ. वागीश शास्त्री ने करतल ध्वनि के बीच पू. मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के आशीर्वाद से विमोचन किया । उल्लेखनीय है कि पू. ज्ञानसागरजी कृत सम्पूर्ण साहित्य का प्रकाशन अजमेर नगर के दानवीरों द्वारा किया जा रहा है ।

समापन से पूर्व समागत सभी विद्वानों का सम्मान अजमेर समाज की ओर से किया गया । अजमेर समाज की ओर से ही संगोष्ठी के अर्थप्रदाता श्रीमान् राजेन्द्रकुमार जी जैन (दनगसिया) का अभिनंदन पत्र, श्री फल पुष्पधर आदि से सम्मान किया गया । अभिनंदन पत्र का वाचन श्री निर्मलकुमार सोनी ने किया ।

विद्वत गोष्ठी में लिए गए निर्णय

संगोष्ठी के अंतिम सत्र से पूर्व. पू. मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के सानिध्य में विद्वानों की अन्तरंग गोष्ठी में निम्न लिखित निर्णय लिए गए -

(1) पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज कृत साहित्य को विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में रखवाया जाए

(2) पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज के साहित्य पर शोध कार्य करने वाले छात्रों को छात्रवृति दी जाए ।

(3) "सुदर्शनोदय एवं भद्रोदय महाकाव्यों पर जनवरी माह के अंतिम सप्ताह में अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी आयोजित की जाए ।

(4) "वीरोदय काव्य के अहिंसा एवं अनेकान्त के संबंधित सर्गों का छात्र जनोपयोगी संस्करण तैयार कर प्रकाशित किया जाए। इस कार्य की सम्पन्नता हेतु डॉ. शिवसागर त्रिपाठी (जयपुर) एवं डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) को नियुक्त किया गया।

(5) पू. ज्ञानसागर जी महाराज कृत संस्कृत साहित्य का एक शब्द कोष डॉ. रमेशचन्द्र जैन बिजनौर के निर्देशन में तैयार किया जाए ।

(6) पू. ज्ञानसागरजी महाराज कृत संस्कृत साहित्य का "पारिभाषिक शब्दकोष" निर्माण किया जाए । इस कार्य को पं. अरूण कुमार शास्त्री, ब्यावर सम्पन्न करेंगे ।

(7) समुद्रदन चरित (भद्रोदय)को अन्वय, संस्कृत टीका, व्याख्या लेखन हेतु डॉ. श्री कान्त पाण्डेय (बड़ौत) ने सहमति प्रदान की ।

उक्त कार्यों की सम्पन्नता हेतु पू. मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने सभी विद्वानों को अपना मंगल आशीर्वाद प्रदान किया और सतत श्रुत सेवा करने की प्रेरणा दी ।

दिगम्बर जैन समिति
अजमेर
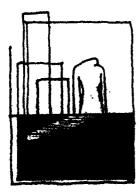
सुख की परछाई आगे आगे

ज्ञानी जन तृष्णा के पीछे नहीं दौड़ते । उन्होंने समझ लिया है कि अगर कोई अपनी परछाई पकड़ सकता है तो तृष्णा की पूर्ति कर सकता है । मगर अपनी परछाई के पीछे कोई कितना ही दौड़े, वह आगे-आगे दौड़ती रहेगी, पकड़ में नहीं आ सकेगी ।

सत्र समीक्षण

दर्शन साहित्य एवं अध्यात्म की त्रिवेणी

मुनिप्रवर श्री सुधासागर जी महाराज

(वीरोदय महाकाव्य पर अखिल भारतीय विद्वद् संगोष्ठी पर मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का समीक्षात्मक प्रवचन एवं चर्चाओं का सारांश-)

- प्रथम सत्र -

जय श्री ओम् नमःसिद्धेभ्य.....3 णमो अरिहंताणं..............चत्तारि मंगलं..............

पंच परमेष्ठी भगवान की जय आ. श्री गुरूवर विद्यासागर जी महाराज की जय

सारी दुनियाँ में एक ज्वलंत प्रश्न है कि यह सृष्टि किसके निमित्त से परिणमित होती है अर्थात् ऐसी कौन सी शक्ति है जो सृष्टि के इस विचित्र परिणमन को संचालित करती है । तो इसका समाधान वैष्णव दर्शन ब्रह्मा, विष्णु, महेश के ऊपर आरोपित करके अपनी प्रमा को विराम दे देते हैं, लेकिन जैन दर्शन ईश्वर को स्वीकार करते हुये भी ईश्वर को इस सृष्टि का कर्त्ता धर्ता नहीं मानता बल्कि सृष्टि का प्रत्येक कण-कण अपनी उपादान शक्ति से अपने ही उत्पाद व्यय और ध्रौव्य के वातायनों से स्वतः योग्य निमित्त पाकर परिणमन करता रहता है ।

इन दोनों दर्शनों के कथन को सत्यार्थ रूप देकर अनुभव की कसौटी में लाने के लिये ऋषि और मनीषीयों ने तीन विधाएँ बतायी है (1) दर्शन (2) अध्यात्म (3) साहित्य । दर्शन का अर्थ है कारण के द्वारा कार्य को जानना और कारण का परिज्ञान तर्क वितर्क ऊहापोह से होता है । दर्शन में हेतु की मुख्यता होती है और हेतु जहाँ मिल जाता है वहाँ कार्य का ज्ञान करने के लिये अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता लेकिन उस हेतु की यथार्थता जानने के लिये व्यक्ति को दार्शनिक होना मात्र ही अपेक्षित नहीं है बल्कि दर्शन तो एक अदृश्य को पहचानने की प्रथम सीढ़ी है ।

इसके बाद दार्शनिक व्यक्ति को अध्यात्म के सोपान पर कदम रखना होगा. सारी दुनिया में दार्शनिक तो बहुत हैं और वे अपनी दार्शनिक बुद्धि से ऊहापोह करके इस सृष्टि के बारे में जानना चाह रहें हैं लेकिन जान नहीं पा रहे हैं क्योंकि वे अध्यात्म की विधा पर कदम बढाने में समर्थ नहीं है, इसलिए उनका दर्शन एक हवामहल के समान वाग्जाल में ही उलझा रहता है, अध्यात्म में प्रवेश करने के लिये भारतीय संस्कृति में दो भेद कहे गये हैं एक तो वास्तुकला और एक वस्तु स्वरूप । जैसे व्यक्ति को अपना चेहरा देखने के लिये दर्पण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार से अपने अध्यात्म जगत् को देखने केलिये वास्तुकला की आवश्यकता होती है और जो व्यक्ति अपनी आँख से बिना दर्पण के अपना चेहरा देख लेता है उसे वास्तुकला के बिना ही स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है।

वास्तुकला के आलम्बन से जब हम अध्यात्म की ओर जाते हैं तब किसी न किसी को आदर्श मानना पडता है तथा दृश्य को आदर्श की आँख से ही देखना पडता है, आदर्श के कानों से ही सुनना एवं आदर्श के ही पैरों से चलना एवं आदर्श के संकेतों पर ही अपने जीवन को समर्पण करना होता है इसी आदर्श को जैन दर्शन में परमात्मा कहते हैं और इस परमात्मा से जुड़ने के लिये उपासना की विधि को अपनाना अनिवार्य होता है, और जब उपासक की उपासना उपास्य के प्रति एकाकार हो जाती है तब वह बाह्य समस्त आलम्बनों एंव उनके प्रति निमित्त बुद्धि को छोड़कर उपास्य की उपासना में इतना तल्लीन हो जाता है कि उपास्य एवं उपासक की भेद रेखाओं को पार कर स्वयं उपास्य बन जाता है लेकिन जो व्यक्ति इस एकाकार को उपलब्ध नहीं हो पाता वह अपनी ऊर्जा शक्ति को संगृहीत करने के लिये तीसरी विधा जो साहित्य है उसका सहारा लेता है।

यदि व्यक्ति अध्यात्म के अनुभव में नहीं डूब पाया और साहित्य का आलम्बन भी नहीं ले पाया तो वह संसार के इन्द्रजाल में फंस कर सृष्टि के अदृश्य रहस्यों को जाने बिना ही जीवन लीला समाप्त कर देता है ।

साहित्य का अर्थ है जिसका सहारा लेने से हित होता हो उसको साहित्य कहते है। इस साहित्य के दो भेद है (1) शब्द साहित्य - जिसमें भाषा अलंकार रस व्याकरण आदि आते हैं । (2) कर्म सिद्धान्त रूप साहित्य, जिसके अन्तर्गत भी एक आचरण परख साहित्य और दूसरा कर्म कृत वर्णन करने वाला साहित्य । कर्म सिद्धान्त रूप साहित्य के सम्बन्ध में समयाभाव के कारण व्याख्या

नहीं कर रहा हूँ यहाँ पर मात्र प्रसंग शब्द साहित्य का है क्योंकि यह गोष्ठी शब्द साहित्य पर हो रही है अत: श्रोताओं से कहना चाहूँगा कि - शब्द साहित्य की साधना जिन श्रोताओं की नहीं है उन्हें इस गोष्ठी में आनन्द नहीं आयेगा, शब्द साहित्य की साधना के अभाव में वीरोदय महाकाव्य आपके हाथ में दे दिया जाय तो आप यहीं कहेंगे कि इसमें व्यर्थ रूप महाप्रपंच वर्णित है इस सम्बन्ध में एक छोटा सा उदाहरण ध्यान आ रहा है कि एक मूर्ख व्यक्ति रामायण पढ़कर कहता है, कि एक छोटे से प्रसंग पर इतना बड़ा शास्त्र लिखने की क्या आवश्यकता थी । वह व्यक्ति पूरी रामायण को चार लाइनों में इस प्रकार कहता है कि

राम और रावण दो जन्ना
उनने उनकी नार हरी,
सो उनने उनको मारन्ना,
इतनी सी तो काथन्ना
और तुलसी लिख गये पोथन्ना ।

अब देखिये उसकी अल्प बुद्धि ने हजारों श्लोक प्रमाण रामायण को व्यर्थ कर दिया इसलिये किसी साहित्यिक ग्रन्थ को पढ़ने वाले व्यक्ति की पहले शब्द साधना होना जरूरी है नहीं तो वह ग्रन्थ उसके लिये अरुचि का कारण बनेगा ये जो विद्वान् बैठे हैं शब्द साधना में तपे हुये मूर्धन्य विद्वान् हैं ।

इन विद्वानों को आप लोग इन तीन दिनों में देखोगे कि ये विद्वान् आ. ज्ञानसागर महाराज के शब्द सागर में डुबकी लगाकर कैसे - कैसे विचित्र रत्न निकालते हैं, एक ग्रन्थ पर 40-50 विद्वान् - अलग-अलग विषय पर बोलेंगे ।

कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को दुनिया के अदृश्य वैभव एवं अपनी आत्मा के वैभव को जानने के लिये दर्शन अध्यात्म एवं साहित्य की साधना करना अनिवार्य होगा । जिन ज्ञानसागर जी महाराज के कृतित्व पर हम गोष्ठी कर रहे हैं वे इन तीनों साधनाओं को साध चुके थे । दार्शनिक व्यक्ति का साहित्य, अध्यात्मिक व्यक्ति का साहित्य एवं अन्य साहित्यिक व्यक्ति का साहित्य आपने पढ़ा होगा लेकिन जिस व्यक्ति के पास दर्शन अध्यात्म एवं साहित्य हो ऐसे व्यक्तित्व की लेखनी से लिखे हुए साहित्य को नहीं बाँचा होगा आ. ज्ञानसागर महाराज के व्यक्तित्व में ये तीनों धारायें एक साथ प्रवाहित होती थी उनकी बुद्धि दार्शनिक तो थी ही साथ ही बचपन मे ही ब्रह्मचर्य व्रत लेकर अध्यात्म रूपी ब्रह्म स्वरूप में रमण किया था और शब्द साहित्य की साधना में तो कितने निपुण थे यह तो विद्वान लोग अपने आलेखों में बतायेंगें ।

अर्थात् यह गोष्ठी एक साहित्यिक एवं दार्शनिक संत की विचारधारा को दुनियाँ के सामने उद्घाटित करने के लिये की जा रही है आज प्रथम लेख दर्शन के ऊपर बाँचा गया है लेखक ने अपने काव्य में पंचम काल के दार्शनिक आचार्यों को एवं दार्शनिक कृतियों को अपने काव्य गत पात्रों की उपमा के रूप में प्रासंगिक किया है जैसे - कहाँ चतुर्थ कालीन राजा सिद्धार्थ और प्रियकारिणी रानी और कहाँ सैकड़ों वर्षों बाद समन्त भद्र, अकलंक स्वामी, प्रभाचंद आचार्य आदि फिर भी इनके नामों का भी श्लेष रूप प्रयोग करके अपनी दार्शनिक अभिरुचि को प्रकट किया है ।

अभी आपका समय हो रहा है अत: संक्षिप्त रूप में इतना ही कह कर आज के मुख्य अतिथि अजमेर विश्वविद्यालय की वाइस चांसलर श्रीमती आहूजा यहाँ उपस्थित है मेरा उनसे कहना है कि साहित्यिक एवं दार्शनिक संत के साहित्य का निष्पक्ष एवं साम्प्रदायिक व्यामोहता की बुद्धि को छोडकर यदि अध्ययन करेंगी तो जरूर उनका मन अपने विश्वविद्यालय के पाठयक्रम में रखने के लिए प्रेरित करेगा ।

भावना यही है कि राजस्थान के सरस्वती पुत्र की साहित्य साधना का कम से कम राजस्थान के संस्कृत विद्यालयों में तो समादर होनी ही चाहिये ।

(महावीर भगवान् की जय)

आलस्य : जिन्दा कब्र

आलस्य मनुष्य को जीवित कब्र में डालता है ।
इसके कारण वह अपने कर्त्तव्य का ख्याल नहीं रखता
और दूसरों पर दोष थोपता है ।

वीरोदय महाकाव्य का प्रस्तुतीकरण क्या क्यों और कैसे

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

(वीरोदय महाकाव्य पर अखिल भारतीय विद्वत् – संगोष्ठी पर मुनिवर्य श्री सुधासागर जी महाराज का समीक्षात्मक प्रवचन एवं चर्चाओं का सारांश)

- दूसरा सत्र -

जय श्री ओम् नमःसिद्धेभ्य.....3 णमो अरिहंताणं..............चत्तारि मंगलं...............

पंच परमेष्ठी भगवान की जय आ. श्री गुरूवर विद्यासागर जी महाराज की जय

आज गोष्ठी के दूसरे सत्र में वीरोदय महाकाव्य के कथोपकथन के विषय पर लेख बाँचा गया। कथोपकथन दो प्रकार का होता है एक दण्डान्वय और दूसरा खण्डान्वय। जिसको लक्ष्य करके कथन किया जा रहा है वह यदि संक्षेप रुचि वाला विशेष विद्वान है तो उसके लिए दण्डान्वय पद्धति से कथन किया जाता है और मन्द बुद्धि और विस्तार रुचि वाले के सामने खण्डान्वय पद्धति से कथन किया जाता है। दण्डान्वय पद्धति क्लिष्ठ होती है। आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी के अध्यात्म ग्रन्थों पर अमृतचन्द सूरि ने दण्डान्वय पद्धति से टीका लिखी इसलिये वह टीका क्लिष्ट मानी जाती हैं। इन्हीं ग्रन्थों पर जयसेन स्वामी ने खण्डान्वय पद्धति से टीका लिखी सो वह सरल व सुगम, है। खण्डान्वय पद्धति में लेखक अथवा वक्ता स्वयं अपनी तरफ से प्रश्न उठाकर सामने वाले को अपने अभिप्राय से अवगत करना चाहता है। आज वर्तमान का युग वस्तुतः खण्डान्वय पद्धति का युग है। व्यक्ति को जब तक तर्क-वितर्क से समझाया न जाय तब तक समझता नहीं है इसलिये 20वीं शताब्दी के आचार्य ज्ञानसागर महारज ने वर्तमान की रूचि को ध्यान में रखते हुए वीरोदय महाकाव्य के कई प्रसंगों को कथोपकथन के रूप में प्रस्तुत किया है। जैसे देवियों के द्वारा तीर्थंकर की माता से प्रश्नोत्तर करवाना। राजा सिद्धार्थ से महावीर के शादी के प्रसंग को पिता पुत्र में एक संवाद के रूप में प्रस्तुत करवाना। जैन पुराणों में भी भगवान् महावीर के समवशरण के समय गणधरों द्वारा एवं राजा श्रेणिक आदि द्वारा प्रश्न-उत्तर के रूप में भगवान की वाणी को प्रस्तुत किया गया है।

जैसे राजा श्रेणिक द्वारा प्रश्न पूछना, गणधर एवं तीर्थंकर द्वारा उसका उत्तर देना। यह सारे प्रसंग कथोपकथन के रूप में माने जा सकते हैं। अर्थात् वक्ता के कथन पर श्रोता ऐसी शंका करे कि ऐसा क्यों है, कैसे है, किस कारण से है, क्या है आदि जिज्ञासा मूलक प्रश्नों को निमित्त बनाकर वक्ता अपने अभिप्राय को व्यक्त करता है तो उसे कथोपकथन कहते हैं।

दूसरा लेख बाँचा गया वीरोदय महाकाव्य में वर्णित नीति तत्त्व, वाचक ने नीतियों को, मुहावरों को, लोकोक्तियों को एक कोटि में रख दिया है इसलिये विद्वानों को अनेक प्रश्न हो गये, आलेख वाचक को अपने लेख में नीतियों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों को अलग-अलग करना चाहिए क्योंकि तीनों भिन्न-भिन्न है।

नीति का सहारा तब लिया जाता है जब व्यक्ति अपने विचारों को विस्तार देना चाहता है और लोकोक्तियों एवं मुहावरों का सहारा तब लिया जाता है जब अपने विचारों को पुष्ट करना होता है।

वीरोदय काव्य में नीतियाँ, सूक्तियाँ लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

तीसरा लेख वीरोदय महाकाव्य में व्याकरण का वैशिष्ट्य विषय पर बाँचा गया व्याकरण का अर्थ तो यही है कि परम्परागत आये शब्दों को एवं व्यवहार में आये पद वाक्यों को विस्तार से संक्षेप करना और उनके विभक्ति क्रिया कृदन्त तद्धित सन्धि समास आदि के माध्यम से अर्थ वैशिष्टय को प्रकट करना, साहित्य की पहले रचना हुई, व्याकरण बाद में बनी ऐसी विद्वानों की मान्यता है।

वीरोदय महाकाव्य में व्याकरण का वैशिष्ट्य देखने से पता चलता है कि आ. ज्ञानसागर महाराज अनेक व्याकरणों के ज्ञाता थे, पाणिनि व्याकरण को पढ़ने वाले विद्वान मनीषी वीरोदय महाकाव्य को पढ़ने के बाद सोचते हैं कि इसमें व्याकरण के नियमों का उल्लंघन किया गया है लेकिन उन्हें यह ज्ञात होना चाहिये कि लेखक पाणिनी व्याकरण के तो ज्ञाता थे ही साथ में जैनेन्द्र प्रक्रिया एवं कातंत्र रूपमाला के भी ज्ञाता थे, कुछ सिद्धियाँ जो पाणिनि व्याकरण से नहीं होती है वे जैन व्याकरण से सिद्ध हो जाती है, कालीदास ने भी बहुत से ऐसे प्रयोग किये है जो अपाणिनीय है, लेकिन अपाणिनीय हो जाने से व्याकरण के नियमों का उल्लंघन नहीं हो गया क्योंकि व्याकरण कभी पूर्ण नहीं होती जब-जब नये-नये साहित्य साहित्यकारों द्वारा रचे जाते है तब तब व्याकरण को अपने नियम बदलने पड़ते हैं क्योंकि व्याकरण का जनक साहित्य है अस्तु।

"आगे लेख बांचा गया 'वीरोदय में प्रतिपादित भूगोल और खगोल' । भूगोल खगोल का वर्णन आ. महाराज ने अपने काव्य में राज्य का वर्णन करते समय उस समय किया है जब यह बताना था कि कुण्डलपुर कहाँ है अर्थात जम्बूद्वीप का नाम सबसे पहले भूगोल के सम्बन्ध में लिया है, महावीर के जन्म के समय मेरु पर्वत का चित्रण एवं ऐरावत हाथी पर बैठकर जब सौधर्म इन्द्र आकाश मण्डल से आता है जब ज्योतिष मंडल का प्रसंग किया है और भी कई स्थानों पर उपमा उपमेय के रूप में भूगोल एवं खगोल का वर्णन आया है । अत: लेख वाचक विद्वान को इन समस्त प्रसंगों को अपने लेख में दर्शाना चाहिये।

अन्तिम लेख बाँचा गया है वीरोदय में अवान्तर कथाएँ, इस काव्य में आवान्तर कथाएँ बहुत कम आयीं हैं जब भगवान महावीर दीक्षा लेते है उस समय अपने ही अतीत भवों का चिन्तन करते हैं तब अपने ही अतीत भवों के भिन्न नामों से जो चरित्र चित्रित हुये हैं, उनका वर्णन लेखक ने किया है और भगवान महावीर के सिद्धान्तों को पुष्ट करने के लिये सुदृष्टि सुनार आदि की कथाओं को अवान्तर कथाओं के रूप में प्रासंगिक किया है इसी प्रकार से और भी अन्य अन्य छोटी-छोटी कथाओं के नाम स्मरण मात्र करके अपने प्रासंगिक विषय को लेखक ने स्पष्ट किया है ।

अधिक समय हो जाने से इतना ही संक्षिप्त में कहकर समाप्त करता हूँ ।

(महावीर भगवान् की जय)

वीरोदय एक महाकाव्य एवं उसकी विशेषता

मुनिप्रवर श्री सुधासागर जी महाराज

(वीरोदय महाकाव्य पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी पर मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का समीक्षात्मक प्रवचन एवं चर्चाओं का सारांश –

-: तृतीय एवं चतुर्थ सत्र के दौरान :-

जय श्री ओम् नम:सिद्धेभ्य.....3 णमो अरिहंताणं..............चत्तारि मंगलं..............

पंच परमेष्ठी भगवान की जय आ. श्री गुरूवर विद्यासागर जी महाराज की जय

आज गोष्ठी का चतुर्थ सत्र है तृतीय सत्र रात्रि में किया गया था जिसमें मैं उपस्थित नहीं था क्योंकि दिगम्बर साधु रात्रि के किसी कार्यक्रम में भाग नहीं लेते हैं । लेकिन मैं अपने रात्रि विश्राम करने वाले स्थान से बैठा-बैठा ही सुन रहा था क्योंकि माइक से आवाज तो सब जगह पर पहुँचती है। इस रात्रि सत्र में एक मुख्य लेख बाँचा गया था वीरोदय काव्य का महाकाव्यत्व आलेख वाचक की विषय वस्तु से यह ज्ञात हुआ कि आलेख वाचक ने बड़ा परिश्रम करके लेख तैयार किया है और वीरोदय महाकाव्य को सर्वगुण सम्पन्न महाकाव्य सिद्ध किया है । सो यह बात ठीक ही है क्योंकि वीरोदय महाकाव्य महाकाव्य तो है ही । इस समय प्रश्न किया गया था कि काव्य का नायक धीर, गंभीर था वीर नहीं । इसलिये इस काव्य में वीर रस गौणतया दृष्टिगोचर होता है तो मैं इस प्रश्न के सम्बंध में उत्तर देना चाहूँगा कि वीरोदय महाकाव्य के नायक में महावीरत्व था, यदि वीर रस की रुढ़िगत परिभाषाओं से हटकर यदि विचार करें तो । आज वीर रस का मात्र रूढ़िगत अर्थ लिया जाने लगा कि नायक को योद्धा होना चाहिए, जिसके अन्दर क्रोध की अग्नि भड़क रही हो, आँखे अंगारे के समान लाल दिख रहीं हों वाणी से विनाशक एवं हिंसात्मक शब्द निकल रहें हों, शस्त्र हाथ में हो, और शत्रुओं का संहार करने के लिये उतावला होकर ललकार रहा हो वही नायक वीर नायक कहा जाता है ऐसे वर्णन को ही वीर रस कहा जाता है इस धारणा ने वीर रस को बहुत सीमित कर दिया, आप विद्वानों को सोचना चाहियें कि एक युद्ध में लडने वाला योद्धा इतनी हिंसा इसलिये करता है कि सामने वाला शत्रु मेरे चरणों में झुक जाएं मेरी विजय की पताका फहरायी जाय और दुनिया मेरे शासन में रहे । तो मैं पूछना चाहता हूँ कि कोई योद्धा बिना शस्त्र, बिना खून बहाये, बिना बोखलाएँ सत्य अहिंसा के माध्यम से दुनिया का शासक बन जाता है और सारी दुनिया अपने आप उसके शासन में रहने के लिये तैयार हो जाती है तथा उसके चरणों में गिरकर जय - जयकार, गुणानुवाद करने लग जाती हे तो वह क्या वीरत्व नहीं है मेरी दृष्टि से तो वह महावीरत्व है। लोक नीति में भी वह राजा महान वीर माना जाता है जिसके बिना युद्ध लड़े ही अन्य राजा उसकी अधीनता स्वीकार कर लें । भगवान महावीर ऐसे ही वीर थे जिन्होंने सत्य अहिंसा के माध्यम से सारी दुनियां को अपने चरणों में नतमस्तक करा लिया और उसके शासक बन गये थे । अब जीतने की बात रही तो वीरोदय महाकाव्यकार ने कहा है कि बड़े-बड़े युद्ध जीत लेना सरल है लेकिन पाँच इन्द्रियों और

मन के ऊपर विजय पा लेना उससे भी ज्यादा कठिन है और इन पर विजय प्राप्त करते हुये काम और मोह को पछाड़ फैंकना महान वीर योद्धा का ही काम है । जैन शास्त्रों में आया है कि मोह, काम एवं कर्म को मारने के लिये महान निर्दय होकर भेद - विज्ञान रूपी शस्त्र से प्रहार करना पड़ता है, तभी वह पराजित होता है । और यह सब कुछ वीरोदय महाकाव्य के नायक ने कर दिखाया है । दुनिया की दृष्टि में सबसे बड़ा वीर योद्धा रावण माना जाता है, लेकिन जब किसी मुनिराज के सामने जाता है और उस वीर योद्धा से मुनिराज कहते है कि रावण यदि तूँ वीर है तो सारी दुनियां पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा अपनी इन्द्रियों, मन एवं काम रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त करके बता । रावण तुरन्त कह देता है कि महाराज मैं सारी दुनिया उलट-पुलट कर सकता हूँ, आकाश के तारे भी तोड़ कर ला सकता हूँ, स्वर्ग के इन्द्र देवता को भी ललकार सकता हूँ, पदचाप से पृथ्वी को कम्पायमान कर सकता हूँ लेकिन अपने मन, इन्द्रियों एवं काम पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ हूँ । मैं इनका स्वामी नहीं हो सकता मैं तो इनका गुलाम हूँ । अब सोचिये जिनके ऊपर विजय प्राप्त करने में महान योद्धा भी असमर्थता व्यक्त कर रहा हो ऐसे शत्रुओं के ऊपर महाकाव्य के नायक ने सहजता से ही विजय प्राप्त कर ली हो तो महावीर, वीरों का वीर महावीर कहलायेगा । अत: इन सब बातों से वीर रस की व्यापकता को ध्यान में रखते हुऐ सिद्ध होता है कि वीरोदय महाकाव्य में वीर रस का वर्णन अपने मूल नायक के सिद्धान्तानुसार महाकवि ज्ञानसागर महाराज ने किया है । इस महाकाव्य में वीर रस को खोजने के लिए भगवान महावीर के वीरत्व को खोजना होगा । और उसे समझने के लिये वीरोदय काव्यकार की बुद्धि के समान अपनी बुद्धि को विस्तार देना होगा। और वीर रस की परिभाषाओं को हिंसात्मक, आक्रोशात्मक रुप देने के कारण हर लेखक को महाकाव्य की रचना करते समय अपने काव्य नायक को क्रोधाग्नि से भड़कता हुआ दिखाना पड़ता है क्योंकि उसे भय रहता है कि मेरा काव्य वीर रस से रहित हो जायेगा लेकिन यह परिभाषा भारतीय संस्कृति के अनुसार सर्वथा अनुकूल नहीं कही जा सकती । भारतीय संस्कृति में तो वीरत्व का लक्षण 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' कहा है । वीरत्व के इस लक्षण को यदि हम गौण कर देते है तो हमें भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धान्तों से वंचित होना पड़ेगा । वीरोदय काव्यकार इस भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए ही भगवान महावीर को 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' की उपाधि से विभूषित कर उन्हें वीर, महावीर कहा है। अत: वीरोदय महाकाव्य में भारतीय संस्कृति की परम्परानुसार वीर रस का यथोचित वर्णन है। और जितने भी महाकाव्य हिन्दी एवं संस्कृत के मौजूद है उनका मैने अवलोकन किया उनसे कहीं अधिक भारतीय संस्कृति की रक्षा करता हुआ यह वीरोदय महाकाव्य मुझे प्रतीत हुआ। क्योंकि इसमें राग, रंगारंग रुप, मनोरंजन के साथ - साथ आत्मरंजन रूप निरंजनता को भी ध्यान में रखा गया है। काव्य महाकाव्य जब ही माना जाता है जिस काव्य में ऐहिक सुखों का, इन्द्रियों के विषयों का, राष्ट्र की उपयोगिता का, राजनीति का, बाह्य रंगारंग एवं समाज देश और आत्म कल्याण आदि समस्त पहलुओं पर विचार व्यक्त करता हो वीरोदय काव्यकार नें ऐसा कोई भी पहलू नही छोड़ा जिसका स्पर्श न किया हो इसलिए यह काव्य सम्पूर्ण गुण सम्पन्न महाकाव्य के उच्च शिखर पर सहज रूप से स्वत: ही विराजमान हो जाता है।

दूसरा लेख रात्रि में संगीत के ऊपर बाँचा गया । संगीत की बात जहाँ तक है तो वीरोदय काव्यकार ने संगीत के लक्षणों का नाम लेकर कोई विशेष कथन नहीं किया लेकिन संगीत में आने वाले उपकरण एवं उन उपकरणों के उपयोग करते समय हाव-भाव की अभिव्यजंना कई स्थलों पर वर्णित की गई है जैसे वीणा वाद्य आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग एंव नृत्य कला की अभिव्यक्ति लेखक ने यत्र-तत्र की है । इन्ही अभिव्यक्तियों के माध्यमों से संगीतकारों को संगीत के लक्षण महाकाव्य से ग्रहण कर लेना चाहिए ।

और अभी इस चतुर्थ सत्र में वीरोदय महाकाव्य और पर्यावरण पर एक लेख बाँचा गया वीरोदय काव्य के प्राय: हर श्लोक से पर्यावरण की सुरभि प्रस्फुटित होती है, क्योंकि वीरोदय काव्य के मूल नायक अहिंसा, सत्य, अचौर्य अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य को अपने जीवन में पूर्ण रूप से धारण करने वाला था और ये ही पांच सूत्र सृष्टि के पर्यावरण को विशुद्धतर बनाते है । लेखक ने वन सम्पदा एवं पशु-पक्षियों आदि की उपयोगिता बताकर समाज को निर्देशित किया है कि सृष्टि के पर्यावरण की रक्षा कैसे की जाती है । जब तक व्यक्ति के अन्दर हिंसा का परिणाम बना रहेगा तब तक पर्यावरण की रक्षा नहीं कर पायेगा । क्योंकि हिंसक व्यक्ति हर प्रकार के प्रदूषण को फैलाता है । झूठ बोलने वाला मायावी भी शकुनि मामा जैसा इस सृष्टि को अनेक प्रकार के प्रदूषणों से ग्रसित कर देता है । चोरी करने वाला व्यक्ति भी अपनी धन लोलुपता के कारण कुछ भी अनर्थ कर सकता है, इसी तरह कुशील और परिग्रह के कारण सारी पृथ्वी प्रदूषित होती चली जा रही है, वन सम्पदा आदि को नष्ट करने में मूल कारण है लोभ और परिग्रह यदि व्यक्ति महावीर के सिद्धान्तों को सही तरह जीवन में उतार लेवे तो यह सृष्टि पूर्ण पर्यावरण से शुद्ध हो सकती है । लेख वाचक ने बड़ी मेहनत करके बड़े अच्छे विषय पर्यावरण के सम्बन्ध से वीरोदय से निकाल करके दिये है । वीरोदय काव्यकार ने शाकाहार को पर्यावरण में साधक माना और मांसाहार को बाधक माना । लेखक का अभिप्राय

है कि यदि किसी मनुष्य की स्वार्थ लिप्सा के कारण अनेक जीवों की जीवन यात्रा समाप्त होती है तो यही सबसे बड़ा प्रदूषण है, क्योंकि प्रदूषण मानसिक वाचनिक और कायिक तीनों प्रकार से होता है । लेखक ने अपने आलंकारिक कथन में पशु पक्षियों को प्रांसगिक करके यह उपयोगिता बतलाई है कि यह पशु पक्षि भी इस सृष्टि के पर्यावरण को शुद्ध करने में सहयोगी है ।

दूसरा लेख वीरोदय महाकाव्य में उल्लेखित आचार्यों के सम्बन्ध में बाँचा गया है, आचार्यों के नामों को प्रासंगिक करने का अभिप्राय लेखक का क्या रहा होगा । मेरी दृष्टि से तो दार्शनिक आचार्य समंतभद्र, अकलंक स्वामी प्रभाचन्द्र आदि आचार्यों का नाम लेखक की दार्शनिक अभिरुचि को प्रकट करते हैं । और अन्य आचार्यों के नाम, प्रसिद्ध राजकीय घरानों का प्रभावित होने के कारण वर्णन किया हो क्योंकि नेमीचंद, शुभचन्द्र, प्रभाचन्द्र आदि अन्य आचार्यों के नाम के साथ कोई न कोई राजघराने का उल्लेख है ।

दार्शनिक आचार्यों के नाम उपमा और उपमेय के रूप में प्रस्तुत हुए है वर्णित आचार्यों के नाम प्रभावकता को प्रदर्शित करते हैं और भी जितने आचार्य वीरोदय काव्य में वर्णित हैं उनका अतीत एवं वर्तमान जीवन अनेक प्रकार की आश्चर्य कारी और चमत्कारी घटनाओं से जुड़ा हुआ है । जैसे समन्तभद्र स्वामी का पाषाण पिण्ड को नमस्कार करने पर चन्द्रप्रभु की प्रतिमा प्रकट होना । अकलंक स्वामी का छः महीने तक देवी से वाद-विवाद करना, धर्म की रक्षा हेतु अपने छोटे भाई निकलंक का जीवन अर्पण करना, शुभचन्द्र आचार्य की जीवन घटना से यह पता चलता है कि सम्यक् संस्कार के कारण शुभचन्द्र आचार्य के अन्दर अनेक प्रकार के चित् चमत्कार प्रकट हुए और उन्हीं का दूसरा भाई भर्तृ-हरि धन के लोभ के कारण तपस्या करता है शुभचन्द्र आचार्य की सम्यक् तपस्या मे इनका अतिशय होता है कि उनके चरणों की धूल पहाड़ पर फेंकी जाती है तो वह पहाड़ सोने का हो जाता है । इस प्रकार पूज्यपाद नेमीचंद आचार्यों आदि वर्णित आचार्यों के जीवन से भिन्न-भिन्न अतिशय कारी घटनाएँ जुड़ी है । लगता है लेखक यह दर्शाना चाहता है कि पंचम काल में भी महान अतिशय कारी साधना करने वाले उदभट साधक हुए है ।

तीसरा लेख वीरोदय काव्य और उत्तर पुराण के सम्बन्ध में बाँचा गया, इस संबंध में तो यही कहा जा सकता है कि उत्तर पुराण में वर्णित महावीर के प्रसंग को लगभग - लगभग पूर्ण रुप से ज्ञानसागर महाराज ने लिया है, लेकिन वीरोदय महाकाव्य का बहुभाग ऐसे विषय को भी प्रस्तुत करता है, जो उत्तर पुराण में वर्णित नहीं है । लेखक ने अपनी कथावस्तु को वर्तमान वातावरण को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की है । जिस प्रकार राजा सिद्धार्थ का वंशानुगत वर्णन उत्तर पुराण में मिलता है वैसा महावीर का वंशानुगत वर्णन महाकाव्य में दृष्टिगोचर नहीं हुआ है क्योंकि यह ग्रंथ महाकाव्य है । उत्तरपुराण एक पौराणिक ग्रंथ है । पौराणिक ग्रंथ में वंशानुगत वर्णन करना पड़ता ही है । इसलिए वीरोदय महाकाव्यकार ने उत्तर पुराण से कथा का सारांश ग्रहण कर वीर प्रभु की कथा को महाकाव्य के लक्षणों से श्रृंगारित कर प्रस्तुत किया है । उत्तर पुराण से इस कथा को इसलिए भी जोड़ा जा सकता है क्योंकि संस्कृत के पुराण ग्रन्थों में यह कथा सर्व प्रथम उत्तर पुराण में ही मिलती है ।

आज इसी प्रसंग में एक अनुकरणीय कार्यक्रम महावीर विकलांग समिति द्वारा अजमेर दि० जैन समाज के आर्थिक सहयोग से रखा गया है जिसमें कई अपाहिज लूले-लंगड़े एवम् बहरों के लिए ट्राईसाईकिल एवम् श्रवण यंत्र वितरित किये गये । जैन दर्शन में अपाय विचय विपाक विचय धर्म ध्यान का वर्णन आया है । इसको मात्र इतना ही नहीं लेना चाहिए कि मानसिक रूप से चिन्तन कर लिया कि दुनिया के दुखी लोग कर्म के कारण दुख पा रहे हैं उनके दुख दूर हो जाये । मात्र मानसिक रूप से धर्म ध्यान आपेक्षिति नहीं है । गृहस्थ को मानसिकता एवं वाचनिकता के साथ-साथ कायिक रूप से कृतकारिता करना चाहिए ।

कायिक रुप से कृतकारिता का अर्थ है, कि जो कर्मों के मारे, अपाहिज हैं, उनकी सहायता शरीर से, अर्थ से कर देना चाहिए। यह जो विकलांगों को उपकरण बाँटे जा रहे हैं यह वस्तुतः जैन दर्शनानुसार उपरोक्त दोनों धर्म ध्यानों का प्रेक्टीकल रूप है । और सम्यग्दर्शन के लक्षणों में एक अनुकम्पा लक्षण भी आया है जिस अनुकम्पा को भी यहाँ प्रयोग रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है । ध्यान रखना प्रथमानुयोग के ग्रंथों को पढ़ने के बाद ज्ञात होता है कि यदि किसी व्यक्ति के पैरों में ताकत है और स्वतः अपने पैरों से चल रहा है तो नियम से अतीत में उसने किसी अपाहिज की सहायता की होगी, और किसी के कानों में सुनने की जो ताकत है तो उसने भी किसी न किसी रूप में श्रवण यंत्र सहायतार्थ दिये होगें । और अन्य प्रकार से भी तुम स्वस्थता का अनुभव कर रहे हो तो नियम से तुमने किसी रोगी की सहायता की होगी यदि आपकी थाली में चार रोटियां हैं तो नियम से समझ लेना कि एक रोटी किसी भूखे को कभी दी होगी । आपके पास यदि चार जोड़ी कपड़े हैं तो नियम से किसी गरीब को कभी एक जोड़ी कपड़े दिया होगें, उसी के परिणाम स्वरुप आपको सब प्रकार की अनुकूलताएं उपलब्ध हुई हैं । मैं पूछना चाहता हूँ कि आपके अजमेर में कितने विकलांग होगें और अजमेर में सामान्य जनसंख्या कितनी होगी । विकलांगों की संख्या तो मुश्किल से 100 - 200 निकलेगी । और जनसंख्या लगभग 7-8 लाख होगी । यदि एक-एक विकलांग को 1000 - 1000 व्यक्ति भी संभालने का भाव बनाये तो सारे अजमेर के विकलांग अपनी विकलांगता को भूल कर कुछ मानवता का

जीवन व्यतीत कर सकते हैं । समाज का लाखों रुपया जुआ, शराब, लाटरी, नशा आदि में नष्ट हो रहा है जो नियम से जीवन का विनाशक और पाप बंध का कारण है, लेकिन यदि यही पैसा ऐसे विकलांगों एवं गरीबों की सहायतार्थ खर्च किया जाय तो देश में चतुर्थकाल आ जायेगा, राम राज्य आ जायेगा । जैन दर्शन के अनुसार दो प्रकार के दानों की परम्परा है, एक पात्र दान, जिसे आहार, औषधि अभय एवं उपकरण दान के रूप में मुनिराज, चैत्यालय, जीर्णोद्धार, शास्त्र के निमित्त से तथा आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक आदि त्यागी वृतियो को दिये जाते हैं । और दूसरे दान का उल्लेख करुणा दान के रुप में आचार्यों ने किया है जो अपात्र को दिया जाता है (अपात्र का अर्थ दीन हीन, गरीब, अपाहिजों को देना) यह ट्राइसाइकले एवं श्रवण यंत्र वितरण-करुणादान में आयेगा अभी राजेन्द्रकुमार दनगसिया ने एक साथ पन्द्रह साइकिलें एंव 15 श्रवण यंत्र विकलांगो को देकर करुणा दान का कीर्तिमान स्थापित किया है । पात्र दान से मोक्ष मार्ग की व्यवस्था बनती है और करुणा दान से समाज की व्यवस्था बनती है । सम्यग्दृष्टि ग्रहस्थ, समाज एवं मोक्ष मार्ग दोनों को संभालने का प्रयास करता है । करुणा दान को देते समय यह बात जरूर ध्यान रखना चाहिए कि जिसे यह दान दिया जा रहा है वह मांसाहारी सप्त व्यसनी जुआ, लाटरी, शराब, नशा, डकैती तो नहीं करता है । अत: उपकरण देते समय इन चीजों का त्याग संकल्प रुप से कराना चाहिए क्योंकि हमारे यहाँ सहायता भी विवेक पूर्वक दी जाती है । डाकू का पैर जोड़ना चोरी का समर्थन माना जाता है । यदि किसी डाकू का चोरी करते समय पैर टूट गया और हमनें उसे जोड़ दिया तो वह और चोरी करेगा तो उन चोरियों का फल जोड़ने वाले को भी कुछ अंश में लगेगा । अत: चोरी का त्याग करा कर फिर पैर जोड़ना चाहिए । यह सभी विकलांग इस प्रकार के व्यसनों का त्याग करते है तो मेरा इन सभी को आशीर्वाद है । और इन विकलांगों से मेरा कहना है कि वे अपनी विकलांगता पर विचार करते हुए पश्चाताप करें कि पूर्व जन्म में मैनें किसी पशु, पक्षी, दीन, हीन निर्बल, निर्यंच मनुष्यों के पैर तोड़े होगें उसी के परिणाम स्वरुप मैं विकलांग हुआ हूँ । अत: नियम लेना चाहिए कि हम अब भविष्य में कभी भी किसी भी दीन-हीन निर्बल जीव के हाथ-पैर नहीं तोड़ेगें । ऐसा नियम लेने से अगली पर्याय में विकलांगता से रहित हो जाओगे ।

समय आपका हो गया है अत: करुणा दानी को एवं करुणा पात्र को आशीर्वाद देता हुआ प्रवचन यहीं पर समाप्त करता हूँ।

(महावीर भगवान् की जय)

वीरोदय महाकाव्य के गवाक्ष

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

(वीरोदय महाकाव्य पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी पर मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का समीक्षात्मक प्रवचन एवं चर्चाओं का सारांश –

-: पंचम सत्र के दौरान :-

जय श्री ओम् नम:सिद्धेभ्य.....3 णमो अरिहंताणं..............चत्तारि मंगलं...............

पंच परमेष्ठी भगवान की जय आ. श्री गुरूवर विद्यासागर जी महाराज की जय

आज गोष्टी का पंचम सत्र चल रहा है जिसमें प्रथम लेख वीरोदय महाकाव्य में राष्ट्रचिंतन पर बाँचा गया तो आचार्य महाराज जब भी प्रवचन करते थे तो नियम से राष्ट्र सुधार की बातें अपने प्रवचन में लाते थे, वह कहा करते थे कि यदि राष्ट्र समृद्ध एवं सुसंस्कारित रहेगा तो वहां के नागरिक भी सुसंस्कारिता को प्राप्त होंगें क्योंकि राजा के अनुसार ही प्रजा का आचरण होता है, इसी बात को ध्यान में रखते हुए वीरोदय महाकाव्य में भी राष्ट्र को सुसंस्कारित करने वाली नीतियाँ आलेखित की हैं एवं अच्छे आदर्श राजाओं, नेताओं के भी नाम आलेखित किये हैं । जयोदय महाकाव्य में तो देश को स्वतंत्र कराने वाले महात्मा गांधी, नेहरु जी वल्लभ भाई पटेल, लोकमान्य तिलक, सुभाषचंद बोस आदि नेताओं के नाम श्लेष अलंकार के साथ प्रस्तुत किये हैं । वीरोदय काव्य में तो लेखक ने प्रजा को यहाँ तक संदेश दिया है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए यदि सर्वस्व लुटाना पड़े तो लुटाने में हिचकिचाना नहीं चाहिये तथा राष्ट्र की रक्षा के लिए जीवन दान देना भी आदर्श माना जायेगा लेखक ने महावीर के प्रत्येक संदेश राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत किये हैं । लेखक का कहना है कि यदि महावीर के पाँच सिद्धान्तों को सारे मुल्क में प्रसारित किया जाय और उन पर अनुकरण किया जाय तो ये सभी अराजकताएँ एंव अनैतिकतायें समाप्त हो सकती हैं । वीरोदय काव्य में देवियों एवं देवताओं द्वारा भी राष्ट्रीय विचारधारा को प्रस्तुत किया है । राष्ट्र को दूषित करने वली दुर्नीति एँव दुराचरणों के दुष्परिणाम बताकर उनसे बचने का राष्ट्र को संदेश दिया है । काव्य के अन्तिम भाग में भगवान महावीर स्वामी के बाद के आदर्श राजाओं के उल्लेख भी लेखक की राष्ट्रीय चिन्तन धारा को अभिव्यक्त करते हैं । विक्रमादित्य जैसे राजा को राष्ट्र के उत्थान के लिए एक आदर्श राजा के

रुप मे प्रस्तुत किया है । हिन्दुस्तान में रहने वाले हिन्दू की परिभाषा बताते हुए कहा है कि जो हिंसा को दोष युक्त कहे वह हिन्दू है । राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने के लिए राजा को अहिंसक, सत्य एवं न्याय प्रिय होना बताया है । राष्ट्र नेताओं को राष्ट्र के हित में अपने व्यक्तिगत स्वार्थ लोकैषणा से रहित, सत्तागत अधिकारों के अहंकारों से रहित एक जनता का अर्थात् देश के सेवक के रूप में रहकर देश की सेवा करना बताया है । जनता का सुख- दुःख राष्ट्र नेता का सुख - दुःख होना चाहिए । प्रजा और राष्ट्र नेता के बीच पिता - पुत्र का सम्बन्ध होना चाहिये । इन सब बातों से सिद्ध होता है कि लेखक ने वीरोदय महाकाव्य में आत्म उत्थान के साथ राष्ट्र उत्थान की बातों को भी विशिष्ट रुप से ध्यान में रखा है ।

दूसरा लेख वीरोदय महाकाव्य के पौराणिक पुरुषों के विषय के ऊपर बाँचा गया । यह विषय बहुत ही महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है, क्योंकि हमारे समाज में दो प्रकार की रुचि वाले व्यक्ति हैं एक तो श्रुत साहित्य को साहित्य की दृष्टि मे देखते है और दूसरा वर्ग ग्रन्थ को धार्मिक पुराण की दृष्टि मे देखता है कवि के हाथ में जब पुस्तक पहुँचती है तो वह उसमें काव्यगत लक्षण देखता है और स्वाध्यायशील बंधु के हाथ में पहुचती है तो वह पुराणगत लक्षणों को दृष्टिगोचर करता है ।

आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने इस काव्य को लिखते समय महाकाव्य के लक्षणों को तो पूर्णतः ध्यान में रखा ही है लेकिन पौराणिक लक्षणों को भी उस सीमा तक ग्रहण किया है, जहाँ तक महाकाव्यगत लक्षण बाधित न हो । अतः यह वीरोदय महाकाव्य, महाकाव्य के साथ ही साथ पौराणिक ग्रंथ भी है । आलेख वाचक को लेख के शीर्षक के अनुसार वीरोदय महाकाव्य के पौराणिक पुरुष, ऐतिहासिक पुरुष एवं महान पुरुषों को पृथक-पृथक कहना चाहिये । वाचक कार ने ऐतिहासिक एवं महान पुरुषों को भी पौराणिक पुरुषों के अन्तर्गत ले लिया जिसका संशोधन होना चाहिए । यहाँ पर हम वीरोदय महाकाव्य के एक दो उदाहरण को दे करके तीनों को पृथक् - पृथक् बताना चाहेगें वाचक ने राम और विभीषण को पौराणिक पुरुषों के अन्तगत ले लिया लेकिन राम तो पौराणिक पुरुष हो सकते है विभीषण नहीं विभीषण तो ऐतिहासिक पुरुषों के अन्तर्गत आयेगा । रावण और कृष्ण पौराणिक पुरुष हैं लेकिन नारद ऐतिहासिक पुरुष हैं । महान पुरुषों के अन्तर्गत तीर्थंकर के माता-पिता आदि आयेगें। पुराण पुरुष वह कहलाता है जैन दर्शन के अनुसार जो 63 शलाका पुरुषों के अन्तर्गत आता हो, वैदिक परम्परा में अवतार के रुप में जो पृथ्वी पर विचरण करते हैं उनको पौराणिक पुरुष माना जाता है । ऐतिहासिक पुरुष कि क्रियाओं से भविष्य के लिए एक इतिहास का कीर्तिमान बनाता है उसे ऐतिहासिक पुरुष कहते हैं और महान पुरुष वे हैं जो अपने आदर्शों के माध्यम से समाज एवं देश के लिए आदर्शता प्रगट करते हैं और दूसरे लोग उनकी जीवन लीला को आदर्श मानकर अपने जीवन को उनके आदर्शों पर चलकर गौरवान्वित अनुभव करते हो ।

इस प्रकार की परिभाषा को लेकर वीरोदय काव्य के पात्रों को विभाजित कर लेख वाचक को समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहिए जिससे लेख एवं लेख के शीर्षक की गौरवता बनी रहेगी ।

तीसरा लेख वीरोदय काव्य में प्रकृति चित्रण पर वाचा गया सो लेख में प्रकृति चित्रण से हटकर के ही विषय प्रस्तुत किया गया । लेख को संशोधित कर प्रकृति चित्रण के प्रसंग को ही प्रासंगिक करना चाहिए लेख वाचक को अपने लेख के शीर्षक के अनुसार प्रकृति चित्रण के रूप में वर्णित कर वर्णन करना चाहिए था - वाचक ने ऋतु वर्णन का विस्तार से अपने लेख में वर्णन कर दिया है । इसे संशोधन करना चाहिए क्योंकि ऋतु वर्णन को प्रकृति चित्रण नहीं कहा जा सकता । वीरोदय महाकाव्य में प्रकृति चित्रण बहुत अच्छे ढंग से वर्णित है । प्रकृति के चित्रण को लेखक ने जीवन का एक अंग मानकर के प्रस्तुत किया है और जहां पर प्रकृति के चित्रण आये हैं वहाँ पर इस बात का भी संदेश दिया कि जो व्यक्ति प्रकृति के महत्व को नहीं समझता वह प्रकृति के सौन्दर्य को नष्टकर अपने जीवन को अंधकारमय बना लेता है। उन्होने कहा है कि जिस प्रकार अंधेरी अमावस्या की रात्री में कोई भटक गया हो, भयभीत हो गया हो तो वह आकाश में चमकते हुए तारों के माध्यम से रास्ते को खोजकर और तारों की सौन्दर्य के कारण अन्धकार की भयानकता को भूल जाता है इसी प्रकार और भी कई स्थानों पर नदी, पर्वतों पशुओं - पक्षियों का प्रकृतिगत चित्रण वीरोदय महाकाव्य में प्रस्तुत किया गया है । वाचक को अपना सम्पूर्ण लेख पुनः लिखना चाहिए क्योंकि वांचा गया लेख प्रकाशन के योग्य नहीं है ।

चौथा लेख वीरोदय काव्य में महावीर की साधना के ऊपर वाँचा गया इसके संबंध में यह कहना चाहूँगा कि वीरोदय महाकाव्यकार ने महावीर की मानसिक साधना का चित्रण महावीर के जन्म से लेकर निर्माण तक के बीच में हर प्रसंग में वर्णित किया है । महावीर की मानसिक साधना को जब देखते हैं तो लगता है कि महावीर का मन हमेशा संयमित रहता हैं, कितनी भी विपरीत परस्थितियाँ आ जायें तब भी वह आतंकित, भयभीत, उत्तेजित एवं उद्वेलित नहीं होते हैं बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी मन से संतुलित होकर उन परिस्थितियों से सामना करने को तत्पर रहते हैं । महावीर की मानसिक साधना का एक और चित्रण देखने में आता है कि महावीर इस दुनिया के कल्याण के लिए अपने इन्द्रिय सुखो को तिलाजंली दे देते हैं । पिता सिद्धार्थ के द्वारा भगवान महावीर की शादी का प्रस्ताव रखा जाता है तब भगवान महावीर मानसिक साधक होने के कारण कह देते है कि

में अपने जीवन को इन्द्रिय सुखो में विलुप्त नहीं करना चाहते । बल्कि इस जीवन के इन्द्रिय सुखों को प्राप्त करने के लिए जो प्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह की पिशाचता में फंसकर आतंकित होते हुए एक दूसरे को आतंकित कर रहे हैं ऐसी पैशाचिकता को नष्ट करने के लिए अपनी ऊर्जा को लगाना चाहता हूँ और दूसरा प्रसंग जब भगवान दीक्षा ले लेते हैं तब अपने अवधिज्ञान के निमित से भगवान महावीर अपने पूर्व भवों का स्मरण करते हैं वीरोदय काव्यकार ने भगवान महवीर को अपने अतीत अनन्त काल के दुष्कर्मों को मिथ्याकर, महावीर के स्वयं के चिन्तन के द्वारा कहलवाया है एवं महावीर के अतीत मिथ्या भोगों का चिंतन कराया है, यह चिंतन साधक की मानसिक साधना का कीर्तिमान स्थापित करता है अपने द्वारा अतीत में किये हुए दुष्कर्मों को मिथ्या कहना विशेष मानसिक साधना का ही प्रतीक है । 16 स्वप्नों का वर्णन भी लेखक ने इस ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे काव्य के पाठक को पढ़ते ही ज्ञान हो जाता है कि काव्य का नायक पूर्व भवों से ही महान साधना को करने वाला है । कायिक साधना का वर्णन भी लेखक ने प्रस्तुत किया है कि भगवान महावीर दीक्षा के बाद अनेक- अनेक प्रकार से उपसर्ग परिषह को सहन करते हैं जिसका स्मरण करने मात्र से ही साधारण जन मानुष भयाकृत होकर रोमांचित हो जाता है । भगवान महावीर एक माह, दो माह, चार माह, छह माह के उपवास करते हैं ऐसा उल्लेख काव्य में किया है हालांकि यह कथन भगवान महावीर के सम्बन्ध में दिगम्बर जैन शास्त्रों के अर्न्तगत नहीं मिलता । लगता यह प्रसंग लेखक ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय के शास्त्रों से ग्रहण कर लिखा है । लेखक ने अपने नायक को ग्रीष्मकाल की तपन से भी पर्वतों की शिखरों पर बैठाकर आतपन कराया है, शीतकाल में नदिया के किनारे और वर्षा काल में वर्षा के झंझावातों में भी वीर प्रभु अपनी साधना रत रहते हैं ।

इसके बाद वीरोदय काव्य में रस वैशिष्ट्य पर लेख बाँचा गया । जैसे भोजन में षड् रसों को प्रयोग यदि न किया जाय तो भोजन बेस्वाद एवम् अरुचिकर होता है उसी प्रकार काव्य में रसों का समावेश न हो तो काव्य नीरस लगता है । आ0 ज्ञानसागर महाराज के इस वीरोदय काव्य में प्राय: सभी सर्गों में रसों का प्रचुरता से प्रयोग है । लेखक दार्शनिक सन्त होने के कारण अपने श्लोकों को दार्शनिक रूप से प्रस्तुत किया हैं इससे रस को दृष्टि में रखकर श्लोक को जब व्यक्ति पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि इस श्लोक मे कोई रस प्रयुक्त नहीं है लेकिन उसी श्लोक को शांत चित्त होकर पढ़ा जाय तो रस ऐसे प्रस्फुटित होते है जैसे पके हुए आम में से अन्दर का रस डण्ठल तोडते ही बाहर टपकने लग जाता है । यहाँ विचारणीय है कि लेखक ने अपनी लेखनी से दार्शनिकता को ध्यान में रखते हुए धार्मिक विचारधारा को भी ध्यान में रखा है । अत: जहाँ दार्शनिकता और धार्मिकता श्लोक में आजाती है वहाँ रस का अनुभव करने के लिए विशिष्ट विद्वान की ही प्रतिभा समर्थशील हो सकती है । जैसे कल रात्रि के सत्र में प्रसंग आया था कि वीरोदय के नायक को नायक कैसे कहा जाय क्योंकि वीर प्रभु की नायिका तो है ही नहीं तो मुझे यह प्रसंग सुनकर बड़ी हँसी आई कि देखो लोग स्त्री को ही अपनी नायिका मानते है, ध्यान रहे स्त्री को साथी इसलिए कहा गया कि वह सुख-दुख में साहस बंधाये एवं पतन के मार्ग से उत्थान के मार्ग की और ले जाये । तो वीरोदय महाकाव्यकार ने क्षमा और ममता रूपी स्त्री का भगवान महावीर के सुख-दुख में सहायक बनाया । अर्थात वीरोदय महाकाव्यकार के नायक की नायिका क्षमा, दया और ममता ही है ।

इन सारे प्रश्नों का समाधान यह है कि यदि पाठक पढ़ते समय यह मन बनाये कि यह एक दार्शनिक संत की कृति है तो हमें अपनी बुद्धि को दार्शनिक संत की विचारधारा से समन्वित करना होगा, तभी इस कृति में से इच्छानुकूल रसों को निकाला जा सकता है ।

वाचक ने कहा कि इस काव्य में हास्यरस नहीं है । लेकिन हास्य रस का वर्णन तो कई स्थानों पर आया है समय की अल्पता के कारण में एक प्रसंग की ही तरफ संकेत करूँगा कि जब सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर बैठकर वीर बालक को जन्माभिषेक के लिए मेरु पर्वत ले जाने के लिए ज्योतिष मंडल से गुजरता है उस समय ऐरावत हाथी सूर्य को अपनी सूंडा में पकड़ लेता है और सूर्य की उष्णता से ग्रसित होकर उसे झिड़क देता है तब सारे देवतागण खिलखिलाकर हँस पड़ते है । यह श्लोक पूर्ण रूप से हास्य रस को वर्णित करने के लिए ही आलेखित किया है । अत: वीरोदय महाकाव्य में नौ रस यथा योग्य प्रयुक्त किये हैं । आलेख वाचक यदि किस सर्ग में कौन कौन से रस का प्रयोग किया है यह पृथक् - पृथक् विभाजन कर देते तो श्रोताओं एंव वीरोदय काव्य के पाठकों को बहुत बड़ी उपलब्धि हो जाती ।

वीरोदय काव्य में सामाजिक एवं अर्थव्यवस्था के विषय के ऊपर लेख बाँचा गया । लेखक ने सामाजिक व्यवस्थाओं को वर्ण जाति के माध्यम से व्यक्त किया है । भगवान महावीर के शिक्षा के बाद ऋषभनाथ के समय को स्मरण कराकर वर्ण व्यवस्था को लिए सामाजिक व्यवस्था के रूप में वर्णित किया है । तथा दुराचरण करने वाले को निन्दनीय बताया तथा अच्छे आचरण वालों को उच्च बताया अर्थात् लेखक का अभिप्राय है कि सामाजिक व्यवस्था आचरण के ऊपर ही आधारित होनी चाहिए। कुल और जाति के आधार पर सामाजिक व्यवस्था मदान्धता को प्रकट करती है, तथा अराजकता, शोषणता, को समाज में फैलाकर सामाजिक जीवन को नष्ट करतीं हैं । यदि सामाजिक व्यवस्था आचरण के ऊपर आधारित रहें तो कभी भी सामाजिक व्यवस्था डगमगा नहीं सकती

और इसी के अन्तर्गत आर्थिक व्यवस्था को वर्णित करने के लिए लेखक ने अर्थ,काम,धर्म एंव मोक्ष पुरुषार्थों का वर्णन करते हुए अर्थ पुरुषार्थ को फलीभूत करने के लिए व्यापारिक स्थलों का वर्णन, मुद्राओं का वर्णन कोषकार अर्थात् कोषाध्यक्षों का वर्णन, राजकीय कर व्यवस्था (टैक्स) तथा विनिमय आदि व्यापारिक अनिवार्यताओं को यथा योग्य स्थानपर वर्णित किया है ।

वीरोदय महाकाव्य में भाषाशैली के विषय को लेकर एक लेख बाँचा गया । इस लेख में भाषा शैली के ऊपर बहुत विस्तृत भूमिका हो जाने से वीरोदय महाकाव्य की भाषा शैली को समय की अल्पता के कारण नहीं बाँच पाये । सारा समय वाचक का भाषा शैली की भूमिका में ही निकल गया । यदि वाचक इस भूमिका को वीरोदय, महाकाव्य के प्रसंगों से जोड़कर चढ़ाते जाते तो शायद 'एकपंथ दो काज हो जाते ।' इस प्रसंग में सभी लेख से वाचकों को कहना चाहूंगा कि जब कोई किसी विषय पर लेख वाचन करना होता है तब इस बात का जरूर ध्यान रखना चाहिए कि भूमिका में कम समय देकर मूल विषय को प्रस्तुत करें क्योंकि श्रोता उस विषय की परिभाषा नहीं सुनना चाहता बल्कि वह विषय इस काव्य में कहाँ पर आया है और क्यों आया है, कैसे आया है इसे सुनने का मानस बनाकर आपके लेख को सुनना चाह रहा है । मुद्रित होने के पहले यह लेख पूर्ण संशोधित होना चाहिए ।

भाषा शैली का प्रसंग चल रहा था तो वीरोदय काव्य की भाषा शैली आधुनिक भाषा शैली से प्रभावित है क्योंकि भगवान महावीर के चरित्र को प्रकट करने के लिए लेखक ने आधुनिक भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है अर्थात् लेखक ने क्षेत्रगत एवं कालगत वर्तमान कालीन भाषाओं से संस्कारित होकर महाकाव्य की भाषा शैली को इसी अनुसार प्रस्तुत किया है ।

एक लेख में वीरोदय काव्य में नारी वर्णन पर प्रस्तुत किया गया है वीरोदय काव्यकार ने नारियों के गुणों का वर्णन भी किया है तो वहीं पर नारी के दुर्गुणों का भी वर्णन किया है व्यभिचारिणी नारियों को व्यभिचार की निन्दा करते हुए लेखक ने उनकी संतान को निंद्य मार्ग पर न भेजकर आगम के उदाहरण देकर मोक्ष मार्गपर स्थापित किया है अर्थात कीचड़ में कमल खिल सकता है इस युक्ति को चरितार्थ किया है । प्रिय कारिणी जैसी तीर्थकर की माता को आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत करके लेखक ने दुनियाँ की नारियों को उन जैसा आदर्श जीवन जीने का संदेश दिया है ।और भगवान महावीर के द्वारा शादी के प्रस्ताव के समय नारी को ही संसार के बंधन में मुख्य बंधन के रुप मे प्रस्तुत किया है । लेखक का कहना है जो व्यक्ति नारी के बंधन में नहीं बंधता वह व्यक्ति दुनिया के बंधनों से मुक्त हो जाता है ।

इस प्रकार से पंचम सत्र के सम्बन्ध मे बाँचे गये लेखों के ऊपर समीक्षात्मक ढंग से विचार अत्यन्त अल्प समय में मैंने प्रस्तुत किये है और समय भी आपका हो गया है इसलिए यहीं पर अपने प्रवचन को विराम देता हूँ ।

(महावीर भगवान् की जय)

वीरोदय महाकाव्य की विशालता

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

वीरोदय महाकाव्य पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी पर मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का समीक्षात्मक प्रवचन एवं चर्चाओं का सारांश –

-: छठे व सातवें सत्र के दौरान :-

जय श्री ओम् नमःसिद्धेभ्य.....3 णमो अरिहंताणं..............चत्तारि मंगलं..............

पंच परमेष्ठी भगवान की जय आ. श्री गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय

आज मुझे इस समय दो सत्रों में बाँचे गये लेखो की समीक्षा करना है प्रथम तो रात्रि में जो सत्र हुआ था उसमें मेरी अनुपस्थिति थी लेकिन उन लेखों के सम्बंध में जो प्रश्न उत्तर हुए और मैंने अपने ही मूल स्थान पर बैठे-बैठे जो कुछ सुनाई में पड़े उस के आधार पर कुछ समीक्षा करना चाहूँगा । वीरोदय में कला पक्ष एंव कथा के विषय को ले करके लेख बाँचा गया तो वीरोदय महाकाव्य में जीवन एंव समाज उपयोगी बहुत सारी कलाओं का वर्णन है इस संबंध में कोई विशेष समीक्षा करने की आवश्यकता नहीं ।

दूसरा लेख वीरोदय में ऋतु वर्णन के ऊपर बांचा गया सो ऋतु वर्णन तो महाकाव्य का प्राण होता है । ऋतु वर्णन के माध्यम से ही काव्य में लालित्य आता है । वीरोदय महाकाव्यकार ने ऋतु वर्णन को ही आधार मानकर अपनी कथा वस्तु को बहुतायत रूप से प्रस्तुत किया है जैसे ग्रीष्म ऋतु के वर्णन के साथ वीर प्रभु की तपस्या को प्रासंगिक किया है । शीत

ऋतु का वर्णन संसार की विचित्रिता का तुलनात्मक चिंतन वीर प्रभु के मानस पटल पर कराया है । बसंत ऋतु का वर्णन लेखक ने प्रभु के जन्म महोत्सव के समय प्रस्तुत किया है और वर्षा ऋतु का वर्णन प्रभु के गर्भावतरण के प्रसंग में प्रस्तुत किया है। हेमंत और शिशिर ऋतु का वर्णन भी यथायोग्य वीरोदय में आया है अर्थात वीरोदय मे छ: ऋतुओं का वर्णन बड़े दार्शनिक और युक्तियुक्त ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है । कवि ने ऋतु वर्णन के समय ऐसे भाव व्यक्त किये हैं जैसे प्रत्येक ऋतु मानवों के लिए जीवनोपयोगी संदेश दे रही है ।

वीरोदय काव्य को पढ़ने के बाद लगता है कि ये छहों ऋतुऐं जीवन में बहुत उपयोगी हैं । यह छ: ऋतुऐं इस सृष्टि के वातावरण को अनुकूल बनाये रखती हैं । यदि ऋतुऐं न होती तो यह सृष्टि बड़ी नीरस हो जाती इसलिए ऋतुओं का वर्णन काव्य के लिए ही उपयोगी ही नही है बल्कि जीवन को भी सुभाषित बनाने में कारण है । ऋतु परिवर्तन से प्रकृति मे एक नया निखार आताहै प्रत्येक ऋतु इस प्रकृति के ऊपर कोई न कोई उपकार करके ही जाती है । इसलिए जब किसी का चरित्र चित्रण किया जाता है तो इन ऋतुओं के प्रसंग को उपमा उपमेय के रूप में लेखक प्रासंगिक जरूर करता है । महाकाव्य के लिए तो ऋतु वर्णन एक अनिवार्य अंग बन जाता है ।

तीसरा लेख रात्रि में बाँचा गया कि वीरोदय में आगत जैनेतर प्रसंग - इस सम्बन्ध में आचार्य ज्ञानसागर बड़े उदारवादी रहे हैं । पक्षपात के रहित होकर लेखक ने जैनेतर प्रसंगों को यथा स्थान लिया है । किसी स्थान पर प्रशंसा के रुप में और किसी स्थान पर समालोचना के रूप मे लिया है । जैनेतर प्रसंगों में जहाँ उन्हें अच्छाई मिली उसको हंस के समान बनकर ग्रहण कर लिया । और जहां पर वैदिक परम्परा ने वेदों के अनर्थ अर्थ करके समाज को हिंसा की तरफ प्रेरित किया है वहाँ पर लेखक ने कटु समालोचना भी की है । जगदम्बा को मां के रूप में मानना और उस पर बलि चढ़ाना, लेखक ने उस पर खेद प्रकट करते हुए कहा है कि माँ कभी पुत्र के खून की प्यासी नहीं हो सकती अर्थात जगत् माँ होने के नाते जगत् के प्राणी उसके पुत्रवत् हो गये फिर उन बेटों के खून की प्यासी कैसे हो सकती है । वहीं दूसरी तरफ लेखक ने दयानन्द सरस्वती की प्रशंसा भी की है क्योंकि उन्होंने वेदों के मंत्रों के अर्थ अहिंसा परख निकालकर भारतीय धर्म की रक्षा की है । इसी प्रकार अनेक प्रसंग जैनतरों के वीरोदय काव्य मे ग्रहण कर देश में समाजवाद एंव एकता का शंखनाद किया है । हमारा भारत जो साम्प्रदायिक फूट के कारण खंडित होता चला जा रहा है । उस खंडता को अखंडता में परिवर्तन करने के लिए सभी सम्प्रदाओं की अच्छाइयों को वीरोदय में वर्णित किया । इससे लगता है कि लेखक मत भेदी तो था लेकिन मन भेदी नहीं था । अर्थात् आ. ज्ञानसागर ने मतभेद तो स्वीकार किया है मनभेद नहीं । मनभेद मे देश का विनाश होता है । मतभेद कषाय का प्रतीक नहीं बल्कि ज्ञान को पिपासा है लेकिन मन भेद कषाय, ईर्ष्या, शत्रुता को उत्पन्न करने वाला है । ज्ञानसागर जी महाराज ने जैनेतर प्रसंग को लेकर यह सिद्धकर दिया कि मत भेद बना सो बना रहे लेकिन मन भेद नहीं होना चाहिए ।

इसके बाद लेख बाँचा गया वीरोदय महाकाव्य की छंद अलंकार योजना इसके सम्बन्ध में पहले ही हम कहके आये है कि छंद योजना महाकाव्य की नाक कहलाती है । जिस काव्य में छंद योजना विधिवत् न हो और अलंकार आदि भरपूर हों तो ऐसा काव्य नकटी के शृंगार के समान माना जायेगा । वीरोदयकाव्य में अनेक छन्द आये हैं, उनकी विशेषता लेख वाचक को अपने लेख में स्पष्ट करना चाहिये था ।

आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने छंद और अलंकारों की समायोजना अपने महाकाव्य में की है । यह तो हमनें रात्रि में आप लोगों द्वारा बाचें गये लेखों का जो कुछ भी माइक द्वारा मुझे सुनायी में आया था उसकी समीक्षा की । अब अभी प्रभात काल के सप्तम सत्र के बारे में कुछ कहना चाहूँगा। इसमें प्रथम लेख प्राकृत में वर्णित महावीर कथा और वीरोदय. इस संबंध में स्पष्ट है कि दिगम्बर प्राकृत साहित्य में तिलोय पण्णत्ति, षट् खंडागम, धवला टीका आदि में अति संक्षिप्त रूप में महावीर का जीवन वृत्त मिलता है । इसका अर्थ यह नहीं लेना कि विस्तार से वर्णन दिगम्बरों के पास था ही नहीं, विस्तार इसलिए नहीं किया गया बल्कि हमारा दिगम्बर जैन साहित्य एक नदी के समान रहा है जिस प्रकार नदी जब निकलती है तो वह पतली सी लघु व्यास वाली होती है और आगे बढ़ते बढ़ते विस्तृत हो जाती है बस यही स्थिति दिगम्बर साहित्य की है । कि सर्वप्रथम दिगम्बर साहित्य की कथा वस्तु मौखिक चलती थी बाद में भद्रबाहु स्वामी के बाद पुष्पदंत आचार्य द्वारा मात्र 20 सूत्र में ही बीज रूप मे समस्त जिन सूत्र के अर्थ को गर्भित किया गया था । इस अतिसंक्षिप्त कथन में अर्थ कठिन हो गया तो फिर भूतबली आचार्य ने सूत्रों को आधार बनाकर अनेक सूत्र लिखे । उसके बाद धवला आदि टीकायें लिखी गयी और इस प्रकार से आज एक-एक सूत्र के ऊपर टीकायें, उपटीकायें बहुत तादाद में मिल रही हैं । पहले संक्षेप रूप में वर्णन किया जाता था । श्वेताम्बर प्राकृत साहित्य मे जो महावीर की कथा विस्तार से मिलती वह सदोष और काल्पनिक है प्राकृत भाषा में किसी वस्तु का कथन कर देने से प्राचीनता नहीं आ जाती। श्वेताम्बर साहित्य में महावीर कथा तो प्राकृत भाषा में मिलती है वह प्राकृत भाषा बहुत ही अर्वाचीन है, और वहाँ महावीर की कथा को इसलिए प्राकृत भाषा में लिख दिया कि हमारी वर्णित कथा प्राचीन कथा मानी

जाये आंचार्य ज्ञानसागर महाराज ने वीरोदय महाकाव्य में श्वेताम्बर सम्प्रदाय में वर्णित महावीर कथा का कोई भी अंश वर्णित नहीं किया क्योंकि उन्हें मालुम था कि वहाँ पर जो वर्णन मिलता है वह दिगम्बर सम्प्रदाय से मेल नहीं खाता श्वेताम्बर साहित्य पूर्णत: साम्प्रदायिकता से ग्रसित साहित्य है, इसलिए आलेख वाचक को वीरोदय कथा के लिए श्वेताम्बर प्राकृत कथित महावीर कथा नहीं जोड़ना चाहिए। गोष्ठी में उपस्थित समस्त विद्वानों का एवं मेरा भी कहना है कि प्राकृत में वर्णित महावीर कथा पर जो लेख बांचा गया है इसे पूर्ण रूप से परिवर्तित होना चाहिए क्योंकि कथित विषय प्रमाणिक नहीं है ।

आगे लेख बाँचा गया वीरोदय में आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक वैभव इस लेख के संबंध में विद्वानो की तरफ से यह प्रश्न आया कि अध्यात्म और सिद्धान्त में क्या अन्तर है । अध्यात्म वह है जो कारण को गौण करके, जिसमें कार्य होता है, ऐसे उपादान को चर्चा करता है । और सिद्धान्त में जिस कारण से कार्य होता है उस कारण की विस्तार से चर्चा करते हुए अन्त में सिद्धों का वर्णन किया जाता है । उसके भी जैन दर्शन के अनुसार एककर्म सिद्धान्त है एक आचरण सिद्धान्त है । आचरण परक सिद्धान्त ग्रंथों में साधक कारण की विवक्षा वर्णित रहती है और कर्म सिद्धान्त में साधक में बाधक कारण की चर्चा की जाती है । गुण स्थान और मार्गणा सिद्धान्त इन दोंनो की चर्चा इस सिद्धान्त में बड़े विस्तार से रहती है ।

वीरोदय काव्य महाकाव्य होने से कर्म सिद्धान्त की इसमें कोई विशेष व्याख्या नहीं की गयी लेकिन काव्य के मुख्य नायक मोक्ष मार्गी होने के कारण चारित्र परक सिद्धान्त की विधा के अनुसार मोक्ष मार्ग एवं मोक्ष मार्ग के साधक कारणों की चर्चा लेखक ने यदाकदा की है । और इसी चारित्र परक सिद्धान्त के आधार पर नायक को सांसारिक अराजकताओं से ऊपर उठाकर उच्च स्थान प्राप्त कराया है । इस काव्य में कार्य समय सार की चर्चा मात्र लक्ष्य भूत रही है, कारण समयसार की चर्चा नायक द्वारा क्रियान्वित करायी है, अन्त में नायक को मोक्ष होने के बाद में अल्प रूप से कार्य समयसार की भी चर्चा की है।

वह भी आलंकारिक ढंग से । लेकिन कारण समयसार की चर्चा तो तीर्थंकर के गृहस्थ अवस्था से ही लेकर क्रियान्वित करायी है । लेखक का मानना है कि कारण जिसका शुद्ध है उसका कार्य तो शुद्ध होगा ही इसलिए कार्य की चिन्ता की आवश्यकता नहीं कारण को सम्हालने का प्रयास करो । लेखक ने अपने नायक को बाधक कारणों से बचाने का प्रयास कराया है । जैसे पिता के द्वारा शादी का प्रस्ताव नायक आध्यात्मिक साधना में बाधक मान करके अस्वीकार कर देता है । अत: आचरण परक सिद्धान्त वीरोदय काव्य में अधिक वर्णित है ।

इसके आगे 'शब्द कोषीय परिप्रेक्ष्य में वीरोदय की समालोचना' इस विषय पर लेख बाँचा गया - वीरोदय काव्य में ऐसे ऐसे शब्दों का प्रयोग है जिसको किसी एक शब्द कोष से नहीं तोला जा सकता है । आ. ज्ञानसागर अनेक शब्दकोषों के ज्ञाता थे और शब्द की व्युत्पत्ति का सवाल है तो व्युत्पत्ति तो अनेक-अनेक प्रकार से की जा सकती है । क्योंकि एक शब्द के एक-एक अक्षर भी अपना-अपना स्वतंत्र अर्थ रखते है तो लेखक जब श्लेष अलंकार आदि में उतरता है तो कहीं सम्पूर्ण शब्द का अर्थ ग्रहण कर लेता है और कहीं उस शब्द के अनेक खंड-खंड करके भिन्न - भिन्न अर्थ निकाल लेता है । शब्द कोष तो साहित्य से निर्मित होता है न कि शब्दकोष से साहित्य । शब्द का प्रयोग तभी सही माना जायेगा जब शब्द अपने अर्थ को सरलता से प्रकट कर दे । आ. ज्ञानसागर जी ने कुछ शब्द ऐसे भी प्रयोग किये हैं जो सभी भाषा में प्रचलित हैं और कुछ शब्द आंग्ल भाषा, उर्दू, फारसी, हिन्दी, अपभ्रंश, मराठी, मारवाड़ी, ब्रज, बुन्देलखण्डी भाषा आदि अनेक भाषाओं से सम्बन्धित शब्द बोल चाल में अधिक प्रचलित होने के प्रभाव से उन्हें प्रयोग कर लिया है । और एक दृष्टि से देखा जाय तो सभी भाषाऐं बावन अक्षर से ही उच्चरित होती है। हर भाषा की लिपी भिन्न हो सकती है लेकिन उस भिन्न लिपि का उच्चारण करने पर नियम से अनादिनिधन रूप से जो 52 अक्षर प्रचलित है उन्हीं के रूप मे उच्चारण होगा । उच्चारण की विधि 52 अक्षर से अलग नहीं हो सकती ।

अत: आ. ज्ञानसागर महाराज के साहित्य में कई ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जो प्रचलित संस्कृत शब्द कोषों में नही मिलते। अत: मेरा सुझाव है कि आचार्य ज्ञानसागर संस्कृत शब्द कोष एवं शब्द व्युत्पत्ति कोष अलग से निकाला जाना चाहिए । जिससे संस्कृत साहित्य में कुछ नये शब्द एवं शब्द व्युत्पत्तियाँ और जुड़ सके । भिन्न नये शब्दों का प्रयोग करने का कारण मुझे एक और प्रतिभासित होता है कि ज्ञानसागर महाराज एक महाकवि थे । और कवि निरंकुश होता है । तो अपने काव्य को सरल सुगम एवं रोचक बनाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग करना स्वाभाविक है । और अनेक साहित्यकारों के साहित्य को पढ़ने पर मुझे देखने में आया कि कुछ शब्द कुछ शताब्दियों पूर्व जिस भाषा के मूल शब्द थे वे शब्द साहित्य में प्रयोग न होने के कारण अप्रचलित हो गये और दूसरी भाषाओं में जाकर उन शब्दों ने प्रसिद्धि प्राप्तकर ली, तो कालान्तर में किसी साहित्यकार ने उन्हें पुन: अपनी मूल भाषा में प्रयुक्त कर लिया तो नवीन साहित्य कारों ने उसे दूसरी भाषा का शब्द मानकर समालोचना करना शुरु कर दिया । एक दिन रात्रि में लेख पढ़ा गया था कि वीरोदय में वर्णित प्राकृत शब्द' लेकिन वाचक ने कुछ ऐसे शब्दों को भी प्राकृत में ले लिया जो वस्तुत: संस्कृत शब्द ही है हालांकि प्राकृत भाषा प्राचीन भाषा है उसके शब्द संस्कृत में आ जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है । उपरोक्त समस्त बातों को ध्यान में रखकर देखा जाय तो कोई भी वर्तमान साहित्य

ऐसा नहीं है जिसमें शब्दगत शंकर दोष न हो । कालिदास के भी महाकाव्य मैने देखे वेदों को भी मैने पढ़ा, जैन पौराणिक संस्कृत साहित्य का स्वाध्याय भी किया लेकिन सभी संस्कृत साहित्य में कुछ शब्द ऐसे मिले जो सभी साहित्य भाषाओं में प्रचलित हैं। कालिदास ने तो ऐसे ऐसे नवीन शब्दों का प्रयोग किया है कि उन शब्दों का अर्थ समझने के लिए अलग से कालिदास शब्द कोष बनाना पड़ा विद्वानों को, अतः आ ज्ञानसागर महाराज ने भी ऐसे क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जो हमें लगते हैं कि यह संस्कृत भाषा के नहीं हैं लेकिन जब हम उनकी व्युतपत्ति करके अर्थ निकालते है तो कोई भी शब्द मुझे संस्कृत से वाह्य प्रतीत नहीं होता है अतः आर्ष वाक्य को ग्रहण करते हुए प्रचलित संस्कृत शब्द कोषों को विस्तार देना चाहिए ।

आगे एक लेख वीरोदय की प्रस्तावना पर बाँचा गया सो प्रस्तावना के अन्दर तो कुछ ऐसे प्रसंग प्रस्तावना कार द्वारा लिख दिये गये जो काव्यकार से मेल नहीं खाते,और प्रस्तावना के अन्दर महावीर कथा को बहुत प्रकार से वर्णित कर दिया गया है हांलाकि प्रस्तावना कार एक बहुत माने हुये विद्वान थे और वह प्रस्तावना आचार्य ज्ञानसागर महाराज के सामने ही लिखी गई थी,इस लिये प्रमाणता को प्राप्त हो जाती है । लेख वाचक को प्रस्तावना के विषयों को एवं वीरोदय में वर्णित विषय वस्तु को तुल्नात्मक ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए ।

रस वैशिष्टय एवं दूसरा लेख पर्यावरण और वीरोदय महाकाव्य पर बाँचा गया इन दोनों लेखो के विषयों का स्पष्टीकरण पूर्व सत्रों में दिया था समय अभाव के कारण यहाँ इन पर समीक्षा नहीं कर रहे हूँ ।

(महावीर भगवान् की जय)

गोष्ठी क्यों और कैसे

मुनिप्रवर श्री सुधासागर जी महाराज

वीरोदय महाकाव्य पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी पर मुनि श्री सुधासागर महाराज का समीक्षात्मक प्रवचन एंव चर्चाओं का सारांश :

-: अष्टम सत्र के दौरान :-

जय श्री ओम् नमःसिद्धेभ्य.....3 णमो अरिहंताणं..............चत्तारि मंगलं...............

पंच परमेष्ठी भगवान की जय आ. श्री गुरूवर विद्यासागर जी महाराज की जय

आज गोष्ठी का अन्तिम सत्र चल रहा है । जीवन की गति अपने आप चलती रहती है जैसे घड़ी अपने आप उपादान शक्ति से चलती रहती है । यह क्रम भी अनादि अनन्त काल से कालद्रव्य की उपादान शक्ति से निरन्तर चल रहा है । और चलता रहेगा । यह कालद्रव्य स्वतः तो परिणाम करता ही है दूसरे द्रव्यों को परिणमन कराने में उदासीन कारण भी बनता हैं। अब काल द्रव्य के सहारे से प्रत्येक द्रव्य अपना परिणमन उपादान रुप से स्वभावतः करते रहते हैं । परिणमन भी दो प्रकार के होते है एक नैसर्गिक और एक प्रायोगिक । नैसर्गिक परिणमन का यहाँ पर प्रसंग नहीं लेना चाहता हूँ । प्रायोगिक परिणमन के सम्बन्ध में मात्र कहना चाहूँगा कि यह भी दो प्रकार से होता है एक तो अनिष्ट रुप में जो काल को अमंगल संज्ञा दे देता है । और दूसरा पारमार्थिक इष्ट परिणमन जीव के द्वारा संचालित होता है जो काल के लिए मंगलता प्रदान कर देता है । मंगल अमंगल काल नही होता बल्कि मंगल अमंगल कार्य की अपेक्षा काल पर आरोपित कर दिया जाता है । कार्तिक बदी अमावस्या तो भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के पहले भी थी लेकिन मंगल स्वरुप न होकर एक सामान्य रूपसे पाक्षिक तिथि के रुप में थी । लेकिन उस तिथि के दिन भगवान महावीर को निर्वाण हो जाने के कारण वह तिथि काल मंगल के नाम से पूजी जाने लगी । इसी प्रकार भारत में जितने भी सामाजिक, धार्मिक कार्य होते हैं वे जीवों व राष्ट्र के लिए कल्याणकारी होते हैं । और साथ ही जिस दिन यह कार्यक्रम होता है वह दिन मंगलमय बन जाता है । साहित्य गोष्ठियां तो हमेशा होती रहती है लेकिन साहित्य के साथ - साथ आध्यात्मिकता समाविष्ट हो जाने से गोष्ठी सोने में सुहागे के समान हो जाती है । इस गोष्ठी में बहुत आनन्द आया क्योंकि साहित्यिक लेखों के साथ - साथ आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक एवं जीवन को उत्थान की ओर ले जाने वाले लेखों का भी वाचन किया गया । यदि इन गोष्ठियों से कोई व्यक्ति शिक्षा लेना चाहे तो बहुत कुछ प्राप्त कर सकता है लेकिन यदि उपादान में योग्यता नही हैं तो ऐसी गोष्ठियों में से दोष निकालकर निन्दा करता हुआ नीच गोत्र का भी बंध कर सकता है । उमास्वामी ने कहा है कि- केवलीश्रुत संघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य अर्थात् जो केवली उनके द्वारा कथित सूत्र है उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म एवं गुरु सम्यग् दर्शन के निमित्त कारण है लेकिन यदि इनका अवर्णवाद करता है तो महान मिथ्यात्व का

बंध करके 84 लाख योनियों में भटक जाता है । कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे अच्छे कार्यों के प्रति भी लोग जौंक के समान बने रहते हैं । जिस प्रकार जौंक गाय के स्तन से चिपक जाती है तो वह स्तन में जो दूध रहता है उसे नहीं पीती बल्कि वहाँ पर जो सड़ा गला खून रहता है । उसको ही पी जाती है इसी प्रकार कुछ लोग गोष्ठियों के एकाध शब्द को लेकर जौंक के समान चिपक जाते है और उसी शब्द को चूसते रहते हैं । पूरी गोष्ठी में कितने अच्छे कार्यक्रम हुए उनके बारे में सोचते तक नहीं हैं । अच्छे विद्वानों की दृष्टि में ऐसे विद्वान अच्छे विद्वान नहीं कहलाते ।

ज्ञानी तो हंस के समान होता है जो दूध और पानी के मिले हुए होने पर भी उपादेय रूप दूध को ग्रहण कर लेता है, और हेय रूप जल को ग्रहण नहीं करता है इसी प्रकार विद्वान भी सार रूप उपादेय को ग्रहण कर हेय रुप को छोड़ देता है । मेरी दृष्टि आप सभी विद्वानों को हंस के समान मानती है आप लोग अपने आप में क्या हैं यह तो आप लोग ही जाने लेकिन मेरी दृष्टि में तो आप हंस के समान है । अत: हंस का जो स्वभाव है उसी स्वभाव की हम आप लोगों से अपेक्षा करते हैं । इसलिए नहीं कि निन्दकों से महाराज डरते है क्योंकि हमारे गुरुनाम् गुरु आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने इसी वीरोदय काव्य में कहा है कि 'यदि कोई छिन्द्रान्वेषी हमारे काव्य में दोष निकलता है तो अच्छा ही तो है कि सारे दोष निकाल देगा तो हमारा काव्य निर्दोष हो जायेगा ।'' इसे बोलते है विद्वत्ता, कि निन्दा को भी उपादेय बता दिया। ठीक ही है कि दूध में कोई खटाई डालता है तो दूध का कुछ नही बिगड़ता और वह अधिक स्निग्ध होकर दही रुप में परिणत हो जाता है । और दही के ऊपर मथानी के प्रहार किये जाते है तो भी गो रस का कुछ नही बिगड़ता । बल्कि वह गोरस और अधिक स्निग्ध होकर नवनीत का रूप धारण कर लेता है नवनीत को कोई अग्नि पर तपा देता है तो भी गोरस का कुछ नहीं बिगड़ता है और उसकी स्निग्धता साकार रुप ले घृतरूप परिणत हो जाती है । इसके बाद उसमें किसी प्रकार की अशुद्धि नहीं आ सकती ।

अत: दूध यदि अधिक समय तक दूध बना रहता तो 24 घंटे के बाद विकृत हो जाता है लेकिन दुनिया के प्रहारों ने उसे शाश्वत शुद्ध कर दिया। उसी प्रकार जिन कार्यक्रमों में विरोधी लोग विघ्न डालते हैं वे कार्य सानन्द सम्पन्न होते हैं, इसलिये विरोधी व्यक्तियों से डरने की तो बात नहीं है। मैं तो यह बता रहा हूँ कि विद्वान हंस के समान होना चाहिए इसी में विद्वान की विद्वत्ता एवं गरिमा है । जैसे कि ज्ञानसागर महाराज थे। जब हम लोग नये दीक्षित हुए ही थे तब एक बार आचार्य महाराज ने कहा था कि विद्वानों से सावधान रहना चाहिए क्योंकि विद्वान चलाकर चर्चा करेंगे । अपन लोग नहीं बोलना चाहें तो जबरदस्ती बुलवाएगें और सामने तो कुछ नही कहेंगे और यहाँ से बाहर जाने के बाद अनर्गल प्रचार प्रसार पत्राचारों के माध्यम से करेंगें तब से हम लोग विद्वानों से थोड़ा डरते थे। जब ललितपुर चातुर्मास में डा. रमेशचन्द्र बिजनौर वालों से सल्लेखना के सम्बन्ध मे चर्चा चल रही थी, चर्चा के दौरान एक सुझाव आया कि क्यों न सल्लेखना पर एक गोष्ठी बुलाली जाय । तो हमने कहा कि मैं तो विद्वानो से डरता हूं। तब रमेशचन्द्र जी बोले ऐसी बात नहीं है सभी विद्वान अपने है और आप विद्वानो के हैं । कोई विकल्प नहीं आयेगा। एक पक्ष के अन्तराल में ही सल्लेखना के ऊपर एक लघुगोष्ठी की गयी । और उस संगोष्ठी में लगभग 10-15 विद्वानों ने अपने लेख पढ़े जो प्रकाशित भी हो चुके है। इसके बाद विहार गुरु आज्ञानुसार राजस्थान की तरफ हुआ। और अतिशय क्षेत्र पद्मपुरा जी में आचार्य ज्ञानसागर महाराज के 21 वें समाधिदिवस मनाने की चर्चा आई । तब डा. शीतलप्रसाद जी ने कहा कि महाराज इस समाधिदिवस पर तो ज्ञानसागर महाराज की साहित्य साधना का प्रसार प्रचार होना चाहिए। हमारा मन तो गुरु नाम गुरु के प्रति श्रद्धान्वित तो था ही और बहुत बार विकल्प भी आता था कि आचार्य ज्ञानसागर महाराज की साहित्य साधना से साहित्य पिपासु समाज परिचित हो ।

अत: आचार्य ज्ञानसागरजी के 21 वें समाधिदिवस पर उनके कृतित्व व व्यक्तित्व के ऊपर गोष्ठी विहारानुसार जयपुर के ही अतिशय क्षेत्र सांगानेर में की गई उस गोष्ठी में जैन अजैन, लगभग 20-25 विद्वानों ने आलेख वाचन किया सभी विद्वान आश्चर्य चकित रह गये कि दिगम्बर मतानुयायी एक विद्वान ने चार-चार महाकाव्य लिखे हैं जिनका नाम भूरामल है । और उसी सागांनेर गोष्ठी में समस्त विद्वानों ने मेरे सामने बैठकर यह निर्णय लिया कि समस्त साहित्यों पर एक साथ संगोष्ठी करने से इतने महान् साहित्यों में से पूर्ण रूप से रत्न नहीं निकाले जा सके। अत: एक एक महाकाव्य पर एक एक पृथक् पृथक् संगोष्ठी होनी चाहिए एवं ज्ञानसागर जी महाराज के साहित्य का पुन: प्रकाशन होना चाहिए।

इसके बाद हमारा गुरु आज्ञा से अजमेर में चातर्मास की स्थापना हुई । इसी दौरान वीरोदय महाकाव्य पर संगोष्ठी करने का निर्णय लिया गया। जो गोष्ठी आपके सामने तीन दिन तक चली। इस गोष्ठी मे 40 विद्वानों ने अपनी बुद्धि के बल पर आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के वीरोदय महाकाव्य में से कुछ रत्नों को खोजकर समाज के सामने प्रस्तुत किये। एक दो लेखों को छोड़कर बाकी सभी लेख ठोस प्रभावक, साहित्यिक एवं भविष्य के लिए आदर्शता प्रदान करने वाले थे। हमें विद्वानों पर गर्व है कि गोष्ठी के माध्यम से गत तीन दिनों से साहित्य के अन्दर गोता लगाने का प्रयास कर रहे हैं। इन गोष्ठियों की शुरुआत जैन समाज में अभी अभी एकसाल से शुरु हुई है अत: इसमें कुछ ठोस नीरस परिणित होना स्वाभाविक है। लेख बाँचने के पश्चात् लेखों

के ऊपर ऊहापोहात्मक प्रश्नोत्तर भी हुए। इन प्रश्नों के माध्यम से आलेख वाचक को घबराने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। क्योंकि गोष्ठी का अर्थ ही होता है कि हम अपने बौद्धिक ज्ञान को साधु विद्वान् एवं समाज के सामने रखें और उसमें जो कमी हों उसे लोग सुधारने को प्रेरित करें ।

अत: इस गोष्ठी में जो कुछ भी अच्छाइयाँ है, वह ग्रहण करने योग्य है । और जो कुछ कमियाँ है, वह आगे सुधारने को प्रेरित करती हैं । वस्तुत: इन दो तीन गोष्ठियों में विद्वानों के कथनानुसार विद्वानों को बहुत कुछ सीखने को मिला है । वीरोदय महाकाव्य पर अजमेर की गोष्ठी की सफलता ने तो ऐतिहासिकता का रुप धारण कर लिया है । जहां एक महाकाव्य पर 40-40 विद्वानों ने लेख बाचें गये और हजारों की जनता ने मंत्र मुग्ध होकर सुना है । अत: यह गोष्ठी का इतिहास स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है।

अजमेर समाज ने एक और बड़ा अलौकिक, अनुपम एवं आदर्श कार्य किया कि सारे विद्वानों ने सांगानेर संगोष्ठी में निर्णय किया था कि 2 साल के अन्दर आचार्य ज्ञानसागर महाराज का सम्पूर्ण साहित्य एक स्थान से प्रकाशित हो जाना चाहिए लेकिन अजमेर समाज के कार्यकर्ताओं एवं दातारों में इतना उत्साह दिखाया कि ज्ञानसागर महाराज के 24 ग्रंथ दो महीने में प्रकाशित कर विद्वानों के हाथ में रख दिये । यह प्रकाशन भागचन्द सोदिया के दृढ़ संकल्प का ही परीणाम है । इसें निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्टस् प्रेस वाले की भी प्रशंसा करनी होगी कि उसने इन ग्रंथों को 2 माह के अन्दर प्रकाशित करने का संकल्प लिया एवं आशीर्वाद लिया । इन सारे कार्यों का सहास करने के बावजूद प्रुफ रीडिंग की समस्या होती है तो अनुशंसा पूर्वक कहना होगा कि कमलकुमार बड़जात्या ने दिन-रात एक करके 24 ग्रंथों की प्रुफ रीडिंग करके ग्रंथों को प्रकाशित करने में बहुत बड़ा योगदान दिया है एवं श्रुत ज्ञानवरणीय कर्म का क्षयोपशम किया है । मेरी भावना है कि जिन जिन व्यक्तियों ने इन ग्रंथों के प्रकाशन में उत्साह दिखाया । उनको सम्यक श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म की उपलब्धि जरूर होगी । कुन्द-कुन्द स्वामी ने पूर्व भव में एक शास्त्र दान किया था जिसके फलस्वरूप तीव्र ज्ञानावरणीय क्षयोपशम की उपलब्धि हुई थी । इन लोगो ने तो 24 24 ग्रंथों को अल्प समय में प्रकाशित कर विद्वानों को समर्पित कर दिये । दातारों की भी प्रशंसा करनी होगी जिन्होंने एक-एक ग्रंथ को एक एक व्यक्ति ने प्रकाशित करने का संकल्प लिया ।

समयसार की 5-5 हजार प्रतियां, जयोदय की 4 4 हजार प्रतियां एक-एक दातार ने 4-4,5-5 लाख रुपया दानस्वरुप देकर अपने हाथ के मैल रुपी धन का कितना बड़ा सदुपयोग किया है शेष ग्रन्थों की 2 2 हजार प्रतियां भी एक एक दातार ने अपने धन के द्वारा प्रकाशित कराई है। पंचम काल में भौतिक चकाचौंध में जहाँ युग 21 वी सदी की ओर बढ़ रहा हो ऐसे विपरीत समय में अपने धन का सम्यग्ज्ञान के प्रकाशन में खर्च करना दुर्लभ ही नहीं दुर्लभतम होता है।

इस प्रकार से इस चातुर्मास में बड़े-बड़े अच्छे कार्य समाज द्वारा किये गये । यह समस्त गोष्ठी कार्यक्रम एक ही महान् दातार राजेन्द्र कुमार जी दनगसिया ने अपने धन का सदुपयोग करके चतुर्थकालीन दान परम्परा का स्मरण दिला दिया। इस दातार की तो समस्त विद्वानों ने भी भूरी भूरी प्रशंसा की जो, यथोचित थी। अत: विद्वानों को जो साहित्य मिला है उसमें से रत्नों को निकालकर वे समाज के सामने रखेगें, ऐसी मुझे इन विद्वानों से आशा है। समस्त विद्वानों ने आज दोपहर में मेरे सामने बहुत अच्छे अच्छे निर्णय लिये । और मेरी भावना है, कि समस्त विद्वान् मिलकर आचार्य ज्ञानसागर महाराज के साहित्य में से पाठ्यक्रम तैयार कर विद्यालयों में रखवाने का प्रयास करें और इनके महाकाव्य पर अधिक से अधिक शोधकार्य (P H D) आदि कराने के निर्णय लिये जाए। हमारे दिगम्बर सम्प्रदाय में तो महाकाव्यों को रचने वाला 500-600 साल के बाद एक ही लाड़ला सरस्वती पुत्र हुआ है और जब इकलौता पुत्र होता है तो उससे लाड (प्यार) होना स्वाभाविक है अत: मैं जैन अजैन समस्त विद्वानों से कहना चाहूँगा कि सम्प्रदाय का पक्षपात छोड़कर इस लाड़ले सरस्वती पुत्र की सरस्वती साधना का समादर करते हुए शिक्षा क्षेत्र में उच्चासन प्राप्त करायेगें।

अन्त में मैं विद्वानों के लिए आर्शीवाद देना चाहूँगा कि इसी प्रकार से साहित्य साधना का बहुमान करते हुए सम्यग्ज्ञान का प्रसार करते रहेगें। और समाज को आर्शीवाद देते हुए भावना करता हूँ कि समाज अपने तन,मन,धन, का इसी प्रकार की ज्ञानवर्धक संगोष्ठी में ज्ञान दान की भूमिका निभाते हुए अपने जीवन का धन्य करते रहेंगे। समय आपका काफी हो गया है इसलिये मैं यहीं पर अपना प्रवचन समाप्त करता हूँ और समस्त विद्वानों ने जो सुदर्शनोदय महाकाव्य दयोदय चम्पू एवं भद्रोदय पर एक साथ दिसम्बर माह में संगोष्ठी करने का निर्णय लिया है सो उसमें आगत विद्वान इस संगोष्ठी से भी अधिक परिमार्जित लेख तैयार करके लायेगें । ऐसी मेरी भावना है ।

॥ महावीर भगवान की जय ॥

❑ ❑ ❑

वीरोदय महाकाव्य की सैद्धान्तिक विशेषताओं का समीक्षात्मक अध्ययन

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

जैन दर्शनानुसार हुण्डावसर्पिणी काल के अंतिम शासक तीर्थंकर भगवान महावीर हुये । भगवान् महावीर के सिद्धान्तों को भारतवर्ष के समस्त बुद्धिजीवियों ने जीवन को सुखमय बनाने के लिए अनिवार्य बताया । भगवान् महावीर के जीवन चरित्र एवं सिद्धान्तों को प्राचीन आचार्यों ने अपने-अपने समय पर प्रदर्शित कर समाज एवं व्यक्ति को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लगाया। इसी श्रृंखला में इस युग के अर्थात चौदहवीं शताब्दी के बाद प्रथम महाकाव्यकार उद्भट विद्वान आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने अपनी पूर्व अवस्था (ब्रह्मचारी भूरामल) के समय भयवान् महावीर के जीवन चरित्र एवं उनके सिद्धान्तों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार से गुणग्राही होना चाहिए इस दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखकर वीरोदय महाकाव्य में जन-जन के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है । इस महाकाव्य ने जहाँ महावीर के सिद्धान्तों को यथार्थ रूप में प्रकट करने का कार्य किया है वहीं दिगम्बर धर्म में सैकड़ों वर्षों से महाकाव्य के रूप में साहित्य साधना की पूर्ति भी इस महाकाव्य की रचना से हुई है। अन्य सम्प्रदाय के साहित्य प्रेमी ये कहने लगे थे कि जैन मुनियों एवं श्रावकों मे चरित्र की साधना तो है लेकिन साहित्य की साधना दिगम्बरों के पास नहीं है । आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने चरित्र एवं तपस्या की मूर्ति बनकर साहित्य साधना के मन्दिर का भी निर्माण किया है । इस मंदिर में शिखर और कलशारोहण के रुप में जयोदय एवं वीरोदय महाकाव्य को स्थापित किया है । आचार्य ज्ञानसागर जी की इस साहित्य साधना ने जैनियों के मस्तक ऊँचे कर दिये एवं दिगम्बर अनुयायियों को आदर्शता भी प्रदान की कि जैन दर्शनावलम्बी जहाँ संयम एवं चरित्र की साधना करने में समर्थ हैं, वहीं पर साहित्य साधना करने में भी पीछे नहीं हैं। चौदहवीं- पंद्रहवीं शताब्दी के बाद प्रथम आचार्य है । जिन्होंने संस्कृत में महाकाव्यों को लिखकर खोई हुई साहित्य साधना को उजागर कर दिया। आचार्य ज्ञानसागर महाराज के साहित्य को पढ़ने से प्रतीत होता है कि इनकी साहित्यि के विचारधारा भगवान् महावीर जैसी क्रान्तिकारी थी अर्थात् आचार्य ज्ञानसागर क्रान्तिकारी विचार धारा के प्रतीत होते हैं । लगभग पचास साल पूर्व प्राचीन जीवन शैली में जीने वाले व्यक्तित्व की ज्ञान प्रतिभा इक्कीसवीं सदी के जनमानस को प्रभावित कर रही है । यह आश्चर्य की बात है । आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने महावीर के उस सिद्धान्त को विशेष रूप से प्रचारित किया है जो सिद्धान्त कहता है कि घृणा पाप से करो पापी से नहीं। आचार्य महाराज चरित्र को जीवन का अनिवार्य अंग मानते हैं साथ ही दार्शनिक एवं वैज्ञानिक ढंग से जीवन शैली जीने का संदेश भी देते हैं। वीरोदय महाकाव्य चारित्रिक दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं साहित्यिक महाकाव्य है । इस महाकाव्य की कुछ विशेष विशेषताएं दृष्टव्य है । जो ज्ञान जिज्ञासु मनीषियों के लिए ऊहा-पोह करके सत्य एवं स्वच्छ मार्ग को प्रशस्त करने का अवसर प्रदान करती है ।

इस लेख में मात्र उन्हीं सैद्धान्तिक विशेषताओं को आलेखित किया जा रहा है । जो इस काव्य में असाधारण रुप से वर्णित है । छंद अलंकार, व्याकरण आदि विशेषताओं को आलेख में नहीं लिया है ।

मंगलाचरण

वीरोदय महाकाव्यकार ने मंगलाचरण करते हुए कहा है कि जिनेन्द्र देव की सेवा का फल मुझे एवम् वीरोदय महाकाव्य के पाठकों श्रोताओं को मेवा की उपलब्धि करायेगा । मेवा में भी विशेष रुप से कवि ने द्राक्ष के समान स्वादिष्ट एवं हृदय को आह्लाद उत्पन्न करने वाली जिनेन्द्र देव की सेवा का फल बताया है लेखक की भावना है कि जिनेन्द्र देव की सेवा के फलस्वरूप मुझे इस महाकाव्य की रचना करने में किंचित् मात्र श्रम नहीं करना पड़ेगा ।[1]

दूसरे श्लोक में मंगलाचरण करते हुए नाभि पुत्र को महोदय शब्द से सम्बोधित किया तथा उन्हें कामारि घोषित कर अपने सिद्धान्तों का समर्थक कहा है अर्थात् अपनी विचार धारा के अनुकूल माना है । क्योंकि लेखक स्वयं कामारि थे अर्थात् बाल ब्रह्मचारी थे । इसलिए लेखक ने अपनी कामारिता को पुष्टि करते हुए कहा कि मैं ही कामारि नहीं बल्कि नाभि पुत्र भी कामारि थे[2] इसी के आगे तीसरे श्लोक में चन्द्रप्रभु की बाहय कान्ति का वर्णन करते हुए उसको संसार के अधकार का विनाशक माना गया है तथा चौथे श्लोक में पार्श्वनाथ भगवान् के प्रति जनमानस को प्रभावित होने की बात कही है । कि भो - मानुष!

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	1	2	2.	1	2			

कहां भटकते हो पार्श्व प्रभु सी उत्तम निधि को प्राप्त कर अपने जीवन को आनन्दमय बनाओ और कहा है कि पार्श्व रूपी पारस से अपने जीवन रूपी लोहे को स्वर्णमय बनाने का प्रयास करो । आगे वीर भगवान् के नाम में विरोधाभास अलंकार द्वारा वीर नाम का निषेध करते हुए कहा है कि हे वीर भगवान् आप वीर नहीं थे, अबीर थे । क्योंकि अबीर का अर्थ गुलाल है और गुलाल को लोग आनन्द के समय मस्तक पर धारण करते हैं उसी प्रकार जनमानस आपको आनन्द के लिए या आनन्द के समय मस्तक पर धारण करते हैं इसीलिए आप वीर नहीं अबीर हैं[2] व्याख्या में अबीर का अर्थ अभय देने वाला लेना चाहिये ईश्वर नहीं । यदि विष्णु रूपी ईश्वर लेते हैं तो वीर प्रभु को विष्णु के सदृश कहना उपयुक्त नहीं है । इसी प्रसंग में कवि ने मीर, अमीर एवं नेक आदि फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है । लेकिन शब्द व्युत्पत्तिक करने पर संस्कृत निष्ठ अर्थ को व्यक्त करते हैं ।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए गुरुओं का स्मरण विघ्नों को दूर करने में कारण बने इस रूप में गुरु को याद किया है। यहां पर हिन्दी व्याख्या के विशेषार्थ में ज्ञानान्द का अर्थ ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द को गुरु के रूप में स्मरण कराया है[3] सो ये बात मेरी दृष्टि में श्लोक के साथ संगति को प्राप्त नहीं होती क्योंकि श्लोक में गुरु के जो विशेषण बताए हैं, वह दिगम्बर मुनि में ही घटित होते हैं एक गृहस्थ में नहीं । श्लोक के अन्दर ज्ञान शब्द के साथ तृतीया विभक्ति का प्रयोग करके चकार का प्रयोग किया गया है। बाद में आनन्द शब्द आया है अतः ज्ञान शब्द की विभक्ति एवं चकार शब्द की अभिव्यक्ति तथा तीसरे चरण में गुरु शब्द के साथ षष्ठी के बहुवचन का प्रयोग किसी ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द का नाम नहीं प्रकट करती है बल्कि इसका अर्थ तो यह निकलता है कि ज्ञान के द्वारा जो आनन्द को प्राप्त हुए हैं, ऐसे ब्रह्मपथ पर चलने वाले गुरुओं को अपने विघ्नों का हरण कर्ता मानता हूं अर्थात यहां एक गुरु को स्मरण न करके गुरुजनों का स्मरण किया है।

मंगलाचरण गत श्लोकों में कुछ अन्य विशेषताएं भी दृष्टिगोचर हुई है जैसे चौबीस भगवानों में से मात्र ऋषभ देव, चन्द्रप्रभु, पार्श्वदेव, वीर प्रभु का ही स्मरण किया है। लगता है लेखक को उपरोक्त भगवान् विशेष अराध्य के रुप में इष्ट थे। क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की दशा में ऐसा परिणाम आना सम्भव है और उपरोक्त चार भगवानों में भी मात्र चन्द्रप्रभु को ही नमस्कार किया है। अन्य तीन भगवानों के नाम तो स्मरण किये हैं लेकिन स्मरण के साथ नमस्कार, वन्दन, अभिनन्दन आदि अर्चनीय शब्दों का प्रयोग लेखक ने नहीं किया है। तीसरे श्लोक में चन्द्रप्रभु भगवान के लिए नमस्कार शब्द का प्रयोग किया है । लगता है लेखक ने दार्शनिक होने के नाते समन्तभद्र स्वामी की प्रवृत्ति का अनुकरण किया है। क्योंकि समन्तभद्र स्वामी ने पूर्व सात तीर्थंकरों की स्तुति तो की लेकिन नमस्कार चन्द्रप्रभु भगवान् को ही स्तुति-रचना के समय किया।

रुढिवादी शब्दों की शब्द व्यंजना एवं अलंकारिक प्रतिभा के परम्परागत नामानुकुलता से हटकर विरोधी गुणात्मक शक्ति को प्रकट करते हुए वीर भगवान् के व्यक्तित्व को विस्तृत किया है। सम्पूर्ण मंगलाचरण में लेखक ने स्वहित की भावना के साथ साथ जनमानस के कल्याण की भावना भी प्रकट की है। इस भावाभिव्यक्ति से पूर्णता सिद्ध होता है कि कवि ने कविता का जो मुख्य लक्षण है, स्वान्तः सुखाय पर हिताय को ध्यान में रखकर वीरोदय महाकाव्य लिखा है ।

लघुता एवं लोकप्रियता

कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए कहा है कि गणधर द्वारा भी जिन वीर प्रभु का वर्णन न किया जा सका हो उनका वर्णन करने का साहस में कर रहा हूं अर्थात जल में पड़े हुए चन्द्र बिम्ब को बालक के समान उठाने का प्रयास कर रहा हूँ।[4] इस लघुता को प्रदर्शित करते हुए भी लेखक अपनी इच्छा शक्ति को प्रकट कर रहे हैं कि मैं असमर्थ तो हूं लेकिन यदि गुरुजन मेरे सहायक हों तो में असमर्थ होकर भी समर्थ हो जाऊंगा । जैसे बालक स्वयं चलने में समर्थ नहीं है लेकिन अगर पिता की उंगली का सहारा मिल जाए तो वह भी चलने में समर्थ हो जाता है ।[5] यहां कवि के अहंकार एवं ज्ञानमद का अभाव प्रतीत होता है और गुरू की असीम शक्ति पर विश्वास प्रतिभासित होता है। इस प्रकार कवि ने अपनी लघुता प्रकट की लेकिन अपनी कृति को लोकप्रिय बताते हुए कहा है कि यह काव्य प्रकाश और अंधकार के बीच के संध्याकाल की लालिमा के समान आह्लाद के देने वाला होगा यहां कवि का[6] वह अभिप्राय भी प्रकट होता है कि काव्य सदोष भी नहीं है कि इसे अंधकार की उपमा दी जा सके लेकिन सम्पूर्ण गुण वैभव सम्पन्न भी नहीं है कि उसे दिन की उपमा दी जा सके। लेकिन संध्या का उभयदृश्य जिस प्रकार प्रकाशमय नहीं होता एवं पूर्ण अन्धकार मय भी नहीं होता फिर भी संध्याकाल की लालिमा मन को आनन्द प्रदान करने वाली होती है ।

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	1	3	2.	1	5	3.	1	6
4.	1	7	5.	1	8	6.	1	21

इसी प्रकार यह काव्य पाठक को आनन्द प्रदान करेगा। इस श्लोक में कवि ने अपने चातुर्य से अभाव एवं सद्भाव में पड़ी हुई अपनी कृति को लोक प्रियता से अलंकृत कर दिया इससे कवि का कवित्व चमत्कृत हो उठा है। काव्य की श्रेष्ठता बताते हुए कवि ने कहा है कि अमृत का पान करते हुए भी देवता मानवता को प्राप्त नहीं कर पाये क्योंकि वे काव्यरूपी रसायन का पान नहीं करते हैं। अत: जो काव्य रूपी रसायन का पान नहीं करते हैं वस्तुत: वे ही मानवता के अधिकारी हैं । कवि ने अपना मत प्रकट किया है कि काव्य भी स्वर्ग भूमि है क्योंकि जो वस्तु स्वर्ग में होती है वे सब काव्य में वर्णित होती है।[1] कवि ने विद्वानों के सामने अपनी अल्पज्ञता एवं काव्य की लघुता व्यक्त करते हुए यह भी कहा है कि मुझे व्याकरण का बोध नहीं है। अलंकार एवं छंदों को भी नहीं जानता[2] लेकिन 27-28 वें श्लोक में कवि ने स्वंय अपनी कविता को आर्या भार्या के समान सर्वगुण सम्पन्नता की घोषणा की है[3]

इन सब उपरोक्त बातों को पढ़ने के बाद लगता है कि कवि ने विद्वानों एवं अपने आदर्शों का आदर कर अपनी अल्पज्ञता प्रकट करते हुए भी अपनी ज्ञान शक्ति पर विश्वास प्रकट कर कहा है कि प्रस्तुत कृति उच्च कोटि की है।

इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति करना सम्यग्ज्ञानी को लक्षण होता है, होना ही चाहिए। यह लक्षण आचार्य ज्ञानसागर में विद्यमान था ।

अभिप्राय

कवि ने अपने इस काव्य को लिखने का अभिप्राय प्रकट किया है कि मेरे काव्य के नायक की महानता मेरे जीवन में अवतरित हो जावे और मेरे द्वारा उल्लेखित तुच्छ शब्द वीर प्रभु के चरित्र से चिह्नित हो जाने के कारण अतिशयता को प्राप्त हो जावेंगे । यहाँ कवि ने उपादान की तुच्छता होने पर भी शुद्ध निमित्त के मिलने पर तुच्छ उपादान भी महानता को प्राप्त हो जाता है।[4] ऐसा वर्णन किया है।

कर्तृत्ववाद एवं अन्य सम्प्रदाय की छाप

कवि के इस काव्य को पढ़ने के बाद मुझे प्रतीत होता है कि कवि अन्य सम्प्रदायों में सृष्टी के सम्बंध तथाकथित विषय वस्तु की जनश्रुतियों से प्रभावित हुआ है । क्योंकि 15 वें श्लोक का अर्थ यदि शब्दार्थ रूप में ले लिया जाय तो स्पष्ट रूप से ईश्वर कर्तत्ववाद प्रकट होता है । कहा है कि साधु जनों का निर्माण करते समय विधाता के हाथ से कुछ कण नीचे गिर जाने के कारण संसार में अन्य सुगन्धित अच्छी वस्तुएं निर्मित हो गई हैं।[5] कवि का भाव है कि विधाता को साधु. का निर्माण करने के बाद किसी अन्य अच्छी वस्तु का निर्माण की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा अर्थ जो हिन्दी व्याख्या में निकाला गया है सो यह जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्त अकर्तृत्व वाद को समाप्त करने की पूरी संभावना रखता है । कवि ने ऐसा वर्णन किस अभिप्राय को लेकर किया होगा, यह बात स्वातन्त्र्य है विचारणीय है इस महाकाव्य के नायक वीर प्रभु हैं । जिनका मूल सिद्धान्त वास्तु स्वातन्त्र्य है ।

अत: हिन्दी व्याख्या के कथित अर्थ को यदि यथावत् ले लिया जावे तो इस काव्य के मूल नायक के भी सिद्धान्त का खण्डन हो जाता है लेकिन काव्य तो अपने मूल नायक के सिद्धानेतों को सुरक्षित रखता है । अत: इन सब बातों को ध्यान में रखते गुए मेरी दृष्टि से इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार से निकलना चाहिये कि विधाता का अर्थ कर्त्ता अर्थात आत्मा (उपादान) और 'विधि' का अर्थ कर्म और 'कर' का अर्थ करण लेना। अर्थात आत्मारूपी विधाता ने कर्म रुपी विधि से (सामग्री) साधना रूपी करण से अपनी साधुता का निर्माण किया हैं और जब आत्मा साधन का उपयोग करते समय थोड़ी सी चूक जाती है तो उस चूक को संसारी प्राणी अन्यथा ग्रहण कर लेते हैं। अर्थात पुण्य का योग अन्य दुर्जन व्यक्ति के पास भी देखा जाता है । इसका भावार्थ इस प्रकार से लेना चाहिए कि सच्चा साधु अपनी उपादान शक्ति एवं कर्म रूपी करण से अपने साधुपने का निर्माण करता है लेकिन कभी, असाधु भी कुछ गुणों को ग्रहण कर यह कहता है कि इस साधु में यह गुण नहीं है । मेरे पास है। सो यह साधु की चूक के कारण ही असाधुओं में भी अच्छाई की विशेषता देखने में आ गई ।

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	1	22	2.	1	26	3.	1	27-28
4.	1	10	5.	1	15			

इस काव्य में और भी अन्य स्थानों पर अन्य दर्शन के सिद्धान्तों को प्रकट किया है जो महावीर के सिद्धान्तों से विपरीत बैठते हैं। जैसे सर्ग दो में यह कहा है कि यह पृथ्वी नागराज के सिर पर रखी हुई है कहीं नागराज, राजा सिद्धार्थ के गुणों को सुनकर ईर्ष्या के कारण भी सिर न धुनने लग जाये क्योंकि नागराज के सिर धुनने से उस पर आश्रित पृथ्वी उलट-पुलट हो जावेगी इसलिए विधाता ने सर्प के कान नहीं बनाये[1].इस श्लोक की समस्त विषय वस्तु काव्य के नायक वीर प्रभु के सिद्धान्त से मेल नहीं खाती है क्योंकि जैन दर्शन के अनुसार पृथ्वी शेषनाग के आधीन नहीं है और दूसरी बात सर्प तो पंचेन्द्रिय जाति वाला है, अत: सर्प के कान होते हैं। मेरे अभिप्राय से इस श्लोक को महावीर के सिद्धान्तों से न जोड़कर अर्थात् वस्तु स्थितिरूप न स्वीकार करके एक लोकोक्ति के रूप में ग्रहण करना चाहिए और लोकोक्तियों में काल्पनिकता सम्भव है । मेरे लिए तो ऐसा लगता है कि लेखक अलंकारों की विधा में इतने मगन हो गये कि उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि हमारे महाकाव्य के चरित्र नायक महावीर हैं। और उनके सिद्धांत क्या है । कभी-कभी लोकोक्तियाँ अथवा किंवदन्तियाँ जन मानस में ऐसा स्थायी स्थान प्राप्त कर लेती हैं कि सहज रूप से मूल सिद्धान्त तो गौण हो जाता है और किंवदन्तियाँ मुख्य रूप से प्रकट हो जाती हैं। ऐसा ही कुछ लिखते समय कवि के साथ भी घटा है और प्रथम सर्ग के 18वें श्लोक में कहा है कि विधाता तुमने जो दोष देखने वाले पिशुनों को उत्पन्न किया है सो यह तुम्हारी पटुता ही है क्योंकि इससे साधु की साधुता सफल होती है क्योंकि अंधकार न हो तो सूर्य का महत्व प्रभावक नहीं होता हैं[2]

इस प्रकार सर्ग 7 में भी आकाशगंगा का उल्लेख कवि ने किया है इसका वर्णन भी जैन शास्त्रों में नहीं मिलता है[3] ऐसी और भी अन्य स्थानों पर अन्य सम्प्रदाय के शास्त्रों में कथित विषय वस्तु को उपमा-उपमेय भाव के रूप में लाया गया है जिसे जैन दर्शन के मूल सिद्धान्तों से नहीं जोड़ा जा सकता है इन उपरोक्त कथन के सम्बन्ध में कवि का क्या अभिप्राय रहा यह तो हम नहीं कह सकते लेकिन पाठकों को इस महाकाव्य को पढ़ते समय इस काव्य के नायक वीर प्रभु के मूल सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर इन श्लोकों के अर्थ निकालना चाहिये। यदि अर्थ न निकले तो इसे लोकोक्ति या किंवदन्ती के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

गुण ग्रहणता

कवि ने दुर्जन के प्रति भी उपकारी भाव प्रकट किया है कहा है कि यदि खल लोग मेरे काव्य में कोई दोष निकालते हैं तो अच्छा ही है, दोष निकालने के बाद मेरा काव्य निर्दोष हो जायेगा। जैसे निस्सार भूत खली को भी यदि गाय खा लेती है तो उसका दूध और बढ़ जाता हैं । यहां कवि की महानता प्रकट होती है कि दुर्जन लोग दोषग्राही होने पर भी उपेक्षा के पात्र नहीं हैं।[4]

दुर्जन और सज्जन

कवि ने दुर्जनों और सज्जनों करते हुए कहा है, कि दुर्जन उलूक (उल्लू) के समान हैं। जिस प्रकार प्रकाश सारी दुनियाँ को अच्छा लगता है लेकिन उल्लू प्रकाश को देखकर खेद खिन्न हो जाता है । उसी प्रकार सद्गुणी को देखकर सारे संसार के भले लोग प्रसन्नचित्त होते हैं लेकिन खल (दुर्जन) खेदखिन्न होता हुआ क्रोधित होता है । दुर्जन को उलूक की संज्ञा देते हुए अंधकार प्रिय बताया है और सज्जनों को गुण रूप प्रकाश प्रिय कहा है।[5]

श्रद्धेय आचार्य

कवि ने अपने काव्य में कुछ आचार्यों के नामआलेखित किये हैं, जैसे - भद्रबाहु स्वामी का नाम स्मरण करते हुए कहा है कि भद्रबाहु तक जैन धर्म के अनुयायियों की स्थिति एक रूप रही है । पुन: इन्हीं के काल में दो धाराओं में परिणत हो गयी।

भद्रबाहु के चरणों का भ्रमर के समान चन्द्रगुप्त को भी प्रासंगिक किया है[6] लेखक ने समन्तभद्र आचार्य को श्लेषात्मक रूप से उल्लेखित करते हुए कहा है कि मेरी यह कविता समीचीन है, भद्र है, लेकिन दूसरा अर्थ अपने श्रद्धेय आचार्य को भी प्रकट कर रहा है कि उत्तम कविता तो समन्तभद्र आचार्य कर सकते हैं हम तो नाम मात्र के कवि हैं। इस प्रकार अपने श्रद्धेय आचार्य का नाम स्मरण कर उनके समक्ष अपनी लघुता प्रकट की है[7] इसी प्रकार अकलंक स्वामी का भी वीरोदय काव्य में स्मरण किया गया है । प्रथम अध्याय में अकलंक शब्द का प्रासंगिक अर्थ लिया गया है कि मेरी कविता कलंक से रहित अकलंक को प्रतिपादित करती है और दूसरे अर्थ में अकलंक स्वामी का नाम पर प्रकट होता है[8] इसी प्रकार प्रभाचन्द्र आचार्य को भी प्रासंगिक कर

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	1	12	2.	2	18	3.	7	9
4.	1	16-17	5.	1	19-21	6.	22	11
7.	1	24	8.	1	25			

कवि लिखते हैं कि चन्द्रमा की प्रभा से कुमुद जिस प्रकार विकसित होता है उसी प्रकार से आपके हृदय रूपी कुमुद को कविता रूपी चन्द्रमा की प्रभा प्रफुल्लित करेगी यहाँ भी दूसरा अर्थ प्रभाचन्द्र आचार्य के नाम को प्रकट करता है।

उपरोक्त दोनों आचार्यों का संयुक्त अर्थ इस प्रकार प्रकट होता है कि जिस प्रकार चन्द्रमा की चन्द्रिका कलंक रहित होती है कुमुदों को विकसित करती है और संसार के अन्धकार को दूर करती हैं उसी प्रकार प्रभाचन्द्र आचार्य के न्याय कुमुद चन्द्र ग्रन्थ रूप सुन्दर वाणी अकलंक देव के दार्शनिक अर्थ को प्रकाशित करती हैं संसार में हर्ष को बढ़ाती हैं लोगों के अज्ञान को दूर करती हैं ऐसी वाणी सदा जयवन्त रहें ।

कवि ने पूज्यपाद आचार्य का भी तीसरे सर्ग में नाम स्मरण किया है कि पूज्यपाद आचार्य ने मनुष्य के लिए मृत्य संज्ञा दी लेकिन राजा सिद्धार्थ ने स्वर्णादि जड़ पदार्थों को मृत् के रूप में गिना अर्थात मिट्टी के रूप में गिना[2] ।

15 वें सर्ग में शुभ चन्द्र सिद्धान्ति देव का नाम स्मरण करते हुए कहा है कि जैन धर्म को मानने वाली सत्यरस नागार्जुन की धर्मपत्नि आयिकव्वे शुभचन्द्र सिद्धान्त देव की शिष्या थी[3] सर्ग 15वें के 42वें श्लोक में पद्मनन्दी सिद्धान्ति देव का नाम स्मरण करते हुए कहा है कि इनकी शिष्या कदम्बराज कीर्ति देव की आर्या मालला थीं[4] ।

नेमिचन्द्र - सिद्धान्त चक्रवर्ती का नाम स्मरण करते हुए कवि ने कहा है, कि चामुण्ड राय उनकी पत्नि एवं माता ये तीनों इनके सेवक थे[5] 15वें सर्ग के 46वें श्लोक में प्रभाचन्द्र सिद्धान्त देव का भी नाम स्मरण किया हैं।

वीर प्रभु रूपी चन्द्रोदय

कवि ने वीरोदय काव्य के प्रथम सर्ग में इस भूतल की आज से 25सौ वर्ष पूर्व की दर्दनाक एवं दयनीय बीभत्स स्थिति का वर्णन किया है जो हृदय विदारक है कि धर्म के नाम पर लोग पशुओं की बलि यज्ञ में देने लगे थे और यहाँ तक की नरबलि भी यज्ञों की आहुति बन चुकी थी। सबसे बड़ा अनर्थ लेखक ने यह बताया कि लोग रसना एवं शिश्न इन्द्रिय के वशीभूत होकर वेद वाक्यों के हिंसात्मक एवं व्याभिचारात्मक अनर्थ अर्थ निकालकर लोगों को कुमार्ग की और ले जाते हुए धर्मान्धता से आच्छादित करने लगे थे। धर्म के नाम पर हिंसा ने पिशाचता का रूप धारण कर लिया था लोग जगदम्बा के सामने अपने पुत्रों का भी गलभंजन करने में नहीं हिचकते थे, इस दुष्कृत्य को दृष्टि में रखकर लेखक ने कहा है कि पृथ्वी का हृदय भी विदारकता को प्राप्त हो गया था इसलिए बार-बार भूकम्प आने से पृथ्वी फट जाती थी मानो इस हिंसात्मक दर्दनाक घटनाओं के प्रति संवेदना प्रकट कर रहो हो। कवि का अभिप्राय है कि 2500 साल पूर्व भी भूकम्प की बहुलता के मूल कारण ये हिंसात्मक तांडव नृत्य ही थे। जातीय मदान्धता भी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। इस प्रकार अनेक विभत्स चित्रों का चित्रण करते हुए इस सर्ग के अन्तिम श्लोक में कहा है कि ऐसी अक्षत्रियोंचित निन्दनीय अन्धकार की व्याप्तता के समय पर वीर प्रभु रूप महान चन्द्र का उदय हुआ[6] ।

कवि का परिचय कवि की लेखनी से

-कवि ने प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर सर्गों की श्लोक संख्या के अलावा प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक नया श्लोक लिखकर अपना स्वयं का परिचय इस प्रकार से दिया है कि श्रीमान् श्रेष्ठी चतुर्भुज एवं घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण वर्णी (बालब्रह्मचारी) पण्डित भूरामल ने इस वीरोदय नामक महाकाव्य को रचा है । यहाँ लेखक ने अपने नाम के आगे स्वयं अपनी लेखनी से वाणी भूषण उपाधि लगाई इससे लगता है कि कवि की वाक्पटुता इतनी प्रसिद्ध थी कि लोग उन्हें मूल नाम से न पुकार कर वाणी भूषण नाम से पुकारते होंगे। यहां पुकारने का अर्थ उनके नाम के आगे वाणीभूषण शब्द प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया और उपाधि भी सहज/सरल प्रसिद्ध उपनाम बन गई होगी इसी कारण से लेखक को स्वयं अपने नाम के आगे उपाधि लगाने में संकोच नहीं हुआ अर्थात यह नाम से भी अधिक प्रभावकारी हो गई थी। जैसा नेमिचन्द आचार्य का नाम लेते ही पता नहीं चलता कि ये कौन से नेद्रचन्द्र आचार्य हैं पर सिद्धान्त चक्रवर्ती कहते ही पता चलता है कि यही गोम्मटेश बाहुबली की प्रतिष्ठा कराने वाले चामुण्डराय के गुरू थे ।

जम्बूद्वीप

कवि ने द्वितीय सर्ग में जम्बूद्वीप का वर्णन अलंकारिक ढंग से प्रस्तुत किया है । मेरू पर्वत की ऊँचाई को ध्यान में रखते हुए कहा कि मेरू पर्वत मानों हाथ उठाते हुए कह रहा है कि चारित्र धारण करो मोक्ष तुम्हें सरलता से मिल

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	1	25	2.	3	17	3.	15	38
4.	15	42	5.	15	40	6.	1	29-39

जायेगा ।[1] यहां लेखक की चारित्र अनुरागता प्रकट होती है, क्योंकि अनादि अनिधन जड़रूप पर्वत से भी चारित्र की महानता की उद्घोषणा करा दी । जम्बूद्वीप के सात खण्डों को सात तत्त्वों की उपमा दी है और जिस प्रकार सात तत्त्वों में सुचतुर तथा हर्ष को प्राप्त करने वाला जीव तत्व प्रधान है । उसी प्रकार इन सात क्षेत्रों में जम्बूद्वीप की दक्षिण दिशा में अतिसमृद्ध भरत क्षेत्र है[2]

जम्बूद्वीप के सात खण्डों में भरत क्षेत्र को महान कहने का अभिप्राय लेखक का मेरी दृष्टि से यह रहा होगा कि लेखक भरत क्षेत्र का था इसलिये जननी और जन्मभूमि की प्रशंसा हमेशा करना चाहिये इसी बात को ध्यान में रखकर लेखक ने भारतवर्ष को जीव तत्त्व के समान प्रधान कहा । अथवा दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि महाकाव्य के मूलनायक भी कर्म एवं साधना स्थली भारतवर्ष होने के कारण भारत वर्ष को प्रधान कहा है । वैसे तो जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों में विदेह क्षेत्र महान है। जम्बूद्वीप के धनुष के समान बताकर हिमालय पर्वत को उसकी डोरी के समान कहा है ।।[3] जैन अन्य शास्त्रों में हिमालय शब्द जम्बूद्वीप के 6 महा पर्वतों के नामों में नहीं आया । हिमवन् पर्वत तो आया है । यह हिमालय शब्द हिमवन् पर्वत के अपरनाम के रूप में प्रयुक्त किया गया है ।

कुण्डनपुर एवं राजा सिद्धार्थ

भारत क्षेत्र के आर्य खण्ड में विदेह नाम के देश में कुण्डनपुर नामक नगर बताया है[4] जिसे महावीर की जन्मस्थली सिद्ध किया है लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विदेह क्षेत्र किसे कहा जाए, कहां पर कुण्डनपुर का अस्तित्व माना जाय ऐसा कोई संकेत यहाँ नहीं है । डॉ. नेमीचन्द ज्योतिषाचार्य ने तो विदेह क्षेत्र का अर्थ वैशाली लिया है और कुण्डनपुर को वर्तमान में वैशाली के पास बसाढ़ अथवा बासकुण्ड नामक स्थान बतलाया है ।।[5]

लेकिन वीरोदयकार ने अपने ग्रंथ में इन प्राचीन नामों को कहां पर माना जाय इस सम्बन्ध में कोई भी संकेत नहीं दिया है । इसी दूसरे सर्ग में कुण्डनपुर के वैभव का वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसे नगर की महान व्यवस्थित रचना से जनमानस को शिक्षा लेनी चाहिए । कुण्डनपुर के नगर के प्रासादों का वर्णन करते हुए उस नगर के मध्य में चैत्यालय का भी वर्णन किया है ।।[6]

इससे यह अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि से चतुर्थ काल में महावीर के जन्म स्थान कुण्डनपुर के मध्य में चैत्यालय स्थित थे ।

इसी प्रसंग को प्रासंगिक करते हुए कवि ने कहा है कि भोग रूपी कीचड़ के मध्य कमल के विकसित हो जाने से कीचड़ की दुर्गंधि कमल की सुगंधि में परिणत हो जाती है । अर्थात् कुण्डनपुर नगरी के भोग विलासिता में डूबे हुए लोगों को चैत्यालय की शरण कमल के समान जीवन को सुगंधमय बना देती है । अर्थात् अर्थ और काम पुरुषार्थ के साथ यदि व्यक्ति धर्म पुरुषार्थ भी करता जावे तो कीचड़ में होकर भी व्यक्ति अपना जीवन कमल जैसा सुन्दर सुगंधित, सुभाषित बना सकता है।

इस नगर में कुछ वस्तुओं का अभाव भी था लेकिन उन अभावों को कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है कि उन वस्तुओं का उन स्थान पर उस समय अभाव होना ही नगर की महानता को प्रदर्शित करता है ।

कुण्डनपुर के शासक का नाम तीसरे सर्ग में सिद्धार्थ बताया है ।।[7] और राजा सिद्धार्थ के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि यह सिद्धार्थ राजा त्रिवर्ग में तो निष्णात था और चतुर्थ वर्ग को प्राप्त करने की जिज्ञासा रखता था, ।।[8] इसके उदाहरण में कहा है कि मानो राजा कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग को यदि कर चुका है और पवर्ग को याद करने की कोशिश कर रहा है। अर्थात् अर्थ, काम धर्म पुरूषार्थ तो भलीभांति करता है और मोक्ष पुरूषार्थ को प्राप्त करने की कोशिश करता है । यहां कवि का अभिप्राय है कि मनुष्य गृहस्थ को तीन पुरुषार्थों को निरन्तर करते रहना चाहिए और चौथा मोक्ष पुरुषार्थ करने की हमेशा जिज्ञासा बनाए रखना चाहिए ।।[9]

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	2	1-2	2.	2	5	3.	2	7
4.	2	21	5.	-	-	6.	2	34-36
7.	3	1	8.	3	9	9.	3	9

इसी सर्ग में राजा सिद्धार्थ की रानी का नाम त्रिशला न बताकर प्रियकारिणी नाम बताया गया है ।।[1]

गर्भावतरण व कलिकाल

भगवान् महावीर के गर्भावतरण वर्षा ऋतु में आषाढ़ मास को शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि में बताया है ।।[2] इसके बाद गर्भावरतण के 6 माह पूर्व रत्नवृष्टि आदि अन्य क्रियाओं के सम्बन्ध में लेखक ने कोई संकेत नहीं किया है । चतुर्थ सर्ग की हिन्दी व्याख्या में कलिकाल के लक्षणों को व्यक्त किया है ।।[3] हालांकि मूल श्लोक में कलिकाल शब्द नहीं आया है । लेकिन हिन्दी और संस्कृत व्याख्या में उपमा के रूप में कलिकाल शब्द प्रयोग किया है । कलिकाल में प्रायः लोग मूर्ख होते हैं और पाप के कारण सन्मार्ग का लोप कर देते हैं । इस कलिकाल की विचित्रता है कि वर्षाकाल के समय मेंढकों के समान उछल-कूद करने वाले वक्ता दृष्टिगोचर होने लगते हैं । और यथार्थ वक्ता अल्पभाग में कभी-कभी कहीं-कहीं पर दृष्टिगोचर होते हैं।

जैसे वर्षा ऋतु में कोयल मौन धारण कर लेती है । उसी प्रकार कलिकाल में सज्जन लोग दोष रूपी कीचड़ को देखकर मौन धारण कर लेते हैं ।।[3] आगे इसी मार्ग में सोलह स्वप्नों की चर्चा रानी के मुख से न कहलवाकर रानी के द्वारा देखे गये स्वप्नों को राजा ने अपने निमित्त ज्ञान से जानकर स्वतः उनकी गणना एवं फल बतलाये हैं । इनके फलों के वर्णन में भी महापुराण, वर्धमान चरित आदि पुराणों से भिन्नता है । लगता है लेखक ने वर्तमान समय को दृष्टि में रखते हुए अपनी बुद्धि बल से युक्तियुक्त एवं दार्शनिक ढंग से प्रस्तुत किये ।।[4]

गर्भावतरण के इसी प्रसंग में रानी की प्रशंसा करते हुए राजा सिद्धार्थ कहते हैं तुम्हारी आज की चेष्टाएं आप्त मीमांसा के समान समीचीनता अर्थात भद्रता को लिए हुए निष्कलंक हो रही है जो निष्कलंक चेष्टाओं के धारी तीर्थंकर प्रभु के आगमन की ही प्रतीक हैं ।।[5] इसमें समंतभद्र की आप्त मीमांसा एवं अंकलक स्वामी के द्वारा आप्तमीमांसा के ऊपर अष्टशती के ग्रंथ को भी उपमा के रूप में प्रस्तुत किया है । इससे लगता है कि कवि को दार्शनिक आचार्य एवं दार्शनिक ग्रंथ बड़े प्रिय थे तभी तो राजा सिद्धार्थ के द्वारा अपनी प्रियकारिणी रानी के लिए प्रशंसा के रूप में उपमेय किये हैं । श्लेषरूप में देवियों द्वारा तीर्थंकरों की माता से जो प्रश्न प्रस्तुत किये वह भी लेखक ने वर्तमान आधुनिक शैली को ध्यान में रखते हुए किये गये है क्योंकि उन प्रश्नों में बीसवीं शताब्दी की ज्वलंत समस्याओं को अभिव्यक्त किया है और उनके उत्तर भी माता के द्वारा आधुनिक शैली में दिलवाये हैं, जिससे पाठक वर्तमान समस्याओं से निवृत्त हो सकें ।।[6]

देवियां

इसी प्रसंग में आगत देवियों के सम्बन्ध में बड़ी विचित्र बात प्रस्तुत की है कि जैसे ही वह देवियां माता की सेवा के लिए प्रस्तुत होती हैं तो प्रियकारिणी माता मुख में श्रीदेवी को धारण कर लेती है, नेत्रों में ही, मन में धृति, कुचों में कीर्ति, कार्य सम्पादन में बुद्धि, धर्मकार्य में लक्ष्मी को धारण कर उनकी सेवा स्वीकार करती है ।।[7]

यह प्रसंग विचारणीय है कि अंगों पर स्थापना करने का अर्थ क्या लिया जाय । छठें सर्ग में तीर्थंकर की माता का अलंकारिक वर्णन किया गया है ।

ऐरावत हाथी

ऐरावत हाथी का उल्लेख करते हुए एक विशेष आश्चर्यकारी बात उल्लेखित की कि ऐरावत हाथी के ऊपर सौधर्म इन्द्र भगवान् महावीर को अभिषेक हेतु पर्वत पर ले जा रहा था । वह ऐरावत हाथी जिस समय ज्योतिषमण्डल में से प्रवेश कर रहा था उस समय उसने सूर्य को कमल समझ कर अपनी सुण्डा में उठा लिया । उठाते ही सूर्य की उष्णता से वह त्रसित हो गया और उसे झिड़क दिया ।

यह दृश्य देवताओं के लिए हंसी का विषय बन गया ।।[8] लेकिन यह विषय जैनागम के अनुसार इष्ट प्रतीत नहीं होता हास्य अलंकार को ही मात्र प्रकट करता है क्योंकि जैन शास्त्रानुसार सूर्यमण्डल को कोई भी उठा नहीं सकता और न ही उसकी गति रोकी जा सकती है । दूसरी बात ऐरावत हाथी देवरूप एक विक्रिया होती है फिर उसे कमल समझ कर उठा लेना यह

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	3	15	2.	4	2	3.	4	6
4.	4	8	5.	4	34-60	6.	4	39
7.	5	28-34	8.	5	40			

भी विषय विचारणीय है और इसी प्रसंग में श्री जी को ऐरावत हाथी के सिर पर बैठाया गया है सो यह भी बाधक को हाथी के सिर पर बैठाना प्रशस्त कला नहीं मानी जा सकती । क्योंकि सिर पर तो महावत ही बैठता है, मुख्य अधिष्ठाता तो हाथी की पीठ पर सिंहासन आरूढ़ होता है ॥[1]

अभिषेक एवं नामकरण

अभिषेक के प्रसंग में लेखक ने बड़ी विचित्र बात अलंकारिक ढंग से प्रस्तुत की है कि क्षीर सागर वृद्ध हो जाने कारण से वह स्वयं अभिषेक को नहीं आ सका इसलिए देवता लोग मानों कलशों में अभिषेक के लिए क्षीरसागर को उठाकर लाये हैं ॥[2]

भगवान् के अभिषेक के महत्त्व के सम्बन्ध में कहा है कि जल के अभिषेक करने से भगवान् पवित्र नहीं होते बल्कि वह जल भगवान् का स्पर्श पाकर पवित्र हो जाता है ॥[3] और देखा भी जाता है कि जो जल मस्तक पर धारण करने योग्य नहीं था लेकिन प्रभु का स्पर्श करके वह जल आता है तो वही जल गन्धोदक का रूप लेकर भक्तों के द्वारा मस्तिष्क पर धारण कर लिया जाता है । अभिषेक के पूर्व जल स्वच्छ कहा जा सकता है पवित्र नहीं । अभिषेक के बाद ही जल पवित्र माना जाता है । यह श्लोक वर्तमान में तथाकथित विद्वानों के लिए शिक्षाप्रद है जो यह मानते हैं कि प्रतिमाओं का अभिषेक नहीं प्रक्षाल होना चाहिए और प्रक्षाल सफाई के लिए किया जाता है और सफाई के लिए जो काम में लिया जाता है वह गन्धोदक की संज्ञा न पाकर गन्दे जल की संज्ञा पा जाता है । पहली बात तो यह है कि प्रक्षाल शब्द जैन ग्रन्थों में नहीं मिलता है अभिषेक शब्द पाया जाता है ।

दूसरी बात प्रतिमा की सफाई हेतु अभिषेक नहीं किया जाता है क्योंकि स्वर्गों में अकृत्रिम प्रतिमाओं का अभिषेक भी देवताओं द्वारा किया जाता है यहां विचारणीय बात है कि स्वर्गों में कौनसी धूल से प्रतिमाएं गन्दी होती है जो अभिषेक आवश्यक बताया गया है । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कवि ने स्पष्ट कर दिया कि भगवान् का अभिषेक जल में पवित्रता लाने के लिए और जल की पवित्रता से अपने जीवन को पवित्र बनाने के लिए अभिषेक की क्रिया की जाती है । इसी अभिषेक के प्रसंग में सहसा शब्द का हिन्दी व्याख्या में इस प्रकार अर्थ निकाला गया कि भगवान् के ऊपर 1008 कलश एक साथ ढोले गये थे ॥[4]

यहां यह बात विचारणीय है कि 1008 कलश एक साथ ढोले गये थे या क्रम से एक के बाद एक ढोले गये थे। हालांकि मूल में भी एक साथ का भाव निकलता है, क्योंकि कहा है कि इन्द्र 1008 भुजाओं से अभिषेक किया ।

इस प्रकार सौधर्म इन्द्र वर्द्धमान बालक का अभिषेक करके कुण्डनपुर लाकर राजा सिद्धार्थ को सौंपता है, उस समय राजा सिद्धार्थ बालक का नामकरण वर्द्धमान करते हैं । कहीं-कहीं अन्य शास्त्रों में भगवान् का नामकरण सौधर्म इन्द्र करता है। ऐसा उल्लेख मिलता है ॥[5]

कुबेर

आठवें सर्ग में कुबेर के लिए देवेन्द्र का कोषाध्यक्ष कहां है ।

युवावस्था एवं विवाह अवस्था

इसी सर्ग में कहा है कि महावीर की युवावस्था देखकर राजा सिद्धार्थ ने महावीर के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा इस विवाह के प्रस्ताव को महावीर ने बड़े तर्क पूर्ण उत्तर देकर अस्वीकार कर दिया ॥[6]

इसी प्रसंग में एक विशेष बात कही है जो विचारणीय है कि भगवान् महावीर विवाह प्रस्ताव ठुकराते हुए कहते हैं कि मैं अकेला ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण नहीं कर रहा हूँ । बल्कि मुझसे पूर्व पार्श्वनाथ, ब्राह्मीसुन्दरी एवं भीष्म पितामह भी बाल ब्रह्मचारी हुए हैं ॥[7]

इन आदर्श पुरुषों का नाम तीर्थंकर द्वारा स्मरण कराना एक विशेष बात है क्योंकि तीर्थंकर किसी आदर्श पुरुष का नाम स्मरण कर अनुकरण नहीं करते ।

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	7	16	2.	7	23	3.	7	29
4.	7	30	5.	8	6	6.	8	22-52
7.	8	39-41						

महावीर का आत्म चिन्तन एवं वैराग्य

विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए महावीर आत्म चिन्तन करते हैं जिसमें मुख्य रूप से इस जगत् में व्याप्त मूढ़ताओं पर विचार करते हैं कि जगदम्बा बकरे की बलि से प्रसन्न होती है ऐसा धूर्त लोग कहते हैं । इस पर महावीर विचारते हैं कि ये जगदम्बा को तो ये लोग जगत् की मां मानते है, तो बकरा जगत् का प्राणी होने के कारण जगदम्बा का बेटा हुआ और जब मां ही पुत्र का खून पीने लग जाए तो समझ लेना चाहिए कि रात्रि में सूर्य का उदय होना सम्भव है ।[1]

इस प्रकार पंच पापों से इस पृथ्वी को वेष्टित देखकर महावीर संविग्न एवं विरक्त हो जाते हैं । आगे दसवें सर्ग में दीक्षा के प्रसंगों को प्रासंगिक किया गया है जिसमें एक विशेष बात कही गई है कि दीक्षा के बाद देव प्रभु के जीवन में अनेक रोमांचकारी दर्दनाक घटनाएं घटी है ।[2] मात्र इतना ही कहकर छोड़ दिया । उन घटनाओं या उसर्गों का वर्णन लेखक ने नहीं किया ।

तपस्या पूर्वभवों का वर्णन

दीक्षा के बाद भगवान् महावीर अवधिज्ञान से अपने पूर्व का भव जानते हैं और उन्हीं के सबंध में चिन्तन करने लग जाते हैं ।[3] यह बात विशेष विचारणीय है क्योंकि अन्य शास्त्रों में दीक्षा के बाद मात्र आत्म चिन्तन करते हैं न कि अपने पूर्व भवों का स्मरण करते हैं ।

आगे तपस्या का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि भगवान् एक मास, दो मास, तीन मास, चार मास, छह मास का उपवास करते थे ।[4]

ऐसे मासों उपवास करने का वर्णन श्वेताम्बर ग्रन्थों में ही मिलता है, दिगम्बर ग्रंथों में नहीं । दिगम्बर ग्रन्थों में तो मात्र तीर्थंकर की दीक्षा के बाद ही पारणा का उल्लेख मिलता है ।

केवलज्ञान एवं इन्द्रभूति समर्पण

12 वर्ष के बाद भगवान् महावीर को केवल ज्ञान हुआ उसके बाद प्रभामण्डल का उल्लेख करते हुए हिन्दी व्याख्या में प्रभा मण्डल का अर्थ मुख मण्डल का तेज लिया है ।[5] जिसमें देखने वालों के भवभवान्तर दृष्टिगोचर होते हैं । लेकिन सुनने में तो यह आया है कि भगवान् के सिर के पीछे भामण्डल रहता है, उसमें भवभवान्तर दिखते हैं ।

भगवान् को केवलज्ञान होने के बाद समवशरण की विभूति एवं वैभव के सबंध में लोगों द्वारा प्रशंसा सुनकर इन्द्रभूति विचार करता है कि मैं इतना बड़ा ज्ञानी वेद वेदांगों को जानने वाला हूं फिर भी मुझे आज तक इस प्रकार वेदांगों की विभूति प्राप्त नहीं हुई । ऐसा विचार करता हुआ सोचता है कि चलो मैं स्वयं उस विभूति प्राप्त करने के कारणों को देखता हूँ और वह स्वयं ही समवशरण की ओर चल देता है ।[6]

वीरोदय महाकाव्य का यह विषय विद्वानों के लिए विशेष विचारणीय है कि क्योंकि दिगम्बर परम्परा में अन्य शास्त्रकारों ने भगवान् महावीर को केवलज्ञान हो जाने के बाद 66 दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी तब इन्द्र ने विप्र का भेष बनाकर पांच अस्तिकाय छःद्रव्य, साततत्व आदि सम्बन्धी प्रश्न को लेकर इन्द्रभूति के आश्रय में जाता है और विनय पूर्वक इन्द्रभूति से यह प्रश्न पूछते हुए कहता है कि आप मेरे गुरु के इस प्रश्न का उत्तर दीजिए, तब इन्द्रभूति उत्तर देने में असमर्थ होने के कारण अहंकारपूर्वक इस प्रश्न का उत्तर तुम्हारे गुरू को ही दूंगा ।

इस प्रकार इन्द्र द्वारा इन्द्रभूति को समवशरण में लाया गया था । लेकिन लेखक ने 66 दिन तक दिव्य ध्वनि नहीं खिरने का उल्लेख नहीं किया है और न ही इन्द्र द्वारा इन्द्रभूति को लाने के प्रसंग का उल्लेख किया है । इन्द्रभूति के समवशरण पर स्वतः आने पर जैसे ही इन्द्रभूति ने समवशरण की विभूति को देखा । आश्चर्यकित रह गया और अपने ज्ञान को मिथ्याज्ञान विचारता हुआ सम्यग्ज्ञान की ओर स्वतः प्रभावित होने लगा । भगवान् से कहता है कि हे भगवान् मुझे सद्ज्ञान देने की दया करो । ऐसा कहते हुए इन्द्रभूति भगवान् के चरणों में गिर पड़ा ।[7]

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	9	3	2.	10	35	3.	1	-
4.	12	37	5.	13	21	6.	13	25-27
7.	13	32						

यह विषय भी अन्य शास्त्रों से हटकर प्रस्तुत किया गया है जो विचारणीय है क्योंकि अन्य शास्त्रों में तो इन्द्रभूति गौतम मानस्तम्भ को देखते ही अहंकार से रहित और मिथ्यात्व से रहित हो गया था । लेखक ने यहां इन्द्रभूति को भगवान् के चरणों में गिरना बताया है सो यह बात भी अन्य शास्त्रों में नहीं मिलती है । अन्य दिगम्बर शास्त्रों में इस प्रकार कहा है कि इन्द्रभूति समवशरण में पहुँचते ही दीक्षा ग्रहण करता है बाद में भगवान् महावीर का उपदेश होता है । लेकिन लेखक ने भगवान् के उपदेश के बाद गौतम को दीक्षा का प्रसंग बताया है ।

अन्य गणधर

चौदहवें स्वर्ग में "गणधरों का वर्णन जन्म स्थान उनके माता-पिता आदि का वर्णन संक्षेप में बड़े अच्छे ढंग से किया है ।।[1]

महावीर की परम्परा में दीक्षित राजाओं का काल

भगवान् महावीर स्वामी के केवलज्ञान के बाद और निर्वाण के बाद अनेक राजाओं ने दीक्षा ली । जिनमें मुख्य निम्न प्रकार है -

राजाश्रेणिक, दधिवाहन नाम का राजा, पद्मावती रानी, वैशाली नरेश, चेटक, काशी नरेश शंख, हस्तिनापुर के महाराज, शिव कोटि वर्ष देश के स्वामी चिलाति, दशार्ण देश के नरेश, वीतमयपुर का नरेश उद्दायन व उनकी रानी प्रभावती, कौशाम्बी नरेश मतानिक और उसकी रानी पद्मावती, उज्जयिनीका राजा प्रद्योत रानी शिवादेवी, जीवन्धर स्वामी, अर्हद्दास के पुत्र जम्बुकुमार, विद्युच्चोर आदि 500 साथी, सूर्यवंशी राजा दशरथ, रानी सुप्रभा, (यहां सूर्यवंशी राजा दशरथ राम के पिता नहीं लेना क्योंकि राम के पिता तो मुनि सुव्रतनाथ के समय में हुए) प्रसन्नजित राजा मल्लिका देवी, दार्फवाहन नरेश की रानी अभय देवी, उष्ट्र देश के नरेश यम, रानी धनवती । इस प्रकार भगवान् महावीर के समय से लेकर एक हजार वर्ष तक राजाओं द्वारा जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है ।।[2] उसके बाद भी कुछ अन्य राजाओं व रानियों को जैन धर्म अंगीकार करने की बात की है जैसे कलिंग नरेश खारवेल महारानी सिंहयशा देवी, इक्ष्वाकुवंशी राजा पद्म की पत्नी धनवती, चन्द्रगुप्त मौर्य उनकी रानी सुषमादेवी, मैसूर नरेश एवं उनकी राज पत्नियां पल्लव नरेश की पुत्री एवं मरुवर्मा प्रदेश के राजा की रानी कदाब्बी, निर्गुन्द देश के राजा परेलूर एवं उनकी रानी ने लोक तिलक नामका जिनालय बनवाया था ।

नागार्जुन की पत्नी जाकियव्वे जो शुभचन्द सिद्धान्त देव की शिष्या थी, चामुण्डराय, एवं उनकी पत्नी और माता जो नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के सेवक थे, वीर बल्लाल, अचल देवी, कदम्बराज कीर्ति देव की भार्या मालला पद्मनन्दि देव की उपासिका थी, पल्लव राज काडुवेदी की चट्टला नाम की रानी परम साधु भक्त थी उसने एक जिन मंदिर भी बनवाया, गंगहेमाण्डि की रानी पट्टदहादेवी मारइसंगटय की पत्नी माचिकव्वे । विष्णु वर्धन राजा की रानी शांतलादेवी प्रभाचन्द सिद्धान्त देव की शिष्या बनी, शान्तला देवी की पुत्री हरियब्बरसी जिन्होंने विक्रम की 12 वीं शताब्दी में एक जिनालय बनाया जिसका शिखर मणिमाणिक्य से सुशोभित था, जयमणि, सैनापति गंगराज और उनकी पत्नी लक्ष्मीमति, चौहान वंसी कीर्तिपाल एवं रानी महीबला, परमारवंशी राजा धरावंश की रानी शृंगार देवी, इस प्रकार से अनेक राजवंशों द्वारा जैन धर्म का प्रचार प्रसार होता रहा ।[3]

शाकाहार

सोलहवें सर्ग में लेखक ने मानव मात्र के लिए नीतिप्रद शिक्षा देते हुए शाकाहार एवं मांसाहार के गुण दोषों का वर्णन किया है । इसी प्रसंग को प्रासंगिक करते हुए कवि ने शाकाहार के समर्थन में मांसाहार की कुतर्कणाओं का उत्तर तर्क बुद्धि से दिया है । मांसाहारी लोग कहते हैं कि उसी घास से मांस बनता है उसी घास से दूध, तो फिर शाकाहारी लोग मांस छोड़कर दूध क्यों पीते हैं और जब दूध पीते हैं तो मांस खाने में क्या बाधा है ? इसके उत्तर में लेखक ने बड़ा अच्छा समाधान किया है कि जिस घास से मांस बनता है उसी घास से तो गोबर भी बनता है फिर मांसाहारी लोग मांस मात्र क्यों खाते हैं गोबर भी क्यों नहीं खाते । इससे ज्ञात होता है कि प्राणिजनित वस्तुओं में जो पवित्र होती है वह ग्राह्य है अपवित्र नहीं । अत: शाकपत्र और दूध ग्राह्य है, मांस और गोबर आदि ग्राह्य नहीं है ।।[4]

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	14	2-12	2.	15	30	3.	15	-
4.	16	23						

महावीर का संदेश

सत्रहवें सर्ग में महावीर के नैतिक संदेशों का वर्णन किया गया है ।

षट्काल

भरत क्षेत्र के षट्कालों का वर्णन करते हुए दूसरे काल को सतयुग नाम से एवं तीसरे काल को त्रेतायुग नाम से प्रासंगिक किया है सो यह नाम संज्ञा वैष्णव सम्प्रदाय में मिलती है । जैन शास्त्रों में यह नामावली दृष्टिगोचर नहीं होती ।।[1]

चतुर्थ वर्ण

चतुर्थ वर्ण के सम्बन्ध में लेखक ने कहा है कि ऋषभदेव के सौ पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती ने अपनी प्रजा में से धर्मामृत पान करने वाले लोगों में यज्ञोपवीत सूत से चिह्नित कर ब्राह्मण संज्ञा प्रदान की यद्यपि यह कार्य ऋषभदेव की दृष्टि से ठीक नहीं था किन्तु भरत चक्रवर्ती ने प्रमाद के वशीभूत होकर यह कार्य किया ।।[2]

इस वर्ण की स्थापना के बाद भगवान् शीतलनाथ के समय तक ब्राह्मण वर्ण धार्मिक कर्त्तव्यों का निर्वाह करता रहा। उसके बाद इस वर्ग ने अप्रशस्त हिंसात्मक प्रथाओं को स्वीकार कर मनमाने हिंसात्मक क्रिया काण्डों का प्रचार प्रसार प्रारम्भ कर दिया ।।[3]

इसी सर्ग में मुनिसुव्रतनाथ भगवान् के समय इसी वर्ण के धारी लोगों में पर्वत नाम का व्यक्ति हुआ जिसे अज का अर्थ बकरा करके यज्ञों में बकरे की आहुति देना शुरू कर दिया ।।[4]

इस प्रकार से हिंसात्मक यज्ञाहुतियां इस चतुर्थ वर्ग द्वारा दी जाने लगी ।

दयानन्द सरस्वती

वेद मंत्रों के अर्थ ब्राह्मण द्वारा हिंसापरक निकालने वाली परम्पराओं को दयानन्द सरस्वती ने गलत बताकर उन वेद मंत्रों के अर्थ अहिंसा परक निकालकर जीवों के ऊपर महान उपकार किया ।।[5]

सापेक्षवाद

सापेक्षवाद कथन का उल्लेख करते हुए लेखक ने कहा है कि दूध की प्रकृति भिन्न होती है जो आम शक्ति को बढ़ाती है लेकिन वही दूध दही बन जाने पर भिन्न प्रकृति को लेकर आम को नष्ट करता है । विष्टा मनुष्य के लिए अभक्ष्य और हेय होता है किन्तु वही सुअर के लिए भक्ष्य और उपादेय होता है । इससे सिद्ध होता है कि दुनियाँ में एक ही वस्तु सत् भी है और असत् भी है भिन्न भिन्न अपेक्षा से । जैसे एक लकीर (रेखा) न छोटी है न बड़ी है लेकिन उसी के नीचे एक दूसरी रेखा खींच देने पर छोटी बड़ी हो जाती है ।।[6]

स्याद्वाद अन्य मतावलम्बियों की दृष्टि में

भगवान् महावीर के स्याद्वाद कथन को पतंजलि महर्षि ने भी अपने भाष्य में स्वीकार किया है तथा मीमांसक अनुयायी कुमारिल भट्ट ने स्याद्वाद को ग्रहण किया है इस कथन से लगता है कि आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने अन्य शास्त्रों का भी अध्ययन किया था ।।[7]

सचित्ताचित्त अग्नि

अग्नि का विवरण देते हुए कहा है कि काष्ठ, कोयला, बिजली, दीपक आदि की तो लौ सचित्त अग्नि है और जो अग्नि भोज्य पदार्थों में प्रवेश हो जाती है वह अचित्त अग्नि है । अचित्त अग्नि का उपयोग मुतपस्वी जनों को करना चाहिए ।।[8] अचित्त यह प्रसंग विचारणीय है कि सुतपस्वी जन अचित्त अग्नि का प्रयोग कैसे करेगें और अचित्त अग्नि के जो लक्षण बतलाये हैं ऐसा अक्षण अन्य कहीं शास्त्रों में दृष्टिगोचर नहीं हुआ ।

इसी उन्नीसवें सर्ग में स्याद्वाद अनेकान्त एवं छःद्रव्य आदि का दार्शनिक ढंग से वर्णन किया गया है ।

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	18	9-10	2.	18	46-47	3	18	48
4.	18	49	5.	18	57	6.	19	-
7.	19	17	8.	19	30			

सर्वज्ञ सिद्धि

सर्वज्ञ सिद्धि करते हुए कवि ने कहा है कि जब छद्मस्थ व्यक्ति भी अपने स्मृतिज्ञान के माध्यम से कुछ-कुछ त्रिकाल विषयों को जान लेता है तो फिर केवली भगवान् को जानने में क्या बाधा है । आगे कहा है कि बाह्यसाधन के अभाव में केवली भगवान् कैसे जान सकते हैं तो लेखक ने कहा है कि प्रकाश आदि बाह्य साधनों के बिना बिल्ली और उल्लू आदि पदार्थ देख लेते हैं । फिर केवली भगवान् को बाह्य साधनों के बिना देखने में क्या बाधा है ॥[1]

काल दोष (पंचम काल)

लेखक ने काल दोष की महिमा बताते हुए कहा है कि वीर प्रभु का निर्दोष और विज्ञान संतुलित जिनधर्म का उपदेश जगत् के प्राणियों के लिए हितकारी था लेकिन महावीर के अनुयायियों ने बुद्धि की अल्पता एवं विस्मरण शीलता के कारण अन्यथा रूप से प्रचारित कर दिया । यह कलिकाल की विशेषता है ॥[2] और इसी प्रसंग में यह बात भी उल्लेखित की है कि भद्रबाहुस्वामी तक जैन धर्म की परम्परा एकरूप रही उसके बाद दिगम्बर और श्वेताम्बर दो धाराओं में विभक्त हो गयी ॥[3]

श्रुत केवली भद्रबाहु के समय 12 वर्ष के अकाल का उल्लेख करते हुए कवि ने कहा है कि भद्रबाहु स्वामी तो दक्षिण चले गये लेकिन स्थूलभद्र आदि मुनि उस दुर्भिक्ष के प्रभाव के कारण पतित हो गये और वीर वाणी को मनगढ़ंत अर्थ प्रकट कर संगृहीत कर लिया जो लोग भद्रबाहु के यथार्थ अभिप्राय जानते थे उन लोगों ने स्थूलभद्र के द्वारा संग्रहीत वचनों को सदोष बताते हुए संशोधित करने को कहा लेकिन स्थूलभद्र ने संशोधित नहीं किया और दिगम्बर वेष को छोड़कर वस्त्र अंगीकार करते हुए भी अपने आप को मुनि मानने लगे । इसी शिथिलाचार का समर्थन करते हुए स्थूलभद्र के 500 वर्ष के बाद देवर्धिगणी ने द्वादशांग के नामों को लेकर बारह शास्त्र रचकर स्थूलभद्र की धारणा का समर्थन कर दिया ॥[4]

दिगम्बरों ने भी भद्रबाहु स्वामी के बाद महावीर के मार्ग पर स्थिर रहने का भरपूर प्रयास किया लेकिन कालदोष के कारण एवं श्वेताम्बरीय परम्परा की शिथिलता की निकटता के कारण तथा हीन शक्ति के कारण दिगम्बर साधु भी जंगलों को छोड़कर नगरों में रहने लगे यह कलिकाल की महिमा है । इस बात को आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने स्पष्ट किया है कि दिगम्बर साधुओं में जो हीनता आयी यह मजबूरी के कारण आई ॥[5]

चन्द्रगुप्त

चन्द्रगुप्त का उल्लेख 22 वें सर्ग के 12 वें श्लोकों में करते हुए जैन धर्म का अनुयायी बताया और उसके पुत्र बिन्दुसार, तत्पुत्र, अशोक, तत्पुत्र सम्प्रति, आदि शेष राजाओं के काल तक अहिंसा धर्म की प्रधानता बनी रही । उसके बाद राजा एवं प्रजा में भिन्न-भिन्न मतावलम्बी हो गये और यज्ञों में पशु पति तथा नर बलि तक को भी स्थान मिलने लगा ॥[6]

विक्रमादित्य

जैन वैदिक परम्पराओं का परिवर्तन इस प्रकार की हिंसात्मक यज्ञाहुति एवं सम्प्रदाय विद्वेषता को देखकर समन्वय बैठा। इस समन्वय पद्धति में जैन की अहिंसात्मक प्रवृत्ति को वैष्णवों ने अंगीकार कर यज्ञों में पशु बलि देना बंद कर दिया । दिगम्बरों में यज्ञ आदिक व्यंतर देवी-देवताओं की पूजन का संस्कार वैदिक परम्पराओं से आ गया । लेखक का मानना है कि देवी-देवताओं की पूजा वैदिक परम्परा से है । इस प्रकार की आदान-प्रदान की पद्धति में जैन धर्म एक जाति प्रधान धर्म बन गया ॥[7] और गृहस्थों और मुनियों में गणगच्छ आदि प्रकट हो गये और अहंकार के वशीभूत होकर एक दूसरे की आम्नायों को ग्लानि भाव से देखने लगे । बाह्य आडम्बरों के कारण आंतरिक धर्म वस्तु को भूल गये । कितने गृहस्थ प्रतिमा पूजा का निषेध करने लगे और कितने ही लोग मुनियों को मूर्तिपूजन आवश्यक बताने लगे ।

कितने लोग वीतरागी प्रतिमाओं को वस्त्रादिक पहनाना आवश्यक मानने लगे । कितने ही लोग मूर्ति आदि का अभिषेक करना अनावश्यक बतलाने लगे ॥[8]

कई लोग अग्नि से सीझे बिना ही पत्र को अचित्त मानने लगे । कई लोग साधु के अलावा किसी की जीवन की रक्षा करना पाप है ऐसा बतलाने लगे । इन सब बातों पर लेखक ने खेद प्रकट करते हुए कहा कि यह कलिकाल का ही प्रताप है ॥[9]

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	20	15-21	2.	22	1	3.	22	3
4.	22	6	5.	22	8-9	6.	22	12
7.	22	15 17	8	22	22			

जैन धर्म क्षत्रियों का है

लेखक ने जैन धर्म के स्वामी का वर्णन करते हुए कहा है कि यह जैन धर्म क्षत्रियों के द्वारा धारण करने योग्य है लेकिन इस कलिकाल में यह जैन धर्म व्यापार करने वाले वैश्यों के हाथ में पहुंच गया है इसलिए धर्म में भी वणिकवृत्ति आ गयी है। वणिक् वृत्ति की स्थिति बताते हुए कहा है कि अपनी-अपनी जुदी दुकान लगाना और चलाना ही जिनका मुख्य कार्य है ऐसी स्थिति में धर्म में गणगच्छ पंथ आदि भेद पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥[1]

पंचम काल में भी धर्म

उपरोक्त बातों की हीनता बताते हुए कवि ने कहा है कि अपनी विपरीतताओं के बावजूद भी भगवान् महावीर के सच्चे अनुयायी आज भी पाये जाते हैं जो जितेन्द्रिय है जिनका जीवन दूसरों के लिए दुखदायी नहीं है बल्कि सबका कल्याण करने वाला है ॥[2]

इस प्रकार से आज पंचमकाल में भी धर्म और धर्मात्माओं को अस्तित्व भी लेखक ने सिद्ध किया है।

ग्रन्थकार की भावना

इस ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए लेखक ने लिखा है कि मेरा यह ग्रंथ मृदुता रहित, कटुता पूर्व होने से सौम्यता का उल्लंघन तो कर रहा है लेकिन संतोषजनक सूर्य भी कमल को प्रफुल्लित करने का कारण बनता है। उसी प्रकार यह ग्रंथ सज्जन लोगों को प्रफुल्लित करने में कारण बनेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं तो रसोइया के समान वस्तु का निर्माता हूँ। स्वाद कैसा है, यह तो खाने वाले पाठक ही निर्णय करेगें ॥[3]

लेखक ने यह भावना भाई है कि मेरा यह मन अहंकार रहित होकर अरिहंत एवं मुनियों को नमस्कार करता रहे। इस लेख में लेखक ने अपनी साधु भक्ति प्रकट की है ॥[4] शासक लोग प्रजा को उपद्रवों से रहित करते रहे। समय पर वृष्टि हो, विद्वानों का मन सदा काव्य पढ़ने में लगा रहे, जैन धर्म का सर्वत्र प्रचार-प्रसार हो, वीरोदय की नीतियां प्राणी मात्र के लिए कल्याणकारी हो ॥[5]

इस प्रकार से अंत में सर्गानुसार अपना परिचय देते हुए इस महाकाव्य को पूर्ण किया।

परम् पूज्य मुनि 108 श्री सुधासागरजी महाराज

॥ महावीर भगवान की जय ॥

क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक	क्रमांक	सर्ग	श्लोक
1.	22	26, 27	2.	22	28	3.	22	32, 34
4.	22	38-39	5.	22	41			

वीरोदय महाकाव्य में भगवान् महावीर के पूर्व भव

क्षुल्लक श्री गंभीरसागरजी महाराज

वीरोदय महाकाव्य एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें साहित्य की छटा तो है ही, साथ ही साथ काव्य नायक के अतीत अनागत भवों का वर्णन भी किया गया है। इस वर्णन में पुर्नजन्म की भवितव्यता तो प्रगट होती ही है, साथ ही साथ एक ही जीव आत्मा अनेक शुभ-अशुभ पर्यायों में भटकती रहती है । महादारुण दुख को एवम् महा-महा पापों को करने के बावजूद भी अपनी भवितव्य रूप उपादान रुपी योग्यता नष्ट नहीं हो पाती । अनेक मिथ्याचार, एवं पापाचार करने के बावजूद भी जीवात्मा को संभलने का मौका दिया जाता है . जैन दर्शन का मूल सिद्धान्त है कि "घृणा पाप से करो पापी से नहीं" यह सूत्र पूर्णतया भगवान् महावीर के अतीत भवों में घटित होता है कि भगवान ने अपने अतीत भवों में कैसे-कैसे मिथ्याचरण किये उसके बावजूद भी जब उपादान में जागृति आयी तो जैन दर्शन ने महावीर की आत्मा को परमोत्कर्ष पद को प्राप्त करा दिया। वीरोदय महाकाव्यकार ने अपने नामक को काव्य की विधा के अनुसार महावीर के पूर्व भवों का वर्णन भगवान् महावीर की दीक्षा लेने के बाद वीर प्रभु द्वारा अपने ही अवधिज्ञान के माध्यम से जानकर चिन्तन की धारा में वर्णन किया है ।

भगवान् के अतीत भवों का वर्णन लेखक ने निम्न प्रकार से किया है-हे विद्वज्जनो सुनो, भगवान् ने सिंहावलोकन करते हुये एक क्षण मात्र में अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्तों को जान लिया[1] सबसे पहले भगवान् ने अवसपिर्णी काल में भोग भूमि काल को स्वभावगत परिणतियों को जाना उस उपरान्त लेखक ने 14 कुलकरों में अन्तिम कुलकर नाभिराय का वर्णन करते हुये उनके पुत्र ऋषभ देव को षटकर्मों का विधानकर्ता बताया । इसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुये लेखक लिखते हैं कि ऋषभदेव ने दीक्षा ली उसके साथ हजारों परिव्राजक मारिच सहित बने ।[2] यह मारिच ऋषभदेव का पौत्र था और इस मारिच ने कपि यानि वानर जैसी चंचलता से मत चलाया सो आगे जाकर यह कपिल मत बन गया। वहाँ से मरण कर मारिच स्वर्ग गया । वहाँ से आकर ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर निस्सार वाली परिव्राजकता को धारण कर मिथ्या दृष्टि होता हुआ कुमत का प्रचारक बन गया । इस प्रकार मिथ्या आचरण करता हुआ नाना प्रकार की कुयोनियों में परिभ्रमण करके शाण्डिल्य ब्राह्मण और पारासरीका स्त्री के स्थावर नामका पुत्र हुआ[3]

यहाँ पर अन्य शास्त्रों में स्थावर ब्राह्मण की पर्याय के पूर्व अन्य भवों के वर्णन भी मिलते हैं । लेकिन लगता है कि लेखक ने महाकाव्यता को ध्यान में रखकर इन भवों के वर्णन को गौण कर दिया । स्थावर ब्राह्मण दीक्षा लेकर मरण प्राप्त कर माहेन्द्र स्वर्ग गया। पुन: वहाँ से च्युत होकर अपवित्र जगत् में परिभ्रमण करते हुये राजगृह नगर में विश्वभूति ब्राह्मण और उसकी जैनी नाम की स्त्री के विश्वनंदी नाम का पुत्र हुआ[4]

विश्वभूति के भाई विशाखाभूति का पुन:भी विशाखानंदी था। वह पिता के द्वारा विश्वनंदी को दिये गये नन्दनवन था उसे चाहता था। विशाखाभूति राजा ने रण के बहाने विश्वनंदी को बाहर भेज दिया व अपने पुत्र को वह वन दे दिया। जब विश्वनंदी युद्ध से वापस आया और सर्व वृत्तान्त को जाना तो विरक्त होकर जिन दीक्षा धारण कर ली। राजा विशाखाभूति भी दिगम्बर साधु बन गया और तपश्चरण कर महाशुक्ल नाम के स्वर्ग में देव हो गया। विश्वनंदी मुनिमहाराज जब मथुरा नगरी में चर्या के लिए गया। उस समय विशाखानंदी जो चचेरा भाई था उसने विश्वनंदी मुनिराज का अपमान किया परिणाम स्वरुप विश्वनंदी महाराज को रोष आ गया और उन्होने ऐसा निदान किया कि रे विशाखानंदी मैं पर भव में तुझे मारूँगा, इस प्रकार मुनिराज निदानकर महाशुक्र नामक विमान (स्वर्ग) में देव हुये[5]

विशाखाभूति का जीव स्वर्ग से च्युत होकर पोदनपुर में प्रजापति राजा के जयारानी के गर्भ में विजय नाम का पुत्र हुआ और महावीर का जीव जो विश्वनंदी था, वह राजा को दूसरी रानी मृगावती से त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ और ये दोनों बलभद्र व नारायण के नाम से प्रसिद्ध हुये[6]

और वह विशाखानंदी का जीव जिसने विश्वनंदी मुनिराज का अपमान किया था वह संसार में भ्रमण करता हुआ अलकापुरी में मयूर राजा और नीलयशा माता के गर्भ में अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ । वह अश्वग्रीव प्रतिनारायण नाम से प्रसिद्ध हुआ । पूर्व भव के निदानानुसार महावीर का जीव अर्थात् विश्वनंदी जो मरकर त्रिपृष्ट नारायण हुआ, उसने अश्वग्रीव प्रतिनारायण को तलवार के द्वारा मार दिया और वह मरकर रौरव नरक को प्राप्त हुआ और विश्वनंदी का जीव भी निदान के परिणामस्वरुप नरक गया[7] वहाँ से महावीर का जीव निकलकर सिंह हुआ व फिर मरकर प्रथम नरक गया फिर वहां से निकलकर सिंह हुआ उस सिंह भव में महावीर के जीव ने किसी पवित्र मुनिराज का उपदेश सुना ।[8]

1. 11-1 2. 11-7 3. 11-8,9,10 4. 11, 11
5. 11-16 6. 11-17 7. 11-19 8. 11-20

उपदेश में मुनिराज बोले कि हे भव्य तू, पुरुरवा भील की पर्याय में तूँ उत्तम धर्म को धारण करने के परिणामस्वरूप आदिश्वर ऋषभदेव का पौत्र हुआ, वहाँ तूँने मारिच नाम पाया और उसी पर्याय में तूने मिथ्याचरण करके सद्धर्म का लोप किया, किन्तु हे उदार अब तूँ विषाद को प्राप्त मत हो तू बहुत शीघ्र ही विशुद्धि के सार को प्राप्त होगा । जो चलता हुआ गिरता है, वही सज्जन शिरोमणि स्वयं उठकर चलने लगता है ।

यहाँ पर लेखक ने यह बात कहकर दुनियाँ को सम्बोधित किया है, अतीत के इतिहास को भूलकर भविष्य को उज्ज्वल करो[1] वह सिंह साधु के वचन सुनकर जातिस्मरण को प्राप्त हुआ और अपने आँसुओं से योगेन्द्र के चरण कमलों को सींचता हुआ हिंसा का परित्याग कर देता है और उसी वन में सन्यास पूर्वक मरण को प्राप्त हो जाता है।[2] और दो सागर की आयुवाले देवों में उत्पन्न हो जाता है । तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर धातकी खण्ड के पूर्व विदेह में मंगलावती देश में कनकपुर के राजा कनक एवं रानी कनकमाल के यहाँ जन्म लेता है ।[3]

और वहाँ से श्रावक एवं मुनि धर्म का पालन कर सन्यास पूर्वक मरण करके 13 सागर आयुवाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर साकेत नगरी ने व्रजसेन और शीलवती रानी के हरिषेण नाम के पुत्र के रुप में जन्म हुआ । वहां श्रावक धर्म के अनुसार तीनों संध्या कालों में अपने धार्मिक कर्तव्यों को करता था एवं पर्व के दिनों में उपवास करता था । उत्तम पात्रों को आहारदान देता था, तथा आचार्य शिरोमणि श्रुत सागर महाराज के पास दिगम्बरी दीक्षा ले लेता है और तप के प्रभाव से मरण कर महाशुक्र मान के स्वर्ग में जन्म ले लेता है।[4]

वहाँ से च्युत होकर धातकी खण्ड के ही पूर्व विदेह के पुष्कल देश में पुण्डरीकणीपुरी के सुमित्र राजा एवं सुव्रता रानी के पुत्र के रूप में जन्म लिया और उसका नाम प्रियमित्र पड़ा। और यही प्रियमित्र बुद्धखण्ड का अधिपति चक्रवर्ती पद को प्राप्त हुआ और बाद में मुनि दीक्षा लेकर सहस्रारस्वर्ग में जन्म लिया। वहाँ से च्युत होकर धातकी खण्ड के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कल देश में छत्रपुरी के राजा अभिनन्दन और रानी वीरमति के नन्द नाम से पुत्र बनकर उत्पन्न हुआ । पुनः दीक्षा धारण कर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर मरण को प्राप्त हुआ और अच्युत स्वर्ग में इन्द्र पद को प्राप्त हुआ ।[5] यहाँ पर तीर्थंकर प्रकृति का बंध इस भगवान् महावीर के जीव ने किसके सान्निध्य में किया इसका वर्णन नहीं है । और अच्युतस्वर्ग की आयु पूर्ण कर प्रियकारिणी के गर्भ में तीर्थंकर महावीर के रूप में जन्म हुआ ।

इस प्रकार से वीरोदय महाकाव्य में अपने नायक के मुख्य-मुख्य पूर्व भवों का वर्णन यहाँ लेखक ने किया है उन भवों का विस्तार से वर्णन महावीर के ऊपर लिखे गये पौराणिक ग्रन्थों से उपलब्ध हो सकता है । महाकाव्य की महिमा को ध्यान में रखते हुए इन भवों का विस्तृत वर्णन नहीं किया लेकिन पूर्वभवों का वर्णन करके लेखक ने दुनियां के सामने यह बात प्रकट कर दी कि अनादि - निधन कोई भगवान् नहीं है बल्कि इन्हीं संसारी प्राणियों में बार-बार पुनर्जन्म करते-करते अपनी उपादान शक्ति को विशुद्ध बनाकर भगवत पद को प्राप्त कर लेते हैं । महावीर के अतीत के भवों से ज्ञात होता है कि व्यक्ति अपने ऐतिहासिक भवों में कैसे कैसे विभिन्न नाटक इस पृथ्वी पर खेलता है, जिन नाटकों को देखकर आश्चर्य होता है।

भगवान् महावीर की आत्मा ने पूर्व भव में 363 मिथ्या मतों की स्थापना करने के बावजूद भी सम्यक् मत में अपने जीवन को ढाल दिया । और अपने अतीत में किये हुए मिथ्या प्रचार को स्वयं ने खण्ड करके यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक आत्मा पतित से पावन पशु से परमेश्वर नर से नारायण बन सकती है ।

क्षुल्लक श्री गम्भीरसागरजी महाराज

1. 11 22 — 2. 11 23 — 3. 11 25, 26
4. 11 28 से 31 — 5. 11 36

❑ ❑ ❑

शब्दकोषीय परिप्रेक्ष्य में वीरोदय महाकाव्य की समालोचना

म. डॉ. भागीरथप्रसाद त्रिपाठी "वागीश शास्त्री"

यद्यपि संभाषण से भाषा का उद्गम होता है तथा संस्कृतियों के पारस्परिक संक्रमण के कारण शब्दावली में अनेकानेक परिवर्तन दिखाए गए हैं तथापि संस्कृत मनीषियों ने व्याकरण, उपमान, कोश, आप्त-वाक्य तथा व्यवहार - इन पांचों को शब्द-ज्ञान की कसौटी माना है । व्याकरण या निरुक्त शास्त्रीय लक्ष्य ग्रन्थों के शब्दों का विश्लेषण मात्र करते हैं, शब्दों की रचना नहीं। वार्तिककार कात्यायन ने शब्द प्रयोग तथा पाणिनीय सूत्रों के घटन को व्याकरण माना है । पतंजलि ने शब्द-प्रयोग वेत्ताओं को भी व्याकरण का मूलाधार माना है । यद्यपि उनके समय में संस्कृत भाषा का प्रयोग करने वाले दो प्रकार के व्यक्ति उपलब्ध होते थे - एक वे जो शब्द प्रयोगों के आधार पर भाषा का व्यवहार करते थे तथा दूसरे वे जो व्याकरण के सहारे भाषा बनाकर बोलते थे, तथापि पतंजलि ने महाभाष्य में लक्ष्य के आधार पर भाषा का प्रयोग करने वाले को प्रमुखता प्रदान करते हुए कहा है कि वैयाकरण कोई कुम्हार सदृश नहीं है, जो आदेश देने पर घटादि पात्रों के समान शब्दों का निर्माण कर सकें ।

भाषा-प्रयोग के क्षेत्र में दूसरा वैशिष्ट्य शब्दकोषों को प्राप्त होता है । कुछ विद्वानों के अनुसार तो व्याकरण की अपेक्षा शब्दकोषों के अभ्यास को ही प्राथमिकता दी जाती रही है । व्याकरण के कण्ठस्थ रहने पर भी पर्यायवाची शब्दों के तथा उनके लिङ्गों के सम्यग् ज्ञान न हो पाने के कारण वैयाकरण भाषा-व्यवहार में स्वयं को असमर्थ पाते हैं । उस दशा में बौद्ध विद्वान् अमरसिंह के चिरस्थायी अवदान का विशेष महत्त्व है । उन्होंने संज्ञा-शब्दों के लिङ्ग निर्धारण हेतु *नामलिङ्गानुशासनम्* को संगृहीत किया, जिसने उनके नाम पर अमरकोश के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की । किन्तु यह ध्यातव्य है कि कोशकारों का कार्य लक्ष्य ग्रन्थों से शब्द संगृहीत करना है न कि शब्द-रचना । कभी-कभी कोशकार विभिन्न स्रोतों से इसे संगृहीत करते हैं । अनुसन्धाता का कार्य है कि उनकी प्रामाणिकता के लिए वह लक्ष्य वाङ्मय का अनुशीलन करे ।

मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज के वीरोदय काव्य के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उन्होंने वीरोदय काव्य की पुष्पवाटिका में विविध *वर्ण और गन्धों* के शब्द-पुष्पों का चयन किया है । नैषध महाकाव्य, महाकवि कालिदास के वाङ्मय, भट्टि काव्य के अतिरिक्त धर्म शर्माभ्युदय, चन्द्रप्रभ चरित, मुनि सुव्रत इत्यादि काव्यों का पर्यालोडन कर नवनीत निकाला है । यह भी सत्य है कि महाकवि पूर्ण रूप से किसी के पदचिह्नानुगामी नहीं बनते ।

"तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः ।
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति ॥"

का अनुगमन नहीं करते । अपने मार्ग का निर्माण स्वयं करते हैं । मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने वीरोदय महाकाव्य में भावानुरूप शब्दाभिव्यक्ति के लिए समुचित शब्द प्रयोग का कौशल प्रदर्शित किया है ।

महाकवि ने १४५, १६८ तथा २६४ पृष्ठों पर 'तुज्' शब्द का प्रयोग किया है पुत्र अर्थ में, जिसकी उपलब्धि हमें सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में नहीं होती । ऋग्वेदसंहिता तथा श्रीमद्भागवत महापुराण में पुत्रार्थक 'तोक' शब्द अवश्य दृष्टिगोचर होता है । किन्तु 'तुज्' 'तोक' शब्द की प्रवृत्ति निमित्त सर्वथा भिन्न है । तोक शब्द मोत्र तु धातु से प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है किन्तु तुज् शब्द हिंसार्थक तुज् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर व्युत्पन्न होता है । 'व्याकरणे शकटस्य च तोकम्' कहकर शकट का पुत्र शाकटायन के लिए 'शकट तोक' का व्यवहार किया गया है । बुन्देली भाषा में वैदिक भाषीय इस शब्द के रच-पच जाने के कारण उसी अर्थ में 'टोंका' शब्द का प्रयोग सुरक्षित है । प्राकृतभाषीय ग्रन्थों में तुज् शब्द का व्यवहार परिलक्षित नहीं हुआ । आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने इस दुर्लभ शब्द को हेमचन्द्र कृत *'अभिधान चिन्तामणि'* कोष से संगृहीत किया है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने इस शब्द को किस लक्ष्य ग्रन्थ से अपने संस्कृत कोष में संगृहीत किया । उनके अतिरिक्त किसी संस्कृत कोशकार ने इस शब्द को अपने कोष में स्थान नहीं दिया । इसलिए पहले तो मुझे यह प्रतीत हुआ कि हो न हो हेमचन्द्राचार्य ने प्राकृत या देशज भाषा के किसी शब्द से प्रभावित होकर 'तुज्' शब्द को अपने संस्कृत कोष में सन्निविष्ट कर दिया होगा । किन्तु उस समय मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा जब मैंने पुत्र और पौत्र वाचक तुज् शब्द का स्रोत ऋग्वेद संहिता' में पाया । मुनिश्री के संस्कृतानुशीलन का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक रहा आया है । उन्हें केवल अमरकोष के अनुशीलन से तृप्ति नहीं मिली इसलिए शब्द-सम्पत्ति संवर्धन की दिशा में उनका यह प्रयत्न उचित ही था ।

वामन ने लिखा है कि जिस देश भाषीय शब्द का प्रयोग बारम्बार लोक में हो रहा हो, उस शब्द का ग्रहण साहित्य में कर लेना चाहिए (काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ५/१३) । उन्होंने अनुभव किया था कि ज्योतिष तथा आयुर्वेद प्रायोगिक एवं वैज्ञानिक विषय हैं । इसलिए देशान्तर में विकसित ज्ञान-विज्ञान को संस्कृत भाषा में निबद्ध करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर तद्देशीय शब्दावली को पचा लेना आवश्यक है । भावप्रकाश, ताजिक नीलकण्ठी, हिकमत प्रकाश इत्यादि ग्रन्थों में फारसी भाषा के शब्दों को पचाया गया है ।

इससे संस्कृत के विशाल हृदय का एवं ग्रहण शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है । मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने वीरोदय महाकाव्य में भाषान्तरीय शब्दों का यथास्थान निःसंकोच प्रयोग किया है । यथा-अरबी भाषा से अमीर और मीर (पृ. ३), फारसी भाषा से प्रतिष्ठा के अर्थ में शान् (पृ. २५७) मर्जी अर्थ में मर्जू (पृ. ३५०), कब्रिस्तान के लिए कबरस्थलीकृतम् (पृ. १४१), भद्र अर्थ में फारसी के नेक (पृ. 3), बाजी मारने के अर्थ में वाजियोग्यः (पृ. २५६), शतरंज (पृ. २५६) । यद्यपि शतरंजसंस्कृत के चतुरंग शब्द का अपभ्रंश है, तथापि चतुरंग की अपेक्षा शतरंज के लोक प्रसिद्ध होने के कारण मुनि श्री ने शतरंज शब्द का ही ग्रहण किया ।

अंग्रेजों के लिए मुनिश्री ने फिरंगी (पृ. २६१) शब्द का प्रयोग किया । संस्कृत वाङ्मय में सबसे पहले १६वीं शताब्दी में भावमिश्र ने अपने आयुर्वेदिक ग्रन्थ भावप्रकाश में उसका प्रयोग किया था । फ्रेंच जनता को फ्रैंकाइश कहते थे । उनके लिए ही फिरंगी शब्द का व्यवहार हुआ था । किन्तु परवर्ती काल में सभी गोरे लोगों के लिए फिरंगी कहा जाने लगा । फिरंगियों ने जो रोग भारतवर्ष में फैलाया, भावप्रकाशकार ने उसकी चिकित्सा के प्रसंग में इस शब्द का प्रयोग किया।

मुनिश्री ने कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है, जो लोकभाषा में लगते तो संस्कृत जैसे हैं, किन्तु यथार्थतः संस्कृत के शब्द नहीं है, तथापि अति प्रयुक्त होने के कारण मुनि श्री ने उन्हें अपने महाकाव्य वीरोदय में स्थान दिया है । यथा-अकाट्यम पृ. ३०९, काटने के अर्थ में संस्कृत में कोई कट या काट धातु नहीं है । यह कटना या काटना हिन्दी भाषा का ही धातु है जो संस्कृत के कर्तन् (कृत) से आया है । अकाट्य प्राकट्य के सादृश्य पर बना लिया गया है इसी प्रकार परिस्थिति शब्द का हिन्दी भाषा में प्रयोग हो रहा है किन्तु व्याकरण के अनुसार परिष्ठिति ही होगा परिस्थिति नहीं । रूपरेखा शब्द का संस्कृत वाङ्मय में शक्तिग्रह नहीं हुआ है । यह अंग्रेजी के आउटलाइन शब्द का अनुवाद है ।

मुनिश्री ने १५६ वें पृष्ट पर झंझावात के अर्थ में 'झलज्झला' शब्द का प्रयोग किया है । अमरकोश इत्यादि शब्दकोशों में यह शब्द दृष्टिगोचर ही नहीं हुआ । केवल त्रिकाण्डशेष कोश में ही इसके दर्शन हुए । किन्तु वहां अर्थ सर्वथा भिन्न है "कर्णास्फाले झलज्झला"

संक्षेपतः मुनिश्री ने 20वीं शताब्दी में विरचित इस महाकाव्य की संस्कृत भाषा को सरल बनाने के लिए कोई प्रयत्न अवशिष्ट नहीं छोड़ा । काव्यों एवं महाकाव्यों की भाषा पर उस शताब्दी का प्रभाव अवश्य पड़ता है । इस महाकाव्य पर भी उसका दर्शन होता है । शब्द प्रयोग पर उनकी अनन्य साधारण पकड़ परिलक्षित होती है, जो चिरकालीन शब्द साधना का परिणाम है ।

म. डॉ. भा. प्र. त्रिपाठी "वागीश शास्त्री"

निदेशक, अनुसन्धान संस्थान

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी

1. तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि - ऋ. ४/१/३, तोकम् - तुज्यते पीड्यते नेन माता गर्भवासेनेति तोकं पुत्रः , तस्मै (सायणः) तुजे - गच्छत्यनेनानृण्यं पितेति तुक् - पौत्र, तस्मै शं सुखं कृधि (सायणः)
तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः - ऋ. ५/४१/९ अथवा नः तुजे - पुत्रे, तने - तत्पुत्रे च स्वैतवः - शोभनगमनाः, सन्तु - भवन्तु (षष्ठ्यर्थे चतुर्थी) ऋ.-सायणः ।
आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते - ऋ. ३/४५/४ तुजम् - शत्रूणां बाधकं, रयिम् - धनेनोपलक्षितं पुत्रम्, आभर - सम्पादक (सायणः) ।

❑❑❑

वीरोदय महाकाव्य : कला और कथ्य

डॉ. जगन्नाथ पाठक

ज्ञानसागर जी ने वीरोदय महाकाव्य की रचना 22 सर्गों में की । उसमें भगवान् वीर के गर्भ में अवतरण से लेकर निर्वाण तक की कथावस्तु को अपने कवित्व से सम्पृक्त किया और स्पष्ट शब्दों में कहा कि जिन वीर भगवान् के चरणों के चिन्तन से प्राणियों का मन पापों से रहित हो जाता है तो फिर उन्हीं वीर भगवान् के एक मात्र चरित्र चित्रण में समर्थ मेरी वाणी सुवर्ण भाव को क्यों नहीं प्राप्त होगी ?

मनोऽङ्गिनां यत्पदचिन्तनेन समेति यत्रा मलता मनेन ।
तदीयवृत्तैक समर्थना वाक् समस्तु भिन्नात्तसुवर्णभावा ॥१/९

प्राचीन संस्कृत साहित्य में महाकाव्य विधा में लेखन की परम्परा में विशेष रूप से दो परम्पराओं का विकास हुआ पहली परम्परा बाल्मीकि और अविकृत गुरु कालिदास, जिन्होंने रस तत्त्व पर विशेष ध्यान दिया, जिससे उनकी कविता में ध्वनि काव्य या उत्तम काव्य को आश्रय मिला । दूसरी परम्परा जो अलङ्कार प्रधान रचनाओं की थी, शब्द-अर्थ के अलङ्कारों को प्रयोग की पटुता की समर्थक थी. भारवि और माघ आदि कवियों द्वारा प्रवर्तित हुई और श्रीहर्ष के नैषधीय चरित महाकाव्य में उसका चरम विकास लक्षित किया जा सकता है, महाकवि ज्ञानसागर दूसरी परम्परा के पक्षधर थे । विशेष रूप से उनके आदर्श कवि नैषधकार महाकवि श्री हर्ष प्रतीत होते हैं । यह बात न केवल उनके द्वारा अपने महाकाव्यों के प्रत्येक सर्ग के अन्त में, नैषधकार के इस आदर्श श्लोक पर -

श्रीहर्षं कविराज राजिमुकुटालङ्कारहारः सुतं
श्री हीरः सुषुवे जितेन्द्रिय चयं मायल्लदेवी च यम् । आदि

लिखित इस आत्मपरिचयात्मक पद्यांश से -

श्रीमान् श्रेष्ठि चतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषण वर्णिनं घृतवरीदेवी च यं धीचयम् ।

आदि व्यक्त होती है, परन्तु उनके द्वारा प्रस्तुत आरम्भ में अपने विनय के प्रकाशन के साथ लगभग प्रत्येक वर्णन और लेखन शैली से व्यक्त होती है । इसका यह अर्थ नहीं कि महाकवि ज्ञानसागर ने कविकुल गुरु कालिदास से कोई प्रभाव ग्रहण नहीं किया । उदाहरण के लिए षष्ठ सर्ग में वसन्त-वर्णन के प्रसंग में लिखते हैं -

रविरयं खलु गन्तु मिहोद्यतः समभवद् यदसौ दिशमुत्तराम्।
दिगवि गन्ध वहं ननु दक्षिणा वहति विप्रिय निश्वसनं तराम् ॥६/३३

अर्थात् सूर्य दक्षिण दिशा को छोड़कर उत्तर दिशा के पास जाने के लिए उद्यत हो रहा है, इस कारण दक्षिण दिशा निःश्वास छोड़ रही है । कालिदास का पद्य है -

कुबैर गुप्तां दिश मुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य ।
दिग् दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीक निःश्वासमिवोत्ससर्ज ।कुमार-सं.भवम्॥

कवि की सफलता तभी मानी जाती है कि उसने कितनी समर्थ भाषा में और कितनी प्रभावशालिता के साथ अपने स्वयं को प्रस्तुत करता है, इस पर उसकी सफलता निर्भर होती है, यदि इन समस्त बातों को ध्यान में रखकर आचार्य ज्ञानसागर जी के वीरोदय काव्य का आकलन किया जाता है तो मेरी दृष्टि से वे पूर्ण सफल सिद्ध होते हैं, जहाँ तक कवित्व भाषा और रस स्थिति के अभिव्यञ्जन का प्रश्न है, स्वयं अपनी सहज श्लेषमयी पद्धति से उन्होंने दोनों के प्रति अपनी जागरूकता की अभिव्यक्ति दूसरे ही सर्ग में कर दी है, वे लिखते हैं -

परार्थनिष्ठामपि भावयन्ती रसस्थितिं कामपि नाटयन्ती ।
कोषैक वाञ्छामनुसन्दधाना वेश्यापि भाषेव कवीश्वराणाम् ॥२/४४

महाकवि ज्ञानसागर जी ने जिस सफलता से श्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया है वह मेरी मान्यता है कि वैसा प्रयोग आधुनिक संस्कृत साहित्य के किसी अन्य कवि ने नहीं किया होगा । उनकी लगभग सम्पूर्ण रचनाओं में श्लिष्ट शैली के साथ विशेष रूप से उपजाति-छन्द के प्रयोग में अन्त्यानुप्रास के प्रयोग को लक्षित किया जा सकता है । यह सब कुछ जैसे सही अर्थ में, 'अपृथग्यत्न निवर्त्य' सा लगता है । अर्थात् उसके लिए कवि ने अतिरिक्त यत्न या अध्यवसाय नहीं किया है । केवल श्लेष और अनुप्रास जैसे शब्दालङ्कारों के प्रयोग में ही नहीं, प्रत्युत अर्थालङ्कारों, उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, परिसंख्या, विरोध आदि में भी कवि ज्ञानसागर को वैसा ही सफलता मिली है । इसमें सन्देह नहीं कि मुनि ज्ञानसागर ने श्लेषमूलक अलंकारों के प्रयोग में अपनी-प्रतिभा का चमत्कार अत्यधिक मात्रा में प्रदर्शित किया है । सम्भवतः उनकी दृष्टि में कविता का यह रूप बहुत आकर्षक था, क्योंकि वे बड़े ही स्पष्ट शब्दों में अपने इस आदर्श काव्यरूप को प्रस्तुत करते हैं -

सुवर्ण मूर्तिः कवितेयमार्या लसत्पदन्यासतयेव भार्या ।
चेतोऽनुगृह्णाति जनस्य चेतोऽलङ्कार सम्भारवतीति हेतो : ॥१॥२७

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि यह सम्पूर्ण पद्य प्राचीन कवि की इस 'आर्या' के अनुकरण पर लिखा गया है -

सरसा सालङ्कारा सुपदन्यासा सुवर्णमयमूर्त्तिः ।
आर्या तथैव भार्या न लभ्यते पुण्यहीनेन ॥

कहीं-कहीं तो कवि ज्ञानसागर की कल्पना शक्ति को आकलित करते हुए आश्चर्य होता है जैसे उत्प्रेक्षा करते हुए एक स्थान पर वे कहते हैं कि साधुजनों के निर्माण करने की स्थिति में विधाता के हाथ से जो रचना-सामग्री का अंश नीचे गिर गया उससे श्री चन्दन आदि उपकारी पदार्थ संसार में उत्पन्न हो गये, ऐसा मैं मानता हूँ । यह साधुजनों की परोपकारिता को श्रीचन्दन आदि पदार्थों में इस कारण सम्भावित करने की उत्प्रेक्षा सम्भवतः कवि ज्ञान सागर की नवीन उद्भावना है । प्रस्तुत रचना का नायक कोई सामान्य वीर नहीं है । उसने कई हजारों की सेना पर विजय प्राप्त नहीं की है और न संसार को अपने द्वारा भयाक्रान्त किया है, फिर भी वह वीरों का वीर है, 'महावीर' है, क्योंकि उसने नाना जन्मों में कठोर साधना करके अपने को बन्धन से मुक्त किया है । जहां संसार इन्द्रियों का वशीभूत है वहां उसने उन पर विजय प्राप्त की है । वह किसी का दास नहीं है, क्योंकि इन्द्रियजेता होने के कारण जगत् का जेता वीर है । कवि ज्ञानसागर लिखते हैं -

इन्द्रियाणां तु यो दासः स दासो जगतां भवेत् ।
इन्द्रियाणि विजित्यैव जगज्जेतृत्वमाप्नुयात् ॥ ८॥३७॥

अतः उस वीर का जन्म, गर्भ में अवतरण के पश्चात् ही से श्री 'ह्री' आदि नाना देवताओं का आगमन होता है । जन्म के पश्चात इन्द्र आदि देवता आकर उसे शची की सहायता से सुमेरु के शिखर पर ले जाते हैं और उसका अभिषेक करते हैं। भगवान् वीर संसार की स्वार्थ परायणता और दुःस्थितिका चिन्तन करते हैं । उनकी यह चिन्ता है कि कठिनाई से छूटने वाले मोह का विनाश कैसे हो, लोग किस उपाय से उत्पथ का त्याग कर सत्पथ पर आयें तथा कैसे परस्पर प्रेम की भावना जागरित हो -

दुर्मोच मोहस्य हतिः कुतस्तथा केनाप्युपायेन विदूरताऽपथात् ।
परस्परप्रेमपुनीतभावना भवेदमीषामिति मेऽस्ति चेतना ॥ ९/१७

उनका चिन्तन सत्य, वस्तु तत्त्व और यथार्थ को लेकर है । कवि ज्ञानसागर ने इसे स्पष्ट शब्दों में संकेतित किया है। उनका स्पष्ट चिन्तन है, "जगत् के तत्त्वों का बोध सर्वज्ञता को प्राप्त हुए बिना नहीं हो सकता और सर्वज्ञता की प्राप्ति वीतरागता के बिना सम्भव नहीं ।" उन्हें साधना के फलस्वरूप जब मनःपर्यय नाम का ज्ञानदीपक प्राप्त हुआ तब उन्होंने अपने 'वीर' नाम चिन्तन किया । उनकी दृष्टि में शस्त्रों का ग्रहण कोई वीरता नहीं, क्योंकि यह वीरता है तो भीरूता क्या है ? यह वीरता तो वस्तुतः परापेक्षी होने से दासता है । यदि आत्मा में अविनाशित्व का चिन्तन किया जाय तथा सभी दृश्य पदार्थों की विनश्वरता की चिन्ता की जाय तब चिन्ता कैसे रहेगी ? दीन पुरुष मरण से डरता है और जो दीन नहीं है वह तो अमृतस्थित है । आत्मशक्ति से सम्पन्न उसे देखकर शत्रु की क्रूरता दूर हो जाती है, जैसे गरुड के सामने सर्प-भी । उन वीर के तपश्चरण काल में अनेक प्रतिकूल स्थितियां आयी और उन्होंने उन पर विजय प्राप्त की । उन्होंने सिंह की भांति अकेले ही पृथ्वी तल पर विचरण किया, क्योंकि मनस्वी लोग दूसरे की सहायता की अपेक्षा नहीं करते -

एकाकीसिंहवद् वीरो व्यचरत् स भुवस्तले ।
मनस्वी मनसि स्वीये न सहायमपेक्षते ॥

इस प्रकार का अप्रतिम वीर प्रस्तुत रचना का नायक है, अत: यह उन वीरों से सम्पूर्णतया भिन्न कोटि का है जो बाह्य शत्रुओं पर शस्त्रादि धारण करके विजय प्राप्त करते हैं ।

वास्तव में, कवि ज्ञानसागर ने षोडश सर्ग में साम्य, अहिंसा, स्याद्वाद सर्वज्ञता की महत्त्वपूर्ण चर्चा की, सत्तरहवें में मनुष्यता को लेकर लोकोत्तर बातें कही हैं । साम्यभाव का प्रतिपादक यह सर्ग महत्त्वपूर्ण-बन पड़ा है । हाँ धर्म और सम्प्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर मानों कवि ज्ञानसागर ने मनुष्यता के विश्वजनीन रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । वे कहते हैं - "आत्महित के अनुकूल आचरण का नाम ही मनुष्यता है, केवल अपने सुख में प्रवृत्ति का नाम मनुष्यता नहीं है । अत: विश्वभर के प्राणियों के लिए हितकारक प्रवृत्ति करना ही मनुष्य का धर्म है -

मनुष्यता ह्यात्महितानुवृत्तिर्न केवलं स्वस्वरूपसुखे प्रवृत्तिः ।
आत्मा यथा स्वस्य हिता परस्य विश्वैक संवादविधि र्नरस्य ॥१७/६

जैसा आत्मा अपना वैसे ही दूसरे का भी समझना ही विश्वैक संवाद विधि है और आचार्य ज्ञानसागर इस विश्वजनीन संदेश अपने प्रस्तुत महाकाव्य के माध्यम से दे रहे हैं, वस्तुत: ज्ञान के सागर महाकवि ज्ञानसागर ने नाना ऐतिहासिक और लौकिक उदाहरणों द्वारा साम्यभाव का उपदेश दिया है । मनुष्य के लिए पवित्र तथा शुद्ध होने के लिए एक उपाय निर्देश करते हैं कि अपने मत या विश्वास को सब प्रकार से सत्य के अनुकूल दृढ़ बना कर दीनता रहित हो निर्भय विचरण करते हुए चित्त को पाप से रहित करे -

सत्यानुकूलं मतमात्मनीनं कृत्वा समन्तात् विचरन्नदीनः ।
पापादपेतं विदधीत चित्तं समस्ति शौचाय तदेकवित्तम् ॥ १७/२३

इस प्रकार महाकवि ज्ञानसागर ने वीरोदय महाकाव्य के माध्यम से न केवल एक महत् चरित्र को प्रस्तुत किया बल्कि बड़े महत् कथ्य को भी, सम्पूर्ण मानवता के समक्ष प्रस्तुत किया । इसके लिए उन्होंने रामायण और कृष्ण चरित के भी अपेक्षित अंशों को अपनी बात की पुष्टि के लिए उपयोग किया । अष्टादश सर्ग में कालचक्र को सब करने वाला बताया तो एकोनविंश सर्ग में अनेकान्तवाद के शास्त्रीय विचार को प्रस्तुत किया । बीसवें सर्ग में भगवान् महावीर की सर्वज्ञता को प्रतिपादित किया तथा इक्कीसवें सर्ग में भगवान् के निर्वाण गमन की घटना वर्णित की ।

सामान्यत: पाठक के मन में जो सबसे पहला प्रश्न उनकी रचनाओं, विशेषरूप से प्रस्तुत रचना वीरोदय का आकलन करते हुए उठता है वह है, उच्च कोटि के सन्त महापुरुष होते हुए भी आचार्य ज्ञानसागर ने अपनी रचना में मर्यादा से हटकर श्रृङ्गारिक वर्णनों को इतना अधिक प्रश्रय क्यों दिया है ? यहां तक जब वे प्रावृट् काल का वर्णन करने लगते हैं तो श्लेष की महिमा से पयोधरों के उत्तान होने की बात करते हैं (४/१०), दोला क्रीडा में वे 'पुरुषायित' की चर्चा कर बैठते हैं (४/२१) मैरे विचार से इसका उत्तर कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है । कवि ज्ञानसागर ने अपने महाकाव्य के रूप में एक ऐसा भव्य देवायतन का निर्माण किया है, जिसके प्रस्तरों में नाना अलंकरणों का उत्कीर्णन किया गया है और उसमें नाना सुन्दर नारी मूर्तियों का संयोजन किया गया है । देवायतन की भव्यता के लिए दोनों की अनिवार्यता प्राचीन काल से ही सिद्ध है । इसलिए एक-स्थपति के रूप में आचार्य ज्ञानसागर ने अलंकारों के संगुफन के साथ नारी शरीर के नाना अङ्गों के श्रृङ्गार परक उल्लेख द्वारा अपने महाकाव्य में देवायतन को भव्य रूप प्रदान करके निरपेक्ष भाव से अपने कर्तव्य मात्र का निर्वाह किया है। उस भव्यता से आकृष्ट मनुष्य को उसकी मनुष्यता की ऊँचाई तक ले जाना ही उसका चरम लक्ष्य है ।

हम यहाँ यह भी कहना चाहेंगे कि कवि ज्ञानसागर ने प्रसंगत: नाना ऋतुओं के वर्णनों द्वारा भी अपनी प्रस्तुत रचना को भव्यता प्रदान करने का प्रयास किया है । वर्षा वर्णन (चतुर्थ) वसन्त वर्णन (षष्ठ), शीतकाल (नवम), ग्रीष्म (द्वादश), शरदागम (एकविंशति) में । इन वर्णनों में केवल शाब्दिक चमत्कार ही नहीं है, कवि की अपनी अनुभूति का भी गहरा प्रभाव लक्षित होता है । नीरद (दन्तरहित) बादलों को लेकर कहते हैं कि वह वियोगिनियों के मांस को आस्वादित करके ओले के व्याज से उनकी हड्डियाँ को थूक रहा है (४/१४) तो लगता है कवि की निजी कल्पना यहां स्वयम्प्रसूत हुई है । वसन्त वर्णन में, भ्रमरों की श्रेणी पथिक जनों को रोकने के लिए जैसे कशा हो अथवा वसन्त लक्ष्मी की रमणीय वेणी हो अथवा काम रूपी गजराज के बांधने की सांकल हो (६/२६) । शीतकाल के वर्णन में कवि ने 'हसन्ती' का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है, जैसा कि वह कहते हैं -

सेवन्त एवन्तपनोष्मतुल्य तारुण्यपूर्णामिह भाग्यपूर्णाः ।
सन्तो हसन्तीं मृगशावनेत्रां किंवा हसन्तीं परिवारपूर्णाम् ॥ ९/३१

अर्थात् भाग्यवान् लोग शीतकाल में हंसती हुई (हसन्ती) मृगनयनी का सेवन करते हैं अथवा परिवार जनों से घिरी 'हसन्ती' (अंगीठी) का । ग्रीष्मकाल में, सूर्यकिरणों से सन्तप्त, उष्ण, धूलि के कारण अपने अंगों को ऊंचा उठाता हुआ भुजंग छाया के लिए मोर के नीचे बैठ जाता है (१२/११) और, शरदागम में, अति सुन्दर कमल दल पर आकर निश्चल बैठे भ्रमरों की पंक्ति के बहाने मानों शरद् ऋतु ने राम देव की प्रशस्ति के अक्षर ही लिख दिये है (२१/९६) कवि ने यथावसर अहिंसा की भावना को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से तथा ब्राह्मणत्व की व्याख्या को अपने ढंग से प्रस्तुत करके समाज में प्रचलित कुरीतियों पर भी प्रहार किया है ।

कवि ने अन्तिम सर्ग में जैन धर्म में व्याप्त दोषों की चर्चा करके अपने उपदेशकत्व के उचित कार्य किया है । सर्वान्ततः उसने 'वीर' कौन है, इसकी अच्छे ढंग से एक प्रकार से परिभाषा ही प्रस्तुत कर दी है, जो यहां उसकी सम्पूर्ण रचना के निर्गलितार्थ के रूप में ग्राह्य है -

योऽकस्माद्भयमेत्यपुंसकतया भीमे पदार्थे सति,
एकस्मिन् समये परेण विजितःस्त्रीभाव मागच्छति ।
क्षीणं वीक्ष्य विजेतु मभ्युपगतः स्फीतो नरत्वं प्रति ,
नित्यं यः पुरुषायताम दरवान् वीरोऽसकौ सम्प्रति ॥२२/३३॥

जो निरन्तर पुरुषार्थी है, निर्भय है और दूसरे जीवों के संरक्षण के लिए सदा उद्यत रहता है वही पुरुष वास्तव में आज 'वीर' कहलाने योग्य है और ऐसा वीर पुरुष जगत् में धन्य है ।

प्रस्तुत रचना आज के अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थ परायण और हिंसा और आतङ्क से ग्रस्त समाज के लिए मानवता के उच्च आदर्श का संखनाद करने के कारण अत्यन्त प्रासङ्गिक है और महा कवि ज्ञानसागर आधुनिक संस्कृत के तीन-चार या पांच छः महाकवियों में अन्यतम कोटियों में परिगणनीय हैं ।

ऐसा कुछ नहीं कि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने अपनी इस रचना को जहां एक और नाना अलंकारों से अलङ्कृत किया है वहां, दूसरी ओर सैद्धान्तिक विचारों से पूर्ण बोझिल बना डाला है, किन्तु कहीं-कहीं उनकी शैली नितान्त सरल, स्पष्ट और हृद्य भी हो गयी है, इस उनकी गरिमामयी लेखनी का चमत्कार ही कहा जा सकता है । यहां, महिषी प्रियकारिणी ने षोडश स्वप्नों के देखने के पश्चात् महाराज सिद्धार्थ के पास पहुंच कर जिज्ञासा की है और महाराज सिद्धार्थ ने उनका समाधान किया है । यह प्रकरण, उपजाति में न लिखा जा कर आर्या छन्द में लिखा गया है । कवि की भाषा यहां नितान्त प्रवाहपूर्ण एवं स्फीत हो गयी है--

पर्वत इव हरिपीठे प्राणेश्वरपार्श्व सङ्गाता महिषी ।
पशुपति पार्श्वगताऽपि च बभौ सती पार्वतीव तदा ॥४/३२॥

और भी,

दुरिभिनिवेश मदोद्धुर कुवादिना मेव दन्तिनामदयम् ।
मदभुद्भेत्तुमदीनं दक्षः खुल केशरीत्थमयम् ॥४/४३॥

इसी के साथ, और अपनी बात को संहृत करते हुए, उपजाति में लिख डाला है, वे भी पद्य ४/५७-६० भी मालोपमा के कारण बहुत सहज बन पड़े हैं, और, जहाँ कवि ने 'अनुष्टु' का आश्रयण किया है वहाँ भी उसकी भाषा अलंकारों के भार से रहित होकर कुछ और हो गयी है कुछ ऐसा ही स्थल नवम सर्ग में वंशस्थ मिश्रित इन्द्रवंश में लिखित है । यहाँ तो कवि बिलकुल आधुनिक स्वार्थपरायण राजनीति का आलोचक हो गया है और कहता है -

स्वरोटिका मोटयितुं हि शिक्षते जनोऽखिलः सम्बलयेऽधुना क्षितेः ।
न कश्चनाप्यन्य विचार तन्मना नृलोकमेषा ग्रसते हि पूतना ॥९/९ ॥

अर्थात् "आज भूतल पर सभी लोग अपनी-अपनी रोटी को मोटी बनाने में लगे हुए हैं । कोई भी किसी अन्य की भलाई का विचार नहीं कर रहा है । आज तो यह स्वार्थ परायणता रूपी पूतना (राक्षसी) सारे मनुष्य लोक को ही ग्रस रही है ।" यहां 'पूतना' का राक्षसी के अर्थ में प्रयोग बड़ा ही सार्थक हो गया है । 'पूतना' वह राक्षसी की जिसने मोहक स्त्री के वेष में पहुंच कर कृष्ण को अपना दूध पिलाने के बहाने जहर देने का प्रयत्न किया था । आज स्वार्थ परायण राजनीति कुछ ऐसा ही कर रही है । निश्चय ही इस अंश में कवि का चिन्तन एक गहरी पैठ का संकेत देता है । कहीं-कहीं तो कवि की भाषा नृत्य करती हुई प्रतीत होती है, जैसे, शैत्य वर्णन में

शीतं वरीवर्ति विचार लोपि स्वयं सशी सर्ति समीरणोऽपि ।
अहो मरीमर्ति किलाकलत्रः नरो नरीनर्ति कुचो ष्मतन्त्र ॥९/३५॥

समाज में व्याप्त हिंसा के विरोध में, अहिंसा के पक्ष के समर्थन में कवि ने जहाँ कर्मकाण्ड प्रधान वैदिक यज्ञानुष्ठान का विरोध किया है वह एक प्रतिबद्ध कवि के लिए स्वाभाविक है, किन्तु वह यथावसर वैदिक या पौराणिक धारा से भी सामग्री लेकर अपने कवित्व को संवारने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करता ऊपर के उद्धृत पद्य में कवि का उपमान के रूप में, पशुपति पात्स्वर्गताऽपि च बभौ सती पार्वतीव तदा ।' (४/३२) जैसे स्थलों को इसी दृष्टि से आंकलित किया जाना चाहिए ।

आचार्य ज्ञानसागर ने वीरोदय महाकाव्य के अन्त में 'मङ्गलकामना' करते हुए, 'भव्यानां जैन मार्ग प्रणिहित मनसां शाश्वतं भद्रमस्तु और,

जिनेन्द्रधर्मः प्रभवेत्समन्ताद् यतः स्व कर्तव्य पथानुगन्ता ।
भूयाज्जनः कर्मठतान्वयीति धर्मानुकूला जगतोऽस्तु नीतिः ॥२२/४२॥

तो स्पष्ट ही, कवि ने अपने को बौद्ध कवि अश्वघोष की परम्परा में अपने को प्रतिष्ठित करता हुआ प्रतीत होता है। महाकवि अश्वघोष ने भी अपनी रचना को -

इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृतिः,
श्रोतॄणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात् कृता ।

कहते हुए स्पष्ट कर दी है । आधुनिक काव्य चिन्तन में किसी प्रकार की प्रतिबद्धता को कविता के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रतिष्ठा नहीं दी जाती, किन्तु धर्मप्रधान भारत की प्रकृति में, इसे सहज भाव से लेकर ही प्रतिष्ठित रचनाकारों की रचनाओं का सही मूल्यांकन किया जा सकता है । अन्यथा, पद्मावत के रचयिता महाकवि जायसी और रामचरित मानस के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास का मूल्यांकन सही ढंग से नहीं किया जा सकता ।

अन्त में कुछ ऐसे प्रयोग, ऐसे स्थल जो अपाणिनीय हैं । यहाँ जैन परम्परा के अनुगत कवि के पाणिनीय प्रयोगों के प्रति बद्ध होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता । सम्भव है जैन व्याकरण में ऐसे प्रयोगों के लिए छूट दी गयी है । यदि न भी हो तो मुनि ज्ञानसागर तो उस कोटि में पहुँच ही गये थे जिस कोटि में पहुँचने वाले महापुरुष की बात को 'आर्ष' प्रयोग कहकर व्याकरण के क्षुद्र बन्धनों से मुक्त कर देने में किसी प्रकार का किसी को संकोच नहीं होता और ऐसा भी हो सकता है कि आचार्य ने जान बूझ कर अपने ज्ञान को सामान्य बताने के उद्देश्य से गोस्वामी तुलसीदास की भांति सरल प्रयोग कर दिये हों। इन कारणों से रचनाओं को सामान्य भूमि की रचना समझना उनके प्रति न्याय नहीं माना जा सकता ।

डॉ. जगन्नाथ पाठक
पूर्व प्राचार्य, गंगानाथ झा
केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
इलाहाबाद

❑❑❑

'वीरोदय' की दार्शनिक पारिभाषिक शब्दावली का विश्लेषण

डॉ. कमलेश जैन

जैन आचार्यों एवं साहित्यकारों ने अलग-अलग भाषाओं में भारतीय वाङ्मय की विविध विधाओं को अत्यधिक समृद्ध एवं विकसित किया है । उन्होंने जैन सिद्धान्त तथा नीतिशास्त्र, जैनदर्शन और तर्कशास्त्र, जैन तत्त्वविद्या और पौराणिक-ऐतिहासिक कथा एवं अन्य प्रबन्धों - कृतियों में मूलत: जैन धर्म-दर्शन का प्रतिपादन किया है । जैन सिद्धान्तों की इस प्रस्तुति में बहुसंख्या में पारिभाषिक और विशेषार्थगर्भित शब्दों का प्रयोग किया है ।

वीरोदय (महावीर चरित) मूलत: काव्यात्मक रचना है, जो कि महाकाव्य की श्रेणी में आता है । इस ग्रन्थ में ग्रन्थकर्ता की प्रतिभा, पाण्डित्य, कवित्वशक्ति, एवं विशाल शब्द भण्डार के स्पष्ट दर्शन होते हैं । शब्दों में, बहुत से अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है । कुछ देशी शब्दों का भी प्रयोग दिखाई देता है ।

वीरोदय मूलत: साहित्यिक काव्यकृति होने के कारण यह स्वाभाविक था कि इसमें दार्शनिक एवं पारिभाषिक संज्ञाओं का प्रयोग कम ही हो, तथापि इस महाकाव्य में प्रसंगानुसार बहुत से जैन दार्शनिक पारिभाषिक शब्दों का भी उपयोग किया गया है, जैसे - अस्तिकाय, द्रव्य, गुण, पर्याय, प्रत्यक्ष, परोक्ष, अनेकान्त, स्याद्वाद, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, पुद्‌गल द्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, त्रस, स्थावर, अणु, स्कन्ध आदि आदि ।

वीरोदय एवं अन्य जैन साहित्य में प्राप्त पारिभाषिक शब्दों को प्रमुख रूपसे तीन वर्गों में रखा जा सकता है -

1. ऐसे शब्द जो मात्र जैन परम्परा में ही उपलब्ध हैं । अन्य किसी भी दर्शन में जिनका किसी भी रूप में उपयोग नहीं हुआ है । जैसे - अस्तिकाय, नय, त्रस, स्थावर, गुप्ति, समिति, अनुप्रेक्षा आदि ।
2. ऐसे शब्द जो एक से अधिक परम्पराओं में समान रूपसे प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु जैन दर्शन तथा अन्य दर्शनों में उसके भिन्न-भिन्न अर्थ किये गये । जैसे - इन्द्रिय (आत्मा), प्रत्यक्ष, परोक्ष द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ, गुण, योग आदि ।
3. ऐसे शब्द जो सभी परम्पराओं में अर्थ की दृष्टि से प्राय: समानता रखते हैं, किन्तु व्याख्या या अर्थ विस्तार की दृष्टि से जैन परम्परा में अन्य परम्पराओं की अपेक्षा भिन्नता देखी जाती है ।

प्रस्तुत निबन्ध में वीरोदय महाकाव्य के विशेष सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है ।

अस्तिकाय

वीरोदय में 'अस्तिकाय' शब्द का प्रयोग प्रतीक रूप में किया गया है । पाँचवे सर्ग की समाप्ति पर कहा गया है -

तेनास्मिन् रचिते यथोक्तकथने सर्गोऽस्तिकायान्वितिः ।
देवीनां जिनमातृसेवनजुषां संवर्णनाय स्थितिः ॥

अर्थात् मुनि ज्ञानसागर द्वारा विरचित इस यथोक्त कथन कारक काव्य में जिन माता की सेवा करने वाली कुमारिका देवियों का वर्णन करने वाला अस्तिकाय संख्या से उक्त यह पाँचवा सर्ग समाप्त हुआ ।

अस्तिकाय (पंचास्तिकाय) का चिन्तन मात्र जैन परम्परा में प्राप्त होता है यहाँ जीव और जगत की व्याख्या पंचास्तिकाय सिद्धान्त के द्वारा की गई है । प्राचीन प्राकृत आगम से लेकर उत्तरवर्ती जैन वाङ्मय में इसका समान विवेचन मिलता है । जैन परम्परा में पंचास्तिकाय की अवधारणा अत्यधिक प्राचीन है । अर्हत् वर्धमान से पहले भी इस विचारधारा का सद्‌भाव स्थापित रहा है । पंचास्तिकाय की इस अवधारणा के मूल आधार पर ही लोक या विश्व की व्याख्या की गई है । पंचास्तिकाय की यह परिकल्पना भारतीय चिन्तनधारा में सर्वथा नवीन और मौलिक प्रतीत होती है । इसमें पाँचों अस्तिकायों का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया गया है । इनमें जड़, चेतन एवं उनकी क्रिया समाहित है । अस्तिकायों के समूह को लोक कहा गया है । यही पाँच अस्तिकाय लोक के कारणभूत हैं । पाँच अस्तिकाय इस प्रकार हैं - (1) जीवास्तिकाय, (2) पुद्‌गलास्तिकाय (3) धर्मास्तिकाय (4) अधर्मास्तिकाय (5) आकाशास्तिकाय ।

'अस्तिकाय' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है - अस्ति+काय । 'अस्ति' शब्द अस्तित्व, सत् या सत्ता का द्योतक है। और 'काय' शब्द अनेक अवयवों या बहुप्रदेशीपने का ज्ञान कराता है । इस प्रकार जीवादि पाँचों अस्तिकाय नाना प्रकार के

गुण और पर्यायों के साथ उत्पाद, व्ययरूप परिणमन करते हुए भी सदा अस्तित्ववान् हैं, इसलिए इन्हें अस्तिकाय कहा गया है। अस्तिकाय पाँच ही हैं, कम या अधिक नहीं । दृश्यमान एवं अदृश्यमान सम्पूर्ण जगत का इन्हीं पाँचों में अन्तर्भाव हो जाता है।

शास्त्रों में पाँच अस्तिकायों का पृथक्-पृथक् स्वरूप विस्तृत एवं सूक्ष्म रूप में मिलता है ।

गुण - वीरोदय में 'गुण' का स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि - ध्रुवांशमाख्यान्ति गुणेति नाम्ना' (सर्ग १९ पृ. ३००) अर्थात् ज्ञानी जनों ने वस्तुगत ध्रुवांश (नित्यांश) को 'गुण' कहा है । गुण शक्ति विशेष को कहते हैं । ये गुण द्रव्य में रहते हैं, परन्तु स्वयं निर्गुण होते हैं । एक गुण में दूसरा गुण नहीं पाया जाता। इसलिए उसे निर्गुण कहा गया है । प्रत्येक द्रव्य में इस प्रकार के विविध गुण होते हैं । गुण द्रव्य के स्वभाव हैं । द्रव्य के बिना गुणों का अस्तित्व नहीं है और न गुणों के बिना द्रव्य का अस्तित्व है । इस प्रकार द्रव्य और गुणों के बीच अव्यतिरेकभाव है अर्थात् दोनों अभिन्न रहते हैं । गुणों के परिणमन से द्रव्य का परिणमन लक्षित होता है ।

गुणों की वर्तमान अवस्था को पर्याय कहते हैं । ये गुण किसी न किसी पर्याय को प्रतिक्षण धारण करते रहते हैं । और किसी न किसी पूर्व पर्याय को छोड़ते रहते हैं । गुण अन्वयी होते हैं, क्योंकि शक्ति के मूल स्वभाव का कभी नाश नहीं होता । ये अन्वयी स्वभाव होकर भी सदा एक अवस्था में नहीं रहते, किन्तु प्रतिसमय बदलते रहते हैं । जैसे ज्ञान प्रत्येक समय ज्ञान बना रहता है, पर जो ज्ञान इस समय है, वही ज्ञान दूसरे समय में नहीं रहता है । दूसरे समय में वह अन्य प्रकार का हो जाता है । इसी तरह प्रत्येक गुण अपने स्व स्वरुप में रहता हुआ भी प्रतिक्षण भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होता रहता है ।

पर्याय - वीरोदय में 'पर्याय' शब्द का लक्षण करते हुए कहा गया है कि 'पर्येति योऽन्यदद्वितयोक्तधामा' । अन्य धर्मों को अर्थात् उत्पाद और व्यय को 'पर्याय' कहते हैं । पर्याय का अर्थ परिवर्तन या परिणाम है । द्रव्य में जो प्रतिक्षण जो परिवर्तन होता रहता है, उसे पर्याय कहते हैं । न तो पर्याय द्रव्य से भिन्न होता है, और न ही द्रव्य पर्याय से रहित होता है । दोनों अभिन्न हैं । इसीलिए पर्यायों को व्यतिरेकी कहा गया है । ये प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहते हैं । प्रत्येक द्रव्य में अनन्त पर्याय होते हैं । जिस द्रव्य का जो स्वभाव है उसी के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है । जैसे, मनुष्य बालक से युवा, और युवा से वृद्ध होता है, परन्तु वह मनुष्यत्व का त्याग नहीं करता । उसी तरह प्रत्येक द्रव्य में प्रतिक्षण परिणमन होते रहते हैं । इस सकारण कूटस्थ नित्यता सम्भव नहीं है । द्रव्य में ध्रौव्यत्व होने के कारण उसमें सर्वथा क्षणिकत्व भी संभव नहीं होता । द्रव्य अपनी मूल जाति द्रव्यत्व का त्याग किये बिना प्रति समय भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होते रहते हैं । इनकी ये अवस्थाएं ही परिणाम या पर्याय कहलाती हैं ।

द्रव्य - द्रव्य की परिभाषा करते हुए वीरोदयकार मुनि ज्ञानसागर महाराज ने लिखा है -

'द्रव्यं तदेतद् गुणपर्ययाभ्यां यद्वाऽत्र सामान्य विशेषताऽऽभ्याम् ।' अर्थात् गुण और पर्याय से संयुक्त तत्त्व को, अथवा सामान्य और विशेष धर्म से युक्त तत्त्व को 'द्रव्य' कहा जाता है ।

भारतीय दर्शनों में द्रव्य, तत्त्व एवं पदार्थ शब्द का प्रयोग समान रूप से किया गया है, किन्तु द्रव्य के स्वरूप तथा उसके भेदों के सम्बन्ध में प्रत्येक दर्शन के मन्तव्य अलग-अलग हैं । जैन परम्परा में इन तीनों शब्दों का प्रयोग तीन- अलग-अलग सन्दर्भों में किया गया है ।

जैनदर्शन में द्रव्य की परिभाषा 'सत्' की गयी है । अर्थात् जो अस्तित्व वाला है, वह द्रव्य है । अस्तित्व त्रिकालाबाधित होता है । यह कभी विनष्ट नहीं होता । इसी प्रकार असत् की उत्पत्ति नहीं होती । इस तरह जैनाचार्यों ने द्रव्य की परिभाषा सत् रूप सुनिश्चित की । इससे यह निश्चित होता है कि द्रव्य में द्रव्यत्व बाहर से नहीं आता, प्रत्युत उसकी अपनी स्वरूपगत विशेषता है । इसलिए जितने भी द्रव्य हैं, वे अपनी स्वरूपगत विशेषताओं को कभी नहीं छोड़ती, यही उनका द्रव्यत्व है ।

द्रव्य 'सत्' स्वरुप वाला होता है, क्योंकि यह न तो कूटस्थ नित्य है, और न सर्वथा क्षण-भंगुर, प्रत्युत इसमें सत् की अपेक्षा नित्यत्व तथा परिवर्तन की अपेक्षा अनित्यत्व अर्थात् उत्पत्ति और विनाश सम्मिलित हैं । इस तरह सत् की परिभाषा निश्चित करते हुए कहा गया है कि जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य पाये जायें, वह सत् है ।

स्वरुप की अपेक्षा द्रव्य नित्य अर्थात् ध्रुव है, तथा परिवर्तन की अपेक्षा उत्पाद् और व्यय रूप है । यह उत्पाद और व्यय प्रतिक्षण होने से इसमें द्रव्य के उत्पन्न और विनाश होनेवाले समस्त पर्यायों का समावेश हो जाता है । पर्याय परिवर्तन की स्थिति में भी द्रव्य अपनी ध्रुवता या नित्यता से मुक्त नहीं होता ।

द्रव्य का स्वरुपगत वैशिष्ट्य यह है कि जिस तरह द्रव्य में पर्याय परिवर्तन उसकी स्वरुपगत विशेषता है, उसी प्रकार द्रव्य में उसका गुण सर्वदा विद्यमान रहता है । पर्याय परिवर्तन को व्यक्त करता है, तथा गुण द्रव्य को स्वरुपगत विशेषता को

अभिव्यक्त करता है । इस तरह प्रत्येक द्रव्य के गुण और उसके पर्याय उस द्रव्य की स्वतंत्रता को बनाये रखते हैं, क्योंकि एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य में संक्रमित या स्थानान्तरित नहीं होता । इसी प्रकार द्रव्य के पर्याय उसके स्वरूप से सर्वथा भिन्न नहीं हो सकते । इस कारण द्रव्य को गुण पर्यायवान् माना गया । द्रव्य में गुण बाहर से नहीं आता । अर्थात् द्रव्य से गुण भिन्न नहीं है, जिससे गुण और गुणवान् इस प्रकार का भेद किया जा सके । इसी प्रकार पर्याय परिवर्तन में सातत्य द्रव्य की ध्रुवता को व्यक्त करता है । इस कारण प्रतिक्षण उत्पाद और विनाश होने के बाद भी द्रव्य का सत् स्वरुप अन्य भारतीय दर्शनों की अपेक्षा विलक्षण है । इसके साथ ही इसकी स्वरुपगत विशेषताओं से ज्ञात होता है कि अन्य दर्शनों में प्रतिपादित द्रव्य का स्वरुप और उसके भेदों की कई बातों का समावेश द्रव्य के उक्त लक्षण में हो जाता है । ये छह द्रव्य हैं - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ।

प्रत्यक्ष - वीरोदय में 'प्रत्यक्ष' का लक्षण करते हुए कहा गया है कि भगवान् पुरु (ऋषभ) देव ने 'अक्षं आत्मानं प्रति यत् वर्तते तत्प्रत्यक्षम्' ऐसा कहा है । अर्थात् जो ज्ञान केवल आत्मा की सहायता से उत्पन्न हो, वह प्राचीन ज्ञान कहलाता है।

'इन्दतीति इन्द्र आत्मा' के अनुसार जैन परम्परा में इन्द्र का अर्थ आत्मा किया गया है । जिस प्रकार इन्द्र पूर्ण स्वतंत्र होता है, उसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय स्वयं में पूर्ण स्वतंत्र होती है । इसी कारण मुनि ज्ञानसागर कृत 'प्रत्यक्ष' की परिभाषा में, अक्ष का अर्थ आत्मा किया गया है ।

आत्मा की योग्यता से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है । केवलज्ञान में सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थ प्रतिभासित होते हैं । तत्त्वज्ञान रूप यह पूर्ण ज्ञान प्रत्यक्ष है । प्रत्यक्ष ज्ञान स्वावलम्बी और आत्ममात्र सापेक्ष होता है । इसके होने में इन्द्रिय और मन, प्रकाश आदि बाह्य साधनों की सहायता अपेक्षित नहीं होती । प्रत्यक्ष के विषय में जैनदर्शन की मूल एवं प्रत्यक्ष परिभाषा है ।

परन्तु तार्किक युग में प्रत्यक्ष की उपर्युक्त परिभाषा स्थिर नहीं रह सकी । तार्किक युग में प्रत्यक्ष के दो भेद किये गये- 1. सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, 2. पारमार्थिक प्रत्यक्ष । प्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग लोक में इन्द्रिय प्रत्यक्ष के अर्थ में किया जाता है। जैनेतर दर्शनों में भी इन्द्रिय ज्ञान को प्रत्यक्ष माना जाता है । अतः सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष संज्ञा दी गयी । मूलतः आगमिक व्याख्या के अनुसार इन्द्रिय जन्य ज्ञान परसापेक्ष होने से परोक्ष ही हैं । पारमार्थिक प्रत्यक्ष दो प्रकार का है - सकल प्रत्यक्ष और विकल प्रत्यक्ष। केवलज्ञान को सकल प्रत्यक्ष कहा गया, क्योंकि यह पूर्णतः निर्मल होता है । अवधि और मनः पर्यय को विकल प्रत्यक्ष के अन्तर्गत रखा गया । क्योंकि इन दोनों की अपनी-अपनी परिसीमाएं हैं । ये द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि से परिमित होते हैं तथा विनश्वर हैं अर्थात् केवलज्ञान होने पर विलीन हो जाते हैं ।

परोक्ष - परोक्ष का लक्षण करते हुए वीरोदयकार ने लिखा है 'यदिन्द्रियाद्यैरुपजायमानं परोक्षमर्थाद्दवतीह मानम् ।' २०/२१ । जो ज्ञान, इन्द्रिय, आलोक आदि की सहायता से उत्पन्न होता है । वह ज्ञान जैनागम में वस्तुतः परोक्ष ही माना गया है। कर्मबद्ध जीव के ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान का आवरण जैसे-जैसे कम होता है । वैसे-वैसे ज्ञान का क्रमिक विकास होता जाता है । यह सम्यग्ज्ञान ऐन्द्रियक है । इन्द्रिय, मन, और प्रकाश आदि जीव से भिन्न परद्रव्य है । अतः इन्द्रिय और मन आदि के सहयोग से उत्पन्न होने वाला ज्ञान एक तरफ सापेक्ष है और दूसरे ओर पराश्रित है, इसलिए उसे परोक्ष माना गया है । आगमिक परम्परा में, प्रत्यक्ष और परोक्ष की यह परिभाषा जैनपरम्परा की अपनी है । ऐन्द्रिय ज्ञान के क्रमिक विकासानुसार ज्ञान के चार प्रकार हैं - 1. आभिनिबोधिक । मति 2. श्रुत 3. अवधि और मनः पर्यय या मनः पर्याय ।

प्रत्यक्ष और परोक्ष की उपर्युक्त परिभाषाओं के सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि जैन परम्परा में 'अक्षणा समक्षं प्रत्यक्षम्' में अक्ष का अर्थ आत्मा है, जबकि अन्य दार्शनिक परम्पराएं अक्ष का अर्थ चक्षु इन्द्रिय मानती है । और उपलक्षण से सभी इन्द्रियों का ग्रहण होता है ।

इस प्रकार मुनि ज्ञानसागर महाराज विरचित वीरोदय महाकाव्य में प्राचीन जैन परम्परा की ही सरणि में यथाप्रसंग अनेक पारिभाषिक शब्दों की सरल, सटीक एवं सारगर्भित परिभाषाएं प्रस्तुत की गई हैं ।

डॉ. कमलेश जैन

रिसर्च एशोसिएट

बी. एल. इंस्टीटयूट ऑफ इण्डोलॉजी

दिल्ली

❑❑❑

वीरोदय काव्य का व्याकरणात्मक वैशिष्ट्य

डॉ. विश्वनाथ मिश्र

वीरोदय महाकाव्य मुनि श्री ज्ञानसागर जी की अमरकृति है । महाकवि कालिदास-माघ-भारवि - श्रीहर्ष इत्यादि महानुभावों ने कविता मन्दाकिनी की जो अनुपम धारा प्रवाहित की वह आज भी अजस्ररूपेण गतिशील है, यह बात इस महाकाव्य से अभिव्यञ्जित होती है ।

काव्य निर्माण की एक शक्ति होती है, जिसे प्रतिभा कहते हैं । प्रतिभा का अर्थ है प्रतिभासयति - समुपस्थापयति काव्यात्मभूत रसोपकारकान् - शब्दार्थ गुणालंकारादीन् उपदादेयान् या सा प्रतिभा । यह नवनवोन्मेष - शालिनी बुद्धि है । यही कवित्व का बीज है । यह संस्कार रूपा है । इसके बिना काव्य का निर्माण हो नहीं सकता । यदि कथञ्चित् हो भी जाय, तो वह उपहसनीय ही होता है । प्रतिभा के दो रूप हैं - कारयित्री और भावयित्री । कारयित्री प्रतिभा कवि की उपकारिका होती है और भावयित्री प्रतिभा कविनिष्ठ होते हुए भी सहृदयोपकारिका होती है ।

सहृदय व्यक्ति ही काव्यज आनन्दानुभूति के अधिकारी होते हैं । कहा भी गया है - पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद् रससन्ततिम्। वीरोदय काव्य को देखने से विदित होता है कि मुनि ज्ञानसागर जी में उभयविध प्रतिभाओं का सामानाधिकरण्य था ।

प्रतिभा के द्वारा शब्दार्थ की उपस्थिति की बात ऊपर कही गई है । जिसके पास प्रचुरमात्रा में शब्द भण्डार है, उसे ही शब्द की उपस्थिति होती है । यह बात विदित वेदितव्य महानुभावों से तिरोहित नहीं है कि शब्द की व्याक्रिया व्याकरण के द्वारा की जाती है । भर्तृहरि कहते हैं -

तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते ।

व्याकरण वह निकषोपल है जिसके द्वारा शब्द का विशुद्ध और परिमार्जित रूप सामने आता है । धातु और प्रत्ययों की आधार शिला पर शब्दों का निर्माण कर उनके अन्तराल में निहित अर्थ की अभिव्यक्ति करना व्याकरण का उद्देश्य है ।

व्याकरण वह निरापद राजमार्ग है जिस पर अबाधरूप से चलते हुए अपने गन्तव्य को प्राप्त किया जा सकता है । शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं, इसलिये काव्य निर्माण के लिये शब्द का प्राचुर्य अपेक्षित होता है । वीरोदय काव्य जहाँ अपनी काव्यकला और काव्यीयतत्त्वों से परिपूर्ण हैं वहीं यह इस बात को भी अभिव्यञ्जित करता है कि इसके निर्माता का शब्द भण्डार अक्षय्य है । इस निबन्ध में इस महाकाव्य का व्याकरण वैशिष्ट्य ही विवेचनीय है । इस प्रसंग में एक बात ध्यातव्य है कि प्रस्तुत काव्य प्रायः तुकान्त पद विन्यास में रचित होने के कारण अन्त्यानुप्रास से भरा हुआ है । यद्यपि अलंकार काव्य शोभाधायक होने के कारण काव्य में उस स्थान को नहीं प्राप्त कर सके जो स्थान काव्यात्मभूत ध्वनि को प्राप्त है तथापि तुकान्त कविता बनाने से कवि की शब्दशास्त्र में निष्णातता विकल्पातीत है ।

प्रस्तुत है प्रथम सर्ग का दूसरा श्लोक इस सन्दर्भ में

कामारिता कामितसिद्धये नः समर्थिता येन महोदयेन ।
सैवाभिजातोऽपि च नाभिजातः समाजमान्यो वृषभोऽभिधातः ।

इस श्लोक के चारों चरणों में तुकान्त शब्दों के प्रयोग की चर्चा न करके यहां व्याकरण सम्बन्धी कुछ बातों पर विचार किया जा रहा है । इस श्लोक में एक पद आया है 'कामित सिद्धये' । इससे कामित पद कम् धातु से स्वार्थ में णिङ् प्रत्यय से कामिधातु बना कर उससे क्त प्रत्यय करके बनाया गया है । यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि कम् धातु के सेट् होने के कारण क्त प्रत्यय को इट् का आगम तथा धातु के इकार को गुण अयादेश करके 'कामयित' ऐसा रूप बनना चाहिये, न कि कामित। इसके उत्तर में कहा जाता है कि कामि ङ त'' उस स्थिति में ''निष्ठायां सेटि'' सूत्र से णिङ् का लोप करके ''कामित'' पद की सिद्धि यहाँ सुकर है । अथवा कम् धातु से णिङ् और उससे घञ् प्रत्यय और णिङ् का लोप करके ''काम'' शब्द अकारान्त बना कर उससे 'तदस्य संजातं तारकादिभ्यः इतच्' सूत्र से 'कामः सञ्जातः यस्य स कामितः', अर्थात् इच्छा विषयी भूतपदार्थ यह कामित का अर्थ होता है । इसकी सिद्धि के लिये भगवान् ने काम से शत्रुता की । अथवा - 'कामम् इतः प्राप्तः कामितः' इस प्रकार भी कामित शब्द बनाया जा सकता है ।

इस सन्दर्भ में यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विद्वान् कवि आचार्य ज्ञानसागर जी ने ऐसे शब्द का प्रयोग किया है, जिसकी सिद्धि चाहे किसी प्रकार की जाय, अर्थ का परिवर्तन नहीं हो रहा है ।

इसी श्लोक में नाभिजात शब्द का प्रयोग किया गया है । विरोधाभास को व्यक्त करने के लिये यहाँ 'न अभिजात:' उस प्रकार नञ् समास किया जाता है, किन्तु ऐसा करने पर नकार का लोप और नुट् का आगम करके 'अनभिजात:' इस प्रकार का रूप बनना चाहिये न कि 'नाभिजात:' ऐसा रूप । किन्तु काव्य कर्त्ता की दृष्टि से यह आशंका ओझल नहीं रही होगी । उन्होंने देखा कि नञ् का लोप तो नञ् समास में होता है । यहाँ पर यदि 'सुप् सुपा' से समास किया जाय जो नकार के लोप का प्रश्न ही नहीं है । इसीलिए उन्होंने नाभिजात: शब्द में इस प्रकार समास के द्वारा विरोधालंकार की बात की ।

प्रथम सर्ग के तीसरे श्लोक में भगवान् चन्द्रप्रभ को नमस्कार किया गया है । यहाँ कहा गया है कि चन्द्र प्रभ के अंगसार कान्ति सौष्ठव से पृथिवी पर हर्ष का प्रकर्ष हुआ । कारण कि अज्ञानान्धकार के दूर होने से मनुष्य अपने स्वरूप को प्राप्त कर आनन्दित होता है ।

यहाँ 'समस्य' पद आया है, जिसका अर्थ है प्राप्त करके । इससे स्पष्ट होता है कि यह पूर्वकालिक क्रिया का बोधक अव्यय पद है जो 'क्त्वा' प्रत्यय से बना हुआ है । अस् धातु गतिदीप्ति और आदान अर्थ में आता है । यह धातु सेट् है क्त्वा प्रत्यय करने पर असित्वा ऐसा रूप बनेगा । किन्तु जब असित्वा का सम् उपसर्ग के साथ समास किया जायेगा तब क्त्वा के स्थान पर ल्यप् होकर 'समस्य' । यह रूप बनता है । यहाँ विशेषत: ध्यातव्य यह है कि ल्यप् करने पर इट् का निमित्त जो वलादित्व है, वह समाप्त हो जाता है । इसलिये क्त्वा को ल्यप् करने पर 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय:' कारण के नष्ट होने पर कार्य का भी नाश हो जाता है । उस न्याय के आधार पर वलादित्व के नष्ट होते ही तत्प्रयुक्त इट् का भी अभाव हो जाता है ।

आचार्य श्री का व्याकरण ज्ञान कितना व्यापक है उसकी एक छटा प्रथम सर्ग के पांचवें श्लोक में देखी जा सकती है श्लोक इस प्रकार है -

वीर ! त्वमानन्दभुवामवीर: मीरो गुणानां जगताममीर: ।
एकोऽपि सम्पासितमामनेक: लोकाननेकान्तमतेन नेक ।।

इसका अर्थ है कि हे वीर । तुम आनन्द की मूर्ति होकर के भी अवीर हो । गुणों के मीर होकर भी अमीर हो । हे नेक । भद्र । तुम अकेले ही अनेकान्त मत से अनेक लोकों को एकता के सूत्र में बांधे हो ।

इस श्लोक में वीर अवीर, मीर, अमीर, एक अनेक और नेक शब्द आये हैं । इनमें मीर और अमीर शब्दों को छोड़कर शेष शब्द संस्कृत के प्रसिद्ध शब्द हैं । इनमें भी नेक शब्द संदिग्ध ही है कि उसे कहां का माना जाय । हिन्दी व्याख्या में नेक का अर्थ भद्र किया गया है । उससे लगता है कि यह हिन्दी का शब्द यही प्रयुक्त हुआ है । पर बात ऐसी नहीं है । कारण कि काव्य कर्त्ता के सामने अनेक कोषों के साथ विश्वलोचनकोश भी था । वहाँ लिखा हुआ है कि 'मीरोऽब्धिशैल नीरेषु' अर्थात् मीर शब्द समुद्र पर्वत जल का वाचक यहा भगवान् को वीर और अवीर दोनों कह कर विरोध दिखलाया गया है, किन्तु परिहार करते समय कहा जाता है कि हे वीर । तुम अ: विष्णु तस्येव वीर: असि अर्थात् तुम विष्णु के समान वीर हो । यहाँ भगवान् और विष्णु की समानता वीरता के आधार पर बताई गई है । वीरत्व ही दोनों का सामान्य धर्म है । अ पद का वीर पद के साथ 'उपमानानि सामान्यवचनै: सूत्र से समास किया गया है । इस प्रकार यहाँ विरोध का परिहार होता है ।

इसी प्रकार इस श्लोक में एक और नेक पद आये हैं । जो एक है वह नेक कैसे हो सकता है ? इस प्रकार विरोध की प्रतीति यहां होती है, किन्तु व्याकरण वैशिष्ट्य से उसका परिहार उस प्रकार किया जाता है कि यहाँ इ शब्द कामना या खेद का वाचक है । उससे इ: एव इक: स्वार्थिक कत् प्रत्यय । न इक: नेक: अर्थात् कामना अथवा खेद से जो रहित है वही नेक है । इस प्रकार यहाँ विरोध का परिहार होता है । यदि यहाँ 'न एक:' ऐसा नञ् समास किया जाता तो नलोप और नुट् का आगम करके अनेक शब्द बन जाता । यदि नलोप को न होने देने के लिये सुप् सुपा से समाज किया जाय तो नैक शब्द बनेगा, किन्तु ये शब्द तो अभीष्ट नहीं है अत: यहां उपर्युक्त प्रकार से न और इक का ही समास करता होगा । इस श्लोक में आया हुआ 'सम्पासितमाम्' यह प्रयोग भी व्याकरण सम्बन्धी विशेषता को ही प्रकट कर रहा है जहां सम् उपसर्ग पूर्वक 'पासि' इस तिङन्त क्रियावाचक पद से 'तिङश्च' सूत्र से तमप् और उससे आम् प्रत्यय करके 'सम्पासितमाम्' ऐसा पद बनाया गया है। श्लोक की तुकान्त रचना यहां भी यथावत् ही है ।

नाम अर्थात् मूल शब्द जिसे प्रातिपादिक कहते हैं उसे भी धातु बनाने की व्याकरण शास्त्र की एक परम्परा है इस काव्य में नामधातुओं का प्रयोग भी प्रचुरमात्रा में हुआ है । उदाहरण के लिये प्रथम सर्ग के चौबीसवें श्लोक में हारायते इस पद का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार बाईसवें सर्ग के श्लोक 33 में पुरुषयताम् यह प्रयोग आया है । यहाँ 'हार इव आचरति हारायते' 'पुरुष इव आचरति पुरुषायते' इस प्रकार के प्रयोग "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इस सूत्र से क्यङ् प्रत्यय करके बनाये गये हैं । इस प्रकार के अनेक प्रयोग इस महाकाव्य में देखने को मिलते हैं ।

भूतकालिक क्त प्रत्यय का सौन्दर्य कवि ने एक ही श्लोक में तुकान्त प्रयोगों के द्वारा जो किया है, वह पठनीय है। श्लोक इस प्रकार है -

लतेव सम्पल्लवभावभुक्ता दशेव दीपस्य विकासयुक्ता ।
सत्तेव नित्यं समवादसूक्ता द्राक्षेव याऽऽसीन्मृदुता प्रयुक्ता । ३/१९

यह श्लोक सिद्धार्थ राजा की पत्नी प्रियकारिणी के वर्णन में आया है । वह रानी लता की भाँति सम्पल्लव भाववाली है, दीपक के समान विकास से युक्त तथा नैयायिकों की सत्ता की भांति सामान्य धर्म से युक्त समदर्शिनी यह रानी द्राक्षा के समान कोमल है ।

यहाँ भुक्ता, युक्ता, उक्ता, तथा युक्ता इन क्तप्रत्ययान्त प्रयोगों के द्वारा कवि ने अपनी शब्द योजन कला को भलीभाँति व्यक्त किया है ।

वर्तमानकालिक तृच् प्रत्ययान्त शब्द का स्त्रीलिंग रूप इसी सर्ग तीसरे के अठारहवें श्लोक में दर्शनीय है -

वाणीव यासीत्परमार्थदात्री कलेव चानन्दविधा विधात्री ।
वितर्कणावत् परमोहपात्री, मालेव सत्कौतुकपूर्णगात्री ।।

यहाँ दा धातु तथा धा धातु से तृच् प्रत्यय करके उसमे ङीप् करके दात्री और धात्री शब्द बनाया गया है ।

इस श्लोक का उत्तरार्द्ध विचारणीय है । यहां रानी को वितर्कणा के तुल्य बताया गया है । दोनों का साधारण धर्म परमोहपात्री को बनाया गया है । वितर्कणा परम ऊह निर्दोष ऊह व्याप्ति ज्ञान का पात्र है । आचार्य हेमचन्द्र कहते हैं -

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञान मूहः ।

उपलम्भ और अनुपलम्भ जिसमें निमित्त हैं वह व्याप्ति ज्ञान ही ऊह है । उस प्रकार ऊह वितर्कणा का पात्र होता है। इधर रानी पर = उत्कृष्ट जो मोह=प्रेम उसका पात्र है । यहां सभंग श्लेष के द्वारा परम ऊहस्य पात्री तथा परमोहस्य पात्री इस प्रकार षष्ठी समास किया गया है, किन्तु पात्र शब्द के नित्य नपुंसक लिंग होने के कारण यहाँ परमोहपात्रम् ऐसा पाठ होना चाहिये।

इसी प्रकार रानी को माला की भांति बताकर साधारण धर्म के रूप में सत् कौतुक पूर्णगात्री को सामान्य धर्म बनाया गया है । यहाँ भी सभंग श्लेष है । सद्भिः प्रफुल्लैः कौतुकैः कुसुमैः पूर्णगात्रं मालायाः तथा सता समीचीनेन कौतुकेने विनोदेन पूर्ण गात्रं यस्याः सा सत् कौतुकपूर्णगात्री राज्ञी ।

यहां पात्र और गात्र शब्द को गौरादि गण में परिकल्पना करके ङीष् प्रत्यय करके मोहपात्री और पूर्णगात्री शब्द की सिद्धि की जा सकती है । यदि कहा जाय कि गौरादिगण में उक्त दोनों शब्दों का पाठ न होने के कारण उसे आकृतिगण मानना, फिर उसमें इन शब्दों के पाठ की कल्पना करना, यह सब गौरव ग्रस्त बातें हैं तो ऐसी स्थिति में "मोहं पाति रक्षतीति मोहपात्री तथा सत् कौतुकपूर्ण गायति इति सत्कौतुकपूर्णगात्री, इन रूपों की सिद्धि कर्त्ता ने तृच् प्रत्यय और उस तृच् प्रत्ययान्त से ऋदन्तेंत्वात् ङीप् करके की जा सकती है ।

तीसरे सर्ग के दूसरे श्लोक और धैर्य को देखकर मेरू दूर चला गया और इनकी मुक्तामयता और गंभीरता से समुद्र ग्लपित हो गया । यहां ग्लपित शब्द की सिद्धि ग्लैधातु स्वार्थिक णिच्, आत्व पुक् और अकर्मक धातु से कर्त्ता में क्त प्रत्यय, इसे इट् का आगम और णिच् का लोप करके बनाया गया है । कर्त्ता के क्त प्रत्यय करने का परिणाम यह हुआ है कि समुद्र वाचक वार्धि शब्द में प्रथमा विभक्ति हुई । अन्यथा कर्मवाच्य में जहाँ क्त प्रत्यय होता है वहां कर्त्ता में तृतीया हो जाती है । यहाँ यह भी विचार किया जा सकता है कि यहाँ धातु के ऐकार को आकार करने पर ग्लापित ऐसा रूप बनना चाहिये, किन्तु 'ग्लास्नावनुवमां च" इस घटादि के गणसूत्र से ग्ला धातु की वैकल्पिक मित् संज्ञा करके "मितां ह्रस्वः" सूत्र से ह्रस्व करने से 'ग्लपित' रूप की सिद्धि की गई है । पूरा श्लोक इस प्रकार है -

सौवर्ण्यमुद्वीक्ष्य च धैर्यमस्य दूरं गतो मेरुरहो नृपस्य ।
मुक्तामयत्वाच्च गभीरभावादेतस्य वार्धिर्ग्लपितः सदा वा ॥ /3/2

महाकवि कालिदास ने उक्त रूप से निष्पन्न ग्लपि धातु का प्रयोग इस प्रकार किया है - ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा कुमुद्वतीं दिवसः । अनेक प्राचीन कवियों ने अपाणिनीय प्रयोग किये हैं ।

इस प्रकार इस वीरोदय महाकाव्य व्याकरण के महान वैशिष्ट को प्रदर्शित करता है हाँ कहीं-कहीं अपाणिनीय प्रयोग हुए है लेकिन, वे प्रयोग व्याकरण से बाहर नहीं है क्योंकि पाणिनीय प्रकरण के अलावा कवि अन्य व्याकरणों के भी ज्ञाता थे। अन्य व्याकरणों में पाणिनीय के व्याकरण से कई स्थानों पर विभिन्नता मिलती है कवि ने उनसे भी जिससे कवि के नानाव्याकरणवेतृत्व की सिद्धि होती है । शब्द सिद्धि की है अतः यह काव्य अनेक व्याकरणों का आलम्बन लेकर लिखा गया है । इसी प्रकार कवि ने वीरोदय में और भी बिल्कुल नवीन शब्दों के प्रयोग करके संस्कृत साहित्य की शब्द संपदा को वृद्धिगत किया है ।

विश्वनाथ मिश्र
जैन विश्वभारती, लाडनूँ

□ □ □

वीरोदय में प्रयुक्त उपसर्ग

डॉ. रमा दुबलिश

संस्कृत सभी भाषाओं में समृद्धतम भाषा स्वीकार की गई है । भाषा एक अर्जित संस्था है, निरन्तर उपयोग से जो परिवर्तित और विवर्धित होकर अपनी व्यञ्जना शक्ति बढ़ाती है । नयी आवश्यकतायें नयी-नयी अभिव्यक्तियों को जन्म देती है । कुछ शब्द पुराने होकर अप्रचलित हो जाते हैं । मानव की विभिन्नताओं से प्रयत्नलाघव वर्ण विपर्यय और समीकरण की प्रवृत्ति भी भाषा में परिवर्तन और विकास का कारण होती हैं ।

'संस्कृत भाषा' यह समस्त पद अर्थ कर्म धारय समास है यह भाषा प्रयोक्ताओं तथा प्रवर्तकों के द्वारा नियमों में बंधकर एवं परिष्कृत होकर भारत वसुन्धरा पर प्रचलित हुई है । प्राचीन काल से लेकर संस्कृत आज तक अल्प परिवर्तनों की परिधि में परिभ्रमण कर रही है, श्रुति स्मृति तथा भाष्यकाल खण्ड में एक विकास क्रम दिखाई देता है । भाण्डारकर संहिता काल, मध्य संस्कृत काल तथा लौकिक संस्कृत में काल विभाजन कर संस्कृत भाषा का विकास क्रम दिखाया है, इसके अतिरिक्त पुराण काल भी माना जाता है जहाँ कथानक का नहीं अपितु कविगण कल्पना लोक की यात्रा करके काव्य सर्जना में प्रवृत्त हुये हैं। इसी काल में गद्य पद्यात्मक विविध ग्रन्थ नाटक आख्यान आख्यायिका आदि की रचना हुई है । कल्पना शक्ति से अलंकारों का आविर्भाव हुआ । संस्कृत भाषा में उपलब्ध जैन ग्रन्थों की अधिकांश रचना इसी काल में हुई है । पहले जैन आचार्यों की तत्त्व देशना प्राकृत में हुआ करती थी, प्राकृत भाषा साहित्य का भी विशाल भण्डार है, प्राकृत के बाद जैन ग्रन्थ कारों ने अपभ्रंश में भी रचना की है । स्वयंभू पुष्पदन्त रइधू आदि की अपभ्रंश रचनायें भाषा मर्मज्ञो का हृदय हरती हैं । आज भी जैन मुनि अपनी वैराग्य साधना में काव्य के माध्यम से आनन्द वितरित कर स्वयं को अपने काव्य नायक के जीवन वृत्त से आनन्दित कर रहे हैं । बीसवीं शताब्दी में लिखा गया यह वीरोदय काव्य जैन मुनि ज्ञान सागर जी महाराज की सुन्दर कृति है । इसमें प्रयुक्त उपसर्गों का विवेचन इस शोध पत्र का प्रयोजन है । लौकिक संस्कृत में उपसर्ग व्याकरण की दृष्टि से बहुधा अनेक सूत्रों में विवेचित हैं परन्तु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी उपसर्गों का यत्किञ्चित् विवरण देना युक्ति युक्त है । भाषा विज्ञान तो व्याकरणों का भी व्याकरण है जो अनेक प्रकार से शब्दार्थ पर विचार करता है । पाणिनि ने उपसर्गों का विवेचन अपने वर्तमान की दृष्टि से किया है परन्तु भाषा विज्ञान उन उपसर्गों का मूल अनुसन्धान करता है । संस्कृत के महाकवियों में मर्धन्यतम हैं - कालिदास जिनकी कृतियों का अर्थ विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन किया जा चुका है ।

'वीरोदय काव्य' की भाषा पाणिनि सम्मत व्याकरण के अनुकूल ही है परन्तु ग्रन्थ के आदि में ही सेवा-मेवा (1-1) मीरोऽमीर 1-5 अनेक नेक 1-5 आदि पदों से संस्कृत की समाहार शक्ति और अभिव्यञ्जना नयनों एवं कानों के माध्यम से चित्त विकास कर देती है । कुछ नाम धातुओं के प्रयोग बड़े अर्थव्यञ्जक हैं ।

छत्रायते वृत्ततयाप्यखण्डः (2-3)
योषा सुतोषा पुरुषायितेषु (4-21)
रात्रौ गौपुरमध्यवर्त्ति सुलसच्चन्द्रः किरीटायते (2-46)
कुहरितायत एष समद्भुतः 6-28, निद्रायते 12-16
स्वरोटिका मोटयितुम् 9-9 इत्यादि ।

कुछ अपाणिनीय प्रयोग भी इस ग्रन्थ में मिलते हैं जैसे दृष्टि के स्थान पर द्रष्टि और पृदाकु के स्थान पर प्रदाकु (6-16) वैयाकरण पाणिनि ने पर्द धातु से काकु प्रत्यय करके कित् होने के कारण गुणनिषेध तथा सम्प्रसारण द्वारा शब्द सिद्धि कर दी परन्तु अपाणिनीय प्रयोग होते हुए भी अन्य व्याकरणों से सिद्ध है क्योंकि कवि पाणिनीय व्याकरण के अलावा अन्य व्याकरणों के ज्ञाता थे । अन्य व्याकरणों में पाणिनीय व्याकरण की अपेक्षा कुछ भिन्नता पाई जाती है और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी देखें तो - रं का उच्चारण आजकल बहुधा ऋ के स्थान पर सुनायी देता है । यह लोक प्रवृत्ति है जो भाषा वैज्ञानिक की दृष्टि में न्यायोचित हो सकती है कालिदास सुकुमार मार्ग के कवि कहे जाते हैं जिन्होंने प्रायः वैदर्भी रीति को अपनाकर काव्य को क्लिष्ट होने से बचाया है । यदि महाराज ज्ञानसागर जी को वीरोदय काव्य में कालिदास के उपर्युक्त गुण से विलसित रूप में देखा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । दार्शनिक तत्वों को काव्य के परिवेश में रखकर वह कभी-कभी नैषधीय चरितम् का भी स्मरण करा देते है । महारानी त्रिशला के स्वप्नों की व्याख्या में उपर्युक्त प्रसङ्ग का पूर्व रूप समझा जा सकता है ।

अब अपने गृहीत विषय की ओर आते हैं । 22 सर्गों के इस काव्य में महाकाव्य के सभी लक्षण घटित हो जाते हैं। प्रथम सर्ग में मंगलाचरण कवि विनय प्रदर्शन काव्य का महत्व प्रदर्शित किया गया है 'वीरोदय ग्रन्थ' के नायक महावीर जी के आविर्भाव काल तक भरत खण्ड की सामाजिक व धार्मिक परिस्थिति के चित्रण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समय को महावीर जैसे वीर की आवश्यकता थी । मानव मूल्यों का अवमूलन स्वार्थ की बलिवेदी पर पशुओं की भेंट, अज्ञान के अन्धकार में डूबे हुये मानवों को वर्तमान के अंधेरे से निकालने के इच्छुक महाराज अपने वीरोदय काव्य से यह बताना चाहते हैं कि 23 वें तीर्थंकर महाप्रभु पार्श्वनाथ का व्यक्तित्व उस पारसमणि के समान है जिसमें लोहे को स्वर्ण बना देने की क्षमता है । भाषा में व्यक्तित्व की उपेक्षा नहीं होती अपितु वह अर्थ ग्राहिका शक्ति का प्रकर्ष प्रकट करती है । उपसर्ग विषय बहुत गम्भीर है 'वीरोदय' में उपसर्ग प्रयोग एक पूरा शोधपत्र का विषय है - यहाँ उपसर्ग प्रयोग की वर्गीकृत विवेचना ही सम्भव है - जो इस प्रकार है -

प्र. उपसर्ग पूर्व सर्ग के रूप में अल्प ही मिलता है किन्तु क्रियाओं और संज्ञाओं के पूर्व उपसर्ग के रूप में अत्यन्त प्रचलित है - प्र. के अनेक अर्थ हैं, आगे, सामने, पहले, दूर आदि विभिन्न अर्थों के अतिरिक्त प्रारम्भ उत्कर्ष प्राथम्य ख्याति और उत्पत्ति आदि का भी भाव अभिव्यक्त होता है -

उत्कर्ष अर्थ में विद्यमान - प्रवर्त्तयन् रसायनाधीश्वर एष कालः प्रवर्त्तयन्कौशलमित्युदारः (वीरोदय 4-4)

किं. राजिलेषु गरुड प्रवर्त्तते । रघु.- 11-27॥

आवश्यकता से अधिक के अर्थ में - प्रपाठः

प्रपाठोऽस्ति मौढ्यस्य कार्यं
तदेवानिशं धार्यमाणों विकाराय ते वा ॥
(वीरोदय 16, 18)

प्रपाठितम् का अर्थ प्रोक्त भी है ।

'' यैन यत्नेन मन्वाद्यैरात्मवचनं प्रपाठितम्''

प्रारम्भ अर्थ - प्रक्रमम् वी. 18, 32 आधिक्य तथा अतिशयत्व द्योतक - प्रचण्ड - वी. 12. 10

ज्ञानशील - प्रमाता वीरो. 18, 15 प्रमितिरस्मिन् इसी प्रकार प्रयोक्ता वी. (18-26) प्रतिपद्य (वी. 7-6)

प्रयुक्ति (22-13) प्रकम्पिता: (9-27)

प्रादेशि (18-16) प्र. अ दिश् चिण्-लुङ्

उपदेश दिया - यथासुखं स्यादिह लोकयात्रा प्रादेशि सर्वं विधिना विधात्रा

प्रसव - 6-18 सोपसर्ग संज्ञा प्रयोग - इसका अर्थ है उत्पाद । गौरिव प्रसवति अर्थात् रसमुत्तमशालिनी अश्वमेध पर्व 21-22 लक्षणा से यहाँ प्रसवति पद उत्पन्न करने अर्थ में है ।

प्रत्यक्रम् 19, 24 यहाँ प्र. कर्म प्रवचनीय है लक्षणार्थ में - परा पराभूति - 18, 16 विपत्ति नाश अर्थ में 'स्मृति: पराभूतिरिव ध्रुवत्वं पर्यायतस्तस्य पदेकतत्वम्

वस्तु स्वभाव अर्थ में परा उपसर्ग प्रयुक्त है जैसा दिवङ्गत महान् आत्मा चारुदेव जी व्यक्त करते हैं ''अनर्थकाश्चापि लक्ष्यन्ते, केचित् वस्तुस्वभावत: (उपसर्गार्थ चन्द्रिका प्रथम भाग मंगलाचरण)

पर्येति 18. - 18. उत्पाद और व्यय को पर्याय नाम से कहा है ।

परि उपसर्ग सर्वतो भाव को बताता है

परिक्रमा, परिकम्प परिगूढ़ परिपालित (4-59)

परिवार (9-93) परिव्राट् 11-11

परिब्रुवाण: (16-9)

परिपाक भर्त्ता 16,10 परिणाम भागी

परिणिष्ट - 7.18 विराजमान

परि अनर्थक होने पर कर्म प्रवचनीय हो जाता है ।

(पाणिनि 1.4.93) कुत: पर्यागच्छति में परिका कोई अर्थ नहीं है । जैसा कि ऊपर बताया है ।

अप - उपसर्ग के रूप में दूर का वाचक है पापात् अपेतनम पाप से रहित या दूर 17.23

वि - वि शब्दो नानात्वे

वि का प्रारम्भिक रूप है 'द्वि' जो दो भागों में विकसित हुआ है । विभाजन, वियोग और विशिष्टता का भाव इसमें व्यक्त होता है कभी कभी यह धातु का अर्थ उल्टा भी कर देता है । वीरोदय में इसके प्रयोग - विपत्ति 10.2 सम्पत्ति के विलोम अर्थ में व्येति 10.13 उलझती है

विहाय - 10.21, विजनम् विरक्तम् 10.25

व्यचरत् 11-1 विचार करने लगे (स्वयं मुनि महाराज के शब्दों में)

रघुवंश में अभिन्न भन्या विचचार रघु 28 व्यभावि 1-44, विराज ते 2-4

विस्फालित 2-16 (खुले हुये)

विनिवेश्य - 7.13, विगाल्य 18.39

विशेषयन्ति 22.22, विलिप्यते - 22.21

अनुउपसर्ग - क्रिया तथा संज्ञाओं से पूर्व उपसर्ग के रूप में पीछे, साथ, पास, नीचे आदि अर्थ देता है,

अनुविन्देत 1-29 जानने का प्रयत्न करें अनु निरर्थक है । अनुगम - 15.13

दिशि यस्यानुगम: सम्भाव्योऽभूत जिनेशिन:

अनुवादि - 12.2

पञ्चतन्त्र में गीतं शंखवादानुवादि शंखनाद सदृश अनुवर्ती 12-26

चित्तज्ञानानुवर्तिनोऽनर्था अपि प्रिया: (दशकुमार) अनुवृत्ति - 17-6 मनुष्यता आत्महितानुवृत्ति: अनुयोगेन - 18 32 विद्या के उपार्जन में देवीभागवत में - पूर्व वेदानुयोगेन स्नेहेन वै पुन: 4.2-11

निर् उपसर्ग निर्गत दोषता निर्दुष्टता को बताता है ''निर्मापयामास सभास्थल स यत्रप्रभुर्भुक्ति पथैक संश्रय: वीरो. 12-52

अन्यत्र निर् पूर्वक मा धातु प्रायेणोत्पादन रचना तथा प्रकल्पना अर्थ में प्रयुक्त होती है ।

निरेति - निर् इ अ + ति निकल रहा था वीरोदय में यह अन्यत्र भी प्रयोग है -

''संक्षेपत: पञ्चविधत्व मेति प्रमत्तता यात्म पथान्निरेति'' स्वयं महाराज के हिन्दी अनुवाद में निरेति का अर्थ भ्रष्ट करना है''

निराभया - 18.6, निगद्य - 18.14, न्यगादि 18.12
निरियाय 7.7, निष्ठ 17.20, निगोपयेत् 18.41
निधीयते - 15.5, निषेधयन्ति 22.22,
निर्रुक्ति- 22.13, निःस्वः 9.25
अतिरतिक्रमणेच 1 (पा. अ 1.4.95) अति शब्द अतिक्रमण तथा पूजार्थ में कर्म प्रवचनीय होता है
अतीन्द्रियम् 18.18, अतिग 17.22
अतिचरत् 17.28, अतिवल्प 22.5
(गौण बनाकर अथवा अतिक्रमण कर)
नि और अव उपसर्ग विनिग्रहार्थीय है -
अव उपसर्ग नीचे दूर आश्रय अनादर, विपाद आदि अनेक अर्थों को व्यक्त करता है ।
अवगाहमान - 12.13 आलोडन करता हुआ
अवबुद्ध्य - 7.5 अवधि ज्ञान से जानकर
अव कृष्य - 14 नीचे खींचकर
अभि अभिरमाणे - भाग अर्थ को छोड़कर लक्षण इत्यंभूताख्यानादि अर्थ में कर्म प्रवचनीय होता है ।
अभ्यवभि - 19.23 स्वीकार किया
किमङ्ग कर्तुनं भिया अभ्यवापि
अभिदवत् 12.16 चन्दन चर्चित
अभ्युदय 17.29, अभ्यसूया - 18.44
अभ्याप - 15.4, अभिषेचनम् 22.22
अभ्युपगभ्य - 22.16. अभिप्लुवन्ती 1.25
प्रतिपादित करती हुई

भाषाविदों के अनुसार संस्कृत 'अभि' में दो मूल भारोपीय उपसर्ग अभि और ओभ्भि मिलकर एकाकार हो गये हैं (फास्मेर एतिमॉलॉगीयेरिकम् स्तवार्य रुस्कॉवो यजीक भाग 3 पृ 96) अम्भि से ग्रीक अम्फि, (पास चारों ओर) लैटिन एम्ब, प्राचीन उच्च जर्मन उम्बि चारों ओर) विकसित हुये हैं । ओभि से लिथुआनियन अवि, रूसी ओब् अवेस्तन - अइवि गाथिक (बी) लैटिन (ओब्) तथा संस्कृत में अभि होता है । (संस्कृत और रूसी भाषा में प्रयुक्त उपसर्ग श्रीमती इन्दुलेखा पृ. 65)

अप - पूर्व सर्ग अपकार अपकर्ष (सतत) निडर पृथक्करणीय अव्यय (पूर्व सर्ग) के रूप में अप के दूर, के बिना अर्थों में पञ्चमी के साथ प्रयुक्त होता है । इससे बुरे अर्थ वाली अनेक संज्ञाएं भी बनती हैं ।

अपहार - 16 सी छीनकर, अपवाद 18.27
अपेतः 17.23, आदि
अधि - धातुओं एवं उनसे व्युत्पन्न शब्दों के पूर्वसर्ग के रूप में अधि ऊपर, अधिक अर्थों को सूचित करता है ।
अध्यगात् 18.7 सम्पन्न हुआ
पराधिष्ठितस्य 16-21 दूसरे के स्वामित्व की
अधिगमय्य - 18.32 बिताकर
अधिकुर्यात् - 18-38 अधिकार करना
अधिकरणम् 22.14

अधिरीश्वरे - अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्तं उप अधिक तथा हीन अर्थ को घोषित करने पर कर्म प्रवचनीय होता है - निर् तथा दुर् से अति और सु का प्रातिलोम्यार्थक माना गया है या निर्धनः दुर् ब्राह्मणः या निस्वः तथा दुःस्थे का प्रयोग पहले बताया गया है । दुःस्थे 18.11 दुरवस्था में प्राप्त दुरन्तकृन्तिन 17.24 विश्वासघात
अमानवं कर्म दुरन्तकृन्तिन
संक्षेपतः शास्त्रविदो वदन्ति:
दुरीहावृतः 16.25 दुराग्रहयुत

यह उपसर्ग प्रायः संज्ञाओं में लगता है । क्रियाओं तथा क्रिया-विशेषणों के साथ इसका विरल प्रयोग है उत्पत्ति की दृष्टि से यह अवेस्तन (दुश) गाथिक (तुज्) प्राचीन उच्च जर्मन (त्सुर) और ग्रीक दुस् से सम्बद्ध माना जाता है । स्वरों एवं घोष व्यञ्जनों से पूर्व दुस्व के स्थान पर दुर हो जाता है । जैसे दुर्दिन मेघाच्छन्न दिवस । आङ् मर्यादा वचने - पा. सू. 1.4.89 मर्यादार्थ में कर्म प्रवचनीय हो जाता है । वीरोदय काव्य में एतदर्थक प्रयोग सुगम नहीं हुआ संज्ञा एवं क्रियापद उपसर्ग सहित यहां है -

आराधनायाम् - 17.20

आविमातु - 17.26 मानी जाए

आदधाना - 1.28 आदि

उप-उपसर्ग निकटता, संसक्ति, शक्ति, योग्यता शिक्षण व्याप्ति परामर्शादि अनेक अर्थ देता है ।

उपतस्थु - 7.12 उपस्थित हुये

उपद्रुत - 1.12 उपद्रव को पराप्त कराया गया

उपयोजनय - योजन शब्द का अर्थ मन का केन्द्रीकरण भी है (आप्टे) वीरोदय काव्य में लसन्ति मन्तोऽप्युप योजनाय 1.11 इष्ट प्रयोजनार्थ प्रयुक्त हुआ है ।

संक्षेप में यहां कुछ उपसर्गों का प्रयोग दिखाया गया है । निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उपसर्गों ने काव्यार्थ को रस युक्त बनाने में सहायता की है । उपसर्ग द्योतक भी हैं और वाचक भी, विशेषकृत् भी है और अनर्थक भी । साथ ही वस्तु स्वभाव की अभिव्यक्ति में वैशद्य ला देते हैं ।

महाराज ज्ञानसागर जी का भाषाधिकार उनके वीरोदय काव्य के माध्यम से विविक्त हुआ है । महाराज जी के 'वीरोदय' काव्य में मानवता के रक्षण का सन्देश पदे-पदे प्राप्त होता है । मिथ्यात्व के घोर अन्धेरे से मानवता को मुक्ति मिले । महावीर जी के आविर्भाव काल में अनेक सम्प्रदाय, मत मतान्तर खड़े हो गये थे, आज तो मनु पुत्रों के हृदय जाति-पांति के बाणों से बिद्ध पड़े हैं - महावीर जी की वाणी उन सब पर मरहम का कार्य करे । यही कामना है ।

डॉ. रमा दुबलिश

रिटायर्ड रीडर (संस्कृत)

मुन्नालाल कॉलेज, सहारनपुर

❑ ❑ ❑

'वीरोदय' महाकाव्य में रस योजना

डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय

महाकवि आचार्य प्रवर ज्ञानसागर जी - द्वारा प्रणीत 'वीरोदय' आधुनिक युग का एक ऐसा महाकाव्य है, जिसे भविष्य में, सम्बद्ध सहृदय विद्वानों के समक्ष आने पर, समूचे संस्कृत महाकाव्य जगत् में अत्यन्त महत्त्व का स्थान मिलना निश्चित है। भगवान् महावीर के पावन चरित्र को चित्रित करने वाले इस महाकाव्य ने आचार्य समन्तभद्र के समय से ई. की अठारहवीं तक निरन्तर प्रवहमान रहकर एकाएक अवरुद्ध हो जाने वाली जैन संस्कृत काव्यधारा को न केवल पुनर्जीवित किया है, अपितु अपनी कतिपय असामान्य विशेषताओं से उसे ऐसी गरिमा प्रदान की है, जो विरले ही साहित्य को मिला करती है । पूरे महाकाव्य में आद्यन्त अन्त्यानुप्रास, जिसका संस्कृत कविताओं में अपेक्षित प्रयोग नहीं पाया जाता, के प्रयोग का निर्वाह, इसकी एक ऐसी विशेषता है, जो इसे प्राचीन और अर्वाचीन सभी संस्कृत महाकाव्यों में अद्वितीय सिद्ध करती है ।

ऐसी महान् कृति के कृती रचनाकार ने अपने सौजन्यातिशय और नम्रता के कारण -

सूपकार इवाहं यं कृतवान् वस्तु केवलम् ।

तत्स्वादुत किलास्वादु वदेयुः पाठका हि तत् ।।(22/34)।।

के द्वारा अपना अभिमत प्रकट करने का जो सन्देश दिया है, उसी का सहारा लेकर, मैं, एक पाठक के रूप में, इसकी रस योजना पर अपने विचार सुधी विद्वत्समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करने की धृष्टता कर पा रहा हूँ ।

भारतीय साहित्यशास्त्री 'रस' को कविता का प्राण किंवा जीवन मानते हैं, जिसके अभाव में कोई भी रचना कविता का अभिधान नहीं प्राप्त कर सकती। महिम भट्ट जैसा ध्वनिध्वंसक आचार्य भी 'काव्यस्यात्मनि अङ्गिनि रसादिरूपे न कस्यचिद् विमतिः' कह कर रस के इस महत्त्व को सहर्ष स्वीकार करता है। इसी पृष्ठभूमि में 'महाकाव्य', जो किसी 'महद्' विषय को केन्द्र बना कर एक विशिष्ट व्यवस्था के अन्तर्गत लिखी गयी उत्तम कविता है, इसलिए रस-योजना के विशिष्ट नियम बने। क्योंकि 'महाकाव्य' में जीवनगत नाना परिस्थितियों का चित्रण होता है, इसलिए उसमें नाना प्रकार के प्रतिनिधि रूप अनेक रसों की योजना स्वतः हो जाती है। किन्तु अनेक रसों की यह योजना कहीं अराजकता न उत्पन्न कर दे, इसलिए उनको नियन्त्रित करने तथा उन सभी को एक ही दिशा, एक ही लक्ष्य निश्चित करने की भावना से, उनमें से ही एक को प्रधान या अंगी तथा अन्य रसों को उसका अङ्ग या पोषक माना गया। ध्वनिसिद्धान्त के उद्भावक आनन्दवर्धन ने -

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारस निबन्धने ।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्य स्तेषामुत्कर्ष मिच्छता ॥ (ध्वन्या. 3/21)

इस कारिका में इसी नियम को व्यक्त किया है। उन्होंने यह भी बताया है कि महाकाव्य की कथावस्तु का गठन, उसके समस्त वाच्यों और वाचकों का विन्यास रस विषयक औचित्य को ध्यान में रखते हुए ही किया जाना चाहिए -

वाच्यानां वाचकानां यदौचित्येन योजनम् ।
रसादिविषयेणैतत् कर्म मुख्य महाकवेः ॥ (ध्व. या: 3/32)

प्रस्तुत औचित्य के उल्लंघन की स्थिति में अनेक प्रकार के रस दोषों की व्यवस्था के साथ ही उनके परिहार के उपायों का विधान भी आचार्यों ने किया है, यह तथ्य विद्वानों से छिपा नहीं है।

कहना न होगा कि रस विषयक इस नियम का अधिकांशतः पालन कालिदास जैसे रसवादी कवियों के कुछ ही महाकाव्यों में ही हो पाया है। भारवि के 'किरातार्जुनीय' के साथ जिन अलंकृत काव्यों का विकास हुआ और जिनकी संख्या बहुत बड़ी है, उनमें इसका पालन आंशिक रूप से हुआ है, क्योंकि वहाँ अंगी तथा अंगरसों की व्यंजना तो हुई है, किन्तु साथ ही ऐसे पदार्थों का भी विस्तार से वर्णन हुआ है, जिनका कथावस्तु और सम्बद्ध रस से दूर का भी सम्बन्ध नहीं। ऐसे अनङ्ग या रसानुपकारक पदार्थों का वर्णन करने वाले महाकाव्यों का अच्छा विवरण आचार्य हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन'' में देखा जा सकता है। इसके साथ ही उनमें प्रयत्न-साध्य अलंकारों, क्लिष्ट शैली, दुरारूढ़ कल्पनाओं, अतिरंजित वर्णनों और शास्त्रीय पाण्डित्य का भी व्यापक रूप में प्रयोग मिलता है, जिससे रस की प्रतीति या तो होती ही नहीं या होती भी है तो पर्याप्त विलम्बित। श्रीहर्ष ने अपने 'नैषधीय चरितम् में, ऐसी ग्रन्थियों का विन्यास करने का स्वयं उल्लेख किया जिन्हें पाठक, श्रद्धापूर्वक गुरू की आराधना से ही खोल सकता था। स्पष्ट है, इस श्रेणी के कवि पाठकों के लिए कठिनाई उत्पन्न करना तथा रस - प्रतीति में यथाशक्ति बाधा डालना कविता का सर्वोच्च गुण मानते थे, किन्तु साथ ही अपने काव्य को रस का अक्षय भांडागार भी कहने से नहीं चूकते थे। स्मरणीय है, श्री हर्ष ने अपने काव्य को 'मधुवर्षि' तथा 'शृंगारामृत शीतगु' कहा है।

इस पृष्ठभूमि में, जब हम प्रस्तुत वीरोदय महाकाव्य को देखते हैं, तो रसयोजना की दृष्टि से यह अलंकृत कालिदास आदि के महाकाव्यों की श्रेणी में आता दृष्टिगत होता है।

प्रस्तुत महाकाव्य का अंगीरस शान्त है, यह स्पष्ट है। यद्यपि, इसका संकेत पंचम सर्ग में रानी के स्वप्नदर्शन में ही मिल जाता है, तथापि वह पूर्ण स्पष्ट होता है नवम सर्ग में तात्कालिक जगत् की स्थिति को देखकर निर्विण्ण महावीर भगवान के वैराग्योदय के साथ और उसका चरम परिपाक होता है इक्कीसवें सर्ग की लगभग समाप्ति में भगवान् की कैवल्य प्राप्ति में, जिसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है -

प्रापाथ ताद्यगनुबन्धनिबद्ध भावं
प्रत्यागतो न भगवान् पुनरद्य यावत् ।
तस्या मुखाम्बुरुहि संगत दृष्टिरस्मात् ॥
तस्यैव भाक्तिकजनानपि दृष्टुमस्मान् ॥ (21/22)

इसके पहले के सर्गों में, पूर्वोक्त सिद्धि तक पहुँचने के जैन सिद्धान्ताभिमत साधनों का शान्त रसानुप्राणित विशद और हृदयङ्गम वर्णन द्रष्टव्य है।

अन्य अङ्गरसों का भी यथा योग्य चित्रण किया गया है । ऐसा कोई रस नहीं है जो इस महाकाव्य में नहीं मिलता हो, कोई रस सामान्य रूप मे तो कोई विशेष रूप में चित्रित है ।

यहां मैं संक्षेप की दृष्टि से वात्सल्य एवं श्रृंगार रस को ही ले रहा हूं । वात्सल्य रस का वर्णन करने का अवसर कवि को भगवान् के बालजीवन का चित्रण करते समय मिलता है ।

निम्न पद्य में कितनी कलात्मकता से कवि ने वात्सल्य को व्यक्त किया है, यह द्रष्टव्य है -

> इङ्गितेन निजस्याथ वर्धयन् मोदवारिधिम् ।
> जगदाह्लादको बाचचन्द्रमाः समवर्धत ॥ (5/7)

इसी रस की एक मार्मिक अभिव्यक्ति चतुर्थ सर्ग के अन्त में निम्न पद्य में तृतीय चरण में हुई है -

> वाणीमित्थममोघमङ्गलमयीमाकर्ण्य सा स्वामिनो
> वामोरुश्च महीपते र्मतिमतो मिष्टामथ श्रीमुखात् ।
> अङ्कप्राप्तसुतेव कण्टकितनुर्हर्षा श्रुसम्वाहिनी
> जाता यत्सुतमात्र एव सुखदस्तीर्थेश्वरे किम्पुनः ॥ (4/62)

प्रस्तुत महाकाव्य में भी श्रृंगार रस का चित्रण बड़े विस्तार के साथ ?िय रूप में किया गया है । प्रायः प्रत्येक वर्णन में उसके लिए स्थान सुरक्षित है । कभी-कभी जिसकी कथाप्रवाह में कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, थी भी तो कम से कम श्रृंगार की तो नहीं थी । पूरे काव्य में पांच-पांच ऋतुओं के वर्णनों की भरमार इसी दृष्टि से की गई है ।

सच तो यह है कि श्रृंगार के प्रति कवि ने शान्त रस को छोड़कर अन्य रसों की अपेक्षा कुछ अधिक प्रयोग किया है । उसके चित्रण में कवि की सर्वोत्तम साहित्य प्रतिभा प्रस्फुटित होती है । वह श्रृंगार को रसराज (6/37) और उसके अधिष्ठातृ देवता काम को जगत् का शासक तक कहते हैं । (स्मरस्तु साम्राज्यपदे नियुक्तः 21/18) ।

कवि का एतद्विषयक चित्रण संयत और मर्यादित है, जैसे कुण्डनपुर के वर्णन से सम्बद्ध इन पद्यों में -

1. प्रासाद श्रृंगाग्रनिवासिनीनां मुखेन्दुमालोक्य विधुर्जनीनाम् ।
   नम्रीभवन्नेष ततः प्रयाति ह्रियेव संलब्ध कलङ्कजातिः ॥ (संयोग श्रृंगार)
2. सौधाग्र लग्न बहुनीलमणि प्रभाभि र्दोषायितत्वमिह सन्ततमेवताभि।
   कान्ताप्रसङ्गरहिता खलु चक्रवाकी वापीतरेऽप्यहनि ताम्यति सा वराकी ॥

स्पष्ट है कि प्रस्तुत महाकाव्य में रसयोजना प्रायः तत्सम्बन्धी काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप ही हुई है ।

डॉ. श्रीकान्त पांडेय
दिगम्बर जैन कॉलेज
बड़ौत

❑ ❑ ❑

जैसी प्रजा वैसी ध्वजा

बलवान् प्रजा में से से बलवान् साधु निकलने की उम्मीद की जाती है । निर्बल और हतवीर्य प्रजा में से ऐसे ही साधु निकलेंगें, जो दुनिया का कुछ भी भला करने में समर्थ न हो सकेगें ।

वीरोदय में अलङ्कार योजना

डॉ. कमलेशकुमार जैन

आचार्य भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में केवल चार अलङ्कारों का उल्लेख किया है - उपमा, रूपक, दीपक और यमक ।[1] जैसे-जैसे अलङ्कार शास्त्र का विकास होता गया अलङ्कार विषयक मान्यताएँ दृढ़ होती गई और अलङ्कारों में उत्तरोत्तर वृद्धि भी । आचार्य अप्पय दीक्षित ने अपने कुवलयानन्द[2] नामक ग्रन्थ में सर्वाधिक 123 अलङ्कारों का सोदाहरण विवेचन किया है ।

भरत मुनि ने अलङ्कार का कोई लक्षण प्रस्तुत नहीं किया है, किन्तु उत्तरवर्ती आलङ्कारिकों की दृष्टि काव्यगत अलङ्कारों के लक्षण पर केन्द्रित हुई और उन्होंने अनेक प्रकार की कल्पनाएँ कीं । कुछ लोग 'अलं करोति इति अलङ्कार:' कहते हैं । कुछ लोग 'अलं क्रियते ऽनेन इति अलङ्कार: इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिसके द्वारा काव्य अलङ्कृत किया जाये उसे अलङ्कार कहते हैं । अर्थात् प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार अलङ्कार काव्य के स्वभाविक धर्म है जबकि द्वितीय व्युत्पत्ति के आधार पर कटक-कुण्डलादि लौकिक अलङ्कार के धर्म नहीं । अत: जिस प्रकार कटक-कुण्डलादि लौकिक अलङ्कार कामिनी के शरीर को सुभोभित करते हैं, उसी प्रकार यमक-उपमा आदि अलङ्कार काव्य-शरीर को सुभोभित करते हैं ।[3]

अलङ्कार-सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य भामह थे । उन्होंने अलङ्कारों को इतनी महत्ता प्रदान की कि सम्पूर्ण काव्यशास्त्र ही 'अलङ्कारशास्त्र' इस संज्ञा से अभिहित होने लगा । आचार्य भामह के समय तक अलङ्कार शब्द का अर्थ व्यापक होकर काव्य-सौन्दर्य के समस्त तत्त्वों का बोधक हो चुका था । आचार्य दण्डी के काव्य की शोभा बढ़ाने वाले सभी धर्मों को अलङ्कार कहा है ।[4] इसी प्रकार आचार्य वामन ने काव्य के सौन्दर्य के आधायक सभी तत्त्वों को अलङ्कार स्वीकार किया है ।[5] किन्तु आचार्य आनन्दवर्द्धन ने अलङ्कारों को कटक आदि आभूषणों की तरह अङ्गों (शब्द और अर्थ) के आश्रित स्वीकार किया है ।[6] इसी प्रकार आचार्य मम्मट ने रमणी के हार आदि आभूषणों की तरह काव्य में शब्द और अर्थ का अङ्गरूपेण कभी-कभी उपकार करने वाले क्रमश: अनुप्रास (शब्दालङ्कार) और उपमा (अर्थालङ्कार) आदि को अलङ्कार स्वीकार किया है ।[7]

जैनाचार्य वाग्भट प्रथम ने अपने वाग्भटालङ्कार में लिखा है कि जिस प्रकार अलङ्कारों के अभाव में स्त्री का रूप सुशोभित नहीं होता है, उसी प्रकार अलङ्कारों से रहित काव्य भी सुशोभित नहीं होता है ।[8]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य दण्डी काव्य में शोभावर्द्धक तत्त्वों को अलङ्कार मानते हैं और आचार्य वामन सौन्दर्य मात्र को । किन्तु परवर्ती आचार्यों ने शब्द और अर्थ को मापदण्ड मानकर शब्दों पर आश्रित रहने वाले अलङ्कारों को शब्दालङ्कार और अर्थों पर आश्रित रहने वाले अलङ्कारों को अर्थालङ्कार माना है । कुछ आचार्यों ने उक्त दो के अतिरिक्त शब्द और अर्थ पर समान रूप से आश्रित रहने वाले अलङ्कारों को उभयालङ्कार कहा है । आचार्य मम्मट ने अलङ्कारों के विभाजन का मापदण्ड अन्वय-व्यतिरेक स्वीकार किया है ।[9] अर्थात शब्द परिवृत्त्यसहिष्णुत्व वाले शब्दालङ्कार कहलाते हैं और शब्दपरिवृत्तिसहिष्णुत्व वाले अर्थालङ्कार कहलाते हैं तथा शब्द और अर्थ - इन दोनों पर समान रूप से आश्रित रहने वाले उभयालङ्कार है ।

1. नाट्यशास्त्र, 17/43
2. द्रष्टव्य, कुवलयानन्द
3. द्रष्टव्य, जैनाचार्यों का अलंकार शास्त्र में योगदान, पृष्ट 273
4. काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते काव्यादर्श 2.1
5. काव्यालंकार सूत्र, 1/1/2 3
6. ध्वन्यालोक, 2/6
7. काव्यप्रकाश, 8/67
8. स्त्रीरूपमिव नो भाति तं ब्रुवेऽलंक्रियोज्झितम् - वाग्भटालंकार 4/1
9. काव्यप्रकाश पृष्ठ 4/23

इस वीरोदय महाकाव्य को सहृदयगम्य बनाने के लिए उसमें अलङ्कारों की योजना आवश्यक है । यद्यपि आचार्य मम्मट ने काव्य के लक्षण में 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि'[1] कहकर कहीं-कहीं काव्य में अलङ्कार के न रहने पर भी काव्यत्व की हानि नहीं मानी है तथापि वृत्ति में किये गये उनके इस स्पष्टीकरण से कि 'सर्वत्र सालङ्कारौ क्वचित् तु स्फुटालङ्कार विरहेऽपि न काव्यत्व हानिः'[?], अर्थात् काव्य में सर्वत्र शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार सहित शब्द और अर्थ की योजना आवश्यक है, किन्तु कहीं-कहीं और सभी गुणों की उपस्थिति होने पर यदि स्पष्ट रूप से अलङ्कार योजना न हो तो भी काव्यत्व में हानि नहीं है । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि काव्य में सर्वत्र अलङ्कारों की योजना आवश्यक है। यह बात अलग है कि कहीं-कहीं स्पष्ट अलङ्कार न होने पर भी, किन्तु अन्यान्य गुणों की उपस्थिति होने पर काव्यत्व में हानि नहीं मानी है ।

इतने विवेचन के उपरान्त आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा अपनी गृहस्थावस्था में पं. भूरामल जी शास्त्री के नाम से रचे गये वीरोदय काव्य की ओर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि प्रमुख एवं प्रसिद्ध काव्यशास्त्रियों / आलङ्कारिकों द्वारा काव्य रचना में जिन अलङ्कारों का होना स्वीकार किया गया है, वे सभी अलङ्कार वीरोदय काव्य में गुम्फित किये गये हैं ।

सच बात तो यह है कि वीरोदय काव्य में ऐसा एक भी पद्य उपलब्ध नहीं है, जिसमे अलङ्कारों की छटा दिखलाई न देती हो, अपितु सम्पूर्ण काव्य में अलङ्कारों की योजना इस प्रकार स्वाभाविक रूप से गुम्फित है कि प्रायः समस्त प्रसिद्ध अलङ्कारों का समावेश 'अहं पूर्विकया' हो गया है । शब्दालङ्कारों के अन्तर्गत यमक, श्लेष, अनुप्रास, विरोधाभास, और चित्रालङ्कारों का गुम्फन इतनी सावधानी पूर्वक किया है अथवा स्वतः हो गया है कि शब्दों की उठा पटक देखते ही बनती है ।

वीरोदय काव्य के निम्नाङ्कित पद्य को देखिए -

कामारिता कामितसिद्धये नः समर्थिता येन महोदयेन ।
सैवाभिजातोऽपिच नाभिजातः, समाजमान्यो वृषभोऽभिजातः ॥[2]

यहाँ 'कामितसिद्धये' और 'कामारिता' में प्रथम दृष्टया विरोध प्रतीत हो रहा है । अर्थात् 'कामितस्य सिद्धये' (इच्छित कार्य के सम्पादन हेतु) 'कामारिता' (वाञ्छित विरोध का समर्थन) किया है । इस प्रकार विरोध प्रतीत हो रहा है, किन्तु कामारिता का कामदेव का विरोध करने का समर्थन रूप अर्थ करने पर उक्त परस्पर विरोध का परिहार हो जाता है । इसी प्रकार अभिजातः और नाभिजात में परस्पर विरोध प्रतीत हो रहा है, क्योंकि जो अभिजात (सुन्दर) है, वह नाभिजात (कुरूप) कैसे हो सकता है ? किन्तु अभिजात का अर्थ सुन्दर और नाभिजात का अर्थ राजा नाभिराय से उत्पन्न करने पर उक्त विरोध का परिहार हो जाता है । इसी प्रकार उक्त पद्य के चतुर्थ पद्य में अभिजात वृषभ अर्थात् नाम से जो वृषभ (बैल, मूर्ख) है, वह समाज मान्य कैसे हो सकता है ? ऐसा विरोध प्रतीत हो रहा है, किन्तु वृषभ का अर्थ आद्य तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव करने पर उक्त विरोध का परिहार हो जाता है ।

इस प्रकार एक ही पद्य में अनेक स्थलों पर विरोधाभास अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है । अनुप्रास और उसी का एक भेद अन्त्यानुप्रास तो प्रत्येक पद्य में दिखलाई दे जायेगा । ग्रन्थारम्भ करने वाले मङ्गलाचरण में 'सेवा' और 'मेवा' तथा 'हृदोऽपि' और श्रमोऽपि' में अन्त्यानुप्रास की छटा दर्शनीय है[3] । इसी प्रकार उपर्युक्त कामारिता.... आदि पद्य में 'सिद्धये न' और 'महोदयेन' में भी अन्त्यानुप्रास का सुन्दर समावेश हुआ है ।

1. वही पृष्ठ 19
2. वीरोदय काव्य, 1/2
3. श्रिये जिनः सोऽस्तु यदीय सेवा, समस्त संश्रोतृजनस्य मेवा ।
   द्राक्षेव मृद्वी रसने हृदोऽपि, प्रमादिनी नोऽस्तु मनाक् श्रमोऽपि ॥
   वीरोदय काव्य, 1/1

प्रथम सर्ग के तृतीय पद्य[1] में कौमुदस्तोम शब्द में श्लेषालङ्कार का संयोजन भी अत्यधिक प्रभावशाली बन गया है। उक्त पद को विभक्त करने पर कौ अर्थात् पृथिवी पर मुदस्तोम अर्थात् हर्षातिरेक हो गया है। द्वितीय चन्द्र पक्ष में 'कुमुदानां समूहः कौमुदः' ऐसा समास करने पर चाँदनी श्वेत कमलों के समूह को विकसित कर रही है ऐसा उभयकोटिक अर्थ करने पर श्लेषालङ्कार कर प्रयोग अत्यधिक प्रशंसनीय बन गया है।

चित्रालङ्कारों के अन्तर्गत बाइसवें में गोमूत्रिक बन्ध रचना[2], यानबन्ध रचना[3], पद्मबन्ध रचना[4] और तालवृन्त[5] रचना में अक्षरों और पदों का संयोजन कवि की अद्‌भुत प्रतिभा का निदर्शन है और उन्हें संस्कृत जगत् के सर्वोच्च सम्मानित प्राचीन महाकवि भारवि और माघ जैसे कवियों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है।

अर्थालङ्कारों के क्रम में उपमा[6], उत्प्रेक्षा[7], रूपक[8], भ्रान्तिमान्[9], सन्देह[10], समन्वय[11], परिसंख्या[12], दृष्टान्त[13], अतिदेश1[14], अतिशयोक्ति[15], समासोक्ति[16], अन्योक्ति[17], और अर्थान्तरन्यास[18] आदि विभिन्न अलङ्कारों का प्रयोग कवि के बेजोड़ कौशल का प्रतीक है। इन अलङ्कारों का स्पष्टीकरण स्वयं कवि ने वीरोदय काव्य के प्रारम्भिक छह सर्गों पर रचित स्वोपज्ञ टीका में किया है[19]।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

काव्यप्रकाश : मम्मट, व्याख्याकार - आ. विश्वेश्वर, सम्पा. डॉ. नगेन्द्र, प्रकाशक - ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1960

काव्यादर्श : दण्डी, अनु. - ब्रजरत्नदास, बी.ए., प्रका. श्री कमलमणि ग्रन्थमाला कार्यालय, बुलानाला, काशी, वि. सं. 1988 (हिन्दी) काव्यालङ्कार सूत्रः वामन, व्याख्याकार - आ. विश्वेश्वर, सम्पा. डॉ. नगेन्द्र प्रका. आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली - 6, सन् 1954

कुवलयानन्द : अप्पय दीक्षित, सम्पा. वासुदेव शर्मा, प्रका. - पाण्डुरंग जावजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सप्तम संस्करण, सन् 1937

छन्दोऽनुशासन : आचार्य हेमचन्द्र, सम्पा. ह. दा. वेलणकर, प्रका. सिंघी जैनशास्त्र, शिक्षापीठ भारती विद्याभवन, बम्बई, सन् 1961 जैनाचार्यों का अलंकार शास्त्र में योगदान, लेखक - डॉ. कमलेशकुमार जैन, प्रका. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, सन् 1984

ध्वन्यालोक : आनन्द वर्द्धन, व्या. आ. विश्वेश्वर, प्रका. गौतम बुक डिपो, नई सड़क दिल्ली, प्रथम संस्करण, अगस्त 1952

नाट्यशास्त्र : भरत मुनि, सम्पा. बटुकनाथ शर्मा, बलदेव उपाध्याय, प्रका. चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, सन् 1929

वाग्भटालंकार : वाग्भट, प्रथम, अनु. प्रो. उदयवीर शास्त्री, प्रका, मेहर चन्द्र लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर, द्वितीय संस्करण, सन् 1935

वीरोदय काव्य : श्री 108 मुनि ज्ञानसागर जी महाराज, सम्पा. हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री, प्रका. प्रकाशचन्द्र जैन, मंत्री -मुनि श्री ज्ञानसागर जैन ग्रन्थमाला, प्रथम संस्करण, सन् 1968

वृत्तरत्नाकर : केदार भट्ट, प्रका. - मेहरचन्द लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर, वि. सं. 1999

श्रुतबोध संस्कृत हिन्दी कोशः लेखक-वामन शिवराम आप्टे, प्रका.-मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा. लि. दिल्ली, पुनर्मुद्रण सन् 1989

सुवृत्त तिलक : क्षेमेन्द्र प्रका.- चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, सन् 1927 (वृत्तरत्नाकर के साथ प्रकाशित)

डॉ. कमलेश कुमार जैन

प्राध्यापक जैन दर्शन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

1. चन्द्र प्रभं नौमि यदङ्गसारस्तं कौमुदस्तोममुरीचकार।
सुखाञ्जनः संलभते प्रणश्यत्तमस्तयाऽऽत्मीयपदं समस्य॥
वीरदय काव्य, 1/3

2. वीरोदय काव्य, 22/37 3. वही, 22/38 4. वही, 22/39 5. वही, 22/40
6. वही, 1/1 7. वही, 1/15 8. वही, 2/7 9. वही, 2/30
10. वही, 2/13 11 वही, 2/38 12. वही, 2/48 13. वही, 1/8
14. वही, 3/13 15. वही, 3/22 16. वही, 4/13 17. वही, 4/19
18. वही, 5/34 19. वही, पृष्ठ 353-423

❑❑❑

वीरोदय में कथोपकथन

डॉ. अजितकुमार जैन

कथोपकथन किसी भी कृति की सफलता का मूल आधार है। पात्रों द्वारा संभाषण करना कथोपकथन कहलाता है । साहित्य की विविध विधाओं में यथानुकूल संवाद सौष्ठव प्राप्त होता है । मेरा अभिमत है कि कथोपकथन का प्रयोग नाटक, एकांकी, कहानी, उपन्यास आदि में प्राणसंचार कर देता है । ये सभी संवाद प्रधान प्रस्तुति हैं ।

काव्य में कथोपकथन का प्रयोग अन्य रुप में किया जाता है। प्रसंगत, महाकाव्य में यह प्रयोग प्रायः दो रुपों में प्राप्त होता है - (1) कवि निबद्ध अर्थात जहाँ किसी वर्णन में स्वाभाविकता गति, चमत्कार, विशद विवेचन करना अभीष्ट है, वहाँ कवि, स्वयं कथन करता हुआ कथावस्तु का विस्तार करता है । और दूसरा रूप (2) वक्तृ प्रौढत्व सिद्ध अर्थात कहीं-कहीं प्रसंगानुकूल जहाँ कोई वक्ता और अन्य कोई श्रोता की संयोजना बनती है, वहां श्रोता के माध्यम से प्रश्न और वक्ता के माध्यम से उनका उत्तर देते हुए विषय का सूक्ष्म- सजीव वर्णन करते हुए कवि अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करता है । यहां यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि जैन साहित्य में वक्तृ प्रौढ़त्व सिद्ध कथोपकथनों का सातिशय प्रयोग प्राप्त होता है ।

विवेच्य महाकाव्य 'वीरोदय' में कथोपकथन का अनेकशः प्रयोग प्राप्त होता है । शास्त्रीय विवक्षा में इन प्रयोगों को स्वगत कथन पात्रगत कथन, कवि निबद्ध कथन, वक्तृ प्रौढ़त्व सिद्ध कथन आदि नामों से अभिहित किया जा सकता है ।

सामान्यतः शास्त्रीय, दृष्टि से किसी भी श्रेणी का हो किन्तु जहां ये संवाद संक्षिप्त, चुस्त मर्मस्पर्शी, सजीव, सरल, सार्थक, चुटीले, व्यंग्ययुक्त नाटकीय, रसान्वित, रोचक, पात्रानुकूल भाषायुक्त, अच्छे संबोधनों से युक्त, वाग्वैदग्ध्यपूर्ण, स्वाभाविक एवं चरित्राभिव्यंजक होते हैं वहीं कथानक को गति पात्रों का चरित्र चित्रण, अभीप्सित प्रभावोत्पादक होते हुए कृति के साफल्य के निर्धारक होते हैं ।

वीरोदय में कथोपकथन विषय के प्रस्तुतीकरण से पूर्व कवि की वाणी विषयक विचारधारा का परिचय पाना समीचीन है । इस परिचय से कथोपकथन स्वरूप एवं शैली का निर्णय हो जाना स्वाभाविक है ।

कवि की दृष्टि में सुवर्णा[1] (उत्तम वर्ण, पद वाक्य समन्वित), आह्लादकारक, असंकीर्ण[2] (स्पष्ट पद विन्यास युक्त) हितकारिणी[3], परार्थकारिणी,[4] परमार्थ प्रदायिनी,[5] समयानुसार,[6] प्रभूत[7] (विशाल अर्थ युक्त), अमृत तुल्य सुमधुर[8], विनयपूर्ण [9] वाणी प्रशस्त है। वस्तुतः वाणी के उक्त गुणों से युक्त कथोपकथन इस काव्य में प्रयुक्त हुए हैं ।

वीरोदय काव्य के प्रारंभ में ही कवि ने मंगल पाठ के पश्चात्, स्वगत कथन से, भारतीय परंपरानुसार, अपनी लघुता प्रदर्शित की है ।[10] दशम, सर्ग में महावीर स्वामी का वैराग्यपूर्ण चिंतन स्वगत कथन के अंतर्गत परिगणित है ।[11] संसार में कदाचार, मिथ्यामार्ग का प्रवर्तक स्वयं को मानकर अपनी आत्मशुद्धि का विचार करना स्वगत कथन है ।[12] भगवान् के दिव्य समवशरण-

1	आचार्य ज्ञानसागर : वीरोदय :	सर्ग 1	श्लोक 9	पृष्ठ 5
2.	वही	,, 2	,, 26	,, 27
3.	,,	,, 3	,, 33	,, 54
4	,,	,, 2	,, 44	,, 34
5.	,,	,, 3	,, 18	,, 46
6.	,,	,, 4	,, 22	,, 69
7.	,,	,, 4	,, 37	,, 70
8.	,,	,, 8	,, 19	,, 128
		,, 18	,, 35	,, 282
9.	,,	,, 8	,, 27	,, 131
10	,,	,, 1	,, 26,27,28	,, 12-13
11.	,,	,, 10	पूरा	,, 153 से 165
12.	,,	,, 11	,, 37 से 43	,, 175-177 .

के अतुल वैभव को देखकर इन्द्रभूति ब्राह्मण का विचार प्रवाह में निमग्न होना स्वगत कथन है[1] जिससे इन्द्रभूति का अमान होना, दिगम्बरत्व की शरण लेना, आत्ममंथन को विवश होना आदि घटनाओं से चरित्रांकन एवं कथानक को स्वाभाविक गति प्राप्त हुई है। स्वत: शंका उठाकर गौतम गणधर से महावीर स्वामी द्वारा दार्शनिक उपदेश स्वगत कथन है[2] इस प्रसंग में मेरा अभिमत है कि स्वगत कथन गहन चिंतन के फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक अभिव्यजना करने वाले होते हैं । वीरोदय में स्वगत कथनों का प्रयोग प्राय: दार्शनिक उपदेश, चिंतन आदि स्थलों पर ही पाया जाता है ।

संभाषण में संबोधनों का प्रयोग वक्ता के परिचय में मुख्य हेतु हैं । वीरोदय में परस्पर पात्रों के वार्तालाप के अवसर पर सुष्ठु व शोभन संबोधन का प्रयोग हुआ है । पति-पत्नी संवाद में पति की ओर से अनुदरे, प्रसन्न वदने, कल्याणिनी, सुभगे, देवि, कल्याण भाजिनी[3] आदि एवं पत्नी की ओर से प्राणेश्वर, सज्ज्ञान विलोचन[4] आदि, मित्रों के वार्तलाप में - अंशकिन् (विचारशील मित्र)[5] आदि संबोधन प्रयुक्त हुए हैं ।

चूंकि वीरोदय महाकाव्य है, अत: इसमें प्रयुक्त कथोपकथन नाटकीय शैली पर आधारित नहीं है अपितु इनमें प्रश्नोत्तर शैली के दर्शन होते हैं । वस्तुत: यह महाकाव्य कवि के प्रज्ञा वैभव का रुचिर दर्पण है । इसमें वक्तृ प्रौढ़त्व सिद्ध कथोपकथन अधिक प्रयुक्त हुए हैं । इस श्रेणी के कथोपकथन एवं स्थलों पर प्राय हैं जहां कोई पात्र निश्चित वक्ता है और अन्य पात्र श्रोता है । जैसे -चतुर्थ सर्ग में राजा सिद्धार्थ एवं प्रियकारिणी का संवाद पंचम सर्ग में माता एवं देवियों का संवाद, अष्टम सर्ग में महावीर एवं सिद्धार्थ का संवाद, तेरहवें सर्ग में इंद्रभूति व महावीर का संवाद ।

प्रश्नोत्तर शैली के संवादों से वक्ता की मानसिकता, ज्ञान गम्भीरता, चरित्र की अभिव्यंजना विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति एवं कथानक को स्वाभाविक गति प्राप्त होती है। प्रश्न शैली का वार्तालाप सर्वप्रथम राजा सिद्धार्थ व प्रियकारिणी का प्राप्त होता है । प्रियकारिणी ने अपने स्वप्न देखने का वृत्तान्त कहकर "वक्तव्य श्रीमता" के द्वारा उनके शुभाशुभ फल जानने की उत्कंठा की है[6] राजा सिद्धार्थ ने मात्र एक श्लोक में ही पूर्ण उत्तर देकर उत्कंठाशमन कर दी है ।[7]

राजा सिद्धार्थ ने देवियों के आगमन पर साश्चर्य, कडास्ति किलेतिकाय' कहकर अपना प्रश्न देवियों के समक्ष रख दिया[8] प्रत्युत्तर में देवियों की हाजिर जवाबी दृष्टव्य है ।[9]

"गुरोर्गुरूणां भवतो निरीक्षाऽस्माकं विभो! भाग्यविधेपरीक्षा ।
तदर्थ मे वेयमिहास्ति दीक्षा न काचिदन्या प्रतिभाति भिक्षा ॥

देवियों के प्रत्युत्तरों से उनके आने का प्रयोजन, संभाषण कुशलता, वाक्चातुर्य[10], संभाषण शिष्टाचार[11], मिष्ट-उत्कृष्ट विनीत भाषा[12] का परिचय मिलने के साथ ही कथा का विस्तार भी होता हैं ।

ऐसे वार्तालाप के प्रसंग में पात्रों का चरित्रांकन बहुत ही सजीव हो गया है । भगवान् के गर्भ में आते ही माता का कथन "यथेच्छमापृच्छत" उनके ज्ञानाधिकार को व्यक्त करता है ।[13]

---

1. आचार्य ज्ञानसागर:	वीरोदय: सर्ग 13	श्लोक 26 से 32	पृष्ट 204 से 206
2. वही	,, 14	,, 21	,, 214
3. ,,	,, 4	,, 38,39,61,	,, 70,77
4. ,,	,, 4	,, 35,36	,, 69
5. ,,	,, 4	,, 19	,, 64
6. ,,	,, 4	,, 36	,, 69
7. ,,	,, 4	,, 40	,, 71
8 ,,	,, 5	,, 3	,, 79
9. ,,	,, 5	,, 4	,, 80
10. ,,	,, 5	,, 5	,, 80
11. ,,	,, 5	,, 7	,, 80
12. ,,	,, 5	,, 8	,, 81
13. ,,	,, 5	,, 21	,, 85

कथोपकथन की दृष्टि से वीरोदय के पांचवें सर्ग का वह स्थल जहां माता व देवियों का संवाद प्राप्य है, विशेषतः ग्राह्य है। इस स्थल में देवियों का गूढ दार्शनिक प्रश्न एवं उनका माता द्वारा उत्तर देने से उनकी हाजिर जवाबी, विनोद प्रियता, भाषा का लालित्य, अर्थ का गांभीर्य, दार्शनिक भावों का प्रस्फुटन एवं कवि का पांडित्य सब कुछ साथ-साथ ही द्योतित होता है ।[1]

इसी क्रम में, इस ग्रंथ का अष्टम सर्ग जहाँ सिद्धार्थ के प्रश्न स्वार्थ से एवं उनके तार्किक सोदाहरण उत्तर महावीर द्वारा परमार्थ से दिख गये है, वहाँ महावीर की वाग्विदग्धता, बुद्धि स्फुरण, तर्कशक्ति, गहन चिंतन आदि विश्लेषण शैली द्वारा सुस्पष्ट होता है[2] साथ ही पिता की मानसिकता, विषादपूर्णता, विकलता, विह्वलता भी प्रकट होती है।[3]

इसी क्रम में, इस ग्रंथ का तेरहवाँ सर्ग जहां इंद्रभूति एवं महावीर स्वामी का संवाद है, उल्लेखनीय है ।[4] यह वीर के कथोपकथन की चातुरी ही है जिससे सभी ग्यारह विद्वानों का हृदय परिवर्तन संभव हो सका ।[5]

वीरोदय में कविनिबद्ध कथोपकथन भी द्रष्टव्य हैं । दूसरे सर्ग में प्राप्य वर्णन कविनिबद्ध ही है । छठवें सर्ग में माता की गर्भवस्था का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन ऐसा किया है कि आज के रतिविज्ञानी, प्रसूतिज्ञानी कुशल चिकित्सक भी दांतो तले उंगली दबा लेगें । इस वर्णन की स्वाभाविकता मनोहारी ही नहीं अपितु विद्वज्जनों के भी कौतुक का कारण है। इस कौतुक का निराकरण भी कवि ने कवित्वमृतेत्युदितो न जातु विकार "कहकर स्वयं कर दिया है ।[6] ऐसे कविनिबद्ध स्थलों मे कवि की बहुज्ञता, प्रतिभा, पांडित्य, उक्ति वैचित्र्य, अंकन क्षमता, कवित्व आदि का परिचय प्राप्त होता है ।

समग्रत: अपनी इस शोध प्रस्तुति के अंत में मेरा यह बोध पुष्ट हो गया कि वीरोदय के कथोपकथन शास्त्रीय निष्कर्ष पर खरे हैं, वहीं लौकिक रूप से उपादेय कथा, विस्तारक, चारित्राभिव्यंजक एवं प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं ।

डॉ. अजित कुमार जैन
धूलियागंज, आगरा

1. आचार्य ज्ञानसागर:	वीरोदय: सर्ग 5	श्लोक 28 से 32,	पृष्ठ 87 से 90
2 वही,	: .. 8	.. 23 28, 29, 30 से 36,39,40,46,	..130 से 136/..
3. वही	: .. 8	.. 24, 25, 26,	.. 130
4 वही	: .. 13	,, 32, 33, 34,	.. 207
5 वही	: ,, 13,14	.. 29,30,/32, 37, 46	,, 218, 222,
6. वही	: ,, 6	..	,, 96

कड़ुआ तीखा बोलो मत
बुरा किसी का बोलो मत
पीला-नीला बोलो मत
हमारी वाणी श्वेत हंस
कंस का नहीं कपटी वंश

हमारी वाणी पीपल पान
पीके मानो श्री भगवान
हमारी वाणी अपनी-सी
जाड़ों में जो तपनी-सी

वीरोदय का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. रतनचन्द्र जैन

अभिव्यक्ति के रोचक एवं भावोद्बोधक प्रकार को शैली कहते हैं । अभिव्यक्ति रोचक एवं भावोद्बोधक तब बनती है जब ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाय जो दर्पण के समान हो जिसमें वस्तु और भावों का स्वरूप प्रतिबिम्बित हो, उसे शब्दतः वर्णित करने की आवश्यकता न पड़े । ऐसी भाषा का निर्माण अप्रस्तुतों उपमानों प्रतीकों और लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग से होता है। इनके प्रयोग से भाषा असामान्य औचित्यपूर्ण या वक्र बन जाती है, क्योंकि इसमें मानव के साथ मानव के धर्म का प्रयोग न कर तिर्यञ्चों और जड़ पदार्थों के धर्म का प्रयोग किया जाता है तथा तिर्यञ्चों और जड़ पदार्थों के साथ मानव के धर्म का। जो अमूर्त होता है उस पर मूर्त का धर्म तथा मूर्त पर अमूर्त का धर्म आरोपित किया जाता है । वास्तविक पदार्थों धर्म आरोपित किया जाता है । एक वस्तु को दूसरी वस्तु को किसी अन्य वस्तु का किसी अन्य वस्तु जैसा बतलाया जाता है । किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु जैसा बतलाया जाता है । इस तरह भाषा में वैचित्र्य आ जाने से अभिव्यक्ति रोचक बन जाती है और भावों की जिस उत्कटता, विकटता, गहनता, तीक्ष्णता आदि को कवि द्योतित करना चाहता है उसका द्योतन संभव हो जाता है । इस असामान्य भाषा का नाम ही शैली है, यही काव्यभाषा है । इसीलिए उक्तिवैचित्र्य को काव्य कहते हैं । महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी ने प्रतीकों के चयन में अत्यन्त कौशल दर्शाया है । एक पद्य दर्शनीय है :

मुद्गेषु कङ्कोडुकमीक्षमाणः मणिं तु पाषाणकणेष्वकाणः ।
जातीयतायाः स्मयमित्थमेति दुराग्रहः कोऽपि तमामुदेति ॥ १७/३३

पत्थरों में रत्न भी होता है और मूंग के उर्वर दानों में अनुर्वर दाने भी होते हैं, यह देखकर भी जो अपने को जाति से श्रेष्ठ समझता है वह दुराग्रही है । यहां पत्थर निम्न जाति का प्रतीक है और रत्न श्रेष्ठ पुरुष का, मूंग के उर्वर दाने श्रेष्ठ जाति के प्रतीक हैं और अनुर्वर दाने हीन पुरुष के ।

इन प्रतीकों के द्वारा साम्य के आधार पर यह प्रस्तुत अर्थ अभिव्यक्त होता है कि उच्च जाति में हीन पुरुष भी उत्पन्न होते हैं और निम्न जाति में श्रेष्ठ पुरुष इसलिए जाति से किसी को श्रेष्ठ या हीन मानना दुराग्रहमात्र है । इस अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ होने से यह प्रतीक प्रयोग सार्थक प्रतीत होता है। सार्थकता की प्रतीति होने पर यह प्रतीकात्मकता भाषा मन को आनंदित कर देती है । [illegible]

उपमा, रूपक "[illegible]" [illegible] और सुख गाड़ी के चक्के में लगे अरों के समान परिवर्तित होते रहते हैं । यहां '[illegible]' [illegible] दुःख के बाद सुख के आते रहने के भाव को खोल देता है।

महाकवि ज्ञानसागर जी ने वस्तु की स्वाभाविक रमणीयता, पदार्थों की क्षणभंगुरता, मनोदशाओं की उग्रता तथा मानव स्वभाव के वैचित्र्य को युक्त उपमानों के द्वारा आह्लादक रीति से उन्मीलित किया है। उन्होंने जो उपमान चुने हैं वे अत्यन्त सटीक हैं। वे वस्तु की प्रतिपाद्य विशेषताओं को औचित्यपूर्वक उन्मीलित करते हैं । कुछ उदाहरण देखिए:

एक स्थान पर कवि कहते हैं, "क्षत्रियबुद्धि महावीर और विप्र-बुद्धि इन्द्रभूति का अभूतपूर्व समागम हुआ, जैसे प्रयाग में गंगा और यमुना का समागम हुआ ।"

समागमःक्षत्रियविप्रबुद्धयोरभेदपूर्वः परिरब्धशुद्धयो : ।
गाङ्गस्य वै यामुनतः प्रयोग इवाऽसकोस्पष्टतयोपयोगः ॥(१४/४७)

गंगा और यमुना नदियों [illegible] बन गया है । अतः यहां दो पवित्र आत्माओं का मिलन हुआ और जीवों के [illegible] यह अर्थ गंगा यमुना समागम के उपमान से अनायास व्यक्त हो जाता है । और देखिये

जैसे केंचुली से सर्प भिन्न है, म्यान से तलवार भिन्न है वैसे ही शरीर से आत्मा भिन्न है ।

सर्पस्य निर्मोकमिवाथ कोशमसेरिवानन्दमयोऽपदोषः ।
शरीरमेतत्परमीक्षमाणः वीरो बभावात्मपदैकशाणः ॥ (१२/३२)

"जैसे पक्षी सदा विचरण करते रहते हैं वैसे ही साधु को सदा विचरण करते रहना चाहिए। जैसे हवा निःसंग (अनासक्त) रहती है वैसे साधु को भी निःसंग रहना चाहिए ।' 'शकुन्तवन्नैकतलोपभुक्ता' (१८/२६) 'निःसङ्गतां वात इवाभ्युपते:' (१८-२९) ये उपमान शरीर और आत्मा की भिन्नता के स्वरूप को तथा साधु के विचरण करते रहने तथा निःसंग रहने के प्रकार को हृदयंगम करा देते हैं।

महाकवि ने अपने महाकाव्य 'वीरोदय' में रूपकों के दर्पण भी फिट किये हैं जिनमें वस्तु की सूक्ष्मतम विशेषताएँ प्रतिबिम्बित होती है । विचारमन्थन करते हुए कवि कहते हैं ।

'यह दुनिया शतरंज का खेल है यहाँ कौन कब बाजी मार ले जाय कहना मुश्किल है ।'

एवं समुत्थाननिपातपूर्णे धरातलेऽस्मिन् शतरञ्जतूर्णे ।
भवेत्कदा कः खलु वाजियोग्यः प्रवक्तुमीशोभवतीति नोऽज्ञः (१७॥१४)

शतरंज का खेल जीत-हार का प्रतीक है । उसमें दुनिया के उत्थान-पतनशील स्वरूप की झलक मिल जाती है । अतः दुनिया को शतरंज का खेल कह देने मात्र से जगत् में मनुष्य का कभी उत्थान कभी पतन होते रहने का अर्थ समझ में आ जाता है । खेल शब्द से यह भी समझ में आता है कि लौकिक उत्थान पतन अवास्तविक है, आत्मिक उत्थान-पतन ही वास्तविक है । यहाँ कवि ने केवल शतरंज के खेल का बिम्ब दिखलाकर (चित्र खींचकर) प्रस्तुत अर्थ का बोध करा दिया है और यह प्रयोग सटीक होने से अभिव्यक्ति रोचक बन गयी है ।

एक दूसरा उदाहरण है । वीर भगवान् चिन्तन करते हैं

'हे आत्मन् ! यदि तुम संयमवृक्ष की रक्षा करना चाहते हो तो वैराग्यनिगड से मनोमर्कट को बाँधकर रखो ।'

अभिवाञ्छसि चेदात्मन् सत्कर्तुं संयमद्रुमम् ।
नैराश्यनिगडे नैतन्मनोमर्कटमाधर ॥ (११/४३)

यहाँ संयम को वृक्ष, मन को मर्कट और वैराग्य को जंजीर कहा गया है । अतः जैसे वृक्ष को मर्कट छिन्न-भिन्न कर देते हैं वैसे ही चंचल मन संयम को नष्ट कर देता है । इसलिए जैसे मर्कट को जंजीर में बाँधकर वृक्ष की रक्षा की जा सकती है वैसे ही मन को वैराग्य से नियंत्रित कर संयम की रक्षा की जा सकती है । यह अर्थ वृक्ष, मर्कट और निगड (जंजीर) के बिम्ब (आकृतियाँ) मात्र दिखलाकर झलका दिया गया है । जिससे अभिव्यक्ति में रोचकता आ गयी है ।

मुहावरे

जो लाक्षणिक शब्द या शब्दसमूह अर्थ विशेष में रूढ हो जाते हैं, वे मुहावरे कहलाते हैं । इनके द्वारा बिम्बों का सृजन होता है और उनसे अमूर्तभाव रोचकता या बोधगम्य बन जाते हैं । मुहावरों से भावों की गहनता और तीक्ष्णता की अभिव्यक्ति संभव हो जाती है । वे मनुष्य की संवेगात्मक दशा को प्रकट करने के अमोघ उपाय उनमें मानवचरित के उत्कर्ष और अपकर्ष के प्रकार को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य होती है ।

आचार्य ज्ञानसागर जी ने भी मुहावरों के प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति को तीक्ष्ण और मन को गुदगुदाने वाला बनाया है । ब्राह्मण इन्द्रभूति भगवान महावीर के समवशरण में जाता है तब उसका अभिमान विगलित हो जाता है और उसे आत्मबोध प्राप्त होने लगता है। वह अपने आप से कहता है

"मैं आज तक समुद्र के किनारे पहुँचकर भी वहाँ की हवा ही खाता रहा, जल में गोता नहीं लगाया ।"

मयाऽम्बुधेर्मध्यमतीत्य तीर एवाद्ययावत्कलितः समीरः ।
कुतोऽस्तु मुक्ताफलभावरीते रुतावकाशो मम सम्प्रतीतेः ॥ (१३/२९)

कितना पश्चाताप व्यक्त करने वाली बन गई है यह मुहावरात्मक भाषा । मैं आज तक आत्मा का निरूपण करनेवाले शास्त्रों को ही रटता रहा, आत्मस्वरूप का अनुभव नहीं किया' यह अर्थ इस भाषा से कितनी वेदना के साथ व्यक्त हो रहा है। यही तो शैली की वैज्ञानिकता है ।

भगवान् महावीर के उपदेश को सुनकर इन्द्रभूति गौतम गणधर को आत्मबोध होता है कि जो मानव जन्म परमात्मस्वरूप की प्राप्ति का साधन है उसे मैंने यों ही गवाँ दिया तब उनके मुँह से शब्द निकलते हैं :

'हे भगवन् ! मैंने कौए को मारने के लिए रत्न फेंक दिया ।'

नरस्य नारायणताऽभिहेतोर्जनुर्व्यतीतं भवसिन्धुसेतोः ।
परस्य शोषाय कृतप्रयत्नं काकप्रहाराय यथैव रत्नम् ॥ (१४/३२)

कितनी बड़ी हानि मैंनें अपनी कर डाली । इस घोरसन्तापसिक्त भाव को व्यक्त करने के लिए कवि ने कितनी शक्तिशाली भाषा का चयन किया है ।

लोकोक्तियाँ: अर्थान्तरन्यास

कथन का औचित्य सिद्ध करने के लिए जो कोई कारण बतलाया जाता है या किसी अन्य तथ्य से उसका साम्य बतलाया जाता है उसे अर्थान्तरन्यास कहते हैं । इससे भी कथन सयुक्तिक या सटीक बन जाता है, जिसकी प्रतीति होने पर उक्ति रमणीय लगती है । लोकोक्तियाँ अर्थान्तरन्यास का काम करती हैं । इसलिए कवि इनका बहुश: प्रयोग करते हैं । महाकवि ज्ञानसागर जी ने भी वीरोदय में लोकोक्तियों का समुचित प्रयोग करके अभिव्यक्ति को सटीक एवं मनोहर बनाया है ।

दीक्षा लेने के बाद भगवान महावीर अपने पूर्वभवों का चिन्तन करते हुए अपने-आप से कहते हैं - जब तक मैं स्वयं मुक्त नहीं हो जाता तब तक दूसरों को मुक्ति का मार्ग कैसे दिखला सकता हूँ ? दूसरों का इलाज करने से पहले मनुष्य को स्वयं का इलाज करना चाहिए :-

'चिकित्सिताऽर्च्या भुवि मच्चिकित्सा
विना स्वभावादुत कस्य दित्सा ।' (११/३७)

'दूसरों का इलाज करने से पहले मनुष्य को स्वयं का इलाज करना चाहिए' इस लोकोक्ति के प्रयोग से कथन सटीक बन गया है अत: अभिव्यक्ति में चारुत्व आ गया है ।

'जड़ काटे बिना केवल शाखाएं काटने से वृक्ष पुन: हरा-भरा हो जाता है' यह लोकोक्ति इस कथन को पुष्ट करती है कि राग का त्याग किये बिना वस्तु का त्याग करने से मनुष्य अपरिग्रही नहीं होता । राग रहने पर वस्तुओं का परिग्रह पुन: -पुन: हो जाता है ।

त्यागोऽपि मनसा श्रेयान्न शरीरेण केवलम् ।
मूलोच्छेदं विना वृक्षः पुनर्भवितुमर्हति ।। (१३/३७)

'जहाँ सुई काम आती है वहाँ कैंची काम नहीं आती' इस लोकोक्ति का आश्रय लेकर महाकवि ने इस तथ्य का समर्थन किया है कि हर मनुष्य में एक ऐसा गुण होता है जो दूसरों में नहीं होता, इस दृष्टि से हर मनुष्य अद्वितीय है ।

गुणो न कस्य स्वविधौप्रतीत: सूच्या न कार्यं खलु कर्तरीत: ।
ततोऽन्यथा व्यर्थमशेषमेतद्वस्तूत न स्तुच्छतया सुचेत:।। (१७/३)

'आँख में काजल लगाने वाली अंगुली पहले स्वयं ही काली होती है' इस लोकोक्ति से यह बात अच्छी तरह पुष्ट हो जाती है कि जो दूसरों का बुरा करता है, वह पहले स्वयं का बुरा कर लेता है ।

निहन्यते यो हि परस्यहन्ता पातास्तु पूज्यो जगतां समन्तात् ।
किमङ्गन ज्ञातमहो त्वयैव दृगञ्जनायाङ्गुलिरञ्जितैव ॥ (१६/७)

इन्द्रभूति के साथ रहने से अग्निभूति आदि अन्य दश ब्राह्मण भी भगवान् महावीर का उपदेश पाकर तत्त्व के मर्म को समझ गये और आनन्दित हो उठे । संगति के इस महात्म्य को कवि ने इस अर्थान्तरन्यास द्वारा पुष्ट किया है कि चन्दनतरु के समीप में रहने वाले नीम आदि वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं । "निम्बादयश्चन्दनतां लभन्ते श्री चन्दनद्रो: प्रभवन्तु अन्ते ।" (१४/४५)

उपचारवक्रता

अन्य पर अन्य के धर्म का आरोप करने को काव्यशास्त्री कुन्तक ने उपचारवक्रता कहा है। वीरोदय में भगवान् ऋषभदेव के उपदेश का उल्लेख करते हुए गृहस्थों के लिए कहा गया है कि "गृहस्थ सुनी हुई बात को जल के समान छानकर ग्रहण करे। 'श्रुतं विगाल्याम्बु इवाधिकुर्याद' (१८/३९) बात तो अमूर्त होती है उसे जल आदि के समान छानकर कैसे छाना जा सकता

है ? यहाँ अमूर्त पर मूर्त के धर्म का आरोप किया गया है अतः उपचारवक्रता है । लक्षणाशक्ति के द्वारा सादृश्य सम्बन्ध के आधार पर 'छानना' शब्द से 'सत्य-असत्य की परीक्षा करना' अर्थ लक्षित होता है । यहाँ अमूर्त के साथ मूर्त के धर्म का प्रयोग करने से उक्ति में वैचित्र्य उत्पन्न हो गया है और वह अत्यन्त सावधानी के साथ सत्य-असत्य की परीक्षा करने के अर्थ को द्योतित करता है । इन कारणों से यह प्रयोग रोचक बन गया है ।

इन्द्रभूति गौतम गणधर के विषय में कवि कहते हैं- 'वह पापों से ईर्ष्या करके भगवान् के वचनों के सुनने के लिए और भी लालायित हो गये ।'

> एवं विचार्याथ बभूव भूय उपात्तपापप्रचयाभ्यसूयः ।
> शुश्रूषुरीशस्य वचोऽत एव जगाद सम्यञ्जु जिनेशदेवः ॥ (१४/२४)

जिससे मनुष्य ईर्ष्या करता है उसे फलते-फूलते नहीं देखना चाहता, उसका पराभव चाहता है। अतः ईर्ष्या शब्द यहाँ यह अर्थ व्यंजित करता है कि इन्द्रभूति के मन में कर्मों में वृद्धि न होने देने तथा उन्हें नष्ट करने की इच्छा उत्पन्न हुई और इसीलिए वे भगवान् के उपदेश को और आगे सुनने के लिए आतुर हो गये । ईर्ष्या तो मनुष्य से की जाती है जो मूर्त है, पाप अमूर्त हैं । अमूर्त के साथ मूर्त के धर्म का प्रयोग किये जाने से उपचारवक्रता द्वारा उक्ति वैचित्र्यपूर्ण एवं अर्थगाम्भीर्य की व्यंजक बन गयी है और कथन रमणीय हो गया है ।

बिम्बविधान

किसी पूर्वानुभूत इन्द्रियगम्य वस्तु का नाम सुनकर मन में उसकी जो छवि उभरती है अथवा स्वाद, गन्ध, स्पर्श आदि का मानसिक अनुभव होता है उसे बिम्ब कहते है । कवि अमूर्त भावों को बोधगम्य बनाने के लिए मूर्त पदार्थों को उपमान, प्रतीक आदि के रूप में प्रयुक्त करता है, जिनसे श्रोता के मन में बिम्बो का निर्माण होता है और उनके द्वारा अमूर्त भाव मूर्त बनकर अनुभूतिगम्य हो जाते हैं। मन चंचल है ऐसा न कहकर मन मर्कट है ऐसा कहने पर चंचलता मूर्त रुप में दिखाई देने लगती है । अमूर्त और सूक्ष्म भावों को प्रतीतिगम्य बनाने की यह पद्धति रोचक होती है। वीरोदय में पद-पद पर बिम्बविधान से साक्षात्कार होता है। यहाँ केवल एक रोचक उदाहरण दिया जा रहा है ।

महाकवि ज्ञानसागर जी ने स्याद्वाद के स्वरूप को हृदयंगम कराने के लिए बिम्बविधान का सफल प्रयोग किया है । अपेक्षाभेद से वस्तु में परस्पर विरुद्ध धर्मों के अस्तित्व की प्रतीति करना और कराना स्याद्वाद है । वस्तु जिस प्रकार धर्म विशेष की अपेक्षा वक्तव्य है, उसी प्रकार धर्म विशेष की अपेक्षा अवक्तव्य भी है । बिम्बविधान द्वारा अवक्तव्य धर्म की प्रतीति महाकवि ने इस प्रकार करायी है:

> द्राक्षागुडः खण्डमथो सिताऽपि माधुर्यमायाति तदेकलापी ।
> वैशिष्ट्यमित्यत्र न वक्तुमीशस्तस्मादवक्तव्यकथाश्रयी सः ॥ (१९/९)

दाख, गुड, खाँड और मिश्री ये चारों सामान्यतः मीठे कहलाते हैं, किन्तु इनकी मिठास में जो अन्तर है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। इस अपेक्षा मे ये अवक्तव्य हैं । अर्थात इनकी मिठास का अन्तर अवक्तव्य है।

यहाँ द्राक्षा, गुड, खाँड, और मिश्री इन चारों के नाम कान में पड़ते ही इनके रूपरंग के दृष्टिपरक एवं मिठास के स्वादपरक बिम्ब मन में बनते हैं और इनकी मिठास में जो अन्तर हैं उसके बिम्ब भी निर्मित होते हैं, किन्तु उस अन्तर को व्यक्त करने के लिए कोई शब्द मन में नहीं आता । इस तरह स्वानुभूति के द्वारा ही इनमें विद्यमान अवक्तव्य धर्म की प्रतीति हो जाती है ।

रोचक तर्क

वर्ण व्यवस्था को शरीर के वर्ण पर आश्रित मानने वालों पर प्रहार करते हुए महाकवि ज्ञानसागर बड़ा रोचक तर्क करते हैं । कहते हैं -

> रङ्गप्रतिष्ठा यदि वर्णभङ्गी शौक्ल्येन विप्रत्वमियात् फिरङ्गी ।
> शूद्रत्वतो नातिचरेच्च विष्णुर्नैकं, गृहंचैकरुचेः सहिष्णु ॥ (१७/२८)

अर्थात् यदि वर्णभेद शरीर के रंग पर आश्रित हो तो फिरंगी अर्थात अँग्रेज भी ब्राह्मण हो जायेंगे, क्योंकि उनके शरीर का रंग श्वेत होता है और विष्णु शूद्र बन जायेंगे, क्योंकि उनकी देह काली है ।

'हिन्दू' शब्द की श्रेष्ठ व्युत्पत्ति

महाकवि ज्ञानसागर जी ने 'हिन्दू' शब्द की जो व्युत्पत्ति बतलाई है वह अत्यन्त असाम्प्रदायिक है, जाति और पन्थ के दायरे से एकदम बाहर है। वह प्राणिमात्र के प्रति मैत्री और प्रेम से परिपूर्ण मनुष्य का अर्थ व्यक्त करती है। उस व्युत्पत्ति के अनुसार विश्व का प्रत्येक अहिंसक मनुष्य 'हिन्दू' शब्द के अन्तर्गत आ जाता है । व्युत्पत्ति सुनिए "हिंसां स दूषयति हिन्दुरियं निरुक्तिः" (२२/१३) अर्थात् जो हिंसा को बुरा समझता है, अहिंसा का पालन करता है, वह हिन्दू है ।

हिन्दू शब्द का जब यह अर्थ हो तो हिन्दुस्तानियों की तो बात ही क्या, विश्व का कौनसा अहिंसक और शान्तिप्रिय मनुष्य हिन्दू कहलाना पसन्द नहीं करेगा ? महाकवि, महामुनि आचार्य ज्ञानसागर जी ने 'हिन्दू' शब्द का यह व्युत्पत्ति स्पष्ट कर हिन्दुस्तानियों को सच्चा हिन्दू अर्थात् अहिंसक बनने की प्रेरणा दी है ।

संगीतात्मक माधुर्य

महाकवि ने 'वीरोदय' में अनेकत्र अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग कर संगीतात्मक माधुर्य की सृष्टि की है। अनेक पद्यों को सुनते समय लगता है जैसे घंटियाँ बज रही हों । देखिए -

अज्ञोऽपि विज्ञोनृपतिश्च दूतः गजोऽप्यजो वा जगति प्रसूतः ।' (१७/१)

'हे नाथ! केनाऽथ कृतार्थिनस्तु जना इतिप्रार्थित आह वस्तु ।' (१८/१)

महाकवि ने अरबी और फारसी के शब्दों का भी उदारतापूर्वक प्रयोग किया है और उनसे श्रुतिमाधुर्य की उत्पत्ति की है । यथा -

'रङ्गप्रतिष्ठा यदि वर्णभङ्गी शौक्ल्येन विप्रत्वमियात् फिरंगी । ' (१७/२८)

यहाँ फिरंगी शब्द फारसी है। भङ्गी और फिरङ्गी का अन्त्यानुप्रास कितना मनोहर है।

'भवाम्बुधेरुत्तरणाय नौका तनुर्नरोक्तैव समस्ति मौका ।' (१८/३०)

मानवदेह संसारसमुद्र को पार करने के लिए नौका है इसको पाना एक अच्छा मौका है ।

इस प्रकार महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी ने वीरोदय महाकाव्य में कथन की वैचित्र्यपूर्ण एवं व्यंजक शैलियों का प्रयोग कर अभिव्यक्ति को रमणीय एवं रसात्मक बनाया है । रमणीय एवं रसात्मक कथन ही काव्य है ।

प्रो. रतनचन्द्र जैन
ई.-7 चार इमली,
भोपाल

❑❑❑

वीरोदय महाकाव्य में: पौराणिक, महापुरुष एवम् ऐतिहासिक पुरुष

ब्र. पुष्पा बहिन

वीरोदय महाकाव्य में एक पौराणिक व्यक्तित्वशाली भव्य आत्मा को नायक बनाया गया है । जैन दर्शन में मुख्य रूप से 63 शलाका पुरुषों को पौराणिक पुरुष कहा गया है । इन 63 शलाका पुरुषों में 24 तीर्थंकर 12 चक्रवर्ती 9 बलभद्र,1 नारायण, 9 प्रतिनारायण कहे जाते हैं । भगवान् महावीर भी 24 तीर्थंकरों में अन्तिम तीर्थंकर माने गये । यही वीरोदय महाकाव्य के नायक है । वीरोदय काव्यकार ने महावीर के चरित्र का वर्णन करते हुए अन्य पौराणिक, ऐतिहासिक एवं अन्य महापुरुषों को भी प्रासंगिक किया है । उन्हीं प्रासंगिक पुरुषों को संक्षेप में इस लेख में आलेखित किया जा रहा है ।

पौराणिक पुरुष

तीर्थंकर - चन्द्रप्रभु', पार्श्वनाथ एवं अजितनाथ

यह तीनों तीर्थंकर क्रमशः आठवें तेवीसवें, एवं दूसरे तीर्थंकर नाम से जाने जाते हैं । वीरोदय काव्यकार ने मंगलाचरण के रूप में चन्द्र प्रभु व पार्श्वनाथ को स्मरण किया है और अजितनाथ भगवान् को लेखक ने ऋषभदेव की परम्परा को आगे

बताते हुए कहा है कि अजितनाथ आदि और तीर्थंकर भी हुए हैं । मुनिसुव्रतनाथ का नाम भी 18वें सर्ग के 49 श्लोक में आया है । पार्श्वनाथ का उल्लेख उपान्तजिन के नाम से बाल ब्रह्मचारी के रूप में आठवें सर्ग के 40वें श्लोक में आलेखित किया है । शीतलनाथ भगवान् का नाम भी 18वें सर्ग में आया है ।

वीर प्रभु

वीर प्रभु तो वीरोदय महाकाव्य के नायक ही हैं उनका चरित्र चित्रण पूरे महाकाव्य में वर्णित है । महाकाव्य में वीर, महावीर, वर्धमान, सन्मति आदि नामों को भी प्रासंगिक किया है । भगवान् महावीर के नाम का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है ।

ऋषभदेव

इस युग के 24 तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर के रूप में इन्हें पौराणिक पुरुष माना जाता है । लेखक ने मंगलाचरण के प्रसंग में नाभि पुत्र के नाम से ऋषभदेव का स्मरण किया है ।[2]

इसके बाद लेखक ने वर्धमान द्वारा विवाह का प्रस्ताव अस्वीकार करते हुए नायक के बाल ब्रह्मचारी रहने की भावना के समर्थन में पुरूदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुंदरी क्या बाल ब्रह्मचारी नहीं थी ऐसा वर्धमान के मुख से राजा सिद्धार्थ के लिए उत्तर दिलवाया है ।[3]

यहां पर पुरूदेव शब्द ऋषभदेव के नाम का पर्याय वाची के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसके बाद वीरोदय महाकाव्यकार ने महावीर की दीक्षा के बाद भगवान् महावीर अवधिज्ञान द्वारा अपने पूर्व भवों का स्मरण करते हैं तो भोग भूमि के अंत समय में 14 कुलकरों में अन्तिम कुलकर नाभिराय के पुत्र ऋषभदेव को असि, मसि, कृषि आदि के प्रवर्तक कहा है । और इन्हीं ऋषभदेव का पौत्र (पोता) मारीच नाम का था । जब ऋषभदेव दीक्षा अंगीकार करते हैं तब उनके साथ हजारों लोग परिव्राजक बन जाते हैं । लेकिन सभी तपस्या के समय भूख प्यास से विचलित हो जाते हैं । उन विचलित उन्मार्गगामियों का मुखिया मारीच था ।[4]

वही मारीच का जीव, भगवान् महावीर के रूप में आगे चलकर परिवर्तित हुआ । यहां भगवान् महावीर के जीव का सम्बन्ध ऋषभदेव से जोड़ने के लिए लेखक ने ऋषभदेव को प्रासंगिक किया है ।

18 वें सर्ग में लेखक ने इसी प्रकार भोग भूमि आदि छः कालों का वर्णन करते हुए लिखा है कि मनुओं में अन्तिम मनु नाभिराज हुए है । इनकी स्त्री मरूदेवी ने एक महान् पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम ऋषभदेव पड़ा । इन ऋषभदेव ने उस समय के जीवों की कलह पूर्ण दीन दशा को देखकर क्षत्रिय, वैश्य और क्षुद्र वर्ण के रूप में समाज को तीन भागों में विभक्त कर दिया । शूद्रों को सेवा के रूप में नाना प्रकार की शिल्प कलाएं सिखायी, वैश्यों को पशु पालन एवं खेती करना सिखाया, तथा अर्थशास्त्र की शिक्षा देकर प्रजा के भरण पोषण का कार्य सौंपा, क्षत्रियों को नीति शास्त्र की शिक्षा देकर प्रजा के संरक्षण का भार सौंपा ।[5]

इस प्रसंग में विशेष रूप से वैश्यों को पशुपालन, खेती एवं अर्थशास्त्रों को मुख्य बताया है । आजकल के वैश्य खेती और पशुपालन कर्तव्य से दूर हटते जा रहे हैं । लेकिन लेखक का मानना है कि वैश्य को पशुपालन एवं खेती करना आदिनाथ द्वारा बताया गया था । इसके बाद इसी सर्ग में प्रव्रज्या का वही प्रसंग किया है जो 11वें सर्ग में लिया गया है । सर्ग 18 में भगवान् आदिनाथ ने सन्मार्ग पर चलने वालों को उन्नतिका उच्च पद प्राप्त होगा और विपरीत मार्ग पर चलने वाले को उन्मार्ग की उपलब्धि होगी । इस प्रकार ऋषभदेव ने मानव धर्म का उपदेश त्रेता युग में दिया था ।[6]

बलभद्र

वीरोदय काव्य में पोदनपुरी के प्रजापति राजा और जया रानी से उत्पन्न विजय नामक पुत्र हुआ जो बलभद्र कहलाया। इसका सम्बन्ध भी भगवान् महावीर के जीव के अतीत भवों में रहा है । जिस समय भगवान् महावीर अपने अतीत भव में त्रिपृष्ठ नामक अर्द्धचक्री की पर्याय में थे । यह त्रिपृष्ठ नारायण और विजय बलभद्र सौतेले भाई थे ।[7]

क्र. सं.	सर्ग	श्लोक	क्र. सं.	सर्ग	श्लोक
1.	1	3, 4	2.	1	2
3.	8	39	4.	11	6, 7, 8
5.	18	14	6.	18	42, 43
7.	11	17			

नारायण: प्रति नारायण

वीरोदय काव्य में पौराणिक पुरुषों के अंतर्गत 3 नारायणों का वर्णन आया है । जैन दर्शन के अनुसार 9 नारायण होते हैं । प्रथम नारायण का वर्णन भगवान् महावीर के जीव त्रिपृष्ठ नाम के पर्याय में नारायण हुआ था । जिस त्रिपृष्ठ नारायण ने अपने प्रतिद्वंदी अश्वग्रीव नामक प्रतिनारायण को तलवार से मारा था वह अश्वग्रीव मरकर के रौरव नरक में गया ।[1]

यहां दो बातें विचारणीय है एक तो नारायण और प्रतिनारायण के बीच में लेखक ने चक्र का उल्लेख नहीं किया, अन्य शास्त्रों में प्रतिनारायण नारायण को मारने के लिए चक्र फैंकता है, लेकिन वह चक्र नारायण की प्रदक्षिणा देकर के उनके हाथ में शस्त्र के समान सुशोभित होने लगता है, तब नारायण उसी चक्र को प्रतिनारायण पर चलाकर उसे मार देते हैं । लेकिन लेखक ने यहाँ पर त्रिपृष्ठ नारायण से प्रतिनारायण को तलवार से मरवाया । और त्रिपृष्ठ नारायण की ध्वजा का चिह्न गरुड़ बताया ।

दूसरा प्रसंग नारायण और प्रतिनारायण का कृष्ण और जरासंध का उल्लेख करते हुए लेखक ने कहा है कि कृष्ण की माता देवकी ने अपने पूर्व जन्म में धीवरी के भव में क्षुल्लिका के व्रत धारण किये थे ।[2]

दूसरे स्थान पर लेखक ने बलभद्र के परिणामों को बताते हुए कहा है कि जरासंघ के हाथों से चलाये हुए महाबाणों से श्री कृष्ण अक्षत रहे । वे ही श्री कृष्ण जरत् कुँवर के एक साधारण बाण से मरण को प्राप्त हो गये ।[3]

इसी विषय को 18वें सर्ग के चौथे श्लोक में भी लेखक ने यथावत् कहा है । आठवां प्रति नारायण लंका का राजा रावण का नाम उल्लेख करते हुए लेखक ने कहा है कि एक माता के उदर से उत्पन्न हुए दशानन और विभीषण दोनों में परस्पर कितना अंतर था । रावण, रामचन्द्र का वैरी क्रूर और काला था जबकि विभीषण राम का स्नेही, शान्त और गौरा था । अत: जाति और कुल में जन्म लेने से व्यक्ति महान नही बनता बल्कि आचरण से महान बनता है ।[4]

चक्रवर्ती

चक्रवर्तियों में प्रथम चक्रवर्ती भरत का नाम उल्लेख करते हुए वीरोदय महाकाव्य में लिखा है कि यह राज्य, सम्पदा भरत और बाहुबली जैसे महापुरुषों में भी प्रपंच का कारण बनी थी और दूसरे स्थान पर भरत चक्रवर्ती का नाम लेते हुए कहा है कि शलाका पुरुषों में प्रथम चक्रवर्ती भरत हुए हैं जो कि 100 पुत्रों में से सबसे बड़े थे । उन्होंने अपनी प्रजा से धर्मामृत पान करने के इच्छुक एवं परलोक सुधारने की इच्छा रखने वाले लोगों को बुलाकर यज्ञोपवित रूप सूत्र चिन्ह देकर उनका सम्मान किया और उन्हें ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध किया । यद्यपि यह कार्य भगवान् ऋषभदेव की दृष्टि से बाह्य अर्थात् ठीक नहीं था । किन्तु लेखक कहते हैं कि भरत चक्रवर्ती ने प्रमादवश यह कार्य कर लिया । भरत चक्रवर्ती ने जिन ब्राह्मणों का एक धार्मिक वर्ग स्थापित किया था, वह दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ तक तो अपने धार्मिक कर्तव्यों का यथोचित रीति से पालन करता रहा उसके पश्चात् धर्म विमुख होकर जातीयता को प्राप्त होते हुए अप्रशस्त क्रिया काण्डों का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया ।[5]

भरत चक्रवर्ती ने क्षण भर में अरहन्त पद को प्राप्त कर लिया भरत के सम्बन्ध में ऐसा उल्लेख भी 17वे सर्ग 43श्लोक में किया है ।

दूसरे चक्रवर्ती भगवान् महावीर का ही जीव पूर्व भव में धातकी खण्ड में पूर्व विदेह के पुष्कल देश में पुण्डरीकणी पुरी के सुमित्र राजा एवं सुप्रदा रानी के पुत्र प्रियमित्र नाम से हुआ जो 6 खण्ड का स्वामी चक्रवर्ती पद को प्राप्त हुआ ।[6]

अन्य पौराणिक पुरुष

राजा श्रेणिक का नाम लिखते समय लेखक ने कहा है कि बिहार प्रान्त के राजगृह नगर के अधिराज राजा श्रेणिक भगवान् का शिष्य होकर श्रोताओं में अग्रणी होकर प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ।[7] हालाकि राजा श्रेणिक को पर्याय की दृष्टि में रखते है तो यह ऐतिहासिक पुरुष होते हैं लेकिन राजा श्रेणिक भावी तीर्थंकर की कोटि में आने के कारण से इनको इस लेख में पौराणिक पुरुषों के लेख में ले लिया है ।

क्र. सं.	सर्ग	श्लोक	क्र. सं.	सर्ग	श्लोक
1.	11	19.	2.	17	36
3.	17	42	4	17.	29
5.	18	40, 47, 48	6.	11	32, 33, 34
7.	15	16			

महापुरुषः तीर्थंकर के माता-पिता

जैन दर्शन के अनुसार महापुरुष 169 होते हैं । वे निम्न प्रकार हैं । 24 तीर्थंकर, उनके माता-पिता (48), 24 कामदेव, 14 कुलकर, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 11 नारद, 9 रुद्र, 9 बलभद्र । इस प्रकार से 169 महापुरुषों में से कुछ महापुरुषों के नाम वीरोदय महाकाव्य में आये हैं । जिनमें जैन दर्शन के अनुसार जो 2 पौराणिक पुरुष हैं, वे महान पुरुष तो हैं ही, जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है अर्थात् इनके अलावा शेष महापुरुषों को यहाँ बताते हैं ।

ऋषभदेव के माता-पिता नाभिराय के नाम का उल्लेख करते हुए मंगलाचरण में ऋषभदेव के पिता के रूप में आलेखित किया है ।[1] तथा भोग भूमि का वर्णन करते हुए भरत क्षेत्र के तीसरे काल के अन्त समय में चौदह कुलकरो में अंतिम कुलकर नाभिराय थे ।[2] और यही पर उनकी स्त्री मरुदेवी थी.ऐसा उल्लेख भी किया तो मरुदेवी भी तीर्थंकर की माता होने के कारण महापुरुषों की गिनती में आयेगी । उसी प्रकार का वर्णन 18वें सर्ग के 12वें श्लोक में भी यथावत् किया है ।

महापुरुषों में भगवान् महावीर के माता-पिता सिद्धार्थ एवं प्रियकारिणी रानी का वर्णन किया गया है - कुण्डनपुर का राजा सिद्धार्थ हुआ है ।[3] जिसकी प्रियकारिणी नाम की पटरानी थी ।[4]

राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी लेखक के काव्य नायक के माता-पिता होने के कारण बड़े विस्तार से इनका वर्णन तीसरे सर्ग से लेकर दसवें अध्याय तक यथायोग्य प्रसंग में अर्थात् गर्भ एवं जन्म कल्याणक तथा भगवान् महावीर के दीक्षा के पूर्व तक इन दोनों महापुरुषों को प्रांसगिक किया गया है ।

रुद्र

नौ रुद्रों में शिव नाम के रुद्र का नाम आया है सर्ग 17 के 21वें श्लोक में । तथा सर्ग 3 के 17वें श्लोक में भी रुद्र नाम से आलेखित किया है ।

कामदेव

चौबीस कामदेवों में बाहुबली का उल्लेख करते हुए लिखा है कि बाहुबली दीर्घकाल तक तपश्चरण करते हुए अरहंत पद को पाने में शीघ्र समर्थ नहीं हो सके । उसी अरहंत पदको भरत चक्रवर्ती ने क्षण भर में प्राप्त किया था । इससे अधिक और क्या कहा जाये अर्थात् तपस्या का मद करना बेकार है ।[5] और लेखक ने बाहुबली का नाम उल्लेख करते हुए 18वें सर्ग में लिखा है कि अकेले बाहुबली ने भरत चक्रवर्ती को जीत लिया था पश्चात् वह तपस्वी बन गये । घोर तपस्या करने पर भी जब केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, तब वही भरत चक्रवर्ती बाहुबली की सहायता को प्राप्त हुए किन्तु उन्होंने स्वयं क्षण मात्र में महापुरुषों की भूमि अर्हन्त पदवी को प्राप्त कर लिया ।[6]

ऐतिहासिक पुरुष

ऐतिहासिक पुरुष वह कहलाते हैं जो अपने जीवन में ऐसे अनोखे कार्य कर जाते हैं जिनसे आगे आने वाली पीढ़ी अपने जीवन में शिक्षा ग्रहण करती है । ऐतिहासिक पुरुषों में वीरोदय महाकाव्य में सर्व प्रथम ब्राह्मी सुन्दरी को लिया गया है। भगवान् महावीर स्वामी द्वारा ब्रह्मचर्य के समर्थन में ब्राह्मी सुन्दरी को प्रासंगिक किया गया है ।[7]

इसी प्रसंग में पाण्डव भीष्म पितामह को भी लिया गया है ।[8] ऐतिहासिक पुरुषों की श्रृंखला में कौरवों का प्रसंग करते हुए कहा है कि यह राज्य कौरवों के विनाश का कारण बना ।[9] शीत काल के पराक्रम को राजा कर्ण के पराक्रम के समान बताया है ।[10] वसुदेव एवं उग्रसेन का नाम लेते हुए लेखक ने कहा है कि देखो, प्राणियों सम्माननीय वसुराजा ने अपने भाई उग्रसेन की लड़की देवकी से विवाह किया और उसके उदर से जगत प्रसिद्ध और गुण समृद्ध श्री कृष्ण नाम के नारायण का जन्म हुआ।[11] कार्तिकेय

क्र. सं.	सर्ग	श्लोक	क्र. सं.	सर्ग	श्लोक
1.	1	2	2	11	5
3.	3	1	4	13	15
5.	17	43	6	18	3
7.	8	39	8	8	40
9.	8	44	10.	9	19
11.	17	18			

का प्रसंग लेते हुए कहा है कि आराधना कथा कोष में वर्णित कथा के अनुसार कार्तिकेय स्वामी इसी भूतल पर पिता के द्वारा पुत्री से उत्पन्न हुए बाद में बड़ी आचार्य बने ।[1] शिव नाम के प्रसिद्ध रुद्र की और वेद के संग्रहकर्ता पाण्डुओं के दादा व्यास ऋषि की उत्पत्ति भी विचारणीय है ।[2] एक ही माता से उत्पन्न दशानन और विभीषण में कितना अन्तर है इस अन्तर को बताने के लिए विभीषण का नाम लिया गया है ।[3] सुदृष्टि सुनार का जीव अपनी व्यभिचारिणी स्त्री विमला के उदर से उत्पन्न हुआ पीछे मुनि हो कर मोक्ष गया ।[4] अहिंसा धर्म का पालन करने वाला यमपाल चाण्डाल को राजा ने आधा राज्य दान में देकर अपनी पुत्री का विवाह कर उसकी पूजा की ।[5] उपरोक्त इन ऐतिहासिक पुरुषों को जाति का मद करना व्यर्थ है इस प्रसंग में लिया है । भगवान मुनिसुव्रत नाथ के समय नारद और पर्वत के सम्बन्ध में लिखा है अजैर्यष्टव्यम् को लेकर विवाद छिड़ गया इस विवाद का निर्णायक राजा वसु को बनाया गया ।[6] भगवान् महावीर के शिष्यों में राजा दधिवाहन एवं रानी पदमावती के नाम का भी आलेख किया है[7] इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, आर्यव्यक्त, सुधर्म, माण्डिक, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचक, मेतार, और प्रभास से भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर थे जो पूर्व में ब्राह्मण थे इनके जन्म स्थान माता-पिता का नाम आदि एक-एक वीरोदय महाकाव्य में लिखा है ।[8]

राजा चेटक को वैशाली का राजा बताते हुए भगवान् महावीर का अनुयायी बताया है काशी नरेश महाराजा संख, हस्तिनापुर के राजा, शिव, कोटि वर्ष देश के राजा, चिलाती दशार्ण देश के नरेश वीतभयपुर का अधीश उद्दयन रानी प्रभावती कौशाम्बी नरनाथ शतानिक रानी पद्मावती वती, उज्जयनी का राजा प्रद्योत, रानी शिवा देवी, राजपुरी नगरी का राजा जीवन्धर अर्हदास सेठ के सुपुत्र जम्बू कुमार जो उसी दिन विवाह की हुई रानियों को छोड़कर दीक्षित हो गये थे । इनके साथ विद्युतचोर अपने पाँच सौ साथियों के साथ दीक्षित हुआ था । सूर्य वंशी राजा दशरथ और उसकी रानी सुप्रभा, मल्लिका देवी, दारफवाहन की रानी, अभयदेवी, उष्ट्र देश के राजा यम, महावीर स्वामी के शिष्य सुधर्म स्वामी से उन्होंने दीक्षा ली थी ।

इन उपरोक्त इतिहासिक पुरुषों ने भगवान् महावीर के शासन में दीक्षित हुऐ थे । इसके बाद लेखक ने कलिंग देश के महाराज खारवेल एवं उनकी महारानी सिंहयशा देवी इक्ष्वाकु वंश राजा पद्म की पत्नी धनवती, सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की पत्नी सुषमा देवी, चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार एवं अशोक का नाम बाइसवें सर्ग के बारहवें श्लोक में किया है मरुवर्मा राजा की रानी कदाच्छी निर्गुन्द देश के राजा परलूर एवं उसकी रानी इन दोनों ने लोक तिलक नायक जिनालय बनवाया । उसकी व्यवस्था के लिए एक गाँव अर्पण किया गया । शुभ चन्द्र सैद्धान्ति देव की शिष्या जाकीयब्वे, महारानी मतिमब्वे, वीर चामुण्डराय, उसकी पत्नी एवं माता राजा वीरल्लाल मंत्री चन्द्रमौलि उसकी भार्या अचल देवी, पद्मनंदी सैद्धान्ति देव के चरणों की उपासिका, पल्लव राज की रानी चट्टला, भुजबल गंगहेमाण्डी की पत्नी पट्टमहादेवी, मारसिंगट्य की भार्या माचिकब्वे, विष्णु वर्धन राजा की पत्नी शान्तला देवी, जो प्रभाचंद सैद्धान्ति देव की शिष्या थी । शान्तला देवी की पुत्री हरियब्बरसी, विक्रम की बारहवीं शताब्दी में एक जिनालय बनवाया था, जिसका शिखर मणि माणिक्य से सम्पन्न था । विष्णु चन्द नरेश के बड़े भाई जक्वणि, सेनापति गङ्गराज पत्नी लक्ष्मीमती, चौहान वंशी कीर्तिपाल एवं महाबला रानी परमार वंशी राजा धार की भार्या शृङ्गार देवी हुई ।[9]

इन समस्त ऐतिहासिक राजा भगवान महावीर के शासन के अनुयायी हुए हैं इसलिए लेखक ने इनको प्रासंगिक किया है । अठारहवें सर्ग के 57वें श्लोक में दयानन्द सरस्वती एवं 22वें सर्ग के 15वें श्लोक में राजा विक्रमादित्य का उल्लेख भी आया है । इस का वर्णन अन्य लेखों में आलेख वाचकों ने दे दिया है । इसलिए यहाँ विस्तार नहीं दिया है ।

इस प्रकार वीरोदय महाकाव्य में पौराणिक महापुरुषों एवं ऐतिहासिक पुरुषों के जो नाम आये हैं, वे नाम तथा यथायोग्य प्रसंग इस लेख में दिये गये हैं । आचार्यों के नाम इस लेख में नहीं लिये हैं ।

वीरोदय महाकाव्य में कई मतों के नाम भी आये हैं जैसे मुसलमान, ईसाई आदि ।

ले. विदुषी ब्र. पुष्पा बहिन
रहली

क्र. सं.	सर्ग	श्लोक	क्र. सं.	सर्ग	श्लोक
1.	17	20	2.	17	21
3.	17	29	4.	17	37
5.	17	39	6	18	50, 51
7.	15	18	8.	14	2 से 13 तक
9.	15	1 से 63			

❑❑❑

वीरोदय महाकाव्य में वर्णित पंचकल्याणक

सिंघई श्री विजयकुमार धुर्रा

वीरोदय महाकाव्य के नायक काल्पनिक न होकर जैन दर्शन के अनुसार एक मोक्ष मार्ग के नेता है, जिन्होंने अपने जीवन को चारित्र की साधना से आदर्श बनाया है । इतना ही नहीं पूर्व भव की जगत कल्याण की भावना के परिणाम स्वरूप तीर्थंकर प्रकृति के स्वामी भी है, भगवान् महावीर बाल ब्रह्मचारी, संसार के भोगों से रहित एवं जिनका जीवन तीर्थंकर प्रकृति की नियत्ताओं से बंधा हो, ऐसे चरित्रवान् व्यक्तित्व को महाकाव्य के रंगारंग अलंकारों से सुसज्जित करना ज्ञानसागर जैसे महाकवि के ही सामर्थ्य की बात है । प्राय: कवि जब अपने काव्य का नायक काल्पनिक चुनते हैं तब कवि अपने नायक को कल्पना की उड़ान के अनुसार यथा योग्य मोड़ लेता है । वीरोदय महाकाव्य के नायक एक ऐसे आदर्श पुरुष है जिनके चरित्र को इच्छानुसार नहीं मोड़ा जा सकता तथापि आ. ज्ञानसागर महाराज ने भगवान् महावीर के चरित्र को आगम की यथार्थता के साथ महाकाव्यत्व में ढाल कर अपनी काव्य कुशलता का परिचय विद्वानों को दिया । तीर्थंकर प्रकृति के विपाकानुसार वीरोदय के नायक की जीवन शैली पंचकल्याणकों में ढली हुई है । इस परम्परा का गुजारा भी लेखक ने अपने काव्य में किया है, अत: वीरोदय काव्य में वीर प्रभु के पंचकल्याणक का संक्षिप्त सार यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है ।

गर्भ कल्याणक

वीरोदय महाकाव्य में गर्भ कल्याणक सम्बन्धित विषय चतुर्थ सर्ग से शुरू हुआ है गर्भ कल्याणक की क्रियाओं को शुरू करते हुए लेखक ने कहा है कि सीप में मोती के समान प्रियकारिणी पटरानी के उदर में आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को वीर प्रभु का अवतरण बताया है ।[1]

वीर प्रभु के गर्भ में आने के बाद सम्पूर्ण पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी अनुकुलता का अनुभव करने लगे और वीर प्रभु के अवतरण के समय प्रियकारिणी रानी ने 16 स्वप्नों की सुन्दर परम्परा को रात्रि के अन्तिम प्रहर में देखा ।[2]

यहां हिन्दी व्याख्या में स्वप्न परम्परा को देखा ऐसा वाक्य विशेषार्थ में बताया है सो यह परम्परा शब्द इस बात का संकेत करता है कि प्रत्येक तीर्थंकर के गर्भावतरण के समय प्रत्येक तीर्थंकर को माता इन 16 स्वप्नों को देखती है ।16 स्वप्नों को देखने के बाद माता जागकर प्रात:काल की क्रियाओं से निवृत्त होकर अरहंत जिनेन्द्र देव की अष्ट द्रव्य से पूजा करने में प्रवृत्त होती है ।[3]

यह बात विशेष रूप से लेखक की आज के मुमुक्षु के लिए विशेष ध्यान देने योग्य है जो द्रव्य पूजन-पाठ को हेय कहकर द्रव्य पूजन के बिना मात्र भाव पूजन को ही महत्त्व देते है तो उन्हें सोचना चाहिए कि जब तीर्थंकर की माता प्रभात काल में उठकर अष्टद्रव्य से जिनेन्द्रदेव की पूजा करती थी तो साधारण मनुष्य को करना ही चाहिए । जिनेन्द्र देव की पूजा करके प्रियकारिणी माता देवियों के साथ राजा सिद्धार्थ द्वारा 16 स्वप्नों के फल को आधुनिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए दार्शनिक ढंग से प्रस्तुत किये हैं । एवं-स्वप्न का अलग-अलग फल अगल अलग श्लोकों द्वारा लेखक ने प्रस्तुत किया है । इसी समय गर्भावतरण की चर्चा स्वर्ग लोक में पहुंच जाती है । तो वहाँ के सद्धर्म के धारक देव लोग कुण्डनपुर आये और गर्भकल्याणक की क्रियाओं को नियोग रूप से पूर्ण कर और उन देवों ने माता को नमस्कार कर स्वर्ग लोक वापिस चले गये ।[4]

तदुपरान्त पाँचवे सर्ग में लेखक ने कहा है कि गर्भावतरण के एक क्षण बाद ही श्री आदि देवियाँ राजा सिद्धार्थ के समक्ष प्रकट हुई और कहती हैं कि हे विभो, जगद् गुरू जिनेन्द्र देव के पिता आप हैं इसलिए हम लोग आपके दर्शनार्थ आयी है । तथा हमारा प्रयोजन अंत:पुर में रहकर तीर्थंकर को गर्भ में धारण करने वाली महारानी प्रियकारिणी की सेवा करना है । हम देवियों का जीवन इसलिए ही सारभूत है हम लोग सब इन्द्र की आज्ञा से यहाँ पर आयी हैं अत: हम सब देवियाँ माता की सेवा करने की आज्ञा चाहती हैं । इस प्रकार राजा सिद्धार्थ की आज्ञा लेकर देवियाँ कञ्चुकी के साथ माता के निकट जाकर प्रणाम करती है ।[5]

क्रम	सर्ग	श्लोक	क्रम	सर्ग	श्लोक
1.	4	1,2	2.	4	27
3.	4	28	4.	4	63
5.	5.	2 से 6			

यहाँ विशेष बात ध्यान देने योग्य है कि देवियां आकर सीधी माता के पास न जाकर राजा सिद्धार्थ के पास आज्ञा लेने जाती है, इससे सिद्ध होता है कि आदर्श राजघरानों में राजा की आज्ञा के बिना देव परिकर भी अतःपुर में प्रवेश नहीं कर सकता। और राजाज्ञा के बाद देवियों का कञ्चुकी के साथ जाना इस बात का प्रतीक है कि आदर्श स्त्री पति आज्ञा के बिना देवियाँ की सेवा भी स्वीकार नहीं करती है । इसलिए देवियाँ राजाज्ञा के प्रतीक के रूप में कञ्चुकी को अपने साथ ले जाती हैं, जिससे माता यह समझ ले कि राजाज्ञा लेकर ही देवियाँ यहां उपस्थित हुई हैं । इस प्रकार वे देवियां माता के पास जाकर कहती है कि हम लोग आपको किसी भी प्रकार दुःख देने वाला कार्य नहीं करेंगी, सुख देने वाला कार्य करना ही हमारा लक्ष्य है, और हम लोग इस सेवा के बदले शुल्क के रूप में मात्र आपका अनुग्रह ही चाहेंगी ।[1]

यहाँ देवियों से शुल्क की बात कहलवाकर इस बात को सिद्ध करना चाहा है कि आज शुल्क लेकर जो सेवा की जाती है, वह सेवा जीवन को धन्य नहीं बनाती बल्कि उसकी दृष्टि तो सेवा की बजाए धन पर रहती है । लेकिन यह देविया ऐसा कहकर यह बताना चाहती हैं कि हम आपकी सेवा करके अपने जीवन को धन्य बनाना चाहती हैं । इस प्रकार प्रत्येक देवी को अलग-अलग प्रकार से सेवा करने का कार्य लेखक ने पृथक्-पृथक् सोंपा है, यहाँ विशेष बात ध्यान देने योग्य है कि प्रभात काल में देवियाँ माता के लिये जिनेन्द्र देव की पूजा के योग्य सामग्री तैयार करके माता के साथ जिनेन्द्र देव की पूजन करने जाती है, पूजन के समय मृदंग वीणा मजरी आदि संगीत के साथ माता के सुरों से सुर मिलाकर गाती हुई नृत्य करती हुई पूजन विधि सम्पन्न करती है, पूजन के तदुपरान्त माता देवियों के साथ प्रच्छन्ना नाम का स्वाध्याय करती है ।[2] इस प्रच्छन्ना स्वाध्याय में लेखक ने देवियों द्वारा माता से वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से निराकरण हेतु प्रश्न पुछे । लेखक ने माता के द्वारा इन समस्याओं के निराकरण हेतु युक्ति युक्त ढंग से उत्तर दिलवाये हैं ।[3]

इसके बाद तीर्थंकर की माता देवियों सहित अपने महल वापिस आकर भोजन चर्या आदि क्रियाओं के सम्बन्ध में देवियों की तत्परता का वर्णन उनके सम्बन्ध में किया है । लेखक की यह बात यहां विशेष ध्यान देने योग्य है कि माता ने श्री देवी को मुख में धारण किया ही को नेत्रों में धारण किया, धृति को मन में धारण किया, कीर्ति को कुचों में धारण किया, बुद्धि को कार्य सम्पदान में, लक्ष्मी को धर्म काम (स्तनों) के सम्पदान में धारण कर लिया ।[4]

इस प्रकार माता के शरीर में गर्भ वृद्धि के लक्षण लेखक ने वर्णित किये हैं ।

जन्म कल्याणक

वीर प्रभु का जन्म होते ही वैमानिक देवों के विमानों में घंट नाद्य, भवन वासी देवों के भवनों में शंखध्वनि, व्यंतरदेवों के स्थानों में भेरी नाद्य, ज्योतिष देवों के विमानों से शंख नाद्य स्वतः होने लगा और इसी समय इन्द्र का सिंहासन कम्पायमान हुआ । इससे इंद्र आश्चर्य को प्राप्त हुआ । हजारों नेत्रों के भी उधर-उधर देखने से भी उसे सिंहासन के कम्पायन का पता नहीं चल सका तब वह अवधिज्ञान लगाकर कारण जानता है और तुरन्त जानकर नम्रीभूत हो जाता है कि अहो आज तीर्थंकर का जन्म हुआ है उसी का यह अतिशय है और तुरन्त ही सिंहासन से उठकर सात कदम जाकर स्वर्गों में ही परोक्ष रूप से नमस्कार करता है । यहाँ विचारणीय बात है कि क्षायिक सम्यक्दृष्टि भी एक जन्म के बालक को बड़ी भक्ति भाव से नमस्कार कर रहा है और आज के स्वाध्याय बंधु जिनके सम्यक् दर्शन का भी पतियारा नहीं उन्हें साक्षात अरहंत भगवान् को भी नमस्कार करने में हेयता प्रतीत होती है । नमस्कार करने के बाद सौधर्मइन्द्र सारे स्वर्ग लोक में जिनेन्द्र देव की वंदना करने के लिए ढिंडोरी पिटवाता है । उस ढिंडोरी को सुनकर समस्त स्वर्ग के देव सोधर्म इन्द्र की सभा में एकत्रित हो गये तब सौधर्मइन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार होकर देवगणों के साथ कुण्डनपुर आया । और कुण्डनपुर की तीन प्रदक्षिणा लगाकर इन्द्राणी को प्रसूति गृह में बालक को लाने के भेजता है । और इन्द्राणी प्रसूतिका गृह में जाकर बालक को लाकर इन्द्र को सौंप देती है । इन्द्र बालक को ऐरावत हाथी पर विराजमान करके मेरू पर्वत पर ले जाता है । और वहां पर 1008 भुजाएं बनाकर एक साथ 1008 कलशों से अभिषेक करता है । तदुपरान्त इन्द्राणी ने बालक को प्रक्षालित कर वस्त्राभूषण से अंलकारित किया और उसके बाद बालक को पुनः ऐरावत हाथी पर बैठा कर कुण्डनपुर आकर राजा सिद्धार्थ को प्रसन्न करता हुआ माता को बालक सौंप देता है । बालक को सौंपने के बाद इंद्र माता की पूजा करता है तथा आनंद नाम का नाटक इन्द्र की सभा में करता है ।[5]

क्रम	सर्ग	श्लोक	क्रम	सर्ग	श्लोक
1.	5	7	2	5	17 से 27
3	5	28	4.	5	40
5.	7	1 से 38			

इस प्रकार देवेन्द्रों द्वारा वीर प्रभु का जन्मोत्सव मनाया गया । लेखक लिखते हैं कि इससे राजा सिद्धार्थ को संतुष्टि नहीं हुई और वह सोचते हैं कि दूसरे के द्वारा लड्डू खाने पर मुझे संतुष्टि नहीं हुई अत: नगर में पुन: जन्म महोत्सव की घोषणा कर दी । जब जन्म महोत्सव की सम्पूर्ण व्यवस्था का काम कुबेर ने अपने हाथ में लेकर सारे नगर में तैयारियां शुरू करवा दी । राजा सिद्धार्थ ने बालक का जन्म महोत्सव मनाया और उसी जन्मोत्सव में बालक का नाम 'वर्धमान' रखा ।[1]

इसके बाद वीरोदय काव्य में भगवान् की बाल क्रीड़ाओं का वर्णन किया है जिसमें अनेक खेलों का वर्णन करते हुए गिल्ली-डंडा नामक खेल का भी वर्णन किया है । बाद में वर्धमान जब युवावस्था को प्राप्त करते हैं तब राजा सिद्धार्थ वर्धमान के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तो उसे वर्धमान युक्तियुक्त ढंग से अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि ब्राह्मी सुन्दरी, पार्श्वनाथ, भीष्म पितामह आदि ने क्या ब्रह्मचर्य अंगीकार नहीं किया है और भी अनेक तर्कों के साथ पिता के द्वारा रखे हुए प्रस्ताव का खंडन करके वर्धमान संसार की असारता पर चिंतन करने लग जाते हैं।

दीक्षा कल्याणक

मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की दसवीं तिथी के दिन वर्धमान ने दीक्षा धारण कर ली और उन्हें दीक्षा लेते ही मन: पर्यय ज्ञान प्रकट हो गया [2]

दीक्षा के बाद लेखक ने कहा है कि वर्धमान स्वामी के लिए ऐसे कई घोर उपसर्ग के प्रसंग आये जिनका श्रवण करते ही धीर जन रोमांचित को प्राप्त हो जाते हैं। विशेष अर्थ में भगवान् महावीर की तपस्या का काल 12.5 वर्ष बताया है । दीक्षा लेने के बाद भगवान् महावीर ने अपने अवधि ज्ञान से स्वयं के पूर्व भवों को जान लिया । इसका वर्णन करते हुए लेखक ने महावीर के आतापन आदि योग धारण की क्रियाओं का वर्णन किया है और अन्त में तपश्चरण काल पूर्ण होने के बाद क्षपक श्रेणी पर आरोहण कर गये ।[3]

महावीर के तपश्चरण के सम्बन्ध में लेखक ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है लेकिन वह सब जनसाधारण द्वारा ज्ञात होने के कारण उसे यहां नहीं लिया जा रहा है ।

केवलज्ञान कल्याणक

महावीर प्रभु ने घातिया कर्मों को नष्टकर वैशाख सुदी दशमी तिथि को स्नातक दशा को प्राप्त कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया ।[4]

केवल ज्ञान के प्राप्त होते ही नेत्र निर्निमेष हो गये और भगवान् चतुर्मुख हो गये। शरीर छाया से रहित हो गया भूमि पर चलना छोड़ कर अंतरिक्ष में चलने लग गये । नख, केश का बढ़ना बंद हो गया, कवलाहार से रहित हो गये, देवों द्वारा पञ्च आश्चर्य होने लगे, पृथ्वी कंटक से रहित होकर दर्पण के समान स्वच्छ हो गयी, स्वभाव से ही मंद सुगंध पवन चलने लगी, आकाश में जय-जयकार की ध्वनि होने लगी, सभी दिशाएं निर्मलता को प्राप्त होने लगी, छहों ऋतुओं का वातावरण एक साथ पृथ्वी पर प्रकट हो गया, गन्धोदक की सातिशय वृष्टि आदि अनेक प्रकार से केवलज्ञान के अतिशय प्रकट होने लगे।[5]

इसके आगे लेखक ने लिखा कि सुचेता इन्द्र भगवान् का केवलज्ञान कल्याणक मनाने के लिये अपने वैभव के साथ पृथ्वी पर आया और जहाँ पर मुक्ति मार्ग के अद्वितीय उपदेष्टा विराजमान थे वहाँ पर इन्द्र ने एक समवशरण नामक सभा का निर्माण किया। उस सभा स्थल का निर्माता शचीपति शक्र का अग्रणी प्रतिनिधि कुबेर था । उस सभा के उपभोक्ता अमेय महिमा वाले सर्वज्ञ चूड़ामणि वीर भगवान् थे । और उस सभा स्थल का संद्रष्टा समस्त पृथ्वी पर उत्पन्न हुए जीवों का समूह था ।[6]

वह सभा मण्डप गोलाकार था । मध्य में एक योजन विस्तृत और अढ़ाई कोस उन्नत था । उसमें चारों ओर से सभी प्रकार के जीव आकर श्री वीर प्रभु की शरण में आते थे इसलिए यह समवशरण नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ । इस समवशरण में सबसे पहले धूलीसाल नाम का कोट था जो चारों ओर खाई से घिरा था । तीन कटनियों से और वापिकाओं से सहित मान को हरण करने वाले चारों दिशाओं में चार स्तम्भ थे । इसके बाद भद्रसाल नाम का कोट था । इसके बाद रजतत्व नाम का

क्रम	सर्ग	श्लोक	क्रम	सर्ग	श्लोक
1.	8	1 से 6	2.	10	26, 27
3.	11, 12		4.	12	38 से 41
5.	12	42 से 51	6.	12	52 से 53

कोट था । इसके बाद हंसचक्रवाक आदि दस प्रकार के चिह्नों से युक्त प्रत्येक दिशा में 108-2 संख्याओं ध्वजाओं की पंक्ति थी इसके बाद जो कोट था उसमें अष्ट मंगल द्रव्य थे। चार गोपुर द्वार थे। उन द्वारों पर द्वारपाल के रूप में व्यंतर पहरा दे रहे थे, इसके बाद नाट्य शालाएं थी, इसके अनन्तर सप्त पर्ण, आम, अशोक, चम्पक जाति के वृक्षों के चार वन थे । उसके बाद रजत कोट था जिस पर भवनवासी सेवारत थे। तत्पश्चात् कल्पवृक्षों का वन था । इस स्थान पर चारों दिशाओं में सिद्धार्थ नामक वृक्ष है जिन पर सिद्ध भगवान् विराजमान थे । तदुपरान्त स्फटिक मणि का कोट था जिसके आगे 12 सभाएं सुशोभित हो रही थी, जिनमें चतुर्निकाय के देव व उनकी देवियां मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका और पशु बैठे हुए थे । समवशरण की सभा के मध्य गंध कुटी के ऊपर सिंहासन था उसके तल भाग के ऊपर अंतरिक्ष में भगवान् विराजमान थे। भगवान् के पीछे अशोक वृक्ष थे । सभा में आकाश से पुष्प बरस रहे थे । वीर प्रभु का प्रभा मण्डल जीवों के जन्मजन्मान्तर को दिखाने में समर्थ था, समुद्र अथवा मेघ गर्जन के समान गंभीर दिव्य ध्वनि निखर रही थी । भगवान् के ऊपर छत्रत्रय सुशोभित हो रहे थे ।[1] वीर प्रभु की प्रथम देशना श्रावण मास के प्रथम दिन हुई थी। वीर प्रभु की वाणी का पूर्ण रहस्य गौतम सदृश ही समझ सकते थे। लेखक ने कहा है कि यद्यपि समवशरण में उपस्थित सभी जन अपने -अपने प्रश्नों का उत्तर अपनी-अपनी भाषा में प्राप्त कर लेते थे लेकिन पूर्ण दिव्य ध्वनि गणधर ही ग्रहण कर पाते हैं ।[2]

भगवान् की वाणी अनक्षरी थी फिर भी सबको समझ में आती थी भगवान् के बिहार के समय दिक्कुमारियां हस्तकमल में अष्ट मंगल द्रव्य लेकर आगे चलती थी, धर्म चक्र उसके आगे चलकर मार्ग प्रशस्त करता हुआ चलता था ।[3]

मोक्ष कल्याणक

भगवान् महावीर शरद ऋतु के कार्तिक कृष्णा चतुदर्शी को रात्रि में एकान्त स्थान को प्राप्त हुए । उसी रात्रि के अन्तिम समय में धीर वीर महावीर पावा नगर के उपवन से मुक्ति लक्ष्मी के अनुगामी हो गये । उसी समय देवों व मनुष्यों ने दीपावली प्रज्वलित की ।

इस प्रकार वीरोदय महाकाव्य के पंचकल्याणक से सम्बंधित वर्णन को यहाँ अति संक्षिप्त में प्रस्तुत किया गया है । कवि ने पाँचो कल्याणों के वर्णन को महाकाव्य के लक्षणों को ध्यान में रखकर अलंकारिक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

लेकिन यहाँ इस लेख में आंलकारिकयता को ग्रहण न करके मात्र संक्षिप्त सारभूत तत्त्व को ग्रहण करके प्रस्तुत किया गया है ।

सिंघई श्री विजयकुमार धुर्रा
अशोकनगर

क्रम	सर्ग	श्लोक	क्रम	सर्ग	श्लोक
1.	13	1 से 24	2.	15	1 से 4
3.	15	3 से 13			

❑❑❑

माया : मालिक : गुलाम

माया का मालिक होना और बात है
तथा गुलाम होना और बात है ।
माया का गुलाम माया के लिए झूट बोल सकता है,
कपटाचार कर सकता है, मगर माया का मालिक
ऐसा नहीं करेगा । अगर न्याय नीति के अनुसार
माया रहे तो वह उसे रखेगा, अगर वह अन्याय के साथ रहना
चाहेगी तो निकाल बाहर करेगा ।

वीरोदय महाकाव्य में राजनीति तत्त्व

ले. डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी

महाकाव्य की विषय-वस्तु के आयाम

काव्यशास्त्रों में काव्य की परिभाषा अनेकरूपों में की गई है । रसात्मकता, सर्गबन्धता, धीरोदात्तनायकता, उदात्त चरित्र वर्णन, लोक-स्वभाव निदर्शन, सामाजिक प्रतिबिम्ब, कर्तव्य-निर्देश आदि गुणों का वर्णन एवं प्रासंगिक रूप से प्रकृति-वर्णन, चरित्र-चित्रण, गिरि-नगरादि वर्णन आदि विविध विषयों को कलात्मक प्रक्रिया से व्यक्त करते हुए मानव-जीवन के परमलक्ष्य ''शिव की प्रतिष्ठा और अशिव की निवृत्ति'' के लिये प्रेरित करना महाकाव्य की विषय-वस्तु के आयाम हैं ।

महाकाव्य में राजनीति-तत्त्व

समग्र जीवन की अभिव्यक्ति को उजागर करने के लिये ललित काव्यविधा में आह्लादकता, मधुरता आदि एवं विविध वस्तु-विधानों में प्राकृतिक भौगोलिक, सामाजिक, वैयक्तिक विषयों का समावेश महाकाव्य में करणीय है। अत: जैसा नायक होता है उसी के अनुसार उसमें तत्त्वों का समावेश प्रयत्नपूर्वक अथवा अनायास हो जाता है । प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने प्रयत्नपूर्वक तो राजनीति का वर्णन नहीं किया है किन्तु सहजभाव से किये गये वर्णनों में यत्र-तत्र राजनीति के तत्त्व आ गये हैं ।

राजनीति राज्य और राजा की नीति से निर्मित होती है । राजनीति के तत्त्वों में -यहां सर्वप्रथम यह निर्धारित किया गया है कि ''राजनीति का पर्याय राजधर्म है और राजधर्म धर्मशास्त्र का महत्वपूर्ण अंग है। इसी का दूसरा प्रकार अर्थशास्त्र है , यह भी धर्मशास्त्र का ही अंग है । अत: वीरोदय काव्य में धर्मशास्त्रीय दृष्टि की व्यापकता को ही राजनीति-तत्त्व की दृष्टि से निवेषित किया गया है। राज्य के सात अंग ''शासक, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, सेना और मित्र'' का विवेचन आधार रूप में रखकर वीरोदय की काव्यपंक्तियों को परखा गया है तथा उदाहरण के रूप में उन तत्त्वों का उद्भावन भी किया गया है ।

सर्वप्रथम इस काव्य में भारतवर्ष की धार्मिक और सामाजिक दुर्दशा का जो चित्रण है, उससे राजनीतिक शिथिलता का आभास होता है । द्वितीय सर्ग में देश, नगर, ग्राम आदि की स्थिति , मार्ग, बाजार आदि से ऐश्वर्य, सुव्यवस्था का दर्शन कराया है, जो राज्यव्यवस्था का परिचायक है। तृतीय सर्ग में आदर्श राजा-रानी का चित्रण राजनीति के सन्दर्भ में राजधर्म का सूचक है। चतुर्थ सर्ग में सोलह स्वप्नों के माध्यम से मानवीय भावनाओं का निदर्शन है। पांचवां सर्ग सेवकधर्म का निरूपण करता है । छठे सर्ग का वसन्तऋतु वर्णन प्रजा के अनुरंजन का उदाहरण है। सातवां सर्ग जन्माभिषेक, राज्याभिषेक की परिधि में आता है। आठवें सर्ग में महावीर की बाल-लीलाओं और कुमार क्रीडाओं के वर्णन से राजशिक्षा के संकेत प्राप्त हैं तथा राजकुमारों की नि:स्पृहता और सांसारिक विषयों में अनासक्ति का सन्देश मिलता है । इन्द्रियजयी ही राजा हो सकता है, इसकी पुष्टि भी महावीर द्वारा कथित वचनों से होती है । लोगों की स्वार्थान्धता, हिंसाप्रवृत्ति एवं अन्य दुष्प्रवृत्तियों के वर्णन से राजा के लिये जनसाधारण को इनसे बचाने का संकेत है। दसवां सर्ग महावीर की वैराग्यभावना-वृद्धि, प्रव्रजित होकर सिंहवत् निर्भीक विहार और उसमें होने वाली उपसर्गरूप घटनाओं का वर्णन राज्यसंचालक शासक के लिये राजनीतिक प्रेरणा देने में सक्षम है ।

ग्यारहवां सर्ग महावीर के पूर्वभवों का वर्णन प्रस्तुत करता है, यह राजा को आत्मनिरीक्षण पूर्वक त्रुटिशोधन के लिये उद्बुद्ध करता है तथा प्रजाजनों में भी ऐसी ही प्रवृत्ति हो, परस्पर सभी सहयोगी बनें, मैत्री, करूणा आदि बनाये रखें, यह दृष्टि देता है । बारहवां सर्ग ग्रीष्मऋतु की भीषणता को अंकित करता है । ऐसी भीषण स्थिति राज्य में भी आ जाती है, तब उसे ''आतापन-योग'' के समान वहन करना, वर्षा में प्रतिमा-योग से धैर्यपूर्वक निर्वाह की दिशा दिखलाई है । तपश्चर्या से संचित कर्मों का नाश एवं कैवल्य-विभूति प्राप्ति में राज्यवासियों और सैनिकों के लिये कष्टनाश तथा सुखप्राप्ति विवक्षित है । तेरहवां सर्ग समवशरण की रचना, आठ प्रातिहार्य तथा चौदह अतिशयों का प्रकटन, देवों तथा नागरिकों की उपस्थिति और देशना से प्रभावित होकर उनके द्वारा शिष्यत्व प्राप्ति से राजा और प्रजाजनों में सामंजस्य, सहनशीलता, विनम्रता आदि का उद्बोधन मिलता है । चौदहवाँ सर्ग गणधरों के जन्मादि का विवरण देता है । प्रजा में सबकी अपनी-अपनी विशेषता रहती है किन्तु शासन की प्रबुद्धता से सभी एक छत्र की छाया में आ जाते हैं । आपसी मतभेद भुलाकर सत्प्रवृत्ति में सहभागी बनने का दृष्टान्त इससे ग्राह्य है । राजा को निरभिमान होकर लोककल्याण के लिये सद्विचारों का प्रसार करना चाहिए, यह भगवान् महावीर के द्वारा विहार में किये गये उपदेशों

से परिज्ञेय है। साम्यवाद , अहिंसा, स्याद्वाद और सर्वज्ञतारूप चार उपदेश अग्रिम चार सर्गों में विस्तार से वर्णित हैं। इनमें प्रजा को सुख-समृद्ध रखने के लिये साम्यभाव और अहिंसा सर्वसाधारण को मार्ग दिखलाती है। "आत्महित का नाम मानवता है। केवल स्वार्थसाधन मानवता नहीं है।" इस आदर्शसूत्र की प्रस्तुति के आधार पर समाज की कुप्रथाओं, आडम्बरप्रधान जीवन, वंश, जाति आदि के गर्व तथा वैवाहिक व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में दिये गये परामर्श सभी के लिये अनुकरणीय हैं। अठारहवें सर्ग में काल की महत्ता का उल्लेख तथा मुनिचर्या एवं गृहस्थधर्म आदि की चर्चा करके समयानुसार वर्तन का सुझाव देता है। उन्नीसवां सर्ग अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और उसके सात भंगों के वर्णन से कवि ने अविवेक तथा कलुषाशय की निवृत्ति-पूर्वक दार्शनिक दृष्टि से कर्तव्यबोध कराया है। बीसवें सर्ग में सर्वज्ञ की सिद्धि इक्कीसवें तथा 22वें सर्ग में भगवान् महावीर द्वारा मुक्तिलक्ष्मी की प्राप्ति का वर्णन है, जिससे यह बतलाता गया है कि ऐसा सात्विक जीवन जीने मे इस लोक में उत्तम स्थिति और परलोक में मोक्ष प्राप्त होता है।

यह सम्पूर्ण काव्य धर्माश्रित है तथा जैन धर्म की विशिष्टता को बतलाते हुए उसके सर्वग्राही तत्वों को परिभाषित करता है। राजनीतिक दृष्टि से ये ही तत्त्व 'राजधर्म, शासक और शासन-व्यवस्था, व्यवहार, सदाचार, कृषि, पशुरक्षा, वाणिज्य, शिष्टाचार, दण्डविचार, सीमाविवाद, शत्रुविरोध, क्रय-विक्रय, सेवा-शुश्रूषा, सहकारिता, ऋण लेखपत्र, अपराध आदि विभिन्न बातों का निर्णय जैसे वर्णनों से निर्दिष्ट है, जिनका विस्तार प्रस्तुत निबन्ध में किया जाएगा।

डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी
उज्जैन

❑❑❑

वीरोदय में नारी वर्णन

डॉ. आराधना जैन

काव्य और नाट्य का विषय मानव चरित ही हुआ करता है। उसी के माध्यम से कवि रस व्यंजना करता है और अपने कथ्य को कान्तासममित उपदेश द्वारा सहृदय हृदय तक पहुँचाता है। आचार्य भरत ने नाट्य के विषय का वर्णन करते हुए कहा है -

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्॥

- भरत नाट्यशास्त्र 1/112

मैंने नाना भावों से समन्वित तथा विविध अवस्थाओं से युक्त लोकवृत्त का अनुकरण करने वाले नाट्य की रचना की है। लोकवृत्त ही समग्र साहित्य का विषय है। मानव का समस्त मनोवैज्ञानिक पक्ष, उसकी प्रवृत्तियाँ, मनोभाव एवं साध्य "लोकवृत्त" शब्द से अभिहित होता है।

लोकचरित का अनुकरण ही नाट्य है। लोक में व्यक्तियों का चरित न तो एक समान होता है, और न उनकी अवस्थाएँ ही एकाकार होती हैं, हम किसी व्यक्ति को सांसारिक सौख्य की चरम सीमा पर पाते हैं तो किसी को दुःख के तमोमय गर्त में अपना भाग्य कोसते हुए पाते हैं। सुख तथा दुःख, वृद्धि तथा ह्रास, हर्ष और विषाद, प्रसाद एवं औदासीन्य इन नाना प्रकार के भावों की संज्ञा लोक है। इन्हीं भावों से सम्पन्न नाना अवस्थाओं के चित्रण से युक्त लोकवृत्त ही नाटक है। काव्य में भी लोकवृत्त का ही चित्रण होता है।

महाकवि (ब्र. भूरामलजी शास्त्री) दि. जैनाचार्य श्री ज्ञानसागर जी की यशस्वी लेखनी से प्रसूत वीरोदय महाकाव्य का विषय भी मानव चरित ही है। राजा सिद्धार्थ, उनकी रानी त्रिशला 'प्रियकारिणी' का सुखमय दाम्पत्य जीवन, प्रजाप्रेम, धर्मवत्सलता, रानी के षोडश स्वप्न, स्वप्नफलों का दिग्दर्शन, वीर प्रभु का गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक, युवा होने पर विवाह से विमुख होना, राग पर विराग की विजय, तप कल्याणक, त्याग तपस्या द्वारा आत्मोत्थान की साधना, अर्हन्त बन कर लोक कल्याणकारी धर्मोपदेश या संक्षेप में कहें तो पुरुषार्थ चतुष्टय से समन्वित आदर्श मानव चरित्र, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकान्त वीरोदय का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

महाकवि श्री ज्ञानसागर ने स्त्री पात्रों एवं पुरुष पात्रों के माध्यम से अपने कथ्य को सहृदय हृदय तक सम्प्रेषित किया है । वीरोदय के नायक अखण्ड बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर महावीर हैं । नायक की माता और राजा सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी के गुण वैशिष्ट्य का मनोहारी चित्रण हुआ है, जिसे राजवर्ग में रखा जा सकता है । रानी त्रिशला के अतिरिक्त कवि ने वीरोदय में श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि देवियों का भी चित्रण किया है, जो इन्द्र की आज्ञा से माता की सेवा करने आती हैं और तीर्थंकर के जन्म के अवसर पर आयी इन्द्राणी का उल्लेख भी काव्य में हुआ है । इन्हें दिव्य नारी पात्र कहा जा सकता है ।

वीरोदय चरित्रसम्पन्न महाकवि प्रणीत जैन संस्कृति का महाकाव्य है । जैन संस्कृति प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर ले जाने वाली संस्कृति है । इसमें नारी के दो पक्षों का चित्रण हुआ है । प्रथम पक्ष व्यायवहारिक पक्ष है जिसके अनुसार नारी पुरुष के धर्म, अर्थ काम त्रिवर्गों को साधने वाली है । द्वितीय आध्यात्मिक पक्ष है, जिसके सहारे जैन संस्कृति ने निर्वृत्यात्मक प्रवृत्ति को सुरक्षित रखा है । यह पक्ष नारी को मोक्षमार्ग में बाधक और परिग्रह के रूप में देखता है। वीरोदय में नारी के दोनों पक्षों का प्रभावशाली वर्णन हुआ है । यहाँ नारी के व्यावहारिक पक्ष के परिप्रेक्ष्य में पहले विचार किया जा रहा है। इस पक्ष में भारतीय संस्कृति में नारी के चार रूपों का दिग्दर्शन होता है कन्या, पत्नी, माता और विधवा वीरोदय में पत्नी रूप और जननी रूप का विस्तृत चित्रण हुआ है ।

त्रिशला

कुण्डनपुर नरेश सिद्धार्थ की पट्टमहिषी हैं त्रिशला । इनका अपर नाम है प्रियकारिणी । बहुमुखी प्रतिभा की धनी प्रभावशाली व्यक्तित्व से सम्पन्न रानी सौन्दर्य और सद्गुणों की प्रतिमा है। रानी का सौन्दर्य इतना अनुपम है कि महाकवि को उसके लिए कोई भी उपमा उचित प्रतीत नहीं होती और वे कह उठते हैं।

हरेः प्रिया सा चपलस्वभावा मृडस्य निर्लज्जतयाऽघदा वा ।
रतिस्त्वदृश्या कथमस्तु पश्य तस्याः समाशील भुवोऽत्र शस्य ॥ 3/17

संसार में ऐसी कोई उपमा ही नहीं है जो रानी को दी जा सके अतः यह अनुपम ही है ।

महाकवि ने एक ही पद्य में अनेक उपमानों के द्वारा प्रियकारिणी के सर्वाङ्गीण सौन्दर्य का बिम्बात्मक चित्र उपस्थित कर दिया है -

रानी के केश अत्यन्त सघन हैं, मुख चन्द्रमा के समान है, ओष्ठों पर मूंगे के समान लालिमा है, गला शंख सदृश है, हाथ नवपल्लववत् हैं, स्तनों पर रसालता है, जंघाओं में सुवृत्तता है, चरणों में कमल सदृश कोमलता है । इन सब में सर्व प्रमुख वैशिष्ट्य है, उसके चरित्र में सदाचारिता है ।[1]

प्रियकारिणी रूपवती, सर्व गुण सम्पन्न नारी पतिव्रता है । वह सूर्य की छाया और विधि (ब्रह्मा) की भार्या के समान पति का अनुगमन करती है । सदैव राजा के पदाधीन (चरणों के आश्रित) रहकर उनकी पूर्ण मनोयोग (मन-वचन-काय) । से सेवा करती है ।[2]

वह लता के समान समपल्लव भावयुक्त अर्थात् सम्पत्ति / सर्व प्रकार के समृद्धिभाव से युक्त है एवं मंजुभाषिणी है । वह दीपक की दशा के समान विकाश (प्रकाश) से युक्त है । वह कोमलांगी और समदर्शिनी है । महारानी वाणी (सरस्वती) के समान परमार्थ को देने वाली है । जैसे सरस्वती मुमुक्षु को मोक्ष या परमार्थ प्रदान करती है, उसी तरह रानी याचकवर्ग को परमअर्थ (धन) देती है अर्थात् दानशीला है ।[3] चन्द्रमा की कला के समान परम आनन्द-दायिनी है । व्यवहार कुशल है । अपनी सेवा के लिए स्वर्ग से आयी हुई देवियों से मधुर व्यवहार करती है ।

त्रिशलादेवी जैन धर्मावलम्बी है । एक बार रात्रि के अन्तिम प्रहर में रानी षोडश स्वप्न देखती है तो निद्रा त्याग कर प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर सर्व प्रथम अष्टद्रव्यों से जिनेन्द्र भगवान की पूजन करती है, तदनन्तर स्वप्नफल जानने की जिज्ञासा से पति के पास राजसभा में प्रस्थान करती है ।[4]

क्रम	सर्ग	क्रम	सर्ग
1.	वीरोदय महाकाव्य : महाकवि ज्ञानसागर 3/28	2.	वही 3/15-16
3.	वही 3/19-18	4.	वही 4/28-29

नृपति सिद्धार्थ की भार्या रानी अत्यन्त विदुषी है । जब श्री, ही इत्यादि देवियां माता की सेवा करते हुए ज्ञानवर्धन के लिए कुछ प्रश्न पूँछती हैं तो रानी अत्यन्त सटीक और सारगर्भित उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट करती है । उदाहरणार्थ देवियां माता से प्रश्न करती हैं -

प्रश्न - हे मात: । जीव को दु:ख किस कारण से प्राप्त होता है ?
उत्तर - पाप करने से ।
प्रश्न - पाप में बुद्धि क्यों होती है ?
उत्तर - अविवेक के प्रताप से ।
प्रश्न - अविवेक क्यों उत्पन्न होता है ?
उत्तर - मोह के शाप (उदय) से जीवों को अविवेक उत्पन्न होता है ।
प्रश्न - राग क्या वस्तु है ?
उत्तर - देह की सेवा करना ही राग है ।
प्रश्न - देह कैसा है ?
उत्तर देह शठ (जड़) है ।
प्रश्न - शरीर शठ क्यों है ?
उत्तर - यह पोषण किये जाने पर भी नष्ट हो जाता है, इसलिए शठ है ।
प्रश्न - राग का अभाव कैसे होता है ?
उत्तर - परमात्म विषयक बुद्धि से राग का अभाव होता है ।[5]

इस प्रकार देवियाँ अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए माता से अनेक प्रश्न पूंछती हैं और यथोचित समाधान प्राप्त कर सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होती हैं ।

वीरोदयकार ने जननी रूप में नारी को बड़े आदर की दृष्टि से देखा है । और पूजनीय माना है । क्योंकि एक ओर जहाँ नारी प्रजनन की प्रयोगशाला है वहीं दूसरी ओर वह प्राणी पोषण और उन्नयन की आधारशिला है । जब तीर्थंकर प्रियकारिणी के गर्भ में आते हैं तब देवेन्द्रगण कुण्डनपुर आकर पुष्पादि श्रेष्ठ सामग्री और अनेक प्रकार के वाद्यों से उनकी अर्चन पूजन करते हैं, बारम्बार नमस्कार कर अपने इष्ट स्थान को प्रस्थान करते हैं ।

तदिह सुर सुरेशा: प्राप्य सद्धर्मलेशा,
वरपटहरणाद्यै: किञ्चन श्रेष्ठपाद्यै: ।
नवनवमपि कृत्वा ते मुहुस्तां च नुत्वा,
सदुदयकलिताङ्गी जग्मुरिष्टं वराङ्गीम् ॥ 4/63

वीर प्रभु के जन्माभिषेक के पश्चात् इन्द्रादि कुण्डनपुर आकर प्रियकारिणी (वीर की माता) की पूजा करते हैं अनन्तर उनकी गोद में पुत्र को सौंप देते हैं ।[2] इससे स्पष्ट होता है कि जननीरूप नारी प्रत्येक नरनारी द्वारा वन्दनीय है । जहां नारियां पूजी जाती हैं, वहीं देवता निवास करते हैं यह कथन अक्षरश: सत्य है । स्वर्ग से श्री ह्री आदि देवियों का आना और गर्भवती प्रियकारिणी की सेवा करना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।[3]

विवाहिता नारी माता बनने पर ही अपने जीवन को सार्थक एवं धन्य मानती है । जब राजा सिद्धार्थ अपनी मधुर वाणी से रानी को षोडश स्वप्नों के फलों को बतलाते हुए कहते हैं - "तुम्हारे गर्भ से तीनों लोकों के स्वामी तीर्थंकर पुत्र का जन्म होगा" इस सुखद कथन को सुन कर वह इतनी हर्षित और रोमांचित होती है कि मानो गोद में पुत्र हो । पुत्र की प्राप्ति ही सुखद होती है फिर तीर्थंकर जैसे पुत्र के प्राप्त होने पर सुख का ठिकाना ही क्या है ?[4] पुत्र की प्राप्ति होने पर रानी के सुख/प्रसन्नता का पारावार ही नहीं रहता ।[1]

क्रम	सर्ग	श्लोक	क्रम	सर्ग	श्लोक
1.	वही	5/26-33	2.	वही	7/3
3.	वही	5/5,7	4.	वही	4/62
5	वही	6/40			

इस प्रकार प्रियकारिणी में हमें एक रूपवती, सुशील, पतिव्रता, धर्मप्राण, हितमित भाषी, प्रजावत्सल, दानशीला एवं सर्वगुण सम्पन्न पत्नी और माता रूप नारी के दर्शन होते हैं ।

श्री ह्री आदि देवियां

पट्टमहिषी त्रिशला के गर्भ में भगवान् महावीर का अवतरण होता है उस समय इन्द्र की आज्ञा से श्री ह्री धृति, कीर्ति बुद्धि, लक्ष्मी आदि देवियां आती हैं । राजा सिद्धार्थ को अपने आगमन का प्रयोजन बतलाकर उनको अनुमति प्राप्त करती हैं और माता की सेवा सुश्रुषा में रत हो जाती है । वे सभी मिल जुलकर निष्काम भाव हर्षित हो कर सेवा करती हैं और उनसे मात्र अनुग्रह की आकांक्षा रखती है । ये देवियां प्रात: काल माता के शयन कक्ष से बाहर आते ही तत्परता से उनकी सेवा करती हैं । वे उन्हें स्नान कराती हैं, वस्त्राभूषणों से अलंकृत करती हैं । जिनेन्द्र भगवान् की पूजन को उद्यत माता के लिए पूजन सामग्री प्रदान कर उनके साथ पूजा भी करती हैं । ये देवियां माता को सुस्वादु कराने में, गीत, नृत्य, वाद्य यन्त्रों से मनोरंजन करने में, धर्मचर्चा करने में अत्यन्त कुशल हैं । वे सारे कार्य माता की इच्छा के अनुरूप ही करती हैं । उन्हें कभी भी अकेलेपन का अनुभव नहीं होने देती ।[1]

वीरोदय में श्री, ह्री आदि देवियों में चतुराई, ज्ञानार्जन के प्रति जिज्ञासुवृत्ति, विनम्रता, व्यावहारिक ज्ञान से परिपूर्ण कार्यकुशलता का एवं सेवाभावी गुणों का मञ्जुल समन्वय है ।

इन्द्राणी

वीर बालक के जन्म होने पर इन्द्र इन्द्राणी के साथ कुण्डनपुर में आते हैं । इन्द्राणी माता के मदन में प्रवेश करती है । उसे सर्वप्रथम वीर के दर्शन का सुअवसर मिलता है । वह उनके दर्शन करती है । अनन्तर माता के समीप मायामयी शिशु को रख कर 'वीर' शिशु को उठा लेती है । बाहर आ कर अत्यन्त भक्ति के साथ नवजात शिशु को इन्द्र के हाथों में जन्मकल्याणक मनाने हेतु सौंपती है ।[2] ''जन्माभिषेक के पश्चात् इन्द्राणी ही 'वीर' के शरीर को पोंछती है और आभूषणों से विभूषित करती है ।[3] इस प्रकार इन्द्राणी में कुशल माता रूप नारी का दिग्दर्शन होता है ।

नारी के जननीरूप और पत्नीरूप का विशद चित्रण वीरोदय में हुआ है । विवाह के बाद नारी को पत्नी का रूप मिलता है । यह ऐसा सम्बन्ध है जहां से संसार की सृष्टि आरम्भ होती है । जब वर्धमान युवा होते हैं सिद्धार्थ (पिता) अपने पुत्र के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं । वे उसे अस्वीकार कर देते हैं तो पिता पुन: समझाने का प्रयास करते हुए कहते हैं -

> प्रत्युवाच वचस्तातो जगदीश्वरमित्यद: ।
> नारीं विना क्वनुश्छाया निश्शाखस्य तरोरिव ।। 8/24

उनके वचन सुन कर पिता पुन: जगदीश्वर वीर से कहते हैं - जैसे शाखा रहित वृक्ष की छाया (शोभा) नहीं है उसी प्रकार नारी के विना नर की छाया (शाभा) कहाँ ?

सिद्धार्थ का उक्त कथन पत्नीरूप नारी के महत्त्व को प्रतिपादित करता है ।

काव्य में पृथक् रूप से विधवानारी विषयक वर्णन नहीं है । पर शीत ऋतु के चित्रण में कवि का भाव घोषित होता है कि वे विधवा विवाह के पक्ष में नहीं थे ।[4]

नगरवर्णन (2/48-49), वर्षाऋतु बर्णन (4/21), शरद् ऋतु वर्णन (21/2) में उपमा एवं श्लेष के द्वारा भी कवि ने नारी के सौन्दर्य को बिम्बित किया है पर मात्र 'नारी पात्रों का वर्णन' विषय सीमा में रहकर उसका यहां उल्लेख मात्र किया है ।

वीरोदय के अष्टम सर्ग में आध्यात्मिक दृष्टि से नारी का मार्मिक चित्रण हुआ है । पिता सिद्धार्थ के बार-बार समझाने पर भी युवा वर्धमान विवाह की स्वीकृति तो नहीं देते हैं उल्टे वे अपने पिता के समक्ष समस्यायें रख कर उनसे ही उनका समाधान पूंछते हैं । उनकी समस्याएं दृष्टव्य है -

क्रम	सर्ग	श्लोक	क्रम	सर्ग	श्लोक
1.	वही	5/6-42	2.	वही	7/13-14
3.	वही	7/35-37	4.	वही	8/28

हे तात ! मेरे एक ओर कलत्र (स्त्री) है तथा दूसरी ओर यह दुःखी जगत् है । इनमें से मैं किसे अपना प्रेमपात्र बनाऊँ? क्या मैं अपनी इन समर्थ भुजाओं से प्रिया के गले का आलिंगन करूँ या इन बाहुओं से दीन दुःखी प्राणियों को धूर्तों के जाल से मुक्त करूँ ? आप ही बतायें मेरा क्या कर्त्तव्य है ?[1]

युवा वीर के ये प्रश्न उनके पिता को तो निरुत्तर कर ही देते हैं तथा आत्मकल्याण और लोककल्याण के लक्ष्य में साधना में नारी बाधक/हेय हैं, इस कथ्य की पुष्टि करते हैं ।

वीर वर्धमान स्त्री को बन्धन मानते हैं । उनके शब्द इस प्रकार है -

इस भूतल पर पुरुष के लिए स्त्री का बंधन ही सबसे बड़ा बन्धन है । इसके अभाव में अन्य दूसरा बन्धन संभव ही नहीं है । प्रमदा (स्त्री) के आश्रय से ही समस्त इन्द्रियां मद को प्राप्त होती हैं । यदि स्त्री का सम्पर्क न हो तो फिर ये इन्द्रियां देहधारी के होती हुई नहीं होती हुई-सी रहती है । स्त्री के होने पर मनुष्य का चित्त उसके रूप सौन्दर्य के सागर में गोते लगाया करता है । पत्नी के कारण ही मानव मखमली बिस्तरों पर शयन करता है और शरीर की मार्दवता हेतु उबटन, तेलमर्दन, इत्र फुलेल लगाने आदि क्रियाओं में व्यस्त रहता है । निरन्तर पुष्टिकारक और बलवीर्य वर्धक औषधियों का सेवन करता है । संक्षेप में कहा जाये तो स्त्री के निमित्त से पुरुष दास बन जाता है । जो स्त्रियों का दास है वह सर्व जगत का दास है । इन्द्रियों को जीतकर ही वह जगज्जेतृत्व को प्राप्त कर सकता है । इसलिए मैं मनुष्य जन्म को प्राप्त कर स्त्री के वशीभूत होना नहीं चाहता ।[2]

नवयुवा वर्धमान का नारी विषयक उक्त चिन्तन निवृत्ति मार्ग के परिप्रेक्ष्य में हैं जो उनके संसार, शरीर और भोगों के प्रति उत्पन्न वैराग्यभाव को पुष्ट करता है । जहाँ युवा वीर ने नारी को हेय माना है वहीं दूसरी ओर प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की पुत्रियों (ब्राह्मी और सुन्दरी), जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था, की प्रशंसा की है ।[3] उन्होंने यह प्रशंसा, यह तर्क अविवाहित रहते और आत्म साधना के पथ पर अग्रसर होने के समर्थन में दिया है ।

वीरोदय में प्रतिपादित नारी वर्णन से स्पष्ट है कि लोकव्यवहार की दृष्टि से नारी का समाज में अपरिहार्य स्थान है। सांसारिक जीवन में उनके सहयोग के बिना सृष्टि का संसरण या लोक व्यवहार का क्रियान्वयन असंभव ही है अतः कवि काव्य में उनका चित्रण करता है और आध्यात्मिक पक्ष में भी मुक्तिरमा, के रूप में नारी का निरूपण कर देता है । तात्पर्य यह कि महाकवि ने अलंकारों प्रतीकों, बिम्बों आदि के माध्यम से नारी के स्वरूप का प्ररूपण किया है ।

समीक्ष्य महाकाव्य में जहाँ गृहस्वामिनी पत्नी के रूप में नारी को सम्मान दिया गया है, वहीं माता के रूप में उसे पूजा गया है । ये नारियाँ एकनिष्ठ प्रेम, पातिव्रत्य, पतिमार्गानुसरण, धर्मपरायण, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं सेवाभावी बनने की शिक्षा देती है ।

काव्य के षट्प्रयोजनों में सर्वप्रमुख प्रयोजन है - सहृदय को अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराना । महाकवि ज्ञानसागर ने वीरोदय में नारीचित्रण के द्वारा उनकी विभिन्नताओं का मनोवैज्ञानिक पक्ष बड़ी निपुणता से उद्घाटित किया है तथा उनकी कोमल, उदात्त, रमणीय रूपों एवं दोषों का उन्मीलन कर सहृदयों को रस सागर में अवगाहन का अवसर प्रदान किया है ।

डॉ. (कु.) आराधना जैन "स्वतंत्र"
गंजबासोदा

क्रम	सर्ग	श्लोक	क्रम	सर्ग	श्लोक
1.	वही	8/29	2.	वही	8/30-37,42
3.	वही	8/39			

❑❑❑

वीरोदय में वर्णित स्वप्न, शकुन, सामुद्रिक एवं नैमित्तिक परिज्ञान

श्रीमति कांति जैन

जैन मान्यता है कि जब किसी भी तीर्थंकर का जन्म होता है तब उसके गर्भ में आने से छह मास पूर्व ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर आकर जिस नगरी में जन्म होने वाला है उसे सुंदर और सुव्यवस्थित बनाता है और श्री ह्री आदि 56 कुमारियाँ/देवियां आकर होने वाले भगवान् की माता की सेवा करती हैं। उनमें से कितनी ही देवियां माता के गर्भ का शोधन करती हैं- जिसका अभिप्राय यह है कि जिस कुक्षि में एक दिव्य महापुरुष जन्म लेने वाला है उस कुक्षि में यदि कोई विषमता होगी तो उत्पन्न होनेवाले पुत्र-जातक पर उसका प्रभाव पड़ेगा । ये देवियाँ भगवान् के जन्म होने तक माता के चारों ओर का वातावरण ऐसा सुंदर और नयन-मनहारी बनाती है कि जिससे किसी भी प्रकार का क्षोभ या संक्लेश माता के मन में उत्पन्न न होने पावे। इसी सब सावधानी का यह सुफल होता है कि उस माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक अतुल बली, तीन ज्ञान का धारक और महा प्रतिभाशाली होता है ।

साधारणत: यह नियम है कि किसी भी महापुरुष के जन्म लेने के पूर्व उसकी माता को कुछ विशिष्ट स्वप्न आते हैं, जो किसी महापुरुष के जन्म लेने की सूचना देते हैं । जैन शास्त्रों के उल्लेखानुसार 30 विशिष्ट स्वप्न माने गए हैं । तीर्थंकर की माता सोलह 16, चक्रवर्ती की माता 14, वासुदेव की माता 7 और बलदेव की माता 4 स्वप्न देखती है ।

स्वप्न दर्शन का संदर्भ वीरोदय में चतुर्थ सर्ग में आया है । आदिनाथ भगवान् की माता षोडश स्वप्न देखती है और नाभिराजा उन स्वप्नों का फल प्रतिपादित करते हैं ।

(1) तीर्थंकर ऋषभदेव का मरीचि नाम पौत्र होगा, जो संसार भ्रमण उपरान्त अंतिम तीर्थंकर होगा ।

(2) भगवान महावीर प्रथम चक्रवर्ती का पुत्र होकर फिर स्वयं भी चक्रवर्ती होगा ये दो अनुभूतियां माता मरुदेवी को अपने स्वप्नों में भी हुई थीं ।

दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक और दोषज इन सात प्रकार के स्वप्नों में से भाविक स्वप्न का फल यथार्थ निकलता है । स्वप्न कर्मफल का सूचक है - आगामी शुभाशुभ कर्मफल की सूचना देता है । सूचक निमित्तों में स्वप्न का महत्वपूर्ण स्थान है ।

राजा श्रेयांस ने स्वप्न में (1) सुवर्णमय विशाल सुमेरु पर्वत (2) शाखाओं के अग्रभाग पर लटकते हुए आभूषण वाला कल्पवृक्ष (3) भयानक सिंह (4) वृषभ (5) सूर्य चन्द्र (6) समुद्र (7) अष्टमंगल द्रव्य धारण किए हुए व्यन्तरों की मूर्तियां देखी थीं । राजा ने इन स्वप्नों का फलादेश अपने पुरोहित सोमप्रकाश से पूछा था । पुरोहित ने फल प्रतिपादित करते हुए कहा कि उन्नत सुमेरु पर्वत पर जिसका अभिषेक हुआ है, वह देव आज यहां आयेगा । अन्य स्वप्नों से भी यह ज्ञात होता है कि हम लोगों को पुण्य, ऐश्वर्य और अभ्युदय की प्राप्ति होगी । उस महापुरुष के दर्शन से हमारी अन्तरात्मा पवित्र होगी और सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होंगे । अतिबली सिंह का स्वप्न महावीर भगवान् के अवतरण का द्योतक रहा है ।

एक दिन सुख से सोती भगवान् महावीर की माता ने पिछली रात्रि में स्वर्ग से यहां आनेवाले जिनदेव के उतरने के लिए रची गई सोपान सम्पत्ति के समान सोलह स्वप्नों की परम्परा देखी-राजा सिद्धार्थ ने इन स्वप्नावली के संकेत महारानी को बताए । ये स्वप्न निम्न थे -

(1) गज- समस्त धरा पर निर्द्वन्द विचरण करने वाला निष्पाप जातक ।

(2) वृषभ - ऋषभदेव की परम्परा और ध्वजा का धारक रत्नत्रय का धारी, मूल गुणों का धारी ।

(3) सिंह - दुरागृह को भेदन करने वाला और मदमत्तों को भेदने में दक्ष ।

(4) लक्ष्मी - हाथियों द्वारा अभिषेक लक्ष्मी का अर्थ है, सुमेर पर्वत पर जातक का अभिषेक ।

(5) 2 मालाएं - सुयश की सुगंधि से सारे जगत को व्याप्त करने वाला ।

(6) शशि - धर्म का अमृत समस्त धरा पर फैलाने वाला ।

(7) सूर्य - केवल ज्ञान का आलोक फैलाने वाला ।

(8) 2 कलश - मंगलकारी युगलकलश ज्ञान तृषातुर जीवों के लिए अमृत सिद्धि देने वाला ।

(9) 2 मछलियाँ - सकल लोक को प्रफुल्लित करने वाला ।

(10) समुद्र सरोवर - 1008 लक्षणों वाला भव्य जीवों को ज्ञान देने वाला नौ निधियों का धारक ।

(11) सरोवर - समस्त जगत के जीवों को शांत सरोवर की भांति-शांति देने वाला ।
(12) सिंहासन - सर्वश्रेष्ठ पद का धारी ।
(13) देव विमान - मोक्ष प्राप्तिका हेतु ।
(14) नाग विमान - पृथ्वी पर इसका सुयश तीर्थ होगा ।
(15) रत्न राशि - निर्मल षठगुणों से परिपूर्ण ।
(16) निर्धूम अग्नि - सभी पापों का हरण करने वाला आत्मस्वरूपी । श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नाय में 13 स्वप्न तो एक से वर्णित हैं, अन्य में मतभेद हैं ।

वीरोदय महाकाव्य में अंग, लक्षण स्वप्न, व्यंजन एवं अंतरिक्ष आदि निमित्त का पूरा वर्णन किया गया है ।

वीरोदय महाकाव्य आचार्य ज्ञानसागर की बहुमुखी ज्ञानप्रतिभा का परिचायक है । जब भगवान् महावीर का जन्म हुआ तो महाकवि ने अपने महाकाव्य में लिखा है कि शेष कल्पवासी देवों के घर घण्टे बजने लगे । ज्योतिषी देवों के घर सिंहनाद होने लगा, भवनवासी देवों के घर शंखनाद और व्यंतर देवों के घर भेरी निनाद होने लगा । सभी ने उक्त वाद्यों के वादन से नैमित्तिक ज्ञान पाया कि भगवान् महावीर का जन्म हो गया है । ऐसे नैमित्तिक ज्ञान के उदाहरण अनेकानेक स्थलों पर मिलते हैं, इससे प्रतीत होता है कि पूज्य आचार्य ज्योतिष सामुद्रिक शास्त्र, हस्तरेखा, शकुन, स्वप्न शास्त्र के भी अद्वितीय विद्वान् थे ।

श्रीमती कांति जैन
एन 14 चेतक पुरी, ग्वालियर - 474009

❑❑❑

वीरोदय महाकाव्य एवं पर्यावरण-संरक्षण

प्राचार्य निहालचन्द जैन

१. आद्य-कथन-अन्वेषण की आंख से

पर्यावरण-संरक्षण आज की एक विश्वव्यापी-ज्वलन्त समस्या है । हमारे देश के 41 वें संविधान-संशोधन द्वारा प्रत्येक नागरिक का यह मूल कर्तव्य हो गया है कि - वह प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अन्तर्गत वन, झील और वन्य प्राणी हैं, की रक्षा करे, उसका संवर्द्धन करे, प्राणिमात्र के प्रति दया-भाव रखे तथा अवैध शिकार से बचे । उक्त संविधान से जैन धर्म की मूल भावना को बड़ा संबल मिला है ।

प्रस्तुत निबंध में महाकवि ब्र. भूरामल द्वारा प्रणीत "वीरोदय" काव्य में उन प्रसंगों/घटनाओं को खोजा गया है, जहां पर्यावरण-संरक्षण का रहस्य भरा हुआ है । श्रमणों और तीर्थंकरों की दिगम्बर मुद्रा प्रकृति और पारिस्थितिकी की मूल अवधारणा से जुड़ी हुई है। वन, उपवन, झील, कमल युक्त सरोवर, पुष्प, आदि पर्यावरण संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाहन करते हैं ।"

"वीरोदय" काव्य के द्वितीय सर्ग में भ. महावीर के समकालीन, देश, पुर - ग्रामादिक का बाह्य परिवेश-सुन्दर एवं पर्यावरण प्रदूषण से रहित था । ग्राम और नगर के बाहर कमलों और पवित्र जल से युक्त सरोवर हुआ करते थे तथा प्रचुरता में नव संपदा थी ।

"अनल्पपीताम्बर धामरम्याः पवित्रपद्मात्सरसोऽम्य दम्याः ।
अनेक कल्पद्रुमसम्विधाना, ग्रामालसन्ति त्रिदिवोपमानः ।।10।।

अनेक प्रकार के वन-उपवनों से घिरे ग्राम और नगर स्वर्ग-शोभा के समान रमणीक थे "पदेपदेऽनल्पजलतटाका, अनोकहा काफल-पुष्पपाकाः । प्रत्येक स्थानों पर गहरे जल से भरे विशाल तालाब तथा फल-पुष्पों से युक्त वृक्ष थे । ये सभी जल व वायु-प्रदुषण से रहित-पर्यावरण शुद्धि के प्रतीक थे ।

२. महारानी त्रिशला के १६ स्वप्नः पर्यावरण के प्रतीक

माँ त्रिशला द्वारा देखे गए सोलहस्वप्न-भावी तीर्थंकर की विशिष्ट पुण्यशाली आत्मा के अवतरण की पीठिका होते हैं।

अरिहन्त पद पाने वाला महावीर का जीव, अच्युत-स्वर्ग से प्रयाण कर-भरत क्षेत्र की पावन वसुंधरा पर अवतरित होने के लिए माँ त्रिशला के गर्भ में आता है, तभी से प्रकृति नदी का स्वरूप-सुखद व पर्यावरण शुद्ध बन जाता है । सूखे पेड़-पौधे हरे-भरे हो जाते हैं । नदी-नाले जल से भर जाते हैं । वृक्षों की गोद, फलों व फूलों से भर जाती है । सोलह स्वप्नों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं (1) हाथी, बैल, सिंह व लक्ष्मी-सचेतन हैं, शाकाहार व शौर्य के प्रतीक हैं (2) मन्दार-मालाएं सूर्य, चन्द्रमा और धूम रहित अग्नि - वायु-प्रदुषण की परिशुद्धि के प्रतीक है । अग्नि का धूम रहित होना अशुद्ध वायु का लेशमात्र न होना तथा पुष्पमालाएं-वायु को सुरभित बनाने की ओर संकेत देते हैं । (3) निर्मल जल से युक्त दो स्वर्ण कलश, युगल, मीन, 1008 कमलों के समूह से युक्त निर्मल जल वाला सरोवर और समुद्र-जल प्रदूषण से रहित होने के प्रतीक है (4) चार अचेतन पदार्थ - सिंहासन, देव-विमान, धरणेन्द्र का धवलनाम मंदिर और रत्नों की राशि - ये सभी समृद्धि के प्रतीक है ।

"वीरोदय" काव्य के सर्ग-4 में श्लोक 57 व 60 में इन्हीं सोलह स्वप्नों का वर्णन किया गया है । छठवें सर्ग में शिशु महावीर के जन्मोत्सव का वर्णन है । सहजात शिशु के शरीर से पद्म के समान सौरभ (सुगंध) निकल रही थी ।

सौरभावगतिस्तस्य, पद्मस्येव वपुष्पभृत् ॥41॥

बालक महावीर का शरीर-इतना सुगंधमय था कि सभी दिशाएं महक उठी थीं, पर्यावरण को इतना सुंगधित बनाना-उस महान् आत्मा के अवतरण का प्रतिफल था ।

(3) समुद्र प्रदूषण के शिकार हैं । कीटनाशक दवाएं खेतों से होतीं हुई नदियों तक पहुंचती हैं और उनके घातक अंश समुद्री जल में रहते हैं जिससे मछलियों व जल जन्तुओं पर दुष्प्रभाव पड़ता है । पोरबंदर, विशाखापट्टनम् कांडला में समुद्री पानी में अमोनिया अधिक मात्रा में है । जल में पेट्रोलियम, हाईड्रोकार्बन अधिक होने से प्रदूषण हो गया है । हानिकारक भारी धातुएं जैसे केडमियम व पारा से जल प्रदूषित हो चुका है । इससे तैरने वाले पर्यटकों की त्वचा को ये रसायनिक तत्त्व नुकसान पहुँचा रहे हैं ।

भ. महावीर के जन्म लेने मे समुद्र का जल भी प्रदूषण से रहित हो गया था सर्ग 7 श्लोक 25 द्रष्टव्य है -

समुदालकुचाञ्चितां हितां नितरामक्षतरूपसम्मिताम् ।
तिलकाङ्कितभालसत्पदामनु गृहात्युदधेः स्म सम्पदाम् ॥25॥

देवता गण-लोची, अखट बहेड़ा व तिलक जाति के वृक्षों की पंक्ति वाले समुद्र तक का निरीक्षण कर रहे थे । जन्माभिषेक महोत्सव मनाने के लिए इन्द्रों ने क्षीर सागर के धवल दुग्धसमान जल का चयन किया । यद्यपि बालक वर्द्धमान का शरीर पवित्र था, तथापि क्षीर के जल को पवित्र करने की भावना से इन्द्रों ने अभिषेक किया ।

जिनराज तनुः स्वतः शुचिस्तदुपायेन जलस्य सा रुचिः ।
जगतां हितकृद् भवेदिति हरिणाऽकारि विभोःसव स्थितिः ॥7-29॥

४. तपकल्याणक एवं पर्यावरण संरक्षण

सभी तीर्थंकर तपश्चर्या हेतु वन की ओर प्रयाण करते हैं । वे शाल्मली, जामुन, वरगद, अशोक आदि वृक्षों के नीचे ध्यान में लीन होते हैं । इसके पीछे बड़ा रहस्य छिपा है । वृक्ष-प्राणवायु (ऑक्सीजन) का जनक होता है, जो वायु-शुद्धिकरण व आर्द्रता का नियन्त्रण करता है ।

सगरं नगरं त्यक्त्वा विषमेऽपि समे रसः
वनेऽप्यवनतत्त्वेन सकलं विकलं यतः ॥10-19॥

विहाय मनसा वाचा, कर्मणा सदनाश्रयम् ।
उपेम्यहमि प्रीत्या सदाऽऽनन्दनकं वनम् ॥10-21॥

वन-बाहरी चकाचौंध से रहित फिर भी अवनतत्व (सभी प्राणियों की सुरक्षा) से युक्त होता है । अतः सज्जनों के आश्रय से रहित नगर को छोड़कर भगवान "वीर" आनन्द स्वरूप वन को मन, वचन, काय से प्राप्त करते हैं ।

भ. महावीर देवोपनीत पालकी से उतरकर अशोकवृक्ष के नीचे स्थित शिला पर आसीन हो गए और उन्होंने यथाजात शिशुवेष के समान दिगम्बरी दीक्षा ले ली ।

५. केवलज्ञान के १० अतिशय-पर्यावरण के सन्निकट

जब भ. महावीर को केवल्य ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तो उसके सातिशय पुण्य-प्रभाव से दस अतिशय प्रकट होते हैं। इनमें छह का सम्बन्ध उनके परमौदारिक शरीर से है जैसे-निर्निमेष दृष्टि का होना, चतुर्मुखी दिखाई देना, शरीर छाया रहित, अन्तरिक्षगामी, नर-केश वृद्धि न होना और कवलाहार से रहित। शेष चार अतिशय बाह्य परिवेष व पर्यावरण से सम्बन्धित हैं- सारी पृथ्वी का हरी-भरी होना, पृथ्वी का कंटक रहित दर्पण के समान स्वच्छ होना, मन्द-मन्द सुगंधित पवन का चलना व सर्व ऋतुओं के फल-फूल उग आना व गन्धोदक की वृष्टि होना-जिससे सारी सृष्टि हर्षमयी हो जाती है। इन चारों के प्रभाव से दुर्भिक्ष नहीं रहता। प्रथम अतिशय भूमि प्रदूषण से रहित की द्योतक है-सुगन्धित पवन व गन्धोदक की वृष्टि - वायु-प्रदूषण से रहित की द्योतक है तथा सर्व ऋतुओं के फल-फूल उगना सुभिक्ष का द्योतक है। पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति में यह समरसता वीरोदय महाकाव्य में सर्ग 12 में श्लोक संख्या 45, 50 व 51 में विशेष द्रष्टव्य है -

नवाऽकुराङ्कोदितरोमभारमितीव हर्षादिव निर्बभार ॥45॥
निष्कण्टकादर्शमयी धरा वा, मन्दःसुगंधः पवनः स्वभावात् ॥50॥
गन्धोदकस्यातिशयात् प्रवृष्टिर्यतोऽभवद्धर्ष मयीव सृष्टि ॥51॥

अर्थात् सारी पृथ्वी में नवीन अंकुरों के प्रकट होने से रोमाञ्चित होकर हरी-भरी हो गई व कण्टक रहित दर्पण के समान स्वच्छ बन गई। स्वभाव से ही मंद-सुगंध पवन चलने लगी व सभी ऋतुएं एक साथ प्रकट होकर वृक्षों पर फल लद गये। गन्धोदक की सातिशय वर्षा होने लगी। यह सारी घटनाएं पर्यावरण शुद्धि व संरक्षण की प्रतीक हैं।

(६) समोशरण की रचना एवं पर्यावरणीय स्वरूप

देवोपनीत सभामण्डप जिसका गोलाकार विस्तार एक योजन व्यास व अढ़ाई कोस ऊँचा था। जिसके चारों ओर की खाई के पश्चात् पुष्पवाटिका थी, जिसमें मोतिया, गुलाब मोगरा, मालती आदि पुष्पों की सुरभि से वातावरण सुरभित व स्वच्छ बना रहता था।

श्री मालती मोलिक सन्निधानि अनेक रूपाणि तु कौतुकानि ॥13-4॥

इसके बाद आम्र, अशोक, सप्तपर्ण व चम्पक जाति के वृक्षों से युक्त चारों दिशाओं में चार वन थे। कल्प वृक्षों वाले वे वन वांछित वस्तु के प्रदाता थे।

सप्तछदाऽऽम्रोरुकचम्पकोप पदैर्वनैर्यत्र कृतोपरोपः ॥11॥

इसके साथ भगवान् की पीठ पीछे, अशोक, वृक्ष था जिसके दर्शन मात्र से प्राणियों के शोक दूर होकर हर्ष का संचार करते थे।

नाम्ना स्वकीयेन बभूव योग्यस्तत्पृष्ठतोऽशोक तरुर्मनोज्ञः ॥13-18॥
पुष्पाणिभूयो ववृषुर्नभस्तः, नाकाशपुष्पं भवतीत्यशस्तः ॥13-19॥

इस प्रकार समवशरण की संरचना-पृथ्वी, जल, वायु गत सभी प्रदूषणों का हरण करने वाली थी। समवशरण का अनुपम-वैशिष्ट्य न केवल बाह्य पर्यावरण शुद्धि के लिए था, वरन् आन्तरिक/वैचारिक विषमता और संघर्ष को नष्ट करने वाला भी था वैचारिक प्रदूषण-आज की हिंसा, तनाव और उत्पीड़न का प्रमुख कारण है। समवशरण में जाति स्वभाव गत वैर-विरोध भी तिरोहित हो जाते थे।

सिंहो गजेनाखुरथोतुकेन वृकेण चाजो नकुलोऽहिजेन।
स्म स्नेहमासाद्य वसन्ति तत्र चात्मीय भावेनपरेण सत्रा ॥14-51॥

अर्थात् समवशरण में सिंह-गज, मूषक-विडाल, बकरा, भेड़िया, नौला-सांप, परस्पर के वैर भाव को भूलकर स्नेह पूर्वक आत्मीय भाव मे बैठे होते थे।

दिवा-निशोर्यत्र न जातुभेदः कस्मै मनुष्याय न कोऽपि खेदः।
बभूव सर्वर्तु समागमोऽपि शीतातपादि - प्रतिवादलोपी ॥14-52॥

भ. महावीर स्वामी की दिव्यवाणी को मनुष्यों ने ही क्या परस्पर जाति विरोधी तिर्यंचों तक ने प्रेम से श्रवण किया।

७. अहिंसा एवं पर्यावरण संरक्षण

भ. महावीर स्वामी ने लोक-कल्याणकारी उपदेश अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा प्राणियों को दिया । उन्हें साम्यवाद, अहिंसा, स्याद्वाद और सर्वज्ञता इन चार मुख्य उपबन्धों में विभाजित किया जा सकता है ।

साम्याहिंसा स्याद्वादस्तु सर्वज्ञतेयमुत्तमवस्तु ॥63॥

वीरोदय काव्य के स्रष्टा आ. ज्ञानसागर जी ने भगवती अहिंसा को जगत् की माता कहा है तथा हिंसा को पिशाचनी एवं डाकिनी कहा है ।

निहन्यते यो हि परस्य हन्ता पातास्तु पूज्यो जगतां समन्तात् ।
किमङ्ग न ज्ञातमहो त्वयेव हगञ्जनायाङ्गुलिवरञ्जितैव ॥7॥16॥

अर्थात् जो दूसरों को मारता है वह स्वयं दूसरों के द्वारा मारा जाता है और जो दूसरों की रक्षा करता है वह जगत् में पूज्य होता है जैसे आंख में काजल लगाने वाली अंगुली पहले स्वयं काली बनती है ।

संरक्षितु प्राणभृतां मही सा व्रजत्यतोऽम्बा जगतामहिंसा
हिंसा मिथोभक्षितुमाह तस्मात्सर्वस्य शत्रुत्वमुपैत्यकस्मात् ॥16॥

अहिंसा प्राणियों की रक्षा करती है अत: वह माता है और हिंसा परस्पर में खाने को कहती है इसलिए वह राक्षसी है । अहिंसा पर्यावरण के संरक्षण का मूल आधार है । यह जैन धर्म की आत्मा है । श्रावक की भूमिका में भले ही आरम्भी, उद्योगी, और विरोधी हिंसा त्याज्य नहीं है, परन्तु संकल्पी हिंसा का वह पूर्ण त्यागी होता है । वह एकेन्द्रिय जीवों जैसे पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति की भी संकल्प पूर्व के विराधना नहीं करता है । पर्यावरण को संरक्षित करने में श्रावक की इसमें बड़ी भूमिका और क्या हो सकती है ?

क्रूरता की शक्ति का बढ़ना-मांसाहार एवं कत्लखानों का दिनोंदिन बढ़ना पर्यावरण के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है । प्रकृति ने मानव-आहार के लिए अनेक वनस्पतियां व स्वादिष्ट पदार्थ/फल आदि दिए है । इससे प्राकृतिक संतुलन बना रहता है । मांसाहार-हिंसा और क्रूरता की जमीन से पैदा होने वाला आहार है । इसके द्वारा सबसे अधिक पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है । मांसाहार जलाभाव के लिए भी उत्तरदायी है । प्रति टन चावल व गेहूँ के लिए क्रमश: 45 लाख व 5 लाख ली. जल की आवश्यकता होती है । आज हमारे देश में 3630 बड़े कत्लखाने खुले हैं - ये प्रकृति और पर्यावरण के दुश्मन हैं । धर्म प्राण कहलाने वाला गांधी का भारत -पेट्रोल व विदेशी मुद्रा के लिए, देश के पशु-धन को कत्लखानों में भेजकर मांस उत्पादन में लगा है और विदेशियों की ऐयासी की आपूर्ति कर रहा है ।

८. श्रमणाचार एवं पर्यावरण

पू. आचार्यचक्रवर्ती शान्तिसागर जी म. की परम्परा को अक्षुण्ण रखने वाले स्व. आचार्य ज्ञानसागर जी म. श्रमणाचार के महान् आदर्श- संत रहे हैं । उनके परमशिष्य आचार्य पू. विद्यासागर जी म. व उनके परमशिष्य मुनि सुधासागर जी. उसी श्रमण-गंगा की पवित्र धारा को प्रवहमान किये हुए हैं ।

दि. जैन मुनि की स्वीकृत जीवन चर्या-पर्यावरण-शुद्धि परक होती है । साधु के अट्ठाइस मूलगुणों में पाँच महाव्रत है - अपरिग्रह महाव्रत प्रकृति से अतिदोहन की प्रवृत्ति पर अंकुश रखने का प्रतीक है । वे स्नानादि न करके जल अपव्यय नहीं होने देते हैं ।

दि. जैन सन्त "कमण्डल" व पिच्छी रखते हैं । जो पर्यावरण-संरक्षण के अनुकूल है । कमण्डल-लकडी का जल पात्र होता है । जिसका पानी डालने का मुहँ बडा परन्तु पानी निकालने का मुँह बहुत पतला होता है । जिसमे आवश्यक शुद्धि क्रियाओं में पानी का अपव्यय कम से कम होता है । दोनों वस्तुएं नष्ट होने पर भूमि में विलीन हो जाती है । पिच्छी जो मयूर-पंखों से निर्मित होती है । साधुजन स्वयं बनाते हैं और अपना काम स्वयं करने की प्रेरणा देते हैं ।

इस प्रकार प्रस्तुत लेख में कुछ घटनाओं को संक्षेप में पर्यावरण विकास /संरक्षण / शुद्धि की दृष्टि से रेखांकित किया गया है । धर्म को विज्ञान की आँख से देखने पर यह उपक्रम हमें युगीन सन्दर्भों से जोड़ता है ।

प्राचार्य निहालचन्द्र जैन
बीना (म.प्र.) ❑❑❑

वीरोदय महाकाव्य में प्रकृति चित्रण

डॉ. नीरजा टण्डन

मनुष्य के हृदय पर प्रकृति का चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है । रंग बिरंगे पुष्प किसे आकर्षित नहीं करते ? नदियों की चंचल लहरें सभी के हृदय को उल्लसित करती हैं । मयूरों का नृत्य सभी को प्रमुदित करता है । सावन तथा भादों के काले काले बादल, बसन्त की हरीतिमा तथा पशु-पक्षियों को देखकर सभी भावुक हृदय आनन्दित हो उठते हैं । कवि की वाणी काव्य में अपनी सरस भाषा के माध्यम से प्रकृति की मनोहर तथा रमणीय सुषमा को प्रकट कर देती है ।

अन्य कवियों की भाँति महाकवि मुनिश्री ज्ञानसागर ने वीरोदय महाकाव्य में धार्मिक सिद्धान्तों एवम् उपदेशों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए प्रकृति के उपकरणों का आश्रय लिया है । जीवन की क्षणभंगुरता प्रमाणित करने के लिए इन्द्रधनुष तथा शीत से मुरझायें हुए कमल का उदाहरण प्रस्तुत किया है । धार्मिक महत्व को प्रतिपादित करने के लिए सिंह का मानवीकरण किया है । कथानक की रोचकता में वृद्धि करने के लिए प्रकृति की सरसता तथा सुन्दरता का मनोरम चित्रण किया है । षड्ऋतु, पर्वत, समुद्र, नदी, सूर्य, चन्द्र इत्यादि का स्वाभाविक एवं सजीव चित्रण वीरोदय महाकाव्य में हुआ है।

पर्वत वर्णन

आकाश का स्पर्श करने को आतुर ऊँची-ऊँची पर्वत श्रेणियाँ अपने में अनोखा आकर्षण रखती हैं। प्रकृति का जैसा मनमोहक तथा निश्चल सौन्दर्य पर्वतों कें अंचलों में छिपा है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। महाकवि ब्र. भूरामल शास्त्री ने वीरोदय महाकाव्य में पार्वतीय सौन्दर्य का मनमोहक चित्रण किया है ।

सुमेरु, हिमालय तथा विजयार्ध पर्वतों का वर्णन प्रसंगानुसार हुआ है । देखिये : सुमेरु पर्वत का उल्लेख महाकाव्य में दो बार हुआ है । सर्वप्रथम जम्बूद्वीप की स्थिति को बताते हुए सुमेरु पर्वत का वर्णन मिलता है । एक लाख योजन की ऊँचाई वाला पर्वत जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित है और पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग रुप दण्ड के ऊपर सुवर्ण कलशों के समान सुशोभित है[1] इसके पश्चात् सुमेरु पर्वत का वर्णन महाकाव्य के सप्तम सर्ग में मिलता है, जब देवगण भगवान् महावीर का जन्माभिषेक महोत्सव सम्पन्न कराने के लिए उन्हें सुमेरु पर्वत पर ले जाते हैं । यहाँ पर सुमेरु पर्वत के भव्य तथा श्रेष्ठ रूप का सुन्दर वर्णन हुआ है । चारों ओर फल-फूलों से आच्छादित छायादार वृक्षों से सम्पन्न वनों से घिरा सुमेरु पर्वत पुरुषार्थ चतुष्टय से समन्वित सदाचरण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष के समान ही देवगणों ने अभिषेक हेतु भगवान् महावीर को सुमेरु पर्वत के ऊपर प्रतिष्ठित किया, उस समय गौरवशाली सुमेरु पर्वत, जो चार वनों से संयुक्त होकर सभी पर्वतों के ऊपर शासन करता था, नम्रीभूत हो गया[2]

कवि ने पर्वत की सुषमा का वर्णन करते हुए उसकी श्रेष्ठता तथा गरिमा को सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया है ।

हिमालयवर्णन

कवि ने अत्यल्प शब्दों में हिमालय पर्वत की समग्र सुन्दरता को समाहित कर लिया है :

"हिमालयोल्लसि गुणः स एष द्वीपाधिपस्येव धनुर्विशेषः ।
वाराशिवंशस्थितिराविभाति भोः पाठका क्षात्रयशोऽनुपाती"॥ –वीरोदय, 2/7

यह वर्णन कवि कुलगुरु कालिदास द्वारा 'कुमार सम्भव' में किये गये हिमालय वर्णन "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः" का स्मरण कराता है । हिमालय का यह वर्णन संक्षिप्त परन्तु परम रमणीय है । यदि कवि उक्त वर्णन को थोड़ा सा विस्तार और देते तो सम्भवतः वर्णन और भी अधिक सजीव तथा आकर्षक हो जाता ।

(1) वीरोदय, 2/2-3

(2) वही, 7/19-22

विजयार्ध वर्णन

विजयार्ध पर्वत का उल्लेख भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति बताने के लिए हुआ है । विजयार्ध पर्वत पूर्व से लेकर पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ है । यहाँ सिन्धु गङ्गा आदि नदियाँ बहती हैं[1]

वन वर्णन

वीरोदय महाकाव्य में सर्वप्रथम वसन्तऋतु के प्रसंग में वनों की सुषमा को चित्रित किया गया है। वसन्तऋतु में वनस्थली पुष्पपराग से व्याप्त हो जाती है । कवि ने वनलक्ष्मी की वधू के रूप में कल्पना की है, जिसका पाणिग्रहण संस्कार ऋतुराज बसन्त के साथ हो रहा है[2] बसन्तऋतु में अशोक तथा पलाश के पुष्प विकसित हो गए हैं, अतः रक्तिम आभा से युक्त वनलक्ष्मी अत्यधिक सुशोभित हो रही है । गुलाब के पुष्प तथा लालकमल वन की शोभा को द्विगुणित कर रहे हैं । मुकुलित कमलिनी का सर्वत्र बिखरता हुआ पराग ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों कमलिनी अपने हाथों से कमल की शोभा को जीतने वाली स्त्रियों की आँखों में धूल झोंक रही है । सरस तथा मधुर कूजन करने वाले कोयल पक्षियों के समूह से युक्त आम्रवृक्ष रमणीय प्रतीत हो रहे हैं[3]

महाकाव्य में वन वर्णन का दूसरा स्थल वहाँ पर है, जब महावीर भगवान् संसार से विरक्त होकर सन्यास धारण करने का विचार करते हैं । कृत्रिम सौन्दर्य से रहित, सभी प्राणियों के सुरक्षा स्थल वन निःसन्देह छल कपट से युक्त मनुष्यों के निवास स्थान नगरों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, इसीलिए महात्मा लोग चूने से बने हुए मकान से युक्त सौन्दर्यशाली नगरों को त्यागकर सुन्दर लताओं से युक्त प्राकृतिक सौन्दर्य सम्पन्न वनों का आश्रय लेते हैं ।[4]

वन सज्जनों के आश्रय और आनन्द निकेतन हैं अतः महावीर भगवान् सुरम्य वनों का आश्रय लेने का विचार करते हैं-

"विहाय मनसा वाचा कर्मणा सदनाश्रयम् ।
उपैम्यहमपि प्रीत्या सदाऽऽनन्दनकं वनम् ॥ : वीरोदय, 10/21

इसके अतिरिक्त सप्तपर्ण,आम्र, अशोक तथा चम्पक वृक्षों के वनों का नामोल्लेख मात्र काव्य में हुआ है । ये वन चैत्य वृक्षों (मूर्तियुक्त वृक्षों) से युक्त होकर अपूर्व शोभा को धारण कर रहे हैं । सभी प्राणियों को मनोवांछित वस्तु प्रदान करने वाला कल्पवृक्षों का वन सभी प्राणियों को मोक्ष प्राप्ति के साधन रूप ज्ञान को बताने वाले भगवान् महावीर के समक्ष अपनी व्यर्थता का अनुभव कर रहा था । सिद्ध प्रतिमाओं से युक्त सिद्धार्थ वृक्षों के दर्शन मात्र से ही सभी जीवों में नवीन चेतना का जागरण होता है[5]

वसन्त ऋतु के प्रसंग में कवि ने वनों की मनोहरी छटा का आलंकारिक तथा कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है । परन्तु द्वितीय प्रसंग में वनों का सर्वथा नवीन तथा भिन्न रुप देखने को मिलता है यहाँ पर प्रमुख रूप से वनों की श्रेष्ठता तथा उपयोगिता का ही अंकन हुआ है ।

नदी वर्णन

महाकवि ज्ञानसागर ने 'वीरोदय' महाकाव्य में नदियों का उल्लेख तीन स्थलों में किया है । सर्वप्रथम नदियों का उल्लेख भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति के निर्धारण में हुआ है । यहाँ पर गङ्गा तथा सिन्धु नदियों का वर्णन हुआ है ।[6] विदेह देश की नदियों का वर्णन हुआ है । विदेह देश की नदियाँ ग्रीष्मऋतु में भी स्वच्छ जल से भरी रहती थीं तथा निरन्तर प्रवाहित होती रहती थीं। इन नदियों का जल रात्रि में चन्द्रोदय होने पर चन्द्रकान्त मणियों[7] की भित्तियों से निकलने वाले धवल प्रभापुंज के समान दिखलाई देती है । अनेक उत्तम पल्लवों से युक्त वृक्षों द्वारा मार्ग अवरुद्ध होने पर भी ये नदियाँ निरन्तर नीचे की ओर बहती हुई अति वृद्ध जलधिरूप पति के पास जाती है और अपने निम्न नाम को सार्थक करती हैं ।[8]

---

1. वीरोदय, 2/7
2. वही, 6/13-14
3. वही, 6/15, 31.34-35
4. वही, 10/19-20
5. वीरोदय, 13/11,13-14
6. वही, 2/8
7. वीरोदय, 2/15, 17
8. वीरोदय 2, 15; 17

भगवान् महावीर के जन्म के पश्चात् इन्द्रादि देवगण उनके दर्शन के लिए तथा जन्माभिषेक सम्पन्न करने के लिए कुण्डनपुर की ओर प्रस्थान करते हैं । मध्यलोक में वे देवनदी आकाशगंगा का दर्शन करते हैं । आकाशगंगा का श्वेत जल उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो वृद्ध लक्ष्मी की वेणी हो अथवा स्फटिक मणियों से निर्मित देवलोक की प्रमुख देहली हो ।[1]

समुद्र वर्णन

मुक्ता, मणि, रत्न, सीपी आदि के आगार, अतल गहराई वाले, अथाह जलराशि के स्वामी रत्नाकर का उल्लेख वीरोदय में अनेक स्थलों पर हुआ है । जम्बूद्वीप के चारों ओर अवस्थित समुद्र को कवि ने कितनी सुन्दर उपमा से सुसज्जित किया है -

"विराजते यत्परितोऽम्बुराशिः समुल्लसत्कुण्डिनविलासी "।–वीरोदय, 2/4

इसी प्रकार कवि ने धनुर्विशेष रुप भारत के पृष्ठ भाग में स्थित बाँरुप समुद्र की परिकल्पना की है[2] दूसरी ओर समस्त सरिताओं के संगमस्थल समुद्र की उद्‌भावना वृद्ध तथा जड़पुरुष के रूप में भी की है :

यतोऽतिवृद्धं जडधीश्वरं सा सरित्ततिर्याति तदेकवंशा"।–वीरोदय, 2/17

वर्षाकालीन समुद्र का स्वाभाविक वर्णन दृष्टव्य है :

"प्रौढिं गतानामति वाहिनीनां सम्पर्कमासाद्य मुहुर्बहूनाम् ।
वृद्धो वराको जडधी रयेण जातोऽधुना विभ्रमसंयुतानाम् ॥
रसं रसित्वा भ्रमतो वसित्वाऽपयजल्पतोऽप्युद्धततां कशित्वा ।
परञ्जपुंजोद्‌गतिमण्डितास्यमेतत्समापश्य सखेऽधुनाऽस्य ॥–वीरोदय, 4/23–24

भगवान् महावीर का जन्माभिषेक महोत्सव सम्पन्न करने के लिए चन्द्रादि देवगण उन्हें सुमेरु पर्वत के शिरोभाग में अवस्थित करते हैं तथा अभिषेक करने के लिए क्षीरसागर का जल लाते हैं । अत: कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि क्षीरसागर अतिवृद्ध (नदियों के साथ समागम होने पर जल की वृद्धि होने से शीघ्र अर्थात बढ़ रहा है ।) होने के कारण स्वयं आने में असमर्थ है इसीलिए देवगण जल के व्याज से क्षीरसागर को ही भगवान के समीप ले आये हैं । गम्भीरता के अधिपति रत्नाकर की गम्भीरता श्री वर्धमानस्वामी के समक्ष तिरोहित हो गई । उस समय देवगणों ने सुन्दर लहरियों से युक्त रत्नाकर की तट-सम्पदा के दर्शन किये। यह तट-सम्पदा उदार लीची वृक्षों, अखरोट या बहेड़ों के वृक्षों तथा तिलक जाति के वृक्षों की पंक्तियों से शोभायमान, मृदुपल्लवों से युक्त आम्रवृक्ष तथा काम के विकास में सहायक शरजाति के घास विशेष से युक्त, बाण के समान कृशोदर तथा नेत्रों को सुख प्रदान करने वाली थी । देवगणों को क्षीरसागर विस्तृत तरंग मालाओं से युक्त होने के कारण वृद्धावस्था में शरीर में होने वाली झुर्रियों वाला, नीरदल (जलाश) के प्रवाह रुप से युक्त होने के कारण दन्तरहित मुख वाले तथा विशद क्षीर (दुग्ध) तुल्य रम वाला होने के कारण विशद नयन वाली नायिका से रहित वृद्ध पुरुष के समान प्रतीत हुआ ।[3]

इस प्रकार समुद्रवर्णन में सर्वथा नवीनता तथा मौलिकता परिलक्षित होती है ।

सरोवर वर्णन

प्रस्तुत महाकाव्य में सरोवरों का उल्लेख चार स्थानों में हुआ है । प्रथम स्थल में विदेह देश की समृद्धि के प्रसंग में वहाँ के विशाल तथा जलयुक्त सरोवरों का नामोल्लेखमात्र हुआ है । द्वितीय स्थल (12) वीरोदय, 7/22-28 में ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में सरोवर का उल्लेख हुआ है । ग्रीष्म ऋतु में सरोवरों का जल अत्यधिक तप जाता है, जिसके कारण भँवरे कमलों को छोड़कर लताओं का आश्रय लेते हैं और हिरण भी सघन छाया में बैठते है । प्रचण्ड सूर्य की किरणों के संताप से सरोवरों का जल सूख जाता है[4] शीतकाल में जलाशय बर्फ के बहाने अपने सारे शरीर में वस्त्र धारण कर लेते हैं । (11) शरद्‌ऋतु में सरोवर का जल तथा गगन-मण्डल समान शोभा को धारण करते हैं -

1. वही, 7/9
2. वही, 2/7
3. वीरोदय, 7/22-28
4. वही 9/41

इत प्रसादः कुमुदोदयस्य श्रीतारकाणान्तु ततो वितानम् ।
मरालबालस्तत इन्दुजालः सरोजल व्योमतलं समानम् ॥ – वीरोदय, 21/7

काव्य में सरोवरवर्णन प्रसंगवश ही हुआ है । कवि ने सरोवरों की स्थिति की ओर संकेत मात्र ही किया है, उनका विस्तृत वर्णन नहीं किया है ।

कुल मिलाकर वीरोदय महाकाव्य में आचार्य श्री ज्ञानसागर ने ऋतुओं का बहुत ही सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन किया है। यह वर्णन केवल आलंकारिक रुप में नहीं हुआ है, अपितु इसके माध्यम से कवि ने मानवजीवन से जुड़े विविध चित्रों को भी रुपायित किया है और सिद्ध कर दिया है कि प्रकृति और मानव का सम्बन्ध अटूट है ।

ऋतुवर्णन के अतिरिक्त परिवर्तनशील प्रकृति की प्रातःकाल, दिवस, सन्ध्या और रात्रि इन चारों दशाओं का वर्णन किया है -

प्रातःवर्णन

प्रत्येक उषाकाल मानव के जीवन में नव-स्फूर्ति तथा नवचेतना का सन्देश लेकर आता है । गहन अन्धकारमय रात्रि का अवसान होने पर अलौकिक रुपमाधुरी से सम्पन्न सूर्य की रक्तिम आभा दिग्दिगन्त में परिव्याप्त हो जाती है । प्रभातकालीन रमणीयता सहज ही मन को आकर्षित करती है । ऐसे तिमिरनाशक प्रभात का वर्णन वीरोदय में तेजस्वी भगवान् महावीर के उपमान के रुप में किया गया है-

अपाहरत् प्रामवभृच्छरीर आत्मस्थितं दैवमलं च वीरः ।
विचारमात्रेण तपोभृदद्य पूषेव कल्ये कुहरं प्रसह्य ॥

-वीरोदय ,12/41

दिवसवर्णन

वीरोदय में दिवस का उल्लेख ग्रीष्मऋतु तथा शीतऋतु वर्णन में मिलता है। ग्रीष्मकालीन दीर्घ दिवसों की उत्प्रेक्षापरक वर्णन करता हुआ कवि कहता है-

ऐसा प्रतीत होता है कि हिम का शत्रु होने पर भी सूर्य ग्रीष्मकाल में हिमालय की गुफाओं में विश्राम करके आगे बढ़ा है, इसीलिये दिवस ग्रीष्मकाल में दीर्घ हो जाते हैं -

प्रयात्यराशिश्च रविर्हिमस्य दरीषु विश्रम्य हिमालयस्य ।
नो चेत्क्षणक्षीणविचारवन्ति दिनानि दीर्घाणि कुतो भवन्ति ।–वीरोदय, 12/20

ये दीर्घ दिवस शीतकाल में लघु हो जाते हैं क्योंकि रात्रि को शीत से पीडित देखकर दिवस स्नेह से उसे अधिक समय दे देता है और स्वयं संकुचित हो जाता है-

श्यामास्ति शीताकुलितेति मत्वा प्रीत्याम्बरं वासर एष दत्वा ।
किलाधिकं संकुचितः स्वयन्तु तस्यै पुनस्तिष्ठति कीर्तितन्तु ॥–वीरोदय, 9/29॥

रात्रिवर्णन

दुग्ध धवल ज्योत्स्ना को विकीर्ण करने वाले चन्द्रमण्डल तथा नक्षत्र समूह से सुशोभित रात्रि का वर्णन वीरोदय में तीन स्थलों में हुआ है । सर्वप्रथम कुण्डनपुर प्रसंग में रात्रिवर्णन हुआ है । कुण्डनपुर के गगनचुम्बी शाल(कोट) के शिखरों पर आश्रित नक्षत्रमण्डल रात्रि में प्रकाशित होकर प्रदीपोत्सव के सदृश आनन्दप्रद हो गया है[1] स्फुटिक-मणि निर्मित जिनालय के ऊपर पड़ता हुआ नक्षत्रों का प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत होता है मानो देवताओं के द्वारा की गई पुष्पवर्षा हो । कुण्डनपुर नगर के ऊपर सुशोभित तारे देवताओं के निमेष नेत्र हैं और कलंकयुक्त चन्द्रमा कुण्डनपुर की स्त्रियों के मुख-चन्द से लज्जित होकर गमन करता है। रात्रि में सुशोभित चन्द्रमा मुकुट और तारे उज्जवल फूलों के समान है[2] शीतकालीन रात्रि अत्यन्त गौरवशाली है क्योंकि उस समय शीत से आक्रान्त सूर्य रात्रि में अपनी सुन्दरी स्त्री का गाढ़ालिंगन करके सो जाता है और प्रातःकाल शीघ्र जाग नहीं पाता है[3] शरदकालीन रात्रि तो अत्यधिक मनोहारिणी है ।

1. वीरोदय 2/27
2. वही 2/36, 42-43, 47
3. वही 2/32

नभोगृहे प्राग्विषदैरुदूढे चान्द्रीचयैः क्षालननामगूढे ।
विकीर्य सत्तारकतन्दुलानीन्दुदीपमंचेत्क्षणदा त्विदानीम् ॥
तारापदेशान्मणिमुष्टिमारात्प्रतारयन्ती विगताधिकारा ।
सोमं शरत्सम्मुखमीक्षमाणा रुषेव वर्षा तु कृतप्रयाणा । –वीरोदय, 21/8–9

शरद्काल में चन्द्रमा की प्राणप्रिया रात्रि अनुपम शोभा को धारण करती है और चन्द्रमा भी अनन्यजन्य कान्ति को धारण करता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वीरोदय महाकाव्य में प्रकृति की सुन्दरतम, रमणीयता तथा मनोहरता का स्वाभाविक तथा सजीव चित्रण हुआ है । प्राकृतिक उपमान सर्वथा नवीन रुप में प्रयुक्त हुए हैं । प्रायः सभी प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण काव्य में परिलक्षित होता हैं । इन वर्णनों से काव्य की चारुता में वृद्धि तो हुई ही है साथ ही ये वर्णन कवि के उत्कट प्रकृति प्रेम के परिचायक भी हैं ।

डॉ. नीरजा टण्डन
रीडर, हिन्दी विभाग
कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

❑ ❑ ❑

वीरोदय में ऋतु वर्णन

डॉ. सुदर्शनलाल जैन

प्राणियों के लिए नवचेतना प्रदान करने वाली प्रकृति ऋतुओं के रूप में नववधू के समान परिणमित होती है । इसीलिए काव्यशास्त्रियों में महाकाव्य को लक्षण करते हुए उसमें ऋतुवर्णन का सन्निवेश किसी न किसी रूप में आवश्यक माना है ऋतु प्रकृति-प्रदत्त एक वरदान है ।

महाकवि ने वीरोदय काव्य में भगवान महावीर के जीवन चरित्र का वर्णन करते हुए उनके गर्भ, जन्म आदि कल्याणकों के समय जो ऋतु थी, उसका वहीं पर चित्रण किया है। वीरोदय काव्य का ऋतुवर्णन कवि सम्प्रदायानुकूल होते हुए भी कहीं कहीं अपनी विशेषता को लिए हुए हैं । अभिनव कल्पनाओं और अलङ्कारों से समलङ्कृत है । अब वीरोदय काव्य के ऋतुवर्णन की प्रौढ़ अलकृंत शैली का रसास्वादन कीजिए-

(१) वसन्त ऋतु (4.5/6.12-36/12.22)

वसन्त ऋतु को सभी ऋतुओं का सम्राट् कहा जाता है । वीरोदय काव्य में भी वर्षाऋतु के वर्णन प्रसंग में 'वसन्त सम्राट्' (4.5) कहा गया है । इस ऋतु में पुष्पों की समृद्धि होती है , अतः इसे 'पौष्पेसमये' (6.16) कहा है । आनन्दोत्पादक एवं सरोजिनी के सौरभसार से सुगन्धित वायु के प्रवाहित होने से इसे ग्रीष्म वर्णन प्रसंग में 'सरोजिनी सौरभसारगन्धिमधौ' (12.22) कहा है । इसके अलावा इसके गुणों के अनुरूप इस ऋतु को 'कुसुमोत्सवर्तुः' (6.18), 'नर्मश्री ऋतु' (6.36), 'सुरभिः' (6.12), 'अनङ्गैकसखा' (6.13), 'मधुसमय'(12.22) आदि नामों से उल्लिखित किया है ।

भारतीय संवत्सर के अनुसार इस बसन्त का काल सामान्य रुप से चैत्र-वैशाख मास में जब सूर्य मीन और मेष राशि में रहता है, माना जाता है । वीरोदय काव्य में माघ के बाद आने वाले फाल्गुन मास से इस बसन्त को स्वीकार किया है (समक्ष माघदतिवर्तमाने' 6.24 तथा संस्कृत टीका) । यह समय शिशिर ऋतु का है जिसे कवि ने बसन्त का शैशव काल कहा है । (6.32)कवि ने इस ऋतु का वर्णन करते हुए भगवान महावीर के जन्म काल चैत्र शुक्ला त्रयोदशी तक ही वर्णन किया है (6.38) क्योंकि भगवान के जन्मप्रसङ्ग से ही इस बसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है ।

वसन्त ऋतु में सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण हो जाता है । इस बात को ध्यान में रखकर कवि ने हेतु प्रस्तुत किया है वह बड़ा मनोरंजक है –

''प्रदाकुदर्याङ्कितचन्दनाक्तार्यान्यैः समीरैरिह भीतिभाक्तैः ।
कुबेरकाष्ठाऽऽश्रयणे प्रयत्नं दधाति पौष्णे समये सुरत्नम् ॥ 6.16।

चन्दन वृक्षों से लिपटें हुए सर्पो के निःश्वास का विष दक्षिण से आने वाली मलयानिल से मिश्रित रहता है । यह दक्षिणी मलयानिल बसन्त में बहने लगता है कहीं सर्पों के विष का दुष्प्रभाव मेरे ऊपर न पड़े इसी भय से सूर्य दक्षिण दिशा में न जाकर उत्तर दिशा की ओर गमन करने लगता है ।

दूसरी ओर कवि दक्षिणानिल बहने का कारण भिन्न प्रकार से बतलाता है-

'रविरयं खलु गन्तुमिहोद्यतः समयवशादसौ दिशमुत्तराम् ।
दिगपि गन्धवहं ननु दक्षिणा वहति विप्रियनिश्वसनं तराम् ॥ 6.13)

जब सूर्य दक्षिण दिशा रुपी स्त्री को छोड़कर उत्तर दिशा रुपी स्त्री के पास जाने के लिए उद्यत हुआ तो पतिवियोग से दुःखित दक्षिणदिशा के दीर्घ निःश्वास दक्षिण वायु के रूप में बह रहा है ।

बसन्त राज और वनलक्ष्मी के पाणिग्रहण के रूप में वसन्त वर्णन दर्शनीय है -

''वन्या मह्योः पाणिधृतिस्तदुक्तं पुंस्कोकिलैर्विप्रवरैस्तु सूक्तम् ।
साक्षी स्मराक्षीणहविर्भुगेव मेरीनिवेशोऽलिनिनाद देशः ॥ ६.१४

बसन्तराज और वनलक्ष्मी के पाणिग्रहण(विवाद) पर नरकोयल रूप ब्राह्मण के वचन मन्त्रोच्चार हैं, कामदेव की प्रज्वलित अग्नि ही होमाग्नि रुप साक्षी है ओर भौरों का गुजंन ही मेरी निवाद (बाजों का शब्द) है । इस बसन्त में वनस्थली वैश्या के समान प्रतिदिन समृद्धि को प्राप्त हो रही है, रागोत्पादक कामदेव चोर की तरह पथिक जनों पर तीक्ष्ण बाण चला रहा है, इस राज शृंगार सर्वत्र अतिथि रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है और समस्त बन्धु-जनसमूह बसन्तश्री के कौतुक करने वाले विदूषक के समान हर्ष को प्राप्त हो रहा है (6.37)

विरहिणियों को संताप देकर इस बसन्त ने जो अपरिहरणीय पाप को अर्जन किया है वही उदय में आकर भौरों के गुंजन के बहाने मानों बसन्त को दुःखी कर रहा है (६.३६)

बसन्त में आम्रवृक्ष की मंजरी को देखकर विरही पथिक अपनी प्रिया को याद करके मानो मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं । अर्थात कामवासना की अभिवर्धक यह ऋतु है (६.२९)

बसन्त में कामदेव के पाँच बाणों का उल्लेख इस प्रकार है, जो इस समय सक्रिय हो जाते हैं पुष्पों का उदगम भ्रमर गुंजन, दक्षिणानिल का प्रवाह, स्त्रियों की स्वाभाविक चेष्टायें और कोयल की कूक । (६.२२)

पुष्प-पराग का विस्तार (६.२५); पलाशवृक्ष आम्रवृक्ष, लवङ्गलता गुलाब, लालकमल का विकास (6.34)कोयल की कूक, भ्रमरगुंजन आदि इसी ऋतु की चेष्टा में हैं । सूर्य बसन्त में मन्दगति क्यों है ? -मृगनयनी स्त्रियों के मुखकमल को देखने के लिए मानो सूर्य ने अपने रथ की गति को मन्द कर दिया है (६.२९) सूर्यगति की मन्दता से दिन बड़े होने की अन्य प्रकार से भी कल्पना की है (२१.१) इसी तरह विविध रूपों में वसन्त को कवि ने चित्रित किया है ।

(२) ग्रीष्म् ऋतु (12.1-31)

भगवान महावीर के उग्र तपश्चरण काल को उद्देश्य करके ग्रीष्म ऋतु को वर्णन किया गया है । ज्येष्ठ और आषाढ मास में जब सूर्य वृष और मिथुन राशि में रहता है तब ग्रीष्म काल माना जाता है । इन दिनों सूर्य प्रचण्ड रुप से तपता है और दिन बड़े होने लगते हैं कवि ने दिन बड़े होने की अभिनव उत्प्रेक्षा की है -

''विलोक्य वीरस्य विचारवृद्धिमिहेर्ष्य योऽवाप बभूव गृद्धिः ।
वृषाधिरुढस्य दिवाधिपस्यापि चार आन्तारुतयेति शस्य ॥ १२.१)

अर्थ - भगवान के सद विचारों की वृद्धि को देखकर उनके प्रति ईर्ष्या करते हुए मानों वृष राशि पर आरुढ सूर्य का संचार भी दीर्घता को प्राप्त हो गया है । अर्थात् दिन बड़े हो गए हैं क्योंकि सूर्य रास्ता अधिक समय में तय कर पाता है । दिन क्यों बड़े होते है बसन्त में ? एक उत्प्रेक्षा यहाँ देखी (६.२९) अब इसी क्रम में गर्मी में दिन क्यों बड़े होते है दूसरी उत्प्रेक्षा देखिए -

"प्रयात्यरातिश्च रविर्हिमस्य दरीषु विश्रम्य हिमालयस्य ।
नो चेत्क्षणक्षीणविचारवन्ति दिनानि दीर्घाणि कुतो भवन्ति ॥ १२.२०)

अर्थ - हिम का सहज वैरी सूर्य भी हिमालय की गुफाओं में विश्राम करके आगे बढ़ता है इसीलिए दिन दीर्घ हो रहे हैं । पृथ्वी पर सूखा क्यों पड़ा है?

स्वतो हि संजृम्भितजातवेदा निदाघके रुग्ण इवोष्णरश्मिः।
चिरादथोत्थाय करैरशेषान् रसान्निगृात्यनुवादि अहम ॥२.२॥

अर्थ - ग्रीष्म में बढ़ी हुई जठराग्नि वाला सूर्य रुग्ण पुरुष के समान आचरण करता हुआ अपने करों (किरणों) से पृथ्वी के समस्त रसों को ग्रहण कर ले रहा है । अतः सूखा पड़ा है । इसी प्रसंग में 12.31.भी देखें ।

इसी प्रकार कई अन्य कल्पनायें कवि ने ग्रीष्मकाल, से सम्बन्धित की हैं - भैंसों की स्थिति (12.13), सर्प की गति (12.11), कुत्तों की लपलपाती जिह्वा (12.7), पथिक जनों की तृष्णा (12.4) पतङ्ग उड़ाती निःसन्तान स्त्रियां (12.25-26) आदि। स्नान, चन्दन-विलेपन, पुष्पमाला धारणा (12.25) आदि का वर्णन अन्य कवियों के समान मिलता है, इनसे गर्मी में कुछ राहत तो मिलती है परन्तु कामीजनों के लिए त्राण के लिए तो स्त्रियां ही सरोवरी (सरसी) हैं (12.30) क्योंकि शीतलता इन दिनों मात्र स्त्रियों के पयोधरों में विराजती है (12.18) । कवि ने ग्रीष्म के लिए निदाघकाल (12.2) और खरकाल (4.11) का प्रयोग किया है ।

वर्षा ऋतु (४.१-२६)

भगवान् महावीर जब आषाढ़मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी को पटरानी के गर्भ में आते हैं तो उसके बाद वर्षा ऋतु का प्रारम्भ हो जाता है (4.1, 2) जब सूर्य श्रावण और भाद्रपद मास में कर्क और सिंह राशि में रहता है तब वर्षा ऋतु मानी जाती है । इस समय पृथिवी ग्रीष्म जनित संताप से उन्मुक्त होकर हरीभरी हो जाती है और मानो हर्ष से उल्लसित हो जाती है (4.3) । सरकण्डे पैदा हो जाते हैं तथा अनेक प्रकार की औषधियाँ भी अंकुरित होने लगती है । (4.4) । मयूर का नृत्य (4.6), मृदङ्गवत् मेघ-ध्वनि (4.5), मेढक की टर्र-टर्र आवाजें (4.17), कुटज वृक्षों के फूल (4.18) नक्षत्रों के रूप में जुगुनुओं की पृथ्वी पर चमक (4.20), नितम्बिनियों को झूलनोत्सव (4.21) आदि इस ऋतु के आकर्षण है ।

इस ऋतु को कवि ने इसके गुणानुरूप विभिन्न नामों से स्मरण किया है । जैसे --रसायनाधीश्वर (4.4), कलिकाल (4.6-8), दुर्दिनकाल (4.7), नीलाम्बरा प्रावृड् (4.10) आदि।

वसन्त सम्राट् के वियोग से वियोगिनी तथा निष्प्रभ हुई पृथ्वी के उपकार के लिए इस वर्षा ऋतु ने मानो दिशश्रूपी सहेलियों के सहयोग से मेघों के ब्याज से चारों ओर विशाल केमल-दलों को फैला दिया हैं -

वसन्त सम्राड् विरहादपर्तुं दिशावयस्याभि विवोपकर्तुम् ।
महीमहीनानि घनापदेशाद् धृतानि नीलाब्जदलान्यशेषात् ॥4.5॥

ग्रीष्म काल में पृथिवी-पुत्र वृक्ष जलकर नष्ट से हो गए हैं उनको खोजने के लिए दुःखित हुए मेघ वर्षा के बहाने आंसू बहाते हुए बिजली रूप दीपकों को लेकर मानो इधर-उधर खोज रहे हैं -

वसुन्धरायास्तनयान् विपद्य निर्यान्तिमाराखरकालमद्य ।
शम्पाप्रदीपैः परिणामवार्द्राग्विलोकयन्त्यम्बुमुचोऽन्तरार्द्राः ॥4/11॥

मेघ क्यों वर्षा कर रहे हैं ? (4.11, 12) कमल क्यों नष्ट हो गए हैं ? (4.15) वियोगिनियों पर कामदेव का क्या प्रभाव है ? (4.16), समुद्र के जल की वृद्धि क्यों हो रही है ? (4.23-24), झूले पर झूलती हुए चन्द्रमुखी नायिकायें ऊपर की ओर और नीचे की ओर क्यों आ रही है ? (4.22) रात्रि और दिन में सदा अन्धकार रहने पर दिन और रात का बोध कैसे होता है (4.25) ? आदि के सम्बन्ध में मनोहारि उत्प्रेक्षायें की गई है । वर्षा ऋतु को एक कमनीया नायिका के रूप में कवि ने चित्रित किया है । (4.10) । वर्षाकाल में कामदेव शीतलजल कणों के भय से ही मानों पति वियोग से संतप्त अङ्गनाओं के अन्तरङ्ग में प्रवेश करके उन पर अपना प्रभाव प्रदर्शित करता है ।

शरद् ऋतु (२१-१-२०)

भगवान् महावीर के निर्वाणकाल (कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि) के अंतिम प्रहर में शरद् ऋतु का वैभव नवोढ़ा नायिका की तरह शोभायमान था (21.2) कवि ने यहाँ कल्पना की है कि सर्वजन-वल्लभ भगवान् महावीर जब शिवलक्ष्मी (मुक्तिरमा) को वरण करने के लिए उद्यत थे तो उस महोत्सव को देखने के लिए ही मानो शरद् ऋतु धरातल पर अवतीर्ण हुई (21.1)। आश्विन और कार्तिक मास में सूर्य जब कन्या और तुला राशि में रहता है, तब शरद् ऋतु का काल माना जाता है (21.11.20)।

इस शरद् ऋतु में सरोवर का जल और आकाशतल एक जैसा हो जाता है (21.7) आकाश में तारागण मोती के समान और चन्द्रमा दीपक के समान सुशोभित होने लगते हैं (21.4, 9)। जल निर्मल हो जाता है (21.4)। मयूर का बोलना बन्द हो जाता है (21.5) पृथिवी कीचड़ से रहित हो जाती है और कमल खिल जाते हैं (21.6) साठी धान्य पक जाती है और आकाश बादलों से रहित हो जाता है (21.3)। कृषक अपने घरों में धान्य लाते हैं और खलिहानों में उसे रखते हैं (21.12) कामोद्दीपक सप्तपर्ण और वृक्षों की पुष्प सुगन्धि से युक्त शारदीय हवायें बहने लगती है (कमल और कमलिनियों का विकास हो जाता है (21.15) प्रिया की याद में पथिकों की स्थिति डाँवाडोल हो जाती है (21.15) कामदेव का सर्वत्र साम्राज्य फैल जाता है (21.18,19)। कवि की कुछ अद्‌भुत कल्पनायें दर्शनीय है। जैसे -

यह शरद् ऋतु योगियों की सभा के समान आचरण वाली है -

"विलोक्यते हंसरवः समन्तान्मौनं पुनर्भोगभुजो यदन्तात् ।
दिवं समाक्रामति सत्समूहः सेयं शरद्योगिसभाऽस्मदूहः ॥21.5

"मेघों की गम्भीर वाणी को जीतने वाले हंसों के शब्दों से हम पराजित हो गए हैं" ऐसा सोचकर उदास हुए मयूर गण अपने शरीर के पंखों को उखाड़-उकाड़कर फैंक रहे हैं।

"जिताजिताम्भोधर सारभासां रुतैरताभी पततामुदासा ।
उन्मूलयन्ति स्वतनूरुहाणि शिखावला आश्विनमासि तानि ॥21॥

सूर्य इस ऋतु में उत्तरायण से दक्षिणायन क्यों हो जाता है ?

"परिस्फुरत्षष्ठिशरद् धराऽ सौ जाता परिभ्रष्ट पयोधरा द्यौः ।
इतीव सन्तप्ततया गभस्तिः स्वयं यमाशायुगयं समस्ति ॥21.3॥

अर्थ - पृथ्वी रूपी स्त्री को साठ वर्ष (साठी धान्यवाली) की देखकर तथा द्यौ नाम की स्त्री को भ्रष्ट पयोधरा देखकर ही मानो सूर्य सन्तप्त चित्त होकर स्वयं यमपुर (दक्षिणदिशा) जाने के लिए तत्पर है।

सूर्य ने सिंह राशि को छोड़कर कन्या राशि में क्यों प्रवेश किया ?

"स्मरः शरद्यस्ति जनेषु कोपी तपस्विनां धैर्यगुणो व्यलोपि ।
यतोदिनेशः समुपैति कन्याराशिं किलासीमतपोधनोऽपि ॥21.13॥

अर्थ - तपस्वियों के भी धैर्य को छुड़ाने वाला असीम तपस्वीव प्रचुर ताप को धारण करने वाला भी यह सूर्य इस शरद् ऋतु में सिंह राशि (सिंह वृत्ति) को छोड़कर कन्याराशि (कन्याओं के समूह) में जा रहा है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।

हेमन्त ऋतु और शिशिर ऋतु (९.१८-४५, १०.१,२)

प्रायः कवियों ने हेमन्त और शिशिर ऋतु दोनों का समावेश शीत ऋतु में करके एकसा वर्णन किया है। यहां एक स्थान पर शिशिर ऋतु को वसन्त का शैशवकाल बतलाया है -

"अयि लवङ्गि! भवत्यपि राजते विकलिते शिशिरेऽपि च शैशवे ।
अतिशयोन्न तिमत्स्तवकस्तनी भ्रमुरसङ्गवशान्मदनस्तवे ॥6.32॥

अर्थ - अयि लवङ्गलते। तुम सौभाग्यवती हो क्योंकि तुम्हारा शिशिरकाल रूप शैशवकाल बीत चुका है और अब नव यौवनावस्था में पुष्पों के गुच्छों रूपी उन्नत स्तनों से युक्त हो गई हो। भौंरों के संपर्क से काम-प्रस्ताव को प्राप्त हो रही हो।

"शिशिरोचितप्रिया: स्त्रिया: (9.20) कहकर शीत ऋतु का ही वर्णन किया है । अन्यत्र एक स्थान पर शिशिरवायु के भी उल्लेख किया है (9.23)

भारतीय संवत्सर के अनुसार मार्गशीर्ष और पौषमास में जब सूर्य वृश्चिक और धन राशि में रहता है तब हेमन्त ऋतु होती है । माघ और फाल्गुन मास में जब सूर्य मकर और कुम्भ राशि में होता है तब शिशिर ऋतु मानी जाती है ।

वीरोदय काव्य में शीत ऋतु के आगमन का कारण भगवान् महावीर के द्वारा लोगों की जड़ता दूर करने के लिए किया गया क्रोध युक्त उपक्रम है (9.18) ।

कन्या राशिस्थ सूर्य जब हेमन्त ऋतु में धनराशिस्थ हो जाता है तो वह कर्ण राजा (कन्या कुन्ती से उत्पन्न और धनुर्विद्या पारंगत) के समान पराक्रमी होकर योगियों को भी कंपा देने वाला हो जाता है -

"कन्याप्रसूतस्य धनु:प्रसङ्गतस्त्वनन्यमेवातिशयं प्रविभ्रतः ।
शीतस्य पश्यामि पराक्रमं जिन स्त्री कर्णवत्कम्पकरं च योगिनः ॥९.१९॥

सूर्य के धनु:राशिस्थ होने पर दूसरी उत्प्रेक्षा देखिए -

"रविर्धनुः प्राप्य जनीमनांसि किल प्रहर्तुं विलसत्तमांसि ।
स्मरो हिमैर्व्यस्तशरप्रवृत्तिस्तस्यासकौ किङ्करतां बिभर्ति ॥9.28॥

अर्थ - हिमपात से अस्तव्यस्त शर संचालन वाले कामदेव की सहायतार्थ ही मानो सूर्य धनुष लेकर (धन राशि पर) उसकी किङ्करता (सेवकपने) को प्राप्त हुआ है ।

दिन छोटे और रात्रियां बड़ी क्यों होती है ? इस हेमन्त ऋतु में रात्रि रूपा श्यामा स्त्री की शीत-पीड़ा को देखकर यह दिन(सूर्य) उसे प्रीतिवश अधिक अम्बर (वस्त्र, समय) दे देता है । अथवा शीत से आतुर हुआ यह सूर्य रात्रि में अपनी सुन्दर स्त्री के गाढ़ आलिङ्गन में सो जाता है, जिससे वह प्रातः आलस्य के कारण शीघ्र नहीं उठ पाता है ।

श्यामास्ति शीताकुलितेति मत्वा प्रीत्याम्बरं वासर एष दत्त्वा ।
किलाधिकं संकुचितः स्वयन्तु तस्यै पुनस्तिष्ठति कीर्तितन्तु ॥9.29॥

शीतातुरोऽसौ तरणिर्निशायामालिङ्ग्य गाढं दयितां सुगात्रीम् ।
शेते समुत्थातुमथालसाङ्गस्ततस्स्वतो गौरवमेति रात्रिः ॥९.22॥

इसी प्रकार अन्य विविध उत्प्रेक्षाओं, उपमाओं आदि के द्वारा इस शीत ऋतु (हेमन्त और शिशिर) का कवि ने चित्रण किया है । जैसे - शीत में दरिद्र पुरुष की स्थिति (9.25), वानरों की स्थिति (9.27), वृक्षों की शोभा का विनाश (9.22) हिमपात होना (9.21), प्रियाविहीन की मरणवत् स्थिति (9.35), प्रियाविहीन पुरुष के लिए तो रात्रियां साक्षात् यमयामिनी हैं (9.40) स्त्रियों की कन्दुक क्रीड़ा (9.36-38), तारांततिवत् कुन्दपुष्पों का विकास (9.42) पक्षियों का संचार बन्द होना और शीत वायु का संचार होना (9.35), ठिठुरन का बढ़ना और दाँतो का किटकिटाना (9.43), हिरण के द्वारा पास में पड़ी हुई घास को उठाकर नहीं खा पाना, सम्मुख आते हुए हाथी पर आक्रमण करने में सिंह का असमर्थ होना, ब्राह्मणों के सन्ध्यावन्दन हेतु हाथों का न उठना आदि (9.45) जलाशयों के ऊपर बर्फ की पर्त जम जाने से वह ऐसी लगती है मानो उसने शीत से बचने के लिए चादर ओढ़ली हो (9.41) । इस शीत ऋतु में वे ही सुरक्षित रह सकते हैं, जो स्त्री के आलिङ्गन में बद्ध हों, रजाई हो और अंगीठी जलती हुई पास में हो । ऐसे लोगों का शीत कुछ नहीं बिगाड़ सकती है (9.24, 44) भयभीत सूर्य की गर्मी ने स्त्रियों के कुचस्थलों में शरण ले रखी है (9.30, 33) ।

कवि ने शीतकालीन वायु को पति के रूप में चित्रित किया है -

"रूचा कचानाकलयञ्जनीष्वयं नितम्बतो वस्त्रमुतापसारयन् ।
रदच्छदं सीत्कृतिपूर्वकं धवायते दधच्छैशिर आशुगोऽथवा ॥

शीत से मुरझाये हुए कमलों को देखकर भगवान् महावीर संसार की असारता को जानकर विरक्त हो जाते हैं (10.1, 2) । प्रसङ्गतः तत्कालीन पं. दरबारी और ब्र. शीतल प्रसाद की आलोचना भी की गई है ।

इस तरह वीरोदय काव्य में शिशिर ऋतु का पृथक् संकेत करते हुए छहों ऋतुओं का सुन्दर एवं अभिनव कल्पनाओं से समन्वित चित्रण किया है । यह ऋतु वर्णन बलात् सन्निविष्ट नहीं किया गया है अपितु कथानक के अनुसार यथाप्रसङ्ग आया है । किसी भी दृष्टि से संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठित कवियों के ऋतुवर्णन से यह ऋतुवर्णन कमजोर नहीं है । सभी ऋतुओं का वर्णन सभी महाकाव्यों में प्रायः नहीं मिलता है । इस ऋतुवर्णन को देखने से कवि का ऋतुओं से प्रेम, उनका सूक्ष्म निरीक्षण ज्योतिषशास्त्र एवं कामशास्त्र का परिज्ञान, एक ही विषय को विभिन्नरूपों में प्रस्तुत करने की कल्पना शक्ति, श्लिष्ट पदावली का प्रयोग, रसाभिव्यक्ति की क्षमता आदि का पता चलता है ।

डॉ. सुदर्शनलाल जैन
अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
बी.एच.यू., वाराणसी

❑ ❑ ❑

'वीरोदय' में वर्णित पशु-पक्षी एवं पर्यावरण

डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

अपने पुण्यमय आविर्भाव से पितृश्री चतुर्भुज सेठ तथा मातृश्री घृतवरी देवी को कृतार्थ करने वाले महामहिम ब्र. भूरामलजी शास्त्री (आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज) [जन्म: विक्रमाब्द 1948; खिष्टाब्द 1891] द्वारा विरचित 'वीरोदय' काव्य अपनी आक्षरिक आकृति और साहित्यिक गुणों से महाकाव्यत्व की गरिमा आयत्त करता है । साथ ही, इस कमनीय काव्य कृति की, महावीर चरित से सम्बद्ध प्रबन्ध-काव्यों की परम्परा को समृद्ध करने में ततोऽधिक महार्घ भूमिका है । इसके अतिरिक्त, आधुनिक जैन काव्य-साहित्य के सांगोपांग विकास की दृष्टि से भी 'वीरोदय' काव्य का पार्यन्तिक महत्त्व है । प्रवाहमयी भाषा और मिताक्षरा शैली में सजाई गई छन्दोमयी गीत व ललित पदशय्या से सुशोभित 'वीरोदय' काव्य में, महावीर के परम पावन चरित की अवतारणा के क्रम में कविर्मनीषी पण्डितश्री द्वारा प्रस्तुत रमणीय कथा की आवर्जक योजना और उसकी अन्तर्वस्तु के विस्तार में सघन भावात्मक संश्लिष्टता के जिस रम्य रुप के दर्शन होते हैं, वे अन्य महावीर चरित-काव्य में प्रायोदुर्लभ हैं ।

शास्त्रदीक्षित काव्यकार मुनिश्री महाराज ने भाषिकी प्रौढ़ता, वर्ण्य के वर्णन की सौन्दर्य-सिक्त सरसता, मोहक वचोभंगी और लाक्षणिक भावचेतना तथा श्लेष गर्भ अर्थ चमत्कार द्वारा अदभुत चित्र सृष्टि की है । मुनिश्री, निश्चय ही, रसपेशल नैसर्गिक भाषा के सफल प्रयोक्ता हैं । उन्होंने प्राणवती भावानुगामिनी भाषा के माध्यम से स्वीकृत कथावस्तु को वर्णन के विराट् फलक पर रुपायित किया है । चूंकि भाषा उनकी सहज वंशवदा है, इसलिए उन्होंने उसे, अपने भावों की यथेच्छ अभिव्यक्ति के लिए, कोमलकान्त पदावली की विविध चारियों में नचाया है । वस्तुतः 'वीरोदय' काव्य अपनी भाषिकी गरिमा शैलिकीय प्रांजलता, कल्पना-वैचित्र्य और अर्थानुकूल चित्त चमत्कारिणी वर्णन विच्छित्ति के कारण संस्कृत के पारम्परिक चरितकाव्यों में अपना स्वतन्त्र अभिज्ञान उपस्थित करता है ।

अनेक मनोरम विषयों के वर्णन-बाहुल्य से विमण्डित 'वीरोदय' काव्य में यथावर्णित पशु-पक्षी एवं पर्यावरण को लक्ष्य करना ही प्रस्तुत शोध-निबन्ध का अभीष्ट है ।

काव्यों में प्रकृति का चित्रण अतिशय ख्यात है । ब्राह्मणों के आदिकाव्य 'वाल्मीकि रामायण' से आधुनिक संस्कृत-काव्यों तक में प्रकृति चित्रण की अविच्छिन्न परम्परा दृष्टिगत होती है । संस्कृत के जैन कवियों ने ईसवीं सन् की द्वितीय-तृतीय शती से संस्कृत-काव्य की रचना परम्परा का सूत्रपात किया । काव्य-प्रणयन की दृष्टि से संस्कृत के सर्वप्रथम जैन कवि आचार्य समन्तभद्र है, जिनके स्तोत्रकाव्य से संस्कृत जैन काव्य जगत ततोऽधिक समृद्ध हुआ है[1] । स्वयं मुनिश्री ज्ञानसागरजी ने भी श्लेष पद्धति द्वारा सर्वलोक कल्याणकारी समन्तभद्र को सर्वश्रेष्ठ कवि के रुप में स्मरण किया है ।[2] संस्कृत के जैनकवियों द्वारा द्वितीय शती से काव्य की जो रचना परम्परा प्रारम्भ हुई, वह चतुर्दशम शताब्दी तक पहुँचकर पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो गयी थी परन्तु सप्तदशम शताब्दी में पुनः जरावस्था को प्राप्त हो मृतप्राय हो रही काव्य रचना ही रसधारा को पुनः प्रवहमान किया ।)

कविश्री ज्ञानसागरजी के प्रकृति चित्रण में दो विशेषताएँ परिलक्षणीय हैं। प्रथम, प्रकृति में चेतन सत्ताकी अनुभूति और द्वितीय प्रकृति में विराट् का विभावन । इन दोनों प्रकार के चित्रण में उदात्त कल्पना एवं चित्ताहलादक सौन्दर्य का समावेश ततोऽधिक आवर्जक रुप में हुआ है ।

पशु-पक्षी

प्राकृतिक उपादानों की व्यापकता में पशुपक्षी तथा वन और वनस्पति की पर्यावरणिक भूमिका सातिशय महत्त्वपूर्ण है । प्राज्ञ कवि मुनिश्री के प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत पशुपक्षियों के चित्रण में मानवीकरण की प्रचुरता है । इस सन्दर्भ में 'वीरोदय' काव्य के चतुर्थ सर्ग (कुल बाईस सर्ग) में वर्णित वर्षाऋतु को आस्वादरमणीय सौन्दर्य का प्रसंग द्रष्टव्य है ।

वीर भगवान् के अपनी माता प्रियकारिणी त्रिशला देवी के गर्भ में आने पर वर्षा से पृथ्वी हरी भरी और प्रजा हर्ष विभोर हो गई । इस सन्दर्भ में मुनिश्री ने वर्षा का उत्प्रेक्षामूलक आलंकारिक वर्णन करते हुए गत्वर चाक्षुष बिम्ब और मनोरम श्रावण बिम्ब का समेकित विधान किया है:

रसैर्जगत्प्लावयितुं क्षणेन सुत्कण्ठितोऽयंमुदिरस्वनेन ।
तनोति नृत्यं मृदु मञ्जुलापी मृदङ्गनिःस्वानजिताकलापी ॥ (४.९)

अर्थात् यह वर्षाकाल एक नाट्यगृह जैसा प्रतीत होता है; क्योंकि इस समय मेघों का गर्जन मृदंग की ध्वनि का अनुकरण करने लगता है और नाचती हुई मयूरियाँ अपने केका-रव से मधुर संगीत स्वर का विस्तार करने लगती हैं ।

यहाँ मयूरियों पर नर्त्तनशील मानव के व्यापारों का आरोप उनका मानवीकरण किया गया हैं । ज्ञातव्य है, मानवीकरण में जीवित वस्तु को ही नहीं, वरन् सजीव और निर्जीव समग्र मानवेतर प्राकृतिक उपादानों को मानवोपम संचेतना और संवेदना की भूमिका में देखा जाता है ।

पक्षी-वर्ग में चातक कवियों का अतिशय प्रिय वर्ण्य विषय है । कवि श्री ज्ञानसागरजी ने वर्षाकाल में भी तृषा से तप्त रहने वाले चातक का मनोवेधक चित्रण किया है ।

कीदृक् चरित्रं चरितं त्वनेन पश्यांशकिन्दारुणभाशुगेन ।
चिरात्पतच्चातकचञ्चुमूले निवारितं वारि तदत्र तूले ॥ (४.१९)

इस श्लोक में भावार्थ यह है कि बरसाती हवा के वेग पूर्वक चलने से वर्षा की बूँदें चातक की खुली चोंच में न गिरकर , हवा में उड़कर इधर-उधर गिर जाती है । यहाँ कविर्मनीषी मुनिश्री ने आशुग, अर्थात्, पवन का अन्योक्तिपरक मानवीकरण करते हुए कहा है कि पवन का ऐसा चरित्र अतिशय भयानक है; क्योंकि वह तृषादग्ध चातक की खुली हुई चोंच में गिरने वाली वर्षा की बूँद को, चोंच में न गिरने देकर इधर-उधर कर देता है ।

वर्षा ऋतु के सौन्दर्य-चित्रण के क्रम में चकवा चकवी पक्षी के वर्णन के प्रति कविजन सहज आग्रहशील होते हैं। मुनिश्री ज्ञानसागरजी ने भी चकवा चकवी को अपने वर्षा-वर्णन में सन्दर्भित करते हुए, आनुप्रासिक छटा से अनुरंजित श्लोक की रचना इस प्रकार की है:

अनारताक्रान्तघनान्धकारे भेदं निशान्वासरयोस्तथारे ।
भर्त्तुर्युतिं चाप्ययुतिं वराकी तनोति सम्प्राप्य हि चक्रवाकी । (४.२५)

अर्थात् निरन्तर सघन मेघों से आच्छादित रहने से घोर अन्धकार वाली वर्षाऋतु में लोगों को दिन और रात में भेद नहीं प्रतीत होता है । ऐसी स्थिति में उन्हें चकवा चकवी के ही संयोग और वियोग से रात दिन का पता चलता है । यह कवि प्रसिद्धि है कि रात में चकवा चकवी वियुक्त रहते हैं और दिन में उनका समागम होता है ।

---

1. विशेष द्रष्टव्य : 'संस्कृत काव्य के विकास में जैनकवियों का योगदान' आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७१ ई.
2. हारायतेऽथोत्तमवृत्तमुक्ता समन्तभद्राय समस्तु सूक्ता ।
   या सूत्रसारानुगताधिकाराकण्ठीकृता सत्पुरुषैरुदारा ॥ 'वीरोदय': १.२४
   'इस श्लोक में प्रयुक्त 'समन्तभद्र' पद से कविश्री ने यह भाव व्यक्त किया है कि उत्तम कविता तो समन्तभद्र जैसे महान् आचार्य ही कर सकते हैं । ऐसा कहकर मुनिश्री ने अपनी गर्वोक्ति का परिहार किया है ।

यहाँ भी प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण में सातिशय निपुण कविश्री ने मानवेतर प्राकृतिक उपादन को मानव के निकट लाने का श्लाघ्यतम काव्य-प्रयास किया है ।

कविश्री ज्ञानसागरजी को मानवीकरण से मोह है । इसलिए, उनके कला की अभिव्यर्जना की दृष्टि से अतिशय उत्कृष्ट 'वीरोदय'काव्य में मानवीकरण के अत्यन्त मनोज्ञ निदर्शन उपलब्ध होते हैं ।

छठे सर्ग में वसन्त ऋतु के वर्णन के क्रम में कोयल पक्षी का मानवीकरण द्रष्टव्य है:

वन्या मधोः पाणिधृतिस्तदुक्तं पुंस्कोकिलैर्विप्रवरैस्तु सूक्तम् ।
साक्षी स्मराक्षीणहविर्भुगेष मेरीनिवेशोऽलिनिनाददेशः ॥ (६.१४)

अर्थात, वसन्त ऋतु में वनलक्ष्मी और बसन्तराज का पाणिग्रहण हो रहा है, जिसमें पुंस्कोकिल, यानी नरकोयल विप्रवर बना हुआ है और उसकी मधुरवाणी ही मधुमय मन्त्रोच्चार है ।

कोयल के बिना जिस प्रकार वसन्त का सौन्दर्य अधूरा हैं । उसी प्रकार विवाह-विधि भी विप्रवर के मन्त्रोच्चारण के बिना अपूर्ण ही रहती है । यहाँ वाग्विग्ध एवं शब्द शास्त्रज्ञ कवि का श्लेषात्मक वर्णन ध्यातव्य है । 'विप्रवर' में 'वि+प्रवर' इस सभंग श्लेष से इसका अर्थ श्रेष्ठ पक्षी अर्थात कोयल होता है और 'विप्रवर' का साधारण अर्थ श्रेष्ठ ब्राह्मण है ।

कवियों द्वारा वर्ण्य के रूप में स्वीकृत पक्षियों में राजहंस को भी प्रमुखता प्राप्त है । संस्कृत के छन्दों में भी तुक की रक्षा के प्रति प्रायः सचेष्ट कविवरेण्य मुनिश्री ने राजहंस की तुलना राजा से करते हुए उसका मनोहारी मानवीकरण किया है:

मार्त्तण्डतेजः परितः प्रचण्डं मुखे समादाय मृणालखण्डम् ।
विराजते सम्प्रति राजहंसः कासारतीरेऽब्जतले सवंशः ॥ (१२.१०)

ग्रीष्मकाल का वर्णन है। सूर्य का तेज अति प्रचण्ड हो रहा है, इसलिए कमलयुक्त मृणाल-खण्ड को अपने मुख में लेकर सरोवर के तीर पर बैठा हुआ सपरिवार राजहंस राजा के समान सुशोभित हो रहा है ।

अवश्य ही, इस वर्णन में चाक्षुष सौन्दर्य की प्रधानता है । राजा के रुप में उद्भावित राजहंस का बिम्ब सातिशय हृद्य और रमणीय, अतएव प्रभावकारी है । भावनिबिड कल्पना से प्रसूत उपमान से उपमेय राजहंस का राजा का रूप अधिक बोधगम्य और प्रत्यक्ष बन गया है ।

वर्षाकाल में मयूर की जो आनन्दात्मक स्थिति होती है, शरत्काल में उसकी वही स्थिति कुछ उदास मानसिकता में बदल जाती है। अवश्य ही, कवि सम्राट्, मुनिश्री ज्ञानसागरजी पक्षिविज्ञान के प्राज्ञ विज्ञाता थे । तभी तो उन्होंने पक्षियों की ऋतु के अनुसार परिवर्तन होने वाली मनोवृत्ति को गहराई से लक्ष्य किया है । इनके द्वारा उपन्यस्त के शरत्कालीन हंस के स्वर से पराजित मयूर की द्वन्द्विल मनःस्थिति का एक स्वाभाविक चित्र द्रष्टव्य है:

जिता जिताम्भोधरसारभासां रुतैरुतामी पततामुदासाः ।
उन्मूलयन्ति स्वतनूरुहाणि शिखावला आश्विनमासि तानि ॥ (२१.११)

अर्थात् शारदीय आश्विन मास में मेघों की गम्भीर वाणी को पराजित करने वाले हंसों के शब्द से मयूर का केका- रव फीका पड़ गया है, यह सोचकर अतिशय उदास मयूर अपने पंखों को उखाड-उखाड कर फैंक रहे हैं । पराजय के क्षोभ से निर्मित आत्मपीडन की यह स्थिति सहज और मानव-मनोविज्ञान के अनुकूल बन पडी है ।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि हंस कवि द्वारा शरदकाल के वर्णनीय पक्षी के रूप में स्वीकृत है । और फिर, शरदऋतु में मयूरपक्षी कवियों द्वारा अस्वीकृत हो जाता है। पुनः शरद् में मेघ स्वल्प हो जाते हैं । उनका गर्जन-तर्जन मन्द पड़ जाता है, इसीलिए हंस की ध्वनि को अनुमादित होने का अनुकूल पर्यावरण बन जाता है । और फिर यह भी ज्ञातव्य है कि शरत्काल में मोरों के पंख स्वतः झडनें लगते हैं । इस प्रकार मयूर पक्षियों की स्वाभाविक प्राकृतिक क्षोभजनक मनः स्थितियों को मनोगत करके कविश्री ज्ञानसागरजी ने जो काव्य चमत्कार उत्पन्न किया है, अपनी ललित काव्यभाषा के माध्यम से जो मनोरम बिम्ब-विधान किया है, उससे इनकी सुदुर्लभ कवित्वशक्ति का विस्मयकारी परिचय प्राप्त होता है ।

काव्य साधक मुनिश्री ने पक्षियों के समानान्तर ही पशुओं के मानवीकरण के माध्यम से आवर्जक बिम्बसृष्टि की है। पण्डित कवि मुनिश्री ने उपमा-बिम्ब के माध्यम से वानरों के वर्णन क्रम में शास्त्रार्थ में, जैनों से बौद्ध आदि दार्शनिकों के परास्त होने की ऐतिहासिकता का भी उपस्थापना की है। मूल श्लोक इस प्रकार हैं:

प्रकम्पिताः कीशकुलोद्भवास्ततं
मंदं समुज्झन्ति हिमोदयेन तम् ।
समन्तभद्रोक्तिरसेन कातराः
परे परास्ता इव सौगतोत्तराः ॥ (१.२७)

अर्थात् समन्तभद्रस्वामी के सूक्ति रस से सौगत (बौद्ध) आदि दार्शनिक प्रवादी शास्त्रार्थ में पराजित होकर जैसे कायर बन जाते हैं और अपने मद का परित्याग देते हैं वैसे ही हिमपात होने से कीशकुल में उत्पन्न वानर मदहीन होकर काँपते हुए ठण्डे पड़ रहे हैं । यहाँ परास्ता जैनतेर दार्शनिकों से वानर की उपमा का बिम्ब व्यंग्यगर्भ तो है ही, ठण्ड से ठिठुरते वानरों का मानवीकृत बिम्ब भी ततोऽधिक हृदयावर्जक है । प्रस्तुत काव्य में बारहवें सर्ग में पशुओं में श्रेष्ठ हाथी और साँप का एक रोमांचक चित्र उपस्थित किया गया है । यों महाकवि कालिदास ने अपने कालोत्तीर्ण ऋतुकाव्य 'ऋतुसंहार' में ग्रीष्म-वर्णन के क्रम में लिखा है कि परस्पर वैर रखनेवाले जीव भी भयानक गरमी में मैत्रीभाव से एक जगह हो गये हैं । इसी संकटकालीन ऐक्य भावनावश मेंढक साँप के फण रूप छाते के नीचे आ बैठा है और साँसे लेता हुआ फण हीन साँप मयूर के पंख की छाया में विश्राम कर रहा है :

उत्प्लुत्य भेकस्तृषितस्य भोगिनः
फणातपत्रस्य तले निषीदति । (१.१८)
अवाङ्मुखो जिह्वगतिः श्वसन्मुहुः
फणी मयूरस्य तले निषीदति । (१.१३)

परन्तु, कविश्री ज्ञानसागरजी द्वारा प्रस्तुत एतद्विषयक ग्रीष्म-चित्र कुछ और ही है:

मितम्पचेसूत किलाध्वगेषु तृष्णाभिवृद्धिं समुपैत्यनेन ।
हरे शयानस्य मृणालबुद्ध्या कर्षन्तिपुच्छं करिणःकरेण ॥ (१२.४)

अर्थात् ग्रीष्मकाल के प्रभाव से पथिकों में कृपणों के समान ही तृष्णा (प्यास और धनैषणा) अधिकाधिक बढ़ रही है। ऐसी भयानक गरमी मे व्याकुल हाथी अपनी सूँड से साँप को शीतलतादायक कमलनाल समझकर खींच रहा है । ग्रीष्म वर्णन के क्रम में ही, घरेलू पशुओं में लोक सुलभ कुत्ते का एक स्वाभाविक चित्र दर्शनीय है :

ज्वाला हि लोलाच्छलतो बहिस्ता-
न्निर्यात्यविच्छिन्नतयेति मानात् ।
जानामि जागर्त्ति किलान्तरङ्गे
वैश्वानरःसम्प्रति मण्डलानाम् ॥(१२.७)

अर्थात. ग्रीष्म ऋतु में, कुत्तों के पेंट में आग जल रही है, इसलिए उस आग की ज्वाला मानों लपलपाती जीभ के बहाने उनके मुँह से लगातार बार बार निकल रही है। अवश्य ही इस सजीव चित्रण से कवि श्री ज्ञानसागरजी की, पशु जीवन के अध्ययन विषयक सूक्ष्मेक्षिका की विस्मयावह तीक्ष्ण शक्ति की सूचना मिलती है ।

इसी सन्दर्भ में मुनि श्री द्वारा मानवीकरण-शैली में विन्यस्त मृग-मृगी के सरस स्निग्ध दाम्पत्य का अनुराग- रंजित चित्र द्रष्टव्य है :

त्यक्त्वा पयोजानि लताः श्रयन्ते
मधुव्रता वारिणि तप्त एते ।
छायासु एणःखलु यत्र जिह्वा-
निलीढकान्तामुख एष शेते ॥ (१२.९)'

इस श्लोक का भाव यह है कि ग्रीष्म ऋतु में सरोवरों का जल अतिशय तप्त हो जाता है, इसीलिए भौंरें कमलों को छोड़ लताओं का आश्रय लेते हैं और हिरण भी सघन शीतल छाया में बैठकर जीभ से अपनी प्रिया हरिणी का मुख चाटता हुआ विश्राम कर रहा है ।

अवश्य ही मृग मृगी के इस स्वभावोक्तिमूलक चित्र में पारम्परीय प्रकृति-वर्णन की महत्ता को स्वीकृति मिली है, फिर भी सौन्दर्यानुभूति से वेष्टित इस दृश्य में कवि श्री के प्रबन्ध-कौशल से नन्दतिक बोध का रसभावर्धक समावेश हुआ है।

शरद वर्णन के प्रसंग में कविवर ज्ञानसागरजी द्वारा अंकित संगीत से मोहित मृग समूह का एक अन्य आवर्जक चित्र इस प्रकार है :

जिघांसुरप्येणगणः सुभान्नमुपान्तपृच्छालिक बालिकानाम् ।
सुरीतिरीतिश्रवणेशितेति न शालिमालं स पुनः समेति ॥ (२१.१०)

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि फसल चरने के लिए आया हुआ मृगों का झुण्ड फसल की रखवाली करने वालीभूपवती बालिकाओं द्वारा गाये जाने वाले मधुर गीतों को सुनने में इस प्रकार तल्लीन हो जाता है कि फसल चरना तो भूल ही जाता है, फसल की क्यारियों में आना भी भूल जाता है ।

मृगों का संगीत या वाद्य की स्वर-माधुरी पर मुग्ध होने की बात लोकरूढि या रूढ़ कथा बन गई है । इसी को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'निजन्धरी' कहा है । कहना न होगा कि लोकजीवन के सूक्ष्म अध्येता कविश्री ज्ञानसागरजी ने अपने 'वीरोदय' काव्य में कथारुढि के माध्यम से अनेक लोक बिम्बों की मनोहारिणी अवतारणा की है ।

अपनी नाभि में ही कस्तूरी की अवस्थिति को न समझ पाने के कारण भ्रान्तिवश मृग जिस प्रकार कस्तूरी की खोज में भटकता है, उसी प्रकार अपनी छाया को ही कीचड़ समझने की भ्रान्ति के वशीभूत भैसे का रमणीय एवं कल्पना कमनीय चित्र कविश्री ने अंकित किया है:

वाहद्विसन् स्वामवगाहमानश्छायामयं कर्दम इत्युदान ।
विपद्यते धूलिभिरुष्णिकाभिरूढा क्व वा भ्रान्तिमतामुताऽभीः॥12.13

प्रस्तुत श्लोक का भावार्थ यह है कि घोड़ों से द्वेष रखने वाला भैंसा गरमी की व्याकुलता से उत्पन्न भ्रान्ति से अपने शरीर की छाया को ही घना कीचड़ समझकर बैठता है और उसी में लोटपोट होने लगता है । किन्तु, गरम धूल में उसे सुख मिलने की अपेक्षा दुःख ही प्राप्त होता है । भ्रान्ति में पड़े हुए को निर्भयता की प्राप्ति कैसे सम्भव हैं ?

यहाँ भ्रान्तिमूलक चाक्षुष बिम्ब के विनियोग के क्रम में कविश्री ज्ञानसागरजी ने प्राकृतिक पशु-जीवन से उपदेशात्मक सूक्ति ग्रहण की है। इस प्रकार की सूक्ति पद्धति अथवा उपदेशात्मक प्रकृति वर्णन के उदाहरण 'वीरोदय' काव्य में भूरिशः और भूयशः प्राप्त होते हैं । 'वीरोदय' सूक्ति का प्रसंग अपने-आप में स्वतन्त्र निबन्ध का विषय है। सच पूछिये तो, 'वीरोदय' पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने की आवश्यकता है ।

इस प्रकार, पशुओं के वर्णन मे प्रकृति के निपुण चित्रकार मुनि श्री ने यथाप्रसंग गाय, बकरी (अजा), बकरा (छाग), ऊँट, सिंह, भेड़ियां आदि घरेलु और वन्य पशुओं की भी सार्थक चर्चा की है ।

वन और वनस्पतिः पर्यावरणः

कविश्रेष्ठ मुनिश्री महाराज ने वन और वनस्पतियों के वर्णन के माध्यम से अनेक मूल्यवान् सांस्कृतिक पक्षों का उद्भावन किया है । भारतीय संस्कृति में वनों का बहुत अधिक महत्व है । हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षि वनों में ही आश्रम बनाकर रहते थे । प्रकृति और पर्यावरण से उनका अभिन्न सम्बन्ध था । ब्राह्मणों की वैदिक ऋचाओं का निर्माण भी वनों में प्रतिष्ठित आश्रमों में हुआ था । इसीलिए वेद की एक शाखा 'आरण्यक' हो गई । पुरायुग में वन प्रव्रजित या संन्यस्त जीवन के लिए तप के प्रमुख केन्द्र थे। यह 'वानप्रस्थ' शब्द की निरुक्ति 'वने वनसमूहे प्रतिष्ठते इति' से भी सिद्ध है । भारतीय संस्कृति के भव्योज्ज्वल रूपों की अवतारणा करने वाले प्राचीन ग्रन्थों की रचना वन के आश्रमों में ही हुई । महान् काव्यपुरुष मुनि श्री ज्ञानसागरजी ने इस तथ्य को अवश्य ही लक्ष्य किया था, इसलिए उन्होने अपने युगीन चेतना से संवलित 'वीरोदय' काव्य में भारतीय संस्कृति के उद्भावक वन और वनस्पतियों का साग्रह उल्लेख किया है ।

भारतीय संस्कृति में वृक्षपूजा को अतिशय महत्व दिया गया है। इसलिए, समस्त प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य वृक्षों की महिमा से मण्डित है । वृक्षपूजा की महत्ता सार्वभौम स्तर पर स्वीकृत है । वनस्पति, पशु-पक्षी एवं मानव एक ही चेतना के रूपभेद हैं । यहाँ तक कि विविध प्रदूषणों से पर्यावरण की प्ररक्षा के लिए वनस्पतियों या पेड़-पौधों की अस्मिता या अस्तित्व की अनिवार्यता राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार की गई है ।

कुबेर ने वीर भगवान के प्रवचन के लिए जो 'समवशरण' या सभामण्डप बनवाया था, वह चतुर्दिक वनों से आवृत्त आच्छादित था । मुनिश्री ने लिखा है कि उस 'समवसरण' की चारों दिशाओं में सप्तपर्ण आम्र, अशोक और चम्पक जाति के वृक्षों के चार वन थे। उसके बाद कल्पवृक्षों का वन था । (१३.११ और १३)

भगवान जिस सिंहासन पर विराजमान थे, उसके पीछे अन्वर्थनामा अशोक वृक्ष था, जो दर्शनमात्र से सर्वजन का शोक दूर कर देता था। और फिर भगवान के पुण्योदय से समवशरण में आकाश से पुष्पवृष्टि हो रही थी । इस प्रकार, समवशरण का पर्यावरण परित: विशुद्ध था ।

वनस्पतिशास्त्र से सुपरिचित काव्यकार मुनिश्री महाराज ने उक्त वृक्षों के अतिरिक्त बहेड़ा, आँवला, हरड लकुच या बडहर (*'वीरोदय' काव्य के हिन्दी- अनुवादक ने 'लकुच' का लीची अर्थ किया है*), बरगद तिलक, पलाश, अखरोट आदि के पेड़ों का प्रसंगोचित वर्णन किया है । इनमें आम या रसाल के वर्णन में तो कविश्री ने ततोऽधिक काव्य सौष्ठव का प्रयोग नैपुण्य प्रदर्शित किया है। और फिर, वृक्ष के सम्बन्ध में उन्होंने ईश्वर के कर्तृत्व-खण्डन के ब्याज से अतिशय गम्भीर दार्शनिक चिन्तन किया है । मुनिश्री ने इस सन्दर्भ में अपनी आन्वीक्षिकी का विस्तार करते हुए लिखा है कि कार्य-कारण के नियमानुसार बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है । यह सन्तति परम्परा अनादि काल से चली आ रही है । इसी प्रकार वनस्पति पशु और पक्षी से मनुष्य आदि सचेतन और अचेतन पदार्थ तक की सृष्टि परम्परा ईश्वर-कृत न होकर अनादिकालीन है । (द्र. १९.४१)

पर्यावरणविद् मुनिश्री ने भारत देश के पर्यावरण के प्रदूषित और विशुद्ध दोनोंरूपों की उपस्थापना की है । उन्होंने लिखा है कि धूर्तों ने वेदवाक्यों का *हिंसापरक अर्थ*[1] *करके जन साधारण को भ्रान्त कर दिया है* जिससे चारों और पैशाची और राक्षसी प्रवृत्ति व्याप्त हो गई है तथा पैशाचिक हिंसापरक कृत्यों से सारी पृथ्वी रक्तमयी हो गई है । (९.३२)

मुनिश्री द्वारा निर्देशित पर्यावरण-प्रदूषण की यह विषम स्थिति आज भी प्रांसगिक है । उन्होंने पशुबलि द्वारा देवस्थली के पर्यावरण के प्रदूषित होने का भी मार्मिक चित्रण किया है:

अहो पशूनां ध्रियते यतो बलि: श्मशानतामञ्चति देवतास्थली ।
यमस्थलीवाऽतुलरक्तरञ्जिता विभाति यस्या: सततं हि देहली ॥(९.१३)

अर्थात्, आज देवस्थली या मन्दिरों की पावन भूमि पशुबलि से श्मशान तुल्य हो रही है । मन्दिरों की रक्तरंजित देहली यमस्थली जैसी लग रही है । सचमुच पर्यावरण प्रदूषण की यह भयावह स्थिति है ।

विशुद्ध पर्यावरण की चर्चा करते हुए मुनिश्री ने लिखा है कि पहले पर्यावरण की दृष्टि से भारत प्रशस्त क्षेत्र था । यह उत्तम क्षेत्र जलवर्षा से सिंचित होकर जैसे उत्तम शस्यों की सृष्टि करता था, वैसे ही तीर्थंकरों के आगमन के समय उनके जन्माभिषेक के जल से प्लावित यह क्षेत्र स्वर्ग-- अपवर्ग आदि ''पुण्यफल- रूप'' शस्य की सृष्टि करता था । (द्र. २.६)

मुनिश्री के इस वर्णन विवरण से यह संकेतित होता है कि वन-वनस्पतियों की सम्पदा से परिपूर्ण प्राचीन भारत का पर्यावरण न केवल भौतिक दृष्टि से अपितु आध्यात्मिक दृष्टि से भी अतिशय विशुद्ध था । साथ ही, यह भी ध्वनित है कि भारत-क्षेत्र अन्न-प्रदूषण की समस्या से मुक्त तो था ही, अशुद्ध मानसिकता से भी मुक्त था ।

विदेह देश की चर्चा के क्रम में कविश्री ज्ञानसागर जी ने उसके पर्यावरण को *स्वर्गोपम कहा हैं; क्योंकि वहां के गगन-चुम्बी प्रासाद पवित्र जल और कमलों से भी सरोवर तथा कल्प वृक्ष के वनों से व्याप्त पुर और ग्राम स्वर्गलोक जैसी सुषमा की सृष्टि करते थे ।* (द्र. 2. १०)

विदेह देश में कुण्डनपुर का पर्यावरण भी अतिशय भव्य और दिव्य था । कविश्री के वर्णनानुसार यह स्पष्ट संकेतित है कि संगीत-नाद से व्याप्त कुण्डनपुर (वीर भगवान् की जन्म भूमि) का पर्यावरण जहाँ ध्वनि-प्रदूषण से मुक्त था, वहीं उत्तम धूप के जलने से उत्पन्न सुरभित धूम-पटल से वह नगर वायु-प्रदूषण से भी मुक्त था।

विदेह देश में पग-पग पर गहरे जल से भरे विशाल सरोवरों तथा फूल-फल से लदे वृक्षों की बहुतायत वहाँ के पर्यावरण की विशुद्धि में सहायक थी । वहाँ की गायें चन्द्रमा की चाँदनी के समान उज्ज्वल दुग्धामृत की वर्षा करती थी । (२. १९-२०) इससे स्पष्ट द्योतित होता है कि वह देश पेय और भोज्य प्रदूषण को बढ़ाने वाली मिलावट जैसी समस्या से भी मुक्त था ।

---

१. उदाहरण: 'अजैर्यष्टव्यम्' इस वेदवाक्य मे प्रयुक्त 'अज' शब्द का सही अर्थ पुराना धान्य या व्रीहिन्यव है । किन्तु, धूर्तो ने उसका अभिधार्थ 'बकरा' करके छागबलि- प्रथा को प्रवर्तित प्रोत्साहित किया । इस सन्दर्भ में 'वीरोदय' काव्य के अट्ठारहवें सर्ग की श्लोक-संख्या ५० द्रष्टव्य ।

महावीर के 'समवशरण' या सभामण्डप के पर्यावरण का दृश्य अंकित करते हुए कविर्मनीषी मुनिश्री ने लिखा है कि सभामण्डप के मानस्तम्भों के एक ओर विशुद्ध जल से भरी खाई थी, तो दूसरी ओर पुष्पवाटिका सुशोभित हो रही थी, जिसमें मौलिया, गुलाब, मोगरा आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित फूल खिल रहें थे । (द्र. १३. ४) समवशरण का रत्नजटित उत्तुंग शाल (बाड़) अपने रत्नों की किरणों से आकाश में उदित इन्द्रधनुष की जैसी शोभा का विस्तार कर रहा था । और फिर, हंस, चक्रवाक आदि दस प्रकार के चिह्नों से सुशोभित एक सौ आठ ध्वाजाएं पंक्ति बद्ध रूप में आकाश में फहरा रही थी। (द्र.१३. ५ और ७)

इससे 'समवशरण' के उपयुक्त आकाश मण्डल के भी प्रदूषण-मुक्त होने की सूचना प्राप्त होती है । पर्यावरण के वैज्ञानिक-सह-दार्शनिक अध्ययन की दृष्टि से 'वीरोदय' काव्य का उन्नीसवाँ सर्ग ततोऽधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें महाज्ञानी सारस्वत पुरुष ज्ञानसागर जी की शब्द साधना और काव्य-साधना दोनों के समेकित रूप में विस्मयकारी दर्शन होते हैं। उन्होंने इस सर्ग में त्रस (चर) और स्थावर (अचर) जीवों के सम्बन्ध में गहन चिन्तन किया है । उन्होंने पृथ्वीकायिक, जल कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीवों की विशद चर्चा करते हुए सचित्त या सजीव और अचित्त या निर्जीव (प्रासुक और अप्रासुक) पदार्थ की पंखानुपुंख विवेचना की है । ज्ञातव्य है, सचित्त पदार्थ से न केवल पर्यावरण प्रदूषित होता है, अपितु वे पेय और भोज्य पदार्थों को भी दूषित करते हैं इसीलिए विवेकख्याति-सम्पन्न ज्ञानसागरजी ने सचित्त पदार्थों के सेवन का निषेध किया है ; क्योंकि ये पदार्थ पृथ्वीकायिक आदि पाँचों प्रकार के जीवों या कीटाणुओं से युक्त होते हैं ।

शुद्धाहार की विवेचना करते हुए मुनिश्री ने मांसाहार का निषेध और अग्निपक्व शाकाहार को ततोऽधिक वरेण्य माना है । अग्निपक्व में सूर्याग्नि पक्व पदार्थ भी सम्मिलित हैं । उन्होंने लिखा है :

दलाद्यग्निना सिद्धमप्रासुकत्वं
त्यजेदित्यदः स्थावराङ्गस्य तत्त्वम् ।
पलं जङ्गमस्याङ्गमेतत्तु पक्व -
मपि प्राग्वदं प्रासुकं तत्पुनः क्व ॥
न शाकस्य पाके पलस्येव पूति -
र्न च क्लेदभावो जलेनात्तसूतिः ।
इति स्पष्टभेदः पुनश्चापि खेदः
दुरीहावतो जातुचिन्नास्ति वेदः ॥ (१६. २४-२५)

तुकान्त भुजंगप्रयात छन्द में आबद्ध इस सन्दर्भ का तात्पर्य यह है कि शाक-पत्र आदि अग्नि में पकने पर सचित्तता से मुक्त होकर प्रासुक बन जाते हैं; किन्तु मांस तो जंगम जीवों का शरीरांग है, इसलिए अग्नि में पकने पर भी वह प्रासुक नहीं होता । शाक पकाने पर मांस के समान दुर्गन्ध नहीं आती तथा शाक-पत्र आदि जल से या जल के सिंचन से उत्पन्न होने के कारण वे मांस की तरह जल के संयोग से सड़ते भी नहीं । इस प्रकार, मांस और शाक में स्पष्ट भेद है । फिर भी महान् खेद की बात है कि मांस भक्षण के दुराग्रहियों को इसका कतई विवेक नहीं ।

पर्यावरण की विशुद्धता की दृष्टि से वन का सातिशय महत्त्व है। मुनि श्री ने लिखा है कि वन में सुन्दर लता है और सुधा (चूना) से बने सौध (महल) में खारापन है, इसलिए महात्मा लोग घर को छोड़ सुरम्य वन में रहते हैं ।

कान्तालता वने यस्मात्सौधे तु लवणात्मता ।
त्यक्त्वा गृहमतः सान्द्रे स्थीयते हि महात्मना ॥(१०.२०)

इस प्रकार, काव्यात्मा मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा प्रणीत कालोत्तीर्ण 'वीरोदय' काव्य-ग्रन्थ में पशु-पक्षी और पर्यावरण के चित्रण के क्रम में उपस्थापित वन और वनस्पति के बहुकोणीय आयामों की उद्भावनाएँ भारतीय संस्कृति के अध्ययन अनुशीलन की दृष्टि से अपना पार्यन्तिक मूल्य आयत्त करती हैं। इस महार्घ काव्य कृति में दर्शन और काव्य का अथवा काव्य और दर्शन का, या फिर श्रृंगार और शान्त का अथवा शान्त और श्रृंगार का अद्भुत समाहार हुआ है । प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर प्रस्थान जैन वाङ्मय की अभिज्ञानगत निजता है। निवृत्ति के प्रति प्रबल आग्रह और प्रवृत्ति के प्रति निर्वैयक्तिकता या अनास्वादमूलक तटस्थता मुनिश्री के कवि की उस निर्विकल्प उदात्तता की परिचायिका है । पूर्णतः जिससे वह शक्कर की मक्खी की वृत्ति से मांसल सघनी श्रृंगार में भी पूर्णतः अनासक्त रहकर अन्ततः शान्त में ही समाहित हुआ है ।

'वीरोदय' काव्य अपनी दार्शनिक भूमिका की दृष्टि से आचार्य उमास्वाति के 'तत्वार्थ सूत्र' का प्रासंगिक पुनर्मूल्यांकन-काव्य होने के साथ ही जैन-धर्म दर्शन का आकर काव्य-ग्रन्थ भी बन गया है। इस जीवन चरितात्मक काव्य कृति को हम एक ऐतिहासिक काव्य कृति भी कह सकते हैं ; क्योंकि इसमें वर्णित घटनाओं का सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक व्यक्ति (वीर भगवान्) से है, किसी कल्पित नायक से नहीं । उसके लिए यदि हम एक अधुनातन प्रचलित शब्द का व्यवहार करें, तो इसे हम एक ऐतिहासिक अथवा युग-विशेषता का महाकाव्य (पीरियड एपिक) कहेंगे।

डॉ. श्रीरंजनसूरि देव
पी.एन.सिन्हा कॉलोनी
भिखनापहाडी, पटना

❑ ❑ ❑

वीरोदय में प्रतिपादित सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था

डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन

आध्यात्मिक गुरू का जैसा स्वरूप है, वैसा ही आचार्य ज्ञानसागरजी का स्वरूप था ।

विषयाशा के नहीं वशी जो निष्कांक्षित तप तपते हैं,
समस्त परिग्रह त्याग सदा जो निरारम्भ हो रहते हैं ।
ज्ञान ध्यान में लीन सदा जो परम् दिगम्बर वेश धरें,
वे ही वन्दनीय सच्चे गुरु वही हमारे ताप हरे ।।

''उनका चित्र उनके इसी स्वरूप का दिग्दर्शन कराता है ।

आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अन्य आचार्यों का अनुकरण करते हुए बतलाया है कि यह दृश्यमान लोक निश्चय से ही अकृत्रिम है । इसके लिए कोई नियन्ता की आवश्यकता नहीं है । सर्वत्र स्वाभाविक ही परिणमन होता है । समग्र दृष्टि से देखने पर यह लोक अनादि-अनन्त है, शाश्वत है । किन्तु समयभावी प्रति द्रव्यगत पर्यायों से देखें तो लोक सान्त और अशाश्वत भी है ।[1]

यह युग दो प्रकार का है

अवसर्पण अर्थात् पतनशील युग और उत्सर्पण अर्थात् अभ्युदय युग । प्रत्येक युग के सुखमासुखमा आदि छः-छः- भेद हैं । इनमें प्रथम तीन कालों में भोगों की प्रधानता रहती है और कल्पवृक्षों से सभी की आवश्यकताएं पूर्ण होती रहती हैं । इस अवसर्पिणी काल के आदि में युगल जन्म लेने वाले जीवों का चार कोडा-कोडी सागरोपम का प्रथम काल, तीन कोडा-कोडी सागरोपम का दूसरा काल होता है जिसे आचार्य श्री ने सतयुग नाम से अभिहित किया गया है ।[2] इस समय तक किसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि सभी युगल अंगूठा चूसते-चुसते सात सप्ताह में युवा होते थे, दम्पत्ति बनकर भोगोपभोग में लीन रहते थे और अन्ततः एक युगल को जन्म देकर स्वर्गस्थ हो जाते थे । इस प्रकार सामाजिक समता विद्यमान थी अर्थात् तब स्वामी-नौकर, श्रम-पूंजी, रात्रि-दिन, गर्मी-सर्दी आदि समस्याएं ही नहीं थी तथा परधनहरण, परस्त्रीहरण का भी अभाव था, अर्जन-संरक्षण, परिवर्धन की आवश्यकता नहीं थी, न कोई राजा था न प्रजा । सभी स्वतन्त्र थे, यह एक सामाजिक साम्यवाद प्रचलन में था, जिससे उनकी सामाजिक राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि किसी भी तरह की अव्यवस्थाओं का सर्वथा अभाव था । किन्तु तीसरे काल में जिसे आचार्य श्री त्रेतायुग नाम से अभिहित किया गया है ।[2]

1. वीरोदय 18/2 2. वही 18/9

जिसे आचार्य श्री ने "त्रेतायुग" कहकर पुकारा है[1], में कल्पवृक्षों की फलदायी शक्ति संकुचित होते जाने के कारण ईर्ष्या-द्वेष आदि पनपने के कारण उसके समाधान के लिए क्रमशः चौदह कुलकर[2] होते हैं। आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से इन्हें चौदह आर्थिक विकास की अवस्थाएं कहा जा सकता है, जो कार्लमार्क्स, कोलिन क्लार्क, जी. एस. मिल तथा W. W. रोस्टोव द्वारा प्रतिपादित आ. वि. की अवस्थाओं से भिन्न हैं। अन्तिम कुलकर नाभिराज के पुत्र ऋषभदेव ने समाज की कलहपूर्ण स्थिति को देखकर उन्हें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों में उनके कार्यों के आधार पर विभाजन किया [3] न कि जन्म के आधार पर। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात हुआ और ऋषभदेव को स्रष्टा, जगतविधाता ब्रह्मा कहा गया।[4] ऋषभदेव ने ही असि, मषि आदि षट्कर्मों की व्यावहारिक शिक्षा दी तथा लोकोपकारी अनेक शास्त्रों की रचना कर योग व क्षेम सिखाया।[5] ऐतिहासिक परम्परा का निर्वाह करते हुए आचार्य श्री ने बतलाया कि ऋषभदेव के पुत्र भरत ने ब्राह्मण वर्ण की रचना की थी[6] इनके अनुसार दसवें तीर्थंकर काल तक तो जातिगत भेदभाव पैदा नहीं हुआ था, किन्तु इनके बाद ही इनमें जातिगत भेदभाव पैदा हुआ और वे धर्मविमुख हो इच्छित क्रियाकाण्ड में लग गए।[7]

दसवें तीर्थंकर के बाद उत्पन्न हुआ सामाजिक अव्यवस्था एवं जातिगत भेदभाव बीसवें तीर्थंकर के काल तक अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुंचा। इसका प्रमाण काव्यकार ने नारद और पर्वत के विवाद का दिया है।[8] इससे सिद्ध होता है कि समाज में तभी से विभाजन हुआ और एक पक्ष हिंसा को धर्म और दूसरा पक्ष अहिंसा को धर्म मानने लगा। यज्ञों में पशुओं को होम देने की परम्परा तभी से शुरू हुई जो तीर्थंकर महावीर के काल तक विद्यमान रही। यद्यपि उपनिषत्काल में उनके रचियता आचार्यों के द्वारा का हिंसापरक मंत्रों के विषय में तर्क-वितर्क हुआ और उन्होंने मंत्रों का अहिंसापरक अर्थ किया परन्तु उसे कोई प्रसिद्धि नहीं मिल सकी।[9] आचार्य श्री ने स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रशंसा की है कि उन्होंने हिंसा को अप्रशस्त कार्य बतलाते हुये आर्यजनों से अहिंसक धर्माचरण करने की अपेक्षा की।[10]

जैन समाज में अव्यवस्था का सूत्रपात

जैन समाज में दिगम्बर और श्वेताम्बर का भेद भगवान् महावीर के शासन में भद्रबाहु के समय में उत्पन्न हुआ जब स्थूलि भद्र मुनि ने नग्नता के स्थान पर वस्त्र धारण और वनवास के स्थान पर नगर-वास को प्रमुखता प्रदान की।[11]

पुनः स्थूलभद्र के 500 वर्ष बाद उत्पन्न देवार्द्धिगणी ने द्वादशांगों की रचना कर श्वेताम्बर आम्नाय की पुष्टि कर दी।[12] आचार्य श्री ने बतलाया है कि समय बीतने के साथ-साथ दिगम्बरों में भी शिथिलता आती गई।[13] मौर्यवंश राजाओं के पश्चात् यह सारा देश एकमात्र कलह का स्थान बन गया - ऐसी आचार्यश्री की मान्यता है। विक्रमादित्य के शासनकाल में जैनों ने वैदिक-क्रिया काण्ड को अपना लिया और वे अग्नि की उपासना करने लगे, यज्ञादि में व्यन्तरादिक देवों की पूजा होने लगी तथा गर्भसे लेकर मत्यु तक के विभिन्न संस्कार इनकी सामाजिक व्यवस्था के अंग बन गए।[14] वस्तुतः आचार्य श्री की बात वर्तमानकाल में स्पष्ट देखने में आ रही है। वैदिकजनों ने संभवतः प्रत्युपकार में यज्ञों में पशुओं की बलि देना बन्द कर अहिंसामय धर्म को परम् स्थान प्रदान किया।[15] और यहीं से प्रारम्भ हुआ- जाति-उपजातियों के प्रादुर्भाव का दुराग्रह। काव्यकार ने बतलाया कि गृहस्थ श्रावकों और श्रमणों में गण, गच्छ आदि के भेदों के प्रति दुराग्रह होने के कारण पारस्परिक ईर्ष्या-विद्वेष और कलह को स्थान मिला। आखिर आचार्यश्री ज्ञानसागरजी को कहना पड़ा कि क्षत्रिय द्वारा धारण किया जाने वाला जैनधर्म आज वैश्यों के हाथ में आकर व्यापार का आश्रय बन गया।[16] जिसके बेचने में विक्रेता को कोई पूंजी नहीं लगाना पड़ती। बाजार में वस्तु विक्रेता प्रथम पूंजी लगाकर सामान एकत्रित कर अपनी दुकान सजाता है और जब धन प्राप्ति के बदले में ठोस वस्तु को देता है। किन्तु काव्यकार ने आधुनिक स्थिति पर कटाक्ष किया है कि जैनधर्म के व्यापारी बिना पूंजी लगाए और बिना कोई ठोस वस्तु दिये धर्म का विक्रय कर आय प्राप्त करते हैं। उन्होंने कहा कि अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् दुकान लगाना जिनका कार्य है और अन्यों से निरालापन प्रकट कर अपनी उपयोगिता को सिद्ध करना जिनका धर्म है, ऐसे वैश्यों के हाथों में आकर यह धर्म अनेक भेदों में विभक्त हो गया तो क्या आश्चर्य है।[17] "इससे स्पष्ट होता है कि आज कोई बीसपंथ बेचता है तो कोई तेरापंथ - अर्थात् जैसा ग्राहक/श्रोता होता है, वैसा ही धर्म को बदल कर बेचता है। काव्यकार ने इसे मक्षिका-वृत्ति कहा

1. वही 18/10
2. वही 18/11
3. वही 18/13
4. वही 18/15,
5. वही 18/14-15
6. वही 18/46-47
7. वही 18/48
8. वही 18/50,
9. वही 18/56,
10. वही 18/57,
11. वही 22/3-5,
12. वही 22/6-7,
13. वही 22/9-10,
14. वही 22/16-17,
15. वही
16. वही 22/26
17. वही 22/27

है[1] अर्थात् जैसे मक्खी भोजन के साथ मुख में आकर स्वयं तो मृत्यु को प्राप्त होती है पर साथ में भोजन का भी वमन करा देती है। वैसी ही वृत्ति अनेक लोगों की हो गई है। फिर भी आचार्य श्री के कथन में एक आशावादिता झलकती है जब वह कहते हैं इतना सब कुछ होने पर भी आज भी भगवान् महावीर के सच्चे अनुयायी पाए जाते हैं जो जितेन्द्रिय हैं और जिनका जीवन दूसरों के लिए दुःखदायी नहीं है प्रत्युत सर्वकल्याणकारी है[2] इससे स्पष्ट होता है कि आचार्यश्री वर्तमानकालीन सामाजिक अव्यवस्था से पीड़ित थे और जैनधर्म का ह्रास भी देख रहे थे फिर भी उन्होंने अपने जीवन में कभी भी श्रमणमार्ग पर आक्षेप नहीं लगने दिया। वे स्वयं आगमोक्तमार्ग पर चलते थे तथा दबंगता, निर्भयता और सिंहवृत्ति उनके आचार-विचार का परिचायक था।

विवाह संस्था

वीरोदय के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय का दाम्पत्य जीवन सुखमय था। मनुष्य दीनतारहित गम्भीर स्वभावी तथा स्त्रियां निर्मल चारित्र वाली होती थीं। (2/37)।

फिर भी तत्कालीन समाज में बेडोल विवाह होते थे (2/17, 19)। इससे स्पष्ट होता है कि विवाह में ऊंच-नीच, गरीब-अमीर का भेदभाव नहीं था। अन्य पौराणिक ग्रन्थों से भी इसकी प्रमाणिकता सिद्ध होती है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों से पारस्परिक विवाह सम्बन्ध होते थे, वे जैनधर्मावलम्बी ही हों। इस कथन से यह भी सिद्ध होता है कि तब दहेज आदि जैसी कोई समस्याएं नहीं थीं। केवल लड़की की योग्यता सुन्दरता देखी जाती थी और उस लड़की को वह परिवार स्वयं मांग लेता था।

वर्णव्यवस्था

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि भगवान् ऋषभदेव ने तीन और उनके पुत्र भरत ने एक इस प्रकार चतुर्वर्ण की स्थापना उनके कार्यों के आधार पर की गई थी, न कि जन्म के आधार पर। किन्तु कालान्तर में वह व्यवस्था जन्म पर आधारित हो गई। आ. जिनसेन ने भी कहा है कि -"जाति नामकर्म के उदय से मानवजाति एक है तथापि आजीविका के भेद से वह चार प्रकार की है?[3] आ. ज्ञानसागर जी भी कहते हैं कि पाप को छोड़कर ही मनुष्य पवित्र कहलाता है स्वर्ण की तरह, इसलिए पाप से घृणा करना चाहिए न कि पापियों से[4]

जैनधर्म के अनुसार कोई भी प्राणी सम्यग्दर्शन रूपी आत्मधर्म को प्राप्त कर सकता है। उसके प्राप्त करने में कोई जाति या उपजाति बन्धन रूप नहीं है। इसलिए जैनधर्म में "कर्मणा महान है, जन्मना नहीं" इस सिद्धान्त को महत्त्व दिया गया है। महानता किसी जाति की बपौती नहीं है क्योंकि उच्चकुलीन राजपुत्र भी कर्मणा निम्न होने से नरक गए हैं और चाण्डाल जैसे निम्नकुलीन कर्मणा महान होने से देवों द्वारा भी पूज्यता को प्राप्त हुए हैं। आ. श्री ने स्वयं कहा है कि मांसभक्षी अर्थात असदाचारी ब्राह्मण निंद्य है और सदाचारी शूद्र वंद्य है[5]

इसलिए जाति का या कुल का गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि जाति कुलादिक सभी शरीराश्रित हैं, अतः विनाशीक हैं। स्पष्ट है कि भले ही जैन जाति /कुल में जन्मा हो परन्तु अभक्ष्य भक्षण करता हो तो उसे नाम से भी जैन नहीं कहना चाहिए क्योंकि जैन तो धर्म है न कि जाति है।

सत्तरहवें अध्याय में आचार्यश्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अनेक उद्धरणों को प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया है है कि मानव जाति एक है अतः इसका अहंकार निन्दनीय है। उच्चकुल में जन्म लेने वाले नीचकर्म करते हुए इतिहास में पाए जाते हैं जैसे चारूदत्त, दशानन, विद्युच्चौर, राजमुनि आदि और नीचकुलोत्पन्न महान कार्य करते हुए पाए जाते हैं जैसे चाण्डाल, भील एकलव्य, सुदृष्टि सुनार, कुत्ता आदि। अतः आचार्यश्री का कहना है कि -जाति, कुल और धनादिक का अहंकार कभी नहीं करना चाहिए और निजात्मा को जीतना चाहिए[6] उच्चकुलोत्पन्न के अभिमान से जो दूसरों का तिरस्कार करता है वह धर्म से अज्ञ है क्योंकि जैन धर्म के अनुसार सभी जीव केवलज्ञान की शक्ति से निष्पन्न हैं[7] संभवतः आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने यह अध्याय तत्कालीन समाज में व्याप्त जातिगत अहंकार को ध्यान में रखकर ही लिखा हो। परन्तु जिस जातिगत भेदभाव को कम करने के उद्देश्य से यह अध्याय लिखा गया इस उद्देश्य की पूर्ति किंचित्मात्र भी पूरी नहीं हुई बल्कि यह भेदभाव बढ़ा ही है। आज

1. वही 22/30, 2. वही 22/28, 3. महापुराण 38/45-46 4. वीरोदय 17/7
5. वही 17/17 6. वही 17/45 7. वही 17/25

की सामाजिक स्थिति में यह विचारणीय है कि यदि जातिगत भेदभाव समाप्त नहीं किया गया तो आज से भी अधिक-भयंकर स्थितियों का सामना करना पड़ सकता है । अतः जैन समाज को जातिगत भेदभाव त्यागकर अखंड सूत्र बंधने का उपाय करना खोजना चाहिए ।

"वीरोदय" में आर्थिक व्यवस्था

वीरोदय महाकाव्य के अध्ययन से तत्कालीन अर्थव्यवस्था का कोई अधिक विशद परिचय तो नहीं मिलता है किन्तु इतना अवश्य पता चलता है कि तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ विकसित और परिपक्व थी । भगवान् ऋषभदेव ने जो षटकर्मों की शिक्षा अपने काल में दी थी, वह इस काल तक न केवल अत्यन्त विस्तार को बल्कि अत्यन्त गहनता को प्राप्त हो चुकी थी । वीरोदय में निम्न बातों का पता चलता है ।

देश

आ. ज्ञानसागरजी महाराज ने तीन प्रकार के देशों का उल्लेख किया है - प्रथम, अनूपदेश अर्थात जहां जल वृक्षों आदि की बहुलता होती है ऐसे देश; दूसरा मरूदेश अर्थात जहां जल वृक्ष आदि की कमी होती है ऐसे देश तथा तीसरा साधारण देश जहां जल वृक्षादि का हीनाधिकपना पाया जाता है ।[1]

नगर व ग्राम

उस समय आकाश को स्पर्श करने वाले रमणीक प्रासाद से युक्त अनेक नगर व ग्राम थे जो स्वर्गलोक की उपमा धारण करते थे ।[2] रात्रि में उन नगरों की शोभा देखने के लिए स्वयं लक्ष्मी अपने परिवार के साथ आती थी और उस शोभा को देखकर लक्ष्मी का अहंकार दूर हो जाता था ।[3] इस कथन से उन नगरों की रमणीकता का कथन स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है । उन नगरों व ग्रामों में स्वच्छ जल व कमलों से सुशोभित तालाब थे, कल्पवृक्षों के समान विविध फलदायी वृक्षों से युक्त वन-उपवन थे ।[4] इससे तत्कालीन आर्थिक समृद्धि का पता चलता है ? वीरोदय में अनेक ग्रामों का भी नामोल्लेख हुआ है जैसे-कुण्डनपुर[5], गोबरग्राम[6], कोल्लग[7], मौर्य[8], मिथिला[9], कौशलपुरी[10], तुंगिक[11], राजगृह[12] आदि ।

बाजार

वीरोदय से ज्ञात होता है कि उस समय के बाजार अत्यन्त वैभव से युक्त श्रीमान्, अत्यन्त चौड़ी सड़क वाले असंकीर्ण, विविध पदार्थों से भरे हुए (पदप्रणीति) और बहुमूल्य वस्त्रादि वस्तुओं से सुसज्जित होते थे ।[13] आचार्य ने "निष्कपट[14]" शब्द का प्रयोग किया है । इसका अर्थ जहां निष्क+पट अर्थात बहुमूल्य वस्त्र होता है, वहां इसका तात्पर्य निः+कपट अर्थात् असत्य माया छला आदि से रहित भी होता है । इससे सिद्ध होता है कि वहां के बाजार बहुमूल्य पदार्थों से तो परिपूर्ण होते थे तथा वहां किसी भी प्रकार की बेईमानी, मायाचार, धोखाधड़ी आदि भी नहीं थी । क्रेता और विक्रेता मध्य विश्वास की एक मजबूत कड़ी थी । तुला[15] अर्थात् तराजू का भी उल्लेख आया है । इससे पता चलता है कि वस्तुएं तौल कर बेची जाती थी किन्तु उनके साधन अर्थात् बांट क्या थे इसका पता नहीं चलता । वस्त्र को मापने के साधन का उल्लेख नहीं है फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि कोई एक प्रामाणिक माप का साधन अवश्य ही रहा होगा । हाथों की लम्बाई से वस्त्रादि का विक्रय संभव नहीं है क्योंकि कद के हिसाब से व्यक्ति के हाथ लम्बे-छोटे भी हो सकते हैं ।

मार्ग

राज्यान्तर्गत विभिन्न नगरों व ग्रामों में आने-जाने के मार्ग अत्यन्त विकसित और सुरक्षित थे ऐसा वीरोदय के अध्ययन से ज्ञात होता है । उन मार्गों के दोनों ओर फल-फूल से युक्त वृक्ष थे जो यात्रियों को न केवल ग्रीष्मकाल में सुखद छाया प्रदान करते थे बल्कि क्षुधा की बाधा भी दूर करते थे । स्थान-स्थान पर प्रपा अर्थात् प्याऊ थीं जिससे तृषा की बाधा भी यात्रियों को नहीं होती थी तथा मार्ग के सभी तरफ दूर-दूर तक धान्यादि से भरे हरे-हरे खेत दृष्टिगोचर होते थे ।[16] यात्रियों की ऐसे सुखद और सुरम्य वातावरण वाले मार्गों पर निर्बाध और सहज यात्रा होती थी । कहीं-कहीं वापिकाएं भी थीं जो न केवल खेतों में सिंचाई के काम में आती थी अपितु यात्रियों के स्नान करने, पानी आदि के लिए भी उपयोगी थी ।[17]

---

1. वही 3/31, 2. वही 2/10, 3. वही 2/42 4. वही 2/10,
5. वही 2/21, 6. वही 14/4, 7. वही 14/5, 6, 8. वही 14/7
9. वही 14/9 10. वही 14/10, 11. वही 14/11 12. वही 14/12
13. वही 2/26 14. वही 2/26 15. वही 5/25 16. वही 2/6, 18, 19
17. वही 2/45

धातु व मुद्रा

"रसैः सुवर्णत्वमुपेत्यथाय:[1]" इस कथन से प्रतीत होता है कि तत्कालीन लोग रसायन द्वारा लोहा को स्वर्ण बनाने की कला से परिचित थे । वीरोदय में मुद्रा के प्रचलन का पता तो नहीं लगता है किन्तु आचार्य ने निष्क[2] शब्द का प्रयोग किया है । वस्तुत: महावीरकाल में निष्क नामकी एक मुद्रा प्रचलन में थी । अष्टाध्यायी[3], जातकों[4] व स्मृतियों[5] से यह और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है । शब्दानुशासन[6] और महाभारत[7] में सौ निष्क व सहस्र निष्क वाली सम्पत्ति का विवरण आया है । फुटकर सिक्कों के रूप में अर्धनिष्क, व पावनिष्क का भी अस्तित्व था । वीरोदय में सुवर्ण[8] व तत्वार्थसूत्र[9] में सुवर्ण व हिरण्य शब्दों का प्रयोग हुआ है । वास्तव में स्वर्णधातु का पिण्ड हिरण्य कहलाता है[10] और जब उसके सिक्के ढाल लिए जाते हैं तब वह "सुवर्ण कहलाता है । अत: सुवर्ण "धातु की संज्ञा नहीं है बल्कि सोने के सिक्के का नाम है जो 16 माष - 80 रत्ती वजन का होता था ।

पशुपालन

समाज में लोग गाएं, बैल, बकरा, भैंस एवं घोड़ा आदि पशुओं का पालन करते थे । जहां बैल, घोड़ा आदि यात्रा व माल ढोने के काम में लाए जाते थे वहां गाएँ व भैंस आदि दूध, दही, घी आदि की पूर्ति के साधन थे । गाएं यथेच्छ दूध प्रदान करती थी, अत: उन्हें वीरोदय में कामधेनु की संज्ञा प्रदान की गई है ।[11] गाएं भैंस आदि चांदनी की ज्यों दूध की वर्षा करती थीं[12] - इससे स्पष्ट होता है कि तब श्वेत-क्रान्ति हो चुकी थी । पशुपालक उन पशुओं को हरा चारा और खल खिलाते थे[13] जो दुग्धवर्धक होता था और वाहनयोग्य पशुओं को स्वस्थ और मजबूत बनाता था ।

उत्पादन

तब भोगोपभोग पदार्थों का प्रचुर मात्रा में निर्माण किया जाता था । कृषि के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की उपज प्राप्त की जाती थी । इसके लिए आचार्यश्री ने अनेकधान्येषु[15], शस्यमुत्पादयत्[16], नूतनधान्य[17], धान्यस्थली[18] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। सिंचाई के साधनों का उल्लेख तो नहीं किया किन्तु सरस[19] और वापी[20] शब्द का प्रयोग किया है । इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि खेतों में सिंचाई का कार्य इन्हीं तालाबों और वापिकाओं के माध्यम से किया जाता रहा हो। बहुमूल्य वस्त्राभूषणों का निर्माण भी किया जाता था ।[21] जिसे धारण कर स्त्री-पुरुष पति-कामदेव को भी लज्जित करते थे ।

इस प्रकार वीरोदय में वर्णित अर्थव्यवस्था अत्यन्त सुविकसित और सुदृढ़ थी । आर्थिक समस्याओं का अभाव था, श्रम व पूंजी के बीच कोई संघर्ष नहीं था । श्रमिकों को अपने श्रम का प्रतिफल प्राप्त होता था और पूंजीपति व उद्योगपति भी उनके हितों का ध्यान रखते थे । अतएव दोनों एक-दूसरे से सन्तुष्ट थे । गृहस्थ अपने गृहस्थाचारों का पूर्णतया निर्वाह करते थे । समाज सुखी समृद्ध और धर्मानुरागी था ।

डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन
बड़ौत

❑ ❑ ❑

1.. वही 1/11 2. वही 2/26 3. अष्टाध्यायी 5/2/119, 4. जातक कुल्क 1/491, 6/601, 4/298
5. मनुस्मृति 8/134, 137 6. शब्दानुशासन 6/4/144, 7/2/57 7. महभारत, अनुशासन पर्व 13/43, द्रोणपर्व 67/8,
8. वही 1/11, 9. तत्वा. 10. संस्कृत शब्दार्थ कोष्ठ म. पृ. 13/331. 11. वही 1/17
12. वही 2/20 13. वही 1/17 14. वही 2/44 परार्थनिष्ठामपि भावयन्ती रसस्थितिं कामपि नाटयन्ती ।
कोषैकवांछामनुसन्दधावा वेश्यापि भाषेव कवीश्वराणाम् ॥
15. वही 1/19, 16. वही 2/6,
17. वही 2/11, 18. वही 2/13,
19. वही 2/10, 20. वही 2/4521. वही 1/19, 1/24, 1/27, 2/31

वीरोदय में प्रतिपादित सामाजिक जीवन एवं संस्कृति

डॉ. किरण टण्डन

राजस्थान प्रान्त के राणौली नामक ग्राम को अपने जन्म से गौरवान्वित करने वाले, जैन धर्म-दर्शन के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, स्वाध्याय-चिन्तन-मननपूर्वक संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले आचार्य महाकवि ज्ञानसागर बीसवीं शताब्दी के साहित्यकार हैं । उन्होंने संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में लगभग 24 ग्रन्थों की संरचना की है, जिनमें से जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, समुद्रदत्त चरित्र, दयोदयचम्पू तथा मुनिमनोरंजनशतक उनकी प्रमुख संस्कृत काव्यकृतियाँ हैं ।

जैनियों के चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के ब्रह्मचर्य, त्याग एवं तप से युक्त दिव्य जीवन को आधार बनाकर कवि ज्ञानसागर ने वीरोदय महाकाव्य का प्रणयन किया है । कवि ने बाईस सर्ग के इस महाकाव्य में भगवान् महावीर के जन्म, उनके 33 पूर्वजन्म, उनके उपदेश एवं समाधि का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है । यह महाकाव्य साहित्य एवं दर्शन से सम्बद्ध होने के कारण तदनुकूल ही समाज एवं संस्कृति को प्रतिबिम्बित करता है ।

समाज में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति समाज से प्रभावित होता है, कवि भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रह पाता । वह देखता है कि समाज की कुछ रीतियाँ, रूढ़ियाँ अनुकूल हैं और कुछ प्रतिकूल; कुछ बातें अनुकरणीय है; और कुछ त्याज्य; कुछ मान्य है और कुछ केवल ढोंग । फलस्वरूप वह अपनी साहित्यसर्जना के माध्यम से अनुकूल, मान्य एवं अनुकरणीय आदर्शों से युक्त समाज एवं संस्कृति को प्रश्रय देता है और प्रतिकूल, त्याज्य एवं ढोंगस्वरूपिणी कुरीतियों को समाज से बहिष्कृत करने का उपदेश देता है । इस सन्दर्भ में वीरोदय के आलोक में महाकवि ज्ञानसागर द्वारा प्रतिपादित समाज एवं संस्कृति की कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत हैं -

वीरोदय के परिशीलन से ज्ञात होता है कि महाकवि ज्ञानसागर को ऐसा समाज प्रिय है जिसके लोगों को धर्म एवं मानवता के प्रति आस्था हो तथा भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व अधिकाधिक मात्रा में हों । मुनियों का कर्त्तव्य लोगों में धर्म के प्रति चेतना लाना हो, शासक प्रजारंजन करते हुए राज्य करे, वणिग्जन अर्थव्यवस्था को संभाले, सेवक उपर्युक्त तीनों श्रेणियों के लोगों की सेवा करें । स्पष्ट है कि श्री ज्ञानसागर भारत में प्रचलित वर्णव्यवस्था को मानते हैं ।[1] परन्तु वह वर्णव्यवस्था को जन्म के अनुसार नहीं, वरन् कर्मों के अनुसार मानते हैं । इसीलिए उन्होंने ब्राह्मणों के कुछ आवश्यक लक्षण बताएं हैं, जो इस प्रकार हैं -

ब्राह्मण को सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करना चाहिए तपश्चरण, इन्द्रियसंयम, शोकराहित्य में उसकी प्रवृत्ति होनी चाहिए, उसे छल-प्रपंच से सर्वथा दूर रहना चाहिए; उसमें शान्ति, संयम और शुद्धता की अधिकता होनी चाहिए, प्राणिमात्र के प्रति दया होनी चाहिए; उसे आत्म-चिन्तन करना चाहिए; और परनिन्दा से दूर रहना चाहिए । निस्पृह मन, वचन और काय से शुद्ध अद्वैतभाव की प्राप्ति, रात्रिभोजन का परित्याग करने वाला, एक समय खाने वाला, निर्जन्तुक जल को पीने वाला पुरुष ही ब्राह्मण कहलाता है । समाज में जिन्हें ब्राह्मण कहा जाता है वे ब्राह्मण नहीं है, वास्तविक ब्राह्मण तो उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न रहने वाला व्यक्ति ही होता है ।[2]

वीरोदय के माध्यम से माता-पिता, गुरू एवं जिनेन्द्र देव के प्रति भक्तिभाव का वर्णन भी आचार्य ज्ञानसागर जी ने किया है । फलस्वरूप समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उपदेश दिया है कि वह अपने से बड़ों का एवं दिव्यविभूतियों का आदर करे । यथा-वीरोदय महाकाव्य के नायक भगवान महावीर ब्रह्मचर्य व्रत को अङ्गीकृत करने की इच्छा से पिता के द्वारा प्रस्तुत विवाह के प्रस्ताव को जिस विनम्रता से अस्वीकृत कर देते हैं, वह विनम्रता प्रत्येक भारतीय पुत्र के लिए अनुकरणीय है ।[3]

---

1. वीक्ष्येदृशीमङ्गभृतामवस्थां तेषां महात्मा कृतवान् व्यवस्थाम् ।
   विभज्य तान् क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-भेदेन मेधा-सरितां समुद्रः ॥
   यस्यानुकम्पा हृदि तूदियाय स शिल्पकल्पं वृषलोत्सवाय ।
   निगद्य विड्भ्यः कृषिकर्म चार्यमहार्थशास्त्रं नृपसंस्तवाय ॥

   - वीरोदय, 18/13-14

2. वही, 14/35-43

3. वही 8/23, 28-45

काव्य के प्रारम्भ में कवि ने गुरु के अनुग्रह की चर्चा करते हुए, प्रत्येक व्यक्ति को गुरू के प्रति कृतज्ञतापूर्वक आदरभाव धारण करने का उपदेश दिया है -

ज्ञानेन चानन्दमुपाश्रयन्तश्चरन्ति ये ब्रह्मपथे सजन्तः ।
तेषा गुरूणां सदनुग्रहोऽपि कवित्वशक्तौ मम विघ्नलोपी ।।

- वीरोदय, 1/6

प्रस्तुत महाकाव्य में ज्ञानसागर ने भगवान् महावीर को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है तथा ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी जिनेन्द्र देव की स्तुति की है । ये दोनों ही बातें जिनेन्द्रदेव के प्रति महाकवि की दृढ़भक्ति एवं श्रद्धा की परिचायक हैं । महाकवि का यह भक्तिभाव सूचित करता है कि वह समाज में भगवान् जिनेन्द्र देव एवं जैनधर्म के प्रति आस्था भाव को मान्यता देना चाहते हैं ।[1] भगवान् जिनेन्द्रदेव की मूर्त्तियों एवं जिनालयों पर भी कवि की आस्था स्पष्ट है ।[2]

कवि ने इन्द्राणी, श्री, ह्री, आदि देवियों एवं इन्द्र, कुबेर आदि देवगणों की भी सत्ता स्वीकार की है । जिस प्रकार सनातन धर्म वाले इन देव देवियों को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के शासन में स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार कवि ने अपनी परम्परानुसार इन देव-देवियों को जिनेन्द्रदेव का सेवक बताया है ।[3]

इस प्रकार इस महाकाव्य में देवियों द्वारा वर्धमान की माता प्रियकारिणी की सेवा[4] सौधर्मेन्द्र द्वारा भगवान् का जन्माभिषेक[5] कुबेर तथा इन्द्र द्वारा समवशरणमण्डप का निर्माण[6] आदि घटनाएं देवों और मानवों को एकसूत्र में बांधने का अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयास प्रस्तुत करती हैं और सूचित करती हैं कि महापुरुष अपनी विशेषताओं से मानवरूप में उत्पन्न होकर भी देववन्द्य हो जाता है । इसके अतिरिक्त देवियों द्वारा गर्भवती माता की सेवा इस भारतीय सांस्कृतिक मान्यता को पुष्ट करती है कि गर्भिणी माता को सब प्रकार से प्रसन्न रखा जाना चाहिए ।

भारतीय संस्कृति के सोलहसंस्कारों पर उनकी आस्था है । उनके अनुसार नामकरण, विद्यारम्भ, विवाह इत्यादि संस्कार उचित समय पर ही होने चाहिए ।[7] स्वप्नदर्शन के प्रति भी महाकवि ज्ञानसागर जी की सांस्कृतिक आस्था है । हमारी भारतीय संस्कृति के अनुसार महापुरुष के जन्म के पूर्व कुछ शुभ संकेत प्रकट होते हैं । महापुरुष की माता को सार्थक स्वप्न भी दिखाई देते हैं । तदनुसार तीर्थङ्कर की माता को जन्म से पूर्व सोलह स्वप्न दिखाई देते हैं, जो उत्पन्न होने वाले पुत्र की विशेषताओं का स्पष्ट संकेत देते हैं ।[8]

महाकवि ज्ञानसागर का पुनर्जन्म एवं कर्मफल में सुदृढ़ विश्वास है । उनके अनुसार व्यक्ति को पूर्वजन्म में अपने द्वारा किए गए कर्मों का फल दूसरे जन्म में भोगना ही पड़ता है । भगवान् महावीर बनने से पहले वर्धमान के तैंतीस जन्मों का वर्णन इसी मान्यता का प्रतीक है ।[9]

महाकवि ज्ञानसागर ने भारतीय संस्कृति में मान्य पुरुषार्थचतुष्टय के सेवन एवं वर्णचतुष्टय की मान्यता को भी वीरोदय के माध्यम से समर्थन दिया है ।

त्रिवर्गभावात्प्रतिपत्तिसारः
स्वयं चतुर्वणविधिं चकार ।
जनोऽपवर्गस्थितये भवेऽदः
स नाऽनभिज्ञत्वममुष्य वेद ।।

- वीरोदय, 3/9

आचार्य ज्ञानसागर की अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों के प्रति विशेष आस्था है । वीरोदय के माध्यम से उन्होंने अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य नामक दो महाव्रतों को वीरोदय के माध्यम से अपनाने का सन्देश दिया है ।[10]

---

1. वही, 1/1-5 2. वही, 2/33-36 3. वही, पंचमसर्ग तथा सप्तम सर्ग
4. वही, पंचम सर्ग 5. वही, 8/1-6, 22 6. वही, 4/27, 40-6 ।
7. वही, एकादश सर्ग सम्पूर्ण । 8. वही, सप्तम सर्ग 9. वही, 13/1-24 10. वही 8/38, 43;15/53, 56-61, 63;16/11-30

भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान् महाकवि ज्ञानसागर ने कर्मकाण्ड में की जाने वाली हिंसा की कठोर निन्दा की है और "अजैर्यष्टव्यम्" इत्यादि वेदवाक्यों का सुसंस्कृत एवं अहिंसापरक भावार्थ समझाने का प्रयत्न किया है । उनकी दृष्टि में "अजैर्यष्टव्यम्" इस वेदवाक्य का तात्पर्य - "बकरों से यज्ञ-क्रिया का सम्पादन करना चाहिए-ऐसा नहीं है, अपितु इस वाक्य का तात्पर्य है - "न उगने योग्य पुराने धान्य से यज्ञ करना चाहिए ।[1] इसी प्रकार श्राद्ध, तर्पण आदि कर्मकाण्डीय क्रियाओं का भी जैनधर्म में कोई स्थान नहीं है । वीरोदय के अनुसार आचार्य श्री ज्ञानसागर जी इन क्रियाओं को पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्धि का साधन नहीं मानते ।[2]

भारत की सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार वर्षा ऋतु में मुख्य रूप से श्रावण में स्त्रियों के झूला झूलने का विधान है। वीरोदय महाकाव्य में भी इस परम्परा का प्रतिपादन हुआ है ।[3] इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में पतंगक्रीड़ा द्वारा मनोरंजन का वर्णन भी इस काव्य में उपलब्ध होता है ।[4]

इस महाकाव्य के माध्यम से धर्मावलम्बी गृहस्थों के विषय में विशेष व्यवहार की कुछ अनुकरणीय बातें कवि ने बताई हैं । तदनुसार गृहस्थ पुरुष को जीविकोपार्जन के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए ।[5] शैशवावस्था में विद्याग्रहण करके युवावस्था में धर्म का पालन करना चाहिए । उसका मन करुणा एवं निर्मल बुद्धि से युक्त होना चाहिए । परस्त्री में सद्बुद्धि रखनी चाहिए । दूसरे की सम्पत्ति में आसक्ति नहीं करनी चाहिए । वृद्ध जनों की बातों को सुनना चाहिए । अपना आचरण दूसरों के अनुकूल बनाना चाहिए ।[6] गृहस्थ पुरुष को भी जल छानकर ही पीना चाहिए ।[7] इस प्रकार छल प्रपंच से रहित होकर गृहस्थ जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करके अन्त में संन्यास ले लेना चाहिए ।[8]

सनातन धर्मावलम्बी नैयायिक लोग ईश्वर को पुरुष का भाग्यविधाता मानते हैं । किन्तु जैन धर्मावलम्बी जन ईश्वर के विषय में कुछ दूसरी ही मान्यता रखते हैं । वे ईश्वर का कर्ता होना स्वीकार नहीं करते, क्योंकि यदि ईश्वर को कर्ता माना जाय, तो मनुष्य के लिए कोई कार्य शेष ही नहीं रहेगा ।[9]

श्री ज्ञानसागर भी ईश्वर को कर्ता नहीं मानते । उनका मत है कि संसार में होने वाले परिवर्तन काल नामक द्रव्य की सहायता की अपेक्षा रखते हैं, ईश्वर कृत नियमन की नहीं ।[10]

इसी प्रकार कोई भी वस्तु न तो उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है, उसमें केवल परिवर्तन होता है । चूंकि प्रत्येक वस्तु में वस्तुत्व नाम का एक धर्म होता है अत: वह अपना कार्य करती है । बीज से वृक्ष की और वृक्ष से बीज की उत्पत्ति स्वत: होती है । अत: वस्तु के उत्पन्न होने या नष्ट होने में भी ईश्वर को कारण मानना व्यर्थ है । यदि ईश्वर का इन पदार्थों के परिणमन में प्रभाव पड़ता तो वस्तु के स्वाभाविक धर्म व्यर्थ हो जाते । अत: स्पष्ट है कि ईश्वर संसार का नियन्ता नहीं है ।[11]

इस प्रकार वीरोदय महाकाव्य के परिशीलन से यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि जैन धर्म केवल वानप्रस्थियों के लिए ही नहीं अपितु गृहस्थधर्मावलम्बियों के लिए भी उपयोगी है । महाकवि ज्ञानसागर ने इस काव्य के माध्यम से सदाचरण, आहार-विहार, अतिथिपूजन, देवपूजन, आत्मकल्याण, परोपकार, नि:स्वार्थभाव आदि की भी शिक्षा दी है ।[12] इसके साथ ही उनकी मान्यता है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होना चाहिए । तदनुसार अध्ययनरत विद्यार्थी को अध्ययन करने के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य के प्रति भी सचेत रहना चाहिए और प्रत्येक गृहस्थ व्यक्ति को आजीविकोपार्जन अवश्य ही करना चाहिए ।[13]

1. वही, 18/50-58
2. वही, 15/16
3. वही, 4/21-22
4. वही, 12/24-26
5. वही, 16/19
6. वीरोदय, 18/23-39
7. वही, 19/29
8. वही, 18/40
9. क. वीरस्तुति 6;. सर्वदर्शनसंग्रह, आर्हतदर्शन, पृ. सं. 133-134; ग. श्रावकाचार (भाग - 1) अमितगतिकृत, श्रावकाचार, 4/77-100
10. वीरोदय, 18
11. वही, 19/38-44
12. वीरोदय, 8/23-43;16/1-11
13. वही 16/18-19

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वीरोदय में प्रतिपादित समाज एवं संस्कृति पूर्णतया जैन धर्मनिष्ठ है । तदनुसार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे गुणों का आधान करते हुए, अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य पूर्वक अपने-अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। भारतीय संस्कृति में मान्य संस्कार, वर्णव्यवस्था, पुरुषार्थ चतुष्टय, आश्रमचतुष्टय, पर्व, मनोरंजन आदि को अपनाना चाहिए, किन्तु हिंसा और पाखण्ड से दूर रहना चाहिए । वीरोदय महाकाव्य में वर्णित ब्रह्मचर्य एवं अहिंसा नामक व्रत समाज के प्रत्येक व्यक्ति को प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव से युक्त होने की प्रेरणा देता है तथा जीवन को मर्यादित करने में सहायक होता है । इस प्रकार अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य का पालन करके ही व्यक्ति आत्मकल्याण करते हुए लोककल्याण भी कर सकता है । अतएव वीरोदय महाकाव्य में प्रतिपादित समाज एवं संस्कृति के सन्दर्भ में मेरा विचार है कि लोग जैन धर्म को केवल सन्यासियों के लिए निर्धारित न कर ले । यह वह धर्म है जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपनाना चाहिए, ताकि वह अपने जीवन को सुसंस्कृत एवं परिष्कृत कर सके । इसके साथ ही जैनियों ने ईश्वर को नियन्ता नहीं माना है किन्तु जिनेन्द्र देव तथा जैनधर्म के प्रति उनकी आस्था उन्हें आस्तिक सिद्ध करने में समर्थ है ।

डॉ. किरण टंडन
रीडर, संस्कृत विभाग
कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

❑❑❑

'वीरोदय' का संगीतः एक अमूर्त्त कला

डॉ. अभयप्रकाश जैन

भारतीय साहित्य, कला संगीत की यह विशेषता रही है कि वह केवल शारीरिक अनुरंजन को ही कला और संगीत का विषय न मानकर सांस्कृतिक, मानसिक और बौद्धिक विकास का ध्यान रखकर कला और संगीत का सृजन करता है । जैन साहित्य में संगीत, नाद, शब्द, अनाहत नाद के उल्लेख और उनमें शास्त्रीय आधार प्रचुर मात्रा में प्राचीन ग्रंथों जैसे संगीत समयसार, संगीतोपनिषत् सारोद्धार एवं स्फुट रूप में प्राकृत भाषा के ग्रंथों में मिलता है । भगवान् महावीर के चरित्र के यशोगान करने वाले सभी धर्मग्रंथों, बारहमासा, महाकाव्य, काव्य, चम्पूकाव्य, सभी में संगीत के तत्वों का वर्णन है । आचार्य ज्ञानसागरकृत 'वीरोदय' महाकाव्य में भी संगीत पक्ष को अनेकानेक स्थलों पर उभारा गया है पर जैन संस्कृति का लक्ष्य केवल संगीत ही नहीं बल्कि परमतत्व की प्राप्ति है । हमारे मनीषियों की मान्यता रही है कि जिसकी विश्रांति भोग में है वह संगीत नहीं, बल्कि बन्धन है, किन्तु जिसका लक्ष्य, जिसका संकेत परमतत्त्व की ओर है वही संगीत, संगीत है ।

शरीर भी अपनी एकलय बद्धता से संचालित होता है शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यंग में एक क्रमिक संगीत बोध होता है । इसी बोध से वह चेतन अचेतन विचार श्रृंखलाओं का निर्माण करता है विचारों की ऊर्जातरंगें सदा ही मस्तिष्क में उठती रहती हैं, उनमें समयानुकुल परिवर्तन भी होता रहता है उन्हीं तरंगों के अनुरूप जातक के विचार आध्यात्मिक, धार्मिक और दार्शनिक हो जाते हैं और कभी-कभी अधोगामी भी हो जाते हैं । विचार श्रृंखला के ऊर्जा प्रवाह में आनुवांशिक गुणों का निश्चय क्रोमोसोम के द्वारा होता है । क्रोमोसोम अनेकानेक जीनों का सम्मुचय है । एक क्रोमोसोम में लगभग 1000 जीव माने जाते हैं एक जीव में 60 लाख आदेश लिखे हुए होते हैं, इसीलिये एक दूसरे जातक में एक दूसरे के प्रति तरतमता है । वहां से जैसे-जैसे स्पंदन आते जाते हैं । आदमी वैसा ही व्यवहार करने लगता है । एक मुनि एक सिद्ध पुरुष जब प्रवचन की गद्दी पर बैठता है तो उसे अपने मस्तिष्क और जीभ को निर्देश नहीं देना पड़ता उनकी अनुभूति और अभ्यास इतने परिपक्व हो चुके होते हैं कि वे ध्यान के प्रकाश में अन्तर बाह्य वस्तुस्थिति को निर्भ्रान्ति देख सकते हैं और उनके सभा मण्डल में एक चुम्बकीय आभा, ऊर्जा पैदा हो जाती है यह स्थूल संगीत से सूक्ष्म और अत्यन्त सूक्ष्म संगीत की यात्रा है, यहां अनहद विराजता है और स्पंदित होता है । संगीत की परम उपलब्धि विचार शून्य होना है ।

भगवान महावीर ने और उनके पूर्ववर्ती तीर्थङ्करों ने राग मालकोश की ध्वनि में ही संबोधन, उद्‌बोधन और प्रवचन और दिव्य ध्वनि भी स्वर लहरी निःसृत की । इस विषय के लिए जिज्ञासुओं को चाहिए वे नंदीसूत्र आवश्यक भाष्य, द्रव्यानुयोग और भगवती सूत्र आदि को सूक्ष्म दृष्टि से देखें । इसका एक सामान्य कारण है कि माल कोश 14 राग में तेजतत्व सबसे अधिक है ।

· **अभयप्रकाश जैन**
एन/14 चेतकपुरी, ग्वालियर

❑❑❑

वीरोदय में महावीर की भावना एवं उपदेश

निहालचन्द्र जैन

वीरोदय में भगवान् महावीर दिगम्बरी दीक्षा धारण कर जब आत्म-कल्याण के मार्ग पर आरूढ़ हुए तो उन्होंने जिन भावनाओं की अभिव्यक्ति की वे निम्न प्रकार से हैं:-

1. संसार के सभी प्राणी सुखी हों और संसार की रक्षा हो ।
2. मनुष्य स्वयं जैसा बनना चाहता है, उसी प्रकार का व्यवहार वह दूसरों के साथ भी करे ।
3. पराई पीड़ा को देखकर तुम शान्त मत बैठो । जहाँ दूसरे का पसीना बह रहा हो वहां तुम खून बहाने के लिए तैयार रहो ।
4. जैसे सूर्य पर फैंकी गई धूल स्वयं पर ही गिरती है, उसी प्रकार दूसरों के लिए किया गया बुरा कार्य स्वयं को ही बुरा फल देता है क्योंकि आंख में काजल लगाने वाली अंगुली पहले स्वयं ही काली बनती है ।
5. दूसरों को धोखा देना वास्तव में स्वयं को धोखा देना है ।
6. कोई किसी को सुख-दु:ख नहीं देता वरन् प्राणी स्वयं अपने किए कर्मों के परिपाक को भोगता है ।
7. दु:खी व्यक्ति के प्रति कोमल भाव सदा सुखदायी होते हैं ।
8. अहिंसा सर्व प्राणियों की संसार में रक्षा करती है । अत: हिंसा राक्षसी प्रवृत्ति है और अहिंसा दैवी भावना है ।
9. वस्तु तत्व यह है कि अहिंसा हो जाती है और हिंसा की जाती है या हिंसा करने की भावना बनी रहती है, इन दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है ।
10. जीव को आत्म-कल्याण के मार्ग से भ्रष्ट करने वाले पांच तत्त्व हैं (अ) मन की कुटिलता (ब) कार्य का अतिक्रमण (स) अनुचित क्रियाकारिता (द) कर्त्तव्य से विमुखता और (य) इन्द्रियों को वश में नहीं रखना ।
11. मानसिक पाप पतन का कारण है । जैसे रोगी के भोजन को रोककर उपचार रूप में उपवास कराने वाला वैद्य धन्य है - पुण्य का उपार्जक है । किन्तु बकरे को खिला - पिला कर पुष्ट करने वाला व्यक्ति जघन्य है, पापों का उपार्जन करने वाला है । अत: महावीर स्वामी ने कहा कि सब लोगों को अपने-अपने पदानुसार ही कार्य करना चाहिए । पद के प्रतिकूल कार्य करना ही अनुचित क्रियाकारिता है । आगे उन्होंने (पेज 248, 249) शाकाहार भोजन करने को उत्तम बताया है, क्योंकि प्राणी जनित वस्तुओं में जो पवित्र होती है वह ग्रहण करने योग्य है और अपवित्र वस्तु त्याजने योग्य है ।

महावीर स्वामी का उपदेश

महावीर स्वामी ने समस्त संसार के प्राणियों को कुछ मूलभूत ऐसे उपदेश दिए हैं, जिन्हें हम वर्तमान परिस्थिति में भी अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें तो हम एक सफल सामाजिक और धार्मिक प्राणी बन सकते हैं । अगर मैं ये बात कहूँ कि पूज्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज ने वीरोदय महाकाव्य के माध्यम से अपने जीवन कल्याण के लिए जो मार्ग बताया है, वह निम्नलिखित मूल उपदेशों पर आधारित हैं:-

1. हमें विचार करना चाहिए कि इस पृथ्वी पर जितना अधिकार हमारा है, उतना ही दूसरे का भी है । इसमें छोटे-बड़े की कल्पना करना व्यर्थ है ।
2. स्वार्थी मनोवृत्ति से ही तो मनुष्य पतित बनता है और उसे छोड़ देने पर मनुष्य का उद्धार होता है, अत: अपने उद्धार के लिए स्वार्थ परायणता को छोड़ देना ही उचित है ।
3. सज्जन पुरुषों का सम्मान करना आत्मउत्थान का मार्ग है । स्वयं के अहंकार के कारण दूसरों को छोटा समझना पतन का मार्ग है ।
4. आत्महित के अनुकूल आचरण का नाम ही मनुष्यता है, केवल अपने सुख की प्रवृत्ति न बना कर औरों के कष्ट में सहायक होना भी मनुष्यता की श्रेणी में आता है ।
5. पाप को छोड़ने से मनुष्य पवित्र बनता है, इसलिए हमें पाप से घृणा करनी चाहिए, पापी से नहीं ।
6. बुद्धिमान पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे अपने से बड़े और वृद्ध जनों के साथ अनुकूल आचरण और सदव्यवहार करें । छोटों के प्रति भी समानता का मित्रवत्/पुत्रवत् व्यवहार करना अपेक्षित है ।

7. दूसरों के दोषों के प्रति मौन धारण करें और उनके गुणों के प्रति ईर्ष्या से रहित होकर उसका अनुसरण करें।
8. महान पुरुष बनने का सरल मार्ग है कि हम अपने स्वार्थ में भ्रष्ट न हों और परोपकार करने में कभी पीछे न हटें । साथ में सत्य आचरण और पारस्परिक स्नेहभाव को बनाए रखना भी श्रेयष्कर है ।
9. सदाचरण से मनुष्य उच्च और असदाचरण से मनुष्य नीच कहलाने के योग्य है । मनुष्य जाति मात्र से उच्च एवं नीच नहीं होता है ।

'वीरोदय' हमें यह संदेश देता है कि हम प्राणी मात्र के प्रति मैत्री और करूणा भाव रखते हुए पाप कार्यों से बचें और धर्म कार्यों में अपनी प्रवृत्ति को लगाए रखें ताकि हमारा मन ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, भय और अन्याय की भावना से विरक्त निर्दोष व पवित्र बना रहे और हम आत्मधर्म का तथा विश्व का धर्म का पूर्ण उत्साह के साथ पालन करते हुए कर्त्तव्य मार्ग पर चलते हुए कर्मठ बनें । इन्द्रियों के विषय के प्रति उदासीन वृत्ति रखते हुए धर्मानुकुल आचरण अगर हम करते रहेगें तो हम भगवान् महावीर के संदेश और उनके बताए मार्ग को शान्ति पूर्वक जीवन में उतार सकेंगे ।

निहालचन्द्र जैन
सेवा निवृत्त प्राचार्य, अजमेर

❑❑❑

वीरोदय महाकाव्य में श्रृंगार रस

कुमुदचन्द्र सोनी

काव्य शास्त्र के मतानुसार काव्य को सरस-रस से युक्त होना चाहिए 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' - रस भरे वाक्य का नाम काव्य है । काव्य के सन्दर्भ में रस का तात्पर्य आनन्द होता है । वह आनन्द जो श्रोता या पाठक को आत्म विभोर कर देता है "कविता" को सरस कहने से आशय उसमें एक ऐसे तत्त्व का होना है जिसके कारण उसको पढ़ने वाले के हृदय में एक विशेष प्रकार का आनन्द संचारित होने लगता है जिसे वह अनुभव तो करता है पर वाणी से पूर्णतया व्यक्त नहीं कर सकता।

जब हम कोई काव्य पढ़ते हैं या सुनते हैं तब प्रसंगानुसार कोई न कोई भाव चाहे व प्रेम का हो या क्रोध का हो चाहे व करुणा का हो चाहे वैराग्य का हमारे हृदय में जाग सा उठता है, इसी को रस की अनुभूति कहते हैं । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि चित्त में उत्पन्न होने वाली यह विशेष वृत्ति ही रस है । वस्तुतः ऐसी चित्तवृत्ति प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के हृदय में वासना के रूप में विद्यमान रहती है, यही वासना हमें रस का अनुभव कराती है । काव्य के आचार्यों ने रस को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा है । रस के द्वारा जो आनन्दानुभूति हमें होती है वह लौकिक नहीं होती । वह एक अनिवर्चनीय आनन्द है ।

शब्द और अर्थ काव्य का शरीर है तो रस उसकी आत्मा है विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि भावों से अभिव्यक्त स्थायी भाव ही रस कहलाता है ।[1] रसों की संख्या सामान्यतः 9 मानी गई है (1) श्रृंगार, (2) हास्य, (3) करुण, (4) रौद्र, (5) वीर, (6) भयानक, (7) वीभत्स, (8) अद्‌भुत और (9) शान्त ।

महाकाव्य में श्रृंगार, वीर या शान्त में से कोई एक रस ही अंगी (प्रधान) होता है । अंगीरस के अतिरिक्त शेष सभी रस अंग (अप्रधान) रूप में अभिव्यक्त होते हैं ।[2]

1. विभावानुभावस्तत् कथ्यन्तेचारिणः ।
व्यक्तस्तै र्विभावधैस्स्थायि भावोर सः स्मृतः ॥ काव्य प्रकाश ४/२८
2. श्रृंगार वीर शान्तानामेकोऽगी रस इष्यते ।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः .... - साहित्य दर्पण ६ (३१६)

श्री जिनसेनाचार्य महापुराण प्रथम पर्व में काव्य और महाकाव्य की चर्चा करते हुये निम्नांकित भाव प्रकट किये हैं। 'सज्जन पुरुषों का जो काव्य अलंकार सहित, श्रृंगारादि रसों से युक्त, सौन्दर्य से ओतप्रोत और उच्छिष्टतारहित अर्थात् मौलिक होता है, वह सरस्वती देवी के मुख के समान आचरण करता है।'[1]

'जिस काव्य में न तो रीति की रमणीयता है, न पदों का लालित्य है और नहीं रस का प्रवाह है, उसे काव्य नहीं कहना चाहिए वह तो केवल कानों को दुःख देने वाली ग्रामीण भाषा ही है।'[2]

'जो प्राचीनकाल से सम्बन्ध रखने वाला हो, जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के चरित्र का चित्रण किया गया हो, तथा जो धर्म, अर्थ, काम के फल को दिखाने वाला हो उसे महाकाव्य कहते हैं।'[3]

उपरोक्त मार्ग सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये जैन काव्य और पुराणों में चरित्र नायक बड़े-बड़े महापुरुष अथवा तीर्थंकर होते हैं, जिनका जन्म संसार के कल्याण के लिये होता है, जो संसार को हित का मार्ग बतलाते हैं, इसलिये ऐसे काव्यों में श्रृंगार रस को प्रधानता देना बड़ा मुश्किल है। ऐसे काव्यों का उद्देश्य जनता को उत्तम मार्ग अथवा मोक्ष मार्ग प्रदर्शित करना होता है न कि सांसारिक झगड़ों अथवा भोगों में फंसा कर कर्त्तव्य से गिराना। यही कारण है कि जैन काव्य प्रायः अपने चरित्र नायकों के पूर्ण जीवन का ही वर्णन नहीं करते अपितु उनके पूर्व भव तथा साथ में अन्य घटनाओं का भी वर्णन करते हैं। जैन काव्य और पुराण शिक्षा प्रधान होते हैं न कि कथा प्रधान।

लेकिन यह बात नहीं है कि जैन काव्यों में नायक के जीवन की उन्हीं घटनाओं का वर्णन किया जाता है जो केवल शिक्षा प्रधान ही हो किन्तु गौण रूप से उनके बाह्य जीवन के सभी विषयों पर पूर्ण प्रकाश डाला जाता है। जैन काव्यों की यह विशेषता रही है कि उनमें अंगी रस के रूप में प्रायः शान्त रस का ही प्रयोग हुआ है, क्योंकि चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष उनका साध्य है। बाकी रसों का अंग रस के रूप में भी भरपूर प्रयोग हुआ है। महापुराण, पाण्डवपुराण, विमलपुराण, हरिवंशपुराण और पद्मपुराण आदि प्रसिद्ध पुराणों तथा धर्मशर्माभ्युदय पार्श्वनाथ चरित्र, चन्द्रप्रभु चरित्र, वरांग चरित्र एवं यशस्तिलक चम्पू की महान परम्पराओं का निर्वाह

वीरोदय काव्य में श्रृंगार रस

वीरोदय काव्य में अंगी रस शान्त रस के अतिरिक्त अन्य श्रृंगार, वीर, रौद्र, हास्य आदि रसों का भी अंग रूप में प्रयोग हुआ है। महाकवि ने श्रृंगार रस के दोनों पक्षों (1) संभोग या संयोग श्रृंगार का तथा (2) विप्रलम्भ या वियोग श्रृंगार का सुन्दर चित्रण किया है।

संभोग श्रृंगार का विभिन्न सर्गों में चित्रण करते हुये कवि कहता है। यथा वर्षाकाल में प्रायः सर्वत्र स्त्रियाँ हिंडोलों पर झूलती हैं। उसे लक्ष्य में रखकर कवि ने उत्प्रेक्षा की है।

---

1. सालङ्कार मुपारूढ़रसमुद्‌भूत सौष्ठवम्। अनुच्छिष्टं सतां काव्यं सरस्वत्या मुखायते - महापुराण १/९६
2. अस्पृष्ट बन्ध लालित्यमपेतं रसवत्तया। न तत्काव्यमिति ग्राम्यं केवलं कटु कर्णयः ॥ महापुराण १/९७
3. महापुराण सम्बन्धि महानायक गोचरम्। त्रिवर्ग-फल-सन्दर्भ महाकाव्यं तदिस्यते ॥ महापुराण सर्ग १ श्लोक ९९
4. सुश्लिष्टपद विन्यासं प्रबन्धं रचयन्ति ये। श्राव्यबन्धं प्रसन्नार्थं ते महाकाव्यो मता: महापुराण सर्ग १/श्लोक ८२ अर्थात् जो अनेक अर्थों को सूचित करने वाले पद विन्यास से सहित, मनोहर रीतियों से युक्त एवं स्पष्ट अर्थ से उद्भासित प्रबन्धों-काव्यों की रचना करते है वे महाकवि कहलाते हैं।

'हिंडोले में झूलते समय गत और आगत से (बार-बार इधर से उधर या ऊपर और नीचे जाने आने से) प्राप्त हुआ है परिश्रम जिसमें ऐसी दौलिक-क्रीड़ा में अति सन्तुष्ट हुई स्त्री उन पुरुषायितों में (पुरुष के समान आचरण करने वाली रति क्रीड़ाओं में) निपुणता को प्राप्त कर रही है ।'[1]

'वसन्त ऋतु के प्रसंग में कवि कहते हैं - नवप्रसंग के समय हर्षित चित्त कोई कामी पुरुष जैसे अपनी नवोढ़ा स्त्री का बार-बार चुम्बन लेता है, उसी प्रकार यह चंचरीक (भौंरा) आम्र वृक्ष पर उत्पन्न हुई मंजरी का बार-बार चुम्बन कर रहा है ।'[2]

'वसन्त ऋतु में पलाश (ढाक) का वृक्ष फूलता है, वे इसके फूल नहीं, किन्तु वन-लक्ष्मी के स्तनों पर नक्ष-क्षत (नखों के घाव रूप चिह्न) की परम्परा ही है, जो कि वसन्त रूपी रसिक पुरुष ने उस पर की है, इसीलिए वह अति रक्त वर्ण वाली शोभित हो रही है ।'[3]

शीतकाल में वायु के वेग का वर्णन करते हुये कवि इस प्रकार कह रहे हैं यह शीतकालीन वायु अपने संचार से स्त्रियों के उनके केशों को बिखेरता हुआ, नितम्ब पर से वस्त्र को दूर करता हुआ, सीत्कार शब्द पूर्वक उनके होठों को चूमता हुआ, पति के समान आचरण कर रहा है ।'[4]

कन्दुक क्रिडा में संलग्न स्त्री का वर्णन करते हुये कवि कहता है 'नतभ्रु युवती के आनन्द को प्राप्त श्रीयुक्त कर पल्लव से ताड़ित किया हुआ यह कन्दुक रूप पुरुष नीचे गिरता है और हर्ष से युक्त होकर के उसके अधरों के उदार रस का पान करने के इच्छुक पति के समान बार-बार ऊपर उठता है ।'[5]

शरत् कालीन हवाओं का चित्रण -

'वे शरत् कालीन हवाएं, जो सप्तवर्ण वृक्षों की सुगन्ध को लेकर बहा करती हैं, वे इस समय मैथुन-प्रंसग से शिथिल हुई बंधुओं के समीप विहार करने से अति मन्थर (मंद) गति वाली और आमोद युक्त अधिकार वाली होकर काम-वासना को बढ़ाने में और भी अधिक सहायक हो जाती है ।'[6]

---

1. गतागतैर्दौलिककेलिकायां मुहुर्मुहः प्राप्त परिश्रमायाम् ।
   पुनश्च नैसुण्यमुपैति तेषु योषा सुतोषा पुरुषायितेषु ॥
   - वीरोदय चतुर्थ-सर्ग-श्लोक २१
2. नव प्रसङ्गे परिहृष्टचेता नर्वा वधूरीमिब कामि एताम् ।
   मुहुर्मुहुश्चुम्बति चञ्चरी को माकन्द जातामथ मञ्जरीं कोः ॥
   - वीरोदय षष्ठ-सर्ग-श्लोक २०
3. नहि पलाश तरो मुंकुलोद्गतिर्वन मुवां नरवरक्षत सन्ततिः ।
   लसति किन्तु सती समयोयितासुरमिणाऽऽ कलिताऽप्यति लोहिना
   - वीरोदय षष्ठ सर्ग श्लोक ३१
4. रूचाकचानाकलयञ्जनीस्वयं नितम्बतो वस्त्र मुतापसारयन् ।
   रदच्छदं सीत्कृतिपूर्वकं धवायते दधच्छैशिर आशुगो ऽथवा ॥
   - वीरोदय नवम सर्ग श्लोक २३
5. नतभ्रवोलब्ध महोत्सवेन समाइनः श्रीकरपल्लवेन ।
   मुहुर्निपत्योत्पततीह कन्दुर्मुदाऽधरोदाररसीव बन्धुः ॥
   - वीरोदय नवम सर्ग श्लोक ३६
6. ते शारदा गन्धवहाः सुबहा वहन्ति सप्तच्छदगन्धवाहाः ।
   सन्मैथुनम्लानवधूविहारातिमन्थरामोद मदाभिकाराः ॥
   - वीरोदय अथैकविंशः सर्ग श्लोक १४

पति वियोगिनी का वर्णन

'उछलते हुये शीतल जल कण जिसके मध्य में है, ऐसे पवन के मही-पृष्ट के ऊपर बहने पर यह अंगरहित कामदेव शीत के भय से ही मानो पति वियोग के सन्ताप से सन्तप्त विधवाओं के अन्तरंग में प्रवेश कर रहा है ।'[1] वसन्त ऋतु में सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण हो जाता है इस बात को लक्ष्य कर के कवि ने उत्प्रेक्षा की है 'इस वसन्त काल में सूर्य दक्षिण दिशा रूपी स्त्री को छोड़कर उत्तर दिशा रूपी स्त्री के पास जाने के लिए उद्यत हो रहा है, इसलिए पति वियोग के दुःख से दुखित होकर के ही मानों दक्षिण दिशा शोक से भरे हुये दीर्घ निश्वास छोड़ रही है, सो वही निःश्वास दक्षिण वायु के रूप में इस समय बह रहा है ।'[2]

उक्त स्थलों पर श्रृंगार रस का बड़ा अच्छा चित्रण हुआ है श्रृंगार रस का आधार लेकर आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने बाल विवाह, ज्यादा उम्र में विवाह या वृद्ध विवाह व एक से अधिक पुरुष या स्त्रियों के साथ समागम से बचने की नेक सलाह देकर समाज को उपकृत किया है । उदाहरण के रूप में शादी की उम्र क्या होनी चाहिये इसका वर्णन करते हुये कवि कहते हैं । अयि लवङ्गिके तुम बड़ी सौभाग्यवती हो, क्योंकि तुम्हारा शिशिरकाल रूपी शैशवकाल तो बीत चुका है और अब नव यौवन अवस्था में पुष्पों के गुच्छों-रूपी उन्नत स्तनों से युक्त हो गई हो, तथा भौरों के प्रसंग को प्राप्त होकर काम प्रस्ताव को प्राप्त हो रही हो ।'[4]

वृद्ध पुरुष के साथ विवाह करने के विरूद्ध आवाज उठाते हुये कवि ने इस प्रकार कहा है । 'यदि कोई नवयौवना स्त्री अच्छे-अच्छे नवयुवकजनों के द्वारा संवरण के लिये रोके जाने पर भी किसी मूर्ख और अपने ही वंश वाले वृद्ध पुरुष को स्वीकार करे, तो उसका यह कार्य लोक में अनुचित ही गिना जायेगा और सब लोग उसकी निन्दा करेंगे इसी भाव को लक्ष्य में रखकर कवि ने निम्नगापने को व्यक्त किया है कि नदी सदा नीचे की ओर बहती हुई और मार्ग में अनेक तरुण स्थानीय तरूओं से रोकी जाने पर भी वृद्ध एवं जड़ समुद्र से जा मिलती है, तो उसके इस निम्नगापने पर धिक्कार है[5]

अनेक स्त्रियों के संसर्ग पर कवि इस प्रकार कहता है

'जैसे कोई मूर्ख युवा पुरुष अनेक युवती स्त्रियों के साथ समागम करे तो जल्दी ही बूढ़ा हो जाता है, उसी प्रकार यह जलधि (समुद्र) भी वर्षा के जल से उमड़ती हुई नदियों का संगम पाकर जल्दी से वृद्ध हो रहा है अर्थात् बढ़ रहा है ।'[6]

कुमुदचन्द्र सोनी
सरावगी मौहल्ला, अजमेर

1. समुच्छलच्छीतल शीकराङ्के वायौ वहत्येव महीमहाङ्के ।
भियेव भूयोविधशात्रङ्ग मुतापतप्तं प्रविशत्यङ्गः ॥
- वीरोदय चतुर्थ सर्ग श्लोक 16
2. रविरयं खलु गन्तुमिहोद्यतः समभवद्यदसौ दिश मुत्तराम् ।
दिगपि गन्धवहं ननु दक्षिणां वहति विप्रियनिश्वसन तराम्
- वीरोदय पृष्ठ सर्ग श्लोक 33
3. "परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम ।
आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणधाश्य नायकाः ॥
- साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद कारिमा १८९
4. अयिलवङ्गि ! भवत्यपि राजने विकलिते शशिरेऽपि च शैशवे ।
अतिशयोन्नति भत्स्तकस्तनी भ्रमर सङ्गवशान्मदनस्तवे
- वीरोदय षष्ट सर्ग श्लोक ३२
5. यतोऽतिवृद्धं जड़धीश्वरं सा सरिततिर्याति तदेकवंशा ।
सपल्लवोधतरुणा वरूद्धा न निम्नगात्वप्रति बोधनुद्धा ॥
- वीरोदय द्वितीय सर्ग श्लोक १७
6. प्रौढ़िं गतनामपि वाहिनीनां सम्पर्क मासाद्य मुहुर्वहुनाम ।
वृद्धो वराको जड़धी रयेण जातो ऽधुना विभ्रम सयुंतानाम् ॥
- वीरोदय चतुर्थ सर्ग श्लोक २३

वीरोदय महाकाव्य में आगत दार्शनिक शब्दावली

डॉ. अरुण कुमार जैन

बीसवी शताब्दी के मूर्धन्य महाकवि ब्र. पं. भूरामलजी शास्त्री, जिन्हें आज पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के नाम से जाना जाता है, की महान् रचना "वीरोदय महाकाव्य" कविता के माध्यम से जहाँ एक ओर विश्ववन्द्य तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के उदात्त चरित्र का सरस आख्यान प्रस्तुत करती है वहीं दूसरी ओर धर्म दर्शन और संस्कृति के अनेक महनीय पक्षों को उद्घाटित करती है । महाकवि, दार्शनिक सन्त हैं, एक ही व्यक्ति में दार्शनिकत्व, कवित्व एवम् साधुत्व इन गुणों की त्रिवेणी का प्रवाह अपने आप में एक विलक्षण संयोग है ।

महाकवि सोमदेव ने अपने उत्कृष्ट काव्य "यशस्तिलक चम्पू" में लिखा है "निरन्तर दर्शन शास्त्र रूपी शुष्क घास के निरन्तर सेवन के कारण मेरी बुद्धि रूपी गाय से काव्य (यशस्तिलक चम्पू महाकाव्य) रूप दुग्ध विद्वानों के पुण्य से उद्भूत हुआ है ।[1]

सोमदेव की तरह महान् दार्शनिक ब्र. भूरामल शास्त्री भी काव्य रचना में सफल हुए हैं । वीरोदय महाकाव्य के घटनाप्रसङ्गों, प्रकृति चित्रण एवम् कथोपकथनों में किंवा सर्वत्र दर्शन के तत्त्व स्वत: उद्भुत हो जाते हैं । जम्बूद्वीप वर्णन के प्रसङ्ग उन्होंने लिखा है कि "यह जम्बूद्वीप सात तत्त्वों के समान सात क्षेत्रों को धारण करता है तथा जिस प्रकार सातों तत्त्वों में सदक्षिण दक्षता-सम्पन्न/प्रधानभूत जीव तत्त्व है, उसी प्रकार सात तत्त्व रूप जम्बूद्वीप में जीव तत्त्व के समान प्रधान भारत-वर्ष नामक एक देश है ।"[2]

कुण्डपुर नगरवासी मनुष्यों के विरोधाभासालङ्कृत वर्णन में दर्शनज्ञता एवम् काव्य प्रतिभा एकत्र परिलक्षित होती है । वे लिखते हैं "कुण्डपुर नगर में परोमोहसत्ता (परम ऊह-तर्क-सत्ता) यदि थी तो मात्र तर्कवाद में थी, अन्यत्र परमोहसत्ता (पर मोह-सत्ता अर्थात् परपदार्थ के प्रति मोह का सद्भाव) नहीं थी । जैसे -

निरौष्ठ्यकाव्येष्ववादत्ताऽथ हेतुवादे परमोहसत्ता ।
अपाङ्गनामश्रवणं कटाक्षे, छिद्राधिकारित्वमभूद् गवाक्षे ।।वीरोदय – 2.39।।

महान् दार्शनिक ब्र. पं. श्री भूरामलजी की महान रचना वीरोदय युग के महान् दार्शनिक तीर्थङ्कर महावीर का चरित ग्रन्थ है, अत: सम्पूर्ण ग्रन्थ में दर्शनशास्त्र के पारिभाषिक/लाक्षणिक शब्दों का विलक्षण भण्डार दृष्टिगोचर होता है । आचार्य दण्डि[3] के अनुसार महाकवि ब्र. भूरामलजी शास्त्री ने दार्शनिक अथवा अन्य सुबन्ततिङन्त शब्दों के प्रयोग में स्पष्टार्थता का परित्याग नहीं किया, अर्थगाम्भीर्य को स्वीकार नहीं किया यह बात भी वीरोदय में नहीं है, वाणी को भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया है तथा पदों में परस्पर-आकाङ्क्षा का परिपालन भी किया है । अर्थात् दण्डिवर्णित शब्द-विधान के अनुरूप वीरोदय महाकाव्य के शब्द स्पष्टार्थ से युक्त, अर्थ गाम्भीर्य से समन्वित, पुनरुक्त दोष से मुक्त, परस्पर साकाङ्क्ष एवम् व्याकरण के दोषों से रहित हैं ।

यत: लेख का आलोच्य दार्शनिक शब्दावली है । वीरोदय ग्रन्थ में विशेषत: अठारहवें एवम् उन्नीसवें सर्ग में सृष्टि-अकर्तृकत्व,[4] परलोक (पुनर्जन्म)[5] देहात्मभेद,[6] अनादिता[7] तत्त्व-त्रैरूप्य[8] सप्तभङ्गी[9] अनेकान्तवाद स्याद्वाद आदि दार्शनिक तत्त्वों का मुख्यतया वर्णन है, परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ के विविध वर्णनों में भी उपमा, उत्प्रेक्षाओं और विरोधाभास अलंकार की छटाओं में दार्शनिक शब्दों के प्रयोग महाकाव्यकार के दर्शन-वैदुग्य एवम् उनकी दार्शनिक दृष्टि के साथ उनकी काव्यप्रतिभा के भी परिचायक हैं । तथापि यहाँ महाकाव्य के उन्नीसवें सर्ग के निम्न दार्शनिक शब्द वर्ण्य हैं ।

---

1. आजन्म समभ्यस्तात्तर्कात्तृणादिव ममास्याः ।
   मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपयः सुकृतिनां पुण्यैः ।।यश:चम्पू 1.17।।
2. तत्त्वानि जैनाऽऽगमवद्बिभर्ति, क्षेत्राणि सप्तार्यमहाप्रवर्ती ।
   सदक्षिणो जीव इवाप्तहर्षस्तत्राऽस्त्यसौ भारतनामवर्षः ।।वीरोदय- 2.5।।
3. स्फुटता न पदैरपाकृता, न च स्वीकृतमर्थ गौरवम् ।
   रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ।।किरातार्जुनीयम् - 2.27।।
4. वीरोदय 18.2 5. वही 18.8 6. वही 18.25 7. वही 18.21 8. वही 19.2-3 9. वही 19.5-7

द्रव्य

भारत के ही नहीं विश्व के सभी दार्शनिकों ने अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार द्रव्य-मीमांसा प्रस्तुत की है । चार्वाक भूतचतुष्टय मात्र को द्रव्यरूप से स्वीकार करता है ।[1] बौद्धों को चतुरार्यसत्य ही द्रव्य (तत्त्व) रूप से स्वीकृत हैं । वैशेषिकों[2] ने गुण-कर्म के आश्रय को द्रव्य कहा है । सांख्य-दर्शन में प्रकृति और पुरुष को मूलतत्त्व (द्रव्य) स्वीकार किया है ।[3] इत्यादि प्रकार से सभी दर्शनकारों द्रव्यविषयक गहन-ऊहापोह अपने ग्रन्थों में किया है । वीरोदयकार ने भी जैन-दर्शन सम्मत द्रव्य की प्ररूपणा करते हुए लिखा है कि -

> **श्री वीर देवेन तमामवादि सत्यम्मतोऽयं नियमोऽस्त्यनादिं ।**
> **अर्थक्रियाकारितयाऽस्तु वस्तु, नो चेत्पुनः कस्य कुतः स्तवस्तु ॥**

वीरोदय - 19.1॥

सर्वज्ञ भगवान् महावीर की ओर से उन्होंने द्रव्य का लक्षण सत्स्वरूप बताया है । वस्तुस्वभाव का यह नियम अनादि है । इस श्लोक में वस्तु के लक्षण में 'अर्थ क्रियाकारित्व' नामक विशेषण जोड़कर स्याद्वादमञ्जरी आदि दार्शनिक ग्रन्थों से अपनी संगति स्थापित की है ।[4] अर्थक्रियाकारिता के अभाव में कोई द्रव्य वस्तुरूप ठहर नहीं सकता ।

उत्पादव्ययध्रौव्य

तत्त्वार्थसूत्र[5] आदि सभी जैन दार्शनिक ग्रन्थों में द्रव्य-वस्तु को उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक रूप से स्वीकार किया गया है । उन्होंने द्रव्य के उक्त त्रैरूप्य का समर्थन करते हुए बताया कि जो उक्त त्रैरूप्य को युगपत् स्वीकार नहीं करते वे बाल - मूर्ख हैं।[6] उन्होंने एक ही दूध की दो भिन्न अवस्थाओं के सेवन से आमशक्ति बढ़ने एवम् आम (आँव) के नाश का एवम् दूध की दोनों अवस्थाओं में गोरसपने के उदाहरण द्वारा उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप वस्तु की दुरूह व्याख्या को कान्तासम्मित बनाकर दार्शनिक जटिलता से बोझिल शब्दों को सर्वसाधारण गम्य बना दिया है ।[7]

सिद्धकवीश्वर ब्र. पं. श्री भूरामल जी शास्त्री ने उत्पाद शब्द को 'स्मृतिः' एवम् व्यय को 'परामृति' शब्द से अभिधीत करके "स्फुटता न पदैरपाकृता" को चरितार्थ किया है ।

सप्तभंगी

पाश्चात्य तर्कविज्ञान में परामर्शों के दो भेद माने हैं अस्तिवाचक और नास्तिवाचक । परन्तु जैन दर्शनकारों को वस्तु के अनेकान्तात्मक स्वभाव के कारण तर्कवाक्यों के सप्तभङ्ग अभ्युपगत हैं । न्याय-कुमुदचन्द्र, प्रमेयकमलमार्तण्ड, स्याद्वादमञ्जरी, तत्त्वार्थ-राजवार्तिक एवम् अन्यान्य जैन दर्शन के ग्रन्थकारों में बहुधा व्याख्यात एवम् जैन दर्शन की आधारशिला के रूप में सुप्रतिष्ठ सप्तभङ्गवाद जैनों का अभेद्य दुर्ग रहा है । वीरोदय प्रणेता ने सप्तभङ्ग-विवेचन में लिखा है कि प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल एवं भाव

---

1. तत्र पृथिव्यादीनि भूतानि चत्वारि । - सर्व दर्शन संग्रह में चार्वाकदर्शन पेरा - 3।
2. गुणकर्माश्रयत्वं द्रव्यत्वम् । तर्क संग्रह-पदकृत्य -पृ. 2 ।
3. प्रकृतिं पुरुषं चैव, विद्ध्यनादि उभावपि । श्रीमद्भगवद्गीता
   तथा
   मूलप्रकृतिरविकृति : - सांख्यकारिका का. ३॥
4. देखें - स्याद्वादमञ्जरी 5.30.6 एवम् स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा यह गाथा -
   जं वत्थु अणेयत्थं तं चिय कज्जं करेदि णियमेण ।
   बहुधम्मजुदं अत्थं, कज्जकरं दीसदे लोए ॥गा. 225॥
5. "उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत् ।" तत्त्वार्थसूत्र - 5.30 ।.
6. हे सज्जनास्तत्र यमेक कालमतो विरूपं वदतीति बालः ॥
   वीरोदय 19.2 ।
7. प्रवर्धते चेत्पयसाऽऽमशक्तिस्स ह्रासये किन्तु दधिप्रयुक्तिः ।
   द्वये पुनर्गोरसता तु भाति, त्रयात्मिकाऽतः खलु वस्तु जातिः ॥

के अनुसार अस्तिरूप है तथा पर द्रव्य-क्षेत्र-काल की अपेक्षा नास्तिरूप है[1] यदि एक साथ दोनों धर्मों का कथन करना हो तो संभव नहीं होने से तीसरा भङ्ग 'अवक्तव्य' उपस्थित हो जाता है । इनके द्विसंयोगी तीन धर्म तथा त्रिसंयोगी एक धर्म संभव हैं अतः कुल सात भङ्ग सिद्ध होते हैं । सप्तभङ्ग के उदाहरण को कविप्रवर ने हरड, बहेड़ा और आँवला के मिश्रण-रूप त्रिसंयोगी-त्रिफला के साथ द्विसंयोगी द्विफला के संभव तीन रूपों के उदाहरण के द्वारा सप्तभङ्ग की सुबोधगम्य सिद्धि की है । यथा -

सप्त प्रकारत्व मुशन्ति भोक्तुः फलानि त्रीण्यथुनो पयोक्तुम् ।
पृथक्कृतौ व्यस्त समस्त तातः न्यूनाधिकत्वं न भवत्यथातः ।।

यहाँद्रष्टव्य है कि जहाँ पञ्चास्तिकाय कार आ कुन्दकुन्द एवं सप्तभंगी तरङ्गिणी कर्त्ता आदि अनेकाचार्यों ने तृतीयभङ्ग को "अस्ति नास्ति रूप माना है तो वहाँ वीरोदयकार ने तृतीय भङ्ग "अवक्तव्य" के रूप में बताया है । उदाहरण से संगति उपस्थापित करने की दृष्टि से उन्होंने ऐसा किया है ।

स्याद्वाद

उक्त प्रकार से वस्तु के अनन्त धर्मात्मक और अनेक शक्त्यात्मक होने से वस्तु को किसी धर्म/शक्ति से विशिष्ट कथन करना अन्य धर्मों का निषेधक होकर अयथार्थता की कोटि में न चला जाय अतः अन्य धर्मों के सद्भाव को अभिव्यक्त करने के लिये 'स्यात्' पद प्रयोग आवश्यक है ।[2] अनेकान्तात्मक वस्तु और सप्तभङ्ग ही शरणभूत है ।

कविवर ने सप्तभङ्ग और स्याद्वाद सिद्धान्त के विवेचन में सरस एवं जीवन व्यवहार की उपमाओं का प्रयोग किया है।[3]

सामान्य:विशेष

जैन दर्शन में वस्तु को सामान्य विशेषात्मक रूप से स्वीकार किया गया है । गुण और पर्याय के कथन प्रसङ्ग में वीरोदयकार द्वारा सामान्य और विशेष नामक दार्शनिक शब्द स्वप्रतिभोत्थ हुए हैं । अनुवृत्ति - एकता की बुद्धि का कारण सामान्य है ।[4] अर्थात् विविध व्यक्तियों में एकत्व समानता के ज्ञान की उत्पत्ति का हेतु सामान्य है और " विशिष्यते अर्थोऽर्थान्त राविति विशेषः"[5] जैन दर्शन में सामान्य, द्रव्य, उत्सर्ग, अनुवृत्ति, सत्ता, सत्त्व, सत्, अन्वय, वस्तु, अर्थ, विधि और अविशेष को सामान्य के ही पर्यायवाची रूप से माना गया है ।[6] वीरोदयकार ने सामान्य और विशेष के 2-2 भेद बतलाते हुए कहा है कि एक ही वस्तु की पूर्वापर पर्यायों में व्याप्त रहने वाले एकत्व प्रतिपादक धर्म को उर्ध्वता सामान्य है और एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में समानता की प्रतीति का हेतु 'तिर्यक् सामान्य' है ।[7] एक पदार्थ में दूसरों से भिन्नता का ज्ञापक व्यतिरेक-विशेष तथा एक ही पदार्थ पूर्व पर्याय त्याग कर नवीन पर्याय धारण करता है तो वहां 'पर्याय-विशेष' जानना चाहिये ।

नित्य:अनित्य

पदार्थ के स्वभाव के अविनाशित्व का नाम नित्य है । जैनदर्शन के अनेकान्तवादी होने के कारण एकान्त से न तो कोई वस्तु नित्य है और न ही अनित्य । अतः बौद्धसम्मत अनित्य वाद (क्षणिकवाद) का खण्डन करते वीरोदयकार ने कहा है कि वस्तु नित्यानित्यात्मक है । यदि वस्तु को सर्वथा अनित्य माना जाय तो "यह वस्तु वही है, जो मैंने पूर्वकाल में देखी थी" ऐसा प्रत्यभिज्ञान नहीं हो सकता तथा सर्वथा नित्य मानने पर पदार्थ में अर्थक्रियाकारिता का अभाव हो जाएगा ।[8]

इसी प्रकार काव्यरचयिता ने द्रव्य, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश आदि पञ्चास्तिकायों तथा काल द्रव्य (अनस्तिकाय) का साङ्गोपाङ्ग सटीक प्रतिपादन किया है । जीवों के भेद-प्रभेदों का वर्णन भी द्रष्टव्य है ।[9]

कारण

'कारण' तत्त्व दर्शन एवं तर्कशास्त्र में ईश्वर कर्तृत्व खण्डन के प्रसङ्ग में महाकवि ने जिसके अभाव में जो कार्य न हो, उस हेतु को उस कार्य का कारण बताया है । जैसे कुम्भकार के बिना घटोत्पत्ति नहीं होती, अतः कुम्भकार घट का कारण या कर्ता कहा जाता है ।[10] जैनन्याय ग्रन्थों में भी अविनाभावित्व को ही कारण का लक्षण स्वीकार किया है ।

---

1. वीरोदय 19.51
2. वही, 19.81
3. वही, 19.9-151
4. अनुवृत्तिबुद्धि हेतुत्वात्सामान्यम्। न्यायविनिश्चय वृत्ति 1.4.121
5. सर्वार्थ-सिद्धि 6.8 ।
6. बृहद्द्रव्यसंग्रह 1-17 ।
7. वीरोदय - 19-19 ।
8. वही - 19-20 ।
9. वीरोदय 19.21
10. वही 19. 24-38 ।
11. वीरोदय 19.44

सर्वज्ञ

चार्वाक और मीमांसा दर्शन को छोड़कर सभी भारतीय दर्शनों में सर्वज्ञता की सिद्धि में गहन ऊहापोह किया गया है। सर्वज्ञता की संसिद्धि हेतु आचार्य समन्तभद्रस्वामी महत्वपूर्ण युक्ति प्रस्तुत की है कि वे कहते हैं कि सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ किसी न किसी पुरुष के लिये प्रत्यक्ष हैं क्योंकि वे अनुमेय (प्रमेय) हैं, जैसे अग्नि।

यथा

सूक्ष्मान्तरित दूरार्था : प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा ।
अनुमेयत्वोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ संस्थितिः ॥

आत्ममीमांसा

वीरोदय ग्रन्थ में भी कहा गया है कि सकल पदार्थ-ज्ञेय हैं और ज्ञेय को किसी न किसी के ज्ञान का विषय अवश्य होना चाहिये, यदि वस्तु को ज्ञेय न माना जाय तो वह प्रणेय (वर्णनयोग्य) कैसे माना जायेगा। अतः पदार्थ के ज्ञेय होने से प्रत्यक्ष का विषय है, और जिन परमात्मा के लिये वे पदार्थ प्रत्यक्ष विषय है, वही सर्वज्ञ है।[1] ग्रन्थ में सर्वज्ञसिद्धि हेतु अन्यत्र दुर्लभ अनेक सबल युक्तियाँ भी प्रस्तुत की गयीं हैं।

वीरोदय ग्रन्थ में प्रत्यक्ष, परोक्ष, आप्त, तत्त्व, इन्द्रिय प्रत्यक्ष, हेतु तर्क, प्रत्यभिज्ञान, अक्ष, आदि अनेक न्यायशास्त्र के पारिभाषिक शब्दावली का सष्ठु प्रयोग हुआ है।

दर्शनशास्त्र के अतिरिक्त काव्यशास्त्र, आयुर्वेद, तर्कशास्त्र, आचार-शास्त्र, राजनीति, पुराण आदि के विषय एवं तत्तच्छास्त्रों के लाक्षणिक, शब्दों के विपुल भण्डार के कारण 'वीरोदय महाकाव्य' एक 'विश्वकोश' का पर्याय सिद्ध होता है। कहा जा सकता है कि 'यदि हास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।'' अर्थात् जो यहां (वीरोदय में) हैं वही अन्यत्र है और जो यहाँ नहीं वह कहीं नहीं है। ग्रन्थ वर्णित विशाल शब्दावली, और शब्दावली की व्याख्या में प्रामाणिकता, स्पष्टार्थता, असंदिग्धता, रचनाकार को महान् शब्दसाधक, शब्द विधाता सिद्ध करती है।

डॉ. अरुण कुमार जैन
ब्यावर

1. वीरोदय 20-19

धीरज की कसौटी

विपत्ति आत्मा का बल बढाने वाली सम्पत्ति है। विपत्ति के साथ संघर्ष करके पुरुष महापुरुष बनता है। विपत्ति सोयी हुई मानवीय शक्तियों को जगाती है। विपत्ति मनुष्य के ओज की, धैर्य की और साहस की कसौटी है। विपत्ति सफलता की सखी है। जो महाप्राण पुरुष विपत्ति को सहर्ष अंगीकार करता है, उसी को सफलता प्राप्त होती है।

वीरोदय में प्रतिपादित भगवान् महावीर की साधना

डॉ. सीमा जैन

भगवान् महावीर का जीवन उनके पिछले कई भव और वर्तमान भव में की गई साधना का जीवन है। महाकवि ज्ञानसागर रचित वीरोदय महाकाव्य में यत्र-तत्र भगवान् महावीर की साधना के स्थल दृष्टिगोचर होते हैं; जैसे जब राजा सिद्धार्थ उनके विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तो राजकुमार महावीर उस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुये कहते हैं - हे तात ! यह आप क्या कहते हैं ? लोक की ऐसी दारुण स्थिति में, मैं क्या सदारता को स्वीकार करूँ ? इसी को श्लेषार्थ में आचार्य ज्ञानसागर जी ने कहा है (सक्ष+अरता) अर्थात् करौंतपना अङ्गीकार करूँ। जैसे लकड़ी करौंत से कटकर खंड-खंड हो जाती है। वैसे ही क्या मैं भी सदारता को प्राप्त करके उसी प्रकार की दशा को प्राप्त होकर अपने जीवन को खण्ड-खण्ड कर दूँ।[1] क्योंकि स्त्री का बन्धन ही सबसे बड़ा बन्धन है। स्त्री के आश्रय से ही समस्त इन्द्रियाँ मद को प्राप्त होती हैं। और यदि स्त्री न हो तो यह अविद्यमान की तरह ही रहती हैं।[2] इस प्रकार मानसिक साधना का बीज प्रस्फुटित होने के पश्चात् वैवाहिक जीवन के प्रति उदासीनता और वैराग्यपूर्ण भावों का मार्मिक विवेचन द्रष्टव्य है - लक्ष्य की ओर अग्रसर सभी व्रताचरणों में ब्रह्मचर्य व्रत को श्रेष्ठ बतलाते हुये राजकुमार महावीर कहते हैं कि विषयों में काम पर विजय पाना ही अग्रगण्य है। सांसारिक राज्य में स्थिरता रहती ही कहाँ है ? देखो कौरवों का इसी राज्य के कारण विनाश हो गया। भरत और बाहुबली जैसे महापुरुषों के लिए भी यह राज्य प्रपंच का कारण बना।[3] अतएव मैं तो प्रजा के मन में सदा स्थिर रहने वाला जो शाश्वत राज्य है उसे पाने के लिए पूर्ण रूप से प्रयत्नशील हूँ। वह विचार करते हैं कि ये संसारी लोग कितने स्वार्थी हैं वे सोचते हैं कि संसार में मैं सुख से रहूँ यदि अन्य कोई दुःख से गिरता है तो गिरे। हमारे मन में अन्य जनों की चिन्ता क्यों हो ? इस प्रकार सभी लोग अपने स्वार्थ साधन के सिद्धान्त को प्राप्त हो रहे हैं।[4]

अन्तर्मुखी दृष्टि हो जाने पर राजकुमार महावीर स्वार्थपूर्ण संसार की असारता का चिन्तन करते हैं कि आज लोग दूसरे के खून से अपनी प्यास शान्त करना चाहते हैं और दूसरे के प्राणों के विनाश से अर्थात् उनके मांस से अपनी भूख मिटाना चाहते हैं। आज मैं अपनी आँख से जगत की ऐसी स्वार्थ परायण स्थिति को देख रहा हूँ।[5] इस भूतल पर सभी लोग अपनी रोटी को मोटी बनाने में लगे हुये हैं, कोई किसी की भलाई का विचार नहीं कर रहा है। अहो ! आज तो यह स्वार्थ परायणता रूपी राक्षसी सारे मनुष्य लोक को ग्रस रही है।[6]

इन्हीं वैराग्यपूर्ण भावनाओं के उत्कर्ष के कारण माता की ममता एवं पिता का स्नेह भी उन्हें उनके साधना के पथ से विचलित नहीं कर सका।

वीरोदय महाकाव्य के बारहवें सर्ग में भगवान् महावीर के ग्रीष्म शीत एवं वर्षाकालीन उग्र तपश्चरण का वर्णन किया गया है। ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्डता को तो विभिन्न उपमाओं व अलंकारों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। भीषण गर्मी की परवाह न करते हुये भगवान् महावीर अपनी साधना में तल्लीन हैं। जिसमें मनुष्यों में तो क्या, तिर्यञ्चों के अन्दर पंचेन्द्रिय तक सभी उस गर्मी से बचने के लिए प्रयास रत हैं। वृक्ष भी ग्रीष्मकाल में अपनी छाया को अपने अन्दर समेटे हुये हैं।[7] सूर्य की छाया भी मानिनी वियोगिनी नायिका के समान कृशता को धारण कर रही है।[8]

---

1. प्रभुराह निशम्येदं तात! नार्थल्किमुद्यते ।
   दारुणेऽत्युदिते लोके किमिष्टेऽस्त्र सदारताम् ॥
   -वीरोदय महाकाव्य - 8/23
2. वीरदय महाकाव्य 8/31
3. वीरोदय महाकाव्य 8/44
4. वीरोदय महाकाव्य 9/2
5. वीरोदय महाकाव्य 9/3
6. वीरोदय महाकाव्य 9/9
7. वीरोदय महाकाव्य 12/3
8. वीरोदय महाकाव्य 12/5

आत्मीय पद में तल्लीन वीर भगवान् ने ग्रीष्म काल में पर्वत के शिखर पर बैठकर वर्षाकाल में वृक्षों के नीचे रहकर और शीतकाल में चतुष्पद (चौराहा) के आभूषण बनकर शोभायमान हो रहे थे ।[1] आत्मीय रस के अद्वितीय कूप तुल्य, शांति के सूर्य, वीर प्रभु शरीर से ममता रहित होकर और समता को प्राप्त होकर ग्रीष्म, शीत और वर्षाकाल को एक रूप देखते हुये विहार कर रहे थे ।[2] इस प्रकार शीत, उष्णादि की वेदना सहन करते हुये भगवान् महावीर विचार करते हैं कि शरीर में तो जानने की शक्ति (चेतना) नहीं है और यह चेतन आत्मा इन शीत ऊष्णादि की वेदनाओं का विषयभूत होने वाला पदार्थ नहीं है, तो भी न जाने क्यों, यह संसारी जीव पीड़ा की कथा कहने में संलग्न हो रहा है ।[3] अमृत के निधान वीर भगवान् ने आत्म पथ का आश्रय लेकर एक मास, चार मास और छह मास तक बिना भोजन के ही प्रसन्न चित्त रहकर और अपने आप में मग्न होकर छद्मस्थ काल व्यतीत किया ।[4]

तप ही जीवन का श्रृंगार है । वीर प्रभु ने बाल्यकाल से साधना प्रारम्भ की । साधना की उत्कर्षता से ही वे सफल मनोरथ वाले हुये । जैसे प्रातःकालीन सूर्य कुहरे को नष्ट कर देता है उसी प्रकार प्रभावान् शरीर वाले वीर भगवान् ने आत्म-स्थित कर्मरूपी मैल को दूर कर दिया ।[5] और उन्हें जो कैवल्य की प्राप्ति हुयी इससे सारा जगत् उपद्रव से रहित शान्त हो गया । सारी पृथ्वी कंटक रहित होकर स्वच्छ हो गयी, मन्द सुगन्धित पवन चलने लगी और जय-जयकार की ध्वनि से सारा वातावरण आनन्द से परिपूर्ण हो गया और सारी सृष्टि हर्षमयी हो गयी ।[6] तत्काल ही उनके पुण्य के प्रताप से देवों के द्वारा समवशरण की रचना हुयी । उस समवशरण के मध्य में विराजमान वीर प्रभु के मुख का प्रभामण्डल इतना दीप्ति युक्त था जो कि करोड़ों सूर्यों के द्वारा भी असम्भव है । उस प्रभामण्डल को देखने पर एक क्षण में ही लोग अपने जन्म जन्मान्तरों को देखने में समर्थ हो जाते हैं । भगवान् के समवशरण में ऐसा अतिशय होता है कि उनके भामण्डल में प्रत्येक प्राणी के पूर्व के तीन भव, भविष्य के तीन भव, और वर्तमान का एक भव, इस प्रकार सात भव दिख जाते हैं ।[7] चारों ओर फैली हुई वीर भगवान् की इस अपूर्व विभूति को देखकर वेद-वेदाङ्ग के वेत्ता इन्द्रभूति ब्राह्मण के मन में भी जिज्ञासा उत्पन्न हुयी ।[8] अहो ! बड़ा आश्चर्य है जिन विभूतियों की प्राप्ति मुझे आज तक नहीं हुई वह वेद का बाह्य आचरण करने वाले वीर प्रभु के समक्ष सर्व वैभव समुपस्थित है ।[9] समवशरण के बाहर मानस्तम्भ को देखने पर इन्द्रभूति का अभिमान गलित हो जाता है । वह अपने मन में विचार करते हैं कि ज्ञानरूपता तो आत्मगत विशेषता है । वह तो आत्मा की स्तुति करने पर ही पाई जा सकती है ।[10] वेदों का यथार्थ रहस्य न पाने के कारण मैंने आज तक समुद्र में जाकर भी उसके तीर का ही समीर (पवन) खाया है । समुद्र में गोता लगाये बिना मेरी बुद्धि को भी जीवन की सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है ?[11] दिगम्बरता ही संसार में आत्म साधना की पद्धति को प्रकट करने के लिए सूर्य के समान है, ऐसा मन ऊहापोह करके इन्द्रभूति गौतम, वीर प्रभु के चरणों में गिरकर अपना समर्पण कर देते हैं ।[12] इन्द्रभूति गौतम को निमित्त पाकर जगत के जीवों को पीने के लिए सर्व ओर से अमृत रूपी जल को बरसाती हुयी मेघ की ध्वनि का तिरस्कार करके भगवान् की दिव्य ध्वनि अखण्ड रूप से प्रकट होती है ।[13] दिव्य ध्वनि के प्रभाव से इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वानों का पांच हजार शिष्य परिवार सहित हृदय परिवर्तन हो जाता है ।[14]

---

1. ग्रीष्मे गिरेः श्रृङ्गमधिष्ठितः सन् वर्षासु वा भूमिरुहादधः सः ।
   विभूषणत्वेन चतुष्पथस्य हिमे बभावाऽऽत्मपदैकशस्यः ॥
   - वीरोदय महाकाव्य १२/३५
2. वीरोदय महाकाव्य १२/३३
3. वीरोदय महाकाव्य१ २/३६
4. वीरोदय महाकाव्य १२/३७
5. वीरोदय महाकाव्य १२/४१
6. वही १३/५०-५१
7. वही १४/२१
8. वारीदय महाकाव्य १३/२५
9. वही महाकाव्य १३/२६
10. वही महाकाव्य १३/२८
11. वही महाकाव्य १३/२९
12. वही महाकाव्य १३/३२
13. वही महाकाव्य १३/२४
14. वही महाकाव्य १४/४३

क्षत्रिय बुद्धि वाले महावीर और ब्राह्मण बुद्धि वाले इन्द्रभूति का ऐसा अपूर्व समागम हुआ जैसे कि प्रयाग में गङ्गाजल का यमुनाजल से संगम तीर्थरूप परिणत हो गया। और उस अभूतपूर्व समागम में सभी अपने अन्तरङ्ग कर्म मलों का प्रक्षालन करने के लिए आने लगे।[1] उस समय परस्पर विरोधी सिंह और गजराज, बकरा और भेड़िया, सर्प और नेवला अपने आपसी वैर को छोड़कर बैठ रहे थे।[2] एक जीव की साधना के फलस्वरूप निमित्त पाकर कितने जीवों का उद्धार हो गया।

साधना की चरम परिणति मोक्ष है। जो वीर प्रभु को जीवन के अन्त में प्राप्त होती है। वह ऐसी स्थिति होती है जहाँ से लौटकर जीवन का आना नहीं होता और असीम आनन्द की उपलब्धि होती है।

डॉ. सीमा जैन
D/o श्री अजितकुमारजी जैन (एडवोकेट)
ललितपुर

1. वही महाकाव्य १४/४७
2. वही महाकाव्य १४/५१

वीरोदय में उल्लिखित आचार्य

डॉ. रमेशचन्द जैन

आचार्य भद्रबाहु

इनका काल 325 ई. पूर्व माना जाता है। ये भरतक्षेत्र की वर्तमान अवसर्पिणी के अन्तिम श्रुतकेवली माने जाते हैं। एक बार मगध में द्वादशवर्षीय भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। भद्रबाहु साधुओं के बहुत बड़े संघ के साथ दक्षिण चले गए। प्रसिद्ध मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त भी पुत्र को राज्यभार सौंपकर इनके साथ ही दक्षिण को चले गए। वहाँ कर्नाटक के श्रवणबेलगोला स्थान पर भद्रबाहु ने सल्लेखना धारण कर देह त्याग किया। श्रवणबेलगोला में चन्द्रगिरि पर आज भी भद्रबाहु के चरण अङ्कित हैं, जिनकी पूजा होती है। आचार्य ज्ञानसागर ने वीरोदय में कहा है - जो पवित्र, पुरातन, धर्मपन्थ विश्व की शीतता का परिहार करने के लिए कथा के समान था, उस (जैन) धर्म के अनुयायियों की स्थिति भद्रबाहु श्रुतकेवली तक तो एक रूप रही, पुनः वह दो धाराओं में परिणत हो गई। जिन भद्रबाहु को वीरवचन कुशल कहते थे, वे भद्रबाहु उत्तर प्रान्त में दुर्भिक्ष के प्रकोप से दक्षिण के कर्णाटक देश को चले गए।[1]

आचार्य स्थूलभद्र

भद्रबाहु के समकालीन स्थूल भद्रमुनि ने जो अपने को वीर वाणी के अर्थ वेत्ता और सुवेत्ता मानते थे, महावीर के प्रवचनों का संग्रह किया।[2] जो मुनिजन भद्रबाहु श्रुतकेवली के शासन के स्पष्ट जानकार थे, उन्होंने स्थूलभद्र के उक्त संग्रह को उस समय सदोष कहा और उसे संशोधन करने के लिए निवेदन किया, किन्तु उन्होंने अपनी कृति का संशोधन नहीं किया और इसी कारण उनका परस्पर निर्दोष सम्मिलित नहीं हो सका। इन स्थूलभद्र के उपदेश एवं आदेश से जो सम्प्रदाय प्रकट हुआ, वर वीर भाव (सिंह वृत्ति) को गौण करके वन-वास छोड़कर पुर-नगरादि में रहने लगा और कठिन तपश्चरण एवं नग्नता के स्थान पर वस्त्र धारणादि सुकुमारता की शिक्षा देने के लिए वेग से ओर फैल गया।[3] नग्नता के पोषक साधु दिगम्बर कहलाए और वस्त्र पात्र के पोषक साधु श्वेताम्बर कहलाए।

आचार्य देवार्द्धि गणि क्षमाश्रमण

स्थूलभद्र की सम्प्रदाय वाले देवार्द्धि गणि उनसे पाँच सौ वर्ष पीछे हुए। उन्होंने अङ्ग नाम से प्रसिद्ध आगमों की रचना कर स्थूलभद्र के आम्नाय की पुष्टि की जिससे कि उनका सम्प्रदाय जगत् में इतना अधिक फैल गया।[4] देवर्द्धि गणि क्षमा श्रमण के नेतृत्व में वलभी में चौथी वाचना सम्मेलन बुलाया गया। इस संघसमवाय में विविध पाठान्तर और वाचनाभेद आदि का समन्वय

1. वीरोदय 22/2-3   2. वही 22/3   3. वही 22/4-5   4. वही 22/6

करके माथुरी वाचना के आधार से आगमों को संकलित कर उन्हें लिपिबद्ध कर दिया गया । जिन पाठों का समन्वय नहीं हो सका । उनका वाचणान्तरे पुण, 'नागार्जुनीयास्तु एवं वदन्ति' इत्यादि रूप में उल्लेख किया गया ।[1] इस समय दृष्टिवाद को व्युच्छिन्न घोषित कर दिया गया । उसे जैन आगमों की अंतिम और द्वितीय वलभी वाचना कहते हैं । श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य वर्तमान आगम इसी संकलना का परिणाम है ।[2]

आचार्य समन्तभद्र

वीरोदय के प्रथम सर्ग में समन्तभद्र शब्द प्रयुक्त एक पद्य है, जो इस प्रकार है -

> **हारायतेऽथोत्तमवृत्तमुक्ता समन्तभद्राय समस्तु सूक्ता ।**
> **या सूत्रसारानुगताधिकारा कण्ठीकृता सत्पुरुषैरुदारा ॥ वीरोदय १/२४**

अर्थात् यह सूक्त अर्थात् भले प्रकार कही गयी कविता हार के समान आचरण करती है । जैसे हार उत्तम गोल मोतियों वाला होता है । उसी प्रकार यह कविता भी उत्तमवृत्त अर्थात् छन्दों में रची गयी है । हार सूत्र (डोरे) से अनुगत होता है और यह कविता भी आगम रूप सूत्रों के सारभूत अधिकारों वाली है । हार को उदार सत्पुरुष कण्ठ में धारण करते हैं और इस उदार कविता को सत्पुरुष कण्ठस्थ करते हैं । ऐसी यह हार स्वरूप कविता समस्त लोक के कल्याण के लिए हो ।

इस पद्य में प्रयुक्त 'समन्तभद्र' पद से कवि ने यह भाव व्यक्त किया है कि उत्तम कविता तो समन्तभद्र जैसे महान् आचार्य ही कर सकते हैं । हम तो नाम मात्र के कवि हैं । इस प्रकार ग्रन्थ को प्रारम्भ करते हुए कवि ने उनके पवित्र नाम का स्मरण कर अपनी लघुता को प्रकट किया है ।

आचार्य समन्तभद्र जैन परम्परा में तर्क युग या न्याय विचारों की नींव डालने वाले समर्थ आचार्य हुए, जिनकी उक्तियों को विकसित कर भट्ट अकलङ्कदेव और विद्यानन्द जैसे आचार्यों ने जैन न्याय की परम्परा का पोषण और संवर्द्धन किया । उनके व्यक्तित्व को उजागर करने वाला यह आत्मपरिचयात्मक पद्य किञ्चित् भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं लगता, जिसमें वे कहते हैं -

> **आचार्योऽहं कविरहमहं वादिराट् पण्डितोऽहं ।**
> **दैवज्ञोऽहं भिषगहमहं मान्त्रिक स्तान्त्रिकोऽहं ॥**
> **राजन्नस्यां जलधिवलयामेखलायामिलायां ।**
> **आज्ञासिद्धः किमिति बहुना सिद्धसारस्वतोऽहं ॥**

हे राजन् ! इस समुद्रवलय रूप पृथ्वी पर मैं आचार्य, कवि, वादिराट्, पण्डित, दैवज्ञ, भिषक्, मान्त्रिक, तान्त्रिक, आज्ञासिद्ध और सिद्धसारस्वत हूँ । अन्त के दो विशेषण विशेष महत्त्व के हैं, जिनमें वे कहते हैं कि मैं आज्ञा सिद्ध हूँ, जो आदेश देता हूँ, वही होता है । मैं सिद्ध सारस्वत हूँ अर्थात् मुझे सरस्वती सिद्ध है । उन जैसा दृढ़ श्रद्धानी मिलना कठिन है । उन्होंने अपने आराध्य की भक्ति में जो स्तुतियाँ लिखी हैं, वे अनुभव और तर्क की दृष्टि में बेजोड़ हैं, उनमें भारतीय दर्शन का निचोड़ भरा हुआ है । आचार्य समन्तभद्र द्वारा प्रणीत रचनायें निम्नलिखित मानी जाती हैं -

१ बृहत् स्वयम्भू स्तोत्र २. स्तुति विद्या, ३. देवागमस्तोत्र - आप्तमीमांसा ४. युक्त्यनुशासन ५. रत्नकरण्ड श्रावकाचार ६. जीवसिद्धि ७. प्रमाण पदार्थ ८. तत्वानुशासन ९. प्राकृत व्याकरण १०. कर्मप्राभृत टीका ११. गन्धहस्ति महाभाष्य । इनका काल विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी माना जाता है ।

आचार्य पूज्यपाद

वीरोदय के तृतीय सर्ग के सप्तम पद्य में कहा गया है -

> **मृत्त्वं तु संज्ञास्विति पूज्यपादः नृपोऽसकौ धातुषुसंजगाद**
> **ममत्वहीनः परलोकहेतोस्तदस्य धामोज्ज्वल कार्तिकेतोः ॥ वीरोदय ३/७**

आचार्य पूज्यपाद ने अपने व्याकरणशास्त्र में मृत्त्व (प्रतिपादिकत्व) को संज्ञाओं में कहा, धातु पाठ में नहीं, किन्तु ममत्वहीन इस सिद्धार्थ राजा ने तो मृत्त्व अर्थात् मृत्तिकापन को तो पार्थिव धातुओं में गिना है । यह सब उज्ज्वल कीर्तिशाली और परलोक

के लिए अर्थात् परभव और अन्य जनों के हितार्थ प्रयत्न करने वाले इस राजा की महत्ता है । भावार्थ - जैनेन्द्र व्याकरण में मनुष्य आदि नामों की मृत्संज्ञा की गई है, भू आदि धातुओं की नहीं । किन्तु सिद्धार्थ राजा ने उसके विपरीत सुवर्णादि धातुओं में मृत्पना (मृत्तिकापन) मानकर मनुष्यों में आदर भाव प्रकट किया है । सारांश - यह राजा अपनी प्रजा की भलाई के लिए सुवर्णादि धन को मिट्टी के समान व्यय किया करता था ।

उपर्युक्त पद्य में जिन पूज्यपाद आचार्य का उल्लेख किया गया है, उनके विषय में शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इनका गुरु के द्वारा दिया हुआ दीक्षानाम देवनन्दि था, बुद्धि की प्रखरता के कारण इन्हें जिनेन्द्रबुद्धि कहते थे और देवों के द्वारा इनके चरण युगल पूजे गए थे । इसलिए वे पूज्यपाद इस नाम से लोक में प्रख्यात थे ।[1] ये कवि, वैयाकरण दार्शनिक और चिकित्साशास्त्री थे । इनका काल विक्रम 5वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर 6वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के मध्य माना जाता है । इनकी निम्नलिखित रचनायें हैं -

१. सर्वार्थसिद्धि २. जैनेन्द्र व्याकरण ३. इष्टोपदेश ४. समाधितन्त्र ५. दशभक्ति ६. शान्त्यष्टक ७. सारसंग्रह ८. चिकित्साशास्त्र ९. जैनाभिषेक १०. सिद्धि प्रिय स्तोत्र १०. जैनेन्द्र न्यास तथा १२. शब्दावतार न्यास ।

तत्त्वार्थसूत्र पर आचार्य पूज्यपाद सर्वार्थसिद्धि टीका एक प्रसिद्ध दार्शनिक कृति है । इसके वाक्यों को प्रायः वार्तिक बनाकर भट्ट अकलङ्कदेव ने तत्त्वार्थवार्तिक जैसी प्रौढ़ कृति की रचना की है । सर्वार्थसिद्धि चार हजार श्लोक प्रमाण गद्यरचना है । इसमें सूत्रानुसारी प्रतिपादन के साथ दार्शनिक विवेचन भी है । इसके अन्त में कहा गया है कि जो आर्य स्वर्ग और मोक्ष सुख के इच्छुक हैं, वे जैनेन्द्र शासन रूपी उत्कृष्ट अमृत में सारभूत और सज्जन पुरुषों द्वारा रखे गए सर्वार्थसिद्धि इस नाम से प्रख्यात इस तत्त्वार्थ वृत्ति को निरन्तर मनन पूर्वक धारण करें ।

पूज्यपाद देवनन्दि को अपने पूर्ववर्ती अनेक जैन आचार्यों की व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ परम्परा प्राप्त रही, जिनके आधार पर उन्होंने जैन व्याकरण नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की ।

2. "प्रागल्भ्यधारी गुरुणा किल देवनन्दी बुद्ध्या पुनर्विपुलया स जिनेन्द्र बुद्धिः।
श्री पूज्यपाद इति चैष बुधैः प्रचख्ये सत्पूजितः पदयुगे वनदेवताभिः ॥

श्रवणबेलगोला शिलालेख नं. 105 वि. सं. 1320

अकलङ्कदेव

भट्ट अकलङ्कदेव का वीरोदय काव्य में दो बार स्मरण किया गया है ।[2] ये प्राचीन भारत के अद्भुत विद्वान् तथा लोकोत्तर विवेचक ग्रन्थकार एवं जैन वाङ्मय रूपी नक्षत्र लोक के सबसे अधिक प्रकाशमान तारे हैं । इन्होंने न्याय प्रमाणशास्त्र का जैन परम्परा में जो प्राथमिक निर्माण किया, जो परिभाषायें, जो लक्षण व परीक्षण किया, जो प्रमाण, प्रमेय आदि का वर्गीकरण किया और परार्थानुमान तथा वाद, कथा आदि परमत प्रसिद्ध वस्तुओं के सम्बन्ध में जो जैन प्रणाली स्थिर की, संक्षेप में जैन परम्परा में नहीं, पर अन्य परम्पराओं में प्रसिद्ध तर्कशास्त्र के अनेक पदार्थों को जैन दृष्टि से जैन परम्परा में जो सात्मीभाव किया तथा आगमसिद्ध अपने मन्तव्यों को जिस तरह दार्शनिकों के सामने रखने योग्य बनाया, वह सब छोटे-छोटे ग्रन्थों में विद्यमान उनके असाधारण व्यक्तित्व का तथा न्याय-प्रमाण स्थापना युग का द्योतक है । अकलङ्कदेव का समय ई. 720-780 सिद्ध होता है । उनके ग्रन्थों में बौद्ध आचार्य धर्मकीर्ति, प्रज्ञाकर गुप्त, धर्माकरदत्त, शान्तभद्र, धर्मोत्तर, कर्णकगोमि तथा शान्तरक्षित के ग्रन्थों का उल्लेख या प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।[4] अकलङ्क जैन न्याय के प्रतिष्ठाता माने जाते हैं । उनके पश्चात् जो जैन ग्रन्थकार हुए, उन्होंने अपनी न्यायविषयक रचनाओं में अकलङ्कदेव का ही अनुसरण करते हुए जैन न्याय विषयक साहित्य श्री की वृद्धि की और जो बातें अकलङ्कदेव ने अपने प्रकरण में सूत्र रूप में कहीं थी, उनका उपपादन तथा विश्लेषण करते हुए दर्शनान्तरों के विविध मन्तव्यों की समीक्षा में बृहत्काय ग्रन्थ रचे, जिससे जैन न्याय रूपी वृक्ष पल्लवित और पुष्पित हुआ ।[5] अकलङ्कदेव की रचनायें निम्नलिखित हैं -

1. विशेष जानकारी के लिए देखिए देवागम स्तोत्र की मेरी प्रस्तावना और पं. जुगलकिशोर मुख्तार द्वारा लिखित आचार्य समन्तभद्र की रचनाओं की प्रस्तावनायें आदि ।
2. वीरोदय १४/३९, १/२५ 3. जैन न्याय पृ. ३५
4. प्रमेयरत्नमाला - डॉ. रमेशचन्द जैन द्वारा लिखित प्रस्तावना पृ. ८
5. सिद्धिविनिश्चय टीका, प्रभाग (पं. महेन्द्रकुमार, न्यायाचार्य लिखित प्रस्तावना पृ. ९)

१. तत्त्वार्थवार्तिक २. अष्टशती ३. लघीयस्त्रय सविवृत्ति ४. न्याय विनिश्चय ५. सिद्धि विनिश्चय ६. प्रमाणसंग्रह ।

आचार्य प्रभाचन्द्र

वीरोदय में आचार्य ज्ञानसागर ने प्रभाचन्द्र का इस प्रकार स्मरण किया है -

किलाकलङ्कार्थमभिष्टुवन्ती समन्ततः कौमुदमेधयन्ती ।
जीयात्प्रभाचन्द्रमहोदयस्य सुमञ्जुवाङ्नस्तिमिरं निरस्य ॥ वीरोदय १/२५

जो अकलङ्क अर्थ का प्रतिपादन करती है और संसार में सर्व ओर कौमुदी को बढ़ाती है, ऐसी प्रभाचन्द्राचार्य महोदय की सुन्दर वाणी हमारे अज्ञान अन्धकार को दूर कर चिरकाल तक जीवे ।

यहां अकलङ्कार्थ पद के द्वारा आचार्य अकलङ्कदेव का भी स्मरण किया गया है । अर्थात् जैसे चन्द्रमा की चन्द्रिका कलङ्करहित होती है, कुमुदों को विकसित करती है और संसार के अन्धकार को दूर करती है, उसी प्रकार प्रभाचन्द्राचार्य के न्याय कुमुदचन्द्रादि ग्रन्थ रूप सुन्दर वाणी अकलङ्कदेव के दार्शनिक अर्थ को प्रकाशित करती है, संसार में हर्ष को बढ़ाती है और लोगों के अज्ञान को दूर करती है । वह वाणी सदा जयवन्त रहे ।

आचार्य प्रभाचन्द्र का काल 950 ई. से 1020 ई. के मध्य माना जाता है । वे एक बहुश्रुत विद्वान् थे । सभी दर्शनों के प्रायः सभी मौलिक ग्रन्थों का उन्होंने अभ्यास किया था । इतर दर्शनों का पूर्वपक्ष स्थापित करते समय वे तत्तत् दर्शनों का हार्द स्पष्ट करते हैं ।

उनके द्वारा लिखित चार ग्रन्थ माने जाते हैं - १. न्यायकुमुद चन्द्र २. प्रमेयकमल मार्तण्ड ३. तत्त्वार्थवृत्ति और ४. शाकटायन न्यास । प्रमेयकमल मार्त्तण्ड माणिक्यनन्दि के परीक्षामुख का विस्तृत भाष्य है । अकलङ्कदेव के लघीयस्त्रय तथा उसकी विवृत्ति के व्याख्यान ग्रन्थ का नाम न्यायकुमुदचन्द्र है । तत्त्वार्थवृत्ति पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि नामक टीका की लघुवृत्ति है । अन्तिम ग्रन्थ शाकटायन और अनन्तवीर्य का स्मरण किया है और यह भी लिखा है कि अनन्तवीर्य की उक्तियों की सहायता से वे अकलङ्क के प्रकरणों को समझने में समर्थ हुए । उत्तरकालीन ग्रन्थकारों में जो जैन ग्रन्थकार प्रभाचन्द्र की शैली से प्रभावित हुए तथा जिन्होंने प्रभाचन्द्र के लेखों अनुसरण किया, उनमें सन्मति तर्क टीका के रचयिता अभयदेव सूरि, स्याद्वाद रत्नाकर के रचियता वादिदेव सूरि, लघु अनन्तवीर्य, हेमचन्द्र, मल्लिषेण तथा उपाध्याय यशोविजय भी प्रभावन्द्र से प्रभावित हैं ।[1]

शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव - वीरोदय - पञ्चदश सर्ग - पद्य सं ३८ के अनुसार सत्तरस नागार्जुन की धर्मपत्नी जाकियव्वे श्री शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव की शिष्या हुई और उसने जैन धर्म का पालन किया । सौदत्ति के कन्नड शिलालेख (902-980 ई.) में शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव का उल्लेख हुआ है । कदम्बहल्लि के संस्कृत और कन्नड में लिखे गए 1118 ई. के शिलालेख से ज्ञात होता है कि जिस समय वीर गङ्गहोरसल देव शान्ति और बुद्धिमत्ता से अपना राज्य चला रहे थे, तत्पादपद्मोपजीवी गङ्गराज महाप्रधान की, तलेकाडु पर कब्जा करने से पहले, उन्होंने कोई एक वर माँगने को कहा । उत्तर में गङ्गराज ने विण्डिगन जिले के लिए भूमिदान मांगा और विष्णुवर्द्धन होरसलदेव ने उसको वह दिया । गङ्गराज ने भी उक्त भूमि पाकर शुभचन्द्र - सिद्धान्तदेव के पादप्रक्षालन कर उन्हें सौंप दी । शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव मूलसंघ, देसिग गण, पुस्तकगच्छ तथा कोण्डकुन्दान्वय के थे ।[3]

होसहोललु के संस्कृत और कन्नड शिलालेख (लगभग 1125 ई.) से ज्ञात होता है कि जिस समय वीरगङ्ग होरसलदेव इस पृथ्वी पर राज्य कर रहे थे, उस समय उनके पादपद्मोपजीवी शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव के गृहस्थ शिष्य नौलब सेट्टि नाम के पोटसल सेट्टि थे । देमिकब्बे सेट्टि ने त्रिकूट जिनालय बनवाकर इसके खर्चे के लिए दान में अहिनहल्लि गाँव दिया । इसी के साथ एक उत्तम तालाब, जिसके बीच में दानशाला थी । ऐसी एक गली या सड़क, दो तेल की चक्कियाँ और दो बगीचे भी दिये । यह जिनालय उन्होंने मूल संघ, देसिग गण, पोस्तक गच्छ और कोण्डकुन्दान्वय कुक्कुरासन मलधारिदेव के शिष्य और अपने गुरु शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव को समर्पित कर दिया । बेट्ट नारायण के पुत्र गण्ड नारायण सेट्टि ने निर्दिष्ट दूसरी जमीन दी । यह सब दान नोलवि सेट्टि ने शुभचन्द्र सिद्धान्तदेव के स्वाधीन कर दिया और मूलसंघ के पुस्तक गच्छ का जो कुछ था, उस सभी को चुंगी और कर से मुक्त कर दिया ।[1]

---

1. न्याय कुमुचन्द्र पृ. ११-१२ (प्रस्तावना)
2. जैनशिलालेख संग्रह भाग 2 पृ. २०१
3. जैनशिलालेख संग्रह भाग 2 पृ. ४०३
4. जैन शिलालेख संग्रह भाग 2 पृ . ४३५ - ४३६

पद्मनन्दि सिद्धान्तदेव

कदम्बराज कीर्तिदेव की भार्या मालला श्री पद्मनन्दि सिद्धान्तदेव के चरणों की उपासिका थी ।[1] कुप्पटूरु के कन्नड शिलालेख (1075 ई.) से ज्ञात होता है कि मेरु पर्वत के भरत क्षेत्र के कुन्तल देश में वनवासि प्रदेश में कादम्ब कुल मार्तण्ड कीर्तिदेव राज्य करते थे, जिनका वंशावतार इस प्रकार है - मयूरवर्मा नामके एक राजा युवराज थे । शासनदेवी की कृपा से इनको राज्य मिला था और एक वन को राज्य के रूप में रूपान्तरित किया गया था । एक मयूर के पङ्खों का बनाया हुआ पट्ट उनके सिर पर रखा हुआ था, इसलिए उनका नाम मयूरवर्म्मा था । ये कदम्ब कुल के अभिव थे । उन्हीं की साक्षात् सन्तान कीर्तिदेव थे । उन्होंने सप्त कोंकणों को लीलामात्र में वश में कर लिया था । उनकी ज्येष्ठ रानी मालल देवी थी ।

उस वनवास प्रदेश में अनेक आकर्षणों सहित कुप्पटूर था, जिसके हजार ब्राह्मण अपनी विद्या और भक्ति के लिए विख्यात थे । प्रसिद्ध बन्दणि से सम्बन्ध रखने वाली चीजों में से कुप्पटूर का ब्रह्म जिनालय सबसे आगे था, इसके लिए मालल देवी ने राजा कीर्ति से सिङ्गणि, जो एडे नाड् में सर्वसुन्दर स्थान था, प्राप्त किया था ।

भद्रबाहु के बाद जैन परम्परा में परिपूर्ण रूप से निष्णात, चार अङ्गुल ऊपर जमीन से चलने वाले (चारण ऋद्धिधारक) कुन्दकुन्दाचार्य हुए । उसी कुन्दकुन्दान्वय में मूल संघ / काणूर गण तथा तिन्त्रिणीक-गच्छ के सिद्धान्ति-चक्रेश्वर पद्मनन्दि हुए । पट्टमहिषी मालल देवी ने कुप्पटूर के पार्श्वदेव चैत्यालय को उन पद्मनन्दि सिद्धान्त देव से सुसंस्कृत कराके और उसका नाम वहाँ के ब्राह्मणों (जिनमें साधुओं - मुनियों के गुण थे) से 'ब्रह्म जिनालय' रखवाकर कोटीश्वर मूलस्थान तथा वहाँ के सभी अन्य 18 मन्दिरों के पुरोहितों के साथ तथा बनवासि मधुकेश्वर को भी बुलवाकर उनकी पूजाकर और उन्हें 500 'होन्नु' देकर और उनसे भूमियाँ प्राप्त कर पद्मनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ति के पाद प्रक्षाल पूर्वक दैनिक पूजा और ऋषियों के आहार के लिए दान कर दिया ।[2]

नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती

वीर चामुण्डराय, उनकी पत्नी और उनकी माता ये तीनों ही नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के सेवक हुए और जैनधर्म का महान् उद्योत किया ।[3] चामुण्डराय ने अपना चामुण्डराय पुराण शक संवत ९०० (विक्रम संवत् 1031) में समाप्त किया था । आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती की तीन ही रचनायें समुपलब्ध हैं -

गोम्मटसार, लब्धिसार और त्रिलोकसार । द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ भी इन्हीं का बनाया हुआ है । पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने इसे अन्य आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव की रचना बतलाया है ।

आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने ग्रन्थों की रचना चन्द्रगिरि पर चामुण्डराय के द्वारा निर्मापित जिनालय में इन्द्रनीलमणि निर्मित नेमीश्वर प्रतिबिम्ब के सान्निध्य में की । गोम्मटसार कर्मकाण्ड की प्रशस्ति में इस जिनालय में स्थित बिम्ब का निर्देश है तथा जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड और त्रिलोकसार की आद्य मङ्गल गाथाओं में नेमिजिन को नमस्कार भी किया गया है ।

बाहुबलि चरित के अनुसार जब चामुण्डराय अपनी माता के साथ गोम्मटेश्वर की मूर्ति के दर्शन के लिए पोदनपुर गए थे । तो नेमिचन्द्र भी उनके साथ थे । नेमिचन्द्र को ही यह स्वप्न आया था कि विन्ध्यगिरि पर गोम्मटेश्वर की मूर्ति है । उसके पश्चात् ही चामुण्डराय ने वहां मूर्ति की स्थापना की और नेमिचन्द्र के चरणों में चामुण्डराय ने मूर्ति की पूजा के निमित्त ग्राम अर्पित किए, जिनकी आय छियानवे हजार द्रव्य प्रमाण थी ।[4]

डॉ. रमेशचन्द्र जैन
श्री दिगम्बर जैन मंदिर के पास
बिजनौर

---

1. वीरोदय १५/४२ 2. जैन शिलालेख संग्रह भाग 2 पृ. २६६
3. वीरोदय १५/४०
4. गोम्मटसार जीवकाण्ड (प्रस्तावना पृ. ११
भास्वद्देशी गणाग्रेसरसुचिर सिद्धान्त विन्नेमिचन्द्र
श्री पादाग्रे सदा षण्णवति दशशतद्रव्य भूग्रामवर्यान् ।
दत्वा श्री गोम्मटेशोत्सवन नित्यार्चना वैभवाय
श्री मच्चामुण्डराजो निजपुरमथुरां संजगाम क्षितीशः ॥ ६१

वीरोदय में आगत जैनेतर सन्दर्भ

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'

परम् पूज्य आध्यात्मिक संत, महाकवि श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज कृत 'वीरोदय' महाकाव्य में प्रसङ्गवशात् अनेक जैनेतर प्रसंग आए हैं । कहीं-कहीं काव्य में चारुता लाने हेतु अलङ्कार आदि के समावेश के लिए इस प्रकार के उपमानों का प्रयोग किया गया है जिनका समर्थन जैन परम्परा से नहीं होता है । उदाहरणार्थ द्वितीय सर्ग के 24वें पद्य में कहा गया है कि-

समस्ति भोगीन्द्र निवास एष वप्रच्छलान्ततत्परितोऽपि शेषः ।
समास्थितोऽतो परिरवामिषेण निर्मीक एवानु बृहद्विषेण ॥[1]

यह कुण्डनपुर भोगीन्द्र अर्थात् अति भोग सम्पन्न जनों के तथा दूसरे पक्ष में शेषनाग के निवास जैसा सुशोभित होता है, क्योंकि कोट के छल से चारों ओर स्वयं शेषनाग समुपस्थित हैं तथा परिखा (खाई) के बहाने कोट के चारों ओर बढ़े हुए जलरूपी शेषनाग के द्वारा छोड़ी गई कांचली ही अवस्थित है ।

'भोगीन्द्र' अर्थात् शेषनाग का उल्लेख वैदिक परम्परा में प्राप्त होता है । द्वितीय सर्ग में 28वें पद्य में 'नागलोक' एवं तृतीय सर्ग के 12वें पद्य में अहिपति (सर्पराज शेषनाग) का उल्लेख है । वैदिक परम्परा में यह प्रसिद्ध है कि पृथ्वी शेषनाग के सिर पर अवस्थित है । उसे ध्यान में रखकर ही कवि ने सर्पों के कान न होने की उत्प्रेक्षा की है -

आकर्ण्य भूपालयशः प्रशस्तिं शिरो धुनेच्चेत्कथमेवमस्ति ।
स्थितिर्भुवोऽपीत्यनुमान जातात्कर्णौ चकाराहिपतेर्न धाता ॥[2]

इस सिद्धार्थ भूपाल के निर्मल यशोगाथा को सुनकर अहिपति (सर्पराज शेषनाग) कदाचित् अपना सिर धुने, तो पृथ्वी की स्थिति कैसे रहेगी ? अर्थात् पृथ्वी पर सभी कुछ उलट-पुलट हो जायगा, ऐसा अनुमान हो जाने से ही मानो विधाता ने नागराज के कानों को नहीं बनाया है ।

वैदिक परम्परा में यह माना जाता है कि ब्रह्मा सृष्टि की रचना और महेश्वर सृष्टि का संहार करते हैं । तृतीय सर्ग के १३वें पद्य में कहा गया है कि "विभूतिमत्ता और महेश्वरता को धारण करने वाले इस राजा ने चतुर्वर्ण वाली सृष्टि की रचना रूप समुन्नति को करते हुए भी दृष्टि की विषमता और संहारकता को धारण नहीं किया था ।"[3] तात्पर्य यह है कि महेश्वर की विभूतिमत्ता अर्थात् शरीर में भस्म लगाना और दृष्टि विषमता अर्थात् तीन नेत्र का होना, ये दो बातें संसार में प्रसिद्ध हैं, सो इस राजा में भी विभूतिमत्ता (वैभवशालिता) और महान ऐश्वर्यपना तो था किन्तु नेत्रों की विषमता नहीं थी । महादेव की संसार-संहारकता भी प्रसिद्ध है और ब्रह्मा की सृष्टि रचना भी प्रसिद्ध है । यह राजा सिद्धार्थ अपनी प्रजारूप सृष्टि का ब्रह्मा के समान रचयिता (व्यवस्थापक) तो था, पर महादेव के समान उसका संहारक नहीं था । यहाँ कहने का सार यह है कि इस सिद्धार्थ राजा में 'ब्रह्मा' के गुणों के साथ 'महेश्वर' के गुण तो थे, पर सृष्टि संहारक रूप अवगुण नहीं था ।

विधाता का सृष्टि कर्तृत्व वैदिक परम्परा में प्रसिद्ध है, इसी को व्यंजित करते हुए कवि ने रानी प्रियाकारिणी के विषय में कहा है कि 'विधाता ने पहले चन्द्र को बनाकर पीछे बड़े प्रयत्न से सावधानी के साथ इस रानी के मुख को बनाया । इसीलिए मानों उदार विधाता ने चन्द्रबिम्ब की व्यर्थता प्रकट करने के लिए उस पर रेखा खींच दी है जिसे कि लोग कलङ्क कहते हैं ।'[4]

वैदिक परम्परा में 'अदिति' को देवों की माता कहा गया है । 'वीरोदय' में वसन्त वर्णन के प्रसंग में कहा गया है कि 'अदिति (पृथ्वी) चारों ओर से पुष्प-पराग द्वारा व्याप्त हो गई । दूसरे पक्ष में अदिति (देवों की माता) के स्थान को मधु राक्षस ने घेर लिया ।'[5]

ऐसा कहते हैं कि जगदम्बा बकरे की बलि से सन्तुष्ट होती है । यदि माता भी पुत्र के खून को पीने लगे तब तो फिर रात्रि में भी सूर्य उदित जानना चाहिए ।[6]

---

1. वीरोदय २/२४
2. वही ३/१२
3. वीरोदय ३/२९
4. वही ६/१२
5. वही ६/१९
6. वही ९/४

इस भूतल पर आज मनुष्य अपनी स्त्री के पुत्र लाभ के लिए हर्षित चित्त होकर अजा (बकरी) के पुत्र का नाश कर रहा है । ऐसी आर्यता (उच्चकुलीनता) को क्या कहा जाय ! यह तो अपने वांछित कार्य की सिद्धि के लिए अनर्थ करने वाली महानीचता है ।[1]

वैदिक परम्परा में गृहस्थदशा में भी मुक्ति संभव है । वीरोदयकार के अनुसार इस मान्यता का यह फल है कि नर-कीट स्त्री-पुत्रादि का आश्रय छोड़े बिना ही अब घर में मर रहे हैं । आज कोई विरला ही ऐसा कृतीपुरुष दृष्टिगोचर होता है जो कि काम-सेवा एवं कुटुम्बादि से मोह छोड़कर आत्म-कल्याण करता है ।[2]

'वीरोदय' के नवम् सर्ग के 27वें पद्य में 'सौगत' तथा बीसवें सर्ग के 22वें श्लोक में कवि ने 'तथागत' का उल्लेख कर बौद्ध परम्परा की ओर संकेत किया है ।

एकादश सर्ग के 8वें पद्य में 'कपिल' का उल्लेख हुआ है । इसी सर्ग के 10वें पद्य में 'शाण्डिल्य' ब्राह्मण और उसकी पाराशरिका स्त्री के 'स्थावर' पुत्र का उल्लेख हुआ है । इसी सर्ग के 11वें श्लोक में परिव्राजक के लिए परिव्राट् शब्द का प्रयोग किया गया है । इसी श्लोक में विश्वभूति ब्राह्मण और उसकी जैनी नामक स्त्री के 'विश्वनन्दी' पुत्र का भी उल्लेख है । विश्वभूति के भाई विशाखभूति का पुत्र विशाखनन्दी था, ऐसा इसी सर्ग के 12वें श्लोक में उल्लेख है 11वें सर्ग में पुरुखा भील का उल्लेख है ।[3]

वीरोदय के त्रयोदश सर्ग में इन्द्रभूति (१३/२५), चतुर्दश सर्ग में अग्निभूति एवं वायुभूति (१४/२), आर्यव्यक्त (१४/५), भूदेव (१४/६), मण्डिक (१४/७), मौर्यपुत्र (१४/८), अकम्पित (१४/९), अंचल (१४/१०) मेतार्य (१४/११)और प्रभास (१४/१२) नामक ब्राह्मणों का उल्लेख है जो अपने पाँच हजार शिष्यों के साथ भगवान् महावीर के अनुयायी बन गए ।[4] यह वैसा ही है जैसे श्री चन्दन वृक्ष के समीप में अवस्थित नीम आदि के वृक्ष भी चन्दनपने को प्राप्त होते हैं ।[5]

चतुर्दश सर्ग में क्षत्रिय-बुद्धि महावीर और विप्र-बुद्धि इन्द्रभूति के समागम को गंगा-यमुना के संगम की उपमा दी गयी है ।[6]

पंचम सर्ग के ५७वें पद्य में कहा गया है कि जिस सम्प्रदाय में श्राद्ध में भी गोमांस का विधान था, वे लोग आज गौ को माता कहते हैं और उसका वध नहीं करते, यह प्रभाव वीर शासन का ही है ।[7] तात्पर्य यह है कि वैदिक धर्म में ऐसा विधान था कि - "महाजं वा महोक्षं वा श्रौत्रियाय प्रकल्पयेत्" अर्थात् "श्राद्ध के समय महान अश्व को अथवा महान बैल को क्षोत्रिय ब्राह्मण के लिए मारे और उसका मांस उसे खिलावें" । उस समय प्रचलित इस विधान का आज जो अभाव दृष्टिगोचर होता है वह वीर भगवान् के "अहिंसा परमो धर्मः" के सिंहनाद का ही प्रभाव है ।

'वीरोदय' के सत्रहवें सर्ग के 29वें पद्य में शिव-नाम से प्रसिद्ध रुद्र एवं व्यास ऋषि का उल्लेख किया गया है । अष्टादश सर्ग के 48 वें सर्ग में कहा गया है कि - भरत चक्रवर्ती ने जिन ब्राह्मणों का एक धार्मिक वर्ग प्रस्थापित किया था वह दशमें तीर्थंकर शीतलनाथ के समय तक तो अपने धार्मिक कर्त्तव्य का यथोचित रीति से पालन करता रहा । पुनः इसके पश्चात् धर्म-विमुख होकर जातीयता को प्राप्त होते हुए उन्होंने इस भारतवर्ष में अप्रशस्त प्रथाओं को स्वीकार किया और मन-माने क्रियाकाण्ड का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया ।

इसी सर्ग के ४९, ५०, ५१ वें पद्यों में नारद और पर्वत का प्रसिद्ध उपाख्यान है जिसमें 'अज' शब्द के अर्थ को लेकर विवाद वर्णित है । नारद 'अज' शब्द का अर्थ पुराना धान (जिससे अंकुर उत्पन्न न हो सके) करता था पर्वत 'अज' शब्द का अर्थ 'बकरा' कर 'अजैर्यष्टव्यम्' का अर्थ बकरे से यज्ञ करना चाहिए करता था । यहीं से हिंसात्मक यज्ञों का प्रचलन हुआ। यहां यह बताया गया है कि उपनिषद काल के मुनि वैदिक मंत्रों का अहिंसा परक अर्थ करते थे (१८/५६) । यहां स्वामी दयानन्द सरस्वती का भी उल्लेख हुआ है जिन्होंने वैदिक मंत्रों, का अहिंसापरक अर्थ किया, जो कि प्रशस्त कार्य है ।

1. वही ९/५,
2. वही ९/६
3. वही ११/२१ पृ. १७१
4. वीरोदय १४/४६
5. वही, १४/४५ पृ. २२२
6. वही १४/४७
7. वही १५/५७, पृ. २३८

उन्नीसवें सर्ग के दसवें पद्य में कहा गया है कि तुरुष्क (मुसलमान) 'कुरान' का आदर करता है, किन्तु ईसाई उसे न मानकर 'बाइबिल' को मानता है, इन दोनों का ही 'वेद' में आदर भाव नहीं है, किन्तु ब्राह्मण वेद को ही प्रमाण मानता है, कुरान और बाइबल को नहीं । इस प्रकार 'स्याद्वाद' की सिद्धि होती है जिसमें एक की अपेक्षा तो ग्रंथ प्रमाण है वही दूसरे की अपेक्षा अप्रमाण है, तीसरे की अपेक्षा दोनों ही अप्रमाण हैं ।

'वीरोदय' के उन्नीसवें सर्ग के 17वें पद्य में मीमांसा दर्शन एवं कुमारिल भट्ट का उल्लेख हुआ है तथा कहा गया है कि कुमारिल भट्ट ने 'श्लोक वार्तिक' में इस स्याद्वाद सिद्धान्त को स्थान दिया है । यहां पतञ्जलि महर्षि का भी उल्लेख हुआ है ।

बीसवें सर्ग के 16 में पद्य में कहा गया है कि चार्वाक दर्शन प्रत्यक्ष ज्ञान को ही प्रमाण मानता है । 'वीरोदय' के 22वें सर्ग के 13वें पद में कहा गया है कि जो हिंसा को दोषयुक्त कहे वह हिन्दू है । इसी सर्ग में जैन और वैदिक सम्प्रदाय के आदान-प्रदान का उल्लेख किया गया है ।

मौर्य वंशी राजाओं के पश्चात् इस भूमण्डल पर वैदिक सम्प्रदायी पुनः पशुबलि और हिंसा प्रधान यज्ञों का प्रचार कर अति उद्धतता को प्राप्त हुए तब उनका निषेध परम् आर्हत (अर्हन्त मतानुयायी) जैन लोग करने लगे । इस प्रकार यह सारा देश एक मात्र कलह का स्थान बन गया ।[1] पुनः परम् प्रतापशाली वीर विक्रमादित्य के शासन को प्राप्त कर उक्त दोनों सम्प्रदाय एक ही अनुशासन में बद्ध हो मेल-मिलाप से रहने लगे । जैसे कि चूना और हल्दी परस्पर मिलकर एक रंग को धारण कर लेते हैं ।[2]

इस राजा के शासनकाल में वैदिक सम्प्रदाय-मान्य स्नान, आचमन आदि बाह्य क्रिया काण्ड की विधि को स्वीकार करके उन परम् आर्हत, मतानुयायी जैन लोगों ने अग्नि की उपासना को भी अङ्गीकार कर लिया, यज्ञादिक व्यन्तर देवों की पूजन को भी इस निराडम्बर, मधुर दिगम्बर जैन मत में स्थान मिला और याज्ञिक वेदानुयायी जनों की अन्य भी बहुत सी बातों को जैन लोगों ने अपना लिया ।[3] इधर यज्ञों में पशुबलि करने वाले वैदिक जनों ने भी अहिंसामय जैनधर्म में अति आदरभाव प्रकट करके यज्ञ में पशुओं की बलि करना छोड़ दिया और नाना प्रकार के देवी-देवताओं की उपेक्षा करके श्रेष्ठ मनुष्यों के स्तवन में अपना में चित लगाकर मानव पूजा को स्थान दिया और तभी से उन्होंने महापुरुषों के अवतार लेने की कल्पना की ।[4]

जैन और वैदिकजनों के इस पारस्परिक आदान-प्रदान का यह फल हुआ कि विश्व का कल्याण करने वाला यह जैनधर्म जातीयता का अनुभव करने लगा अर्थात् वह धर्म न रहकर सम्प्रदाय रूप में परिणत हो गया और उसमें अनेक जाति-उप जातियों का प्रादुर्भाव हो गया । अत्यन्त दुख की बात है कि इसके पश्चात् गृहस्थों में और मुनियों में शीघ्र ही गण-गच्छ के भेद ने स्थान प्राप्त किया और एक जैन धर्म अनेक गण-गच्छ के भेदों में विभक्त हो गया ।

उपर्युक्त जैनेतर प्रसंगों के उल्लेख करने के पीछे वीरोदयकार की इच्छा क्या रही है ? इस विषय में वीरोदयकार ने 'वीरोदय' को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'वीरोदय तीर्थमपूर्वमेतत्' (१४/४९) अर्थात् यह वीरोदय तीर्थ अपूर्व है, क्योंकि -

नरश्च नारी च पशुश्च पक्षी देवोऽथवा दानव आत्मलक्षी ।
तस्यैव तस्मिन्नुचितोऽधिकारः परस्परप्रेममयो विचारः ।।[6]

इस वीरोदय तीर्थ में स्नान करने के लिए जो भी आत्मलक्षी नर-नारी, पशु-पक्षी अथवा देव-दानव आया, उसको उसमें समुचित ही अधिकार मिला और सभी जीवों में परस्पर प्रेममय विचार प्रकट हुआ ।

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि वीर के तीर्थ में परस्पर विरोधी जन भी हों तो उनमें भी प्रेममय विचार संभव है अतः जैनेतर प्रसंग भी समाहित किए गये यह कवि की विशाल हृदयता का सूचक भी है ।

एक सुभाषित है कि

लीक-लीक गाड़ी चले लीकहिं चले कपूत ।
लीक छोड़ तीनों चले शायर सिंह सपूत ।।

---

1. वीरोदय, २२/१४ पृ ३३९
2. वही, २२/१५ पृ. ३३९
3. वही, २२/१६ पृ. ३४०-३४१
4. वही, २२/१७
5. वीरोदय २२/१८ पृ. ३४०-३४१
6. वही १४/५० पृ. २२३

पूज्य ज्ञानसागर जी महाराज ऐसे ही संत थे । महाकवि होने से शायर, सद्कार्यों सदविचारों और कुलीन होने से सुपुत्र और स्वाभिमान युक्त होने से सिंहत्व को प्राप्त थे उन्हें वीर के चरित्र को लीक से हटकर विशेष रूप से वर्णनात्मकता की दृष्टि से प्रस्तुत करने का सोचा होगी इसलिए जैनेतर प्रसंगों का भी वर्णन किया ताकि परस्पर विरोधी मान्यताओं के मानने वालों में एक-दूसरे को समझने का अवसर मिले ।

पूज्य श्री ज्ञानसागर जी ने स्वामी दयानन्द जी का उल्लेख किया यहाँ उनका तात्पर्य यह बताना रहा है कि यदि धर्म सिद्धान्तों की कोई सही व्याख्या करने वाला मिल जाये तो गलत मान्यतायें, हिंसक क्रियायें बन्द हो सकती हैं । यहाँ धर्म को सही समझने की प्रेरणा व सही व्यक्ति का बहुमान भी कवि को इष्ट रहा है ।

जगदम्बा के उल्लेख के माध्यम से कवि ने मातृत्व की सही व्याख्या की है कि कोई भी माँ अपने ही पुत्र का भक्षण नहीं करती । यह प्रसिद्ध भी है कि पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाये किन्तु माता विमाता नहीं होती अतः यह धारणा छोड़नी चाहिए कि माँ या देवी देवता किसी की बलि से प्रसन्न होते हैं ।

तृतीय सर्ग के 13वें पद्य में महेश्वर की विभूतिमत्ता अर्थात् भस्म लगाने का उल्लेख किया है जो इस बात का द्योतक है कि सुख विभूति में नहीं है यदि विभूति में सुख होता तो जो साधु भस्मयुक्त अर्थात् शरीर से मलिन हैं वे सुखी नहीं होते? वास्तव में संसार में सुख का कारण तो आत्मविभूति ही है, सांसारिक विभूतियां नहीं । यहाँ संहारकता के पीछे यह मनोभाव हो सकता है कि जब मन में बसे संसार का व्यक्ति संहार करता है, तभी आत्मवैभव की प्राप्ति होती है ।

इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों के उल्लेख के माध्यम से कवि ने दो बातों की ओर उल्लेख किया है एक यह है बहुशिष्यों के होने से गुरु का मार्ग ठीक हो यह उचित नहीं, दूसरे सही विचारों को पाकर बुरे विचार टूटने / बदलने में देर नहीं लगती। इससे एक बात और भी दृष्टिगोचर होती है कि जैनधर्म एक विराट् धर्म है जिसमें योग्यता को स्थान है जाति को नहीं, सजातीय को नहीं।

चतुर्दश सर्ग में भगवान् महावीर और इन्द्र बुद्धि के मिलन को गंगा-यमुना के संगम की उपमा दी है । यहाँ कवि ने दोनों के दो विशेषण भी दिए हैं । महावीर का विशेषण क्षत्रिय बुद्धि जो मेरी दृष्टि में शौर्य का प्रतीक है और इन्द्रभूति के लिए विप्र बुद्धि जो ज्ञान का प्रतीक है । यदि शौर्य और ज्ञान का संगम हो जाये तो आचरण में निर्मलता स्वयमेव आएगी । विवेक के साथ शक्ति हो तो मार्ग से च्युत हो ही नहीं सकते ।

18वें सर्ग के 48वें पद्य में भरत द्वारा ब्राह्मणवर्ण की स्थापना का प्रसंग यह बताने के लिए है कि हमें अपने उद्भव व स्वरूप पर विचार कर आचरण करना चाहिए ताकि हमें हमारा कर्त्तव्य विस्मृत न हो ।

'अजैर्यष्टव्यम्' सूत्र की व्याख्या संबंधी नारद-पर्वत की कथा के माध्यम से कवि को यह बताना अभिप्रेत रहा है कि एक शब्द का गलत अर्थ दे देने या उसे ग्रहण कर लेने पर घोर दोष उपस्थित हो सकता है अतः विद्वानों, व्याख्याकारों का यह दायित्व है कि वे शब्द का अर्थ बिना भय या लाभ के करें ताकि लोग गलत मार्ग न पकड़ लें, सदाचरण से च्युत न हों ?

वेद, कुरान, बाइबिल आदि अपने-अपने सम्प्रदाय के ग्रंथ हैं जिन्हें एक दूसरे को गलत या हीनदृष्टि से देखते हैं यदि इनमें कथन की अपेक्षा का ध्यान रखा जाए तो सभी अपनी-अपनी जगह सही सिद्ध हो सकते हैं । स्याद्वाद यही सिखाता है। परस्पर विचार मंथन से सत्य मिले बिना नहीं रहेगा । वीर का मार्ग तो सहज है, सहज बनकर हम इसे पा सकते हैं क्योंकि इसमें -

खण्डन न मण्डन
कोई न बन्धन

बात बतायी सरल
रखो मन निश्छल

अंधियारे टूट गये
उगे उजियारे ।

वैर के रजकण
प्रीति ने बुहारे ।

दूर हुआ जड़ता ज्वर
रखो मन निश्छल ॥[1]

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन "भारती"
सी - 44, इन्द्रानगर, बुरहानपुर

1. महावीर गीतिका : राम भारद्वाज

वीरोदय में अवान्तर कथाओं का सामाजिक अध्ययन

डॉ. शीतलचन्द जैन

मानव के उत्कर्ष में साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है । साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य मात्र दर्पण नहीं अपितु दीपक भी है, मार्गदर्शक भी है, प्रेरक भी होता है । साहित्य आत्मसाधना का विषय है । उनमें सच्चा साहित्यकार अनुभूतियों को मूर्तिमान करता है ।

आचार्यप्रवर ज्ञानसागर जी महाराज ने वीरोदय महाकाव्य में अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के जीवन चरित्र को निबद्ध तो किया ही है परन्तु उसमें अपनी अनुभूति एवं सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर इस महाकाव्य में अवान्तर कथायें भी दी हैं जो विषय की एकरसता से बचाती हुई सामान्यजन के लिए, रुचिकर, शिक्षाप्रद, मनोरंजक, प्रेरणास्पद है क्योंकि इन कथाओं में सामाजिक एवं व्यक्तिगत मूल्यों की स्थापना होती है, नैतिकता का बोध कर्तव्य के प्रति सजगता, परम्पराओं के प्रति आस्था निहित है । प्राय: ये कथायें संक्षिप्त, आरगर्भित, सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक होती है । उस: इन अवान्तर कथाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त सामाजिक विषमताओं को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया है ।

साहित्यिक ग्रन्थ में सैद्धान्तिक धार्मिक विषयों की प्रस्तुति करना कवि का अनुपम प्रयोग है । संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन से स्पष्ट है कि उसमें षड्ऋतु वर्णन, भौगोलिक वर्णन और नीतिगत वर्णन खूब किया है, परन्तु कर्म सिद्धान्त द्रव्य, गुण, पर्याय, जाति कुल आदि विषयक वर्णन को संस्कृत महाकाव्य में सहज रूप से प्रस्तुत करना बीसवीं शताब्दी में एकमात्र आचार्य ज्ञानसागर जी की देन है ।

इस काव्य में पौराणिक अवान्तर कथाओं का आलम्बन लेकर कवि ने व्यक्ति का हृदय परिवर्तन करके समाज में व्याप्त ऊंच नीच की विषमता को दूर कर समता / साम्यवाद की भावना लाने का प्रयास किया है । समता भाव के आचरण से जैसे व्यक्तिगत जीवन सुख शान्तिमय बनता है उसी प्रकार समता के व्यवहार से सामाजिक जीवन में भी सुख शान्ति का संचार होता है । अत: समता दृष्टि एवं समता पूर्ण व्यवहार व्यष्टि एवं समष्टिगत जीवन दोनों के लिए उपयोगी एवं आवश्यक है । आधुनिक सामाजिक परिवेश में समता मूल्यों की स्थापना के अनुकूल वातावरण निर्माण करने की आवश्यकता है जिससे समतामय विचारों एवं व्यवहारों का विकास किया जा सके ।

समता भाव की स्थापना की दृष्टि से इस काव्य का सोलह, सत्रहवाँ सर्ग अत्यन्त महत्वपूर्ण है । सत्रहवें सर्ग के द्वितीय छन्द में विद्युच्चर और चारूदत्त सेठ की कथा का उल्लेख करते हुए कहा है कि तुम किसी भी प्राणी को ऊंच नीच मत समझो। प्रत्येक प्राणी के अन्दर आत्मा मौजूद है । जो व्यक्ति पूर्व में नीच कार्य करता था वही व्यक्ति कुछ समय बाद अच्छा कार्य कर महान बन सकता है । और जो आज तक महान था वही दूसरे दिन नीच भी हो सकता है । विद्युच्चर नाम का व्यक्ति पूर्व में चोरी करता था परन्तु हृदय परिवर्तन होने पर उसी भव में मुनि बन कर तपस्या करके मोक्ष प्राप्त किया और चारूदत्त सेठ जो अपनी विवाहिता धर्मपत्नी के सेवन की भी इच्छा नहीं करता था वही पीछे वेश्यासेवी हो गया ।[1] हरिषेण कथा कोष में राजमुनि की कथा और श्रीकृष्ण की माता देवकी ने अपने पूर्वजन्म में धीवरी के भव में क्षुल्लिका के व्रत धारण किए ।

कवि ने मनुष्यता की आध्यात्मिक परिभाषा करते हुए कहा है कि "आत्महित के अनुकूल आचरण का नाम मनुष्यता है ।" केवल अपने स्वार्थ साधन का नाम मनुष्यता नहीं है । इस संदर्भ में एक बहुमूल्य बात कही गयी है कि स्वार्थ (आत्मप्रयोजन) से च्युत होना आत्मविनाश का कारण है और परार्थ से च्युत होना सम्प्रदाय के विरुद्ध है । इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने स्वार्थ को संभालते हुए दूसरों का उपकार अवश्य करें मनुष्य समाज का महत्वपूर्ण अंग है । अत: समन्तभद्राचार्य ने श्रावकाचार में आठ निमित्तों के आश्रय से अहंकार बताया है । और उसमें कुल, जाति, बल आदि के अहंकार का निषेध किया है । इस प्रकार धार्मिक ग्रन्थों में कुल जाति के अहंकार के निषेध का महत्वपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है परन्तु संस्कृत साहित्य में यह पहला महाकाव्य है जिसमें जाति कुल आदि के अहंकार को निन्द्य एवं वर्जनीय बताया है कवि ने कहा है कि उच्च और नीच जाति

---

1. पूर्वक्षणे चौरतयाऽतिनिद्यः स एव पश्चाज्जगतोऽभिवन्द्यः ।
यो नाभ्यवाञ्छत्कुलयोषितं स वेश्यायुगासीन्महतावतंसः
वीरो. 17/2

एवं कुल का व्यवहार कुलाश्रित न मानकर गुण और कर्माश्रित मानना चाहिए। इसी महाकाव्य में कवि ने अनेक अवान्तर कथाओं का उल्लेख करके सिद्ध किया है कि कुल और जाति का व्यवहार गुण और कर्माश्रित है। एक अवान्तर कथा में सुदृष्टि नामक सुनार की कथा का विस्तार से उल्लेख करते हुए बताया है कि सुदृष्टि नामक सुनार मुनि बनकर मोक्ष गया[2] और यमपाल नामक चाण्डाल ने अहिंसा व्रत धारण किया तो राजा ने अपना आधा राज्य देकर सम्मानित किया[3] और प्रद्युम्नचरित्र में उल्लेखित कथा को उद्धृत करते हुए कवि ने कहा है कि तिर्यंच गति में उत्पन्न कुलिया ने, मनुष्य पर्याय में उत्पन्न चाण्डाल ने मुनिराज द्वारा बताए गये श्रावकों के अणुव्रतादि बारह व्रतों को धारण किया और उनका भलीभाँति पालन कर सद्गति प्राप्त की है। इसीप्रकार पद्मपुराण में वर्णित अग्निभूति वायूभूति की पूर्वभव की कथा में एक दीन पामर किसान ने भी मुनिदीक्षा ग्रहण की थी। बक राजा का पतित होना और शूद्रक राजा जैसे व्यक्ति का उत्तम पुरुष सिद्ध होना इत्यादि आख्यानकों को कवि ने उद्धृत कर के स्पष्ट किया है कि धर्म धारण करने में या आत्मविकास करने में किसी एक व्यक्ति या जाति का अधिकार नहीं है। जो कोई धर्म के अनुष्ठान के लिए प्रयत्न करता वह उदार मनुष्य संसार में सबका आदरणीय बन जाता है।[4]

आज हम संसार में जिस अवस्था को धारण कर रहे हैं उस अवस्था को भविष्य में दूसरे लोग भी धारण कर सकते हैं और जिस अवस्था को आज दूसरे लोग प्राप्त हैं, उसे कल हम भी प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि कर्म के उदय से जीव की दशा कभी एक सी नहीं रह पाती, हमेशा परिवर्तन होता रहता है, इसलिए मनुष्य को अपनी वर्तमान में उच्च जाति या कुलादि का कभी गर्व नहीं करना चाहिये[5] अभिप्राय यह है कि वर्तमान में प्रचलित जाति और वर्णों को अनादि और अनन्तकालीन बतलाना सर्वथा असत्य है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि उच्च और नीच कुल में जन्म लेने वाले जीवों पर उनके परम्परागत उच्च और नीच आचरण का प्रभाव अवश्य पड़ता है, पर अपवाद सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं उच्चकुलीन लोगों में भी हीनाचरण की प्रवृत्ति देखी जाती है और कहीं नीच कुलीन लोगों में भी सदाचार की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसलिए इसमें एकान्त मत का आश्रय नहीं लेना। उच्च या नीच कुल में जन्म होना पूर्वजन्म संचित संस्कारों का फल है अर्थात् भाग्याधीन है। किन्तु वर्तमान में उच्च-नीच कार्य करना अपने-अपने पुरुषार्थ के अधीन है।

आचार्य ज्ञानसागर द्वारा अपने महाकाव्य में अवान्तर कथाओं को उल्लेख करने का मात्र एक अभिप्राय प्राचीन पुराणों से पुष्ट कथाओं का उल्लेख करके सैद्धान्तिक विचारों को पुष्ट करना है।

इस प्रकार आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के द्वारा कुल-जाति की व्यवस्था अनादि अनन्त न मानकर जैनसिद्धान्तानुसार कर्माश्रित स्वीकार करने के बावजूद सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से तत्कालीन विधवा विवाह के समर्थक ब्र. शीतलप्रसाद जी के 'दृष्टिकोण' का विरोध किया गया है। उन्होंने अपने महाकाव्य में शीतऋतु का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह शीतलप्रसाद अर्थात् शीतकाल का प्रभाव बड़ा भयंकर है क्योंकि यह प्रजाओं में (जनसाधारण) में विवर्णता (कान्तिहीनता) को फैलाता हुआ और निरम्बरों (वस्त्रहीनों) में विस्मय को उत्पन्न करता हुआ फलोदय के आधार भूत वृक्षों को नष्ट कर रहा है। उक्त श्लोक

---

1. विभताङ्गजः सुदृष्टिचरोऽपि व्यभिचारिण्या जनुर्धरोऽपि।
   पश्यतोहरोऽपि मुनितामाप जातेरत्र न जात्वपि शापः॥ वीरो. 17/37
   (क) आख्यान (कथा) बृहत्कथाकोष कथांक 153 पृ. 346
2. हरिषेणरचित बृहदाख्याने यमपाशं चाण्डालं जाने।
   राज्ञाऽर्धराजदान पूर्वक दत्वाऽत्मसुतां पूजितं तकम्॥ वीरो. 17/39
   (क) बृहत्कथाकोष कथांक 74 पृ. 178
3. धर्मेऽधात्म विकासे नैरूस्यैवारित नियतमधिकारः।
   योऽनुष्ठातुं यतते सम्भाल्यतमस्तु स उदारः॥ वीरो.. 17/40
4. तुल्यावस्था च सर्वेषां किन्तु सर्वेऽपि भाविनः।
   सन्ति तस्या अवस्थायाः सेवामो यां वयं भुवि॥ वीरो 17/41
5. विवर्णतामेव दिशन् प्रजास्वयं निरम्बरेषु प्रविभर्त्ति विस्मयम्।
   फलोदयाधारहरश्च शीतल प्रसदा एषोऽस्ति तमां भयङ्कर॥

   वीरो. 1/2 22

में कवि ने अपने समय के प्रसिद्ध ब्र. शीतलप्रसाद जी की ओर व्यंग्य किया है, जो कि विधवा विवाह आदि का प्रचार कर लोगों में विधवा विवाह को प्रचारित कर रहे थे तथा दिगम्बर जैनियों में अति आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे और अपने धर्म विरोधी कार्यों से लोगों को धर्म के फल स्वर्ग आदि की प्राप्ति के मार्ग में रोका अटका रहे हैं ।

अतः इससे स्पष्ट है कि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज अत्यन्त उदार विचारों के होते हुए भी विधवा विवाह के समर्थक नहीं थे । परन्तु उनके द्वारा की गयी जाति कुल की विवेचना से स्पष्ट है कि जो प्राणि को जो कीचड़ में गिर गया है । उसे कीचड़ से निकालकर सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें और समाज उसकी उपेक्षा न करे । क्योंकि सुदृष्टि सुनार की पत्नी का आख्यान और आराधना कथाकोष में वर्णित कार्तिकेय स्वामी का आख्यान इस दृष्टि की पुष्टि करते हैं ।

इस प्रकार महाकाव्य के लेखक कविराज पूज्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज ने जो अवान्तर कथायें काव्य में उद्धृत की हैं, उनका एकमात्र प्रयोजन है कि समाज में फैली विषमताओं को दूर कर समता की स्थापना की जाय ।

डॉ. शीतलचन्द्र जैन
मनिहारों का रास्ता, जयपुर

6. विवर्णतामेव दिशन प्रजास्वयं निरम्बरेषु प्रविभन्ति विस्मयम् ।
फलोदयाधार हरश्च शीतल प्रसाद एषोऽस्ति तमां भयङ्करः ॥
वीरो ९/२२

'वीरोदय' में राष्ट्रचिन्तन

डॉ. शिवसागर त्रिपाठी

भारतीय इतिहास में वीरप्रभू एवं कविप्रसू राजस्थानधरा का अपना गौरवपूर्ण स्थान रहा है । यहां के शूरों ने अपनी मातृभूमि के कण-कण के रक्षार्थ आत्माहुतियां दी है, वहीं क्रान्तदर्शी कवियों दार्शनिकों आचार्यों, ऋषियों, मुनियों, भट्टारकों और वीतराग साधुसन्तों ने अपने जीवन का क्षण-क्षण साहिती जगती की सेवा में खपाया है । यही कारण है कि संस्कृत साहित्य की प्रत्येक विधा की समृद्धि में जैन साहित्यकारों का योगदान अल्प नहीं है । यद्यपि प्रचुर जैन साहित्य संस्कृतेतर लोकभाषा में रचा गया, पर साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने के कारण जैन विद्वानों ने संस्कृत को मनोयोग पूर्वक अपनाया तथा धर्म, दर्शन, समाज और राष्ट्र परक चिन्तन से इसे अनुप्राणित किया ।

संस्कृत में साहित्य परक एवं राष्ट्रपरक चिन्तन धारा वैदिककाल से अद्यावधि प्रवाहित है । वर्तमान शताब्दी के शताधिक महाकाव्यकारों में जैनाचार्य ज्ञानसागर का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है, जो राजस्थानीय सीकर प्रान्तार्गत राणौली ग्रामवासी श्री भूरामल से अभिन्न थे । (आपने संस्कृत में 10 और हिन्दी में 14 कृतियाँ लिखी, जिनमें मूलतः जैन धर्म और दर्शन का उपनिबन्ध हुआ है, पर इनमें राष्ट्रचिन्तन भी अनुस्यूत है । कवि अपने समय का प्रतिनिधि जो होता है ।)

वीरोदय महाकाव्य रस-भाव योजना, प्रकृति चित्रण, छन्दोऽलङ्कार सुषमा, सरल एवं प्रवाहमयी भाषा शैली आदि गुणों के कारण सफल महाकाव्य सिद्ध होता है । इससे धार्मिक दार्शनिक-आध्यात्मिक अनुशीलन, साधना और आचारपक्ष, काव्य शास्त्रीय परिशीलन तथा समाज और राष्ट्र का संस्कृति परक चिन्तन उच्चकोटिक है । इसमें कवि की प्रतिभा कला तथा राष्ट्रभक्ति का चरम विकास परिलक्षित होता है । अतः यह सहृदय संवेद्य है, तथा कान्तासम्मित उपदेश से समन्वित है ।

यह महाकाव्य विशुद्ध चरित महाकाव्य है और जैन धर्म और संस्कृति से अनुप्राणित है, साथ ही इसका कवि संसार से विरक्त, शरीर और भोगों से असम्पृक्त तथा श्रमण संस्कृति का मूर्तिमान् स्वरूप है । यद्यपि एतत्सम्बद्ध से परे विषयों की विशेष आशा नहीं की जा सकती तथापि कवि जिस समाज और राष्ट्र का वासी है, जिस काल परिस्थिति और वातावरण में पला है, उस समस्त का प्रभाव चाहे अनचाहे पड़ता ही है । महाकवि ज्ञानसागर की कृतियों में युगीन सन्दर्भ जुड़े हैं पर उन्होंने अपनी प्रतिभा से उनका स्पर्श इस प्रकार किया है कि वे प्रकृत सन्दर्भ में अनुस्यूत हो गए हैं । इसके अतिरिक्त इनमें यद्यपि धर्म और

सदाचरण की भूमिका व्यष्टि परक है पर उसमें राष्ट्रीय एकात्म्य के स्वर भी मुखरित हुए हैं । जन-समूहगत यह एकात्म्य आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, तप:-साधना, पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा, शकुनाथ-शकुन, आख्यान-उपाख्यान, अनुश्रुति श्रद्धा विश्वास, उपासना, भक्ति और देश प्रेम आदि के रूप में उत्पन्न सामान्य चेतना से सुदृढ़ हो जाता है ।

इसी प्रकार अपने राष्ट्र की भूमि, पर्वतों, वनों, सरिताओं, सागरों, तत्रत्य राजा, जनता, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, धर्म, कला राजनीति और जीवन दर्शन के प्रति जो नैसर्गिक स्वाभिमान उद्भूत होता है, वह भी राष्ट्रीय चेतना के दायरे में आता है। 'वीरोदय' के कवि ने इन सबका चित्रण यथावसर किया है । जिससे यह सहज स्पष्ट हो जाता है कि कवि का मातृभू के कण-कण से प्यार है । देश के प्रति उसका यह परिचय और सद्भाव ही महाकवि निष्ठ स्वराष्ट्रप्रेम का द्योतक है ।

आचार्य श्री की रचनाएँ स्वातन्त्रय / प्राप्ति कालिक है, अत: उस समय की घटनाओं, विश्वासों, कार्यकलापों, मानदण्डों और मूल्यों के संकेत तथा सम्बद्ध शब्दावली के प्रयोग दृष्टिगत होते हैं । 'जयोदय' महाकाव्य में ऐसे बिन्दुओं के अतिरिक्त 18वें सर्ग में श्लेष अलङ्कार के आश्रय से प्रभात वर्णन के प्रसंग में सुभाषचन्द्र बोस डॉ, राजेन्द्र प्रसाद महात्मा गांधी, राजगोपालाचार्य, सरोजिनी नायडू आदि राष्ट्रनेताओं आदि का शब्दश: उल्लेख किया है । स्वराज्य गणतन्त्र की सफलता और राष्ट्रमण्डल से सम्बद्ध पदावली प्रयुक्त हुई है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है ।

> गान्धीरुष: प्रहर एत्यमृत कमाय
> तत्सूत नेहरुचयो बृहदुत्सवाय ।
> राजेन्द्रराष्ट्रपरिरक्षणकृत्तवाय
> मत्राभ्युदेतु सहजेन हि सम्प्रदाय: ॥18/84

वीरोदय में इस प्रकार नेताओं का स्मरण नहीं किया गया है। हाँ अहिंसा और सत्य के पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती को अवश्य राष्ट्रपुरुष एवं प्रशस्य व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है -

> स्वामी दयानन्दरवस्तदीयमर्थं त्वहिंसा परकं श्रमी य: ॥18/57
> कृत्वाद्य शस्तं प्रचकार कार्यं हिंसामुपेक्ष्यैव चेरत्कि कलार्य : ॥

अर्थात् परिश्रमशील स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उन (वैदिक) मंत्रो का अहिंसापरक अर्थ करके बताया है कि हिंसा करना उचित नहीं है । अत: आर्य हिंसा की उपेक्षा करके अहिंसक धर्माचरण करें । उन्होने यह अत्यन्त प्रशस्त कार्य किया है।

इसके अतिरिक्त सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, एकता आदि स्वातन्त्रय-प्राप्ति के अस्त्रभूत बिन्दुओं को अपनी काव्यमयी शैली में उपनिबद्ध किया है, जिनका विवेचन यथास्थान आगे किया जाएगा ।

महाकाव्य के धीरोदात्त नायक भगवान् महावीर को लोकोद्धार और सेवाभावी मनोवृत्ति को चित्रित किया गया हैं । उन्होंने परिवार या गृहस्थ जीवन से बढ़कर समाज और राष्ट्र को माना और त्यागवृत्ति अपनाई । अत: उनके जीवन में धर्म दर्शन आचार के साथ-साथ समाजपरक और राष्ट्रोन्मुख गतिविधियां प्राय: परोक्षत: सुपायित हुई है। उदाहरणार्थ स्वामी महावीर का कथन है कि सांसारिक राज्य तो अस्थिर होते हैं । अत: मैं प्रजा के मन में विद्यमान स्थिर एवं शाश्वत राज्य के लिए प्रत्यनशील रहता हूँ-

> राज्यं भुवि स्थिरं क्वाऽऽसीत्प्रजाया:मनसीत्यत: ।
> शाश्वतं राज्यमध्येतुं प्रयते पूर्णरूपत) ॥8/45

उनका अभिप्रेत है कि भावी राष्ट्र का सुदृढ़ निर्माण किया जाय और ऐसे उपाय किये जायँ कि राष्ट्र में स्थायित्व शाश्वतता तथा शक्तिमत्ता आए ।

महाकाव्य के शीर्षक में जिस 'वीर' का उल्लेख है, वह मात्र भगवान् महावीर नहीं है। उसमें कवि ने राष्ट्र भक्ति एवं राष्ट्रशक्ति संवलित वीर (दयावीर-धर्मवीर-अहिंसावीर आदि) की उद्भावना की है। मात्र तीर्थङ्कर महावीर अभिप्रेत होते, तो शीर्षक 'महावीरोदय' होता । 'वीर ! त्वमानन्दमुवामवीर: 1/5 पद में विरोधालङ्कार के आश्रय से महावीर को विष्णु के समान (अ: = विष्णु: तद्वत्) वीर कहा गया है, जो राष्ट्रवीर का द्योतक है। यह अपने अनेकान्त मत से स्वगुणत: समस्त को एकता के सूत्र में आबद्ध करने में सक्षम है-

> 'एकोऽपि सम्पातितमामनेक–लोकाननेकान्तमतेन नेक: 1/5

नवम अध्याय में स्वयं महावीर के मन में विचार आया कि मुझमें कैसी वीरता है कि लोग मुझे वीर कहते हैं-

चिन्तितः हृदये तेन वीरं नाम वदन्ति माम् ।
किं कदैतन्मयाऽबोधि कीदृशीमाथि वीरता ॥ 10/28

वस्तुतः शस्त्रग्रहण वीरता नहीं है बिना शस्त्र और हिंसा के जो वीरता है वही सच्ची वीरता है। इसी का आश्रय महावीर ने लिया और इसी का आश्रय लेकर महात्मा गांधी ने स्वदेश को अंग्रेजों से मुक्त कराया । वस्तुतः ये ही दोनों सर्वोत्तम विजेता है -

विजयतां वीरेषु वीरः सकः 16/30

वीरोदय महाकाव्य के प्रारम्भ में मङ्गलपाठ, गुरुस्मरण तथा आत्मलाघव प्रकट करने के बाद कवि ने अढ़ाई-तीन हजार वर्ष पूर्व धैर्य और समाज की रूपरेखा व्यक्त करते हुए वैदिकी हिंसा, उपकार जातीय अहङ्कार, पैशाची वृत्ति स्वार्थान्धता पारस्परिक विद्वेष, कुटलता, मर्मभेदनी वाणी, पापाचरण और निरङ्कुशतापूर्ण वातावरण की एक झलक प्रस्तुत की है। इस राष्ट्रीय सङ्कट में और धर्मग्लानि की स्थिति में जनहित में महावीरोदय हुआ-

इति दुरितान्धकाके समये नक्षत्रोघसंकुलेऽघमये ।
अजनि जनाह्लादनाय तेन वीराह्वयवर सुधास्पदेन ॥ 1/39

इसी प्रकार गीता में कहा है कि -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवाते भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

ऐसी ही परिस्थितियाँ स्वातन्त्र्यकाल में थी। विदेशी अनाचार अत्याचार से त्रस्त जनता को स्वातन्त्र्य तो मिला पर अभीप्सित शान्ति और सामाजिक समता नहीं मिली। प्रतीत होता है कि कवि का राष्ट्रचिन्तक मन स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी की परम्परा में किसी ऐसे महापुरुष के अवतरण का आकांक्षी था, जो अहिंसक एवं सुशान्त राष्ट्र की सुस्थापना कर सके ।

कवि महाराज के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा थी । उन्होनें चातुर्वर्ण विभाजन गुण, कर्माश्रित तथा-चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः (गीता 4/13) पर इसे कुलाश्रित मानने के अनर्थ ने जाति व्यवस्था को जन्म दिया वस्तुतः सस्कारों से ही एक उदार एक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व का जन्म होता है यही दूसरा जन्म है। संस्कारों के प्रति ह. आस्था व्यक्ति के लिए और राष्ट्र के लिए भी चाहिए तभी लोकहितकारी स्थिति बन जाती है ।

जो आज राष्ट्र के लिए अभिशाप बन रही है । वस्तुतः जन्मना सभी शूद्र हैं और संस्कारादि से द्विजादि बन जाते हैं। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते । मुनि श्री ने भी लिखा है -जनोऽखिलो जन्मनि शूद्र एव यतेत विद्वान् गुणसंग्रहे वः' अतः जातीयता का अभिमान नहीं करना चाहिए। यह वर्तमान विश्रङ्खलता और संघर्ष की मूल है। वस्तुतः जाति या कुल विशेष में जन्म लेने से वैशिष्ट्य नहीं आता वैशिष्ट्य आता है-आचार से -

'न जातु जातेरुदितो विशेष आचार एवाभ्युदयप्रदेशः 17/29 अपने सदाचरणों से समस्त में एकत्व का भाव जागृत करना चाहिए, जो राष्ट्र का प्राण है। भेद भाव उत्पन्न कर मन में खेद नहीं लाना चाहिए -

'तथा मनुष्येषु न भाति भेदः मूलेऽथतूलेन किमस्तु खेदः' 17/30

वर्णव्यवस्था दोषानुगामिनी तभी हुई जब उसमें जातीयता के अभिमान का समावेश हुआ और धर्म का अर्थ कर्मकाण्ड हो गया -

धर्मधिकर्तृत्वममी दधाना बाह्यं क्रियाकाण्डमिताः स्वमानात् ।

आगे इतिहास का आश्रय लेते हुए आचार्य श्री ने स्पष्ट किया कि यज्ञयागादि के विषय में भी दो वर्ण बन गए थे। समाज असत्य और हिंसा की ओर प्रवृत्त होने लगा था। तत्परक साहित्य रचा गया । वैदिक और औपनिषदिक मन्त्रों का स्वानुकूल अर्थ किया जाने लगा। इस स्थिति में स्वामी दयानन्द आदि धर्म सुधारकों के आगमन से कुछ सुधार अवश्य हुआ ।

आचार्य श्री के मन में एक अहिंसाधर्मी शान्त राष्ट्र की कल्पना थी, अतः अपने इस महाकाव्य में तदनुरुप पात्रों का चयन किया है । प्रथमतः महावीर का जिनका उल्लेख ऊपर धर्म नेता और राष्ट्रचेतना के रूप में किया जा चुका हैं । ततः तृतीय और चतुर्थ सर्गों में आदर्श राजा सिद्धार्थ तथा रानी प्रियकारिणी का साहित्यिक और आलंकारिक चित्रण इस प्रकार किया गया है। कि वे वर्तमान राष्ट्रवादी पुरुष और नारी का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं । इनमें समुद्रपर्यन्त राष्ट्र रक्षा जागरूकता की भावना तथा राष्ट्र के योगक्षेम की सामयिक चिन्ता ध्यातव्य है। आज प्रजातन्त्र के युग में भले ही राजाओं की गरिमा कम पड़ी हो पर इसमे पूर्व वह राष्ट्रदेवता के रुप में प्रतिष्ठित था-'महती देवता हि येषां नररुपेण तिष्ठति (मनु 7/8) राष्ट्र की व्यवस्था प्रबन्ध, संरक्षण आदि का दायित्व राजा पर था। वह प्रजावत्सल था, अतः सम्मान्य था, पूज्य था। वेद का राष्ट्रपुरुष और वीरकाव्य काल का राजा देश की रक्षा और समृद्धि में था निरंकुशता और दुराचारिता से दूर रहकर प्रजाहित के कार्यों में व्यस्त रहता था । इन्हीं परम्पराओं का पालन राष्ट्रभक्त सिद्धार्थ भी कर रहा था। वह स्वयं धीर गम्भीर और नीरोग था (3/35), प्रजावत्सल (4) प्रतापी (6) यशस्वी (7) धनुर्वीर, पुरूषार्थी, वर्णाश्रमव्यवस्था का पोषक (9) वैभवशाली (13)और भूयोविद्य था (14) । उसकी पत्नी पतिव्रता यथार्थनामा प्रियकारिणी थी (15) वह शान्तस्वभावा, सर्वजनप्रिया युक्त राजा तथा रानी दोनों में तथा उनके पुत्र में भी उक्त अधिदेवत्व का आरोपण किया गया है । उसे महात्मा धार्मिक लोक धर्ममर्यादारक्षक, भूत्रयाधिप भी कहा है (57-61) उत्पत्ति के समय उसे 'वीर' कहा है· वीरोऽयमितीह देवः।

इस प्रकार उनके चित्रण मे तथा तत्तत्स्थलों पर वर्षा (सर्ग 4) वसन्त (सर्ग 6) हेमन्त (सर्ग 9) ग्रीष्म (सर्ग 12) शरद, (सर्ग 21) आदि ऋतुओं के वर्णन से महाकवि का राष्ट्रप्रेम और भारत गौरव का भाव प्रकट होता है ।

इसी प्रकार अपने राष्ट्र के पूर्वापर समुद्र (2/8) गङ्गा सिन्धु आदि नदियों (10/17) विदेह (2/9) आदि देशों, प्रासादों नगरों सरोवरों (2/19) वनों, उपवनों, वृक्षो, मृगों (2/13), पञ्जरबद्ध और उन्मुक्त पक्षियों आदि का चित्रण कवि का इसके प्रति समादर स्वाभिमान और प्रेम प्रकट करता है, तथा सहृदय पाठकों के मन में राष्ट्रीय भावना जागृत करता है ।

आज भारत का राष्ट्रीय पशु भले ही शेर/ चीता हो पर प्राचीन भारत का राष्ट्रीय पशु (सम्प्रति नेपाल का) गौ था । इसके प्रति निष्ठा का भाव वेदपुराणेतिहास में प्रचुर मिलता हैं । वेद में उसे 'अघ्या' (1/164/27) और निरुक्त में 'अहन्तव्या भवति" (नि.11/43/2) कहा है । विवेच्य कवि ने गोसम्वर्धन की कामना की है, ताकि गोधन के प्रति आस्थालु प्रजा को दुग्धामृत प्राप्त होता रहे ।

विस्तारिणी कीर्तिरिवाय यस्यामृतस्त्रेवेन्दो रुचिवत्प्रशस्या ।
सुदर्शना पुण्यपरम्परा वा विभ्राजते धेनुततिः स्वभावात् ॥2/20)

महाकवि सामयिक समस्याओं के प्रति भी जागरुक है। स्वतन्त्र राष्ट्र में नर और नारी की समान भूमिका है, जब कि परम्परया नारी की स्थिति दयनीय रही है। सभी और पुरुष का ऐकात्म्य बताते हुए कवि लिखता है- 'नारी बिना सर्व नुश्छाया (8/24) अर्थात् नारी के लिए नर की छाया या शोभा-हत साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि संसार में सबसे बड़ा बन्धन स्त्री बन्धन है, क्योंकि इससे पुरुष की इन्द्रिय जयता में बाधा आती है और वह लोकहित तथा राष्ट्रहित के कार्य पूर्ण नहीं कर पाता ।

अतः कवि ने एक स्वस्थ राष्ट्र की कल्पना में संयम तप और इन्द्रिय जयता पर बल देते हुए ब्रह्मचर्य की अनुपालना सर्वोपरि बताई है । ब्रह्मचर्य पञ्च महाव्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) में अन्यतम है । यह उपाय उपान्त्य जिन पार्श्वनाथ जैसे धर्म नेता और भीष्मपितामह जैसे राष्ट्रनेता दोनों के लिए लाभप्रद है । महाकवि ने उचित ही कहा है -

इन्द्रियाणां तु यो दासः स दासो जगतां भवेत् ।
इन्द्रियाणि विजित्यैव जगज्जेतृत्वमाप्नुयात् ॥ 8/37
सद्योऽपि वशमायान्ति देवाः किमुत मानवाः ।
यतस्तद् ब्रह्मचर्य हि व्रतचारेषु सम्मतम्॥ 8/38

आचार्य ज्ञानसागर ने एकादश सर्ग में महावीर के पूर्व भवों के वर्णन के संदर्भ में जिस दुःस्थिति का चित्रण किया है (11/4) और नवम सर्ग में जगज्जनों की जो तात्कालिक स्थिति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, वह सामयिक स्थितियों से मेल खाता है। आज देश में उस समय की भांति हिंसा, स्वार्थ (39) दुष्काम (7) कलह (8) उदरम्भरि प्रवृत्ति, अकारण शत्रुता, दुर्जनता

(11) भूमि-स्त्री-धनादि के लिए संघर्ष (16) आदि यत्र-तत्र सर्वत्र दृष्टिगत होते हैं । कवि का राष्ट्रप्रेमी मन यह सब देखकर अत्यन्त पीड़ित हुआ। उनकी राष्ट्रीय चेतना इस प्रकार व्यक्त हुई है-

दुर्मोक्षमोहस्य दुतिः कुतस्तथा केनाप्युपायेन विदूरताऽपथात् ।
परस्परप्रेमपुनीत भावना भवेदमीषामिति मेऽस्ति चेतना ॥1/19/17

अर्थात् कठिनाई से छूटने वाले इस मोह का विनाश कैसे हो, लोग किस उपाय से कुमार्ग त्यागकर सुमार्ग पर आवें और कैसे इनमें परस्पर प्रेम की पवित्र भावना जागृत हो, यही मेरी चेतना है ।

कवि के अनुसार इस कदाचार और अनाचार से मुक्ति का उपाय व्यक्ति शिक्षण है। वह कहते हैं कि राष्ट्र के सार्वभौम स्वास्थ्य के लिए जगच्चिकित्सा से पूर्व व्यक्तिचिकित्सा की आवश्यकता है -

'चिकित्सताऽर्थ्याभुवि मच्चिकित्सा विना स्वभावादुत कस्य दित्सा' 11/37

मोहनदास कर्मचन्द गांधी इस युग के महान् विचारक नेता और महापुरुष थे । उनके सिद्धान्तों का उल्लेख प्रसङ्गतः कवि ने अपने इस महाकाव्य में किया है । गांधी जी की भांति मुनिश्री सत्य के शास्त्रीय स्वरूप के पक्षपाती थे- 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम्', परन्तु वह व्यावहारिक सत्य. की भी उपयोगिता स्वीकार करते थे। इस सत्य के लिए बृहदारण्यक लिखता है: 'स आहारदाक्षमिति सत्यम्'। महाभारत में स्पष्ट लिखा है-

न तथ्यवचनं सत्यं नातथ्यवचनं मृषा ।
यद् भूतहितमत्यन्तं तत्सत्यमिति कथ्यते ॥

सत्य की यह परिकल्पना जैन धर्म के अनेकान्तवाद या स्याद्वाद के अधिक निकट है अर्थात् जिसे तुमने देखा, समझा, माना वह भी सत्य है और जो दूसरा मानता हो वह भी सत्य है। गांधी जी के सत्याग्रह में यही सत्य है, जिसका प्रयोग कवि ने प्रस्तुत श्लोक में किया है :

शपन्ति क्षुद्रजन्मानो व्यर्थमेव विरोधकान् ।
सत्याग्रहप्रभावेण महात्मा त्वनुकूलयेत् ॥ 10/34

यहां 'सत्याग्रह' और महात्मा ' पद ध्येय है । इसी प्रकार एकादश सर्ग में इसी भाव को स्वराज्य (आत्मराज्य)के सन्दर्भ में व्यक्त किया गया है ।

स्वराज्यप्राप्तये धीमान् सत्याग्रह दुरन्धरः ।
नो चेत् परिस्खलत्येव वास्तव्यादात्मवर्त्मनः ॥

अर्थात् स्वराज्य की प्राप्ति के लिए बुद्धिमान पुरुष को सत्याग्रह रूप धुरा का धारक होना चाहिए ।

गांधी जी के एक अन्य अस्त्र असहयोग आन्दोलन की भी चर्चा की गई है। जिस प्रकार आत्मशुद्धि रूप सिद्धि के लिए धनकुटुम्बादि से असहयोग और मत्सरादि शत्रुओं का बहिष्कार करना पड़ता है, उसी प्रकार स्वराज्य जैसी महती सिद्धि के लिए असहयोग आन्दोलन का आशय महात्मा गांधी ने लिया तथा अंग्रेज शत्रुओं तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया था -

सिद्धिमिच्छन्भजेदेवासहयोगं धनादिभिः।
अपि कुर्याद् बहिष्कारं मत्सरादेरिहात्मनः ॥ 10/38

इस सम्बन्ध में भगवान् महावीर का उपदेशात्मक कथन कवि के राष्ट्रचिन्तन को अभिव्यक्त करता है कि मैंने आत्मशत्रुओं का बहिष्कार किये बिना असहयोग किया फलतः सफलता नहीं मिली और दुःख प्राप्त हुआ । अतः असहयोग के लिए बहिष्कार आवश्यक है -

तदद्य दुष्टभावानां मयाऽऽत्मबलशालिना ।
बहिष्कार उरीकार्यः सत्याग्रहमुपेयुषा ॥ 10/42

महाकाव्य के पञ्चदश सर्ग में भगवान् महावीर के प्रवचनों की चर्चा है। उनके साररूप में जिन चार तत्त्वों को स्वीकार किया है । वे भी कवि की स्पष्ट राष्ट्रचिन्तन को व्यक्त करते है । ये तत्त्व हैं -

(1) साम्यवाद या सामाजिक समता का सिद्धान्त (2) अहिंसा (3) स्याद्वाद और (4) सर्वज्ञता । इनके आश्रय से ही राष्ट्र स्वतन्त्र, सुदृढ और सर्वगुणी सिद्ध हो सकता है । साथ ही वर्तमान युग की विभीषिका आतङ्कवाद और उग्रवाद पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है ।

विश्वास, विश्व शान्ति, राष्ट्ररक्षा, राष्ट्रसमृद्धि और राष्ट्रसुख (10/1-3) कर्मवाद (16/10), समस्त प्राणियों में आत्मवत्ता और सर्वोपरि अहिंसा तत्त्व में आस्था आदि बिन्दु राष्ट्रचिन्ता के उदात्त भाव हैं । महावीर के शासन के परिप्रेक्ष्य में कवि ने इनका चित्रण षोडश सर्ग में किया है । यहाँ राष्ट्र की वर्तमान स्थिति का भी संकेत किया है कि सम्प्रति स्वार्थ, छल, पाप, कौटिल्य मनस्ताप, पर स्त्री स्पर्श, बेरोजगारी (16/19) पदलोलुपता, पददुरुपयोग, हत्या, अपहरण आदि दुष्कृत्य दृष्टिगत होते हैं।

महाकवि की दृष्टि राष्ट्रचिन्तन तक ही सीमित न थी वह विश्वचिन्तन तक व्याप्त थी। भगवान् महावीर ने समस्त को सत्कर्तव्यों की ओर उन्मुख किया ताकि मानवधर्म और मानव राष्ट्र की प्रस्थापना हो सके । महावीर श्री ने जगज्जेता की व्याख्या इस प्रकार की है-

हिंसायाः समुपेत्य शासनविधिं ये चेन्द्रियैराहताः ।
पश्यास्मिञ्जगति प्रयान्ति विवशा नो कस्य ते दासताम् ।
यश्चाज्ञामधिगम्य पावनमना धीरा अहिंसा श्रियः
जित्वाक्षाणि समावसेदिह जगज्जेता स आत्मप्रिय : । 16/27

इस मानव धर्म की मूल मनुष्यता की व्याख्या करते हुए महाकवि ने लिखा है कि जो दूसरे सज्जन की बात का सम्मान करता है, उसकी छोटी सी भली बात को बड़ी समझता है, वही मनुष्यता को धारण करता है ।

सम्मानयत्यन्यसतस्तुवर्ति सैवाधुना मानवतां बिभर्ति 17/5

वह 'आत्मवत् सर्वभूतेषु को सच्ची मनुष्यता स्वीकार करते हैं -

मनुष्यता ह्यात्महितानुवृत्तिर्न केवलं स्वस्य सुखे प्रवृत्तिः।
आत्मा यथा स्वस्य तथा परस्य विश्वैकसम्वाद विधिर्नरस्य ॥ 17/6

इसी मानवता की प्रशंसा इस यमकानुप्राणित श्लोक में देखिये -

समाश्रिता मानवताऽस्तु तेन समाश्रिता मानवतास्तु तेन
पूज्येष्वताऽमानवता जनेन समुत्थसामा नवताऽप्यनेन ॥ 17/12

अर्थात् जिस पुरुष ने मानवता का आश्रय लिया अर्थात् सत्कार किया, उसने मानवता का आदर किया तथा जिसने पूज्य पुरुषों में अभिमान रहित होकर व्यवहार किया, उसने वास्तविक मानवता को प्राप्त किया। इस मानव धर्म के उपदेश का संकेत आगे भी किया गया है । (18/32-43) महाकाव्य में अनेकत्रा व्यक्ति के यशस्कर कर्तव्यों का निर्देश किया गया है। व्यक्ति से ही राष्ट्र बनता है, अर्थात मानवधर्म से सम्पन्न व्यक्तियों से बना राष्ट्र ही मानवधर्म की सच्ची अनुपालना कर सकता है ।

आचार्य श्री ने 19 वें अध्याय में जैनधर्म के पारिभाषिक तत्त्वों जैसे अनेकान्तवाद, सप्तभंग, पञ्चास्तिकाय आदि का सोदाहरण विवेचन किया है । यद्यपि ये भी व्यक्ति के लिए व्याख्यात है, पर समष्टि के लिए भी इनकी उपयोगिता है विशेषतः अनेकान्तवाद, स्याद्वाद अथवा कथञ्चिद्वाद राष्ट्रचिन्तन के पक्ष में अनेकता में एकता के भाव को प्रकट करता है। स्पष्ट है कि एकान्तवादी सिद्धान्तों में सङ्कीर्णता अहम्भाव गर्हा तथा अन्ततः संघर्ष की स्थिति बनती है। जो धर्मान्धता और पार्थक्य को प्रकट करती है, एकत्व को विनष्ट करती है। ऊपर सत्य का उल्लेख किया जा चुका है, पर सत्य भी जब ऐकान्तिक या एक पक्षीय हो जाता है, तो सत्यत्व से विचलित हो जाता है और दुर्भावना या विद्वेष का जनक बनता है। यह समस्त स्थिति राष्ट्र के लिए घातक है। अतः उत्तम स्थल पर अनेकान्तवाद पर बल दिया गया है, जो व्यक्ति और समष्टि दोनों के लिए विशेषतः राष्ट्र के लिए उपादेय तथा स्वीकार्य है । इसे कवि ने अनेक उदाहरणों से समझाने का प्रयास किया है। यथा प्रस्तुत श्लोक में यद्यपि राष्ट्र पद का अभिमान नहीं किया गया है, पर उसके अवयवों के उल्लेख से महाकाव्यकार का राष्ट्रचिन्तन स्पष्ट है ।

सेनावनादीन् गङ्तो निरापद दाराम सित्रियं किञ्च जला विलापः ।
एकत्र चैकत्वमनेकताऽपि किमङ्गभर्तुर्न धियाऽभ्यवापि ॥ 19/23

अर्थात् सेना एक पद है पर अनेक हाथी, घोड़ा, पैदल आदि का द्योतक है। वन एक पद है पर नानाजातीय वृक्षलतादि का द्योतक है। दारा बहुवचनान्त पद समस्त सभी समाज का तथा बहुवचनान्त अप् पद समस्त जलों का द्योतक है । (इसी प्रकार 'राष्ट्रपद' समस्त धर्म वर्ण जाति आदि से अनुप्राणित एक देश का द्योतक है।) एक ही वस्तु में एकत्व और अनेकत्व की प्रतीति अनेकान्तवाद का वैशिष्ट्य है। अत: अन्तर्देशीय पार्थक्य वैभिन्न्य या वैविध्य का बोध भले ही हो, पर राष्ट्रचिन्तन के पक्ष में वहन उपेक्षित है और न उपादेय वहाँ तो राष्ट्र एक है, महान् है।

धर्म किंवा राष्ट्र के सन्दर्भ में ऊपर जिस अनेकता, जातीयता और संघर्ष की बात कही गई है, आचार्य श्री एक ईमानदार समीक्षक के रूप में जातीयता आ गई है, फलत: यह धर्म न रहकर सम्प्रदाय रह गया है तथा उसमें अनेक जातियों और उपजातियों का प्रादुर्भाव हो गया है । वह अनेक गणगच्छ भेदों में विभक्त हो गया -

जातीयतामनुबभूव च जैनधर्मः
विश्वस्य यो निगदितः कलितुं सुशर्म ।

आगारवर्तिषु यतिष्वपि हन्तखेद-

स्तेनाऽऽश्वभूदिह तमां गणगच्छभेदः ॥22/18

अत: इसके राष्ट्रधर्मत्व अथवा विश्वधर्मत्व पर प्रश्न चिन्ह लग गया है, क्योंकि यह एकत्व से अनेकत्व की ओर उन्मुख हो गया । ऐसी स्थिति यदि राष्ट्र में होती है, तो विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और एकता के सूत्र टूटने लगते हैं। अत: धर्म विशेष की भांति राष्ट्र विशेष के स्थायित्व के लिए एकता का भाव बनाए रखना परमावश्यक है ।

इस प्रकार आचार्य ज्ञानसागर के इस वीरोदय महाकाव्य में राष्ट्रनीति के तत्त्व प्रकीर्णत:विद्यमान है, जिनका समायोजन करने का इस लेख में प्रयास किया गया है। उन्होंने चरितवर्णना के आश्रय से यह बताना चाहा है कि राष्ट्र के प्रजावर्ग की रक्षा के लिए लोकरञ्जक एवं प्रजारक्षक शासक चाहिए न कि प्रजाभक्षक । साथ ही भारतीय जीवन-दर्शन के सत् एवं असत् पक्ष का यथार्थत: चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उसकी रमणीयता और स्पृहणीयता से भारतीय जीवन पद्धति के प्रति लेखों में गौरवपूर्ण भावना सुदृढ़ हो । इसके अतिरिक्त उन्होंने इस काव्य में भावात्मक वैमल्य, एकता, सत्य, सत्याग्रह, असहयोग आदि राष्ट्रनीति के तत्त्वों को काव्यात्मक शैली में अभिव्यक्त किया है । अहिंसा तत्त्व पर सर्वाधिक बल दिया गया है । यों तो 'अहिंसा परमोधर्म:' का सिद्धान्त अतिप्राचीन है, पर उसे जैन धर्म ने सुप्रतिष्ठित किया । इस अहिंसा को सर्वप्रमुख एवं अचूक आस्था के रूप में अपनाकर एक अहिंसक राष्ट्र की कल्पना महात्मा गांधी की देन है । ज्यांपाल सात्र ने ठीक ही कहा था कि 'यदि विश्व में रक्त की एक बूंद बहाए बिना कुछ होने का सपना किसी दर्शन में है, तो वह अहिंसा दर्शन में । मुनिश्री ने भारतीय दर्शन के सत्यों को अपनी रचनाओं में युग प्रतिनिधि के रुप में दिया है, जो प्रशस्य है:-

प्रौढपाण्डित्यसम्पन्नः कवि श्री ज्ञानसागरः ।
अरीरचन्महाकाव्यं गुणालङ्कारभावितम् ॥
'वीरोदया' भिधानस्य व्यक्तुं सार्थकतामिव ।
राष्ट्रचिन्तनतत्त्वानि स्यूतानीति प्रणम्यते ॥

डॉ. शिवसागर त्रिपाठी
ए-65, जनता कॉलोनी,
जयपुर-4

❑❑❑

वीरोदय महाकाव्य की प्रस्तावना का वैशिष्ट्य

डॉ. फूलचन्द प्रेमी

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी द्वारा रचित महाकाव्यों में 22 सर्ग के वीरोदय काव्य[1] में शास्त्रीय दृष्टि से श्रेष्ठ महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान हैं । इसमें विभिन्न रसों एवं प्रकृति के मनोहारी चित्रण द्वारा जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन कर महच्चरित्र की प्रतिष्ठा की गई है । जहां एक ओर यह श्रेष्ट महाकाव्य है, वहीं नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, इतिहास और पुरातत्व के भी दर्शन होते हैं । इस महाकाव्य की विद्वता एवं शोधपूर्ण विस्तृत प्रस्तावना के लेखक पं. हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री के शब्दों में वीरोदय कार ने भगवान् महावीर जैसे सर्वश्रेष्ठ महापुरुष को अपनी कथा का नायक चुना है । जिनका चरित्र उत्तरोत्तर चमत्कारी है । कवि ने यथास्थान सभी ऋतुओं का तथा करुण श्रृङ्गार और शान्तरस का मुख्यता से प्रतिपादिन किया है ।

जैसे सम्पूर्ण शरीर की शोभा मुख से और मंदिर की शोभा उसके शिखर से होती है, उसी प्रकार किसी भी पुस्तक या ग्रन्थ की गरिमा उसकी प्रस्तावना से होती है । क्योंकि सम्पूर्ण ग्रन्थ का हार्द, उसके रचियता का व्यक्तित्व और उसका इतिहास हमें उसकी प्रस्तावना से ही ज्ञात होता है ।

वीरोदय महाकाव्य में जहां आचार्य ज्ञानसागरजी ने अन्तिम तीर्थंकर महावीर की सम्पूर्ण जीवन यात्रा और उनके महनीय अवदान को सुरभारती के माध्यम से सरल किन्तु बड़ी ही गरिमा एवं कुशलता से प्रस्तुत किया है, उसी तरह इस ग्रन्थ के सम्पादक स्व. हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री ने अपनी विद्वत्ता पूर्ण तथा अनुसन्धानयुक्त और तुलनात्मक अध्ययन से भरपूर प्रस्तावना लिखकर तीर्थंकर महावीर के पूर्वभवों से लेकर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व और सिद्धान्तों का वैदिक आदि परम्परा से तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करके इस विषयक सुधी पाठकों को अध्ययन-मनन योग्य महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है । वीरोदय महाकाव्य में वर्णित अनेक विषयों का स्पष्टीकरण तथा विशद विवेचना इस प्रस्तावना की विशेषता है ।

पं. जी 168 पृष्ठीय अपनी प्रस्तावना में मुख्यत: निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है । कविता और काव्य, वीरोदय काव्य की महाकाव्य सिद्धि तथा इसकी अन्यान्य विशेषतायें, प्रत्येक सर्ग की विषयवस्तु, तीर्थंकर महावीर के कल्याणकारी उपदेश, आचेलक्य (दिगम्बरत्व) की विविध परम्पराओं में महत्ता आ. भद्रबाहुकालीन जैनधर्म, जैन धर्म के अनुसार अवतारवाद के स्थान पर उत्तारवाद की महत्ता भ. महावीर के 33 पूर्वभवों का वर्णन तथा उनका औचित्य एवं श्वेताम्बर परम्परा सम्मत 27 पूर्वभवों में से कुछ का अनौचित्य, तीर्थंकर महावीर के जन्म के समय भारत की स्थिति हिंसा की विकरालता का वर्णन भगवान् के गर्भ कल्याण तथा माता के 16 स्वप्न विचार, जन्मकल्याणक, वीर का बाल काल, एवं ज्ञानार्जन, नामकरण, तपस्याकाल के प्रथम वर्ष से लेकर तेरहवें वर्ष तक की समस्त घटनाओं उपसर्गों आदि का विशद वर्णन, केवल ज्ञानोत्पत्ति और गणधर समागम महावीर के समकालीन अनेक धार्मिक सम्प्रदाय, महावीर और बुद्ध के जीवन तथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, बौद्ध तथा जैन आगम एवं महाभारत में वर्णित ब्राह्मण का स्वरूप, अहिंसा का तुलनात्मक अध्ययन भ. महावीर का निर्वाण आदि विषयों का विशद विवेचन अनेक ग्रन्थ प्रमाणों के साथ किया है ।

प्रस्तावना के अन्त में सम्पादक की दृष्टि से उस समय तक अप्रकाशित असग कवि विरचित 'श्री वर्धमान चरित', भट्टारक सकल कीर्ति विरचित 'वीर वर्धमान चरित' रइधू विरचित 'महावीर चरिउ' सिहोरा विरचित 'वड्ढमाण चरित' आदि सात अप्रकाशित किन्तु महत्त्वपूर्ण महावीर चरित विषयक ग्रन्थों का विषय परिचय प्रस्तुत किया है । इनमें से अधिकांश ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं ।

प्रस्तुत प्रस्तावना और उसमें प्रतिपाद्य विषयों का अनेक दृष्टियों से महत्त्व है । यदि इस प्रस्तावना को अलग से प्रकाशित कराया जाए तो वीरोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन नामक एक लघुशोध प्रबन्ध (डिजरटेशन) के रुप में एक स्वतंत्र ग्रन्थ भी हो सकता है ।

अवतारवाद के स्थान पर 'उत्तारवाद' की स्थापना को जैन धर्म की विशेषता बतलाते हुए प्रस्तावना में कहा है कि संसार में प्रचलित अवतारवाद की प्रथा के अनुसार "जो कोई भी महापुरुष यहां पैदा हुआ, उसे ईश्वर का पूर्णावतार या अंशावतार कह

1. 2 वीरोदय काव्य (महावीर चरित्र) , सम्पादक :- पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री
• प्रका. मुनिश्री ज्ञानसागर जैन ग्रं.माला, ब्यावर, 1968.

दिया गया है । भगवान् महावीर ने अपने उपदेशों में कभी अपने आपको ईश्वर का पूर्ण या आंशिक अवतार नहीं कहा, प्रत्युत अवतार वाले ईश्वर का निराकरण किया है । उन्होंने कहा-ईश्वर तो आत्मा की शुद्ध अवस्था का नाम है । एक बार आत्मा के शुद्ध हो जाने पर फिर उसको संसार में अवतार लेने वाली अशुद्ध दशा नहीं हो सकती । और फिर अवतार का अर्थ है- नीचे उतरना । किन्तु उत्तार का अर्थ है- ऊपर चढ़ना अर्थात् आत्मविकास करना ।

अवतारवादी परम्परा में ईश्वर या परमात्मा नीचे उतरता है, मनुष्य बनकर फिर सर्व-साधारण संसारी पुरुषों के समान राग द्वेष मयी हीन प्रवृति करने लगता है किन्तु उत्तारवादी परम्परा में मनुष्य अपना विकास करते हुए ऊपर चढ़कर ईश्वर भगवान् या परमात्मा बनता है । और जैनधर्म ने पूर्ण विकास को प्राप्त आत्मा को ही भगवान् या परमात्मा कहा है, सांसारिक प्रपंच करने वाले व्यक्ति को नहीं । (पृ. 36-37)

वीरोदय महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग में महावीर के 33 पूर्वभवों का वर्णन है। किन्तु 23 वें सिंह भव से लेकर 28 वें महाशुक्र स्वर्ग के देव भव तक 6 भव कम करके कुल 27 पूर्वभवों का वर्णन श्वेताम्बर परम्परा में उपलब्ध हैं । दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा मान्य पूर्वभवों के अन्तर पर स्पष्ट टिप्पणी करते हुए विद्वान् सम्पादक ने अपनी प्रस्तावना में कहा है कि "दिगम्बर परम्परा के अनुसार बाईसवें प्रथम नरक के नारकी भव के बाद भगवान् महावीर का जीव सिंह पर्याय में उत्पन्न होता है और उस भव में चारण मुनियों के द्वारा प्रबोध को प्राप्त होकर उत्तरोत्तर आत्म विकास करते हुए उन्तीसवें भव में चक्रवर्ती होता है। यह कथन सर्वथा युक्ति संगत है । किन्तु श्वेताम्बर परम्परा में प्रथम नरक से निकलकर यकायक चक्रवर्ती होने का वर्णन एक आश्चर्यकारी ही है । खासकर उस दशा में-जबकि उससे भी पूर्वभव में वह सिंह था और उससे भी पूर्व बीसवें भव में वह सप्तम नरक का नारकी था । तब कहाँ से उस जीव ने चक्रवर्ती होने योग्य पुण्य का उपार्जन कर लिया ? श्वेताम्बर परम्परा में सिंह को किसी साधु द्वारा सम्बोधे जाने का भी उल्लेख नहीं मिलता है । यदि वह सम्बोधित कर सन्मार्ग की ओर लगाया गया होता, तो उसके नरक जाने का अवसर ही नहीं आता ।

जैन और बौद्ध यद्यपि दोनों अन्य धर्मों की अपेक्षा अधिक अहिंसावादी माने जाते हैं, किन्तु इन दोनों की अहिंसा में भी जमीन-आसमान का अन्तर है। इस पर प्रस्तावनाकार ने टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "यद्यपि बुद्ध ने त्रस-स्थावर के घात का निषेध ब्राह्मण के लिए आवश्यक बताया है, तथापि स्वयं मरे हुए पशु के मांस खाने को अहिंसक बतलाकर अहिंसा के आदर्श से वे स्वयं गिर गये है और उनकी उस जरा सी छूट देने का यह फल हुआ कि आज बौद्धधर्मानुयायी मांस भोजी दृष्टिगोचर हो रहे हैं । किन्तु तीर्थंकर महावीर की अहिंसा व्याख्या इतनी विशद और करुणामय थी कि आज एक भी अपने जैन या महावीर का अनुयायी कहने वाला व्यक्ति प्राणिघातक और मांस भोजी नहीं मिलेगा (पृ. 125)

भ. महावीर के उपदेशों का यह प्रभाव हुआ कि हिंसाप्रधान यज्ञ-यागादि का होना सदा के लिए बन्द हो गया । देवी देवताओं के नाम पर होने वाली पशु बलि की कुप्रथा भी अनेक देशों से उठ गई, मूढताओं एवं पाखण्डों से लोगों को छुटकारा मिला और लोग सत्यधर्म के अनुयायी बने ।

इस प्रकार वीरोदय की प्रस्तावना में भगवान् महावीर के चरित्र तथा उनके दर्शन से सम्बन्धित विषयों के अनेक तथ्य शोधपूर्ण रुप से प्रस्तुत किये गये । अत: प्रस्तावना लेखन की परम्परा में यह एक आदर्श प्रस्तावना है ।

डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी
वाराणसी - 2

❑ ❑ ❑

बीज

सचमुच व्यक्ति की लाभ हानि से देश की लाभ हानि बड़ी चीज़ है । प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह पहले समूह की भलाई को देखे और फिर अपनी भलाई को । स्मरण रखना चाहिये कि समूह के कल्याण में व्यक्ति के कल्याण का बीज है ।

वीरोदय महाकाव्य में मानवीय अवस्थाओं का प्रासंगिक चित्रण

डॉ. गुलाबचन्द जैन

वीरोदय एक महाकाव्य है । इसमें काव्यगत सभी विशेषताएं हैं। नाना छन्दों से समन्वित, नाना रसों एवं अलङ्कारों से युक्त नगर, उद्यान, रात-दिन, सूर्य, चन्द्र, नदी, सरोवर इत्यादि के साथ मनोरम एवं सरस ऋतुवर्णन से परिपूर्ण है । इसमें धर्म, दर्शन, न्याय, इतिहास, आदि विषय भी उच्च कोटि की साहित्यिक छटा से समलंकृत हैं । यह रचना एक महान् दार्शनिक एवं देशव्रती श्रावक ब्र. भूरामल शास्त्री है जिसमें धर्म व दर्शन का विशेष पुट है, फिर भी ऐसा नहीं है कि उन्होंने अपनी रचना में मानवोचित बालादि अवस्थाओं को स्थान ही नहीं दिया हो । आपने मानव की बालक, युवा एवं वृद्धावस्थाओं को चाहे पृथक् से स्थान नहीं दिया हो किन्तु स्थान- स्थान पर प्रासंगिक उदाहरणों एवं दृष्टान्तों द्वारा इन वर्णन लेख में कतिपय उदाहरणों के साथ दिया गया है जो द्रष्टव्य है -

बाल्यकाल

काव्य के प्रारम्भ में ही महाकवि श्री अपनी अल्पज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं कि यह श्री वीर (महावीर) भगवान् का उदयरूप महाकाव्य है इसके रचने का उसी प्रकार साहस कर रहा हूं जिस प्रकार बालक जल में दिखाई पड़ने वाला चन्द्र बिम्ब को उठाने की इच्छा करता है "दधाम्यं तम्प्रति बालसत्वं वहन्निदानीं जलगेन्दुतत्त्वम्" यहां बाल सुलभ चेष्टा का दिग्दर्शन होता है । इसी प्रसंग में आपने पुन: कह दिया कि वीरोदय की रचना में मैं उसी प्रकार सफल हो जाऊँगा । जिस प्रकार बालक अपने गुरूजनों की अंगुली की सहायता से गन्तव्य स्थान पहुँच जाता है, मैं भी उसी प्रकार गुरूजनों की सहायता से वीरोदय काव्य की रचना करने में सफल हो जाऊंगा ।

"शक्तोऽथवाऽहं भविताऽस्म्युपायाद् भवन्तु मे श्री गुरवः सहायाः।
पितुर्बिलब्धांगुलिमूलतातिर्यथेष्ट देशंशिशुकोऽपि यातिः ॥

भगवान महावीर की बालसुलभ क्रीडा के प्रसङ्ग में आचार्य उत्प्रेक्षा करते हैं कि बालक महावीर अपने नाखूनों से पृथ्वी खोदकर अपने मस्तक पर लगाते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानों पृथ्वी उनको नखों की कान्ति के बहाने अपनी मुस्कुराहट को ही फैला रही हो । यथा -

"कदाचिच्चोद्धवो भालमलञ्चक्रे तदा स्मितम् ।
तदङ्घ्रिनखरश्मीनां व्याजेनाप्याततान सा ॥

बड़े होने पर बच्चों में खेल-खेलने की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है । इस खेल में एक गुल्ली जिसको मोही भी कहा जाता है, होती है और एक डंडा होता है । मोही को गड्डे में डालकर डण्डे की चोट लगाई जाती है । आचार्य ने इसी की कल्पना की है - वे कहते हैं कि बाल्य क्रीडाओं में लगे हुए वीर प्रभु गिल्ली डण्डा का खेल खेलते हुए ऐसी प्रतीति दिलाते हैं कि मोही (गिल्ली) पुरुष संसार रूपी गड्ढे में (मोह में) पड़ता है तब मोही की भांति अर्थात् गिल्ली की भांति ही डंडे खाता है । भाव यह है कि जैसे गड्डे में पड़ी गिल्ली बारबार डण्डे खाकर ही ऊपर उठती है उसी प्रकार मोह के कारण नीचे (नरक में) पड़ा व्यक्ति मार खाकर ही ऊंचा उठता है और अपना उद्धार करता है -

"दण्डमापद्यते मोही गर्तमेत्य मुहुर्मुहुः ।
महात्माऽनुबभूवेदं बाल्यक्रीडासुतत्परः ॥

इसी प्रकार बालक आंख मिचौली का खेल भी रुचिपूर्वक खेलते हैं आचार्य देव कहते हैं कि बालक महावीर आंखमिचौनी खेलते हुए ऐसा अनुभव करते थे कि जो जीव दूसरे के द्वारा आंख मुंदने पर शिर में टक्कर ही खाता है उसी प्रकार परोपदेश से भ्रष्ट हुआ जीव सम्यक्त्व से च्युत होकर संसार में टक्करें ही खाता है । अर्थात् आंख मिचौनी के समान ही जिस जीव की दृष्टि मोह के कारण मुंदी रहती है वह संसार में भटकता ही रहता है यथा -

परप्रयोगतो दृष्टेराच्छादनमुपेयुषः ।
शिरस्याघात एव स्यादिगान्ध्यमिति गच्छतः ॥

युवावस्था

जिस प्रकार आचार्य श्री ने वीरोदय में बाल्यावस्था का पृथक् वर्णन नहीं किया है, उसी प्रकार युवावस्था का भी वर्णन नहीं किया है किन्तु प्रसङ्गानुकूल किंचित किया भी है वे कहते हैं कि जब व्यक्ति बाल्यावस्था पूर्णकर युवावस्था में प्रवेश करता है जो वह कामदेव के वशीभूत हो जाता है । अवस्थानुरूप उसके अंगोपांग भी वृद्धिंगत होते हैं उसका शरीर सुडौल एवं सुन्दर बन जाता है किन्तु भगवान् कामवासना से सर्वथा रहित होकर भी पूर्ण यौवन को धारण कर लेते हैं यथा -

''अतीत्य बालस्य भावं, कौमारमतिवर्त्य च ।
समक्षतोचितां काय, स्थिति माप महामना : ॥

यद्यपि जनसाधारण में युवावस्था नाना प्रकार के कौतुक रचाती है जैसे मदमत्सरता उद्दण्डता, निरर्गलता, स्वेच्छाचारिता इत्यादि किन्तु वीरप्रभु ने इन दोषों में से एक को भी अपने पास नहीं फटकने दिया बल्कि निरभिमान होकर मत्सर भाव छोड़कर आत्मचिन्तन करने लगे । यथा -

नाभिमानप्रसङ्गेन कासारमधिगच्छता ।
न मत्सरस्वभावत्वमुपादायि महात्मना ॥

युवावस्था में प्रायः व्यक्ति कटु भाषी हो जाते हैं, उनका चित्त भी कठोर एवं तनाव में आ जाता है किन्तु वीरप्रभु मृदुभाषी एवं सरल चित्त थे । यथा -

मृदुपल्लवतां वाचः, स्फुरणे च करद्वये ।
शरधिप्रतिमानत्वं चिन्ते चोरुयुगे पुनः ॥

जब लड़का युवा हो जाता है तो माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता हो जाती है और वे सुन्दर तथा कुलीन कन्या की तलाश करने लग जाते हैं । भगवान् के पिता ने भी सुन्दर कन्याओं को ढूंढने का उपक्रम किया । यथा -

सुतरूपस्थितिं दृष्ट्वा तदा रामोपयोगिनीम् ।
कन्यासमितिमन्वेष्टुं प्रचक्राम प्रभोः पिता ॥

लोक में विवाह प्रस्ताव को स्वीकार करने वाले अधिक तथा अस्वीकार करने वाले थोड़े होते हैं । तीर्थंकरों में भी चौबीस में से विवाह प्रस्ताव स्वीकार करने वाले उन्नीस और अस्वीकार करने वाले मात्र पांच ही थे । उन पांचों में भगवान् महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे । पिता सिद्धार्थ ने अनेकों उक्तियों से उन्हें समझाया किन्तु भगवान् ने उन सभी उक्तियों को अपने तर्क पूर्ण उत्तरों से काट दिया और कहा कि-

''प्रभुराह निशम्येदं तात । तावत्किलमुद्यते ।
दारुवेत्युदिते लोक किमिष्टेऽहं सदारताम् ॥

क्या मैं संसार की इस दारुण स्थिति में भी विवाह करू ? संसार के प्राणी तो दुःखी हैं और मैं स्त्री सुख भोगूं ? ऐसा नहीं हो सकता ।

इस पर पिता ने स्त्री की उपयोगिता सम्बन्धी नाना दृष्टान्त दिये किन्तु वीर प्रभु के एक का भी असर नहीं हुआ। संसार में ऐसे जन विरले ही होते हैं । शेष तो सभी स्त्री सुख चाहते हैं ।

प्रत्येक पिता अपने पुत्र के विवाह प्रस्ताव को अस्वीकृत करने पर बड़ा भारी दुःख का अनुभव करते हैं ऐसा भगवान् के पिता सिद्धार्थ ने भी अनुभव किया मानो उनपर हिमपात हो गया हो -

''एतद्वचोहिमाऽऽक्रान्त - मनः कमलतां दधत्'' ।

संसारी जीव मोह के वशीभूत हैं । आप जैसा ही पुत्र को भी बनाना चाहते हैं । यही कारण है कि राजा सिद्धार्थ भी अपने समान अपने पुत्र को भी विवाहित देखना चाहते थे । उन्होंने अपने पुत्र से विवाह न करने का कारण भी पूछा किन्तु प्रभु ने पिता को मोही समझ कर सैद्धान्तिक वचनों से निरुत्तर कर दिया । उन्होंने स्त्री को पुरुष का बन्धन बताया -

''प्रायोऽस्मिन् भूतले पुंसो बन्धनं स्त्रीनिबन्धनम् ।
यदभावे परं किञ्चित् सम्भवेच्च न बन्धनम् ॥

युवावस्था में स्त्री के प्रेम पाश में फंसकर व्यक्ति क्या क्या नहीं करता सभी कुछ करता है इसका चित्रण आचार्य श्री ने अपने वीरोदय में काफी मात्रा में किया है । स्त्री के होने पर मनुष्य सदा मखमली बिस्तरों पर शयन करना चाहता है, शरीर की मार्दवता हेतु उबटन, तैलमर्दन, आदि करता है, स्त्री के दुर्गन्ध युक्त शरीर को सुगन्ध मय बनाने हेतु नाना प्रकार के सुगन्धित इत्र फुलेल लगाता है, स्त्री को प्रसन्न करने हेतु अपने शरीर को नाना प्रकार के वाजीकरण पदार्थ व औषधियों का प्रयोग करके पुष्ट बनाता है । सदा स्त्री के मीठे वचन सुनने हेतु उसकी दासता अंगीकार करता है । इतना ही नहीं युवावस्था में स्त्री के लिये व्यक्ति नाना कुकर्म भी करता है । इन्द्रियों के विषयों के जितने भी कारण है वे सब स्त्री के कारण ही होते हैं । भगवान् ने ऐसा कहकर ही पिता को सन्तुष्ट किया । यथा -

''इन्द्रियाणां तु यो दासः स दासो जगतां भवेत् ।
इन्द्रियाणि विजित्यैव जगज्जेतृत्व माप्नुयात् ॥

युवावस्था में व्यक्ति कितना स्वार्थी बन जाता है कि अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का अहित भी कर डालता है । वह चाहता है कि मैं ही सुखी रहूं दूसरा सुखी रहे या न रहे । इस अवस्था में धर्म के विषय में कुछ नहीं सोचा जाता जो कुछ पाप कार्य उसे नहीं करने चाहिए उनको भी कर गुजरता है । वह स्वयं की प्यास बुझाना चाहता है, दूसरे के प्राणों की भी वह परवाह नहीं करता है ।

''स्वीयां पिपासां शमयेत् परासृजा क्षुधां पर प्राणविपत्तिभिः प्रजा ।

युवावस्था में व्यक्ति पाप पुण्य का भी कोई ध्यान नहीं रखते । अपने हित के लिए दूसरों का अहित नहीं देखते । आपके यदि सन्तान नहीं है और यदि अन्य के पुत्र की बलि देने से या देवी देवताओं के बलि चढ़ाने से होती है तो अन्य जीव का घात करने में भी नहीं चूकेंगे । इसकी ओर आचार्य देव ने संकेत किया है -

''जाया सुतार्थ भुवि विस्फुरन्मनाः कुर्यादजायाः सुत सहृतिं च न'' ।

युवावस्था में प्रायः सभी जन अपनी-अपनी रोटियों सेकने में ही लगे रहते हैं दूसरे की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। इसी स्वार्थ परायणता की ओर दृष्टिपात करते हुए आचार्य कहते हैं -

स्वरोटिकां मोटयितुं हि शिक्षते जनोऽखिलः सम्बलयेऽधुनाक्षितेः ।
न कश्चनाप्यन्य विचारतन्मना नृलोकमेषा ग्रसते हि पूतना ॥

आचार्य श्री ने युवावस्था के चित्रण में नवोढ़ाओं की एक झलक पतंग उड़ाने वाली नवोढ़ा के रूप में भी दिखाई है जिस स्त्री ने अपनी सन्तान को जन्म नहीं दिया है वह सन्तान के बहाने मानों पतंग उड़ाने वाली चर्खी को दोनों हाथों में लेकर बच्चे को झुला रही है - यथा

''पतङ्गतन्त्रायितचित्तवृत्तिस्तदीययन्त्रभ्रमिसम्प्रवृत्तिः ।
श्यामापि नामात्मजलालनस्य समेति सौख्यं सुगुणादहस्य ॥

कटकर आई हुई पतङ्ग को जब युवती उठाती है तो वह ऐसा समझती है कि यह पतङ्ग मेरे पतिदेव की ही है । इस छंद में कवि पतङ्ग के बहाने पति के संदेश की याद की व्याजोक्ति करते हैं -

''पतङ्गकं सम्मुखमीक्षमाणा करेणसोत्कण्ठमना द्रुतं तम् ।
उपात्तवत्यम्बुजलोचनाऽन्या प्रियस्य सन्देशमिवाऽऽपतन्तम् ॥

युवावस्था चाहे युवक की हो और चाहे युवती की हो तत्सम्बन्धी उन्माद, साज-शृंगार, इत्र-फुलेल आदि का लगाना

सुन्दर परिधान पहनना इत्यादि सभी को भाता है । कवि ने अपने काव्य में इसे भी बड़ी चातुरी के साथ दर्शाया है -

"वेषः पुनश्चांकुरयत्यनङ्ग नितम्बिनीनां सकृदाप्लुतानाम्
कण्ठीकृतामोदमयस्त्रजान्तु स्तनेषु राजार्द्र परिप्लवानाम् ॥

आचार्य श्री ने ऋतुवर्णन में भी नवोढ़ा अर्थात् नवीन परिणीता वधु की उपमा शरद् ऋतु से की है -

"परिस्फुरतारकता यथाऽपि सिताम्बरा गुप्तपयोधरापि ।
जलाशयं सम्प्रति मोदयन्ती शरन्नवोढेव यथा व्रजन्ती ॥

स्त्री से अनुराग को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्री ने भगवान् महावीर भी स्त्री अनुराग की उत्प्रेक्षा कर डाली । वे फरमाते हैं कि जैसे साधारण मनुष्य स्त्री के राग में फंसकर उससे विरक्त होना नहीं चाहता वैसे ही भगवान् महावीर भी मुक्ति-वधू के राग में ऐसे रमे अर्थात् अनुरक्त हुए कि आज तक नहीं लौटे । वे उस सिद्धि-वधू के मुख कमल पर ऐसे आसक्त हुए कि हम भक्त जनों की उनको आज तक याद नहीं आई ।

प्रापाथ तादृगनुबन्धनिबद्धभावं
प्रत्यागतो न भगवान् पुनरद्य यावत् ।
तस्या मुखाम्बुरुहि सङ्गतदृष्टिरस्मात्
तस्यैव भाक्तिक जनानपि दृष्टुमस्मान् ॥

वृद्धावस्था

आचार्य देवे ने वृद्धावस्था का भी पृथक् वर्णन नहीं किया किन्तु वृद्धावस्था में भी जीव की कामुक प्रवृत्ति नहीं जाती इस पर अवश्य कुछ लिखा है वे कहते हैं -

"जनैर्जरायामपि वाञ्छ्यते रहो नवोढ्या स्वोदरसंभवाप्य हो ।"

अर्थात् आश्चर्य है कि वृद्धावस्था में भी व्यक्ति नवोढ़ा से काम सेवन की वांच्छा रखता है । किन्तु इसके विपरीत स्त्री पति के शिर में सफेद बाल देखकर उसे छोड़ देने के भाव भी करती है यह संसार की विडम्बना ही तो है । इसी को काव्य में इस प्रकार प्रदर्शित किया है -

"जनी जनंत्युत्कुमिवाभिवाञ्छति
यदा स शीर्षे पलितत्वमञ्चति ।

आचार्य श्री ने भगवान् के अभिषेक हेतु क्षीरसागर को एक वृद्ध पुरुष की उपमा देकर बड़ा सुन्दर रूपक बाधा है - जिस प्रकार वृद्धपुरुष के शरीर में बलियां अर्थात् झुर्रियां पाई जाती है उसी प्रकार क्षीर समुद्र में लहरें पाई जाती है । वृद्ध पुरुष जैसे दन्त रहित हो जाता है वैसे भगवान् के अभिषेक हेतु क्षीरसागर अपने नीर रूपी रद (दांत) से खाली हो रहा है ।

"प्रततावलि सन्ततिस्थितिमिति वा नीरदलक्षणान्वितिम् ।
प्रविवेद च देवता ततः विशदाक्षीररहितस्य तत्त्वतः ॥7-26॥

इसी प्रसङ्ग में क्षीरसागर को अत्यन्त वृद्ध समझकर उसे भगवान् के समीप आने में असमर्थ जानकर देवगण उसे (क्षीरसागर को) ग्लानि रहित एवं करुणा का प्रतीक (वृद्ध) जानकर भगवान् के समीप लाये । अर्थात् वृद्धावस्था में व्यक्ति ग्लानि रहित एवं करुणामय हो जाता है इसी से आचार्य देव ने सागर को वृद्ध की उपमा दी है ।

"अतिवृद्धतयेव सन्निधिः समुपागन्तुमशक्यमम्बुधिम् ।
अमराः करुणापरायणाः समुपानिन्युरथात्र निर्घृणाः ॥

आचार्य देव ने वृद्धों को निस्सहाय निर्विकार एवं करुणा के प्रतीक जानकर उनके अनुनूकल आचरण करने का उपदेश दिया है वे कहते हैं कि "वृद्धानुपेयादनुवृत्त बुद्ध्या" अर्थात् बुद्धिमानों को चाहिए कि वे अपने बड़े वृद्ध जनों के साथ उनके अनुकूल आचरण करें ।

इस प्रकार वीरोदय महाकाव्य में बालपन, युवापन एवं वृद्धापन का स्थान-स्थान पर अपने काव्य की मर्यादा निभाते हुए उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यंग्यादि अलंकारों से वर्णन किया है । मूल श्लोकों को पुष्टि हेतु अंकित भी किया गया है ।

यद्यपि यह महाकाव्य एक तीर्थकर के जीवन पर आधारित है किन्तु महाकाव्य गत सभी बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है मेरा ... रोदय महाकाव्य में मनुष्य की त्रैकालिक अवस्थाओं का प्रसङ्गिक चित्रण" करना है । मैंने प्रस्तुत लेख में सामान्यतया अपनी ... अनुरूप चित्रण किया है । बुद्धिमान लोग इसे अपनी विशेष बुद्धि में ढालकर मुझे अनुगृहीत करें ।

डॉ. गुलाबचन्द जैन
पूर्व प्राचार्य श्री दि. जैन संस्कृत कॉलेज
जयपुर (राज.)

❑ ❑ ❑

वीरोदय में उल्लिखित पौराणिक व्यक्तित्व

डॉ. श्रीयांश कुमार सिंघई

संस्कृत वाङ्मय में पुराण लेखन की परम्परा अर्वाचीन नहीं होना चाहिये । पुराण लेखन की परम्परा अथर्ववेद में उल्लेख है ।[1] ब्राह्मणग्रन्थ[2], आरण्यक[3], उपनिषद्[4], सूत्रग्रन्थ[5], स्मृतियों[6] और महाभारत[7] में भी पुराण विषयक उल्लेख उजागर देखे जा सकते हैं वहां उनका परस्पर कतिपय सम्बन्ध भी हृदयङ्गम होता है । जैन परम्परा में पौराणिकी धारणा विमलसूरि के पउमचरियं से स्वीकृत हो सकती है । जिसकी स्पष्टता लगभग 7वीं शताब्दी से जैन संस्कृत वाङ्मय में सतत परिलक्षित होती आ रही है।

साहित्यसृजन की अपनी अनूठी विलक्षणताओं के कारण कवि की कल्पना पुराकालिक व्यक्तित्वों, तथ्यों इत्यादि को कुछ ऐसा स्वरूप या आकार दे देती है जिससे वह रचना या कविता महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि के रूप में समाहत हो जाती है। पुराण वाङ्मय भी इसका अपवाद नहीं है । पुराण लेखन में कवियों ने अपनी मञ्जुला प्रतिभा का सुप्रयोग किया है और पुरा-प्राचीन तत्त्वों-व्यक्तित्वों को अपनी कविता से अलङ्कृत कर पुराणों की सार्थकता पुरस्थापित की है । कतिपय कारणों से पुराणों को प्रमाण न मानना या उन्हें प्रमाण कोटि से बाहर रखने का प्रयास करना मात्र अज्ञता है । सत्य तो यह है कि पुराणों में व्याप्त तत्त्व पारिभाषिक शब्दावली में स्वीकृत प्रमाण परिधि में समाहित होता है । हाँ, कहीं-कहीं अतिशयोक्तियाँ है तो कहीं अन्धविश्वास का साम्राज्य भी है । जिसका परिहार परीक्षा की कसौटी से संभव है । जिज्ञासुओं और शोधार्थियों के लिये परीक्षा की कसौटी अन्वयव्यतिरेक गम्य व्याप्ति निकष मानी गयी है । जो तथ्य व्याप्तिगम्य हों वे सही हैं और जो नहीं वे नहीं । कुछ भी हो आज भी पुराण वाङ्मय बहुतायत से प्रमाणपने समाहत है । जैन जैनेतर निखिल पुराण वाङ्मय की अपनी पहिचान है ।

---

1. (क) ऋच: सामानि छन्दांसि पुराणं य जुषा सह ।
   उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रता: ॥अथर्व. 11/7/4 (ख) अथर्ववेद 15/1/6
2. गोपथ ब्राह्मण 1/10, 2/10, शतपथ. 11/5/6-8
3. तैत्तरीय. 2/9
4. बृध्दारण्यकोपनिषद् 2/4/11, छान्दोग्योपनिषर 7/1/2. 7/1/4, 7/2/1
5. आश्वलायतगृध्य सूत्र 3/4, 4/6, आपस्तम्ब धर्म सूत्र 2/9/23,
6. व्यास स्मृति 4/45, 1/5, उशनस्मृति 3/34, मनुस्मृति 3/232, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/45-46, 101
7. अनुशासन पर्व, आदि पर्व, वनपर्व देखिये ।

यहाँ यदि निरुक्तकार यास्क की पुराण विषयक निरुक्ति "पुरा नवं भवतीति पुराणं,[8] को देखें तो लगता है कि वीरोदय काव्य के कवि ने पुराणों में उल्लिखित वीर प्रभु के व्यक्तित्व को नया करने का सार्थक प्रयास किया है तो क्या यास्क की दृष्टि में 'वीरोदय' पुराण हो सकता है । यह विचारणीय है । पाणिनीय द्वारा प्रयुक्त 'पुराण' शब्द पुरातन का प्रतीक है । उन्होंने पुरा शब्द से भव अर्थ में ट्यु प्रत्यय[9], करने के पश्चात् तुडागम कर पुरातन शब्द को निष्पन्न किया है । जहाँ पुरातन में ही निपातन से तुडागम का अभाव मानकर पुराण शब्द की सिद्धि स्वीकृत होती है । पुराण शब्द की इस धारणा से जाहिर होता है कि वह रचना पुराण हो सकती है जो पुराकाल में उत्पन्न हुये व्यक्तित्वों को आधार बनाकर सृजित हुई हो । यदि भगवान् महावीर को पुराकालिक मानें तो वीरोदय को पुराण माना जाना शायद केवल इस अपेक्षा संभव हो ।

"पुरा परम्परां वष्टि कामयते" अर्थात् जो प्राचीनता को या परम्परा को पुरस्कृत करने की कामना करता है वह पुराण है । पद्म पुराण[10] की इस निरुक्ति के आलोक में भी वीरोदय का पुरातत्व स्वीकृत करने की बात हो सकती है क्योंकि इसमें कवि ने प्राचीनता को तथा चली आई परम्पराओं को ही पुरस्थापित करना चाहा है ।

वायु पुराण के अनुसार पुराण की व्युत्पत्ति 'पुरा अनति'[11] के रूप में है अर्थात् जो प्राचीन काल में था उसे ही मानों पुनः जीवित करने वाला पुराण है । यहाँ कल्पना करके कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर और समकालीन पुरा व्यक्तित्वों को पुनः लोगों के मन में जीवित करने के लिये कवि ने वीरोदय काव्य लिखा हो -

अन्य मतानुसार - पुराण के पञ्च लक्षण -

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणिच ।
वंश्यानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

उपरोक्त श्लोक के अनुसार पुराण में सर्ग, प्रति सर्ग वश मन्वन्तर, वश्यानुचरित ये पांच लक्षण होना चाहिए ? वीरोदय महाकाव्य में भी पञ्च लक्षणों की झलक देखी जाती है । लेकिन फिर भी इन पञ्चलक्षणों की तरफ से विशेष ध्यान न देकर महाकाव्य के लक्षणों को विशेष ध्यान में रखा । महावीर की कथा वस्तु प्रस्तुत की है ।

वीरोदय में भगवान् महावीर को उनके प्रसङ्गोपात्त यत्किञ्चित् पूर्वभवों के यथा संभव स्मरणोल्लेख के साथ पुरस्थापित करना कवि को अभिप्रेत रहा है । इसके साथ ही कवि जन सामान्य को अहिंसा-अपरिग्रह आदि की भद्रता से परिचित कराना चाहता है, उन्हें तदनुरुप आचरण करने की प्रेरणा देना व मुक्तिमार्ग में प्रवृत्त करने की भावना भी कवि को इष्ट है । अतः कवि सर्ग प्रतिसर्ग आदि की चिन्ता छोड़कर भगवान् महावीर का जन्म से लेकर निर्वाण पर्यन्त सभी विषयों को महाकाव्यत्व के लिये आवश्यक प्रतिमा का सदुपयोग कर लिखता चला जाता है । भौतिक पक्ष वाले काव्य में आया है तथापि उसका लक्ष्य मुक्ति और मुक्तियात्रा विषयक पक्षों की सार्थकता को ही साबित करना ज्ञात होता है इस प्रकार वीरोदय में जन्म से मरण नहीं निर्वाण तक की विषय वस्तु काव्य प्रसूनों से सुसज्जित हुई है । कहना न होगा कि कवि का यह काव्यकर्म वीरोदय को महाकाव्य की श्रेणी में ला देता है ।

वीरोदय में वर्णित पौराणिक, ऐतिहासिक एवं महान, स्त्री पुरुषों की संख्या लगभग 140 के रूप में है ।

पौराणिक पुरुष - ऋषभदेव[13] भरत चक्रवर्ती[14] शीतलनाथ श्रीकृष्ण जरासिन्ध[15], बलभद्र[16] मुनिसुव्रतनाथ[17], श्रीराम[18], पार्श्वनाथ[19], त्रिपृष्ठ नारायण, अश्वग्री व प्रति नारायण[20] आदि पौराणिक पुरुषों के नाम वीरोदय महाकाव्य में आये हैं । शेष नामावली पुराण पुरुण के रूप में न लेकर -ऐतिहासिक एवं महान स्त्री पुरुषों के रूप के लिए जा सकते हैं ।

---

8. यास्क निरुक्त - 3/19
9. पाणिनीय सूत्र 4/3/23
10. पद्मपुराण 5/2/53
11. वायुपुराण 1/203
12. देखिये विष्णु पु. 3/6/24, मत्स्यपुत्र 53/64, ब्रह्मवैवर्तपुराण 133/6 अग्निपु. 1/14, भविष्यपुराण 2/5, मार्कण्डेय पुरान 134/13
13. वीरोदय महाकाव्य 11/5-8
14. वही 18/46-49
15. वही 18/3-4
16. वही 17/42/43
17. वही 18/49-52
18. वही 17/29
19. वही 8/38-41
20. वही 11/11-19

काव्य के नायक भगवान् महावीर पौराणिक महापुरुष हैं । अब हम उन भगवान् महावीर के पूर्वभवों को भी पौराणिक व्यक्तित्व के रूप में प्रदर्शित करना चाहेंगे । वीरोदय में पूर्वभव विषयक वृत्त एकादशम सर्ग में है जिसके अनुसार महावीर के पूर्व भवों का उल्लेख इस प्रकार है - पुरुरवा भील,' मारीचि, वैमानिकदेव, द्विज, कुयोनियों में परिभ्रमण, स्थावर द्विज, माहेन्द्र स्वर्ग में देव, विश्वनंदी, महाशुक्र स्वर्ग में देव, त्रिपृष्ठ नारायण, रौरव नरक का नारकी, सिंह प्रथम नरक का नारकी, सिंह, सौधर्म स्वर्ग में देव, कनकोज्जवल राजा, लान्तव स्वर्ग में देव, श्री हरिषेण, महाशुक्र स्वर्ग में देव, प्रियमित्र चक्रवर्ती, स्वर्ग में देव, नन्दराजा अच्युतस्वर्ग में देव, भगवान् महावीर ।[21]

यहां पुरूरवा भील के बाद सौधर्म स्वर्ग के देव का एक भव तथा जटिल नामक ब्राह्मण के भव के बाद सौधर्म स्वर्ग के देव का भव, पुष्यमित्र ब्राह्मणका भव, सौधर्म स्वर्ग के देव का भव, अग्निसह ब्राह्मण का भव, सानत्कुमार स्वर्ग में देव का भव, अग्निमित्र ब्राह्मण का भव, महेन्द्र स्वर्ग में देव का भव, भारद्वाज ब्राह्मण का भव और माहेन्द्र स्वर्ग में देव का भव इस प्रकार नौ भव कुल मिलकर दस भवों को उल्लेख वीरोदय में नहीं है जबकि दिगम्बर परम्परा सम्मत पुराणों में इनका समावेश है ।

भगवान् महावीर के ग्यारह गणधरों को भी पौराणिक व्यक्तित्व के रूप में शामिल किया जा सकता है जो वीरोदय के चतुर्दश सर्ग में उल्लिखित हैं । तदनुसार "इन्द्रभूति गौतम, अग्निभूति और वायुभूति तीनों भाई क्रमश: भगवान् महावीर के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय गणधर हुये थे । ये तीनों यज्ञविद्याविज्ञ, वेदरहस्य के ज्ञाता तथा संस्कृत के निष्णात पंडित थे इनके मातापिता ब्राह्मण बसुभूति और पृथिवी देवी निर्दिष्ट हैं ।

चतुर्थगणधर आर्यव्यक्त ब्राह्मण कुलोत्पन्न धनमित्र और वारूणी के पुत्र थे । सुधर्म नामक पाँचवें गणधर भूदेव और भद्दिला के पुत्र थे यही उपान्त्य केवली सुधर्म स्वामी कहलाये ।

छठवें गणधर मण्डिक हैं जिनके माता पिता धनदेव एवं विजया निर्दिष्ट हुये हैं । सातवें गणधर मौर्यपुत्र थे, जिन्हें मौर्य एवं विजया का पुत्र बताया है, इन्होंने महावीर का सामीप्य पाकर अपने अज्ञान तिमिर को मिटाकर मुनिदीक्षा ली थी । मिथिला निवासी अकम्पित, जिनके पिता देव और माता जयन्ती थी भी महावीर से दीक्षा लेकर पिता अष्टम गणधर हुये । कौशलापुरी निवासी बसु और नन्दा के पुत्र अचल ने महावीर का शिष्यत्व स्वीकार करके नवम गणधर होने का गौरव पाया था । दशवें गणधर मेतार्य को परम कान्ति सम्पन्न निर्दिष्ट कर उन्हें तुंगिक सन्निवेश निवासी श्रेष्ठ ब्राह्मण दत्त और वारूणी का पुत्र कहा है[24] । इस प्रकार हम देखते हैं वीरोदय में गणधरों और उनके माता पिता का संक्षिप्त परिचयात्मक उल्लेख है ।

वीरोदय में लगभग 35 राजाओं का उल्लेख है, जिनका व्यक्तित्व इतिहास आदि की दृष्टि से आकलित किया जा सकता है तथा पुराणोल्लिखित उनके व्यक्तित्व से समीक्षात्मक निष्कर्ष नि:सृत किये जा सकते हैं । यहाँ मैं उनमें से कुछ के नाम इंगित कर रहा हूँ - (1) श्रेणिक (2) चेटक (3) दधिवाहन (4) काशीनरेश शंख (5) हस्तिनापुर नरेश शिव (6) कोटिवर्ष के राजा चिलाति (7) वीतभयपुर के राजा उद्दायन(8) कौशाम्बी के राजा सतानिक (9) उज्जयिनी नरेश प्रद्योत (10) राजपुरी के जीवक या जीवन्धर स्वामी (11) सूर्यवंशी नृप दशरथ (12) दधि वाहन (13) उष्ट्रदेश के राजा यम (14) कलिङ्ग नरेश खारवेल (15) इक्ष्वाकुवंशी राजा पद्म (16) सम्राट् (17) मरूवर्मा (18) परंलूर (19) पुरूषराज (20) सत्तरस (21) वीरवल्लाल (22) कीर्तिदेव (23) काडुवेरी आदि ।

वीरोदय में इन राजाओं का उल्लेख महावीर का शिष्यत्व अङ्गीकार करने के कारण हुआ है इनके राज्यों में भी भगवान् का समवसरण सहित विहार हुआ था तथा धर्मतीर्थ का प्रवर्तन भी हुआ था[25] ।

यहां यह स्वीकार करना चाहिये कि वीरोदयकार ने पौराणिक व्यक्तित्वों का सदुपयोग केवल अपने कथ्य के प्रयोजन को सुदृढ़ करने हेतु किया है उनकी विवेचना करना उसका लक्ष्य नहीं है । पौराणिक या ऐतिहासिक व्यक्तित्वों को निदर्शन तथा उल्लिखित करने में कवि ने नि:संकोच रूचि दिखाई है । कौन ऐतिहासिक, कौन पौराणिक यह निर्णय विचारणीय अवश्य है तथापि प्रस्तुत लेख में जो दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है वह समीक्षात्मक अध्ययन के लिये प्रेरित अवश्य करता है । यत्किञ्चित् पौराणिक झलक की प्रस्तुति कर मेरी अभिलाषा है कि पौराणिक - ऐतिहासिक व्यक्तित्वों पर समीक्षात्मक शोधकार्य गतिशील हो ।

डॉ. श्रीयांसकुमार सिंघई
जयपुर 302017

23. वही 11/8-37
24. वही 14/1-11
25 वही 15/16-53

वीरोदय का मूल स्रोत : उत्तरपुराण की महावीर कथा

डॉ. जयकुमार जैन

भगवान् महावीर का पावन चरित आचार्यों, कवियों और लेखकों को प्राचीन काल से ही आकर्षित करता रहा है। संस्कृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं में भगवान् महावीर के जीवन चरित पर विविध रचनाएं लिखी गई हैं।

दिगम्बर परम्परा में भगवान् महावीर के जीवन-सूत्र सर्वप्रथम आचार्य यतिवृषभकृत तिलोयपण्णत्ती में प्राप्त होते हैं। इसके चतुर्थ महाधिकार में तीर्थङ्कर का गत भव, नाम, नगरी, जन्मस्थान, माता-पिता, आयु कुमारकाल, शरीर की ऊँचाई, राज्यकाल, वैराग्य, दीक्षातिथि, पारणा तथा निर्वाण तिथि आदि का विवेचन हुआ है। वहा भगवान् महावीर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान् महावीर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान् महावीर कुण्डलपुर में पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी से चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुए। श्री वर्धमान स्वामी ने मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन अपराह्न में उत्तरा नक्षत्र में नाथ वन में तृतीय भक्त के साथ महाव्रतों को ग्रहण किया।[1] तिलोयपण्णत्ती के प्रथम अधिकार में कहा गया है कि चतुर्थ काल के अन्तिम भाग में 33 वर्ष 8 माह 15 दिन शेष रहने पर वर्ष के प्रथम मास श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन अभिजित् नक्षत्र के समय धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई -

> एत्थावसप्पिणीए चउत्थकालस्स चरिमभागम्मि ।
> तेत्तीस वास अडमासपण्णरसदिवस सेसम्मि ॥
> वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए ।
> अभिजीणक्खत्तम्मि य उत्पत्ती धम्मतित्थस्स ॥[2]

इसी बात को वीरसेनाचार्य ने कसायपाहुडसुत्त की जयधवला टीका में कहा है कि इस भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के चतुर्थ दुःषमासुषमा काल में 9 दिन और 6 मास अधिक 33 वर्ष शेष रहने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई।[3] वीरसेनाचार्य के इस काल में 2 माह 6 दिन का अन्तर है। उन्होंने अपने कथन की पुष्टि में कुछ गाथायें उद्धृत की हैं, जिनमें अपने महावीर के धर्मतीर्थ की उत्पत्ति का कथन है। उक्त 2 माह 6 दिन = 66 दिन का अन्तर इसलिए आया क्योंकि गणधर के अभाव में 66 दिन तक भगवान् महावीर की दिव्य ध्वनि की प्रवृत्ति नहीं हुई। इस तथ्य का समाधान वीरसेनाचार्य ने स्वयं कर दिया है। इसके पश्चात् 783 ई. में लिखित जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण में प्रसंगतः भगवान् महावीर का संक्षिप्त चरित वर्णित हुआ है। जितशत्रु का वर्णन करते हुए वहां कहा गया है कि इससे महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ की छोटी बहिन का विवाह हुआ था। यह जितशत्रु महावीर के जन्मोत्सव के समय कुण्डलपुर आया था। वह बाद में अपनी यशोदया रानी से उत्पन्न यशोदा का विवाह महावीर से करने की इच्छा रखता था। परन्तु महावीर जगत् का कल्याण करने के लिए अभिनिष्क्रमण कर तप में लीन हो गये थे। जितशत्रु भी केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त हुए। भगवान् महावीर भक्तों के संबोध कर पावानगरी पहुँचे और वहाँ के मनोहर उद्यान में विराजमान हो गये। जब चतुर्थ काल की तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रहे तब स्वाति नक्षत्र में कार्तिक की अमावस्या के दिन प्रातःकाल स्वभाव से ही योग निरोधकर घाति या कर्म रूप ईंधन के समान अघातिया कर्मों को भी नष्टकर मोक्ष को प्राप्त हुए। तभी से लेकर भगवान् के निर्वाण कल्याणक को भरत क्षेत्र में दीपमालिका के रूप में मनाया जाने लगा है।[4] इसके बाद भगवान् महावीर की परम्परा का संक्षिप्त वर्णन हुआ है।

---

1. सिद्धत्थराय पियकारिणिहिं णयरम्मि कुंडले वीरो ।
   उत्तरफग्गुणिरिक्खे चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो ॥
   मग्गसिर बहुलदसमी अवरण्हे उत्तरासुणाधवो ।
   तदियरववणम्मि गहिदं महावदं वड्ढमाणेण ॥
   तिलोयपण्णत्ती, 4/549. 667
2. तिलोयपण्णत्ती, 1/68-69.
3. एदस्स भरहखेत्तस्स ओसाप्पिणीए चउत्थे दुस्समसुसमकाले णवहि दिवसेहि छह मासेहि य अहिय तैंतीसवासावसेसे तित्थुप्पत्ती जादा । - जयधवला, भाग - 1, पृ. 74.
4. हरिवंशपुराण, 66वां सर्ग, श्लोक 6-21

तिलोयपण्णत्ती, धवला-जयधवला एवं जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण का यह वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म है और इसे वीरोदय महाकाव्य का स्रोत नहीं माना जा सकता है । प्रथम विस्तृत वर्णन हमें गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण (रचनाकाल 897 ई. से कुछ पूर्व) में प्राप्त होता है । उत्तरपुराण के अन्तिम तीन (74-76) पर्वों में भगवान् महावीर और उनकी शिष्यपरम्परा का वर्णन हुआ है । यही वीरोदय महाकाव्य की कथावस्तु का मूल स्रोत है । उत्तरपुराण में भगवान् महावीर के चरित का चित्रण पुरूरवा भील के भव से लेकर महावीर तक के भव का एक ही पर्व में किया गया है । महाकाव्य की शैली के अनुसार समुचित परिवर्तन परिवर्धन करते हुए परमपूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने इसे 22 सर्गों का विशाल कलेवर प्रदान किया है ।

उत्तरपुराण में पूर्वभवों का वर्णन करने के बाद महावीर का वर्णन हुआ है । इसी भरत क्षेत्र के विदेह में कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ और उनकी रानी प्रियकारिणी थी । रानी ने चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन एक पुत्र को जन्म दिया । इन्द्राणी मायामयी बालक को माता के पास सुलाकर उस पुत्ररत्न को उठा लाई और उसे इन्द्र को सौंप दिया । इन्द्र उसे ऐरावत हाथी के कन्धे पर बैठाकर सुमेरू पर्वत पर ले गया । वहां सिंहासन पर विराजमान कारके उसने क्षीरसागर के जल से उसका अभिषेक किया। फिर इन्द्राणी ने उस बालक को वापिस माता के समीप सुला दिया । महावीर तीस वर्ष तक कुमार काल में रहे । तदनन्तर उन्होंने वन में जाकर मगसिर कृष्ण दशमी के दिन फाल्गुनी नक्षत्र के मध्य संध्या के समय संयम को धारण कर लिया । पारणा के लिए महावीर कूलग्राम गये । वहां के राजा ने उन्हें खीर का आहार दिया । एक दिन ऋजुकूला नदी के किनारे वृक्ष के नीचे वेला नियम धारण कर वैशाख शुक्ला दशमी के दिन दोपहर में हस्ता और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और वे परमात्मा बन गए । कार्तिक काल अमावस्या के दिन उन्हें मुक्ति की प्राप्ति हुई ।[1]

उत्तरपुराण की इस महावीर कथा को ही वीरोदय में अपनाया गया है, किन्तु कवि ने काव्य की दृष्टि से सौन्दर्याधान हेतु कुछ परिवर्तन-परिवर्धन भी किये हैं, जो इस प्रकार हैं -

1. उत्तरपुराण में आचार्य गुणभद्र ने वर्धमान स्वामी की स्तुति करते हुए सीधा उनके पूर्वभवों का वर्णन करना प्रारंभ कर दिया है । आचार्य ज्ञानसागर ने कथा को चमत्कारी बनाने के लिए पहले भगवान् महावीर का वर्णन किया है । और तदनन्तर 11वें सर्ग में स्वयं उनकी ध्यानावस्था में अवधिज्ञान के माध्यम से पूर्वभवों का स्मरण कराके मिथ्या आचार को उनके स्वयं के कुबीज का फल कहा है । महावीर स्वयं सोचते हैं -

पौत्रोऽहमेतस्य तदग्रगामी मरीचिनाम्ना समभूच्च नामी ।
ययौ ममायं कपिलक्षणेनार्जितं मतं तत्कपिलक्षणे ना ।।वी. 11/8

2. उत्तरपुराण में भगवान् महावीर से पूर्व की स्थिति का वर्णन नहीं किया गया है । वीरोदय महाकाव्य में कवि ने प्रथम सर्ग के 10 श्लोकों (30 39 तक) में पूर्व महावीर कालीन भारत की दुर्दशा का जो करूण वर्णन किया है, वह सहज ही पाठकों के दिल को प्रभावित करने में समर्थ है । इस वर्णन में उन्होंने प्रधान रूप से पशुबलि, नरबलि, जाति-कुल का मद तथा अपकार एवं विद्वेष की भावना का करुण चित्र अंकित किया है । इस सन्दर्भ में एक श्लोक द्रष्टव्य है -

परस्परद्वेषमयी प्रवृत्तिरेकोऽन्यजीवाय समात्तकृत्तिः ।
न कोऽपि यस्याथ न कोऽपि चित्तं शान्तं जनः स्मान्वयतेऽपवित्तम् ।।

।। वीरोदय 1/36।।

3. उत्तरपुराण में देश नगर ग्राम आदि का नाम मात्र उल्लिखित हुआ है, जबकि वीरोदय में काव्योचित आलङ्कारिक शैली में इनका अत्यन्त मनोहारी नर्णन हुआ है । सभी क्षेत्रों में भारतवर्ष की प्रधानता का वर्णन करते हुए मुनिवर आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने लिखा है

तत्त्वानि जैनागमवद्विभर्ति क्षेत्राणि सप्तायमिहाग्रवर्ती ।
सदक्षिणो जीव इवाप्तहर्षस्तज्ञासकौ भारत नाम वर्षः ।। वी. 2/5

इस श्लोक में साततत्त्वों में प्रधान जीवतत्त्व के समान सात क्षेत्रों में भारतवर्ष की प्रधानता का कथन सर्वथा नवीन उपमान है ।

1. द्रष्टव्य - उत्तरपुराण, पर्व 74-76.

4. उत्तरपुराण में राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी का नाम मात्र का संक्षित कथन हुआ है । वीरोदय में इनका विस्तार से कथन करते हुए इन्हें आदर्श राजा एवं रानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । राजा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है -

रवेर्दशाऽशापरिपूरकस्य करैः सहस्रैर्महिमा किमस्य ।
समक्षमेकेन करेण चाशासहस्रमापूरयतः समासात् ॥ वी. 3/3

इसी प्रकार रानी प्रियकारिणी नाम की सार्थकता का वर्णन करते हुए महा कवि ने लिखा है -

छायेव सूर्यस्य सदानुगन्त्री बभूव मायेव विधेः सुमन्त्रित् ।
नृपस्य नाम्ना प्रियकारिणीति यस्याः पुनीता प्रणयप्रणीतिः ॥
वीरोदय 3/15

5. उत्तरपुराण में षोऽश स्वप्नों का वर्णन हुआ है । वीरोदयकार ने यद्यपि परम्परागत इन्हीं 16 स्वप्नों का वर्णन किया है, तथापि उनका वर्णन अत्यन्त सुन्दर है । इन स्वप्नों का फल पढ़कर तीर्थंकर ने जन्म के ऐश्वर्य का सहज ही चित्र में अंकन हो जाता है । गर्भावतरण के समय आषाढ़ शुक्ला षष्ठी की तिथि थी । इस समय वर्षा ऋतु का वर्णन महाकाव्य की परम्परा के अनुसार अति सुन्दर किया गया है । यहां एक श्लोक द्रष्टव्य है -

'वृद्धस्य सिन्धोः रसमाशु हत्वा शापादिवास्येऽलिरुचिन्तु धृत्वा ।
अथैतदागोहृतिनीतिसत्त्वाच्छणात्यशेषं तमसौ तडित्वान् ॥
वीरोदय 4/12

6. तीर्थंकर के गर्भ में आने पर उत्तरपुराण में अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन हुआ है । वीरोदय महाकाव्य में कुमारिका देवियों द्वारा माता प्रियकारिणी की सेवा तथा विधि प्रश्नों द्वारा उनके मनोरंजन का मनोरम चित्रण हुआ है । इस अवसर पर कवि द्वारा छठे सर्ग में किया गया वसन्त ऋतु का वर्णन अनुपम है । इम प्रसंग में दो श्लोक द्रष्टव्य हैं -

वन्या मधोः पाणिधृतिस्तदुक्तं पुंस्कोकिलैर्विप्रवरैस्तु सूक्तम् ।
साक्षी स्मराक्षीणहविर्भुगेष भेरीनिवेशोऽलिनिनाददेशः ॥ वी. 6/14

नवप्रसङ्गे परिहृष्टचेता नवां वधूटीमिव कामि एताम् ।
मुहुर्मुहुश्चुम्बति चञ्चरीको माकन्दजातामय मञ्जरी कोः ॥ वी. 6/20

इनमें प्रथम श्लोक में वनलक्ष्मी और वसन्तराज के पाणिग्रहण का रूपक कवि की अनौखी कल्पना की प्रस्तुति है । द्वितीय श्लोक में चंचरीक द्वारा मंजरी के चुम्बन को कामी पुरुष द्वारा नवोढा स्त्री के चुम्बन के समान वर्णन करना एक मनोरम कल्पना है ।

7. उत्तरपुराण में जन्म के अवसर पर प्रसूतिगृह में जाकर बालक जिनेन्द्र को इन्द्राणी द्वारा लाने का वर्णन हुआ है । वीरोदय में उत्तरपुराण का ही अनुकरण है, किन्तु सप्तम सर्ग में जन्माभिषेक के समय इन्द्र आदिक का तथा उस समय के दृश्यों का बड़ा ही मनोहारी चित्र उपस्थित किया गया है यहाँ यह कथ्य है कि असग सकलकीर्ति ने प्रसूतिगृह में इन्द्र का प्रवेश दिखाया है, जो लोकविरूद्ध है । संभवतः इस कथन में श्वेताम्बर मान्यता का प्रभाव है । श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार स्वयं सौधर्म इन्द्र ही प्रसूति गृह में जाकर माता की स्तुति कर और उन्हें निद्रित कर मायामयी बालक रखकर भगवान् को बाहर लाता है ।

8. उत्तरपुराण में गुणभद्राचार्य ने महावीर के विवाह की चर्चा का प्रसंग ही उपस्थित नहीं किया है, किन्तु महाकवि श्री ज्ञानसागर महाराज ने उनके विवाह का प्रस्ताव उपस्थित कराके तथा महावीर द्वारा युक्ति पूर्वक उसे अस्वीकार कराके उनकी लोककल्याणकारी भावना को उपस्थित कराया है । उनका कहना है कि संसार के सभी बन्धन स्त्री रूप बन्धन के कारण ही उपस्थित होते हैं ।

इन्होंने कहा -

हृषीकाणि समस्तानि माद्यन्ति प्रमदाश्रयात् ।
नो चेत्पुनरसन्तीव सन्ति यानि तु देहिनः ॥ वीरोदय 8/31

9. उत्तरपुराण 74/373-374 में 11 गणधरों के नामों का उल्लेख हुआ है, किन्तु वीरोदयकार ने इन नामों का एक साथ उल्लेख नहीं किया है ।

10. उत्तरपुराण में ऋतुओं एवं रसों का सुस्पष्ट वर्णन नहीं है, जबकि वीरोदय के चतुर्थ सर्ग में वर्षा, पंचम में वसन्त, बारहवें में ग्रीष्म और 21 वें सर्ग में शरद् ऋतु का तथा प्रथम एवं नवम सर्ग में करूण रस का दशम एवं एकादश सर्ग में शान्त रस का और इक्कीसवें सर्ग में श्रृंगार रस का विस्तृत वर्णन किया गया है । यह वर्णन संस्कृत में उत्कृष्ट महाकाव्यों की श्रेणी से अन्यून है ।

11. दिगम्बर परम्परा में भगवान् के तीर्थंकर के भव सहित 33 भवों का वृत्तान्त मिलता है । श्वेताम्बर परम्परों में मृग भक्षण के समय चारण मुनि द्वारा संबोधन वाले सिंह के भव से लेकर महाशुक्र स्वर्ग के देव भव तक के 6 भवों[1] का वर्णन न मिलने से 27 भव ही मिलते हैं । ये भव किंचित् नाम परिवर्तन आदि को छोड़कर दिगम्बर परम्परा के ही समान है। वीरोदयकार ने महावीर के पूर्वभवों का वर्णन करते समय पुरुरवा भील के भव से पंचम भव जटिल ब्राह्मण के भव तक का वर्णन करके 6 से 14वें भव तक के 9 भवों का वर्णन नहीं किया है ।[2] उन्होंने केवल 24 भवों का वर्णन किया है । कदाचित् त्यक्त भवों में महाकाव्योचित कथा में गति न होने से ही ऐसा किया गया है । किन्तु पूर्वभवों में इन 9 भवों को क्यों छोड़ा गया है, यह प्रश्न विद्वज्जनों के लिए विचारणीय अवश्य है ।

12. उत्तरपुराण में विषय की अधिकता के कारण उपदेश को अधिक स्थान नहीं मिल पाया है, किन्तु वीरोदय में महाकाव्य के कलेवर के कारण पर्याप्त स्थान था । अत: महाकवि ज्ञानसागर महाराज ने इसके 15-19वें सर्ग में साम्यवाद, अहिंसा, जाति कुल आदि के अहंकार की वर्ज्यता, अनेकान्तवाद, स्याद्वाद एवं युगचेतना के अनुकूल अन्य विषयों का विस्तार से विवेचन किया है । भाषा की सहजता, प्रचलित उर्दू फारसी के शब्दों के समावेश

आदि से उपदेश सहज ही ग्राह्य हो गया है । इस उपदेश की स्थिति निश्चित रूप से कान्तासम्मित उपदेश की है । स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रचलित आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होंने आध्यात्मिक स्वराज्य (आत्माधीनता) का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त प्रभावी है ।

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि ज्ञानसागर महाराज ने वीरोदय महाकाव्य का कथानक उत्तरपुराण से ग्रहण किया है तथा अपनी कथावस्तु में कोई विशेष परिवर्तन-परिवर्द्धन नहीं किया है, किन्तु कथावस्तु के मार्मिक घटनाक्रम को विस्तार दिया है और जहाँ आवश्यक समझा है महाकाव्य के कलेवर के अनुसार परिवर्द्धन भी किया है ।

डॉ. जयकुमार जैन
पटेलनगर नई मण्डी
मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

1. 23 सिंह > 24 प्रथम सर्ग का देव > 25 कनकोज्ज्वल राजा > 26 लान्तव स्वर्ग का देव > 27 हरिषेण राजा > 28 महाशुक्र स्वर्ग का देव ये 6 भव श्वेताम्बर परम्परा में उपलब्ध नहीं है ।
2. 6 सौधर्म स्वर्ग का देव > 7 पुष्यमित्र ब्राह्मण > 8 सौधर्म स्वर्ग का देव > 9 अग्निसह ब्राह्मण > 10 सनत्कुमार स्वर्ग का देव > 11 अग्निमित्र ब्राह्मण > 12 माहेन्द्र स्वर्ग का देव > 13 भारद्वाज ब्राह्मण > 14 माहेन्द्र स्वर्ग का देव + त्रस स्थावर योनि के असंख्यात भव

❑ ❑ ❑

वीरोदय में प्रतिपादित भूगोल और खगोल

डॉ. भागचन्द जैन "भास्कर"

आचार्य ज्ञानसागर संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, जैन दर्शन के तत्वस्पर्शी विद्वान और सदाचार के तपोनिष्ठ साधक थे। उनकी ये तीनों विशेषतायें उनके जयोदय, वीरोदय आदि संस्कृत काव्यों तथा ऋषभावतार आदि हिन्दी काव्य ग्रन्थों में दिखाई देती है। इन काव्यग्रन्थों में महाकवि ने कालिदास, भारवि आदि जैसे मूर्धन्य महाकवियों से भी कदाचित् आगे बढ़कर उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों का प्रयोग किया है जो उनकी प्रतिभा निदर्शन का एक अकाट्य प्रमाण माना जा सकता है।

यहाँ हम मात्र वीरोदय काव्य के आधार पर जैन सम्मत भूगोल की चर्चा करेंगे। इसमें खगोल का कोई विशेष उल्लेख मुझे देखने को नहीं मिला। भूगोल का जो भी वर्णन हुआ है वह जैन परम्परा से हटकर नहीं है। यह स्वाभाविक भी था आचार्य श्री के लिए -

जैसे हम जानते हैं, आधुनिक भूगोल से जैन भूगोल का सामञ्जस्य बैठाना टेढ़ी खीर है। दूसरी और वैदिक और बौद्ध परम्परायें भी जैन परम्परा के साथ चलती नजर आती हैं। अतः परम्परागत भूगोल और आधुनिक वैज्ञानिक युग के भूगोल में समागत अन्तर ने हमारे मन में एक यक्ष प्रश्न खड़ा कर दिया है। इस प्रश्न के पारम्परिक भूगोल मात्र तात्कालिक सूचनाओं के संग्रह का परिष्कृत/परिवर्धित रूप है। उसका सर्वज्ञवाद से कोई सम्बन्ध नहीं तो फिर हम शोधात्मक दृष्टि से किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं। इस पहुंच के लिए हमें तुलनात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है।

व्यावहारिक भूगोल और जैन भूगोल

भूगोल (geography) की परिधि में पृथ्वी का वर्णन किया जाता है। आज उसके अध्ययन और उद्देश्य में बहुत विस्तार हुआ है। मानव के कल्याण की दृष्टि से भौगोलिक अध्ययन का काफी महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसलिए आज यह विषय अन्त वैज्ञानिक (Interdisciplinary) बन चुका है। प्राचीन भूगोल लोकाख्यानों पर आधारित था पर आधुनिक भूगोल वैज्ञानिक तथ्यों पर अवलम्बित है जहां मानवीय साधनों की क्षमता और योग्यता पर अधिक बल दिया जाता है। प्राचीन भूगोल का सम्बन्ध आर्थिक आध्यात्मिक दृष्टि से अवश्य किया है वहां के पर्वत शिखरों आदि पर जैन मन्दिरों आदि की संरचना दिखाकर 1 पर आधुनिक भूगोल का तो यह केन्द्रीय तत्त्व है। इसलिए एकामेन, स्यूकरमेन, रिट्टर, हेटलर आदि विद्वानों की परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक भूगोल एक व्यावहारिक भूगोल (Applied Geography) है जहां सामाजिक हित की दृष्टि से भौगोलिक वातावरण के समस्त संसाधनों का उपयोग किया जाता है, समूह व्यवहार (Group behaviour) पर विचार किया जाता है तथा भौगोलिक आचार-विचार ज्ञान पद्धतियों एवं तकनीकों के व्यावहारिक प्रयोग पर बल दिया जाता है। आधुनिक भूगोल की इस परिधि में भौतिक (जलवायु, भू आकृति, समुद्री विज्ञान), आर्थिक (कृषि, उद्योग, यातायात, व्यापार), सामाजिक और सांस्कृतिक (जनसंख्या, अधिवास, वस्ती, नगरीय, राजनीतिक, प्रादेशिक आदि) तथा चिकित्सा, वनस्पति, चित्रकला आदि का अध्ययन समाहित हो जाता है।

जैन भूगोल यद्यपि पौराणिकता को आत्मसात् किये हुए है पर वस्तुपरक अध्ययन करने पर हम आधुनिक व्यावहारिक भूगोल के कतिपय महत्त्वपूर्ण तत्त्व उसमें निश्चित ही खोज सकते हैं। भूगोल के विद्यार्थी इस विषय पर आगे आकर काम करें, शोध खोज करें तो निश्चित ही जैन भूगोल को अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

जम्बूद्वीप की अवधारणा

आचार्य ज्ञानसागर जी ने जम्बूद्वीप की जैन अवधारणा को वीरोदय के द्वितीय और एकादश सर्ग में मात्र उल्लेख सा किया है। द्वितीयसर्ग में वृत्ताकार जम्बूद्वीप को फणा मण्डल की उपमा देते हुए उसके मध्य में अवस्थित सुमेरु को यह कहते हुए बताया है कि मानो वह कह रहा है हाथ उठाकर कि यदि चारित्र रूप पाथेय को धारण कर लिया तो मोक्ष सिद्धि है, जम्बूद्वीप के सात क्षेत्र है, जिनमें एक दक्षिण दिशा की ओर अति समृद्ध भारतवर्ष है, उसकी उपमा वहां धनुष से की गई है। हिमालय आदि पर्वतों और गंगा-सिन्धु आदि नदियों का भी जिक्र आया है (2-4-8)। एकादश सर्ग में महावीर के पूर्व भवों के प्रसंग में धातकी खण्ड द्वीप का उल्लेख है सुमेरू पर्वत पर जैन मन्दिरों की अवस्थिति का दिग्दर्शन है और फिर पूर्व विदेह आदि की चर्चा है (11. 25-25)

विदेह

आचार्य श्री ज्ञान सागर जी ने विदेह की चर्चा द्वितीय और एकादश सर्ग में की है । द्वितीय सर्ग में उसे आर्यखण्ड एक एक देश मानकर उसकी सुन्दरता और समृद्धि का आख्यान किया है (2. 9-20) और एकादश सर्ग में महावीर के पूर्व भवों के वर्णन प्रसंग में धातकी खण्ड की पूर्व दिशा में अवस्थित पूर्व विदेह के मंगलावती, पुस्तक आदि देशों का उल्लेख किया है । (11. 25-36) । अर्ग चौदहवें सर्ग में मगध का प्रसंग आया है । इससे ऐसा लगता है आचार्य श्री ने जैन परम्परा की अवधारणा को ही अपने ध्यान में रखा है ।

जैन परम्परा में विदेह क्षेत्र को निषध और नील पर्वतों के अन्तराल में माना गया है । इसमें मध्य भाग में एक सुमेरू व चार गजदन्त पर्वत हैं जनिसे रोका गया भूखण्ड उत्तरकुरू व देव कुरू कहलाते हैं । इनके पूर्व व पश्चिम में स्थित क्षेत्रों को पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह कहा जाता है । यह दोनों ही विदेह चार-चार वक्षार गिरियों, तीन-तीन विभंगा नदियों और सीता-सीतोदा नाम की महानदियों द्वारा 16-16 देशों में विभाजित है । इन्हें ही 32 विदेह कहते हैं । इस एक-एक सुमेरु सम्बन्धी 32-32 विदेह हैं । पाँच सुमेरूओं के मिलकर कुल 160 विदेह हो जाते हैं । (राजवर्तिक, 3-10-11) इन विदेह देशों में सतत अध्यात्मधारा प्रवाहित बनी रहती है । वहां विदेही जन (अर्हंत भगवान) रहते हैं । अतः प्रकर्ष भी अपेक्षा उसको विदेह कहा जाता है । ये विदेह क्षेत्र अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि सात प्रकार की इतियों से रहित हैं । तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण आदि महापुरुष भी यहीं हुए हैं ।

बौद्ध साहित्य में चार महाद्वीपों का वर्णन है - जम्बूद्वीप, पूर्व विदेह, उत्तरकुरू और अपरगोयाना ये चारों महाद्वीप सुमेरु पर्वत के चारों और अवस्थित हैं । उसके दक्षिण में जम्बूद्वीप और हिमालय, पूर्व में पूर्व विदेह पश्चिम में अपरगोयान और उत्तर में उत्तरकुरू जम्बूद्वीप में सम्पूण दक्षिण भारत पूर्व में बंगाल का खाई, और पश्चिम में अरब सागर सम्मिलित रहा है । इसका विस्तृत वर्णन पाली साहित्य में उपलब्ध होता है ।

वीरोदय में उल्लखित ये कतिपय प्राचीन भौगोलिक प्रदेश हैं जो अपेक्षाकृत अधिक पौराणिक और विवादग्रस्त हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से अभी भी उन पर विचार किया जाता अपेक्षित है । वस्तुतः श्रद्धा और इतिहास का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता । वीरोदय में पन्द्रहवें सर्ग में महावीर भगवान् की दिव्य ध्वनि की शरण में पहुंचने के प्रसंग में राजगृह, चम्पा, वैशाली काशी, हस्तिनापुर, दशार्ण, वीतभयपुर, कौशाम्बी, उज्जैयनी आदि नगरों और प्रदेशों का भी उल्लेख आया है । ऐतिहासिक दृष्टि से उन पर इस लघु आलेख में विचार नहीं किया जा सकता है । वीरोदय में इन सबका उल्लेख सा ही हुआ है । महाकवि ने विस्तार से उनपर अपनी लेखनी नहीं चलाई । इसलिए उनमें से कतिपय शीर्षकों पर तुलनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टि से विचार करना पड़ा । विद्वानों से विनम्र अनुरोध है कि वे जैन भूगोल पर आधुनिक संदर्भ में विचार करें ।

डॉ. भागचन्द जैन "भास्कर"
न्यू एक्सटेंशन एरिया
सदर, नागपुर - 440 001

दृश्य के पीछे

अज्ञानी लोग हाड़-पिंजर का बाहरी रूप देख कर मोहित हो जाते हैं
और ज्ञानी - जन बाहर दिखायी देने वाले रूप के पीछे क्या छिपा है इस बात का
विचार करके वैराग्य - लाभ करते हैं ।

वीरोदयकार का वैचारिक पक्ष

डॉ. श्रीमती नूतन जैन

आत्मरस के रसिक, चारित्राराधक आचार्य ज्ञान सागरजी महाराज ने अपने जीवन में न केवल उत्कृष्ट साधना की है अपितु सरस्वती आराधना कर अनूठी साहित्य सर्जना भी की है । विवेच्य महाकाव्य 'वीरोदय' में उनके व्यक्तित्व का पूर्ण निदर्शन हुआ है ।

कवि ने अपनी इस कृति में बहु आयामी विविध विचारों को वर्णित किया है । ये विचार जहाँ एक ओर लौकिक व्यवहार में उपादेय हैं वहीं दूसरी ओर कवि के अथाह ज्ञानसागर में और गहरे उतरने हेतु उत्कंठित भी करती है । इन विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है ।

१. मित्रता विषयक विचार

जैन दर्शन में सब जीवों के प्रति मित्रता रखना मूल शिक्षा है । कवि ने इस प्रसंग में अपना पूर्ण कौशल्य दिखाया है, और कहा है कि वस्तुतः मित्रता वही सच्ची है जो स्थायित्व को लिए हुए हो । यह स्थाई मित्रता कुण्डनपुर के मनुष्यों में कवि ने देखी है ।[1] केवल इतना ही नहीं "मित्रस्य दुःसाध्यमवेक्षणन्तु" कहकर यह भी स्पष्ट कर दिया है कि दुर्दैव के समय मित्रों का दर्शन भी नहीं होता है ।[2] आचार्य की इस मित्रता विषयक विचार से यह स्पष्ट होता है कि सच्चा मित्र वही है जो विपत्ति के समय साथ निभाये ।

२. राजा विषयक विचार

राजा के विषय में कवि का मंतव्य है कि राजा विभूति युक होने के साथ नीति चतुष्क सम्पन्न होना चाहिए ।[3] नीति चतुष्ट्य में आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति अथवा साम, दाम, दण्ड भेद नीति को गिनाया है ।[4]

३. सेवक विषयक विचार

देवियों के द्वारा माता की सेवा के प्रसंग में कवि ने सेवक विषयक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है । सेवक का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह स्वामी के संकेत या अभिप्राय के प्रतिकूल जरा सा भी कुछ ने करे ।[5]

४. नारी विषयक विचार

वीरोदय काव्य में कवि के नारी विषयक विचारों का विशद विवेचन प्राप्त होता है । इस प्रसंग में मेरा अभिमत है कि कवि ने नारी के बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा उसके आन्तरिक गुण वर्णन में अधिक रूचि ली है । कवि का कहना है कि लोक में नारी के बिना नर की शोभा उसी प्रकार नहीं है जैसे शाखा के बिना वृक्ष की शोभा नहीं है ।[6] किन्तु परमार्थ मार्ग में नारी सर्वोपरि बन्धन है ।[7] कवि ने तृतीय सर्ग में रानी प्रियकारिणी के गुण सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में नारी के अंग उपागों का आलंकारिक वर्णन भी किया है तथा बहुत सी नारी विषयक विचारकों का विवेचन किया है । कवि की दृष्टि में वह नारी धन्य है जो पति का प्रेम पाती हो ।[8] नारी का विनयशील होना सद्गुण है ।[9] नारी को सूर्य की छाया और विधि की माया के समान पति के अनुकूल आचरण करने वाली होना चाहिए ।[10] नारी के सौतिया डाह की वृत्ति अत्यंत स्वाभाविक है । दीर्घ निश्वास पतिवियोग का प्रथम लक्षण है ।[11] इन विचारों से कवि की नारी विषयक चिन्तन धारा का परिचय मिलता है ।

---

1. आचार्य ज्ञानसागर: वीरोदय: सर्ग 2		श्लोक 38	2. वही	4	7
3. वही	3	14	4. वही	7	21
5. वही	5	7	6. वही	8	24
7. वही	8,	24	8. वही	3	18
9. वही	3	27	10. वही	3	33
11. वही	6	33			

५. दाम्पत्य विषयक विचार

कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि से दाम्पत्य सम्बन्धी विविध विचारों का अंकन किया है। यह निःसन्देह सत्य है कि आचार्य के पास दाम्पत्य जीवन का स्वानुभव जन्य कोई आधार नहीं था तथापि दाम्पत्य चित्रण का मनोवैज्ञानिक एवं सूक्ष्म विवेचन अत्यन्त सजीव एवं स्वाभाविक बन गया है। कवि की दृष्टि में पति-पत्नी का परस्पर अत्यन्त अनुराग रखना सफल दाम्पत्य का आधार है।[1] दोनों का एक दूसरे के अनुकूल आचरण करना दाम्पत्य जीवन का साफल्य बीज है।[2]

६. शिष्टाचार विषयक विचार

वीरोदय में लोक व्यवहार विषयक अनेक विचार कवि ने व्यक्त किए हैं। सज्जनों के गुणों के प्रति आदर ही गुण प्राप्ति का आधार है। सात पग चलने से ही सज्जनों की मित्रता हो जाती है। अपने पूज्य जनों को न केवल प्रत्यक्ष होने पर अपितु परोक्ष में भी सात पग चल कर नमस्कार करना कवि की नजर में शिष्टाचार की कल्पना है।[3] भारतीय मनीषियों की नजर में गृहस्थाश्रम का प्रमुख कर्तव्य आतिथ्य सत्कार है। राजा सिद्धार्थ ने अपने दरवाजे पर आयी हुयी देवियों का आतिथ्य विधि पूर्वक किया।[4] कवि की दृष्टि में विवाह का आदर्श स्वरूप समारोह पूर्वक किया हुआ विवाह है। वन लक्ष्मी और बसंतराज के पाणिग्रहण प्रसंग से यह तथ्य स्पष्ट होता है। प्रसूतिगृह से लाने के लिए इन्द्र नहीं अपितु इन्द्राणी का प्रवेश करना कहा है।[5] अपना कथन समयानुसार करना चाहिए। रानी प्रिकारिणी ने राजा सिद्धार्थ से समयानुसार अवसर पाकर अपना मंतव्य प्रकट किया।[6] कवि की मान्यता है कि लोक में सुनी हुयी बात को तुरन्त नहीं बल्कि छानकर स्वीकार करना चाहिए।[7] मेरा अभिमत है कि इन शिष्टाचार विषयक विचार को दैनिक जीवन में अपनाने से एक कुशल व्यावहारिक व्यक्तित्व का निर्माण होना सम्भव है।

७. मानवता विषयक विचार

कवि की दृष्टि में सही अर्थों में मनुष्य होना एक विलक्षण बात है। स्वार्थ परायणता, नीचता, दुष्टता यह मानवता के नाम पर कलंक है। काव्यकार ने वीरोदय के नौवे सर्ग में विस्तार से विवेचन किया है। स्वार्थ साधन के सिद्धान्त को अपनाना तथा 'स्वरोटिकां मोटपितुं' अर्थात् अपनी रोटी को ही मोटी करने में लगे रहना मानवता पर स्वार्थ परायणता रूपी राक्षसी का प्रभाव है।[8] दूसरे के सुख से दुःखी होने की प्रवत्ति मनुष्य की नीचता है। कवि की दृष्टि में ऐसे लोग नाम मात्र के ही मनुष्य है।[9] संसार में ऐसे मनुष्य भी हैं जो अपना समय, धन आदि देकर भी दूसरे का अहित करना अच्छा समझते हैं ऐसे दुष्टजनों को कवि ने मक्खी के सदृश कहा है। जैसे मक्खी अपना जीवन देकर भी दूसरे को व मन कराने में हेतु बन जाती है। यही स्वभाव इन लोगों का होता है।[10] कवि ने सच्ची मानवता कुण्डनपुर के मनुष्यों में देखी है।[11]

८. प्रकीर्ण

कवि की कुकवि विषयक विचार बहुत हृदय ग्राही है। कवि की दृष्टि में अपने को ही सब कुछ समझने वाले व्यर्थ का राग अलापने वाले कुकवि होते हैं।[12] कालिकाल में बहुत उछल कूद माचाने वाले ही वक्ता होते हैं।[13] पाँच पापों का त्यागी हो, मद्य, मांस, मधु का त्याग, तप, इन्द्रियजय, शोकरहिता, संचयी, शान्तचित्तता, दया, निस्पृहता आदि सद्गुणों से युक्त पुरुष ही वस्तुतः ब्राह्मण है।[14] लोक परदोष परीक्षक है।[15] छिद्रान्वेषी नहीं होना तथा जीवन में सहजता का होना ही धर्म है।[16] सारतः इस शोधालेख के आलोक में मेरा अभिमत है कि वीरोदय काव्य में काव्यकार ने जिन विचारों का प्रतिपादन किया है वे वस्तुतः लौकिक व्यवहार में परम् उपादेय हैं।

डॉ. श्रीमती नूतन जैन
धूलियागंज, आगरा

1. आचार्य ज्ञानसागर : वीरोदय : सर्ग 3	श्लोक 37		2. वही	7	5
3. वही	5	2	4. वही	6	14
5. वही	7	13	6. वही	4	33
7. वही	18	39	8. वही	9	2.3.9
9. वही	9	12	10. वही	22	30
11. वही	2	41, 48	12. वही	4	17
13. वही	4	8	14. वही	14	35 से 43
15. वही	10	7	16. वही	4	39

प्राकृत में वर्णित महावीर कथा और वीरोदय काव्य

डॉ. प्रेम सुमन जैन

भगवान् महावीर का जीवन चरित्र कई माध्यमों से ज्ञात किया गया है । उनमें प्रमुख माध्यम साहित्य है । जैन साहित्य का प्राचीन अंश प्राकृत साहित्य का महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना गया है । अन्य भाषाओं के रचनाकारों ने महावीर का जीवनचरित्र लिखते समय प्राकृत साहित्य में प्राप्त प्रसंगों को भी ध्यान में रखा होगा, किन्तु महावीर कथा के सभी पक्ष तुलनात्मक दृष्टि से अभी तक उजागर नहीं हो सके हैं । अत: प्राकृत साहित्य के महावीर सम्बन्धी सभी प्रसंग एकत्र कर उनके आधार पर निष्पक्ष रूप से महावीरचरित्र लिखे जाने की नितान्त आवश्यकता है । संस्कृत, अपभ्रंश एवं अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य इस सम्बन्ध में प्रामाणिकता प्रदान करेगा ।

भगवान् महावीर की जीवनगाथा प्राकृत साहित्य के जिन प्रमुख ग्रन्थों में उपलब्ध है, वे ग्रन्थ प्राय: अब प्रकाशित हो चुके हैं । यद्यपि अभी भी उनमें से कई का अनुवाद आदि कार्य नहीं हुआ है । महावीर सम्बन्धी प्राकृत जैन साहित्य जिनमें महावीर के जन्म, माता-पिता, तिथि आदि का विवरण है ।

वीरोदय काव्य में यद्यपि महावीर के जीवन का काव्यात्मक वर्णन प्राप्त है, किन्तु कुछ प्रसंग प्रेरणास्पद होते हुए भी इसमें छूट गये हैं । जैसे चन्दना से आहार-ग्रहण और उनकी दीक्षा का प्रसंग इस काव्य में मुझे देखने नहीं मिला । आहार के सम्बन्ध में इस महाकाव्य में यह जरूर कहा गया है कि अमृत के निधान वे वीर भगवान् आत्मपथ का आश्रय लेकर एक मास, चार मास, और छह मास तक भोजन के बिना ही प्रसन्न चित्त रहकर और अपने आप में मग्न होकर अपने छद्मस्थकाल को बिता रहे थे -

मासं चतुर्मासमथायनं वा विनाऽदनेनात्मपथावलम्बात् ।
प्रसन्नभावेन किलैकतानः स्वस्मिन्नभूदेष सुधानिधानः ॥

\- 12.37

दिगम्बर परम्परा का जो प्राकृत साहित्य उपलब्ध है वह प्राय: सिद्धान्त और दर्शन विषय को प्रतिपादित करने वाला है। उसमें कथा एवं चरित का विषय कम, आचार और दर्शन का विषय अधिक विवेचित हुआ है । अत: महावीर की कथा या चरित का विस्तृत विवेचन जैसा दिगम्बर जैन संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य में हुआ है, वैसा दि. जैन प्राकृत साहित्य में उपलब्ध नहीं है । शौरसेनी प्राकृत के ग्रन्थों में महावीर के उपदेश, उनकी स्तुति, उनकी तपश्चर्या आदि के जितने वर्णन हैं, उतने उनकी जीवनी के नहीं हैं । इस परम्परा के प्राकृत ग्रन्थों में षट्खण्डागम और तिलोयपण्णत्ति ही ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें महावीर के जीवन-सूत्र सर्वप्रथम उपलब्ध हुए हैं । जैन इतिहास की इन ग्रन्थों में पर्याप्त सामग्री है ।

यतिवृषभ द्वारा रचित प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति में कहा गया है कि तीर्थंकर वर्धमान कुण्डलपुर में पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुए । उन्होंने मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन अपराह्न में उत्तरानक्षत्र के रहते नाथवन में तृतीय भक्त के साथ महाव्रतों को ग्रहण किया ।

षट्खण्डागम के चतुर्थ वेदना खण्ड भाग 9 (4-1-44) में महावीर का जन्म कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ क्षत्रिय के नाथकुल में होना अंकित है । तिलोयपण्णत्ति में भी नाथकुल का उल्लेख है । जबकि प्राकृत साहित्य में सर्वत्र ज्ञातृवंश (णायकुलंसि) का उल्लेख है । यह विद्वानों के लिए अन्वेषण का विषय है कि महावीर के वंश के विषय में यह नाथ और ज्ञात का अन्तर दोनों परम्पराओं में कब से और क्यों हुआ ? वीरोदय काव्य में महावीर के कुल का नाम प्राप्त नहीं होता ।

इसी प्रकार प्राकृत साहित्य में उपलब्ध महावीर कथा और वीरोदय महाकाव्य के प्रसंग में यह भी अन्वेषणीय है कि महावीर के पूर्वभवों की परम्परा का प्रारम्भ भीलराज (नयसार) (पुरुरवा भील) के भव से ही क्यों दोनों परम्परा में स्वीकार किया गया है । वनसंस्कृति और आदिवासी के प्रति यह आकर्षण क्यों है ? कहीं, यह आदिनाथ तीर्थंकर और देश की आदि संस्कृति से जैनधर्म को जोड़ने की बात तो नहीं है । पूर्वभवों की संख्या में भले ही दोनों परम्पराओं में मतभेद प्राप्त होता है। उसके कारणों पर विद्वानों ने विचार भी किया है किन्तु वीरोदय महाकाव्य के कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पूर्वभवों की संख्या उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि इस बात पर ध्यान देना कि आध्यात्मिक विकास की पराकाष्ठा पर पहुँचना किसी एक ही भव की साधना का परिणाम नहीं है । उसके लिए लगातार अनेक भावों की साधना करनी पड़ती है ।

वीरोदय काव्य में महावीर के 15वें पूर्वभव में महावीर का नाम स्थावर ब्राह्मण दिया है, जो दिगम्बर एवं श्वेताम्बर परम्परा में समान है । किन्तु इसके बाद माहेन्द्र स्वर्ग से आकर महावीर का जीव राजगृह नगर के विश्वभूति ब्राह्मण और जैनी पत्नी से विश्वनन्दी नामक पुत्र हुआ यह उल्लेख है -

भूत्वा परिव्राट् स गतो महेन्द्र स्वर्गं ततो राजगृहेऽपकेन्द्रः ।
जैन्या भवामि स्म च विश्ववभूतेस्तुग् विश्वनन्दी जगतीत्यपूते ॥

- सर्ग 11 श्लोक 11

यहाँ पर विश्वभूति ब्राह्मण की पत्नी जैनी का जो उल्लेख है, वह विचारणीय है । उत्तरपुराण आदि में इसे देखना चाहिए। केवल दिगम्बर परम्परा ही महावीर को अविवाहित स्वीकार नहीं करती, अपितु समवायांगसूत्र, स्थानांगसूत्र, आवश्यक निर्युक्ति जैसे प्राचीन प्राकृत श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी महावीर को अविवाहित माना गया है । बाद के श्वेताम्बर ग्रन्थों में जो महावीर के विवाह का प्रसंग है, उसका भी आगे निर्वाह नहीं हो सका । महावीर की पत्नी यशोदा और पुत्री की परिकल्पना यथार्थ के आगे टिक नहीं पायी । परवर्ती साहित्य में इन्हें भुला दिया गया । साहित्य में ऐसे कई प्रसंग महापुरुषों के साथ जुड़ते हैं, जिनके कारणों पर खोज की जानी चाहिए । जैसे महावीर के साथ सर्प-विजय और कानों में कीले ठोंकने की कथा समकालीन घटनाओं का प्रभाव है ।

दिगम्बर परम्परा के प्राकृत साहित्य में प्राप्त महावीर प्रसंगों का मूल पाठ संकल्प होना चाहिए तब उनका अध्ययन करना समीचीन होगा । अभी दिगम्बर जैन परम्परा के प्राचीन साहित्य और संस्कृति के अवशेषों का ऐसा अध्ययन किया जाना अपेक्षित है । ऐसा होने पर महावीर कथा और उनका जीवनदर्शन और अधिक उजागर हो सकेगा ।

डॉ. प्रेम सुमन जैन
29, विद्याविहार कॉलोनी
उत्तरी सुन्दरवास
उदयपुर - 313001

❑ ❑ ❑

तपः ध्यान की आग

तप एक प्रकार की अग्नि है,
जिसमें समस्त अपवित्रता, संपूर्ण कल्मष
एवं समग्र मलिनता भस्म हो जाती है ।

वीरोदय का महाकाव्यत्व

डॉ. कैलाशपति पाण्डेय

वीरोदय के महाकाव्यत्व को परखने के पूर्व महाकाव्य का ज्ञान सर्वथा नान्तरीयक है, क्योंकि बिना इस ज्ञान के किसी काव्य को कसौटी पर कसा नहीं जा सकता । अतः सर्वप्रथम महाकाव्य किसे कहते हैं? इस पर कुछ दृष्टिपात करना अप्रासंगिक नहीं होगा ।

संस्कृत साहित्य में अनेक लक्षण ग्रन्थ निर्माता हुए हैं, जिनमें काव्य के प्रायः प्रत्येक अंगो की पूर्ति साहित्य दर्पण से ही हो जाती है । इसलिए काव्य के विषय में आचार्य विश्वनाथ के मत को समक्ष रखकर उसी के आलोक में वीरोदय का महाकाव्यत्व परीक्षित करेंगें ।

काव्य दृश्य और श्रव्य के भेद से दो प्रकार का होता है । इनमें दृश्य काव्य अभिनेय होता है, उसी को रूपक भी कहते हैं । रूपक के दस भेद बतलाये गये हैं । इनके अतिरिक्त अठ्ठारह प्रकार के उप रूपक भी कहे गये हैं।[1] इस प्रकार रूपकों का बड़ा विशाल परिवार है, जो प्रकृत में उपयोगी नहीं है । इसलिए हम श्रव्य काव्य की और दृष्टिपात करते हैं ।

छन्दोबद्ध पद के पद्य कहते हैं। जिस वस्तु का एक पद्य में वर्णन हो उसे मुक्तक काव्य कहते हैं। दो पद्यों में वर्ण्य विषय को युग्मक काव्य कहते हैं। तीन पद्य से, जिसका वर्णन हो उसे सान्दानतिक कहते हैं । चार पद्यों में निबद्ध रचना को कलापक कहते हैं। पाँच पद्यों वाली रचना कुलक होती है । इसी प्रकार छः, सात, आठ, नौ, दस से संबंधित को भी कुलक कहा जाता है ।[2]

आचार्य विश्वनाथ द्वारा निरूपित काव्य लक्षण इस प्रकार है -

महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए । काव्य का नायक कोई देव या सत्कुलोत्पन्न क्षत्रिय होता है । यह धीरोदात्त गुणों वाला एक व्यक्ति हो सकता है अथवा एक ही वंश में उत्पन्न अनेक भी कुलीन राजा हो सकते हैं ।[3]

महाकाव्य में शृंगार, वीर या शान्त में से कोई एक रस प्रधान होता है तथा अन्य रस उसी के पोषक होकर अंग रूप में आते हैं। जिस प्रकार नाटकों में पंच संधियां (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण) होती हैं, उसी प्रकार काव्य में भी उनका होना आवश्यक है।[4]

---

1. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम् ॥
भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः ।
आंगिको वाचसिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा ॥
नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसवकारडिमाः ।
ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥
नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम् ।
प्रस्थानोल्लप्यकाव्यानि प्रेंखणं रासकं तथा ॥
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका ।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशों भाणिकेति च ॥
अष्टादश प्राहुरुपकाणि मनीषिणः ।
(साहित्य दर्पण 6 /1, 2, 3, 4, 5, 6

2. द्वाभ्यां तु युग्मकं सांदानतिकं त्रिभिरिष्यते ।
कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम् ।
(साहित्य दर्पण, 6/ 3/4, 315)

3. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ॥
सद्वंश क्षत्रियो वामि धीरोदात्तगुणान्वित : ।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥
(साहित्य दर्पण 6/ 315-316)

4. शृंगारवीरशान्तानामेकोऽगी रस इष्यते ।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ॥
(साहित्य दर्पण 6/ 317)

महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक होता है अथवा लोक प्रसिद्ध किसी सत्पुरुष पर आधारित होता है उसका फल (धर्मार्थ, काम, मोक्ष) पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति होती है या किसी एक की प्राप्ति भी दिखायी जाती है ।[1]

महाकाव्य के प्रारम्भ में नमस्कारादि मंगलात्मक स्वरूप रखे जाते हैं। अथवा वस्तु निर्देशात्मक मांगलिक नाम के द्वारा काव्यारम्भ होता है । कहीं-कहीं खल निन्दा या सज्जन प्रशंसा आदि भी देखी जाती है ।[2]

सर्गों का निर्माण एक प्रकार के छन्द से किया जाता है । परन्तु सर्ग समाप्ति में अन्य छन्दों का निवेश अपेक्षित होता है । सर्गों की संख्या न तो अत्यधिक न अति न्यून होनी चाहिए । इसलिए आठ से न्यून कथमपि नहीं होनी चाहिए।[3]

छन्दों या वृत्तों के विषय में यह भी ज्ञातव्य है कि एक सर्ग में एक ही वृत्त का प्रयोग तो होता है पर किसी-किसी सर्ग में विविध वृत्तों का भी प्रयोग किया जाता है। सर्गान्त में भावी कथा की सूचना भी दी जाती है ।[4]

महाकाव्य में संध्या, सूर्योदय. चन्द्रोदय, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न काल, आखेट, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संभोग, विप्रलम्भ, मुनि, यज्ञ, रण, प्रयाण, विवाह, उपाय चतुष्टय मंत्रणा, पुत्रोत्पत्ति, राजा, अमात्य. सेनापति आदि का सांगोपांग विवरण रहता है ।[5]

महाकाव्य का नामकरण कहीं-कहीं कवि के नाम पर किया जाता है । यथा -"माघ काव्यम्" आदि । वृत्त प्रधान द्वारा भी काव्यों का नामकरण होता है । यथा- "कुमारसम्भवम्" आदि नायक के नाम पर भी नामकरण होता है । जैसे -"रघुवंश महाकाव्यम्" सर्ग के नाम वक्तव्य विषय की दृष्टि से भी किये जाते हैं। जैसे- "सन्ध्या वर्णनो नाम दशमः सर्गः" आदि[6] । इसमें इतिवृत्त का पूर्ण समावेश रहता है, उसे महाकाव्य कहते हैं । एक देश के वर्णन को खण्ड काव्य कहते हैं।

अब इन लक्षणों को ध्यान में रखते हुए हम वीरोदय महाकाव्य के महाकाव्यत्व पर विचार करें।

वाणीभूषण, बाल-ब्रह्मचारी, भूरामल शास्त्री वर्तमान आचार्य ज्ञानसागर प्रणीत वीरोदय एक महाकाव्य है, जिसका रचना बाईसवें सर्ग में महाकवि ने की है । इस प्रकार सर्गबद्धता विद्यमान है।

द्वितीय चरण में महाकाव्य के नायकत्व पर विचार करना अत्यावश्यक है। नायक शब्द "नी" धातु से निष्पन्न है (नी+ण्वुल) जिसका अर्थ मार्गदर्शक, स्वामी या प्रधान है। "नीयते इति नायकः" अर्थात् जो व्यक्ति कथानक को मुख्य उद्देश्य या फलागम की ओर ले चलता है, उसे नायक कहते हैं। शील की दृष्टि से नायक के चार प्रकार कहे गये हैं[7] :यथा:

धीरोदात्त- यह अतिगंभीर, क्रोध-शोक, सुख-दुःख में प्रकृतिस्थ (अनभिभूत) क्षमाशील. स्थिर बुद्धिवाला, निरभिमानी, दृढ़व्रती एवं महाप्राण होता है ।[8]

धीरोद्धत- इस कोटि का नायक, घमण्डी, ईर्ष्यालु, मायावी, कपटी. चंचल, क्रोधी और आत्मश्लाघी होता है ।[9]

---

1. इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सजनाश्रयम् ।
   चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥
   (साहित्य दर्पण 6/ 318)
2. आदौ नामस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश-एव वा ।
   क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥
   (साहित्य दर्पण 6/ 319)
3. एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
   नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥
   (साहित्य दर्पण 6/ 320)
4. नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
   सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥
   (सा० द० 6/ 321)
5. सन्ध्यासुर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
   प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः ॥
   संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।
   रणप्रयाणोपयममन्त्र पुत्रोदयादय : ॥
   वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।
   (सा० द० 6/ 322, 323, 324, पू०)
6. कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥
   नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।
   (सा० द० 6/ 324, का उत्त० 6/ 325 का पूर्वा०)
7. धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च ।
   धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः ॥
   (साहित्य दर्पण 3/ 31)
8. अविकत्थनः क्षमावानति गम्भीरो महासत्त्वः ।
   स्थेयान्निमूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥
   (साहित्य दर्पण 3/ 32)
9. मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः ।
   आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः ॥
   (साहित्य दर्पण 3/ 33)

धीरललित- जो निश्चिन्त, कोमल स्वभाववाला, सुखी तथा कला में आसक्त रहे, उसे धीरललित कहते हैं।[1]

धीर प्रशांत- जिसमें सामान्य रूप से नायक के सभी सद्गुण विद्यमान हो, वह गौरवशाली, गुण गरिमा संपन्न व्यक्ति धीर प्रशांत कहलाता है। यह ब्राह्मण, वैश्य या मंत्रिपुत्र होता है।[2]

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने सामान्य रूप से नायक में अनेक गुणों का निर्धारण किया है। सात्विक गुण नायक के स्वाभाविक गुण हैं। इनकी संख्या आठ है।[3]

प्रकृत महाकाव्य के नायक क्षत्रिय कुलोत्पन्न भगवान् महावीर हैं। भगवान् महावीर की कथा महाकवि ने उत्तर पुराण से ग्रहण की है। "वीरोदय महाकाव्य" का नायक धीरोदात्त गुण सम्पन्न है। भगवान् महावीर द्वारा दिव्य प्रबोध प्राप्त होने पर उनके सामने कोई विद्या अवशिष्ट नहीं रही, जिसका ज्ञान उन्हें न हुआ हो चन्द्रमा के उदित होने पर उनसे सम्बन्धित ताराएं उदित न हो ऐसा कैसे संभव हो सकता है। यथा-

प्रभोरभूत्सम्प्रति दिव्यबोधः विद्याऽवशिष्टा कथमस्त्वतोऽधः।
कलाधरे तिष्ठति तारकाणां ततिः स्वतो व्योम्नि धृतप्रमाणा ॥[4]

भगवान् महावीर के सम्बन्ध में कवि द्वारा कहा गया उक्त वचन धीरोदात्त नायक के उत्तम गुणों का सूचक है।

वीर प्रभु की महिमा को सुनकर न केवल मनुष्य जाति समवसरण में प्रेम से उपस्थित होते थे अपितु प्रभु के प्रताप से प्रभावित होकर परस्पर घोर विरोध रखने वाले जन्तु -सिंह-गज, मूषक-बिड़ाल, नेवला और सांप आदि आदिकाल से अविच्छिन्न रूप में रहने वाले पारस्परिक वैर को भूलकर पूर्णतया स्नेह भाव से बैठ रहे थे। यथा-

सिंहो गजेनाखुरथौतुकेन वृकेण चाजो नकुलोऽहिजेन।
स्म स्नेहमासाद्य वसन्ति तत्र चात्मीयभावेन परेण सत्रा ॥[5]

इसमें वीर प्रभु का अतुल प्रताप एवं महिमा उनकी धीरोदात्तता का द्योतक है।

संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।

युवराज महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ ने अवस्थानुरूप विवाह के लिए कुलीन राजकुल से आया हुआ प्रस्ताव पुत्र को सुनाकर जब उन्हें विवाह के लिए तत्पर बनाना चाहते हैं तब उस समय दृढ़व्रत युवराज महावीर ने पिता को अपने ओजस्विता के साथ ससम्मान उत्तर दिया कि हे पिता मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि पूर्णज्ञान प्राप्त करूँ, स्त्री के वशीभूत होकर इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ न बिताऊँ। यथा -

हे पितोऽयमितोऽस्माकं सुविचारविनिश्चयः।
नरजन्म दधानोऽहं न स्यां भीरूवशंगतः ॥[6]

यहां दृढ़व्रतता रूपी विशेष गुण भगवान् के नायकत्व का पोषक है।

पुनः अग्रिम श्लोक भी इसी की पुष्टि करता है -

किं राजधक्कोद्वाहेन प्रजायाः सेवया तु सा।
तदर्थमेवेदं ब्रह्मचर्यमाराधयाम्यहम् ॥[7]

यहां प्रजा की सेवा के लिए ही अखण्ड ब्रह्मचर्य की आराधना करने की दृढ़व्रतता का वर्णन नायक के धीरोदात्त गुण का सूचक है।

---

1. निश्चिन्तो मृदुनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्। (साहित्य दर्पण 3/ 34 पू0)
2. सामान्य गुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरप्रशान्तः स्यात् ॥ (साहित्य दर्पण 3/ 35 उत्त0)
3. साहित्य दर्पण 3/50
4. वीरोदय महाकाव्य 12/ 49
5. वीरोदय महाकाव्य 14/ 51
6. वीरोदय महाकाव्य 8/42
7. वीरोदय महाकाव्य 8/43

इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग में कवि ने वर्णन करते हुए लिखा है कि आत्म प्रबोध के अधिपति भगवान् महावीर ने अच्छी तरह विचार कर अपार महान् समुद्र के सदृश संसार से पार होने के लिए एक मात्र अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष को स्वीकार कर स्थिरता पूर्वक उसकी प्राप्ति हेतु तत्पर हुए । यथा-

अपार संसारमहाम्बुराशेरित्यात्मनो निस्तरणैकहेतुम् ।
विचार्य चातुर्यपरम्परातो निबद्धवानात्मविभुः ससेतुम् ॥[1]

यहाँ आत्म साक्षात्कार मोक्ष प्राप्ति हेतु महावीर की स्थिरता उल्लिखित हुई है। इस प्रकार धीरोदात्त नायक के अपेक्षित अनेक गुणों से युक्त होने के कारण सत्कुलोत्पन्न भगवान् महावीर निःसन्देह वीरोदय के धीरोदात्त नायक हैं।

रस की दृष्टि से महाकाव्यत्व पर विचार करने के पूर्व रस का संक्षिप्त परिचय जानना आवश्यक है, जो इस प्रकार है- रस शब्द की प्राचीनता वेदों से ही उपलब्ध है। काव्य जगत् में प्रकाश्यमान रस का भी स्थान वैदिक साहित्य में निर्दिष्ट है। यथा-

"रसो वै सः ह्येवायं लब्धता नन्दी भवति।"[2]

इस प्रकार उस आनन्दार्थ में भी अभिव्यक्त है। वैदिक साहित्य में रस-भाव आदि शब्दों का यद्यपि उल्लेख अवश्य है तथापि साहित्यिक सम्प्रदाय में इसके स्वरूप आदि के निर्णय का श्रेय सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र प्रणेता आचार्य भरतमुनि को ही है। नाट्य शास्त्र के छठे-सातवें अध्याय में रस का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। रस की निष्पत्ति के सम्बन्ध में भरत मुनि का सूत्र इस प्रकार मिलता है । यथा -

विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः[3]

आचार्यों ने इसकी विभिन्न व्याख्या की है । आलम्बन और उद्दीपन के भेद से विभाव दो प्रकार के होते हैं ।

अंग एवं स्वभाव से उत्पन्न कार्यों को अनुभाव कहा जाता है[4] गत्यादि का स्तम्भन, रोमांच, पसीने का निकलना, स्वर भंग कम्पन, कान्ति में परिवर्तन, आँसू का निकलना, प्रलय अर्थात् इन्द्रियों का अपने विषयों के प्रति शिथिल होना ये आठ प्रकार के सात्विक भाव बताये गये हैं।

जो भाव स्थिर न हो अपितु उत्पन्न होकर नष्ट होते रहते हों, ऐसे गतिशील भाव को संचारी या व्यभिचारी भाव कहते हैं। ये भाव तेतीस प्रकार के हैं[5]

स्थायी भाव भी अन्य रसों में नियम न होने के कारण कभी-कभी व्यभिचारी भाव कहलाते हैं[6] स्थायी भाव मन के उस भाव को कहते हैं जो विरुद्ध या अविरुद्ध भावों से तिरोहित न हो सकें । प्रत्येक रसों के नियम स्थायी भाव हैं। यथा-

शृंगार का रति, हास्य का हाँस, करूण का शोक, रौद्र का क्रोध, वीर का उत्साह, भयानक का भय, वीभत्स का जुगुप्सा, अद्भुत का विस्मय और शान्त रस का स्थायी निर्वेद है ।[7] साहित्य दर्पणकार वात्सल्य रस को भी माना है, जिसका स्थायी भाव वत्सलता स्नेह है ।[8]

रसों के पारस्परिक शत्रु-मित्र भाव के विषय में भी आचार्यों ने अपना मत व्यक्त किया है । साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण में 3/254 से 258 तक सम्यक् रूप से विवेचन किया है ।

1. वीरोदय महाकाव्य 11/ 44
2. तै० उ० 11/ 7/ 1
3. नाट्यशास्त्र अध्याय 6
4. लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः ।
   उक्ताः स्त्रीणामलंकाराः अंगजाश्च स्वभावजाः॥
   (साहित्य दर्पण 3/ 133)
5. साहित्य दर्पण 3/ 140/ 141
6. रत्यादयोऽप्यनियते रसे स्युर्व्यभिचारिणः
   (साहित्य दर्पण 3/ 172)
7. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
   जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च॥
   (साहित्य दर्पण 3/ 175)
8. साहित्य दर्पण 3/ 251

प्रकृत महाकाव्य में शृंगार, करुण, अद्भुत, हास्य वीर आदि रसों ने यद्यपि स्थान प्राप्त किया है, तथापि शान्त रस की अंगी है। शृंगार रस के अनन्त उदाहरण महाकाव्य में प्राप्त हैं, जिसमें एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

कुर्वं समुद्घाटयति प्रिये स्त्रिया : समुद्रवन्ती शिशिरोचितश्रिया:।
तावत्करस्पर्शसुखैकलोपकृत सूचीव रोमांचततीत्यहो सकृत् ॥[1]

उक्त श्लोक में शीतकाल में रमणी विशेष के साथ उसके प्रियपति द्वारा विविध काम लीलाओं का सेवन वर्णित है। यहाँ एक दूसरे के लिए एक दूसरे आलम्बन विभाव हैं। वस्त्र का निस्सारण एवं पति का मन्द मुस्कान क्रमशः एक दूसरे के प्रति उद्दीपन विभाव हैं। रोमांचकारी सात्विक अनुभाव है पुनः कर स्पर्शादि आसात्विक अनुभाव है। हर्ष स्मृति आदि व्यभिचारी भावों के सम्मिश्रण से परस्पर एक दूसरे के प्रति रतिभाव की पुष्टि होने से शृंगार रस की स्पष्ट अनुभूति होती हैं।

महाकाव्य वीर रस से भरा पड़ा है। इस रस का एक पद्य दर्शनीय है -

विभेति मरणाद्दीनो न दीनोऽथामृतस्थिति :।
सम्पदयन्विपदोऽपि सरितः परिश्चरेत्॥[2]

इसमें कवि ने कहा है कि दीन पुरुष मृत्यु से डरते हैं और वीर पुरुष मृत्यु को ही अमृत के समान मानते हैं और मृत्यु से नहीं डरते हैं। मृत्यु आत्मा को अमर बनाती है। शूरवीर विपत्तियों को भी सम्पत्ति प्रद मानते हैं। जैसे चारों ओर से समुद्र को क्षोभित करने के लिए आयी हुयी नदियां समुद्र को क्षोभित न करके उसी की सम्पत्ति बन जाती हैं।

यहाँ वीर पुरुष आलम्बन विभाव के रुप में परिगृहीत है उनकी अभयता एवं विपत्तियों को भी सम्पत्ति अनुभाव हैं। विलक्षण वीरता से युक्त पुरुषों के प्रति आकृष्ट होकर उनके प्रति निष्ठा रखने की स्थिति असात्विक अनुभाव है। हर्ष, मद आदि व्यभिचारी भाव है। इन सबके सम्मिलन से पाठकों में जन्म जन्मान्तर से संस्कार के रुप में अवस्थित उत्साह वीर रस के रूप में परिणित होकर आस्वादनोन्मुख होता है।

भगवान् महावीर के बाल्या काल के वर्णन प्रसंग में हास्यरस की मनोरम छटा दर्शनीय है

स्फुटिकाभकपोलके विभोः स्वदृगन्तं प्रतिबिम्बितं भोः ।
परिमार्जितुमादृता शची व्यतरत्सत्स्वथ सस्मितां रुचिम् ॥ [3]

यहां इन्द्राणी का भोलापन आलम्बन विभाव है। इन्द्राणी के द्वारा प्रतिबिम्ब काले धब्बे को मिटाने के लिए प्रयास करना उद्दीपन विभाव है। स्तम्भादि सात्विक अनुभाव एवं लोट-पोट आदि असात्विक अनुभाव है। स्मृति, चंचलता आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबके सम्मिश्रण के इन्द्रादिक देवताओं में संस्कार के रुप में विद्यमान हास स्थायी भाव हास्य रस के रुप में परिणत होता है।

इसी प्रकार रौद्ररस का व्यंजक एक श्लोक अवध्येय है-

हन्ताऽस्मि रे त्वामिति भावबन्धमथो समाधानि मनः प्रबन्धः ।
तत्वा तपः पूर्ववदेव नामि स्वर्गं महाशुक्रमहं स्म यामि ॥[4]

इसमें आलम्बन विभाव विशाख नन्दी है, उसके विरोधी क्रिया-कलाप उद्दीपन विभाव हैं। स्तम्भ, कम्प आदि सात्विक अनुभाव हैं। विशाखनन्दी की अशिष्ट प्रवृत्ति असात्विक अनुभाव है। चिन्ता सात्विक अनुभाव हैं। विशाखनन्दी की अशिष्ट प्रवृत्ति असात्विक अनुभाव हैं। चिन्ता, उद्वेग, चपलता आदि व्यभिचारी भाव है। पूर्व जन्म के संस्कार रुप में महावीर महापुरुष की आत्मा में विद्या मान क्रोध रुपी स्थायी भाव रौद्र रस का पोषक है।

1. वीरोदय महाकाव्य 9/20
2. वीरोदय महाकाव्य 10/31
3. वीरोदय महाकाव्य 7/36
4. वीरोदय महाकाव्य 11/16

वीरोदय महाकाव्य में उद्भुत रस की सन्निवेश यत्र-तत्र अवलोकनीय है । यथा -

सम्विधती सम्प्रति नूतनं तमः समानयन्ती किल कूपतः पयः ।
तुषारतः सन्दधती सितं शिरस्तुजे प्रमोत्पत्तिकरीत्यहो चिरम् ।।[1]

इस श्लोक में वर्णित हिमपात के केशों को सफेद करने वाली रमणी आलम्बन विभाव है। उसके द्वारा बच्चों का न बुलाना और उनके साथ वार्ता न करना उद्दीपन विभाव है। बच्चों के हृदय में उत्पन्न स्तम्भ, स्वर भंग, कम्प आदि सात्त्विक अनुभाव हैं। चिन्ता मोह, अशंका आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबके सम्मिश्रण से सन्तानों में विद्यमान विस्मय नामक स्थायी भाव अद्भुत रस के रूप में परिणत होकर आस्वादनोन्मुख होता है ।

प्रकृत ग्रंथ में करुण रस का अनेक उदाहरण भरा पड़ा है । कलेवर वृद्धि के भय से मात्र एक उदाहरण प्रस्तुत है-

जाया-सुतार्थं भुवि विस्फुरन्मनाः कुर्यादजायाः तुतसंहृति च नां ।
किमुच्यतामीदृशि एवमार्यता स्ववाञ्छितार्थं स्विदनर्थकार्यता ।। [2]

कवि द्वारा पुत्र प्राप्ति हेतु अजा के पुत्र की हिंसा एवं अन्यान्य वाञ्छित प्रयोजनों की सिद्धि हेतु हिंसा का आश्रय उल्लिखित है। इसमें हिंसनीय यज्ञिय पशु सहृदय समस्त सज्जनों का आलम्बन विभाव बनता है । पशुओं का छट पटाना, भागने के लिए उद्यत होना आदि उद्दीपन विभाव है। दर्शकों के शरीर में उत्पन्न होने वाले कम्प, रोमांच, अश्रुपात आदि सात्त्विक अनुभाव है। पुरोदृश्यमान एवं अनुभूयमान पशु हत्या से हटाकर आँखों का अन्यत्र लगाना, भौंह नासिका आदि का संकोच असात्त्विक अनुभाव हैं। निर्वेद, ग्लानि, दान्य, चिन्ता आदि व्यभिचारी भावों के संयोग से शोक रूपी स्थायी भाव करुण रस का परिपाक करता है।

वात्सल्य रस का सुमधुर प्रतिपादन प्रकृत ग्रंन्थ में यत्र-तत्र यथावसर प्रयोग करके अपनी सूक्ष्मेक्षिका का परिचय दिया है। यथा -

निशम्य युक्तार्थधुरं पितागिरं पस्पर्श बालस्य नवालकं शिरः ।
आनन्दसन्दोहसमुल्लसद्वपुस्तया तदास्येन्दुमदो दृशः पपुः ।।[3]

यहां बालक महावीर आलम्बन विभाव उनकी बाल लीला एवं मधुरवाणी उद्दीपन विभाव है। रोमांचादि सात्विक अनुभाव तथा पुत्र के शरीर-केश का स्पर्श असात्त्विक अनुभाव हैं। हर्ष प्रबोधादि व्यभिचारी भावों के सम्मिश्रण से राजा सिद्धार्थ के हृदय में जन्म जन्मान्तर से संचित वत्सलता स्नेह स्थायी भाव के रूप में परिणत होकर आस्वादनोन्मुख होता है ।

अंग रुप में आये हुये उक्त रसों के अतिरिक्त वीरोदय महाकाव्य में शान्त रस की अंगी रुप में स्थापना हुयी है। शान्त रस का कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है । यथा-

जुगुप्सेऽहं यतस्तत्किं जुगुप्स्यं विश्वमस्त्यदः ।
शरीरमेव तादृशं हन्त यत्रानुरज्यते ।।[4]

उक्त श्लोक में कवि ने सांसारिक कुश एवं दुःखों का उपभोग करने वाला पांच भौतिक शरीर को क्षणिक एवं निःसार बताया है। इसी क्षणिक शरीर से सम्बन्धित अन्य समस्त सांसारिक वस्तुओं को भी क्षीण बताये हुये आध्यात्मिक जगत की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी है ।

यहाँ पाठकों, श्रोताओं में विद्यमान निर्वेद स्थायी भाव, क्षणिक शरीर आलम्बन विभाव है। उद्दीपन विभाव उसके अंग प्रत्यंगो का गलित होना है। कम्प, अश्रुपात आदि सात्तिवक अनुभाव और शरीर की क्षणभंगुरता को देखकर स्थायी शांति के लिए प्रयास करना असात्विक अनुभाव है। उद्वेग ग्लानि, जुगुप्सा आदि व्यभिचारीभाव है। इन सबके सम्मिश्रण से श्रोता में विद्यमान उक्त स्थायी भाव शांति रस में परिणत होता है ।

इसी प्रकार अग्रिम श्लोक में शरीर के पोषण, परिधान, आभूषण आदि के संग्रह में प्रवृत्त होकर अपने परमार्थ प्राप्ति हेतु संग्राह्य वस्तुओं का बहुत दिन तक परित्याग बताकर उन अपने कर्मों के प्रति पश्चाताप उल्लिखित हुआ है। यथा -

1. वीरोदय महाकाव्य 9/21
2. वीरोदय महाकाव्य 9/5
3. वीरोदय महाकाव्य 8/46
4. वीरोदय महाकाव्य 10/9

अस्मिन्नहत्याऽमुष्य पोषकं शोषकं पुनः ।
वाञ्छामि संहराम्येतदेवानर्थस्य कारणम् ॥[1]

यहाँ अज्ञानावस्था में शरीर को ही सब कुछ मानकर उसके पोषण के लिए प्रवृत्त होने के कारण शरीर ही आलम्बन विभाव है। शरीर के लिए अपेक्षित सामग्रियों की अस्थिरता का सूचन उद्दीपन विभाव है । शरीर की निन्दा में संलग्न पुरुष द्वारा अकस्मात् शरीर से चित्तवृत्ति को हटाने के प्रयास में उत्पन्न होने वाले स्तम्भ, कम्प, अश्रुपात आदि सात्विक अनुभाव है। शरीर को तुच्छ मानकर स्थायी सुख के लिए प्रवृत्त होना असात्विक अनुभाव है। असूया श्रम उद्वेग आदि व्यभिचारी भावों के संयोग से श्रोता आदि में विद्यमान निर्वेद स्थायी भाव शान्त रस रूप में परिणत होकर सामाजिक जनों के आस्वादन का विषय बनता है। इसी प्रकार अधोलिखित श्लोक में भी शान्त रस की स्थिति दृष्टिगोचर होती है । यथाः-

अपार संसारमहाम्बुराशरित्यात्मनो निस्तरणैक हेतुम् ।
विचार्य चातुर्यपरम्परातो निबद्धवानात्मविभुः स सेतुम् ॥[2]

यहां युवराज महावीर द्वारा संसार रूपी महासमुद्र के पार होने के लिए तीव्र विचार रुप सेतु को स्वीकार करे का उल्लेख शांति का पोषक है।

एक और श्लोक दर्शनीय है:

सोऽसौ स्वशिष्यगुरुगौतममात्मनीने
कैवल्यशर्मणि नियुक्तमगद्दादहीने।
कृत्वेति सिद्धिवनितामनुतामचिन्त्तः
रेमे स्म किं पुनरुदीक्षत इंगिनीं तत् ॥[3]

इसमें भगवान् द्वारा अपने आश्रम के महत्वपूर्ण पद पर अपने योग्यतम शिष्य गौतम को नियुक्त कर निश्चित होते हुए मुक्त लाभ करने की स्थिति वर्णित है, जो शान्त रस को सन्तुष्ट करता है।

इस प्रकार वीरोदय नामक इस ग्रन्थ में काव्य की आत्मा के रूप में गृहीत रसों के अन्तर्गत मुख्य रस के रूप में शान्त रस का निरुपण किया गया है। प्रधान रस के रुप में शान्त रस का अनुपम विन्यास महाकाव्य की तीसरी विशेषता को पुष्ट करता हैं।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ऐसी परम्परा रही है कि प्रत्येक ग्रन्थ निर्माता ग्रन्थ के निर्माण में उपस्थित होने वाले विघ्नों का शमन एवं सुख पूर्वक ग्रन्थ की समाप्ति हेतु मंगलाचरण करते हैं ।

प्रकृति महाकाव्य उक्त परम्परासे अछूता नहीं है । महाकाव्य के प्रारम्भ में ही अपने हृदय प्रिय इष्ट देव से कल्याण की कामना प्रकृत ग्रन्थ के महाकाव्यत्व के वैशिष्ट्य को अभिव्यञ्जित करता हैं । यथा-

श्रिये जिनः सोऽस्तु यदीयसेवा समस्तसंश्रोतृजनस्य मेवा ।
द्राक्षेव मृद्वी रसने हृदोऽपि प्रसादिनी नाऽस्तु मनाक् श्रमोऽपि ॥[4]

संस्कृत वाङ्मय के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों की कृतियों में सज्जनों की प्रशंसा एवं दुर्जनों की निन्दा करने की प्रथा दृष्टिगोचर होती है। उसी परम्परा के अनुसार वीरोदय महाकाव्य के रचियता आचार्य ज्ञानसागर ने भी अच्छी तरह उस परिपाटी का परिपालन किया है ।

महाकवि ने प्रथम सर्ग में ही कई श्लोको में सज्जनों की प्रशंसा किया है । एक उदाहरण इस प्रकार है :

साधोर्विनिर्माणविधौ विधातुश्च्युताः करादुत्करसंविधा तु ।
तयैव जाता उपकारिणोऽन्ये श्री चन्दनाद्या जगतीति मन्ये ॥[5]

1. वीरोदय महाकाव्य 10/10
2. वीरोदय महाकाव्य 10/10
3. वीरोदय महाकाव्य 11/44
4. वीरोदय महाकाव्य 1/1
5. वीरोदय महाकाव्य 1/15

यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा कवि ने कहा है कि सज्जनों को बनाने के बाद विधाता को चन्दनादिक वृक्षों के निर्माण की वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं था, क्योंकि चन्दनादि के सुगन्ध-प्रदानादि के कार्य करने को तो सज्जन ही पर्याप्त थे।

प्रथम सर्ग के श्लोक सत्रह से इक्कीस तक निष्कारण सज्जनों से द्वेष करने वाले दुर्जनों के दुर्गुणों का वर्णन करते हुये कवि ने कहा है कि दुर्जन मनुष्य की स्थिति चूहे की तरह होती है । जिस प्रकार चूहा नाना जाति की धान्यों का विनाशक है, निष्क (बहुमूल्य पटों) (वस्त्रों) का शत्रु है, उन्हें काट डालता है और छिद्र अर्थात् बिल देखकर अपनी स्थिति को कायम रखता है । ठीक इसी प्रकार पिशुन पुरुष भी चूहे के सजातीय प्रतीत होते हैं क्योंकि पिशुन पुरुष भी नाना प्रकार से अन्य सर्वसाधारण जनों के लिए विपत्ति कारक है, निष्कपट जनों के शत्रु हैं और लोगों के छिद्रों (दोषों) को देखकर अपनी स्थिति को मजबूत करते हैं। यथा-

अनेकधान्येषु विपत्तिकारी विलोक्यते निष्कपटस्य धारिः ।
छिद्रं निरूप्य स्थितिमादधाति स भाति आखोः पिशुनः सजातिः ।।[1]

इस प्रकार परिष्कृत, सुमधुर रचनाओं पर भी दोषैक दृष्टि बनकर सर्वत्र दोष दिखाने की प्रवृत्ति का प्रकृत ग्रंथ में कड़ा विरोध किया गया है। दुर्जन निंदा सम्बन्धी प्राचीन कालीन परम्परा को सम्यक्तया परिपालन करते हुये ग्रन्थकार ने खलों के प्रति न केवल रोष ही प्रकट किया है अपितु सुमधुर स्नेह द्वारा उनके सुधार पर भी बल प्रदान किया है ।

वीरोदय को छन्द की दृष्टि से महाकाव्यतत्व सिद्ध करने के ही परिप्रेक्ष्य में छन्द का सामान्य परिचय इस प्रकार है: छन्द जिसका अपर नाम वृत्त भी है यह समवृत्त, अर्धसमवृत्त एवं विषमवृत्त के भेद से तीन प्रकार का होता है। यह प्रायः वर्णों की लघुता एवं गुरूता के सिद्धान्त पर अपने क्षेत्र को पूर्ण करता है ।

छन्द अभिप्रेत रस का अनुगामी होता है । इसलिए रसानुकूल वृत्त (छन्द) का प्रयोग आवश्यक माना गया है। इसका समर्थन आचार्य क्षेमेन्द्र भी करते हैं।[2]

प्रकृत "वीरोदय महाकाव्य" में अधिकांशतः उपजाति, पुष्पिताग्रा, शार्दूल-विक्रीडित, वसन्त तिलक आदि छन्दों का प्रयोग बहुलता से किया गया है। यहाँ हम प्रकृत महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में आये हुए छन्दों की विवेचना सर्ग क्रम से प्रस्तुत करेंगे-

पांचाली

वैदर्भी और गौडी रीति के प्रकाशक वर्णों को छोड़कर अन्य वर्णों का जहाँ प्रयोग हो अर्थात् प्रसाद मात्र गुण के व्यंजक वर्णों के प्रयोग हों, पाँच या छः पदों का समास हो ऐसी रचना को पांचाली कहते हैं।[3] यथा-

त्वं ब्राह्मणोऽसि स्वयमेव विद्धि क्व ब्राह्मणत्वस्य भवेत्सिद्धिः ।
सत्यावधास्तेयविरामभावः निःगताभिः समुदेतु सा वः ।।[4]

लाटी

जहाँ पर वैदर्भी और पांचाली रीति में आये हुए वर्णों का प्रयोग एवं रचना की स्थिति हो ऐसी रचना को लाटी रीति कहते हैं।[5] यथा-

अहो पशूनां ध्रियते यतो बलिः श्मसामतामंचति देवतास्थली ।
यमस्थली वाऽतुलरक्तरंजिता विभाति यस्याः स्ततं हि देहली ।।[6]

यहाँ अनेकशः वर्ण पांचाली के प्रकाशक होने से एवं अनेक वर्ण वैदर्भी के पोषक होने से दोनों समूह एकत्र होने के कारण लाटी रीति की रचना रम्य है।

---

1. वीरोदय महाकाव्य 1/19
2. सुवृ. ति. 3/7
3. वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः ।
   समस्त पंचषपदो बन्धः पांचालिका मता ।। (सा० द० 9/ 4 पूर्वा० एवं 4 उत्त)
4. वीरोदय महाकाव्य 14/ 35
5. लाटी तु रीतिवैदर्भीपांचाल्योरन्तरे स्थिता । (सा० द० 9/ 5पूर्वा०)
6. वीरोदय महाकाव्य 9/ 13

यहाँ मैंने रीतियों को दिङ्मात्र ही दर्शाने का प्रयास किया है । पूर्ण बोध के लिए तो काव्य ही अवगाहनीय है।

पाश्चात्य साहित्य शास्त्रियों ने महाकाव्य को "एपिक" की संज्ञा प्रदान की है। उनके महाकाव्यों में भी उन तथ्यों का समावेश है, जो अपने यहाँ वर्णित है। पाश्चात्य विद्वान डिक्सन के शब्दों में "महाकाव्य सभी देशों में एक जैसा है । पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी जगह उसकी आत्मा और प्रकृति में एकता दृष्टिगोचर होती है । महाकाव्य चाहे कहीं भी लिखा गया हो, उसकी रचना सुश्रृंखलित होती है । वह प्रकथन प्रधान होता है । उसका सम्बन्ध महान चरित्रों से होता है । उसमें महत्कार्य, गौरवमयी शैली, महत् चरित्र आदि का सुनियोजन होता है । उपाख्यानों तथा सविस्तार वर्णनों में उसका कथानक विशाल बनाया जाता है ।" इस प्रकार प्रकृत वर्णन में

निर्धारित समस्त लक्षणों के आधार पर किसी भी साहित्य रचना को महा-काव्य का नाम दिया जा सकता है । इस प्रकार "वीरोदय महाकाव्य" भारतीय साहित्य एवं पाश्चात्य साहित्य में वर्णित महाकाव्यों के लक्षणों के आधार पर महाकाव्य सिद्ध होता है। प्रकृत में महाकाव्य के समग्र तत्वों का विनिवेश हुआ है। छन्दों की विविधता, रस की परिपक्वता, श्लेष, यमक, विरोधाभास आदि अलंकारों के समन्वित इस काव्य शब्दों की विन्यास पद्धति अतिरम्य है। अत: महाकाव्यों के लक्षणों से युक्त महाकवि भूरामल शास्त्री वर्तमान आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रणीत वीरोदय महाकाव्य उत्कृष्ट महाकाव्यों की पंक्तियों में रखने योग्य है ।

वीरोदय महाकाव्य : एक विहंगम दृष्टि

आचार्य ज्ञानसागर प्रणीत वीरोदय महाकाव्य के अत्यन्त प्रभावशाली जैनियों के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर नायक है । सत्त्वादि गुण सम्पन्न होने के कारण महावीर को हम धीरोदात्त की कोटी में रख सकते है । अन्तत: विरक्त हो जाने के कारण उनके धीर प्रशान्त की बात उठाई जा सकती है । किन्तु युवावस्था में वैराग्यधारण भी धीरोदात्त का ही परिचायक है । अन्यथा युधिष्ठिर आदि को भी धीर प्रशान्त कहना पड़ेगा । धीरोदात्त नायक सम्पन्न महाकाव्य का अंगी रस वीर कहा गया है। प्रकृत काव्य में मैने शांत को ही अंगी रस का मान्यता दी है । प्रकृत महाकाव्य के समस्त गुणों से संवलित है । महावीर का सद्वंशीय धीरोदात्त होना, विहार, हिंसादि का वर्णन कवि की प्रतिभा और कल्पनाशक्ति को प्रदर्शित करने में पूर्ण समर्थ है । यथावसर श्रृंगार प्रदर्शन से भी काव्य की महत्ता में वृद्धि हुई थी ।

अन्य अनेक रमणीय वर्णनों के साथ-साथ लता वृक्षादि आलिंगनों द्वारा उद्दीपन का पूर्ण प्रदर्शन भी है । महाकाव्य पद्धति के अनुसार संध्या रात्रि, सूर्योदय, सूर्यास्त प्रभृति का वर्णन भी पर्याप्त रूप में किया गया है ।

रात्रिक्रीड़ा वर्णन मनोरम है । सुरत वासना का भी सफल चित्रण काम शास्त्रोक्त मार्ग की प्रशस्ति है ।

अर्हन् भगवान् की सुन्दर स्तुति भी इस काव्य में यथेष्टरूप से की गया है ।

याज्ञिक हिंसादि के वर्णन द्वारा जैन धर्म का भी कलेवर अभिव्यक्त हो जाता है ।

इन सबके अतिरिक्त इस विस्तृत महाकाव्य में प्रसंगानुसार सरोवर सुमेरू आदि शोभा वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी है । यथा स्थान भगवान् के पूर्वजन्मों के वृत्तान्त द्वारा कवि ने अद्भुत की सृष्टि की है । प्रसंगानुसार अन्य रसों का भी सम्यक् विनिवेश किया गया है।

जैन धर्म की उत्कृष्टता के साथ-साथ मुनि मार्ग का भी अनुसरण, मुनियों के प्रति अनुराग प्रदर्शन भी कवि ने अपनी सहज शक्ति से दिखाया है । सम्पूर्ण महाकाव्य में जैन धर्मानुराग और जैन दर्शन के सिद्धान्तों का सम्यक प्रतिपादन किया गया है ।

इस प्रकार "वीरोदय" महाकाव्य के पूर्णलक्षणों से मण्डित एक उत्कृष्ट महाकाव्य है, जिसके माध्यम से कवि ने लोकहित कामना की सम्यक् अभिव्यक्ति दी है । रस, गुण, अलंकार, रीति, छन्दोयोजना की दृष्टि से भी यह एक महनीय काव्य है। इस समस्त काव्य तत्त्वों के प्रति कवि अनवरत जागरूक है। यही कारण है कि प्रसंगानुरूप ही काव्य में रसादि का सम्यक् विनिवेश हुआ है ।

आचार्य श्री का पाण्डित्य अवश्य स्तुत्य है। उन्हें जैन धर्म और दर्शन का पूर्ण ज्ञान है। पुराणों से प्राप्त कथा को अलंकृत शैली में निबद्ध करने में वह पूर्ण समर्थ रहें हैं । समस्त का अनुशीलन करने पर जैन धर्म के प्रति सहज अनुराग हो जाना स्वाभाविक है । यह काव्य ही जैन धर्म की प्रशस्ति के लिये है। अत: जैन समाज की यह एक उत्तम निधि है। जैन प्रधान होने पर भी वीरोदय महाकाव्य इतर धर्मों को भी शिवोदय की ओर ले जाने में पूर्ण समर्थ है । संक्षेप में ही किन्तु, सार रूप में मैने यहाँ वीरोदय महाकाव्य का समालोचन किया है । समग्र का आनन्द तो काव्य से ही सम्भव है। आशा है सुधी वर्ग इसे आदर पूर्वक अपनायेगा ।

पुनश्च-

जयन्ति ते योगिवरा रससिद्धाः कवीश्वराः ।
ज्ञानसागरनामानो मुनिवर्या जिनप्रियाः ॥
अनेककाव्यनिर्माणक्रियया लोकविश्रुताः ।
जनता हितकर्तारो जैनाम्नाय-प्रवर्धकाः ॥
येषां शिष्यप्रशिष्याणामनेकशास्त्रशीलिनाम् ।
स्वाध्यायैर्जैनधर्मस्य साम्राज्यं परिरक्षितम् ॥
तेषां शिष्यप्रशिष्याणां पारम्पर्यक्रमागतः ।
कैलाशपतिनामाऽहं पाण्डेयो नौमि तान् गुरून् ॥
ममापि भावनां सर्वे जानन्तु जैनधर्मणि ।
यथाशक्ति करिष्येऽहं जैनाम्नाय-प्रवर्धकम् ॥

शुभम् !

डॉ. कैलाशपति पाण्डेय
गोरखपुर

□ □ □

वीरोदय का आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक वैभव

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

भगवान् महावीर के समग्र जीवन दर्शन को प्रस्तुत करने वाला वीरोदय महाकाव्य अनूठा है । इसके रचयिता पण्डित श्री भूरामल (आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज) मर्मज्ञ मनीषी, सौम्यगुण ग्राहक, शुचिता, सत्यता, संयत सुललित व्यक्तित्व सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होंने इस काव्य के माध्यम के चारित्रोत्थान की शिक्षा दी है । अपनी अनुभूति पक्ष को विशेष रूप से प्रस्तुत किया है । जीवन के विविध पक्षों को भी उद्घाटित करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया गया है । काव्य विषयक समस्त अवधारणाएं इसमें भली-भांति समाहित हैं। इसका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य आध्यात्मिक और सैद्धान्तिक वर्णन के साथ काव्यगत सरसता है।

इस द्वाविंशति सर्गात्मक महाकाव्य में नीति अध्यात्म दर्शन, न्याय, काव्यशास्त्र एवं पौराणिक उपाख्यानों से सम्बन्धित अनेक तथ्य उपलब्ध हैं। इसके माध्यम से विवेक को जागृत रखकर जीवन की सत्यता को सिद्ध किया जा सकता है । जीवन के कुछ सत्य ऐसे भी होते हैं जो त्रैकालिक सत्य हैं किन्तु कुछ विचार चर्चाएं ऐसी भी होती हैं जो तत्कालीन देश काल की व्यवस्था को ध्यान में रखकर प्रयुक्त होती है । इस विचार वीथी का कवि ने आश्रय लिया है और काव्य में युग के अनुरूप मान्यताओं को स्थान दिया है।

महाकवि ने अपने चिन्तन मनन के अनन्तर विशेष रहस्यों को उद्घाटित किया है । हाँ क्वचित् कदाचित् कुछ की उत्पत्ति की संभावना को ध्यान में रखकर साथ में शास्त्रीय प्रमाणों की प्रस्तुति अपने आप में अनुपम है ।

भगवान् महावीर चरित्र के साथ जैन धर्म दर्शन का सर्वाङ्गीण ज्ञान कराने में यह महाकाव्य सहकारी है । इसमें संसार दर्शन के अन्तर्गत चार गति के जीवों का सामान्य विस्तार के साथ चेतन और अचेतन द्रव्यों का विस्तार से वर्णन है । वर्ण व्यवस्था वस्तु व्यवस्था तत्त्व निरूपण, स्याद्वाद और अनेकान्त सप्तभंगी आदि सिद्धान्तों को बड़ी कुशलता के साथ विस्तार पूर्वक वर्णन किया है । काव्य शास्त्रीय दृष्टि से उच्च कोटि का काव्य है । कवि ने विभिन्न विषयों का उपस्थापन भगवान् महावीर की भक्ति में प्रवण होकर अत्यन्त सरल रूप में किया है । यह इसकी विशेषता है। कवि स्वयं अपने भवों के विषय में लिखते हैं ।

मनोऽङ्घ्रियां यत्पदचिन्तनेन समेति अङ्गामलतामनेन ।
तदीय वृत्तेक समर्थना वाक् समस्तु किन्नात सुवर्णभावा ॥९॥ वीरोदय

जिन वीर भगवान् के चरणों का चिन्तवन करने से प्राणियों का मन पापों से रहित होकर निर्मलता को प्राप्त हो जाता है, तो फिर उन्हीं वीर भगवान् के एकमात्र चरित्र का चित्रण करने में समर्थ मेरी वाणी सुवर्ण भाव को क्यों नहीं प्राप्त होगी? अर्थात् वीर भगवान् के चरित्र को वर्णन करने के लिए मेरी वाणी भी उत्तम वर्ण पद वाक्य रूप से अवश्य ही परिणत होगी।

इस काव्य में साहित्यिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक और सैद्धान्तिक वैभव को देखकर प्रत्येक सचेत का हृदय आह्लादित हुए बिना नहीं रहता है । इसे जैन धर्म दर्शन की पूर्ण प्रस्तुति भी कहा जा सकता है क्योंकि कवि ने सभी विषयों के इसमें स्थान दिया है जिनमें कुछ आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक विषयों का संक्षिप्त निदर्शन किया जा रहा है ।

आध्यात्मिक विकास के लिए जिस चिन्तन मनन एवं अनुशीलन की आवश्यकता है वह अन्तर्मन से जागृत होता है । सत्य के प्रति आग्रह रहित जितनी उन्मुक्त दृष्टि होगी चिन्तन जितना आत्ममुखीन होगा उतना ही आध्यात्मिक विकास होगा । इस शाश्वत नियम के दर्शन प्रतिभा सम्पन्न कवि के काव्य में होते हैं क्योंकि कवि ने विशेष रूप से पर पदार्थ की आसक्ति को दुःख का मूल हेतु माना है ।

मोहमाया का जंजाल चतुर्गति परिभ्रमण का प्रबल निमित्त है इस आध्यात्मिक चिन्तन को प्रस्तुत करते हुए कहा है -

नरत्वमाप्त्वा भुवि मोहमायां मुञ्चेदमुञ्चेच्छितामथायात् ।
नोचेत्पुनः प्रत्ययवर्तमानः संसार मेवाञ्चति चिन्निधानः ॥ वीरोदय 26 / 19

संसार में परिभ्रमण करते हुए जो जीव मनुष्य भव को पाकर मोहमाया को छोड़ देता है, वह शिवपने को प्राप्त हो जाता है । अर्थात् कर्मबन्धन से छूट जाता है, किन्तु जो संसार की मोहमाया को नहीं छोड़ता है, वह चैतन्य का निधान होकर भी चतुर्गति में परिभ्रमण करता हुआ संसार में ही पड़ा रहता है ।

यहां कवीश्वर के द्वारा संसारी प्राणी को मोह की असारता का परिचय कराया है और दुःखों से निवृत्ति हेतु मोहमाया के बन्धन से छूटने की प्रेरणा दी है ।

युवा महावीर को संसार की असारता को देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ । महावीर आत्मचिन्तन करते हुए विचारते है। अहो, में संसार के लोगों की मूर्खता और मूढ़ताओं से भरा हुआ देख रहा हूँ तथा प्राणिमात्र को अपने समान समझने वाला सनातन धर्म विलुप्त होता हुआ देख रहा हूँ । इसलिए मुझे इसकी संभाल करना चाहिये । संसारी प्राणीयों के स्वार्थभव को उनकी सोच रूप में ही वर्णित किया है कि संसार में मैं सुख से रहूँ यदि अन्य कोई दुःख में गिरता है: तो गिरे हमारे मन में अन्य जन की चिन्ता क्यों हो? इस प्रकार सर्व जन अपने-अपने स्वार्थ साधन के सिद्धान्त को पराप्त हो रहे हैं । स्वार्थ पूर्ति की भावना मोह मत्सर के साथ अहंकार जगा देती है । अहंकार प्राणी को पतन की ओर ले जाना वाला है ।

संसारी प्राणी प्रायः अहंकार के नागपाश में आबद्ध होता है । अंहकार या मद करता अत्यधिक रूप से अहित कारी है। कर्म की शक्ति बड़ी बलवान होती है उसके लिए क्षीण करने हेतु महान् पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। अतः प्राणी को अपनी वर्तमान अवस्था में आसक्त हो कथमपि उन्मत्त नहीं होना चाहिए । क्योंकि साता वेदनीय उदयकाल में जो वस्तु सुख दे रही है, वही असाता वेदनीय के उदयकाल में दुख देती है । सर्वकाल जीव की एक ही अवस्था रहना असंभव है अतः अहंकार करने से क्या लाभ? इसी सिद्धान्त के आलोक में आचार्य श्री की वीरोदय में प्रस्तुति -

तुलयावस्था न सर्वेषां किन्तु सर्वेऽपि भागिनः ।
सन्ति तस्या अवस्थायाः सेवाबो यां वयं भुवि ॥ ४१/ 16

यद्यपि वर्तमान में सर्व जीवों की अवस्था एक सी नहीं है हमारी अवस्था कुछ और है, दूसरे की कुछ और किन्तु सम्प्रति हम संसार में जिस अवस्था को धारण कर रहें हैं । इस अवस्था को भविष्य में दूसरे लोग भी धारण कर सकतें हैं और जिस अवस्था को आज दूसरे लोग प्राप्त हैं, उसे कल हम भी प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि कर्म के उदय से जीव की दशा कभी एक सी नहीं रह पाती है । हमेशा परिवर्तन होता रहता है, अतएव मानव को अपनी वर्तमान उच्च जाति या कुलादि का अभिमान कभी नहीं करना चाहिए ।

यह मानव जाति मद तुल्य ही कभी बल मद करता है कभी कुल मद में अभिभूत हो जाता है । कभी रूप, कभी ज्ञान, कभी तप, कभी प्रतिष्ठा, कभी ऋद्धि, तो कभी शरीर पर मोहित रहता है । सभी प्रकार के मद निरर्थक हैं इसलिए आचार्य वर्य ने पुराण पुरुषों के उदाहरण पूर्वक प्रस्तुति की है । जो सामान्य जन अज्ञान के वशीभूत होकर मदलिप्त हैं, वे व्यर्थ के अहंकार और ममकार से विरत हो सकें ।

मद-मत्सर आदि विकारी भावों की निवृत्ति आत्मतत्त्व की प्रतीति होने पर ही संभव हैं । आत्मतत्त्व की प्रतीति का मूल साधन जीव और पुद्गल को भिन्न जानना है । महाकवि ने ग्रीष्म ऋतु में महामुनि महावीर के विहार वर्णन में भेद विज्ञान रुप अद्वितीय सैद्धान्तिक तत्त्व की प्रस्तुति की है- उन्होंने कहा है "ऐसी प्रचण्ड गर्मी के समय निर्दोष एवं आत्मपद की प्राप्ति के लिए अद्वितीय शाण के समान वे वीर भगवान् अपने इस शरीर को सांप की कांचली के समान अथवा म्यान के खड्ग के समान भिन्न देखते हुए आनन्द मय होकर विचर रहे थे।[1] आगे लिखा है "आत्मीय रस से अद्वितीय कूपतलय वे शान्ति के सूर्य वीर प्रभु शरीर से ममता रहित होकर और सर्व ओर से समता को प्राप्त होकर ग्रीष्म शीत और वर्षाकाल को एक रूप देखते हुए विहार कर रहे थे ।[2]

यहां साधक की उत्कृष्ट भूमिका का वर्णन प्रभाव पूर्ण है । साथ में परीषह जय का चित्रण भेद विज्ञानी की यथार्थ भूमिका को दर्शाने वाला है : भगवान् सभी प्रकार के परीषह और उपसर्गों को सहते हुए यह चिन्तन करते थे कि यह आत्मा जल से कभी गीला नहीं होता । पवनवेग इसे सुखा नहीं सकता और अग्नि इसे जला नहीं सकती (क्योंकि यह अमूर्त है) फिर यह जीव इस संसार के अग्नि जालदिक से क्यों व्यर्थ ही कष्ट को प्राप्त हो ।[3]

महामुनि महावीर के चिन्तन के माध्यम से शरीर आत्मा की पृथक्करण की प्रक्रिया दर्शायी है -

न वेदनाऽङ्गस्यच चेतनस्तु नासामहो गोचरचारि वस्तु ।
तथापि संसारिजनो न जाने किमस्ति लग्नोऽर्तिकथाविधाने 12-36॥

शीत उष्णादि की वेदना सहन करते हुए भगवान् विचार करते थे कि शरीर के तो जानने की शक्ति (चेतन) नहीं है और वह चेतन आत्मा इन शीत उष्णादि की वेदनाओं का विषयभूत होने वाला पदार्थ नहीं है, तो भी न जाने क्यों यह संसारी जीव पीड़ा की कथा में संलग्न हो रहा है ।

इस प्रकार के चिन्तन से शरीर के प्रति अनासक्ति जागृत होती है । अनासक्ति ही मुक्ति का आधार है । आचार्य कुन्द कुन्द आदि महर्षि ने भी अनासक्ति को मोक्ष का साधन कहा है।[4] छद्मस्थकाल आत्मचिन्तन पूर्वक बीत जाने पर शुक्लध्यान को प्राप्त होकर घातिया कर्मों की सर्व प्रकृतियों का क्षय करके अघातिया कर्मों के साथ रहते हुए अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी के सौभाग्य की प्राप्ति होती हैं । अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त हो जाता हैं । कवि ने केवलज्ञान का विस्तार के साथ वर्णन करते हुए सर्वज्ञ सिद्धि की है। केवलज्ञानी की चुतुर्मुखता की प्राप्ति चार पुरुषार्थों को निरूपण हेतु बताकर सुन्दर प्रस्तुति की हैं ।[5]

केवलज्ञान निरुपण के बाद समवशरण रचना का शास्त्रीय वर्णन किया गया हैं । समवशरण में जिनेन्द्र भगवान् की दिव्य ध्वनि के माध्यम से जीव और पुद्गल की अनादिकाल से चली आ रही ऐक्य बुद्धि का सुन्दर चित्रण है । शरीर के नश्वरता के साथ कवि के द्वारा असत् कर्मों के असत् फल का वर्णन है और जीव के कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि निरुपण को विस्तार से बताया हैं ।

---

1. सर्पस्य निर्मोकमिमवाथ कोशमसेरिवाऽऽनन्दमयोऽपदोषः ।
   शरीरमेतत्परमीक्षमाणः वीरो बभावाऽऽत्मपदैकशाणः ॥ 32॥
2. शरीरतोऽसौ ममताविहीनः व्रजन् समन्तात्समता शमीनः ।
   उष्णं हिमं वर्षणमेकरू पं न बह्निना तप्तिमुपैतिजातुः ॥33॥
3. नात्माऽम्भसाऽऽ र्द्रत्वमसौ प्रयाति
   न शोषयेतं भुवि वायुतातिः।
   न बह्निना तप्तिमुपैतिजातुः,
   व्यथा कथायेव कुतः प्रयातुः ॥ वीरोदय 12/34
4. रत्तो बन्धादि कम्मं मुञ्चदि जीवो विराग सम्पणवो । एसो जिणोवदसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥
5. वीरोदय 43/12

भगवज्जिनेन्द्र की वाणी से प्राप्त "स्वकृत कर्म का भोक्ता जीव स्वयं है" इस सिद्धान्त को आचार्य श्री कुन्द कुन्द अमितगति आदि के समान ही काव्यकार (आचार्य श्री ज्ञान सागर महाराज) ने प्रस्तुत करते हुए कहा है::

वस्तुत: कोई किसी को सुख दु:ख देने वाला नहीं है । प्रत्येक प्राणी अपने-अपने किए कर्मों के परिणाम को भोगता है। जब मनुष्य किसी के दु:ख दूर करने के लिए कोमल चित्त करता है, तो उसका वह कोमलभाव उसे सुखदायक होता है। और जब दूसरे के लिए कठोरभाव करता है, तो वह उसे दु:खदायक होता है । (वीरोदय 10/16)

महाकवि ने स्वकृत व्यापार के फल को स्वयं प्राप्त करने रुप सिद्धान्त की परिपुष्टि के साथ "आत्मवत् सर्वभूतेषु, "की मान्यता को भी स्थान दिया है -

मनुष्य जैसा व्यवहार स्वयं अपने लिए चाहता है, वैसा ही व्यवहार उसे दूसरे दीन कायर पुरुषों तक के साथ करना चाहिए। यही एक तत्व धर्म का मूल है और शेष सर्व कथन तो इसी का विस्तार है ।[1] और भी -

जो दूसरों को मारता है, वह स्वयं दूसरों के द्वारा मारा जाता है और जो दूसरों की रक्षा करता है, वह सर्व जगत् में पूज्य होता है। हे वत्स! क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि आंख में काजल लगाने वाली अंगुली पहिले स्वयं ही काली बनती है ।[2]

जीवन विकास के लिए ज्ञान आवश्यक है, ज्ञान वही है, जो आचरण में मूर्तरूप लेता है। भेद विज्ञानी साधक साध्य की सिद्धि या साधुत्व की सफल साधना के लिए ज्ञान के साथ आचार को प्रतिष्ठित करता है। इसी सिद्धान्त को कर्तव्य बोध का प्रबोध कराते हुए कवि ने लिखा है:

इन परस्पर मिले हुए जीव और पुद्‌गल के विश्लेषण का नाम ही सिद्धि या मुक्ति है । यह सिद्धि एक मात्र ध्यान के द्वारा ही सिद्ध की जा सकती है । जब ध्यान में चित्त की स्थिरता न रहे, तब स्वाध्याय करना चाहिए । यही साधु का सद् जीवन है ।[3]

जिस गुणी पुरुष को सिद्धि प्राप्त करना अभीष्ट हो, उसे चाहिए कि वह संसारिक वस्तुओं की चाह छोड़कर अपने चित्त को निरीह बनावे, अपनी इन्द्रिय को जीते और प्राणायाम करे, तभी साधक का भविष्य सुन्दर बन सकता है । ये ही कार्य सिद्धि प्राप्त करने के लिए एक मात्र उपकारी हैं[4] और भी कहा है -

पुनर्नसंयोगभतोऽप्युपेया दिषामृतोक्तिः स्फुटमस्यपेया ॥24/18

आत्मसाधना करते हुए यदि शरीर की हानि होती है, तो भले ही हो जाय किन्तु साधु के शरीर हानि होते हुए भी द्वेष खेद या असूया भाव नहीं प्रकट होना चाहिए । साधु का तो आत्मसाधना करते हुए यही भाव रहना चाहिए कि इस जड़ शरीर का पुन: संयोग न होवे । यही अमृतोक्ति साधु को निरन्तर पान करते रहना चाहिए ।[5]

वस्तु के परिणमन में उसका उपादान कारण प्रधान होता है, फिर भी निमित्त कारण के बिना वस्तु का परिणमन असंभव है, अतएव निमित्त-नैमित्तिक भाव से वस्तु का परिणमन कहा जाता है, इस आगमिक सिद्धान्त का कवीश्वर ने तार्किक प्रतिभावान् समन्तभद्राचार्य के समान बड़ी कुशलता के साथ प्रतिपादन किया है :

कोई भी वस्तु सर्वथा नवीन उत्पन्न नहीं होती इसी प्रकार जो वस्तु विद्यमान है, वह भी कभी नष्ट नहीं होती है । निमित्त - नैमित्तिक भाव से प्रत्येक वस्तु नित्य नवीन रुप को धारण करती हुई परिवर्तित होती रहती है । यही वस्तु का वस्तुत्व धर्म है ।[6]

प्रत्येक वस्तु अपने-अपने गुण और पर्यायों को द्वारा सहज ही स्वयं परिणमनशील है और बाह्य कारण काल की सहायता से यह परिवर्तन होता रहता है । काल परिवर्तन के ध्रुव सिद्धान्त के आधार पर कवि के द्वारा कर्तृत्ववाद का निरसन किया गया है ।

यथार्थ में इस संसार का कोई कर्त्ता या नियन्ता ईश्वर नहीं है । एक मात्र समय की ही ऐसी जाति है कि जिसकी सहायता से प्रत्येक वस्तु में प्रतिक्षण नवीन-नवीन पर्याय उत्पन्न होती रहती हैं । और पूर्व पर्याय विनष्ट होती रहती है । इसके अतिरिक्त संसार में और कोई कार्यदूत अर्थात् कार्य कराने वाला नहीं है ।[7]

अनन्तर उदाहरणों के माध्यम से समय शक्ति को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है जैसे अकेले बाहुबली ने भरत चक्रवर्ती को जीत लिया । पश्चात् वह तपस्वी बन गये । घोर तपस्या करने पर ही जब केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, तब वही भरत चक्रवर्ती बाहुबली की सहायता को प्राप्त हुए और क्षणमात्र में स्वयं महापुरुषों को भूमि आर्हन्त्य पदवी को प्राप्त कर लिया । जो श्री कृष्ण जरासन्ध त्रिखण्डेश्वर के महान् प्रहारों से भी परास्त नहीं हुए, वे जरत्कुमार के एक बाण से ही मृत्यु को प्राप्त हो गये।

1. वीरोदय 16-16 2. वही 16-17 3. वही 18-22 4. वही 18-23
5. वही 18-24 6. वही 19-39 7. वही 19-2

यहां पर बल -विक्रम का कुछ भी मूल्य नहीं होता । समय की ही यहां पर बलिहारी है। यह आत्मा अपने विचारों का केन्द्र बना हुआ है । रात-दिन नाना प्रकार के विचार किया करता है कि अब यह करुंगा, अब वह करुंगा किन्तु पर में भी अन्यथा विधि करने के लिए समर्थ नहीं है । यह काल के प्रभाव की बात है कि कुछ से कुछ और प्रतिभासित होने लगती है ।[1]

वस्तु व्यवस्था काल के आधार पर व्यवस्थित है प्रत्येक द्रव्य का परिणमन अपने में होता है, किन्तु परिणमन सहकारीपना काल का है। काल का भी विशेष महत्त्व है । इसी क्रम में महाकवि ने पदार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि प्रत्येक पदार्थ सत्स्वरुप है । वस्तु स्वभाव का यह नियम अनादि है और जो भी वस्तु है, वह अर्थ क्रियाकारी हैं। यदि अर्थक्रियाकारिता वस्तु का स्वरूप न माना जाय तो वस्तु की सत्ता ही स्वीकार नहीं की जा सकेगी ।[2] प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय अपने पूर्वरूप को छोड़कर अपूर्वरुप को धारण करती है । और अपने मूल स्वरुप को नहीं छोड़ती है। वस्तु की उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक त्रिरूपता एक काल में ही अनुभूत है ।[3] इस वस्तु व्यवस्था को कवि ने उदाहरण के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए समस्त वस्तुओं के उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना सिद्ध किया है - दूध के सेवन करने से आम शक्ति बढ़ती है और उसी दूध से बने दही का प्रयोग आम को नष्ट करता है किन्तु उस दूध दही दोनों ये ही गोरस पना पाया जाता है। अतः समस्त वस्तु जाति उत्पाद व्यय ध्रौव्यरुप त्रयात्मक है । यह बात सिद्ध हुई ।[4]

एक अन्य उदाहरण द्वारा वस्तु का स्वभाव बतलाते हुए कहा है- कोई एक रेखा न स्वयं छोटी है और न बड़ी है। यदि उसी के पास उससे छोटी रेखा खींच दी जाय तो वह पहिली रेखा बड़ी कहलाने लगती है, ओर यदि उसी के दूसरी ओर बड़ी रेखा खींच दी जाय, तो वही छोटी कहलाने लगती है। इस प्रकार वह पहिली रेखा छोटी और बडी दोनो रूपों को अपेक्षा विशेष से धारण करती है। बस वस्तु का स्वभाव भी ठीक इसी प्रकार का जानना चाहिए ।[5]

वस्तु स्वरूप प्रतिपादन के साथ लौकिक उदाहरण पूर्वक स्याद्वाद और अनेकान्त की स्थापना की है । प्रत्येक मनुष्य को स्याद्वाद सिद्धान्त को भक्ति पूर्वक अंगीकार करने की प्रेरणा दी गयी है। अनन्तर वस्तु में त्रिरूपता की अनिवार्यता दर्शाते हुए कहा है । 'पर्याय की अपेक्षा वस्तु में स्युति (उत्पत्ति) और पराभूति (विपत्ति या विनाश) पाया जाता है । उसी प्रकार द्रव्य की अपेक्षा ध्रुवपान भी उसका एक तत्त्व है, जो कि उत्पत्ति और विनाश में बराबर अनुस्यूत रहता है । उसकी अपेक्षा वस्तु को ही यथार्थ मानना चाहिए ।[6]

इन तीन रूपों की सत्ता प्रत्येक वस्तु में पायी जाती है । इनके नामान्तर ही गुण पर्याय हैं । यह स्पष्ट किया है -

ज्ञानीजन वस्तु गत ध्रुवांश को गुण इस नाम से कहते हैं और अन्य दोनों धर्मों को अर्थात् उत्पाद और व्यय को पर्याय इस नाम से कहते हैं । इस प्रकार गुण और पर्याय से संयुक्त तत्त्व को अथवा सामान्य और विशेष धर्म से युक्त तत्त्व को द्रव्य इस नाम से कहा जाता है ।[7]

द्रव्य स्वरूप निरुपण के साथ महाकवि के द्वारा द्रव्य के सामान्य भेदों का वर्णन करते हुए कहा गया है-"जो द्रव्य सत्सामान्य की उपेक्षा एक प्रकार का है, वही चेतन और अचेतन के भेद से दो प्रकार का है । उनमें यह जीव चेतन द्रव्य है, जो भिन्न-भिन्न प्रतीत होता हैं । अपने किए हुए कर्मों का स्वयं ही भोक्ता है और यथार्थता अपने आपका विमोक्ता भी है ।[8]

चेतनद्रव्य जीव का वर्णन विस्तार से किया है । देव मनुष्य नारकी के अतिरिक्त शेष जीव तिर्यञ्च । तिर्यञ्च पांच प्रकार के हैं एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । इनमें एकेन्द्रिय जीव भी पांच प्रकार के हैं - पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक । सभी जीवों के उत्पत्ति आदि पर विचार कर उनकी विराधना से होने वाली हिंसा पर सूक्ष्म चिन्तन प्रस्तुत किया है । वनस्पित कायिक के भेद प्रभेद का सविस्तार वर्णन है और सचित्राचित्र के विचार पूर्वक भक्ष्याभक्ष्य का कथन किया गया है ।[9]

चेतन द्रव्य वर्णन के बाद अचेतन द्रव्यों का वर्णन भी पूर्वाचार्य विस्तार के साथ किया गया है। अचेतन द्रव्य पांच प्रकार के हैं - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें पुद्गल द्रव्य ही रूपादि वाला है अर्थात् पुद्गल में ही रूप रस गन्ध स्पर्श पाया जाता है । अतः वह रूपी या मूर्त कहलाता है। शेष चार द्रव्यों में रूपादि चार गुण नहीं पाये जाते, अतः वे अरूपी या अमूर्त कहलाते हैं । पुद्गल के अणु और स्कन्ध रुप से दो भेद हैं, पुनः स्कन्ध के भी बादर सूक्ष्म आदि की उपेक्षा नाना भेद बताये हैं। इस जगत ये प्रमोद वर्धक जितना कुछ दिखाई देता है, वह सब पुद्गल द्रव्य का ही वैभव हैं ।[10]

1. वीरोदय 3, 4, 5/18 2. 1/19 3. 2/19 4. 3/19 5. 19/5
6. 18/16 7. वीरोदय 19/18 8. वीरोदय 19/24 9. वही 19/39 10. वीरोदय 19, 35, 36, 37, 38

जीव पुद्गल के विशेष वर्णन के साथ धर्म, अधर्म, आकाश, काल, द्रव्यों के स्वरूप एवं कार्यों का रोचक प्रतिपादन हैं । षड्द्रव्यों के समूह को लोक कहा है । षड्द्रव्य मयी लोक वर्णन के साथ लोक निर्माता नियन्ता का निषेध किया है-

बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है। यह परम्परा अनादिकाल से बराबर सन्तान रुप चली आ रही है । इसी प्रकार पशु, मनुष्य आदि सभी पदार्थ अपने-अपने कारणों से उत्पन्न होते हुए अनादि से चले आ रहे हैं । इन पदार्थों का कोई अधिकारी या नियन्ता ईश्वर आदि नहीं है, जिसने कि जगत के पदार्थों को बनाया हो । सभी चेतन या अचेतन पदार्थ अनादिकाल से स्वंय सिद्ध है ।[1]

विविध उदाहरणों की प्रस्तुति के साथ ईश्वर कर्तृत्व का निरसन कवि के द्वारा किया गया उनमें से एक और उदाहरण की प्रस्तुति पूर्वक अभीष्ट की सिद्धि की जा रही है, वे लिखते हैं -

देखो-जलाशय का जल सूर्य के घाम से भाप बन कर उठता है और आकाश में जाकर बादल बन कर उसी के ऊपर बरसता है और जहां आवश्यकता होती है, वहां नहीं बरसता है इसका क्या कारण है ? यदि कोई ईश्वरादिक विश्व का प्रबन्धक या नियामक होता, तो फिर यह भिन्नता क्यों होती । इसी प्रकार ईश्वर को नहीं मानने वाला सुखी जीवन व्यतीत करता है और दूसरा रात दिन ईश्वर का भजन करते हुए भी दु:खी रहता है, सो इसका क्या कारण माना जाय ? इसलिए यही मानना युक्तियुक्त है कि प्रत्येक प्राणी अपने ही कारण कलापों से सुखी या दु:खी होता है कोई दूसरा सुख या दु:ख देने वाला नहीं है ।[2]

उक्त कथन से स्पष्ट है कि इस षड्द्रव्यमयी लोक की रचना किसी ने भी नहीं की है । यह स्वत: सिद्ध अनादि-निधन है। इसने जो भी रचना दृष्टिगोचर होती है, वह स्वत: उत्पन्न हुई जानना / मानना चाहिए ।

सृष्टि का नियन्ता न होने पर यह कदापि नहीं है कि त्रैकालिक पदार्थों का कोई ज्ञाता दृष्टा भी नहीं है, इस सम्बन्ध में कवि के द्वारा स्पष्ट कहा गया है कि आत्मा से कर्मों के अलग होने पर वह आत्मा समस्त ज्ञेय पदार्थों का ज्ञाता द्रष्टा हो जाता है यथा "जब यह आत्मा क्षोभ रहित निश्चलता को प्राप्त होकर विलसित होता है, तब उसमें प्रतिबिम्बित वह समस्त जगत् स्पष्ट रुप से दिखाई देने लगता है, क्योंकि ज्ञेय पदार्थों को जानना ही ज्ञानरुप आत्मा का स्वभाव है। जैसे बाहरी दाह्य ईन्धन को जलाना दाहक रूप अग्नि का काम है उसी प्रकार बाहिरी भविष्य में होने वाले वर्तमान में विद्यमान और भूतकाल से उत्पन्न हो चुके ऐसे त्रैकालिक पदार्थों की परम्परा को जानना निरावरण ज्ञान का माहात्म्य है। ज्ञान के आवरण दूर हो जाने से सार्वकालिक वस्तुओं को जानने वाले पवित्र ज्ञान को सर्वज्ञ भगवान् धारण करते हैं, अत: सर्व के ज्ञाता होते हैं ।

सर्वज्ञ सत्ता का विशिष्ट वर्णन ईश्वर आदि के निराकरण के लिए पर्याय है। एकान्त वादियों के लिए उड़ाने हेतु यह झञ्झावात के समान है। अनेकान्त की सिद्धि करने वाला प्रभाव काव्य है ।

काव्य की संपूर्ति करते हुए सम्प्रदाय गत विद्वेष भावना से दूर होकर सद्भाव समता के सिद्धान्त को प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में स्थान दे ऐसी प्रेरणा दी है । कालदोष से सम्प्रति धर्म मार्ग में विकृतियां प्रवेश कर गयी हैं । उनके कारण सत्पुरुषों का मन भी दोलायमान होने लगा है इस पर कवि ने चिन्ता व्यक्त की है, वे कहते हैं :

अर्थात् -कितने ही लोग गृहस्थों के लिए भी प्रतिमा पूजन का निषेध करते हैं और कितने ही लोग मुनियों के लिए भी उसकी आवश्यकता बतलाते हैं कितने ही लोग वीतराग परमात्मा की मूर्ति को भी वस्त्राभूषणादि पहनाना आवश्यक मानते हैं, तो कितने ही लोग मूर्ति का अभिषेक आदि करना अनावश्यक बतला कर उसका निषेध करते हैं ।[3]

काव्यकार की दृष्टि मिथ्यामतों के निराकरण की रही है। आडम्बर रहित समस्त लोक के हितकारी धर्म को धारण कराने का भी भाव रहा है। सम्प्रदाय के घेरे से निकल कर जन सामान्य के प्रति उदारभाव रखने की प्रेरणा लोकोत्तर है। लोक कल्याण की भावना को काव्य में साकार किया गया है, अत: यह उपादेय भूत है ।

डॉ० श्रेयांसकुमार जैन
दिगम्बर जैन कॉलेज
बड़ोत

1. वीरोदय 19/24   2. वही 19/42/43   3. वही 22-22

वीरोदय में प्रतिपादित जैन दार्शनिक मीमांसा

डॉ. अशोककुमार जैन

संस्कृत काव्य साहित्य की श्रीवृद्धि में इस युग के महान् तपस्वी पूज्य आचार्य विद्यासागर महाराज के गुरु आचार्य ज्ञानसागर महाराज का महान योगदान है। आचार्य जिनसेन ने आदि पुराण में लिखा है कि "कविता भी वही प्रशंसनीय समझी जाती है जो धर्मशास्त्र से सम्बन्ध रखती है । धर्मशास्त्र के सम्बन्ध से रहित कविता मनोहर होने पर भी मात्र पापास्रव के लिए होती है ।[1] आचार्य ज्ञानसागर महाराज द्वारा रचित वीरोदय काव्य का धर्मशास्त्र से भी सम्बन्ध है । इसमें जैनधर्म के 24वें तीर्थंकर भगवान् महावीर के चरित्र का मनोहारी वर्णन किया गया है ।

आचार्य मम्मट ने अनिष्ट का विनाश और कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान भी काव्य के प्रयोजन माने हैं ।[2] काव्य के पठन-पाठन से न केवल जन-मन रंजन ही होता है । अपितु उससे धर्म जिज्ञासुओं को धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक ज्ञान का शिक्षण कायर जनों को साहस, वीर जनों को उत्साह तथा शोकसंतप्त जनों को धैर्य प्राप्त होता है। धर्मशास्त्र तो कड़वी औषधि के समान अविद्या रूप व्याधि का नाशक है किन्तु काव्य आल्हाद जनक अमृत के समान अविवेक रूप रोगों का अपहारक है ।[3] महाकवि अश्वघोष के समान जैन कवियों ने भी काव्य की शैली में मोक्ष, कर्म, संयोग, जीवन शोधन, गृहस्थाचार एवं श्रमणाचार पर प्रकाश डाला है । दार्शनिक और सदाचार सम्बन्धी तत्वों का निरुपण दर्शन में ही तत्व निरुपित हैं ।

वीरोदय एक महाकाव्य तो है ही पर इसके भीतर जैन इतिहास और पुरातत्व का भी दर्शन होता है अतः इसे इतिहास और पुराण भी कह सकते हैं। धर्म के स्वरूप का वर्णन होने से यह धर्मशास्त्र है तथा स्याद्वाद सर्वज्ञता और अनेकान्त वर्णन होने से यह न्यायशास्त्र है। अनेक शब्दों का संग्रह होने से यह शब्द कोष भी है ।[4] भगवान् महावीर ने जिन सर्वलोक कल्याणकारी उपदेशों को दिया उनमें से साम्यवाद, अहिंसा, स्याद्वाद और सर्वज्ञता ये चार मुख्य मानकर चार सर्गों में ग्रन्थकार आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है ।[5]

न्यायशास्त्र को तर्कशास्त्र, हेतु विद्या और प्रमाण शास्त्र भी कहते हैं किन्तु इसका प्राचीन नाम आन्वीक्षिकी है । वात्स्यायन भाष्य में आन्वीक्षिकी का अर्थ न्याय विद्या करते हुए लिखा है 'प्रत्यक्ष और आगम के अनुकूल अनुमान को अन्वीक्षा कहते हैं। अतः प्रत्यक्ष और आगम से देखे हुए वस्तु तत्व के पर्यालोचन का युक्तायुक्त विचार का नाम अन्वीक्षा है और जिसमें वह हो उसे आन्वीक्षिकी कहते हैं ।[6] न्याय शब्द को व्युत्पत्ति करते हुए शास्त्रकारों ने उसका यही अर्थ किया है जिसके द्वारा निश्चित और निर्बाध वस्तु तत्त्व का ज्ञान होता है उसे न्याय कहते हैं ।[7] न्याय शास्त्र में अनुमान प्रमाण और उसके अंग उपांगों का ही प्राधान्य है तथापि जब हम बौद्ध न्याय या जैन न्याय शब्द का प्रयोग करते हैं तो उसका तात्पर्य केवल अनुमान प्रमाण न होकर कुछ विशेष होता है और उन विशेषताओं के कारण ही वह बौद्ध न्याय या जैन न्याय कहा जाता है। प्रत्येक दर्शन या धर्म के प्रवर्तक की एक विशेष दृष्टि होती है जो उसकी आधार भूत होती है । जैसे भगवान् बुद्ध की अपने धर्म प्रवर्तन में मध्यम प्रतिपदा दृष्टि है या शंकराचार्य की अद्वैत दृष्टि है । जैनदर्शन के प्रवर्तक महापुरुषों की उसके मूल में एक विशेष दृष्टि रही है उसे ही अनेकान्तवाद कहते हैं ।[8]

सौन्दरनन्द काव्य में लिखा है "काव्य का रस सरस होता है और दर्शन का उपदेश कटु । कड़वी औषधि मधु मिला देने पर मीठी हो जाती है । इसी प्रकार कटु उपदेश भी काव्य के सरस आश्रय से मधुर हो जायेगा । वीरोदय महाकाव्य में भी कवि ने 1[9] वें सर्ग में जैनन्याय के सिद्धान्तों का काव्यमय शैली में सरलता एवं सरसता के साथ प्रतिपादन किया है ।

1. धर्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते । शेषा पापास्त्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते ॥ आदि पुराण 1/63
2. काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यः परनिवृतये कान्तसम्मिततयोपदेशयुजे ॥ काव्य प्रकाश 1/2
3. वक्रोक्ति जीवित
4. वीरोदय काव्य की प्रस्तावना पृ. 12-13
5. वीरोदय काव्य की प्रस्तावना पृ. 20
6. वात्स्यायन भाष्य ॥1॥
7. 'नीयते ज्ञायते विक्षितार्थोऽनेनेति न्यायः न्यायकुसुमाञ्जलि नितरामीयन्ते गम्यन्ते गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्. ज्ञायन्तेऽर्थाः अनित्यपत्वास्तित्वा दयोऽनेनेति न्यायः तर्कमार्गः। न्यायप्रवेशिका पृ. ।
   'निश्चितं च निर्बाधं चवस्तुतत्वमीयतेनेनेति न्यायः'न्यायविनिश्चमलंकार भाग पृ. 33
8. पं. कैलाशचन्द शास्त्रीः जैन न्याय पृ.4
9. सौन्दरनन्द 18/63

काव्य में उल्लिखित जैन दार्शनिक आचार्य एवं ग्रंथ

इस महाकाव्य में जैन न्याय प्रस्थापक आचार्य समन्तभद्र, अकलंकदेव, प्रभाचन्द्र, नेमिचन्द्र, पूज्यपाद आदि का तथा उनके ग्रन्थों का वर्णन किया है। आचार्य समन्तभद्र को महान कवि के रूप में स्मरण करते हुए लिखा है कि यह सूक्त अर्थात् भले प्रकार कही गयी कविता हार के समान आचरण करती है । जैसे हार उत्तम गोल मोतियों वाला होता है । उसी प्रकार यह कविता भी उत्तम वृत्त अर्थात् छन्दों में रची गयी है। हार सूत्र से अनुगत होता है और कविता भी आगम रुप सूत्रों के सार भूत अधिकारों वाली है। हार को उदार सत्पुरुष कण्ठ में धारण करते हैं और इस उदार कविता को सत्पुरुष कण्ठस्थ करते हैं । ऐसी यह हार स्वरूप कविता समस्त लोक के कल्याण के लिए होवे । यहाँ 'समन्त भद्र' पद से कवि ने यह भाव व्यक्त किया है कि उत्तम कविता तो समन्दभद्र जैसे महान् आचार्य ही कर सकते हैं हम तो नाम मात्र के कवि हैं । इस प्रकार ग्रंथ को प्रारम्भ करते हुए कवि ने उनके पवित्र नाम का स्मरण कर लघुता को प्रकट किया ।[1] आचार्य अकलंक तथा प्रभाचन्द्र आचार्य का वर्णन करते हैं जो अकलंक अर्थ का प्रतिपादन करती है और संसार में सर्व और कौमुदी को बढ़ाती है ऐसी प्रभाचन्द्र आचार्य की सुन्दर वाणी हमारे अज्ञान अंधकार को दूर करके चिरकाल तक जयवन्त रहे । इसका भाव यह है कि जैसे चन्द्रमा की चन्द्रिका कलंक रहित होती है, कुमुदों को विकसित करती है। और संसार के अंधकार को दूर करती है उसी प्रकार प्रभाचन्द्र आचार्य के न्यायकुमुद चन्द्रादि ग्रन्थ रुप सुन्दर वाणी अकलंकदेव के दार्शनिक अर्थ को प्रकाशित करती है, संसार में हर्ष को बढ़ाती है और लोगों के अज्ञान को दूर करती है। वह वाणी सदा जयवन्त रहे ।[2] "आचार्य पूज्यपाद का उल्लेख करते हुए लिखा है कि आचार्य पूज्यपाद ने अपने व्याकरणशास्त्र में मृत्व (प्रतिपदिकत्व) को संज्ञाओं में कहा (धातु-पाठ में नहीं) किन्तु ममत्वहीन इस सिद्धार्थ राजा ने तो मृत्व अर्थात् मृत्तिकापन को तो पार्थिव धातुओं में गिना है । इसका भाव यह है कि जैनेन्द्र व्याकरण में मनुष्य आदि नामों की मृत्संज्ञा की गई है, भू आदि धातुओं की नहीं किन्तु सिद्धार्थ राजा ने उसके विपरीत सुवर्णादि धातुओं में मृत्पना (मृत्तिकापन) मानकर मनुष्यों में आदर भाव प्रकट किया ।[3] मां त्रिशला ने जब राजा सिद्धार्थ से अनुपम स्वप्नावली को बताया तो राजा ने अति सुन्दर फल बताते हुए उनसे कहा कि हे सुभगे, तुम आज मुझे आप्तमीमांसा के समान प्रतीत हो रही हो । जैसे समन्तभद्र स्वामी के द्वारा लिखी गई आप्त की मीमांसा अकलंकदेव द्वारा (रचित अष्टशती वृत्ति) से अलंकृत हुई है, उसी प्रकार तुम भी निर्मल आभूषणों को धारण करती हो । आप्तमीमांसा सन्नय से अर्थात् सप्तभंगी रुप स्याद्वाद न्याय के द्वारा निर्दोष अर्थ को प्रकट करती है और तुम भी अपनी सुन्दर चेष्टा से निर्दोष तीर्थंकर देव के आगमन को प्रकट कर रही है। इस प्रकार के वर्णन से कवि के जैन न्याय ग्रंथों के गहन अध्ययन एवं अनुरक्ति का सहज परिचय प्राप्त होता है।[4]

अनेकान्त के परिप्रेक्ष्य में निम्न बिन्दुओं पर प्रस्तुत महाकाव्य में बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है । जगत् का प्रत्येक सत् प्रतिक्षण परिवर्तित हो कर भी कभी समूल नष्ट नहीं होता वह उत्पाद व्यय और ध्रौव्य लिक्षण रीप है, कोई भी पदार्थ चेतन हो या अचेतन, इस नियम का अपवाद नहीं है । यह लिक्षणा परिणामवाद जैन दर्शन के मण्डप की आधारभूमि है । इस त्रिलक्षण परिणामवाद की भूमि पर अनेकान्त दृष्टि और स्याद्वाद के खम्भों से जैनदर्शन का तोरण बांधा गया है । विविध नय, सप्तभंगी, निक्षेप आदि इसकी झिलमिलाती हुई झालरें हैं ।[5]

वस्तु की उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मकता

वीरोदय काव्य में भी वस्तु स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय अपने पूर्व रूप (अवस्था) को छोड़कर अपूर्व (नवीन) रूप को धारण करती है फिर भी वह अपने मूल स्वरूप को नहीं छोड़ती ऐसा ज्ञानी जनों ने कहा है । इसलिए हे सज्जनो आप लोग भी वस्तु की उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक त्रिरूपता एक-एक काल में अनुभव कर रहे हो । जो वस्तु स्वरुप मे अनभिज्ञ हैं ऐसे मूर्ख जन ही इससे विपरीत स्वरूप वाली वस्तु को कहते हैं ।[6] दूध के सेवन करने से आम शक्ति बढ़ती है और उसी दूध के बने दही का प्रयोग आम को नष्ट करता है । किन्तु उस समय दूध और दही दोनों में ही गोरसपना पाया जाता है अतः समस्त वस्तु, जाति उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप त्रयात्मक हैं ।[7]

जैसे पर्याय की उपेक्षा वस्तु में स्यूति (उत्पत्ति) और पराभूति (विपत्ति या विनाश) पाया जाता है उसी प्रकार द्रव्य की उपेक्षा ध्रुव पना भी उसका एक तत्व है जो कि उत्पत्ति और विनाश में बराबर अनुस्यूत रहता है । उसकी उपेक्षा न वस्तुः उत्पन्न होती है और विनष्ठ । इस प्रकार उत्पाद व्यय और ध्रौव्य इन तीनों रुपों को धारण रखने वाली वस्तु को ही यथार्थ मानना चाहिए ।[8]

---

1. सौन्दरनन्द 18/63 2. वीरोदय 1/24 3. वही 1/25 4. वही 3/7
5. वही 4/39 6. पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यः जैनदर्शन पृ. 7 वीरोदय 19/2 8. वही 19/3

वस्तु की सामान्य विशेषतात्मकता

ज्ञानी जन वस्तुगत ध्रुवांश को गुण इस नाम से कहते हैं और अन्य दोनों धर्मों को अर्थात् उत्पाद और व्यय को पर्याय इस नाम से कहते हैं इस प्रकार गुण और पर्याय से संयुक्त तत्त्व को अथवा सामान्य विशेष धर्म से युक्त तत्त्व को इस नाम से कहा जाता है।[1] जो कोई वस्तु है वह आगे पीछे होने वाली अपनी पर्याय में अपने स्वभाव को व्याप्त करके रहती है इसी को सन्त लोगों ने ऊर्ध्वता सामान्य कहा है तथा एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के साथ जो समानता रखता है उसे तिर्यक् सामान्य कहते हैं । इस प्रकार जिन का उपदेश है ।[2] अन्य पदार्थों के साथ समानता रखते हुए भी प्रत्येक पदार्थ अपने व्यक्तित्व को स्वयं ही कायम रखता है अर्थात् दूसरों से अपनी भिन्नता को प्रकट करता है। यह उसकी व्यतिरेक रुप विशेषता है तथा वह पदार्थ प्रति समय नवीनता को धारण करता हुआ प्रतिभासमान होता है, यह उसकी पर्याय रूप विशेषता है ।[3]

वस्तु की एकानेकात्मकता

जिसे 'सेना' इस एक नाम से कहते हैं, उनमें अनेक हाथी, घोडे और पयादे होते हैं । जिसे वन इस नाम से कहते हैं उसमें नाना जाति के वृक्ष पाये जाते हैं । एक स्त्री को 'दारा' इस बहुवचन से तथा जल को 'अप्' इस बहुवचन से कहते हैं ।

इस प्रकार एक ही वस्तु में एकत्व और अनेकत्व की प्रतीति होती है। फिर हे वत्स क्या तुम्हारी बुद्धि इस एकानेकात्मक रूप अनेकान्ततत्व को स्वीकार नहीं करेगी अर्थात् तुम्हें उक्त व्यवहार को देखते हुए अनेकान्तत्व को स्वीकार करना ही चाहिए ।[4]

वस्तु की नित्यानित्यात्मकता

द्रव्य की उपेक्षा वस्तुनित्य है और पर्याय को अपेक्षा अनित्य है। यदि वस्तु सर्वथा नित्य (कूटस्थ) मान लिया जाये तो उसमें अर्थ क्रिया नहीं बनती है। यदि सर्वथा क्षण भंगुर माना जाये तो 'यह वही है' इस प्रकार का प्रत्यभिज्ञान नहीं हो सकता । अतएव वस्तु को कथाञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य मानना पड़ता है। अन्यथा लोक व्यवहार कैसे संभव होगा। इसलिए लोक व्यवहार के सञ्चालनार्थ हम भगवान् महावीर के पवित्र अनेकान्तवाद का आश्रय लेते हैं ।[5]

निमित्त नैमित्तिकता

कोई भी वस्तु सर्वथा नवीन उत्पन्न नहीं होती है। इसी प्रकार जो वस्तु विद्यमान है, वह भी कभी नष्ट नहीं होती है किन्तु निमित्त नैमित्तिक भाव से प्रत्येक वस्तु नित्य नवीन रूप को धारण करती हुई परिवर्तित होती रहती है। यही वस्तु का वस्तुत्व धर्म है ।[6] इसका भाव यह है कि यद्यपि वस्तु के परिणमन में उसका उपादान कारण ही प्रधान होता है तथापि निमित्तकारण के बिना उसका परिणमन नहीं होता है अतएव निमित्त नैमित्तिकभाव से वस्तु का परिणमन कहा जाता है। न्याय शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जिसके अभाव में जो कार्य न हो वह तत्कारणक माना जाता है। जैसे कुम्भकार आदि के बिना घड़ा उत्पन्न नहीं होता तो वह उसका कारण या कर्ता कहा जाता है । इस कारण यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक कर्म अपने अविनाभावी कारणों से उत्पन्न होता है ।[7]

स्याद्वाद

जैनदर्शन के चिन्तन की शैली का नाम अनेकान्तदृष्टि और प्रतिपादन की शैली का नाम स्याद्वाद है । एक धर्म के सापेक्ष प्रतिपादन करने वाले नयवाक्य को 'सद्वाद' कहा जाता है । एक धर्म का निरपेक्ष प्रतिपादन करने वाला वाक्य 'दुर्नय' है । प्रमाण का प्रतिनिधि शब्द है: स्याद्वाद नय का प्रतिनिधि शब्द है सद्वाद ।[8] वस्तु तत्व अनेक शक्त्यात्मक है अर्थात् अनेक शक्तियों का पुञ्ज है । जब कोई मनुष्य एक शक्ति की अपेक्षा से उसका वर्णन करता है, तब वह अन्य शक्तियों से सत्य का अन्य अपेक्षाओं से समर्थन करता ही है । इस अन्य शक्तियों की उपेक्षा को जैन सिद्धान्त 'स्यात्' पद से प्रगट करता है। वस्तु तत्त्व के कथन में इस 'स्यात्' अर्थात् कथञ्चित् पद के प्रयोग का नाम ही 'स्याद्वाद' है । इसे ही कथाञ्चिद्वाद या अनेकान्तवाद भी कहते हैं ।[9] गाय, बकरी और ऊँट ये तीनों ही बेरी के पत्तों को खाते हैं किन्तु बबूल के पत्तों को ऊँट और बकरी ही खाते हैं गाय नहीं । मन्दार (आंकडा) के पत्तों को बकरी ही खाती है, ऊँट और गाय नहीं किन्तु मनुष्य बेरी, बबूल और आक इन तीनों के ही पत्तों को नहीं खाता है । इसलिए हे अनन्त धर्म के मानने वाले भव्य, जो वस्तु एक के लिए भक्ष्य या उपादेय है वही दूसरे के लिए अभक्ष्य या हेय हो जाती है । इसे समझना ही स्याद्वाद है, सो सब लोगों को इसका ही एक भाव से आश्रय लेना चाहिए ।[10] यद्यपि हंस बाहर से शुक्ल वर्ण है किन्तु भीतर तो उसका रक्त लाल वर्ण का है तथा उसके पैर श्वेत और

---

1. वही 19/18 2. वही 19/19 3. वही 19/20 4. वही 19/23 5. वही 19/21
6. वही 19/39 7. वही 19/44 8. जैनदर्शन और अनेकान्त: आचार्य महाप्रज्ञ पृ. 64 9. वीरोदय काव्य 19/8
10. वही 19/11

लाल दोनों ही वर्णों के होते हैं । ऐसी स्थिति में विवेकी पुरुष किसको किस रूप वाला कहे ? अतएव कथञ्चित्वाद में स्वीकार करने पर ही उसके ठीक निर्दोष रूप का वर्णन किया जा सकता है ।[1] घट भी पदार्थ है और पट भी पदार्थ है किन्तु शीत से पीड़ित पुरुष को घट से कोई प्रयोजन नहीं । इसी प्रकार प्यास से पीड़ित पुरुष घट चाहता है, पट को नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि पदार्थ पना घट और पट में समान होते हुए भी प्रत्येक पुरुष अपने अभीष्ट को ही ग्रहण करता है । अनभीप्सित पदार्थ को नहीं । इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को स्याद्वाद सिद्धान्त भक्ति से स्वीकार करना चाहिए ।[2]

सप्तभंगीवाद

आचार्य अकलंकदेव[3] ने सप्तभंगी को परिभाषित करते हुए लिखा है "प्रश्न के अनुसार एक ही वस्तु में प्रमाण से अविरुद्ध विधि प्रतिषेध (अस्तिनास्ति आदि) धर्मों की कल्पना करना सप्तभंगी है ।" आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने सप्तभंग प्रक्रिया को सरल ढंग से प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि जैसे यव (जौ) अपने यवरूप स्वभाव से है उस प्रकार गेहूँ आदि के स्वभाव से नहीं है इस प्रकार यव में अस्तित्व और नास्तित्व ये दो धर्म सिद्ध होते हैं । यदि इन दोनों ही धर्मों को एक साथ कहने की विवक्षा की जाये तो उनका कहना संभव नहीं है अत: उस यव में अवक्तव्य रूप तीसरा धर्म भी मानना पड़ता है । इस प्रकार वस्तु में अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये तीन धर्म सिद्ध होते हैं । इनके द्विसंयोगी तीन धर्म और त्रिसंयोगी एक धर्म इस प्रकार सब मिलाकर सात धर्म सिद्ध होते हैं । ज्ञानी जन इन्हें ही सप्तभंगी नाम से कहते हैं ।[4] जैसे हरड, बहेड़ा और आँवला इन तीनों का अलग-अलग स्वाद है । द्विसंयोगी करने पर हरड़ और आँवले का मिला हुआ एक स्वाद होगा, हरड और बहेड़े का मिला हुआ दूसरा स्वाद होगा और बहेड़े और आँवले का मिला हुआ तीसरा स्वाद होगा । तीनों को एक साथ मिलकर खाने पर एक चौथी ही जाति का स्वाद होगा । इस प्रकार मूल रूप हरड़, बहेड़ा और आँवला के एक संयोगी तीन भंग द्विसंयोगी तीन भंग और त्रिसंयोगी एक भंग ये सब मिलाकर सातभंग हो जाते हैं । ये भंग न इनसे कम होते हैं और न अधिक होते हैं ।[5] दाख मिष्ट है, गुड मिष्ट है, खांड मिष्ट है और मिश्री मिष्ट है। इस प्रकार इन चारों में ही रहने वाले माधुर्य या मिठास को 'मिष्ट' इस एक ही शब्द से कहा जाता है । किन्तु उक्त चारों ही वस्तुओं में मिष्टता की जो तरतमभावगत विशिष्टता है उसे कहने के लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं है । इसलिए उक्त भाव के अभिव्यक्त करने को 'अवक्तव्य' पद के कथन का ही आश्रय लेना पड़ता है ।[6]

अस्तित्व

नास्तित्व का अविनाभावी है- कोई एक रेखा (लकीर) न स्वयं छोटी है और न बड़ी है। यदि उसी के पास उससे छोटी रेखा खींच दी जाये तो वह पहिली रेखा बड़ी रेखा कहलाने लगती है और यदि उसी के दूसरी और बड़ी रेखा खींच दी तो वह छोटी रेखा कहलाने लगती है । इस प्रकार वह पहली रेखा छोटी बड़ी दोनों रूपो को अपेक्षा विशेष से धारण करती है । वस्तु का स्वभाव भी ठीक इसी प्रकार जानना चाहिए इसी प्रकार अपेक्षा से वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व धर्म सिद्ध होते हैं । प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की उपेक्षा नास्ति रूप है ।[7] इस भूतल पर प्राणियों को प्रकाश देने वाला सूर्य उल्लू को अंधापना देता है और सबको शान्ति देने वाला चन्द्रमा कोक पक्षी को प्रिया वियोग का शोक प्रदान करता है? फिर बुद्धिमान लोग यह बात सत्य क्यों नहीं माने कि एक वस्तु में किसी अपेक्षा से अस्तित्व धर्म भी रहता है और किसी, अपेक्षा से नास्तित्व धर्म भी रहता है।[8]

इस प्रकार आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के काव्य रसिकों को जैन न्याय के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त अनेकान्त, स्याद्वाद और सप्तभंगी का व्यवहारिक उदाहरणों के प्रयोगों द्वारा सर्वजनग्राह्य बनाया है । दर्शन के शुष्क विषय को अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा सरसता के साथ प्रस्तुत कर मानों जैन-न्याय-सिद्धान्तो के अध्यापन का राजमार्ग प्रशस्त करा दिया है । विषय के प्रस्तुतीकरण की शैली द्वारा उनके अपार दार्शनिक वैदुष्य का स्वत: ही चित्र उभर कर सामने आ जाता है। हम इन सिद्धान्तों का अध्ययन कर वस्तु स्थिति को सम्यकरोत्या समझकर तत्त्व का यथार्थ श्रद्धान करना चाहिए ।

डॉ. अशोककुमार जैन
लाडनूं-नागौर (राज.)

1. वही 19/23
2. वही 19/15
3. तत्त्वार्थवार्तिक 1/16
4. वीरोदय काव्य 19/16
5. वही 19/7
6. वही 19/9
7. वही 19/5
8. वही 19/13

इस सदी के ज्ञान स्तंभ: श्री १०८ आचार्य ज्ञानसागरजी

शिखरचन्द जैन

राजस्थान की धरा ने जहां अपने देश की आन-बान पर मर मिटने वाले वीर सपूतों को जन्म दिया है। वहीं अनेक आध्यात्मिक संतों को जन्म देकर इस देश की सांस्कृतिक एवं धार्मिक धरोहर को भी अक्षुण्ण रखा है। यहां की जैन स्थापत्य एंव मूर्ति कला का भी देश -विदेश में महत्पूर्ण स्थान है।

ऐसी राजस्थान की पावन धरा पर जयपुर जिले के राणोली ग्राम के निवासी दि. जैन खण्डेलवाल (छाबड़ा) के श्री चतुर्भुज जी की धर्मपत्नी श्रीमती घृतवरी देवी की कोख से एक बालक का जन्म सन् १८९२ में हुआ । इनका नाम भूरामल रखा गया । इनके चार भाई और थे -एक इनसे बडे तथा तीन छोटे । जब इनकी आयु मात्र दस वर्ष की थी तभी इनके पिताश्री का देहावसान हो गया घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी । इसी कारण इनके बडे भाई को जो मात्र दो वर्ष बडे थे घर के अन्य सदस्यों की जीवकोपार्जन हेतु एक जैन व्यवसायी के यहाँ कार्य करने गया जाना पडा ।

बालक भूरामल ने गांव में ही वहां स्थित विद्यालय की शिक्षा पूरी की और आगे अध्ययन की व्यवस्था नहीं होने से ये भी अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री छगनलाल जी के पास गया चले गये और वहां एक जैन व्यवसायी के प्रतिष्ठान में कार्य सीखने लगे । यहीं इनका एक समारोह में आये स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के छात्रों से साक्षात्कार हुआ और उनसे मिलकर बालक भूरामल के मन में भी वाराणसी जाकर विद्याध्ययन की तीव्र उत्कंठा जागी । आर्थिक अनुकूलता ना होते हुये भी वे अपनी इस ज्ञान-पिपासा को पूरा करने के उद्देश्य से विद्याध्ययन हेतु मात्र पंद्रह वर्ष की अवस्था में उक्त महाविद्यालय में चले गये ।

महाविद्यालय में ये विद्याध्ययन को ही सर्वोपरि महत्व देते थे और अपना सारा समय एक के बाद - दूसरे-तीसरे ग्रंथों के अध्ययन में ही व्यतीत करते थे । परिणाम स्वरुप शास्त्री स्तर तक के ग्रंथों का अध्ययन इन्होंने बहुत कम समय में पूर्ण कर लिया। आपने अपने अध्ययन काल में किसी उपाधि को प्राप्त करने के लिये कभी भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि उपाधियाँ अहं बढाने वाली होती हैं और आप प्राप्त ज्ञान को आत्म सात् कर जन-जन तक जैन वाङ्मय को प्रसारित करना चाहते थे क्योंकि अध्ययन काल में इन्होंने कटु अनुभव किया जैन वाङ्मय परिपूर्ण होते हुये भी जैन व्याकरण-न्याय एवं साहित्य सम्बन्धी ग्रंथों की अनुपलब्धता के कारण उक्त महाविद्यालय में जैनतर ग्रन्थों से ही अध्ययन कराया जाता था । यही नहीं स्याद्वाद महाविद्यालय में अध्ययन कराने वाले आचार्य और अध्यापक भी अधिकांशत: ब्राह्मण थे, जो उपलब्ध जैन ग्रन्थों को पढ़ाने में उदासीनता बरतते थे। श्री भूरामल जी के मन को इन सभी बातों ने उद्वेलित किया और कुछ लोगों के सहयोग से जैन न्याय और व्याकरण सम्बन्धी कुछ ग्रन्थों को जो उस समय प्रकाशित हो गये थे काशी विश्वविद्यालय और कलकत्ता परीक्षालय के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित कराया अपने अध्ययन काल में ही आपने अपना मानस बना लिया था कि अध्ययन पूर्ण होने पर वे इस कमी को दूर करने का प्रयास करेंगें । यही नहीं आपने येन-केन प्रकारेण जैन व्याकरण और न्याय के ग्रन्थों से भी अपना अध्ययन किया । इस सब में गुरु रूप में इन्हें मिले पंडित उमराव सिंह जी जैन जो वहां धर्मशाला के व्यवस्थापक थे और बाद में जो ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण कर ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द के नाम से विख्यात हुये।

क्या आज यह बात जानकर आपको अवसाद और आश्चर्य नहीं होगा कि द्वादशांग रुप जैन वाङ्मय?-जिससे कोई भी विषय अछूता नही रहा और एक-एक विषय पर अनेक आचार्यों की टीकायें को फिर भी मात्र एक सदी पूर्व व्याकरण- न्याय और दर्शन के अध्ययनार्थ ग्रन्थो की अनुपलब्धता रही क्या इस अत्यन्त पुण्यवान और भाग्यशाली नहीं कि आज इसे जैन वाङ्मय के प्रत्येक विषय पर अनेक रचनायें-मूल ग्रन्थ एंव टीकायें उपलब्ध हैं। क्या इसे जानकर हमारा यह पुनीत कर्त्तव्य नहीं हो जाता कि हम अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग जैन संत साहित्य-ग्रन्थों के प्रकाशन में अविरल रुप से करते रहें-जिससे एक सदी पूर्व वाली त्रासदी का शिकार किसी जैन ग्रन्थों के अध्ययन में रुचि रखने वाले को नहीं झेलनी पडे। स्वयं भूरामलजी, जो कि वाराणसी में अध्ययन के उपरान्त पं. भूरामलजी के नाम से पहचाने जाने लगे थे अपने ग्राम राणौली लौटने पर अध्ययन एवं अध्यापन का कार्य करने लगे। उन्होंने अपने अध्ययन काल में ही आजीवन ब्रह्मचारी रहकर जैन वाङ्मय के प्रचार-प्रसार एवं सर्जन का मानस बना लिया था और बस इसी कारण व्यवसाय आदि से अपने को पूर्णतया पृथक कर अपना सम्पूर्ण समय स्थानीय बच्चों को अध्यापन कराने तथा नये-नये संस्कृत एवं हिन्दी के ग्रन्थों की रचना में लगाने लगे।

सब प्रकार से योग्य देखकर उनके वैवाहिक प्रस्ताव आने लगे किंतु उन्होने इसे बाधक तथा मायाजाल कहकर वैवाहिक बंधन में नहीं बंधने का निर्णय लिया । वास्तव में जिनका जन्म ही निज और कल्याण के लिये हुआ हो उसे सांसारिक लालसायें -व्यसन कैसे लुभा सकते हैं।

अपने निश्चित लक्ष्य और ध्येय की प्राप्ति के लिये पं. भूरामल जी ने अपने शिक्षण काल में बनाये लक्ष्यानुसार अपना अभियान प्रारम्भ कर दिया । अब उनका कार्य पढ़ना -निस्वार्थ पढ़ाना और साहित्य सृजन करना था। साहित्य सृजन में भी उन्होंने कठिन मार्ग का चयन किया और वह था संस्कृत भाषा में विभिन्न विषयों-विधाओं पर महाकाव्य ग्रन्थों की रचना करना । संस्कृत में काव्य सृजन अपने आप में दुरूह कार्य है। गत ५-६ शताब्दियों से जो काव्य ग्रन्थ लिखे गये वे लघु रुप में, वे यद्यपि उन्होंने ख्याति अर्जित की थी । इस सृजन में वे अपने व्यक्तित्व को मानों भुला ही बैठे क्योंकि अपने अध्ययन काल में ही उन्होंने इस सत्य को जान लिया था कि पूर्ण निष्ठा तथा एकाग्रता के अभाव में किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती उन्होंने एक के बाद दूसरे और फिर तीसरे काव्य ग्रन्थों तथा अन्य ग्रन्थों की रचना की । सर्वाधिक अद्वितीय एवं महान काव्य रचना बनी वीरोदय के नाम से, जिनमें भगवान महावीर को नायक मान कर सृजन किया गया था। इस महाकाव्य में ऐतिहासिकता, पौराणिकता के साथ-साथ प्रकृति सौन्दर्य पर्यावरण नैतिकता ,भूगोल आदि सभी विषयों पर उनकी गहरी पकड़ परिलक्षित होती है। यही नहीं जातिप्रथा, कुल मद आदि पर उन्होंने कड़े प्रहार किये। ऐसे महाकाव्य की रचना के उपरान्त भी उनकी नाम प्रसिद्धि आदि से निरपेक्षता के कारण उनके इन काव्यों महाकाव्यों का महत्व आंका नहीं जा सका। जैन जगत भी इसके प्रति उदासीन रहा । काश! ये महाकाव्य उनके समय प्रकाशित कर विश्व-विद्यालयों तथा विद्वानों के पास भेजे गये होते तो निःसंदेह पूरा विश्व समुदाय उनकी सृजन शैली तथा विद्वत्ता का लोहा तो मानता ही साथ ही उनकी रचनायें विश्व स्तर और भारतीय स्तर के सम्मान भी प्राप्त करतीं।

जैन साहित्य

काव्यों के सृजन में कब यौवनावस्था निकल गई, पं. भूरामलजी को पता ही नहीं लगा और जब प्रौढ़ावस्था आकर दस्तक देने लगी तों हीरा जैसी मिली नर -पर्याय को सार्थक करने केलिये चरित्र धारण करने की सुध आई यद्यपि आप बाल ब्रह्मचारी थे ,फिर भी सन 1947 में व्रत रुप से ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की । सन 1955 में क्षुल्लक दीक्षा धारण का और मात्र दो वर्षो की अवधि में ऐलक और मुनि दीक्षा से सुशोभित हुये । मुनि दीक्षा परम पूज्य १०८ आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज से 1957 में जयपुर (खानिया) में प्रथम मुनि शिष्य के रुप में ली । मुनि अवस्था का आपका नाम करण किया गया श्री १०८ ज्ञानसागरजी।

मुनि दीक्षा के उपरान्त आप अपना समय घोर तपश्चरण साधना एवं अध्ययन में तो व्यतीत करते ही थे लेकिन अपने पूर्व लक्ष्यानुसार नये ग्रन्थों का सृजन तथा संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य भी -जारी रखा । अपने उपदेशों में वे जीवन में सरलता लाने तथा देव-शास्त्र-गुरु पर अपना दृढ़ श्रद्धान रखने सद्गृहस्थ बनने हेतु अधिक जोर दिया करते थे। उनका स्पष्ट मत था कि जीवन में आई सरलता और सरसता तथा देव -शास्त्र गुरु के प्रति समर्पण मोक्ष-मार्ग का सोपान है।

7 फरवरी 1969 को अजमेर के समीप स्थित नसीराबाद में वहां की जैन समाज द्वारा आपको आचार्य पद से विभूषित किया गया तथा सन् 1972 में क्षुल्लक स्वरुपचन्दजी की दीक्षा के अवसर पर वहीं आपको चारित्र चक्रवर्ती पद से विभूषित किया गया।

आचार्य काल में आपने जो दीक्षायें दी उनमें प्रथम शिष्य के रुप में मुनि दीक्षार्थी का गौरव पाया बाल ब्रह्मचारी विद्याधर ने जिनका दीक्षा के बाद में नामकरण किया गया 108 श्री विद्यासागरजी । इसके अतिरिक्त श्री विवेकसागरजी एवं 108 श्री विजयसागर जी दो और मुनि इनसे दीक्षित हुये 105 ऐलक श्री सन्मतिसागरजी तथा क्षुल्लक 105 श्री स्वरुपानन्दजी, सुखसागर जी एंव सम्भवसागर जी भी इनसे दीक्षित हुये।

आज के जैन जगत के प्रात: स्मरणीय प्रखर -वक्ता, निर्दोष चारित्र के धारक, जैन सिद्धान्तों का प्रखर ज्ञान रखने वाले आचार्य प्रवर 108 श्री विद्यासागर जी महाराज का बाल ब्रह्मचारी विद्याधर अध्ययन के रुप में तथा मुनि दीक्षा हेतु इनके पास आना-अध्ययन क लिये स्वीकृति प्राप्त करने के पीछे भी आल्हादकारी एवं प्रेरणास्पद कथा रही है।

जैसे एक पिता चाहता है कि उसकी संतान उससे भी अधिक ऊँचाईयों पर पहुंचे, आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज की भी उनके बनाये लक्ष्य की शर्त के लिये सद् इच्छा थी कि उनके बाद कोई श्रमण जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार का प्रेरणा स्रोत बने कितना अच्छा हो क्योंकि वृद्धावस्था के कारण वे शरीर में शिथिलता का अनुभव करने लगे थे ।

उनकी इस प्रबल भावना की पूर्ति हेतु ही शायद कर्नाटक राज्य के बेलगांव जिले में स्थित सदलगा ग्राम से एक युवा अजमेर स्थित विश्व विख्यात श्री सोनीजी की नसियां में आया तथा गुरु महाराज ज्ञानसागर जी के बारे में जानकारी चाही । पूछने वाले व्यक्ति ने श्री कजौड़ीमलजी अजमेरा का पता बताकर उस युवा को उनसे इस संदर्भ में मिलने को कहा । तदनुसार वह सरावगी मोहल्ले स्थिति. उनके निवास स्थान पर पहुँचा । श्री कजोड़ीमलजी को अपना विद्याधर नाम बताकर परिचय देकर परम् पूज्य ज्ञानसागर जी महाराज से मिलने की इच्छा व्यक्त की । क्लान्त शरीर देखकर श्री कजौड़ीमलजी द्वारा उनसे पूँछे जाने पर ज्ञात हुआ कि पिछले अढ़ाई दिन से व्रती होने के कारण मार्ग में कुछ भी उन्होने नहीं खाया । स्नानादी की व्यवस्था के उपरान्त वहीं विद्याधरजी ने भोजन किया । तत्पश्चात श्री कजोड़ीमलजी उन्हें अपने साथ ही अजमेर के पास स्थित मदनगंज किशनगढ़ ले गये जहाँ उन दिनों परम पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज विराज रहे थे । गुरुभक्त श्री कजौड़ीमलजी के साथ वहाँ पहुँच कर दोनों ने महाराज सा. के चरणों में नमोस्तु अर्ज किया तथा आशीर्वाद प्राप्त कर गुरु चरणों में बैठ गये । श्री कजौड़ीमल जी ने अवसर

पाकर विद्याधर का परिचय महाराज श्री को दिया । संकेत पाकर युवा विद्याधर ने स्वयं अपने बारे में बताते हुये निवेदन किया कि गुरुवर आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज से ब्रह्मचर्य तथा सातवीं प्रतिमा के व्रत ले चुका हूँ । नर जन्म को सफल किये जाने हेतु श्रमण दीक्षा का स्वप्न संजोये उन्हीं की प्रेरणा से अध्ययन करने आपके चरणों में आया हूँ इतना कह अपना मस्तक गुरु चरणों में रख दिया विद्याधर जी ने । नेत्रों से बहते अविरल अश्रुकण महाराज श्री के चरण प्रक्षालन करने लगे।

शिक्षा

भाषा आदि के विषय में जब विद्याधर ने बताया कि उन्होंने नवीं कक्षा कन्नड़ भाषा में उत्तीर्ण की है। तो परम् पूज्य ज्ञानसागर जी महाराज विचार मग्न हो गये कि हिन्दी नहीं जानने वाला यह युवक संस्कृत तथा प्राकृत भाषा के दर्शन सिद्धान्त और न्याय आदि के जैन ग्रन्थों का यह कैसे अध्ययन कर पायेगा ? तभी गुरु महाराज की चरण रज तथा अपने अश्रुकणों से भीगे चरणों से जल बिन्दुओं को बार-बार अपने मस्तक से लगाते हुये विद्याधर कहने लगे कि गुरुवर में अपने मन में दृढ निश्चय करने के उपरान्त ही आपके चरणों में आया हूँ। आपसे शिक्षा -दीक्षा ग्रहण कर अपना जीवन सार्थक करुंगा। कठिन से कठिन परिश्रम कर यथा शीघ्र हिन्दी-संस्कृत तथा प्राकृत भाषा का आपसे ज्ञान प्राप्त करुंगा । ज्ञानसागरजी के मुख से तभी फूट पड़ा कि विद्याध्ययन के बाद कहीं उड़ गये विद्याधरों की भाँति तो.......विद्याधर जो हो । नहीं महाराज नहीं .....में आपका पावन चरण सानिध्य पाने आपकी शरण में ही रमने आया हूँ इतनी दूर से मन में संकल्प लिये, भागने या उड़ने के लिये नहीं आया हूँ। गुरु महाराज को इस बात का फिर कभी विकल्प ही नहीं आये अतः में शपथ लेता हूँ आज से ही किसी भी सवारी में ना बैठने का ।

ज्ञानसागरजी महाराज अपने इस शिष्य के जरा सी बात पर इतना बड़ा त्याग लेने से अभिभूत हो उठे । वे सोचने लगे कि यह खरा सोना है, केवल इसे तपाकर 16 बानी का बनाना है। यह मेरे अनुसार अपने को ढाल सकता है। लगता है जैन श्रमण परम्परा को इसके माध्यम से दृढता मिलेगी । स्वर फुट पडे ज्ञानसागरजी महाराज के अन्तर्मन से ....अच्छा ठीक है। रुक जाओ। बस फिर क्या था विद्याधर का मस्तक झुक गया गुरु चरणों में और ज्ञानसागरजी महाराज का हाथ उनके मस्तक पर । वे जितना अध्ययन कराते बालक विद्याधर उसे अच्छी तरह समझ लेते थे। कभी भी उन्होंने गुरु महाराज को उलाहना देने का अवसर नहीं दिया । विद्याधर की योग्यता तथा लगन को देखकर महाराज श्री भी अभिभूत हुये बिना नहीं रह सके । थोड़े दिनों मे ही उनकी अनभवी आखों ने यह देख लिया कि इस युवा का गहन क्षयोपशम है। यह जैन निग्रन्थ परम्परा को उज्ज्वल कर सकता है । जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ आत्मोन्नती का मार्ग निश्कपट रूप से इस पंचम काल में भी प्रशस्त कर सकता है। बस फिर क्या था, इसी लक्ष्य के अनुसार ज्ञानसागरजी महाराज वर्षो की साधना से प्राप्त ज्ञान उंडेलने लगे अपने इस शिष्य विद्याधर के ह्रदय में । विद्याधर के ह्रदय की विशालता भी इतनी कि सभी कुछ समा लेते थे गुरु से मिला ज्ञान अपने ह्रदय में कभी-वमन नहीं किया । जो समझ में नहीं आता था उसे अति विनम्र होकर फिर पूंछते थे। अपने इस गहन अध्ययन के अतिरिक्त वे काफी समय अपने गुरुवर की वैय्यावृति भी तन-मन से करते थे। वे जानते थे कि जितना परिश्रम गुरुवर उसे अध्यापन में कर रहे थे उनका शरीर इस योग्य नहीं था क्योंकि यह श्रम उनके नित्य के आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त था। अतः जब भी वे ऐसे अनुभव करते थे कि गुरु महाराज को थकावट आ रही है-लग जाते थे उनकी वैय्यावृति में । इधर विद्याधर आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज को गुरु रूप में पाकर अपने को धन्य मानते थे तो विद्याधर जैसा शिष्य पाकर ज्ञानसागरजी भी अभिभूत थे । उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता थी कि उनके जीवन की साध यह विद्याधर पूर्ण करेगा। इसलिये विद्याधर को यथा शीघ्र जैन शास्त्रों की, विशेषकर प्रारम्भिक ज्ञान के उपरान्त दर्शन शास्त्रों के अध्ययन कराने की धुन सवार हो गई । वे मानों इतने परिश्रम से भी सन्तुष्ट नहीं थे और चाहते थे कि जितना अधिक ज्ञान में इसे दे सकूं अच्छा है।

विद्याधर पढे हुये विषय की तैयारी

वैय्यावृति के साथ-साथ अपने चारित्र वर्धन की ओर भी पूर्ण जागरुक थे । नींद तो मानों उनसे दूर भाग गई थी । इस अध्ययन काल में ही एक बार रूखा-सूखा भोजन करना, पाटे । तखत पर सोना, बालों को हाथ से उखाडना आदि का स्वयं अभ्यास करन लगे थे क्योंकि उन्होंने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया था ज्ञानसागरजी महाराज भी इस सब से अपरिचित नहीं थे उनकी पारखी दृष्टि सदैव विद्याधर के कार्य कलापों की ओर रहती थी । और विद्याधर सदैव उनकी दृष्टि में अपना स्थान ऊँचा-ऊंचा बनाते जा रहे थे । मुनि दीक्षा का लक्ष्य बनाकर वे नग्न वेष में रहकर शीतोष्ण आदि परिषहों को सहज ही सहने का प्रयास करते थे और यह सब जानकारी में था ज्ञानसागरजी महाराज को अब तो ज्ञानसागरजी के साथ ही विद्याधर जुड़ गयें थे और उनके विहार के साथ - साथ ही विद्याधर भी जाते थे ज्ञानसागरजी महाराज की वृद्धावस्था और अत्यन्त क्षीण शरीर हो जाने से उनके अंतिम कुछ वर्ष अजमेर, नसीराबाद, किशनगढ़, ब्यावर, फुलेरा क्षेत्रों में व्यतीत हुये । नसीराबाद की जैन समाज द्वारा इन्हें आचार्य पद दिये जाने के उपरान्त ज्ञानसागरजी महाराज ने दीक्षायें भी देना प्रारम्भ कर दिया ।

विद्याधर ने भी आचार्य श्री के सम्मुख नत मस्तक होकर मुनि दीक्षा के लिये अपने भाव सुमन प्रस्तुत किये किन्तु आचार्य श्री ने विद्याधर की आयु देखकर स्वीकृति नहीं दी। वे स्वयं भी तो बाल ब्रह्मचारी थे किन्तु वर्षों के अध्ययन-अध्यापन के उपरान्त उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा ली थी । अतः उनकी स्वयं की मान्यता थी कि दिगम्बरी दीक्षा से पूर्व दीक्षार्थी को गृहस्थों को सम्यक् मार्ग बताने- जैन ग्रन्थों को समझाने तथा चारित्र को दृढ़ता से पालने के योग्य होना ही चाहिये, यद्यपि उनके शिष्य विद्याधर में श्रमण वेष के अनुसार सभी आवश्यकों को पूर्णतया पालने की अद्भुत क्षमता ज्ञानसागरजी देख रहे थे, संतुष्ट भी थे पूर्णतया, फिर भी वे अपने शिष्य को और अधिक तपाना चाहते थे इस मार्ग के महत्व को, वे जानते थे इस मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को । साथ ही वे यह भी समझने लगे थे कि विद्याधर को दीक्षित करने से अब और अधिक दिन नहीं टाला जा सकेगा। वे इस हेतु भूमिका तैयार करने लगे थे । अब उनकी पारखी निगाहें विद्याधर के प्रत्येक कार्य कलाप पर रहने लगीं । अध्ययन, सामायिक, प्रतिक्रमण, आहार, निद्रा, चारित्र पालन की क्षमता आदि हर बात को वे कसने लगे अपनी कसौटी पर और पाया उन्होंने हर बार अपने इस शिष्य को खरा कंचन । गद्‌गद् हो जाते थे वे श्रावकों से विद्याधर के- रस हीन- कर पात्र में आहार लेने, रात्रि में भी देर तक अध्ययन करने आदि की बातें सुन कर ।

अंततः विद्याधर की कठिन तपस्या ने जैन ग्रन्थों को पढने समझने की उनकी कुशाग्र बुद्धि ने तथा पूर्ण समर्पणभावना में आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के हृदय को सरोबार कर दिया और इस बार विद्याधर द्वारा फिर मुनि दीक्षा के लिये कर बद्ध प्रार्थना करने पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी । उस रात्रि को बिच्छू के काटने तथा उनके कहने पर भी किसी को भी बुलाये जाने के लिये सादर मना कर स्वयं पूरी रात्रि भक्तामर स्तोत्र आदि का पाठ करते हुये उस परीक्षा को सहने की उनकी अद्वितीय क्षमता और शरीर से छूटा उनका मोह भी इस स्वीकृति के पीछे कारण था ।

बात नसियांजी के प्रांगण से फूट कर पूरे शहर में फैल गई । कुछ लोग हर्षित हो रहे थे और कुछ के मन में शंकायें थी कि इस कच्ची उम्र में दीक्षा दिया जाना क्या उचित है? यदि कठोर मुनि धर्म का इनसे पालन करते नहीं बना तो देश की सारी दिगम्बर जैन समाज को नीचा ना देखना पडे ? यद्यपि सभी को आचार्य ज्ञान सागर जी पर भी पूरी आस्था थी, कि उन्होंने यह निर्णय गहन परिक्षा के उपरान्त लिया होगा ।

फिर भी सर सेठ भागचंद सोनी के साथ समाज के कुछ गणमान्य श्रेष्ठि आचार्य ज्ञानसागरजी के पास पहुंचें तथा इस सम्बन्ध में अपनी शंकाओं के संदर्भ में निवेदन कर कहने लगे कि यदि वे विद्याधर से पूर्ण संतुष्ट हैं तभी सीधे मुनि दीक्षा देकर क्षुल्लक या ऐलक दीक्षा दें तो अच्छा रहेगा।

सब सुनकर आचार्य प्रवर शांत चित्त से गम्भीर वाणी में बोले कि मैंने अपने निर्णय पर गहन विचार किया है। विद्याधर को सब प्रकार से परखा है। आप देखेंगे यह श्रमण परम्परा का गौरव बढायेगा । मैं विद्याधर को मुनि दीक्षा दे नहीं अपितु वह मुनि दीक्षा ले रहा है, अपने दृढ़ संकल्प से ।

अंततः सभी आचार्य श्री के निर्णय को शिरोधार्य कर लौट चले इस मुनि दीक्षा की तैयारी में जुट जाने के लिये । बात कानोंकान फैल गई पूरी समाज में, नगर में । सभी उत्साहित कि धन्य भाग्य हैं उनके कि उन्हें मुनि दीक्षा देखने को मिलेगी। वर्ष 1967 का जून माह प्रारम्भ हो चुका था । आनन-फानन में शुभ मुहुर्त निकाला गया -आषाढ शुक्ला पंचमी वि. सं. 2025 तदानुसार 30 जून वर्ष 1967 । श्री भागचंद जी सा. सोनी की अध्यक्षता में सकल दि. जैन समाज की मीटिंग हुई इस कार्यक्रम को भव्यता देने हेतु कार्यक्रम बनाने के लिये समिति का निर्माण हुवा अनावश्यक पोस्टर आदि छपवाकर स्थान -स्थान पर भेजे जाने लगे । विद्याधर जी के परिवार वालों को भी यह शुभ संदेश भिजवा दिया गया इस शुभ अवसर पर आने के लिये।

समाज का उत्साह हिलोरें ले रहा था । घर-घर इसी दीक्षा की चर्चा थी। दीक्षा से पूर्व विद्याधर जी की भव्य बिनौरियाँ निकाले जाने का निर्णय लिया गया । समाचार मिलते ही विद्याधर के ज्येष्ठ भ्राता श्री महावीर प्रसाद जी पूरे परिवार की सहमति से अजमेर के लिये रवाना हो गये । वे सभी विद्याधर के प्रारम्भ से इस ओर झुकाव से परिचित थे । आज इस समाचार से सभी अपने को धन्य मान रहे थे । अजमेर आकर आचार्य श्री के चरणों में नमोस्तु अर्ज किया और मन ही मन विद्याधर के प्रति कृतज्ञता कि उनके निर्णय से पूरा परिवार गौरवान्वित होने जा रहा है।

जैसी उमंग उत्साह इन दिनों अजमेर जैन समाज में थी वैसी कभी देखने को नहीं मिली । अपना-अपना कार्य यथाशीघ्र समाप्त कर सेठ सा. की नसियां में सभी आकर श्रद्धा सुमन चढ़ाने लगे विद्याधर के चरणों में । सभी सोचते थे कि काश उनके कुल को भी उजागर करने वाला ऐसा लाल जन्मे ।

विपुल उत्साह

उमंग तथा विभिन्न आयोजनों में दिन व्यतीत होने लगे और अंततः वह पावन दिन अर्थात आषाढ, शुक्ला पंचमी, सं. 2025, तद्नुसार 30 जून 1967 का सौभाग्य शाली दिन आ ही गया । सूर्य देव भी उस दिन अपनी पूर्ण कलाओं के साथ उदय

हुये थे। दीक्षा स्थल श्री पंचायत बडे धडे की नसियाँ जी के प्रांगण को बनाया गया था और समय था अपराह्न का । इससे पूर्व आयोजित की गई थी विशाल शोभा यात्रा । इस शोभा यात्रा के नायक थे कुछ घंटों बाद दिगम्बरत्व धारण करने वाले युवा विद्याधर। शोभा यात्रा में विभिन्न सवारियां तो थीं ही, पूरे मार्ग को दुल्हन की तरह सजाया गया था । इस शोभा यात्रा को देखने के लिये सभी भेद-भावों को भूलाकर पूरा नगर मानों उमड़ पड़ा था। शोभा यात्रा में कुल 25 हाथी थे अंतिम 25 वें हाथी पर विद्याधर राजसी ठाठ बाठ में बिराजे थे । ना केवल अजमेर अपितु किशनगढ़, नसीराबाद, ब्यावर, केकडी, भीलवाडा, जयपुर आदि से भी जैन बन्धु इस शुभ दीक्षा दृश्य को देखकर अपने नेत्रों को धन्य करनें आये थे । शोभा यात्रा के साथ-साथ तो जयध्वनि करते हुये अपार जन समुह था ही, पूरे मार्ग के दोनों ओर तथा मकानों की छतों और कंगूरों पर भी नर, नारी, वृद्ध इस शोभा यात्रा को देखने हेतु खडे हये थे । कुछ लोग तो अच्छा स्थान पाने के लिये सड़कों पर घंटो पूर्व आकर खडे हो गयें थे । जो महिलायें समय पर ही बैंड-बाजों की आवाज सुनकर इस अप्रतिम दृश्य को देखनेध्दोडीं वे उतावला पने में अपने घरों के दरवाजे भी बंद करना भूल गई । दूल्हों की बारात की शोभा या गये तो जीवन में सभी को अनेक बार देखने के अवसर मिलतें ही रहते हैं किंतु ऐसे विरागी दूल्हे की शोभा यात्रा देखने के अवसर तो था ही, बहुतों क जीवन का अंतिम अवसर भी हो सकता था जो कु छ समय बाद ही सभी परिग्रहों को यहाँ तक कि शरीर पर से पहिने हुयें वस्त्रादि को भी त्याग दिगम्बर मुनि बनने जा रहे थे । ये अपने सिर के बालो को भी घास की तरह नोच-नोच कर उखाड फैंकेगें यह सुनकर भी वे आश्चर्य चकित थे । उक्त दृष्यों के नायक को देखकर सबके मुख से धन्य - धन्य निकल रहा था । साथ ही साथ इनको माता - पिता के लियें भी जिन्होनें ऐसा सुपुत्र पाया।

चार पांच घंटों की विशाल शोभा यात्रा आखिर दीक्षा स्थल जो कि श्री पंचायत बडें धडें की नसियाँ जी में बनाया गया था, पहुंची। दीक्षा स्थल पर विशाल मण्डप तो बनाया ही गया था, एक सुन्दर मंच भी था जहां दीक्षा कार्यक्रम सम्पन्न होना था,। पूज्य 108 आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज संघस्थ त्यागियों के साथ वहाँ विराजमान थे । पंडित श्री प्रेमचन्द जी सा. शास्त्री, पं. श्री विद्याकुमार जी सेठी आदि भी दीक्षा कार्य में सहयोग देने हेतु मंच पर बैठे थे। अग्रिम पंक्ति में महत्वपूर्ण सरकारी अधिकारियों एवं बाहर से आये प्रतिनिधियों के अतिरिक्त विद्याधर जी के बडे भाई श्री महावीर प्रसाद जी जो शोभा यात्रा तथा इस दीक्षा कार्यक्रम को देखकर अभिभूत हो गये थे, विराजे थें । स्थानीय समाज के प्रमुख सर सेठ भागचन्द जी सा सोनी, माणकचंद जी सोगानी, कजौडीमल जी अजमेरा, छगनलाल जी पाटनी आदि यहाँ बैठे थे । सर सेठ भागचनेद जी सा. सोनी ने दिगम्बर दीक्षार्थी श्री विद्याधर जी के बारे में सभी को संक्षिप्त जानकारी दी तथा दिगम्बरी दीक्षा, दिगम्बर मुनि के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किये आयोजकों ने यद्यपि अनुमान से अधिक व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था दीक्षा स्थल पर की थी किंतु आज तो जैसे कोई भी अनुमान सही होने वाला नहीं था । अपार जन समुदाय ने इस अनुमान को झुठला दिया फिर भी भीड अनियंत्रित नहीं हुई । जिसको जहां जैसा स्थान मिला बैठ गया। बैठने का स्थान नहीं मिला तो खडे हो गये । सबका एक मात्र उस समय लक्ष्य था विद्याधर को दिगम्बरी दीक्षा लेते देखना । शुभ मुहुर्त एंव लग्न में विद्याधर की दीक्षा हेतु माता-पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त करने वाले अत्यन्त पुण्यात्मा श्री हुकमचंद जी लुहाडिया एवं उनकी धर्मपत्नी आवश्यक क्रियायें करने में संलग्न हो गये । विद्वान लोग एवं श्री महेन्द्रकुमार जी बोहरा भी आचार्य श्री को सहयोग कर रहे थे ।

सर्वप्रथम ब्रह्मचारी विद्याधर खडे होकर आचार्य श्री की वंदना करते हैं और अत्यन्त विनय से करबद्ध मुनि दीक्षा दिये जाने की प्रार्थना करते है । आचार्य श्री की स्वीकृति पाकर वे अपने को कृत्य मानकर उनके आदेशानुसार उपस्थित जन समुदाय को उद्‌बोधन देते है। इसके बाद परीक्षा की घड़ी-दिगम्बरी दीक्षा की अर्थात केश लुंचन की और आज्ञा मिलते ही ब्रह्मचारी विद्याधर लगे अपने सुन्दर बालो को अपनी मुष्टिका से खेत में उग आई व्यर्थ की घास की भांति उखाड़ कर फैंकने, रुकने का नाम नहीं, हर बार बालों का गुच्छा उनके हाथ में होता । जन समुदाय शांत - आश्चर्य चकित और हतप्रभ होकर देख रहा था शरीर के प्रति उनके निर्ममत्व को । उन्होंने थोडे से समय में ही अपनी दृढ़ वीतरागता का परिचय देते हुये सिर के सारे बाल निकाल फैंके यद्यपि कई स्थानों से रक्त छल-छला आया था । अब थी बारी चेहरे की दाढी के बालों के लुंचन की । यह सिर की अपेक्षा कोमल स्थान होने से और भी कठिन दिखाई देता था, किंतु जिसने पिछले लगभग एक वर्ष से शरीर से मोह तोडने की कठिन साधना की हो उसके लिये क्या ? उसी निर्ममता से चेहरे के बालों को निकाल फैंका । रक्त निकला तो निकला, चेहरे पर वही मुस्कान-आल्हाद । जिन्होंने देखा अपने को धन्य माना । जून माह की भीषण गर्मी और इतनी भीड़ के कारण ऊमस किंतु सभी ऐसे बैठे थे शान्त जैसे इस दृश्य को देखकर वे भी अपने तन-मन की सुध भुला बैठे हों ।

अब प्रारम्भ होने जा रहा था इस दिगम्बरी दीक्षा का अन्तिम दृश्य । केशलुंचन के पश्चात् आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज आवश्यक संस्कार करने में व्यस्त हो जाते हैं । इस सबके पूर्ण होने पर ब्र० विद्याधर अपना वेष बदलने जा रहे थे - दिगम्बरत्व धारण करने जा रहे थे और जैसे ही आदेश मिला गुरु महाराज का वे अपने शरीर से वस्त्र उतार फैंकते है इतनी तत्परता से जैसे इस परिग्रह के भार से वे दबे जा रहे थे । नामकरण आचार्य व महाराज द्वारा विद्याधर से किया गया मुनि विद्यासागर नामकरण के उपरान्त चारों ओर से जयगान गूंज उठा आचार्य ज्ञानसागरजी की जय मुनि विद्यासागरजी की जय सकल संघ की जय । इंद्रदेव

भी शायद इस घड़ी अपनी प्रसन्नता नहीं रोक पाये अम्बर-प्रांगण में आकाश मेघाच्छादित हुआ और ज्यों विद्याधर के मुनि विद्यासागर बनते ही स्वागत में शीतल बयार के साथ-साथ हल्की वर्षा प्रारम्भ हो गई । वह सारा दृश्य ऐसा था कि मन इसमें रम गया होगा, जिन्होंने देव-शास्त्र-गुरु पर दृढ़ श्रद्धान किया होगा अथवा यह माना होगा कि संसार-समुद्र को तरने का यदि एक मात्र मार्ग है तो वही दिगम्बरत्व है, उन्हे सम्यक दर्शन की भी प्राप्ति अवश्य हुई होगी । अंत मे आचार्य श्री के आशीर्वाद के साथ समारोह पूर्ण हुआ ।

जिस क्षण की सभी को कई दिन से प्रतीक्षा थी, वह क्षण, वह कार्य सुसम्पन्न हो गया, कार्यक्रम के समापन की घोषणा भी कर दी गई किंतु दर्शकों का अपार समुदाय उस पावन क्षण की स्मृति जैसे भुलाना ही नहीं चाहता था । उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कार्यक्रम समाप्त हो गया है और अब घर लौटना है । लग रहा था जैसे कोई निधि उन्होंने खो दी है। एक ओर जहाँ सभी अपने भाग्य को सराह रहे थे कि ऐसा अपूर्व एवं महान पुण्यशाली दीक्षा देखने का उन्हें सौभाग्य मिला, वहीं खाली-खाली से घर लौटना उन्हें अच्छा नही लग रहा था । इतना सब होते हुये भी, परिणामों में ऐसी निर्मलता आने पर भी इस संसार के मायाजाल को तोड़कर विरले ही कल्याण मार्ग पर निकल सकते हैं ।

नव दीक्षित मुनि श्री विद्यासागर एवं संघस्थ अन्य मुनियों एवं त्यागियों सहित आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज श्री सोनी जी की नसियाँ को बैंड-बाजे तथा श्रावकों के विशाल जुलुस और जयनाद के बीच चल दिये ।

श्रावक भी अंततः धीरे-धीरे अपने-अपने घरों को लौटने लगे । संघ को भी अपनी दैनिक क्रियायें करनी थी ।

दूसरे दिन आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज, नव दीक्षित शिष्य श्री विद्यासागर जी के साथ आहार चर्या के लिये निकले। सभी लोग सोच रहे थे कि देखें आज किन पुण्यवान को इन्हें आहार दान का परम् सौभाग्य मिलता है । प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुई और यह सौभाग्य मिला सर सेठ भागचंद जी सोनी के परिवार को । अत्यन्त गद्गद्भाव से सोनी परिवार ने आचार्य श्री के निर्देशन में पूज्य मुनि श्री विद्यासागर जी को और आचार्य ज्ञानसागर जी को आहार दान दिया । धन्य हो गया सोनी परिवार उस दिन । यों इस परिवार के लिये आहार दान देना कुछ नया नहीं था, यह इस परिवार की आवश्यक क्रियाओं में भी जैसा जुड़ गया था, किन्तु आज भी अपने आपको विशेष सौभाग्यशाली मान रहे थे ।

आचार्य ज्ञानसागर जी अपने इन नये शिष्य विद्यासागर को और भी प्रावीन लगन तथा यत्न से सर्वार्थ सिद्धि, अष्ट सहस्री जैसे ग्रन्थों का स्वाध्याय कराने लगे यद्यपि आयु तथा जोड़ों में तीव्र वेदना से आचार्य श्री का शरीर अब अधिक परिश्रम योग्य नहीं था, किन्तु वे इतना होते हुये भी अपने सभी आवश्यकों को निर्विघ्न पालते हुए अपने इस शिष्य को अधिकतम ज्ञान उंडेलने का निरन्तर प्रयास करते थे । तद्नुरूप ही शिष्य मुनि विद्यासागर जी का समर्पण भाव गुरू महाराज के प्रति असीम भक्ति-आदर निष्ठा भी बढ़ती जाती थी । सेवा और संकल्प का यह एक अनूठा उदाहरण था । एक ओर समर्पण और अटूट श्रद्धा और गुरू भक्ति थी तो दूसरी ओर योग्य शिष्य को अपने आत्म कल्याण जैन धर्म-जैन वाङ्मय को समझने-पढ़ने-उपदेश देने, श्रावकों को मोक्ष मार्ग में लगाने तथा निर्दोष दिगम्बर मुनि चर्या का पालन करने हेतु पूर्ण दृढ़ता लाने में आचार्य महाराज सतत प्रयत्नशील रहते थे ।

पूज्य मुनि विद्यासागर जी भी अब यह समझने लगे थे कि गुरू महाराज की छत्र-छाया का लाभ अब प्राचीन समय तक नहीं मिल पायेगा । उनके जोड़ो में तीव्र वेदना रहने लगी थी और उन्हें लेटने बैठने-चलते में भी कठिनाई होने लगी थी फिर भी वे सतत् उन्हें अध्ययन कराते थे ।

विद्यासागर जी भी गुरू महाराज की इस कृपा के प्रति कृतज्ञता अनुभव करते थे और यथा संभव गुरू महाराज की वेदना कम से कम हो इसका पूरा ध्यान रखते थे । गर्दन में विशेष तकलीफ रहने से अपना हाथ नीचे लगा कर उनके पास ही सो जाते थे । यथा संभव उनकी वैय्यावृत्ति करते थे । गुरू-शिष्य की ऐसा परस्पर आदर और विनय था, श्रद्धा और स्नेह का उदाहरण शायद ही देखने को मिले । ज्ञानसागर जी को उनको अध्ययन काल में आवश्यक जैन ग्रन्थों के न मिलने वाली बात अभी तक याद थी । इसीलिये उन्होंने अनेक ग्रंथों की स्वयं रचना की । बड़े-बड़े ग्रन्थों का प्रकाशन टीकायें कराई तथा अब विद्यासागर को शिष्य के रूप में पाकर उन्हें यह आशा हो चली थी कि भविष्य में यह विद्यादीप इस कमी को पूरा करेगा। यही भावना इस आयु में भी इतना परिश्रम करा रही थी उनसे ।

मई 73 में संघ नसीराबाद में विराज रहा था । आचार्य ज्ञानसागर जी देख रहे थे मुनि के आवश्यकों की पालना में शरीर की दिन प्रति दिन बढ़ रही असमर्थता । इसके अतिरिक्त अब उन्हें आचार्य पद भी परिग्रह रूपी भार लगने लगा था जो निर्विकल्पता में तो बाधक था ही उस पद का उत्तरदायित्व विकल्पों का कारण बन रहा था । जैसे पांडित्य प्रगति के बाद चारित्र धारण करने का एक अनूठा उदाहरण इन्होंने प्रस्तुत किया था उसी प्रकार चारित्र धारण करने का एक अनूठा उदाहरण इन्होंने प्रस्तुत किया था उसी प्रकार सल्लेखना धारण करने से पूर्व आचार्य पद अपने योग्यतम एवं चारित्र के प्रति सजग रहने वाले शिष्य श्री विद्यासागर को देकर एक और आदर्श प्रस्तुत करना चाहते थे । एक दिन अवसर पाकर अपने इस मन्तव्य को विद्यासागर

जी के सम्मुख रखा । सुनते ही विद्यासागर जी आश्चर्य चकित तथा किंकर्तव्यमूढ़ की स्थिति में आगये । परन्तु निवेदन किया कि ऐसा कैसे हो सकता है गुरूदेव ? मुझे तो अभी आपके ज्ञान और तपश्चरण का सामीप्य चाहिये । कभी गुरू शिष्य और शिष्य गुरू हो सकता है । नहीं-नहीं मुझसे यह नहीं हो सकेगा । मैं इस उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर सकता । आचार्य महाराज भी अपने शिष्य की मनोदशा देखकर चुप हो गये लेकिन रहने लगे उस अवसर की खोज में जब विद्यासागर जी को इस हेतु मनाया जा सके ।

अध्ययन-अध्यापन का कार्य यथावत चालू । ज्ञानसागर जी महाराज की शारीरिक वेदना में वृद्धि । चिन्तन-मनन शरीर को सल्लेखना-समाधि पूर्वक छोड़ने हेतु । ऐसी ही क्षणों में जब शिष्य विद्यासागर गुरूजी की वैय्यावृत्ति कर रहे थे उनके द्वारा अध्यापन में होने वाले कष्ट के प्रति आभार प्रकट कर रहे थे, ज्ञानसागर जी महाराज कह उठे विद्यासागर मुझसे जितना बन-पड़ा मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया, तुम धर्म ध्वजा तथा श्रमण परंपरा की ध्वजा को सदा ऊँचा रखना । मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है ।

विद्यासागर जी के मुख से फूट पड़ा गुरूवर यह सब आपकी महती कृपा एवं आशीष का परिणाम है । आपके ज्ञान-चारित्र पांडित्य रूपी वाटिका का मैं तो एक नव पल्लवित पुष्प हूँ । आपके उपकार को मैं कभी भी नहीं भुला सकूंगा । यह मेरे संयम मार्ग को सदैव प्रशस्त करता रहेगा । इन्ही शब्दों की जैसे ज्ञानसागर जी महाराज को प्रतीक्षा थी । कह उठे विद्यासागर कैसा और कौनसा उपकार ? फिर यदि तुम ऐसा मानते हो तो मुझे गुरू दक्षिणा देकर इससे उऋण हो जाओ । विद्यासागर जी महाराज नतमस्तक होकर चरणों में झुक गये अपने गुरू के चरणों में और कहने लगे आप कह कर तो देखिये अपने प्राण भी अपने गुरूवर के लिये तनिक भी परवाह किये बिना न्यौछावर कर दूंगा । ज्ञानसागर जी ने और पक्का किया - शिष्य को देख-बदल मत जाना । वाह गुरूदेव आश्चर्य हो रहा है कि आज आपने मेरी गुरूभक्ति पर शंका कैसे की ? गुरूवर ज्ञानसागर जी कह उठे तो प्रिय विद्यासागर मेरी गुरूदक्षिणा की मांग यही है कि मेरा आचार्य पद आप ले लें । क्या कहें ? क्या करें ? विद्यासागर हतप्रभ - किंतु अपने ही वचनों के बंधन में बंध गये फूट पड़े । चरणों में अपना मस्तक रख दिया गुरूदेव के उन्होंने। काफी समय निकल गया इसी स्थिति में । कहने लगे विद्यासागर जी ठग लिया गुरूदेव अपने भोले शिष्य को आखिर मात खा ही गया ।

ज्ञानसागर जी कहने लगे पगले- मैंने याचक के रूप में तुमसे याचना की है और वह भी अपने परमार्थ को साधने हेतु। झिझक भरी स्वीकृति देनी पड़ी शिष्य को ।

तद्नुसार समारोह पूर्वक आचार्य पद ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने ही शिष्य को देकर नमोस्तु किया । विद्यासागर महाराज को मिले आचार्य पद के उत्तरदायित्व के अंतर्गत प्रत्युत्तर में परम्परानुसार हाथ उठाकर देना पड़ा । यह श्रीमान मर्दन की और जैन मुमुक्षु परम्परा की एक अनूठी विधा ।

समय पाकर ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने गुरू विद्यासागर जी से सल्लेखना व्रत दिलाये जाने की स्वीकृति प्रदान करने की प्रार्थना की । यह ऐसी बात से आचार्य विद्यासागर जी मर्माहत, किन्तु कर्त्तव्य के रास्ते में उन्होंने भावनाओं को नहीं आने दिया । काफी विचार विमर्श के बाद दि. 25 मई सन् 1973 को नसीराबाद में ही आचार्य विद्यासागर जी की स्वीकृति से ज्ञानसागर जी ने समाधिमरण हेतु सल्लेखना व्रत लेकर अन्नादि का त्याग कर दिया शरीर जर्जर था ही । सल्लेखना में प्रति दिन किये जाने वाले उत्तरोत्तर त्याग के कारण शरीर क्षीण होने लगा । आचार्य विद्यासागर जी क्षुल्लक स्वरूपानन्द जी के साथ महाराज श्री की समाधि के प्रति हर क्षण सावधान रहते थे पूरी निष्ठा और लगन से वैय्यावृत्ति कर रहे थे आहार निद्रा तक जैसे इनकी भाग गई थी इन दिनों । हर समय उनके परिणाम निर्मल - निर्विकार बनें रहें, यही चेष्टा इनकी रहती थी हर पल ।

आखिर 1 जून 73 को प्रात: 10 बजकर 5- मि. पर जैन जगत का एक दैदीप्यमान दीपक अपना प्रकाश खोकर विलीन हो गया साधना, तपश्चरण तथा दिगम्बरत्व की विधायें एवं ऊंचाइयों का अनुसरण करते हुवे एक साधक अनंत में विलीन हो गया।

नसीराबाद एक बार फिर धन्य हो गया । समाचार आनन-फानन में चारों ओर फैल गया । जो जहां जैसी स्थिति में थे भागे अपने गुरू महाराज को अंतिम श्रद्धांजली अर्पित करने । देखते-देखते उनका पार्थिव शरीर चंदनादि सुगंधित सामग्री की चिता पर अपने को समर्पित कर दिया गया और जन समुदाय दौड़ रहा था एक अपूर्ण क्षति के साथ मनों में रिक्तता लिये ।

ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने जीवन में एक के बाद दूसरे आदर्श प्रस्तुत किये जैन जगत को नये आयाम दिये । मेरा मस्तक उनके प्रति आज भी श्रद्धा एवं अनन्त भक्ति के साथ नमित है । निश्चित ही उनका संसार अल्पतम ही होगा । उन्होंने जो मार्ग बताया श्रावकों के लिये मैं भी उस पर चलने का प्रयास कर सकूं कल्याण मार्ग में लग सकूं इसी भावना के साथ-

शिखरचन्द जैन
अजमेर

चातुर्मास अजमेर 1994
श्री दिगम्बर जैन समिति
अजमेर

नगर प्रवेश

संस्कार शिविर की

शाकाहार कार्यक्रम की सभा का संचालन करते हुये प्रो. सुशील पाटनी

महावीर विकलांग समिति के अध्यक्ष मुनि श्री से आशीर्वाद लेते हुये

प. पू. मुनि श्री विकलांगों को आशीर्वाद प्रदान करते हुये

[illegible] मुनि श्री [illegible] के [illegible] में ट्रायसाइकिल ग्रहण करते हुए विकलांग

ट्रायसाइकिल सौजन्य प्रदाता श्रेष्ठि श्री राजेन्द्र जी का स्वागत विकलांग समिति के अध्यक्ष कोठारी जी

ब्र. श्री संजय भैया विनयांजलि प्रस्तुत करते हुये

क्षुल्लक श्री धैर्यसागरजी विनयांजलि प्रस्तुत करते हुये

क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी विनयांजलि प्रस्तुत करते हुये
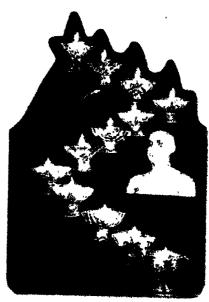
मुनि श्री के द्वादश समारोह पर निकाला गया एक कार्ड

सेठ श्री निर्मलकुमार जी सोनी विनयांजलि प्रस्तुत करते हुये

मुनि श्री के द्वादश दीक्षा समारोह पर भागचन्दजी गदिया शत दीपकों द्वारा आरती करते हुए

लेखक: [illegible]

परम पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लक द्वय श्री गम्भीर सागर जी एवं धैर्य सागर जी महाराज फरवरी 94 में आगरा में विराजमान थे । आपका अजमेर नगर में चातुर्मास सुसम्पन्न करवाये जाने की भावना [illegible] हो गई थी । समाज के निर्णयानुसार दिनांक 30 जनवरी, 1994 को अजमेर जैन समाज के श्रावकों ने आगरा पहुँचकर प. पू. मुनिश्री एवं संघस्थ त्यागियों को अजमेर में चातुर्मास सुसम्पन्न किये जाने हेतु निवेदन किया । संघ परम्परा के अनुसार [illegible] शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी महाराज से इस सम्बन्ध में आज्ञा प्राप्त करने का निर्देश दिया गया । इसमें दिनांक 31 जनवरी, 94 को मध्याह्न में श्री रवीन्द्र कुमार जी दनगसिया, त्रिलोकचन्द जी गदिया, [illegible]चन्दजी पाटनी, कुसुमचन्द जी सोनी तथा [illegible] जी जैन के प्रतिनिधि मण्डल ने उत्कल एक्सप्रेस से अमरकंटक, जहाँ कि आचार्य विद्यासागर जी महाराज ससंघ विराजमान थे, के लिये प्रस्थान किया । साथ में श्री संजयजी ब्रह्मचारी श्रीमान् निरंजनलालजी बैनाडा तथा आगरा के चार कार्यकर्ता थे ।

अजमेर का प्रतिनिधि मण्डल दिनांक 1 फरवरी 1994 को ग्वालियर, कटनी, ललितपुर होते हुये प्रातः 11 बजे पेंड्रा रोड पहुँचे जहाँ से श्री प्रकाशचन्दजी जैन ने अमरकंटक पहुँचने हेतु वाहन की व्यवस्था की । लगभग 1 बजे अमरकंटक पहुँचकर आचार्य श्री की वन्दना की तथा आगरा में विराजित परम् पूज्य सुधासागरजी महाराज ससंघ का अजमेर नगर में चातुर्मास सुसम्पन्न किये जाने की स्वीकृति प्रदान करने हेतु निवेदन किया । दिनांक 3 फरवरी को वापिस आगरा हेतु रवाना हुये और दिनांक 4.2.1995 को प. पू. सुधासागरजी महाराज से निवेदन किया और प्रतिनिधि मण्डल वापिस दिनांक 5.2.1994 को अजमेर लौटा । इसके पश्चात् अनेक बार स्थानीय दिगम्बर जैन समाज के श्रावकों ने आगरा और अमरकंटक पहुँच अजमेर में चातुर्मास हेतु निवेदन किया ।

राजस्थान पदार्पण

मार्च, 1994 में आगरा से मथुरा, भरतपुर विहार करते हुये मुनिश्री ने श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में दिनांक [illegible].1994 को ब्रह्ममुहूर्त में प्रवेश किया । राजस्थान प्रांत की जनता धन्य हुई और आशा बलवती हुई कि राजस्थान को ही मुनि श्री का चातुर्मास सुसम्पन्न कराने का सौभाग्य प्राप्त होगा ।

पदमपुरा स्वर्ण जयन्ती समारोह : दिनांक १३.५.१९९४ से १५.५.९४

यहाँ एक संयोग ही था कि श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पदमपुरा का स्वर्ण जयंती समारोह मिती वैसाख 3 से वैसाख शुक्ला 5 सं. 2051 दिनांक 13.5.1994 से 15.5.1994 को आयोजित था । मुनिराज को पदमपुरा पधारने के लिये निवेदन किया। संघ परम्परानुसार कोई स्पष्ट संकेत प्राप्त नहीं हुआ लेकिन मुनिश्री के इस ओर विहार से हर्ष की लहर दौड़ गई और पदमपुरा का स्वर्ण जयंती समारोह धन्य हो गया । समारोह में श्रेष्टि श्री पूनमचंद जी झरिया द्वारा ध्वजारोहण तथा मुख्य जिनालय के मुख्य द्वार पर श्रेष्टि श्री उम्मेदमल जी पाण्ड्या ने कलशारोहण किया । जिस दिन 21 फुट पदमप्रभु भगवान् की खड्गासन प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक था उस दिन जन समूह उमड़ पड़ा और मुनिश्री सुधासागरजी महाराज की अमृतवाणी सुनकर जनता धन्य हुई। ऐसे अवसर पर श्रावक संस्कार शिविर ने समारोह के चार चांद लगा दिये ।

सांगानेर में महान धर्म प्रभावना

पदमपुरा अतिशय क्षेत्र पर मुनिश्री के मन में विचार आया कि राजस्थान प्रांत में गुरूणां गुरु प. पू. ज्ञानमूर्ति आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने जन्म लिया और इसी प्रांत में समाधि हुई । उनकी साहित्य साधना को जैन संस्कृति भूल नहीं सकती। अतः आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज के 21 वें समाधि दिवस पर आचार्य श्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी आयोजित की जावे । किन्तु स्थान का निश्चय करने में श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी सांगानेर को सौभाग्य प्राप्त हुआ । और मुनिश्री के चरण कमलों के पड़ने से क्षेत्र की काया पलट हो गई ।

सांगानेर में मुनिश्री के पधारने से राजस्थान की राजधानी जयपुर के निवासियों में आनंद छा गया। पूज्य मुनिश्री के ओजस्वी प्रवचनों की ख्याति और सुगन्ध ग्राम-ग्राम में पहुँचने लगी। प्रतिदिन श्रोताओं की भीड़ उमड़ने लगी। [illegible] कि ऐतिहासिक मन्दिर संघीजी का जो 18 गगनचुम्बी शिखरों से शोभायमान और सात मंजिल विशाल मन्दिर है, सभी की नजरों में आ गया और सचमुच में वह तीर्थ क्षेत्र बन गया।

9 जून से 14 जून 1994 तक आयोजित त्रिदिवसीय विद्वत संगोष्ठी एवं त्रिदिवसीय यक्षरक्षित भू-गर्भ स्थित जिनबिम्ब दर्शन समारोह में अनेक प्रान्तों के श्रावक श्रेष्ठि आकर इन जिन बिम्बों के दर्शन कर धन्य होने लगे।

12 जून, 1994 का ऐतिहासिक दिवस था जिस दिन बालयति मुनिश्री सुधासागरजी महाराज ने इसी मन्दिर के तीन मंजिल नीचे भू-गर्भ स्थित यक्ष रक्षित जिन बिम्बों को अपनी साधना के प्रभाव से मात्र 3 दिन के लिये बाहर लाये। लगभग 25 हजार जनता ने प्रथम बार दर्शन कर अपने भाग्य को सराहा और इस अवसर पर मुनिश्री का प्रवचन भी ऐतिहासिक था। श्रेष्ठिवर्य श्री निरंजनलाल जी बैनाड़ा और उनके परिवार को जिन-बिम्बों के अभिषेक करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समारोह से 11 सौ वर्ष प्राचीन मन्दिर, जिसमें सं. 15 के जिनबिम्ब विराजमान है आज वह अतिशय क्षेत्र बनकर अपनी गौरवगाथा को गा रहा है। त्रि-दिवसीय संगोष्ठी की फलश्रुति पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के कृतित्व का मूल्यांकन जैन-जैनेतर मनीषियों द्वारा किया जाना बहुत बड़ी उपलब्धि थी। तीर्थ क्षेत्र का जीर्णोद्धार और जिनवाणी का प्रचार, यह पूज्य मुनिश्री के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से हो सका।

दिनांक 14.6.1994 को श्रेष्ठि श्री निर्मलचंदजी सोनी अजमेर के मुख्यातिथ्य एवं श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन दनगसिया की अध्यक्षता में विद्वत गोष्ठी का समापन समारोह सुसम्पन्न हुआ।

मुनि श्री ससंघ सांगानेर विराज रहे थे। दिनांक 26.6.1994 को सर्वश्री प्रमोदचंद जी सोनी, कपूरचंदजी जैन एडवोकेट, श्री कुमुदचन्द जी सोनी के नेतृत्व में दिगम्बर जैन युवा संगठन के कार्यकर्तागण सांगानेर पहुँचे तथा चातुर्मास हेतु अजमेर की ओर विहार करने के लिये निवेदन किया।

मिती आषाढ़ बदी 14 सं. 2051 गुरुवार दिनांक 7.7.1994 को ससंघ मुनिश्री ने सांगानेर से विहार किया। सांगानेर से फागी, डूंगा, मौजमाबाद, दूदू होते हुये संत शिरोमणी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के 26वें दीक्षा जयंती उत्सव दिनांक 13.7.1994 पर मदनगंज किशनगढ़ में संघ का पदार्पण हुआ। आचार्य श्री की दीक्षा जयंती पर परम् पूज्य मुनिराज श्री सुधासागरजी महाराज ने चारित्र चक्रवर्ती प. पू. आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज, ज्ञानमूर्ति आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज एवं अपने दीक्षा गुरु संत शिरोमणी श्री विद्यासागरजी महाराज के प्रति जो विनयांजली प्रस्तुत की वह स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी। एक ओर मुनिश्री ने अपने गुरुओं के प्रति विनयांजलियाँ प्रस्तुत की तो वहीं दूसरी ओर इस स्वर्णिम एवं पावन शुभावसर पर इन्द्र ने भी भयंकर जल वृष्टि कर उक्त आचार्यों का पाद प्रक्षालन कर अपने आपको धन्य किया।

ससंघ मुनिश्री ने मदनगंज किशनगढ़ से दिनांक 15.7.1994 को अजमेर हेतु विहार किया।

❑❑❑

कोई समझाये तो

मनाने वाला हो तो मन क्या नहीं मान लेता ?
वह सभी कुछ समझ लेता है, समझाने वाला चाहिये। विवेक से कार्य करने वालों के लिए मन अबोध शिशु के समान है।

दशलक्षण महापर्वराज पर्यूषण पर श्रावक - संस्कार शिविर

दिनांक 9.9.1994 से 18.9.1994 तक

एक सिंहावलोकन

लेखक श्री कैलाशचन्द पाटनी

अजमेर नगर का यह परम् सौभाग्य रहा कि इस वर्ष सन् 1994 में ज्ञान-ध्यान-तप के सम्राट, प्रातः स्मरणीय संत शिरोमणि आचार्य 108 श्री विद्यासागरजी महाराज के परम् शिष्य, तीर्थोद्धारक आध्यात्मिक संत मुनि श्री सुधासागर जी महाराज, वात्सल्य प्रेमी क्षुल्लक द्वय श्री गम्भीर सागरजी, क्षु. श्री धैर्य सागरजी, स्नेह प्रेमी ब्रह्मचारी संजय जी का शुभ वर्षायोग सुसम्पन्न हो रहा है।

परम् पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज एवं संघस्थ त्यागियों की मंगलमयी प्रेरणा एवं आशीर्वाद तथा उनके पावन सानिध्य में पावन धर्मस्थल "श्री सिद्धकूट चैत्यालय - सेठ साहब की नसियाँ अजमेर" के प्रांगण में दिनांक 9-9-94 से 18-9-94 तक श्रावकों को धर्म संयम के संस्कार सिखाने वाला दस दिवसीय "श्रावक संस्कार शिविर का आयोजन जैन संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट पर्वराज पर्यूषण पर्व के पावन प्रसंग पर आयोजित करने का अजमेर नगर की दिगम्बर जैन समाज को गौरव प्राप्त हुआ। ऐसा विशाल शिविर अजमेर ही नहीं वरन् उत्तरी भारत के जैन धर्म एवं संस्कृति के इतिहास में प्रथम बार आयोजित कर अजमेर नगर की दिगम्बर जैन समाज ने इस ओर अपना प्रथम स्थान अर्जित करने का गौरव प्राप्त किया।

इस शिविर को आयोजित करने का निर्णय अगस्त 1994 के प्रथम सप्ताह में लिया गया। सर्व भारत के विभिन्न स्थानों से शिविरार्थियों को आमंत्रित किया गया। शिविर की व्यवस्था हेतु यद्यपि पंजीयन कराने की अंतिम तिथि दिनांक 31-8-1994 घोषित की गई थी किन्तु शिविरार्थियों की सुविधाओं एवं उत्साह को देखते हुए शिविर में प्रविष्टि दिनांक 8-9-1994 तक चालू रखनी पड़ी। सभी क्षेत्रों से उत्साह जनक परिणाम आए। दिनांक 8-9-1994 की मध्य रात्रि तक शिविरार्थियों के आने का क्रम चलता रहा। दिनांक 9-9-1994 की प्रातः तक शिविरार्थियों की संख्या 513 तक पहुँच गई।

शिविरार्थियों के आवास, शिक्षण प्रशिक्षण के लिए तीन ग्रुप बनाए गए -

(1) आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप - 45 साल एवं उससे ऊपर की आयु वालों के लिए।

(2) आचार्य विद्यासागर ग्रुप - 30 साल से 45 साल की आयु वालों के लिए।

(3) मुनि सुधासागर ग्रुप - 8 साल से 30 साल की आयु वालों के लिए।

उक्त निर्धारित मापदण्ड के अनुसार आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप में 164 शिविरार्थी, आचार्य विद्यासागर ग्रुप में 185 शिविरार्थी तथा मुनि सुधासागर ग्रुप में 164 शिविरार्थियों की प्रविष्टि की गई।

आवास व्यवस्था - शिविरार्थियों की आवास व्यवस्था श्री छोटा धड़ा नसियाँजी तथा सुप्रसिद्ध सेठ साहब के बंगले पर की गई। उक्त शिविरार्थियों में से आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप के शिविरार्थी छोटे धड़े की नसियाँ जी स्थित "आचार्य धर्मसागर स्वाध्याय भवन" में तथा शेष दो ग्रुपों की आवास व्यवस्था सेठ साहब के बंगले पर की गई।

शिविर के सफल संचालन का भार बाल ब्रह्मचारी श्री अजित जी जैन "सौरई" को सौंपा गया जिनके निर्देशन में सभी शिविरार्थियों तथा अलग-अलग ग्रुप के शिविरार्थियों हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया तथा "संस्कार-निधि" नाम की तीन पुस्तिकाओं का प्रकाशन करवाया गया। इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन का आर्थिक भार श्रीमान् कपूरचन्दजी, मुकेशकुमारजी पाटनी ने वहन किया तथा उन्हीं के द्वारा दिनांक 9-9-1994 को विमोचन किया गया। इस उपलक्ष में आपने रु. 11,111/- की राशि समिति को देने की स्वीकृति प्रदान की।

सभी शिविरार्थियों की शिक्षण प्रशिक्षण व्यवस्था हेतु पृथक्-पृथक् विद्वत्-जनों को शिक्षण का कार्य भार सौंपा गया। डॉ. अनिलकुमार जी जैन (प्राध्यापक संस्कृत विभाग-आगरा विश्वविद्यालय) ने आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप, पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागर जी

महाराज ने आचार्य विद्यासागर ग्रुप तथा डाक्टर शीतलचन्दजी जैन (प्राचार्य संस्कृत महाविद्यालय जयपुर) ने [illegible] को शिक्षण कराने की अनुकम्पा की ।

इस शिविर में 513 शिविरार्थियों ने अति उत्साहपूर्वक भाग लिया जिनमें लगभग 250 शिविरार्थी ललितपुर (उत्तरप्रदेश), 75 शिविरार्थी अशोक नगर तथा शेष शिविरार्थी अजमेर तथा समीपस्थ नगरों - मदनगंज किशनगढ़, नसीराबाद तथा अन्य ग्रामों के थे । इन शिविरार्थियों में 11 वर्ष से 80 वर्ष की आयु के शिविरार्थी सम्मिलित हुए । इन शिविरार्थियों में सागर, [illegible], बेगमगंज, रायसेन, टीकमगढ़, पलवल (हरियाणा) उदयपुर (राज.) आदि स्थानों के भी सम्मिलित हुए ।

श्रावक-संस्कार शिविरार्थियों के लिए नियमावली

श्रावक संस्कार शिविर में सम्मिलित होने वाले सभी शिविरार्थियों के लिए दस दिन के लिए निम्नानुसार नियम घोषित किए गए -

१. दस दिन के लिये घर का पूर्णतया त्याग करना होगा -
२. चौबीस घंटे धोती दुपट्टा में रहना अनिवार्य होगा -
३. अपने पास पैसा अथवा सोने के आभूषण का त्याग रखना अर्थात धोती दुपट्टा पेन कापी पढ़ने की धार्मिक पुस्तकों के अलावा कोई सामग्री नहीं रखी जावेगी - बाहर के शिविरार्थीयों का पैसा आदि व अन्य सामान कमेटी के कार्यालय में जमा कराया जो दस दिन बाद सुरक्षित रुप से लौटा दिया जावेगा -
४. गृहस्थों से अथवा अपने परिवार जनों से मौनपूर्वक रहना होगा -
५. एलोपैथिक दवाईयों का त्याग रखना होगा -
६. गुरु भक्ति के बाद (रात्रि कक्षा को छोड़कर) मौन धारण करना होगा (प्रार्थना भावना और कंठस्थ के लिये उच्चारण कर सकते हो)
७. भोजन एक समय करना होगा - विशेष असमर्थ होने पर शाम को दूध पानी अथवा अल्पाहार ले सकते हो -
८. आहार के लिये मन्दिर से ही मौन लेकर जाना होगा और लौटकर मन्दिर में ही मौन खोलना होगा -
९. भोजन के लिये निमंत्रण से संयोजक के कहे अनुसार निश्चित स्थान पर जाना होगा -
१०. आहार में बिना इशारे के जो थाली में सामग्री परोसी जावे वह ग्रहण करनी होगी -
११. आहार को जाते समय रास्ते को देखते हुये चलेंगे - इधर उधर देखते हुये नहीं चलेंगे -
१२. सभी कार्यक्रमों में समय पर उपस्थित होना होगा -
१३. सभी कार्यक्रमों में दूसरी घंटी पर अवश्य उपस्थित होना होगा -
१४. दिन में एक बजे से २ बजे तक एवं रात्रि में १० बजे से प्रात: ३.३० तक मौन से रहना होगा-
१५. स्नान व वस्त्र के धोने में किसी भी प्रकार के साबुन-सोडा आदि का प्रयोग नहीं किया जावेगा-
१६. उपरोक्त सारे कार्यक्रम नियमावली के अनुसार पालन करना होगा -
१७. उपरोक्त कार्यक्रमों का उल्लंघन करने पर उसे गुरु महाराज द्वारा उपवास आदि का प्रायश्चित स्वीकार करना होगा -
१८. उपरोक्त नियमों को व्यवस्थानुसार व्यवस्थापकों द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है और नया परिवर्तन करने की सूचना प्रतिदिन दे दी जावेगी -
१९. कुछ नियम प्रतिदिन पूज्य महाराज श्री एवं ब्रह्मचारी जी द्वारा दिये जावेंगे वे मान्य होंगे-
२०. पूर्ण अनुशासन बनाये रखना होगा - अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर से बाहर किया जा सकता है -

सभी शिविरार्थियों ने पूर्णरुपेण अनुशासन में रहकर उक्त नियमों का परिपूर्ण पालन कर शिविरों की परम्पराओं का सम्मान किया । एतदर्थ सभी शिविरार्थीगण कोटि-कोटि धन्यवाद के पात्र हैं ।

श्रावक संस्कार शिविर के दैनिक कार्यक्रम

इसी प्रकार श्रावक संस्कार शिविर में भाग लेने वाले शिविरार्थियों हेतु निम्नानुसार दैनिक कार्यक्रम निर्धारित किया गया-

पहली घंटी प्रात: ३.५० पर

पहली घंटी प्रात: ३.५० पर जागकर उठते ही नौ बार णमोकार मंत्र बोलें -

दूसरी घंटी ३.५५ पर तैयार होकर (प्रार्थना स्थल पर पहुँचना)

[illegible]

चौथी घंटी पर प्रार्थना स्थल पर णमोकार मंत्र, सुप्रभात स्तोत्र एवं णमोकार मंत्र का जाप-

प्रातः ४.३० से शौच, स्नान एवं शुद्ध धोती दुपट्टा पहन कर तैयार होना -

प्रातः ५.३० बजे पूज्य मुनि श्री के ध्यान स्थल पर पहुँच कर ध्यान साधना करना

(सोनीजी की नसियां) -

प्रातः ६.३० बजे पूजन स्थल पर पहुँच कर पूजन प्रारंभ करना - प्रतिमा जी के अभिषेक मात्र ब्रह्मचारी जी करेंगे और सभी शिविरार्थी अपने स्थान पर खड़े हो कर एक दूसरे को हाथ लगा कर अभिषेक की क्रिया करेंगे - पूजन विधि पूजन कराने वाले के अनुसार ही करनी होगी - अपनी ओर से कोई भी नई पूजन नहीं कर सकेगा -

प्रातः ७.४५ पर प्रवचन स्थल पर पहुँच कर तत्वार्थ सूत्र का वाचन एवं प्रवचन सुनने के लिये निर्धारित स्थान पर बैठना-

प्रातः ९.३० पर सोनीजी की नसियां की छत पर पहुँचना और वहाँ से गृहस्थ श्रावक के घर बताई हुई विधि के अनुसार आहार के लिये जाना - भोजन कर के सोनी जी की नसियां पर आना -

प्रातः ११.४५ पर सोनीजी की नसियां की छत पर पांडाल के नीचे सामायिक के लिये पहुँचना-

मध्यान्ह १ बजे से २ बजे तक नसियां जी की ऊपर छत पर एवं पहली मंजिल की गेलेरी में विश्राम करना -

मध्यान्ह २.१५ बजे से कक्षा

कक्षा २.१५ सामान्य ज्ञान (भाग दो)
कक्षा ३.०० द्रव्य-संग्रह (द्वितीय व तृतीय अधिकार) } पू. मुनि श्री सुधासागरजी जी महाराज द्वारा

४.३० बजे छोटे बड़े की नसियां में जलपान ।

५.३० बजे प्रतिक्रमण नसियां जी (सोनीजी की नसियां) की छत पर -

६.१५ बजे भक्ति के लिये तैयार रहना - गुरु भक्ति, गुरु स्तुति, सोनी जी की नसियां में एवं सांयकालीन देव स्तुति के लिये छोटे बड़े की नसियां में जाना ।

६.४५ बजे कक्षा - सामान्य ज्ञान भाग १ - सोनीजी की नसियां (ऊपर छत पर)

सांय ८ बजे सामायिक - छोटे बड़े की नसियां जी

रात्री ९ बजे - स्वयं द्वारा (होम वर्क) पाठ आदि तैयार करना ।

रात्री ९.४५ बजे - प्रार्थना - शयन-विश्राम ।

शिविरार्थियों का दैनिक कार्यक्रम प्रातः 3.50 बजे पहली घंटी के बजने के साथ ही प्रारम्भ हो जाता था । नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करने के साथ ही दूसरी घंटी के बजने पर प्रार्थना स्थल पर प्रार्थना स्थल पर णमोकार मंत्र, सुप्रभात स्तोत्र एवं णमोकार मंत्र का शिविरार्थी जाप्य करते थे । इसके तत्पश्चात् प्रातः 4.30 बजे से शौच, स्नान एवं शुद्ध धोती दुपट्टा पहिन कर सेठ साहब की नसियाँ स्थित ध्यान स्थल, ध्यान साधना हेतु पहुँच जाते । उसके पश्चात् सम्पन्न होने वाले विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का विवरण निम्नानुसार है -

(१) ध्यान साधना

सेठ साहब की नसियाँजी में स्थित अयोध्या नगरी की छत पर ध्यान साधना का कार्यक्रम परम् पूज्य श्री सुधासागर जी महाराज के पावन सानिध्य में नित्य प्रतिदिन प्रातः ठीक 5.30 बजे से प्रारम्भ हो जाता था । जो एक घंटे तक चलता था।

अजमेर नगर के 92 फीट सबसे ऊँचे भवन की छत पर 513 श्वेत धोती दुपट्टा पहिने शिविरार्थीगण पंक्तिबद्ध ध्यानस्थ पद्मासन मुद्रा में ब्राह्म मुहूर्त में परम् पूज्य 108 श्री सुधासागरजी महाराज के चरण सानिध्य में इस प्रकार शोभायमान होते थे मानों तीर्थंकर भगवान् के समवशरण में लोकान्तिक देव भगवान् की दिव्य वाणी का पान कर रहे हों । तीर्थ तुल्य मनोहारी नसियाँजी के शीर्ष भाग पर परम् पूज्य सुधासागर जी महाराज का प्रातः कालीन सान्निध्य एवं संदेश न केवल धवल धोती दुपट्टा धारण करने वाले शिविरार्थियों के लिए ही एक सुखद संदेश था वरन् सकल विश्व एवं प्राणीमात्र को सत्य, अहिंसा, करुणा, मैत्री का संदेश था जिसे प्रातः कालीन सुरभित मंद-मंद समीर सारे विश्व की दसों दिशाओं एवं प्राणीमात्र तक पहुँचा रही थी । यह दृश्य बड़ा ही अलौकिक एवं इस धार्मिक शिविर का एक महत्वपूर्ण भाग था । इस दृश्य में जिनको भी सम्मिलित होने अथवा देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ, वे सभी भाग्यशाली थे ।

(२) जिनेन्द्र भगवान् की सामूहिक पूजा

शिविरार्थियों के लिए जिनेन्द्र भगवान् की सामूहिक पूजन की व्यवस्था श्री सिद्धकूट चैत्यालय - सेठ साहब की नसियां जी के गर्भगृह के ऊपर चारों ओर बारादरी पर की गई । चारों ओर टेन्ट और मेजें लगाई गई । पूजा सामग्री के धोने तथा नीचे से ऊपर पहुँचाने की व्यवस्था श्री जैन वीर दल के कार्यकर्ताओं द्वारा की गई । इस पूजन को संगीतमय बनाने का कार्य श्री दिगम्बर जैन संगीत मण्डल अजमेर द्वारा किया गया । पूजन जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक से प्रारम्भ होती थी । पूजा का दृश्य किसी विशाल स्तर पर आयोजित होने वाले मण्डल विधान से कम नहीं था ।

(३) तत्वार्थ-सूत्र का वाचन एवं पूज्य महाराज श्री का प्रवचन

परम् पूज्य मुनिराज श्री सुधासागर जी महाराज का दिनांक 16-7-1994 को अजमेर नगर में मांगलिक पदार्पण हुआ तभी से सेठ साहब की नसियां जी में प्रातः 8 बजे से 9.30 बजे तक अनवरत रूप से महाराज श्री के प्रवचनों का क्रम अनवरत रूप से मुनिराज श्री के विराजने तक चलता रहा । परम् पूज्य महाराज श्री के सारगर्भित, प्रभावक एवं हृदयस्पर्शी प्रवचनों का इतना जबरदस्त प्रभाव पड़ा कि न केवल दिगम्बर जैन समाज वरन् जैनेतर समाज तथा नगर के अनेक गणमान्य महानुभावों प्रवचनों का लाभ प्राप्त किया । प्रवचनों के प्रारम्भ होने के पूर्व से ही समस्त ज्ञान पिपासु अपने स्थान पर आकर बैठ जाते । नसियाँ जी के गर्भगृह तथा उसके चारों ओर के बरामदों, अयोध्यानगरी के नीचे का हाल तथा इसके पश्चिम की ओर खुली जगह, अयोध्यानगरी के ऊपर जाने की सीढ़ियाँ, मुख्य नसियाँ जी की सीढ़ियाँ, मानस्तम्भ के चारों ओर सिंह द्वार तक तथा मुख्य नसियाँजी के पश्चिमी ओर खुली छत इस प्रकार खचाखच भर जाती थी कि पैर रखने को जगह नहीं बचती थी । प्रतिदिन दस हजार से अधिक श्रोताओं ने प्रवचन का लाभ लिया । श्री सिद्धकूट चैत्यालय टैम्पल ट्रस्ट की ओर से छह टी. वी. क्लोज सर्किट्स, सभी जगह बैठने हेतु दरियाँ तथा नसियाँजी के पश्चिमी ओर की छत पर शामियाना, माइक आदि की सुन्दरतम व्यवस्था की गई । ऐसा दृश्य पूर्व में कभी भी देखने को नहीं मिला । जो भी हो व्यवस्था इतनी अच्छे ढंग से की गई कि बरसात के समय भी किसी को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई । ऐसा प्रवचन स्थल न केवल अजमेर वरन् उत्तरी भारत के किसी भी जिनालय में उपलब्ध नहीं है । इसी स्थल पर पर्युषण पर्व के दौरान तत्वार्थसूत्र का वाचन तथा मुनिराज श्री के दशलक्षण धर्म पर प्रवचन हुए ।

तत्वार्थसूत्र वाचन - अजमेर के इतिहास में प्रथम बार उमास्वामी द्वारा विरचित जैनागम के प्राण, चारों अनुयोगों को गर्भित करने वाले "तत्वार्थ सूत्रजी" का अत्यंत ही भक्ति पूर्वक प्रातः 7.45 से 8.15 तक त्यागियों के श्रीमुख से वाचन हुआ।

पूज्य त्यागी वर्ग द्वारा अध्याय की पूर्णता पर विद्यमान सकल समाज एक स्वर व लय में "उदक चंदन" बोलकर जब पूर्ण अर्घ्य उच्चारण करते थे वह दृश्य देखते ही बनता था । परम् पूज्य महाराज श्री ने इन तत्वार्थ सूत्र का महत्व दर्शाते हुए स्पष्ट उद्घोष किया कि अगर आप दिगम्बर जैन हैं तो आजीवन सदैव ही पर्वराज में इसी प्रकार तत्वार्थ सूत्रजी का अवश्य ही वाचन कराकर अर्घ्य चढ़ाने की परम्परा रखना चाहिए ।

श्रावक संस्कार शिविर के दौरान दस लक्षण धर्म पर मुनिराज श्री सुधासागर जी महाराज के सारगर्भित प्रवचन हुए । महाराज श्री के प्रवचनों से प्रभावित होकर दिनांक 14.9.94 को उत्तम संयम धर्म के दिवस पर उपस्थित विशाल जनसमूह ने निम्नांकित नियमों को जीवन भर पालन करने के व्रत लिए -

(1) रात्रि में अन्न की वस्तु ग्रहण नहीं करेगें ।
(2) जीवन में नशे की वस्तु (गांजा, तम्बाकू, मद्यमांस, भांग, बीड़ी, सिगरेट, गुटखा) का प्रयोग नहीं करेगें ।
(3) अण्डे, मांस शहद आदि अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन नहीं करेगें ।
(4) न तो जुआ खेलेंगे न लाटरी खरीदेंगे न बेचेंगे ।
(5) जिन टिकटों अथवा सिक्कों पर अण्डे, मछली आदि छपे हुए हैं ऐसे टिकटों एवं सिक्कों का उपयोग नहीं करेंगे ।
(6) समस्त प्रकार के ऐसे सौंदर्य प्रसाधन यथा लिपिस्टिक, शैम्पू, क्रीम, पाउडर आदि वस्तुएँ जिसके कि निर्माण में जीव हिंसा होती है, का प्रयोग नहीं करेगें ।
(7) चमड़े के बेल्ट, जूते, बटवे जिसके बनाने में जीव हिंसा होती है, का प्रयोग नहीं करेगें ।

(४) शिविरार्थियों का आहार

शिविरार्थी श्रावकों की [illegible] विधि के अनुसार आहार के लिए जाते थे । इस व्यवस्था के सुचारु रूप से संचालन हेतु दस-दस शिविरार्थियों का ग्रुप बनाया गया । अलग-अलग दिवसों पर अलग-अलग ग्रुप के शिविरार्थियों ने श्रावकों के यहाँ आहार ग्रहण किया । जिन श्रावकों के यहाँ शिविरार्थियों का आहार बनाया जाता था वे श्रावक धोती दुपट्टा पहिने और [illegible] पर जैन [illegible] शिविरार्थियों को अपने निवास स्थान ले जाते थे तथा पूर्ण सम्मान के साथ शिविरार्थियों को आहार कराते थे भोजन के समय शिविरार्थी मौन से भोजन ग्रहण करते थे। भोजन ग्रहण करने के पश्चात् श्रावक उन्हें वापिस सेठ साहब की नसियाँजी छोड़कर जाते थे । इस प्रकार सभी शिविरार्थियों की निर्-अन्तराय आहार व्यवस्था श्रावकों के यहाँ चली । श्रावकों में शिविरार्थियों को आहार कराने की होड़ सी लगी रही ।

(५) शिक्षण कक्षाएँ

मध्याह्न 2.15 से 4.30 बजे प्रतिदिन शिविरार्थियों की सामूहिक कक्षा सेठ साहब की नसियाँ जी में पूजन स्थल पर हुई जिसमें परम पूज्य श्री सुधासागर जी महाराज का सामान्य ज्ञान (भाग दो) तथा द्रव्य संग्रह (द्वितीय व तृतीय अधिकार) पर प्रवचन हुए । इसी समय विभिन्न शिविरार्थियों की शंकाओं का समाधान भी महाराज श्री द्वारा किया गया ।

इसी प्रकार प्रतिदिन सायंकाल 5.30 से 6.45 बजे तक प्रतिक्रमण, गुरुभक्ति एवं गुरु स्तुति हुई । इसके पश्चात् 6.45 से 8 बजे तक अलग-अलग ग्रुपों की कक्षाएँ अलग-अलग निर्धारित स्थानों पर आयोजित हुईं । आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप की कक्षा नीचे हाल में डॉ. अजितकुमार जी जैन द्वारा, आचार्य श्री विद्यासागर ग्रुप की कक्षा क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज द्वारा पूजन स्थल पर एवं मुनि सुधासागर ग्रुप की कक्षा डॉ. शीतलचन्द जी जैन द्वारा अयोध्या नगरी की छत पर आयोजित की गई । इन कक्षाओं में सामान्य ज्ञान भाग एक का ज्ञान कराया गया ।

सांध्यकालीन कक्षाएँ लगभग 8 बजे तक चलती थी । उसके पश्चात् निर्देशित कार्यक्रमानुसार शिविरार्थीगण अपने प्रवास स्थल पर पहुँच कर सामायिक, पाठ्यक्रम की तैयारी, प्रार्थनादि एवं विश्राम करते थे ।

(६) परीक्षा

शिविर में भाग लेने वाले शिविरार्थियों की पाठ्यक्रमानुसार दिनांक 17-9-94 को परीक्षा आयोजित की गई ।

(७) अन्य धर्म सभाएँ एवं कार्यक्रम

शिविरार्थियों के लिए उक्त कार्यक्रमों के साथ-साथ दशलक्षण पर्व में सभी श्रावकों के लिए विभिन्न धर्म सभाओं एवं कार्य क्रमों का आयोजन हुआ जिनमें श्रावक बन्धुओं ने बड़े ही उत्साह से भाग लेकर पुण्यार्जन किया । दशलक्षण पर्व के दौरान मध्याह्न 3 बजे से पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज के तत्त्वार्थ सूत्र पर प्रवचन हुए । इसी प्रकार सायंकाल 7 बजे से क्षुल्लक गम्भीर सागर जी महाराज के कथानकों के आधार पर प्रवचन तथा 8 बजे से ब्रह्मचारी संजय जी के दशलक्षण धर्म पर प्रवचन हुए । आपके प्रवचन अत्यंत हृदयस्पर्शी थे ।

उक्त कार्यक्रमों के पश्चात् रात्रि के 8.30 बजे से निम्नांकित सांस्कृतिक कार्यक्रमों का श्री सिद्धकूट चैत्यालय टैम्पल ट्रस्ट की ओर से आयोजन किया गया -

दिनांक	वार	कार्यक्रम
9-9-94	शुक्रवार	वाद-विवाद प्रतियोगिता-धर्म प्रभावना धन/ज्ञान से
10-9-94	शनिवार	भक्तामर स्तोत्र प्रतियोगिता
11-9-94	रविवार	क्विज प्रतियोगिता (महिला वर्ग)
12-9-94	सोमवार	भजन संध्या
13-9-94	मंगलवार	अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता
14-9-94	बुधवार	कथा-कथन प्रतियोगिता

15-9-94	गुरुवार	खुला प्रश्न मंच
16-9-94	शुक्रवार	बाल कवि सम्मेलन
17-9-94	शनिवार	आशु-भाषण (तात्कालिक भाषण) प्रतियोगिता
		(1) युवा पीढ़ी किस ओर
		(2) पराधीन सपने हूँ सुख नाहीं
		(3) हम और हमारा कर्त्तव्य
18-9-94	रविवार	जैन क्वीज टाइम (पुरुष वर्ग)

उक्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन अजमेर नगर में प्रथम बार हुआ जिसमें समाज के सभी वर्गों ने अति उत्साह पूर्वक भाग लिया । नई-नई प्रतिभाओं एवं कार्यकर्त्ताओं को उक्त कार्यक्रमों में भाग लेने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ । प्रतियोगिता में भाग लेने वालों को श्री सिद्धकूट चैत्यालय टैम्पल ट्रस्ट के प्रबंधक श्रेष्ठि श्री निर्मलचन्दजी सोनी ने पुरस्कृत कर सम्मानित किया । इन कार्यक्रमों के निर्देशक ब्र. संजय जी एवं संयोजक श्री सुमतिचन्दजी जैन के अथक प्रयास अत्यन्त ही सराहनीय थे।

श्रावक संस्कार शिविर के समापन पर निकला ऐतिहासिक जुलूस

प्रस्तुति: श्री पदमचन्द जी ठोलिया, अजमेर

अजमेर । दि. जैन धर्मावलम्बियों के पयूर्षण पर्व की समाप्ति के साथ ही 18 सितम्बर को समाप्त हुये 10 दिवसीय श्रावक संम्कार शिविर के समापन पर शिविरार्थियों के 19 सितम्बर की प्रात: निकले जुलूस को नगर वासियों ने ऐतिहासिक जुलूस को संज्ञा दी है । आयोजित हुये विशाल जुलूस में शिविरार्थियों के हाथों में सफेद ध्वज को लहराते देख जो दृश्य बना वह अलौकिक था । सफेद धोती, दुपट्टा धारी शिविरार्थियों द्वारा कतार बद्धता के साथ हाथ में ध्वज पताका फहराते चलने के नयनाभिराम दृश्य को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे मुनि सुधासागर जी के स्वागत को किसी अलौकिक संसार से धरती पर दूत उतर आए हों । निम्सन्देह मुनि श्री सुधासागर जी ने इस बार अजमेर में धार्मिक विचारों व संस्कारों की ऐसी ही वर्षा की है जिससे समूचे नगर में धार्मिक पर्यावरण छाया हुआ है जिसका वर्षों तक सम्भवत असर मिटने वाला नहीं । कहीं भी ऐसे संत का हर बार सामीप्य नहीं मिलता । स्वयं जैन धर्मावलम्बियों का कहना है कि सोनी जी नसियाँ के निर्माण समय से लेकर मानस्तम्भ के धार्मिक मेले पर भी इस प्रकार के जन समूह को नसियाँ प्रांगण में नहीं देखा गया । इस बार नसियाँ प्रांगण के साथ-साथ नसियाँ जी की छत भी धन्य हो गई जहां दस दिनों तक शिविरार्थियों के हाथों धार्मिक पूजा आदि का कार्यक्रम चला । यह कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं कि जब से अजमेर में मुनि सुधा सागरजी ससंघ का आगमन हुआ है नसियाँ जी जैसे किसी बड़े शहर का प्लेट फार्म बन गई है जहाँ प्रात: से लेकर देर रात तक यात्रियों की भांति धर्मावलम्बियों की गहमा-गहमी छाई रहती है ।

जुलूस सोनी जी की नसियाँ मे प्रारम्भ होकर सरावगी मौहल्ला, नया बाजार, मदार गेट होता हुआ केसर गंज स्थित जैसवाल जैन मन्दिर पर जाकर प्रवचन सभा में परिवर्तित हो गया ।

मुनि श्री सुधासागर ससंघ जी जुलूस के पीछे थे और उनके पीछे जैन धर्मावलम्बियों का अपार जन समूह विभिन्न नारों का जयघोष करता हुआ चल रहा था ।

रास्तों में जगह-जगह मुनि श्री के चरणों को धोकर उनकी आरती उतारी गई, उनके स्वागत में रंग-बिरंगे स्नेह पुष्पों की वर्षा की गई । जुलुस में धर्मावलम्बियों का इस प्रकार का सैलाब पूर्व में कभी नहीं देखा गया । जिन गृहस्थों को उनकी वैय्या वृत्ति करने का अवसर मिला वे अपने को धन्य समझ रहे थे । शिविरार्थियों का जुलूस में अनुशासित होकर चलना, धर्मावलम्बियों के सैलाब से व्यवस्था को न बिगड़ने देना, बैंड बाजों की मधुर धूनों का गुंजायमान, मुनिश्री ज्ञान सागर, विद्यासागर व सुधा सागर की जय घोष के नारों मे चहुँ ओर अलौकिक उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा था ।

जुलूस की व्यवस्था को पूर्ण नियंत्रित व अनुशासित बनाएँ रखने में जैन वीर दल के स्वयं सेवकों ने जो भूमिका अदा की नतीजन जुलूस की सफलता में चार चाँद लग गये ।

श्री जैन वीर दल के उत्साही वीरों की प्रशंसा में अशोक नगर से आए शिविरार्थी एवं युवा कवि श्री विजय जैन ने कहा कि

है उपकार सभी उन वीरों का
जो झेले आसूं हाथों में,
फिर हो गए तैयार साथी सब
जिन दर्शन को पाने में ।

वीरों ने सम्मान दिया जो,
अनुपम शोभा उसकी है
उत्साही बनें धर्मज्ञ रहें
बस यही भावना सबकी है ।

इसी निमित्त की गई पुलिस, व्यवस्था भी सराहनीय रही ।

देव माया की तरह हो रहे चातुर्मास में गुरुकृपा प्रसाद से त्याग तपस्या से परिपूर्ण 700 शिविरार्थियों का दस दिवसीय कार्यक्रम समापन पूर्णिमा प्रभात में धर्मवीर, समाज शिरोमणी सेठ साहब श्री निर्मलचन्द जी सोनी की ओर से पारने के साथ प्रारम्भ हुआ । भव्य जुलूस जिसमें तीनों ग्रुप तीन-तीन पंक्तियों में श्वेत दुपट्टों में नंगे पांव, हाथों में श्वेत विशाल ध्वज लिए हुए अतीव शोभायान हो रहे थे । जुलूस नया बाजार से सरावगी मौहल्ले के जिनालयों की वन्दना करते हुए केसरगंज, जिनमन्दिर जी पहुँचा। वहाँ के दर्शनोपरांत सर्व शिविरार्थियों एवं दर्शनार्थियों हेतु प्रीतिभोज श्रीमान् शान्तिलाल जी प्रदीपकुमार जी की ओर से आयोजित हुआ । एक बजे महाराज श्री ने समाज संगठन हेतु प्रेरणा दी । 1.30 बजे विशाल वार्षिक जिनाभिषेक हुए । जुलूस के साथ परम् पूज्य महाराज श्री एवं शिविरार्थी पुनः सेठ साहब की नसियाँ जी पहुँचे । जहां भव्य समापन सभा का आयोजन था ।

श्रावक संस्कार शिविर-सम्मान समारोह

लेखक : विश्वास जैन, अजमेर

जैन मुनि श्री सुधासागर ने कहा कि राजा, समाज व साधु की सोच एक ही रहे तो हर घर राममय बन जाए । मुनि श्री सोनी जी की नसियाँ में दिगम्बर जैन समाज की ओर से आयोजित 10 दिवसीय श्रावक संस्कार शिविर के समापन समारोह को सम्बोधित कर रहे थे ।

जैन मुनि श्री सुधासागर जी ने अपने सम्बोधन में शिविरार्थियों के अनुशासन की प्रशंसा करते हुए उन्हें शिविर में बताए गए मार्ग पर चलने का संदेश दिया । उन्होंने कहा कि जब राजा, समाज और साधु की सोच प्रवृत्ति एक ही रहे तो हर घर राममय हो जाए और ऐसी त्रिवेणी बह निकले कि हर घर में राम ही राम नजर आए । उन्होंने कहा कि जब व्यक्ति संसार से लौटने लगता है तो वह मोक्ष मार्ग पर उद्यत होता है ।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित हुये राज. विधान सभा के अध्यक्ष श्री हरिशंकर भाभड़ा ने मनुष्य जीवन में आत्मा के उत्थान के लिए साधना का मार्ग अपना कर मोक्ष को जीवन का लक्ष्य बनाने, अपनी आत्मा के स्वरूप को पहचानने और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए पाश्चात्य संस्कृति के मूल्यों को त्यागने का आह्वान किया ।

उन्होंने कहा कि धर्म शाश्वत है और धर्म में वाद होना चाहिए विवाद नहीं होना चाहिए । धर्म में वाद होने पर उसमें से कुछ शाश्वत तत्त्व और सूत्र निकलते हैं । उन्होंने कहा कि धर्म व सम्प्रदाय अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन उनका मूल मंत्र एक ही होता है । जैसे ओम् शब्द का अर्थ वैदिक, बौद्ध, सिक्ख में एक ही है । उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते हुए

प्रभाव और आक्रमण पर गहरी चिंता प्रकट हुए कहा कि इस पाश्चात्य संस्कृति के कारण हमारी हिन्दू संस्कृति पर कुठाराघात हो रहा है और आजादी के बाद हमारे नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों में कमी आई है । उन्होंने आत्म चिंतन करने पर बल देते हुए आत्म स्वरूप को विकसित करने का आव्हान किया और कहा कि आत्मा में सभी धर्म व सम्प्रदायों का विश्वास है। उन्होंने साधना में भी मोह का त्याग करने और जीवन के मूल उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करने के लिए एकाग्रचित्त होकर साधना में लीन होने को कहा ।

समारोह के विशिष्ट अतिथि सांसद श्री रासासिंह रावत ने अजमेर नगर में श्रावक संस्कार शिविर के आयोजन पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि इससे शिविरार्थियों में राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होगा । उन्होंने जैन धर्म के सिद्धान्तों को सरल से सरल भाषा में उनकी व्याख्या करके जन जन तक पहुँचाने का आव्हान किया । उन्होंने मनुष्य जीवन को सरल बनाने के लिए प्रार्थना को सरल व सुगम मार्ग बताया ।

समारोह को सम्बोधित करते हुए नगर सुधार न्यास के अध्यक्ष श्री औंकारसिंह लखावत ने कहा कि आज के भौतिकतावादी युग में कारखाने खुलते हैं, उद्योग धन्धे लगते हैं लेकिन आदमी को आदमीयत सिखाने के लिये कोई विद्यालय नहीं खुलता । मुनि श्री के निर्देश पर श्रावक संस्कार शिविर इस दिशा में अजमेर जैन समाज की बहुत बड़ी उपलब्धि है । अजमेर के नागरिकों के लिये भी ऐसे किसी संस्कार शिविर के लिये कोई योजना बने तो न्यास उसमें यथा सम्भव सहयोग देगा । आपने न्यास की ओर से विश्वास दिलाया कि वे मानवता के उत्थान के लिए जो भी कार्य कर सकेंगे उसके लिए प्राथमिकता के आधार पर प्रयास करेंगें । उन्होंने इस अवसर पर श्रावक संस्कार शिविर के भवन की स्थापना के लिए अजयमेरू पर्वत श्रृंखलाओं में उचित स्थान का चयन कर सहयोग देने की पहल की ।

प्रारम्भ में विधानसभा अध्यक्ष श्री भाभड़ा, सांसद श्री रावत व न्यास अध्यक्ष श्री लखावत ने जैन मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के चरणों में श्रीफल चढ़ाकर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए ।

नगर दंड नायक श्री लीलाधर यादव सहित इन तीनों महानुभावों का समाज की ओर से नसियाँ जी की फोटो, पुस्तक आदि देकर अभिनन्दन किया गया । इस शिविर में लगभग 700 श्रावकों ने भाग लिया जो राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रांतों के थे । शिविर में सराहनीय सेवाएं देने के लिए समारोह में श्री भाभड़ा एवं अन्य अतिथियों ने सर्वश्री आगरा के डॉ. अजीत जैन, डॉ. शीतलचन्द जैन जयपुर, धर्मेश जैन, कैलाशचन्द पाटनी, व भागचन्द पहाड़िया आदि को सम्मानित किया । शिविर के संयोजक श्री कैलाशचन्द पाटनी ने 10 दिवसीय शिविर की रिपोर्ट प्रस्तुत की और बताया कि सैकड़ों श्रावकों ने गुटखा एवं अन्य व्यसन त्यागने का इस अवसर पर प्रण किया है ।

श्री पाटनी ने यह भी अवगत कराया कि शिविरार्थियों में 80 शिविरार्थी ऐसे हैं जिन्होंने 5 से 10 दिन तक के उपवास किये हैं । शिविरार्थियों के शालीन व्यवहार की भी श्री पाटनी ने सराहना की और अन्त में अर्न्तमन से सभी से क्षमा याचना।

युवा कवि श्री पंकज जैन व विजयकुमार ने कविताओं के माध्यम से श्रावक शिविर की उपादेयता पर प्रकाश डाला। समापन समारोह का शुभारम्भ श्री राजकुमार बज द्वारा दीप प्रज्जवलित करके किया श्री निर्मल कुमार सोनी ने सभी का स्वागत व आभार व्यक्त किया ।

गोपाल सेन का अभिनन्दन

अजमेर । जैन समुदाय में रहते गोपाल सेन के भाव भी आखिर जैन मय बन गये और उसने पर्यूषण पर्व के दौरान धोती दुपट्टा धारण कर 10 उपवास किये ।

श्रावक संस्कार शिविर के समापन समारोह में श्री भागचन्द पहाड़िया ने अपारजन समूह के बीच उसे सोने की चैन, चाँदी की माला पाँच वस्त्र, महाराज श्री का चित्र आदि अनेक उपहार प्रदान कर सम्मानित किया । उसने आजीवन शराब, मांस, रात्रि भोजन, सिगरेट, गुटखा आदि सभी व्यसनों के त्याग भी कर दिये हैं ।

घृत दीपक - श्री राजकुमार जी बज ने दीपक प्रज्वलित किया एवं हृदयस्पर्शी मंगलाचरण पंकज जैन (ललितपुर) ने प्रस्तुत किया । समारोह का संचालन पण्डितजी श्री शीतलचन्द जी जैन (जयपुर) ने किया । प्रमुख अतिथि श्रीमान हरिशंकर जी भाभड़ा, अध्यक्ष राजस्थान विधान सभा और श्री मान औंकारसिंह जी लखावत अध्यक्ष नगर सुधार न्यास तथा सांसद रासासिंह जी

रावत, मजिस्ट्रेट श्री यादव साहब तथा समापन समारोह अध्यक्ष श्रीमान् भागचन्द जी सा. महाड़िया एवं शिविर के उत्कृष्ट सहयोगी श्रीमान् विमलचन्द जी सोगानी सहित सभी विद्वानों का सम्मान सम्पन्न हुआ । परीक्षा में सर्वोपरि अंक प्राप्त करने वाले एवं शिविरार्थियों में 13 व्रतियों को दस उपवास तथा 67 व्यक्तियों को पाँच एवं पांच से अधिक उपवास करने के उपलक्ष्य में श्रीमान् मदनलाल जी गोधा (बम्बई) ने वस्त्र, श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन (अहमदाबाद वालों) ने रजत-पात्र तथा श्री टीकमचन्द जी भागचन्द जी गदिया ने रजत सिक्के, समिति ने सकल शिविरार्थियों को भव्य चित्र तथा श्रीमान् विमलचन्द जी सा. सोगानी ने मनोहारी चित्र भेंट किये । संयोजक श्री कैलाशचन्द जी पाटनी ने शिविर की अन्यत्र प्रकाशित रिपोर्ट सुनाई । तीनों मुख्य अतिथि महोदयों ने धर्म की महिमा गाई । सही मानव बनने की कला हेतु शिविरार्थियों को साधुवाद दिया। श्रीमान् लखावत साहब ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक गुरु चरणों में धर्मक्षेत्र अजमेर में सकल दिगम्बर जैन समाज को अरावली पर्वत माला की अजमेर श्रृंखला पर भव्य क्षेत्र बनाने हेतु स्थान देने का अजमेर जैन समाज का प्रस्ताव स्वीकार किया । वातावरण अत्यधिक भव्य एवं हर्षमय रहा । सेठ साहब श्री निर्मलचन्द जी सोनी ने अपनी गौरवमयी कुल परम्परानुसार प. पू. मुनि संघ हेतु अत्यधिक विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता प्रकट की । परम् पूज्य महाराज श्री ने अपने आशीर्वचनों में शासन के पदाधिकारियों को गौ वंश की पूर्ण रक्षा हेतु सजग किया एवं प्रान्त में जुआ-लाटरी पर प्रतिबंध लगाने हेतु सजग किया । प्रशासन, जनता एवं साधु तीनों धर्ममय हो जाने से यह भारत वसुंधरा राममय हो जावेगी, ऐसा उद्घोष किया । प. पू. महाराज श्री ने लखावत सा. को पर्वत माला पर भूखण्ड की स्वीकृति हेतु आशीर्वाद देते हुए प्रेरित किया कि आने वाले समय को देखते हुए इस प्रकार का विशाल क्षेत्र होना चाहिए जो शहरी वातावरण से दूर रहकर अध्यात्म एवं आत्म साधना का केन्द्र बन सके । सभी शिविरार्थियों को महाराज श्री ने मंगल आशीर्वाद प्रदान किया ।

अपरान्हकाल में श्री बड़ा धड़ा नसियाँ जी में विशाल प्रीतिभोज आयोजित हुआ । पूरे चातुर्मास काल में दर्शनार्थी समाज हेतु भोजन एवं आवास ससम्मान व्यवस्था है । महाराज श्री के अमृत वचनों ने सबको संगठन की एक माला में पिरो दिया है। सायंकाल में अजमेर के शिविरार्थी, अपने परिजनों के लेने आने पर गाजे-बाजे के साथ 11 दिवस बाद घर लौटे ।

इस दु:सह कलिकाल में त्याग तपस्या का यह जीवंत उदाहरण भौतिकवादी विश्व के लिए एक आदर्श है । महाराज श्री की सद्प्रेरणा एवं शुभाशीर्वाद से अजमेर के इतिहास में यह स्वर्ण कलश आरोपित हुआ है ।

महाराज श्री के महान उपकार

महाराज श्री के उपकारों का थोड़ा भी वर्णन किया जावे तो सैकड़ों पेज भर जावेंगे । कुछ उपकार इस प्रकार हैं -

1. रात्रि भोजन त्याग
2. बफेट जीमने व जीमाने का त्याग
3. जुआ लाटरी का त्याग
4. दहेज का त्याग
5. नशीले पदार्थों का त्याग
6. गुटखा (पान पराग, रजनीगंधा, तम्बाकू) आदि का त्याग
7. सप्त व्यसन का त्याग
8. मिथ्या मान्यताओं का त्याग
9. 10 धर्मों का पालन आदि
10. अपने पूज्य जनों का पूर्ण विनय करना
11. अपने पूर्वाचार्यों द्वारा प्रकाशित साहित्य को घर-घर पहुँचाना ।

आपकी कृपा के प्रसाद से परम् पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा विरचित 24 ग्रन्थों का सकल विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों सकल मुनि संघों, प्रमुख जिनालयों, शोधकर्ता छात्रों एवं जो भी अध्ययन हेतु लेना चाहेंगे प्रकाशन हो रहा है । दानवीर महाभाग दातारों द्वारा राशि स्वीकृत हो गई है । महाराज श्री के इस उपकार का ही यह फल है कि यह अद्वितीय श्रावक संस्कार शिविर सम्पन्न हुआ व श्रावक संस्कार शिविर का महात्म्य है कि जयपुर में चूलगिरि की भाँति एवं इन्दौर में गोम्मट गिरि की भाँति अजमेर में एक पर्वतीय क्षेत्र का स्वप्न साकार हुआ ।

❑ ❑ ❑

(रिपोर्ट)

श्री कैलाशचन्द जी पाटनी, (संयोजक)
श्रावक संस्कार शिविर

परम पूज्य मुनिवर श्री सुधासागर जी महाराज ससंघ जब पदमपुरा में विराजमान थे तब हम आपके दर्शनार्थ गये थे । उस समय महाराज श्री ने चर्चा में ललितपुर में गत वर्ष चातुर्मास में आयोजित श्रावक संस्कार शिविर के बारे में जानकारी दी और उसकी महत्ता और उपयोगिता के सम्बन्ध में कहा । उसी समय से हमारी भावना बलवती हुई । कि महाराज श्री का चातुर्मास अजमेर में हो और हम गुरु के आशीर्वाद से एक विशाल शिविर का आयोजन कर सकें ।

हमारे महान पुण्योदय से प. पू. महाराज श्री का चातुर्मास यहाँ हुआ और हमें आपका तथा संघ का आशीर्वाद, मार्गदर्शन और सम्बल प्राप्त हुआ । इस विशाल श्रावक संस्कार शिविर को आयोजित करने के लिए समिति ने निर्णय लिया और मुझ जैसे अल्पज्ञ और अनुभवहीन व्यक्ति को यह भार सौंपा । सम्पूर्ण कार्य की व्यवस्था के लिए समिति ने उपसमिति का गठन किया तथा पर्युषण पर्व में दस दिवसीय शिविर का दिनांक 9-9-94 से 18-9-94 तक आयोजन करना तय किया । तदर्थ हमने शिविर का प्रचार प्रसार करने के लिए पत्रिका प्रकाशित कर सारे देश में भिजवाई । हमारे सौभाग्य से श्रेष्ठी श्री भागचन्दजी पहाड़िया पद्मावती मार्बल्स ने शिविर के लिए आर्थिक सहयोग देने की घोषणा कर हमारा उत्साह बढ़ाया ।

शिविर में मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र और दिल्ली आदि प्रदेशों के करीब 700 से अधिक शिविरार्थियों ने भाग लिया । हमने शिविर के सफल एवं सुविधापूर्वक संचालन के लिए आचार्य श्री ज्ञानसागर ग्रुप 45 से अधिक उम्र के, आचार्य विद्यासागर ग्रुप के 26 से 45 वर्ष की आयु और मुनि श्री सुधासागर ग्रुप 12 से 25 वर्ष की आयु के ग्रुप बनाये ।

शिविरार्थियों का दिन भर व्यस्त कार्यक्रम बनाया गया, जिसके अन्तर्गत प्रातः 3.45 पर उठना/प्रार्थना, बाद में शौच आदि से निवृत्त होकर 5.30 बजे ध्यान साधना करना, 6.30 बजे सामुहिक पूजन, 7.45 पर तत्वार्थ सूत्र का वाचन एवं अर्घ समर्पण, मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का प्रवचन 8.15 से 10 बजे भोजन के बाद 11.45 पर सामायिक आदि । उसके बाद 2.15 से कक्षायें जिसमें एक कक्षा मुनिवर स्वयं लेते थे । मध्याह्न 2.30 बजे क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी का प्रतिदिन तत्वार्थसूत्र का प्रवचन होता था । सांय क्षुल्लक श्री गम्भीर सागरजी प्रथमानुयोग पर आधारित विषयों पर प्रवचन करते थे । सायंकालीन की कक्षायें ब्र. श्री अजीतजी एवं बाहर से पधारे विद्वान डॉ. शीतलचन्द जी जैन, आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर और डॉ. अजितजी जैन, प्राध्यापक आगरा लेते थे । रात्रि में ब्र. श्री संजयजी के मार्गदर्शन में दसों दिन विभिन्न सफल सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया, जिसका संचालन श्री सुमतिचन्दजी जैन ने किया । बन्धुओं, मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि पूज्य श्री मुनि श्री के प्रवचनों का इतना मार्मिक असर हुआ कि शिविरार्थियों में से करीब 80 शिविरार्थियों ने शिविर के व्यस्त कार्यक्रम में भाग लेते हुए 5 से 10 दिनों के उपवास किये तथा इन व्रतों के दिनों में कई ने सिर्फ जल आदि त्याग कर महान पुण्यार्जन किया ।

शिविर के समापन के पूर्व धार्मिक ज्ञान एवं द्रव्य संग्रह द्वितीय व तृतीय अधिकार की परीक्षायें आयोजित की गई । जिसमें सभी शिविरार्थियों ने भाग लिया । प्रथम, द्वितीय, तृतीय पुरस्कार विजेताओं को पुरस्कृत करने का सौभाग्य प्राप्त किया श्री भागचन्दजी गदिया समिति अध्यक्ष ने । शिविरार्थियों के ठहरने की समुचित व्यवस्था की गई जिसमें आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप को छोटे धड़े की नसियांजी में ठहराया गया । श्री विमलचन्दजी सोगानी ने हमारे अनुरोध पर सहर्ष सुभाष बाग के ऊपर कोठी, जो पूर्व में भागचंदजी की कोठी के नाम से जानी जाती है में बाकी के 400 शिविरार्थियों के ठहराने, शौच स्नान की समुचित व्यवस्था कर महान आवास दान की भूमिका अदा की । हम उनके आभारी हैं । हमने समस्त शिविरार्थियों के भोजन की व्यवस्था के लिए घरों-घरों निमन्त्रण द्वारा भोजन की व्यवस्था की । इसमें समाज के करीब 75 परिवारों का सहयोग प्राप्त हुआ । वे भी धन्यवाद के पात्र हैं ।

हमने समस्त शिविरार्थियों के लिए सामुहिक सायंकालीन अल्पहार की व्यवस्था की । हमें खुशी है कि इसमें समाज के करीब 28-30 परिवारों ने उदारता-पूर्वक अर्थदान द्वारा सहयोग किया । शिविर के दौरान हमारे कुछ शिविरार्थी बन्धु अस्वस्थ भी हो गये । उनके इलाज के लिए तत्काल समुचित व्यवस्था की गई ।

शिविर में सबसे अधिक शिविरार्थी, ललितपुर (उ. प्र.) से आये ।

इनको ललितपुर से कोटा तक लाने व ले जाने का सम्पूर्ण व्यय भार श्रीमान शीतलचन्द जी अनौरावाले, ललितपुर (उ. प्र.) ने वहन कर देवशास्त्र गुरु के प्रति, जो अपनी अटूट श्रद्धा प्रकट की, उनके लिए हम उनका हार्दिक आभार प्रकट करते हैं । ऐसे ही कोटा से अजमेर लाने व ले जाने की यात्रा व्यवस्था का भार झांझरी ट्रांसपोर्ट के संचालकों ने वहन किया । इसके लिए हम उनके आभारी हैं । शिविर के दौरान शिविरार्थीयों का आचरण एवं व्यवहार इतना शालीन था कि वह सभी के लिए अनुकरणीय है । शिविर के दौरान मुनि श्री से ऐसी प्रेरणा मिली कि हजारों व्यक्तियों ने सप्त व्यसनों का त्याग किया व गुटखा जैसी भयंकर व्यसन का महाराज श्री ने नामोनिशान ही मिटा दिया । इससे समाज को बहुत बड़ा लाभ हुआ । महाराज श्री ने चमड़े की वस्तुओं के उपयोग को छुड़ा कर हमारे समाज और देश की रक्षा की । हम सदैव उनके ऋणी रहेंगे । समापन एतिहासिक जूलूस में जो अनुशासनबद्धता व अलौकिक छटा थी । वह अजमेर नगर को गौरवान्वित कर रही थी । सड़कों पर खड़े होकर हजारों नर नारी मुक्त कंठ से इन संस्कारों की प्रशंसा कर रहे थे ।

अन्त में समाज का बहुत आभारी हूं जिनके हर प्रकार के सहयोग से इस शिविर की समुचित व्यवस्था कर सका व अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं का भी बहुत आभारी हूं । मैं श्री जैन वीर दल, श्री दिगम्बर जैन संगीत मण्डल, श्री जैन औषधालय, श्री पंचायत छोटा धड़ा, बड़ा धड़ा पंचायत, पंचायत गोधों का धड़ा एवं नया धड़ा पंचायत के पदाधिकारियों एवं समिति के पदाधिकारियों तथा अन्य महानुभावों का भी अत्यन्त आभारी हूं, जिनके सहयोग से मैं पूर्ण व्यवस्था कर सका । इस बीच मुझसे शिक्षकों, शिविरार्थियों एवं महिलाओं के प्रति व्यवस्था बनाने में कोई अवज्ञा हो गई हो तो मैं हृदय से क्षमाप्रार्थी हूं ।

मैं बहुत ही विनम्रतापूर्वक परमपूज्य गुरु श्री सुधासागर जी महाराज के चरणों में नमन करता हूं और अपने अपराधों के लिए करबद्ध क्षमा चाहता हूं । पूज्य दोनों क्षुल्लकजी महाराज एवं अन्य त्यागीगण भी मेरी त्रुटियों के लिए क्षमा करें । अन्त में *हमारे गणमान्य अतिथियों का हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए शिविरार्थी बन्धुओं के प्रति अपनी मंगलकामना व्यक्त करता हुआ* उनके उज्जवल भविष्य की वीर प्रभु से कामना करता हूं ।

शिविर काव्य

है घड़ी धन्य है धरा धन्य यह अनुपम अवसर आया है
श्री सुधा सिन्धु ने अजयमेरू में अद्भुत शिविर लगाया है
है भाग्य सभी हम भक्तों का जो ऐसा अवसर पाया है

श्री सुधा सिन्धु के चरणों में आकर के शीश झुकाया है
है अनुपम अवसर यह देखो, गुरु से ज्ञान चरित्र भी पाया है
आचार्य ज्ञानसागर जी की महिमा को गुरू ने गाया है ।

श्री जैन वीर दल के कार्य के लिये धन्यवाद सहित

है उपकार सभी उन वीरों का जो होते ऑंसू हाथों में
फिर ही गये तैयार साथी सब जिन दर्शन को पाने में
वीरों ने सम्मान दिया जो अनुपम शोभा उसकी है
उत्साही बने धर्मज्ञ बने रहे बस यही भावना सबकी है ।

प्र. अध्यक्ष - अ. भा. दि. जैन युवा संघ
सिंघई विजयकुमार धुर्रा M.Com
जनसीपार्क अशोक नगर (M.P.)

प.पू. मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ससंघ का अजमेर नगर प्रवेश पर भव्य स्वागत

प्रस्तुतिः श्री दि. जैन समिति

गत लगभग छह माह के अथक प्रयासों के फलस्वरूप अजमेर नगर की दिगम्बर जैन समाज की मनोकामना का प्रथम चरण पूर्ण हुआ जब कि दिनांक 16.7.1994 को प. पू. संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम् शिष्य आध्यात्मिक संत 108 श्री सुधासागर जी महाराज ने अपने यशस्वी संघ क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी, धैर्यसागर जी महाराज एवं बाल ब्रह्मचारी श्री संजय जी के साथ नगर में प्रात: 6 बजे प्रवेश किया ।

नगर प्रवेश करते समय ही मुनिसंघ ने सर्वोदय नगर स्थित श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर जी के दर्शन किए । वहाँ से श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन दनगसिया के सिविल लाइन्स स्थित निवास स्थान "राज भवन" पर पदार्पण हुआ । पूर्व घोषित कार्यक्रम के अनुसार यहीं से स्वागत जुलूस का प्रारम्भ होना था । अतएव नगर की दिगम्बर जैन समाज के महानुभावों का वहाँ प्रात: से ही तांता लग गया । कार्यक्रमानुसार स्वागत जुलूस प्रात: 7 बजे राजभवन से प्रारम्भ हुआ । जुलूस के आगे 8 ढोल, झंडे व जन समूह आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एवं मुनिराज श्री सुधासागर जी महाराज की जय जयकार करते हुए चल रहा था । शोभा यात्रा का साढ़े चार किलो मीटर लम्बा मार्ग 108 तौरण द्वारों एवं स्वागत कर्त्ताओं के विभिन्न बेनरों से सजा हुआ था । यह स्वागत जुलूस सिविल लाइंस होकर टूरिस्ट बंगला, कलेक्ट्रेट चौराहा, कचहरी रोड़, स्टेशन रोड़, घंटाघर, मदार गेट, जी. पी. ओ. सीमंधर दिगम्बर जैन मंदिर होता हुआ नया बाजार पहुँचा । नया बाजार में विशाल जन समूह ने संघ का भाव भीना स्वागत किया । सारे नया बाजार को बंदनवारों से सजाया गया । चौपड़ पर कृष्णा बैंड ने खड़े रहकर मुनि श्री एवं संघस्थ त्यागियों का सुमधुर ध्वनि में अभिवंदन किया । महाराज श्री जब चौपड़ तक पहुँचें तब भारी जन समूह के साथ राजस्थान विधान सभा के मुख्य सचेतक श्री महावीर प्रसाद जी जैन ने स्वागत किया । जुलूस में अजमेर नगर सहित, ब्यावर, किशनगढ़, नसीराबाद, जयपुर, सांगानेर के हजारों धर्मावलम्बी महानुभाव भारी उत्साह के साथ मंगल गान करते हुए चल रहे थे । जगह जगह संघ की आरती उतारी गई सारे स्वागत मार्ग के दोनों ओर अपार जनसमूह ने हर्षित होकर संघ का स्वागत किया । इसी के साथ प्रकृति ने भी हर्षोल्लास होकर रिमझिम बरसात के रूप में नृत्य कर स्वागत किया ।

प्रात: 9.30 बजे अपार जन समूह के साथ महाराज श्री ने संघ के साथ सेठ साहब की नसियाँ जी में मंगल प्रवेश किया जहाँ नसियाँ जी के ट्रस्टी श्री प्रमोद चन्द जी सोनी ने सपरिवार संघ की भावभीनी अगवानी की ।

नसियाँ जी में पहुँचने के पश्चात् जुलूस अभिनंदन सभा में परिवर्तित हुआ । मंगलाचरण श्री सुशील पाटनी ने किया। दिगम्बर जैन समिति के स्वागताध्यक्ष श्री प्रमोदचन्दजी सोनी ने मुख्य अतिथि माननीय श्री महावीर प्रसाद जी जैन मुख्य सचेतक राजस्थान विधान सभा का माल्यार्पण कर स्वागत किया । इस अवसर पर सांगानेर समाज के अध्यक्ष श्री मान् भागचन्द्र... [illegible] कुमार जी पाण्ड्या तथा अन्य श्री मानों का विविध महानुभावों द्वारा सम्मान किया गया । सभा को सम्बोधित करते हुये मुख्य अतिथि श्री महावीर प्रसाद ने कहा कि राजनीति पर भी धर्म का प्रभाव आवश्यक है , वरना राजनीति निरकुंश होने का डर बना रहेगा ।

मुनि सुधासागर महाराज ने अपने मांगलिक संबोधन में अपार जनसमूह को मार्ग दर्शन दिया । 'आत्मा सबसे बड़ा सत्य है, और इसे प्राप्त करने के लिए अध्यात्म मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक है । निमित्त और उपादानकी एकरूपता आत्म लक्ष्य प्राप्त करने का अनुभवित मार्ग है । क्योंकि समाज, देश, नैतिकता व धर्माचरण के मार्ग से ही उन्नति व आत्मोन्नति के कक्ष को प्राप्त करने का अनुभवित मार्ग है । क्योंकि समाज, देश नैतिकता व धर्माचरण, के मार्ग से ही उन्नति व आत्मोन्नति के कक्ष को प्राप्त कर सकता है । जब तक हम अपने अन्दर नहीं देखेंगे तब तक आत्मतत्व प्राप्त होना संभव नहीं है । साधु का निमित्त प्राप्त कर गृहस्थ जनों को अपने आत्म लक्ष्य प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए । यही साधु व उनके चातुर्मास की उपयोगिता है ।

अन्त में कपूरचन्द जैन गदिया... [illegible] ने जन समुदाय को धन्यवाद दिया ।

❑❑❑
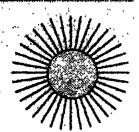
रक्षा बन्धन महोत्सव

रक्षा सूत्र का शुभारम्भ

दिनांक 21.8.1994

परम् पूज्य महाराज श्री ने रक्षा बन्धन के पुण्य अवसर पर सारी ऐतिहासिक कथा विस्तार से बता कर उसके अन्दर आने वाले सारे रहस्यों को खोल कर सकल समाज को उपकृत किया । आपने बतलाया कि जैनों की धार्मिक परम्परा यह है कि इस दिन 700 मुनिराजों की रक्षा हुई थी । उसी की स्मृति स्वरूप प्रत्येक जैन पुरुष व महिला को जिन मन्दिर जी में रक्षा सूत्र इस संकल्प के साथ बांधना और बंधवाना चाहिए कि मैं देव शास्त्र गुरु की रक्षा का संकल्प करता हूँ ।

प्रातः से ही से सेठ साहब की नसियाँ जी तथा छोटे धड़े नसियाँ जी में रक्षा सूत्र बंधवाने हेतु जन समूह उलट पड़ा। हजारों पुरुष व महिलाओं ने पावन रक्षा सूत्र उक्त संकल्प के साथ बांधे तथा प्रतिवर्ष जिनालय में बंधवाने का संकल्प किया। इसी के साथ ही साथ जैन धर्म एवं संस्कृति, जिनालय तथा उनकी सम्पत्तियों व जिन भक्तों की रक्षा करने का अपूर्व संकल्प कर स्थानीय जैन समाज ने रक्षा बंधन महोत्सव को सार्थक किए जाने का अनुकरणीय कार्य किया ।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चारित्र चक्रवर्ती

आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज का 40वाँ समाधि दिवस

दिनांक ७.९.९४

लेखक: कपूरचन्द जैन

भाद्र पद शुक्ला दूज दिनांक 7-9-94 बुधवार को श्री मद् परम् पूज्य, प्रातः स्मरणीय, त्रिकाल वन्दनीय, दिगम्बर रत्न, जिनायतन एवं जिनवाणी संरक्षक, आगमोक्त मुनिमार्ग संस्थापक, श्रमण शिरोमणि, योगेन्द्र तिलक, समाधिसम्राट, सम्यक् विलय, आध्यात्म सूर्य, चारित्र चक्रवर्ती, स्वर्गीय आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज का 40वाँ समाधि दिवस अत्यन्त भक्ति पूर्वक मनाया गया। श्रीमान् गुरू भक्त एवं समर्पित समाजसेवी श्री टीकमचन्द जी पाटनी साथियों सहित भक्तिपूर्वक आचार्य श्री की पूजन की ।

श्रीमान् नवरतनमल जी पाटनी ने आचार्य श्री के भव्य चित्र का अनावरण किया । परम् पूज्य मुनिराज श्री सुधासागर जी महाराज ने अपनी ऐतिहासिक व स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य व प्राणीमात्र को आह्लादित करने वाली विनम्र श्रद्धांजली समर्पित की । उनके द्वारा प्रदत्त श्रद्धांजली प्रत्येक जैन मात्र के लिए पाथेय है । महाराज श्री ने विशद विवेचन करते हुए कहा कि - पिछले 600, 800 वर्षों में इस भारत वसुन्धरा में यशस्वी भट्टारक महान् साहित्यकार, अध्यात्मवेत्ता विशिष्ट पंडित प्रवर हुए । जिन्होंने अद्वितीय शास्त्रों की रचना की अध्यात्म का भंडार भरा । एवं पंडित आशाधर जी ने तो मुनिराजों का अनगार-धर्मामृत ग्रन्थ तक लिखा । अध्यात्म वेत्ता पं बनारसीदास जी, कविवर द्यानतराय जी, छहढालाकार पं. दौलतरामजी सहि अनेकों विद्वान हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं में परम् दिगम्बर मुनि स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया एवं दिगम्बर मुद्रा के दर्शन नहीं होने का अत्यधिक दुःख प्रकट किया एवं निर्ग्रंथ स्वरूप के दर्शनों की कामना अंतरंग से की । किन्तु एक भी उनमें से यथाजात रूप को धारण करने में समर्थ नहीं हो सके । उत्तर भारत में तो पूर्णतः ही निर्ग्रंथ मुद्रा के दर्शन का अभाव हो गया था । दक्षिणी भारत में यदाकदा गुफाओं में मैं बहुत की कम गिनती में वो जहाँ भी थे । संघ व्यवस्था में न होकर एक-एक मुनिराज अलग-अलग विराजते थे । वहाँ भी किन्हीं में यह पुरुषार्थ नहीं हुआ कि शास्त्रोक्त आगम मार्ग के अनुसार आहारचर्या, स्वतन्त्र विहार, धर्मोपदेश संघ व्यवस्था का अनुपालन करते ।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज ही इस अत्यन्त लम्बी अवधि के पश्चात् प्रथम दिगम्बर अगमोक्तचर्या पालक मुनिराज हुए, जिन्होंने अपने दीक्षा प्रदाता तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था संचालक उपाध्याय वर्ग को आहार के समय लंगोट या लंगोटनुमा वस्त्र पहनकर जाने को पूर्णतः मना कर दिया एवं कई दिनों के उपवास करने के पश्चात् आगम आज्ञा के

अनुसार चर्या होने पर ही आहार किया । इसलिए उन श्रमण सूर्य, प्रातः स्मरणीय महाराज श्री का सकल विश्व पर महान् उपकार है । यावत् पंचम काल उनका मंगल स्मरण कर कृतज्ञता प्रकट करेगा । उन महाभाग मुनि पुंगव ने शास्त्रोक्त संघ की स्थापना की । वे यदि नहीं होते तो न तो हमारे दादगुरू श्री ज्ञानसागर जी महराज हुए होते और न मैं आज छोटा मुनि आपके यहाँ चातुर्मास करता मिलता ।

उन महाभाग आत्मजयी आचार्य श्री ने जहाँ भी नग्न मुद्रा के विहार पर शासकीय रोक थी उसका अपने तप प्रताप से सदा सर्वदा के लिए उन्मूलन कर दिया । दक्षिणी भारत से पूर्वी भारत, उत्तरी भारत तथा पश्चिमी भारत में विहार कर सर्वत्र दिगम्बर मुनि मार्ग को खोल दिया । सबसे बड़ा उपकार और क्या हो सकता है ? हे भव्य जीवो ! इस पंचम काल में तीर्थंकर की वंदना करने का भाव जगे तो तुरन्त ही चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज को तीर्थंकर तुल्य मानकर उनकी वंदना कर लेना । आप भी भव सागर से तिर जाओगे ।

सिंह निक्रीडित व्रत कर जिस में क्रम से पन्द्रह उपवास तथा पुनः 14 उपवास से प्रारम्भ कर 29 दिन में एक आहार करने वाले वे श्रेष्ठ इन्द्रिय विजयी धन्य हैं । निश्चित ही वे तीन भव या अधिक से अधिक सात भव में निर्वाण को प्राप्त होंगें। जो भी उनके इन महान् उपकारों को धूमिल करने का प्रयास करते हैं तथा इन आचार्य श्री के पूर्व उन्हीं वर्षों में या उनसे कुछ पूर्व उन जैसे किन्हीं को प्रतिभाशाली बताकर इन महाराज के यश को पीछे धकेलना चाहते हैं । उन्हें कुदरत कई भव पीछे धकेल देगी । भव्य जीवों आत्म कल्याण चाहते हो तो उठते ही उन आचार्य परमेष्ठी का नित्य स्मरण कीजिए । "मैं ऐसे महान् परोपकारी संत के चरण कमलों में नत मस्तक होता हुआ हुआ उन महापुरुष ने जैसी अमर समाधि प्राप्त की वैसी समाधि मुझे प्राप्त हो ।" महाराज श्री की यह भव्य आत्मीय श्रद्धांजली सुन सकल श्रोतागण भाव विभोर हो गये और आचार्य श्री की जय-जय कार से नभ मंडल गूंज उठा ।

वर्षायोग स्थापना समारोह

दिनांक २१-७-१९९४

राकेशकुमार गदिया 'बंटी' अजमेर

दिनांक 21 जुलाई सन् 1994 को प्रभात की मंगलमयी बेला में परम् पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज क्षुल्लक द्वय श्री गम्भीर सागरजी, धैर्यसागरजी एवं ब्रह्म. संजयजी ने शास्त्रोक्त विधि से सेठ साहब की नसियाँ जी में माननीय श्री देवेन्द्र भूषणजी गुप्ता जिलाधीश एवं ओंकार सिंह जी लखावत अध्यक्ष नगर सुधार न्यास अजमेर के आतिथ्य तथा करीबन 25 हजार नर-नारियों की उपस्थिति में अजमेर में चातुर्मास स्थापित किया ।

वर्षा योग स्थापना के कार्यक्रम का शुभारम्भ श्री भागचन्द गदिया ने झंडा रोहण एवं दीप प्रज्वलन द्वारा किया । उसके बाद श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन ढिलवारी द्वारा मंगल कलश स्थापना का कार्य किया गया । श्री चिरंजीलालजी गदिया ने आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के चित्र का अनावरण किया तथा श्री भागचन्द जी पहाड़िया ने मुनि श्री शास्त्र भेंट किया । इसी क्रम में श्री प्रकाचन्द जी जैन ने क्षुल्लक गम्भीर सागर जी को, श्री जोगी जैन ने क्षुल्लक धैर्यसागर जी को तथा श्री छीतरमलजी गंगवाल ने ब्रह्मचारी संजय कुमार जी शास्त्र भेंट किए ।

उपस्थित विशाल जन समुदाय को संबोधित करते हुए जिलाधीश श्री देवेन्द्र भूषण जी गुप्ता ने आशा व्यक्त की कि अजमेर जिले का जनसमुदाय चातुर्मास के दौरान महाराज श्री के सानिध्य में धर्म प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होगा तथा अहिंसा - नैतिकता के मार्ग का अनुसरण कर आत्मोन्नति के साथ-साथ देश की स्थिरता एवं एकता को मजबूत करेगा । जिलाधीश महोदय ने प्रशासन की तरफ से स्थानीय जैन समाज को आश्वासन दिया कि महाराज श्री का चातुर्मास निर्विघ्न सम्पन्न होगा ।

दिगम्बर जैन समाज की ओर से चातुर्मास निर्विघ्न सुसम्पन्न हो इसे हेतु सर्व श्री प्रमोदचन्दजी सोनी, भागचन्द जी गदिया, कपूरचन्द जी जैन एवं कुमुदचन्द जी सोनी ने श्रीफल भेंट किया ।

चातुर्मास स्थापना सम्बन्धी समस्त क्रियाएँ डॉ. शीतलचन्द जी जैन द्वारा की गई । इस अवसर पर डॉ. साहब ने कहा कि अजमेर नगर में यह चातुर्मास ऐतिहासिक होगा । चातुर्मास के दौरान आचार्य शांतिसागर महाराज समाधि दिवस, कवि सम्मेलन, शाकाहार सम्मेलन तथा वीरोदय महाकाव्य पर संगोष्ठी आदि कार्यक्रम सुसम्पन्न होंगे । अन्त में मुनि श्री ने अपने मंगल संदेश में भी सभी श्रद्धालुओं को कहा कि भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को स्वीकार व पालन करके न केवल हम बल्कि सारा विश्व सुख, शांति संतोष, प्रेम व भाई चारे का जीवन यापन कर सकता है । ❑❑❑

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

का त्रिदिवसीय

द्वादशम दीक्षा जयंती महोत्सव

दिनांक २२.९.९४ से २४.९.९४

अशोक बज, अजमेर

परम पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज का त्रिदिवसीय द्वादश दीक्षा समारोह दिनांक 22.9-94 को बड़ा धड़ा नसियाँजी के विशाल प्रांगण में विशाल सुसज्जित खचाखच भरे हुए मंडप में श्रीमान् मदनलालजी गोधा बम्बई की अध्यक्षता में मनाया गया। विशिष्ट अतिथि श्रेष्ठी रत्न श्री निर्मलकुमार सेठी (अध्यक्ष भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा) तथा समाज रत्न दानवीर श्रेष्ठी श्री शिखरचन्द जी पहाड़िया बम्बई थे । आमंत्रित मुख्य अतिथियों में सर्व श्री कंवरी लाल जी बोहरा (कालू) एवं शीतलचन्द जी जैन (आनोरा वाले) थे । सभी अतिथियों का विधिवत सामाजिक सम्मान शाल ओढ़ाकर तथा मुनि श्री के चित्र भेंटकर माल्यार्पण के साथ किया गया ।

मुनि श्री की पूजन श्री प्रेमचन्द जी कैलाचन्द जी गंगवाल ने की । महासभा शताब्दी समारोह के कोषाध्यक्ष कुचामन निवासी श्री शिखरचन्द पहाड़िया (बम्बई) भी इस अवसर पर उपस्थित थे । समाज की ओर से श्री भागचन्द गदिया ने शाल ओढ़ाकर उनका अभिनन्दन किया । श्री पहाड़िया ने आचार्य विद्यासागर जी के चित्र का भी अनावरण किया ।

शताब्दी समारोह ध्रुव फंड व पाली जिला प्रकोष्ठ के अध्यक्ष आनन्दपुर कालू निवासी श्री कंवरी लाल बोहरा का भी इस अवसर पर मैसर्स किरण बैटरी के संचालक श्री ज्ञानचन्द जैन ने माल्यार्पण कर स्वागत किया । श्री नवीन सौगानी के हाथों मुनि श्री सुधासागर के चित्र का अनावरण कार्य सम्पन्न हुआ । 'सल्लेखना दर्शन' पुस्तक का विमोचन बड़ा धड़ा पंचायत के अध्यक्ष श्री विनय सौगानी द्वारा किया गया ।

श्री निर्मलचन्द जी सोनी ने भी मुनि दीक्षा पर अपने विचार व्यक्त किये । एडवोकेट श्री कपूरचन्द जैन ने युवा कवि श्री पंकज को व ललितपुर के मुन्नालाल शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य को श्री निहालचन्द जैन व कैलाशचन्द पाटनी ने माल्यार्पण कर शाल ओढ़ाया ।

श्री नवीनकुमार जैन ने मुनि के चरणों में विनयांजलि गीत प्रस्तुत किया जिसकी अपार जन समूह ने मुक्त कंठ से प्रशंसा व्यक्त की । इसी क्रम में श्री नवरतमल पाटनी, ललितपुर के श्री पंकज, अशोक नगर के विजय कुमार ने कविता के रूप में अपने भाव व्यक्त किये जिन्हें सुनकर उपस्थित समूह ने करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया । प्रोफेसर सुशील पाटनी ने भी मुनि श्री के प्रति अपने उदगार भजन के माध्यम से प्रस्तुत किए । इस अवसर पर श्री भागचन्दजी टीकमचन्दजी गदिया ने मुनि शअरी की आरती की । समारोह का संचालन श्री शांतिलालजी बड़जात्या ने किया ।

इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित हुये भारत व . दि. जैन महासभा के केन्द्रीय अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी ने अपने सम्बोधन में दि. जैन महासभा के शताब्दी समारोह के आयोजन से अवगत कराया और कहा कि इस अवसर को अविस्मरणीय बनाने के लिए महासभा के चारित्र रथ के संचालन की योजना को क्रियान्वित करने का मानस बनाया है और इसके लिये अजमेर से वे इसका शुभारम्भ करना चाहते हैं ।

श्री सेठी ने कहा कि चारित्र रथ का उद्देश्य जैसा कि इसका नाम है श्रावकों व अन्य में जीवन को संयमित बनाने की भावना का प्रसारण करना है । जैन व अजैन जो भी जैन संस्कारों से जुड़ेंगे, त्याग करेंगे उन्हें 'जैन वीर' की उपाधि से विभूषित किया जाएगा ।

श्री सेठी ने अवगत कराया कि महासभा के सदस्यों की ऐसी भावना है कि स्व. सेठ श्री भागचन्द सोनी का महासभा को अनवरत सहयोग मिला, उन्हीं की नगरी जहाँ मुनि सुधासागर जी विराज रहे हैं, के मार्ग निर्देशन में रथ का मॉडल व उसके संचालन की रूपरेखा का निर्माण हो । सम्पूर्ण भारत में रथ के द्वारा चारित्र की महिमा का प्रसार किया जाएगा । इस रथ के द्वारा राशि संकलित करने का कोई प्रयोजन नहीं है ।

ब्रह्मचारी श्री संजय जी द्वारा भी मुनि श्री के सम्मान में विनयांजलि के दो शब्द व्यक्त किये गये ।

क्षुल्लक श्री धैर्यसागरजी ने अपनी भावांजलि में कहा कि मुनि श्री सुधासागरजी के गुणों की व्याख्या को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता संयमधारी के गुणों का गुणगान तो केवली भगवान् ही कर सकते हैं । इस मुद्रा में कितना आनन्द है यह तो मुनि श्री ही अवगत करवा सकते हैं ।

जबसे आपने यह मुद्रा धारण की है प्रतिदिन ही आप का दीक्षा दिवस है ।

संघस्थ क्षुल्लक श्री गंभीरसागर ने दीक्षा दिवस पर अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये - 'संयम संयम सब कोई कहे संयम धरे ना कोय, जो नर संयम को धरे सो नर से नारायण होय ।' आपने आगे कहा कि 'संयम से जिसकी रिश्तेदारी असंयम से क्यों बात करेगा, फूलों से जिसकी साझेदारी कांटो से क्यों बात करेगा ।'

मुनि श्री सुधासागर जी ने कहा कि गुरु कृपा के बिना कोई भी अपने जीवन में इस मंजिल तक नहीं पहुँच सकता जिसकी कि वह कामना करता है । गुरुवर श्री विद्यासागर की बदौलत ही उन्हें सम्यग् दर्शन की प्राप्ति हुई है और जीवन को मोक्ष मार्ग की ओर ले जाने का रास्ता आचार्य श्री विद्यासागर जी ने ही दिखाया था ।

आपने कहा कि आज का दिन गुरु कृपा का ही दिन है स्मरण आता है मुझे वह दिन जब मैंने मुनि दीक्षा ग्रहण की थी, क्या परम् आलौकिक अनुभूति का दिन था, उस दिन के आनन्द का कोई पार नहीं । इस पंचम काल की चकाचौंध में ही मुझे यह दिन नसीब हुआ था जब मैं फूला नहीं समाया था । कई भवों में कामना के बाद ऐसे सुखद समय की प्राप्ति होती है ।

आपने कहा कि गुरु वह शिल्पी है जो पत्थर में मूर्ति के स्वरुप की अनुभूति करता है । गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी भी एक ऐसे ही दर्पण हैं जो जैसे भाव लेकर उनके सामने जाता है उन्हें वे वैसा ही दिखाई देते हैं । न जाने उन्होंने मुझ में क्या देखा और पत्थर को मूर्ति का स्वरुप प्रदान कर जो आकार दिया । इससे निराकार के भी मुझे दर्शन हो गये ।

आचार्य विद्यासागरजी कहते हैं कि दिगम्बरत्व स्वयं अतिशय है और जो दीक्षा लेता है वह तीर्थ बन जाता है ।

आपने कहा कि गुरु तो बीजारोपण किया करते हैं कैसी फसल उगाते हैं यह तो दीक्षार्थी जाने । समूचे भारत में दिगम्बरत्व का डंका बजाने में, दिगम्बर मुद्राओं के दर्शन का लाभ उपलब्ध करवाने में आचार्य श्री विद्यासागरजी की बहुत बड़ी देन है ।

शाकाहार ही मनुष्य का आहार है

प्रस्तुतिः पवन गदिया

मुनि श्री दीक्षा दिवस के त्रिदिवसीय आयोजन के दूसरे दिन 23 सितम्बर को बड़े धड़े की नसियाँ के प्रागण में 'शाकाहार' पर प्रवचन हुआ । मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने कहा कि शाकाहार ही मनुष्य का आहार है कोई भी जीव जन्म से व स्वभाव से मांसाहारी नहीं होता लेकिन उसके बाद में डाले जाने वाले संस्कार ही उसे मांसाहारी बनाते हैं ।

आपने कहा कि हमारे किसी धर्म में मांसाहार की बात नहीं कही गई है लेकिन लोगों ने शास्त्रों में लिखी पंक्तियों का गलत अर्थ लगाकर मांसहारी की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है जो गलत है । जैन ब्राह्मण, वैष्णव तो मांसाहारी कहलाते नहीं हैं लेकिन क्षत्रियों के लिये भी किसी शास्त्र में मांसाहार की बात नहीं कही गई है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम जो सभी धर्मों के आदर्श है, ने क्षत्रिय होते हुये भी कभी मांसाहार नहीं किया । मांसाहार किसी भी दृष्टि से मनुष्य का आहार नहीं है, जो मांसाहारी होते हैं, वे भी पूर्ण रुप से बिना शाकाहार के नहीं रह सकते । इस संसार में हर प्राणी मात्र को जीने का हक है, अपनी उदरपूर्ति के लिये किसी का वध करके भक्षण किया तो ऐसे व्यक्तियों को नरक में जाने से कोई नहीं रोक सकता तथा आने वाले भव में ऐसी ही यातना का उन्हें भी शिकार होना है । प्रकृति के विरुद्ध किया गया कोई भी कार्य फलदायक नहीं हो सकता, इसलिये आदर्श जीवन के लिये हमें भारतीय धर्मों के आदर्श पुरुषों के जीवन का अनुसरण करना चाहिये ।

कार्यक्रम का संयोजन प्रो. श्री सुशील पाटनी द्वारा किया गया । इस अवसर पर छोटा धड़ा पंचायत के मंत्री श्री घीसूलाल पाटनी ने शाकाहार साहित्य को वितरित करने के अलावा छोटा धड़ा नया बड़ा नसियाँ में लगाई गई प्रदर्शनियाँ आम नागरिकों के आकर्षक का केन्द्र बनी हुई हैं ।

शाकाहार प्रदर्शनी में जैन जागृति एवं श्री वीर [illegible] ललितपुर द्वारा सजीव झांकियों का प्रदर्शन किया । श्री नरेन्द्र कुमार जैन उर्फ छोटू पहलवान ललितपुर के हैरत अंग्रेज कारनामें दिखाए गए जिससे यह ज्ञात हो सके कि शाकाहारी किस प्रकार अपने पौरुष एवं बल द्वारा संयमित ढंग से कार्यकलाप कर सकते हैं । श्री विद्यासागर परिषद् ललितपुर, अहिंसा मानव कल्याण अजमेर एवं श्री कैलाशचन्दजी चौधरी भीलवाड़ा द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में भी विशेष चित्रों का प्रदर्शन किया गया ।

आध्यात्मिक कवि सम्मेलन

दिनांक २४-९-१९९४

राजेन्द्र ढिलवारी

परम् पूज्य सुधासागर जी महाराज के द्वादश दीक्षा जयंती महोत्सव के त्रिदिवसीय कार्यक्रम के अन्तर्गत दिनांक 24.9.1994 को विराट आध्यात्मिक कवि सम्मेलन बड़े धड़े की नसियाँजी में सुसम्पन्न हुआ । यह सम्मेलन श्री राजेन्द्र कुमार जी ढिलवारी के संयोजकत्व में सुसम्पन्न हुआ । यह कवि सम्मेलन दो सत्रों में हुआ । दोनों सत्रों का संचालन श्री अजितकुमारजी जैन एडवोकेट जबलपुर ने किया ।

कवि सम्मेलन का प्रथम सत्र मध्याह्न 2 बजे से सायंकाल 6 बजे तक प. पू. मुनि सुधासागरजी महाराज के पावन सानिध्य में श्री राकेश जी जबलपुर के द्वारा प्रस्तुत मंगलाचरण से हुआ । इस कवि सम्मेलन में अखिल भारतीय स्तर के करीब 23 कवियों ने भाग लिया । ब्रह्मचारी संजय जी पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागरजी एवं मुनिराज सुधासागर जी महाराज ने भी कविता पाठ किया ।

कवि सम्मेलन में भाग लेने वाले सर्व श्री मिश्रीलालजी जैन गुना, सरोजकुमार जी जैन इंदौर चन्द्रसेन जी जैन भोपाल, सुन्दरलालजी जैन, पटेरवाले, ज्ञानचन्दजी जैन, ब्यावर, राकेश कुमारजी जैन, जबलपुर, डॉ. सुनीता जैन-दिल्ली, कैलाश तरल - उज्जैन श्रीमती किरण भारती, बम्बई, सुरेश वैरागी - मंदसौर, वीरेन्द्र जैन बडवाह, रिषभकुमार जैन समैया सागर, श्रेयांस मोदी मवानगर जबलपुर, निर्मलजी जैन सागर, विनोद कुमार जी जैन नयन सागर, शांतिस्वरुप जी जैन कुसुम, बडौत, राजेन्द्र अनुरागी, श्रीमती निर्मलाजी पाड़या अजमेर, प्रसन्न कुमार जी सेठी जयपुर, अजितकुमार जी जैन जबलपुर, गिरीश चौहान कोटा, संदीप सत्तन जबलपुर, आशीष 'अनल' लखनऊ आदि कविगण थे ।

आगुन्तक कवियों का दिगम्बर जैन समिति के अध्यक्ष कार्याध्यक्ष एवं महामंत्री, संयोजक सर्व श्री भागचन्दजी गदिया, कपूरचन्दजी जैन कुमुदचन्दजी सोनी एवं राजेन्द्र कुमार जी ढिलवारी ने माल्यार्पण शाल एवं प्रशस्तिफल भेंट कर सम्मानित किया ।

प्रातःकालीन धर्मसभाएँ

ज्ञानचन्द जैन, केसरगंज-अजमेर

परम् पूज्य सुधासागर जी महाराज ससंघ का अजमेर नगर में दिनांक 16.7.1994 को मंगलमय पदार्पण हुआ । दिनांक 16.7.1994 से मंगलविहारी की तिथि तक अनवरत रूप से प्रातःकालीन धर्म सभाएँ प्रातः 8 बजे से प्राम्भ होती थी । इन धर्म सभाओं की अद्भुत छटा तो अद्वितीय एवं कल्याणकारी थी । यह चातुर्मास देव माया की तरह हुआ । अनेक बिन्दुओं पर प्रथम बार प्रकाश डाला गया । इन सबके स्रोत महान दार्शनिक बेजोड़ सत्यता, उत्कृष्ट चारित्र, भद्रता, प्राणीमात्र के कल्याण के इच्छुक प्रभावशाली श्रेष्ठ शैली के श्रेष्ठ प्रवचनकार परम् पूज्य मुनिराज 108 श्री सुधासागर जी महाराज हैं । आप अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी है । सम्यक्त्व आपका इतना दृढ़ है कि आगम विरुद्ध किसी भी बात को एक क्षण केलिए भी प्रोत्साहन नहीं दिया । एकान्तवाद की गलत धारणाओं को पूर्णतः निर्मूल कर देने में आप धन्वन्तरी वैद्य हैं ।

इन धर्मसभाओं में अजमेर ही नहीं वरन् अजमेर अंचल के जैन बंधुओं सहित अनेक गणमान्य महानुभाव प्रवचन प्रारम्भ होने के 15 मिनट पूर्व आकर अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लेते थे । पूर्णतया अनुशासित धर्मसभा ने परम् पूज्य महाराज श्री के णमोकार महामंत्र के उच्चारण के साथ कर-बद्ध होकर एक स्वर व लय में महामंत्र बोलकर अपना जीवन धन्य किया । धर्मसभा का अनुशासन देखते हुए बनता था । एक पिन की भी आवाज नहीं होती थी ।

संयस्थ त्यागियों की तपस्या, साधना गृहस्थों को सुसंस्कारित करने की प्रेरणा प्रातःकालीन नियमित धर्मसभा का आयोजन तथा उसमें प. पू. श्री सुधासागरजी महाराज के प्रवचनों की धूम सेठ साहब की नसियाँजी के बाहर निकलकर अजमेर ही नहीं वरन् पूरे जिले व प्रान्त में फैलने लगी । प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी । श्री दिगम्बर जैन सिद्धकूट चैत्यालय टेम्पल ट्रस्ट तथा सोनी परिवार ने बढ़ती हुई श्रद्धालुओं व श्रोताओं की भीड़ के अनुसार बैठने की व्यवस्था करने में कोई कसर नहीं छोड़ी । लेकिन सभी व्यवस्थाओं को महाराज श्री के प्रवचनों से प्रभावित उमड़ती श्रद्धालुओं की भीड़ ने ध्वस्त कर दिया । और अन्ततः फिर क्लोज सर्किट टी. वी. लगाकर श्रोताओं को जहाँ तहाँ स्थान था वहाँ-वहाँ पर बैठने की व्यवस्था करनी पड़ी ।

यह प्रथम अवसर था जब मुनि श्री प्रवचनों को सुनने के लिए जैनेतर बंधुओं की भी निरन्तर संख्या बढ़ने लगी । मुनिश्री के प्रवचनों में आकर्षण था मधुरता थी और इसी के साथ आगम सम्मत सशक्त हृदयस्पर्शी वक्तव्य शैली थी । क्रांतिकारी विचारधारा के साधक एवं प्रचारक मुनिराज श्री ने सामाजिक कुरीतियों एवं कुप्रथाओं दुर्व्यसनों (तम्बाखू गुटखा, लाटरी) मांसाहार, रात्रि भोजन आदि पर प्रवचनों के माध्यम से इस प्रकार भंयकर रुप से प्रहार किया कि अनेक लोगों ने स्वतः ही उक्त दुर्गुणों एवं कुरीतियों को त्यागने का संकल्प किया । जीव मात्र की असुरक्षा, पर्यावरण में बढ़ने प्रदूषण, पृथ्वी से व्यर्थ जल दोहन व्यर्थहीन विभिन्न मान्यताओं की ओर देशवासियों एवं सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए कत्लखानों का निर्माण नहीं करने, अधिक वृक्ष लगाने श्रावकों को सुंस्कारित करने की सत्प्रेरणा दी ।

अपने मांगलिक प्रवचनों में महाराज श्री ने निश्चय व्यवहार, निमित्त उपादान काल लब्धि सहित अनेक विषयों को समय-समय पर पूरे रहस्य सहित स्पष्ट किया । इसके लिए जैन समाज आपका सदा-सदा के लिए कृतज्ञ रहेगा । महाराज श्री में नास्तिकों को आस्तिक बना देने की अपूर्व कला है । परम् विद्वान श्रुतविज्ञ विशिष्ट प्रवचनकार होने पर भी आपका तो लक्ष्य केवल आत्म कल्याण धर्म प्रमुखता तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा एवं समाज सुधार का है । भव्य जीवों का कल्याण धर्म प्रभावना तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा एवं समाज सुधार का है । भव्य जीवों का कल्याण करने वाली प्रवचन की अद्वितीय विशिष्टता सबको मोह लेने वाली एवं आकर्षक है जिसे जनमानस पूर्ण रूप से पापमार्ग से हटकर समीचीन मार्ग में प्रवृत्ति करने की भावना कर लेता है । आपके चित्र चमत्कारी सदुपदेश का ही प्रतिफल रहा कि सहस्त्रों प्राणी सन्मार्ग के पथिक हो गए । यह अतिशयोक्ति नहीं, वरन् पूर्ण सत्य है ।

अनिल गदिया

इन्हीं धर्मसभाओं के मध्य एक रविवार को परम् पूज्य महाराज श्री के भव्य चित्र का लोकार्पण किया गया । अर्थात् मनोयोग से प्रवचन सुनने वालों के लिए एक कार्यक्रम और जुड़ गया । पूज्य प्रवर क्षुल्लक 105 श्री धैर्यसागर जी महाराज के संचालकत्व में प्रश्नमंच का शुभारम्भ हुआ जिससे श्रोताओं में नई स्फूर्ति एवं चेतना का संचार हुआ । प्रतिदिन के प्रश्नमंच के पाँच प्रश्नों के विजेताओं को पुरस्कृत करने वाले महानुभावों की होड लग गई । प्रश्नमंच का कार्यक्रम अपने नगर में प्रथम बार प्रारम्भ हुआ ।

तप : सौदा नहीं

बहुत से लोग तप करते हैं, किन्तु उनकी फल प्राप्त करने की आकांक्षा बनी रहती है । किसी प्रकार की आकांक्षा वाला तप एक प्रकार का सौदा बन जाता है ।

संस्कार शिविर के कुछ गवाक्ष

सिंघई विजयकुमार धुर्रा
एम. काम.
म.प्र. जैन युवा संघ अध्यक्ष
तुलसी पार्क, अशोक नगर (एम. पी.)

वीर भूमि राजस्थान की सौम्य नगरी अरावली पर्वत से ढका हुआ धर्मप्राण अजमेर नगर जहाँ प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने मुनिदीक्षा ली और सुप्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा साहब की दरगाह और नजदीक ही तीर्थराज पुष्कर की सुरम्य घाटियां प्रारम्भ होती है जिसे आचार्य चतुरसेन ने काश्मीर की संज्ञा दी ऐसे अजमेर नगर में विश्व विख्यात स्वर्णमयी अयोध्यापुरी में (सोनी जी की नसियां) दिगम्बराचार्य श्री विद्यासागर जी के परम् शिष्य आध्यात्मिक संत मुनि. श्री सुधासागरजी महाराज एवं क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर, धैर्यसागर महाराज की प्रेरणा एवं आर्शीवाद से एक अनूठे श्रावक संस्कार शिविर का आयोजन किया गया। आज की परिपाटी में शिविर लगाना आम बात हो गयी और शिविरों का अर्थ सुविधा वान रमणीक स्थानों का भ्रमण मात्र रह गया जहाँ लोग घर छोड़कर मौज मस्ती को आने-लगे। शिविर का मूल अर्थ लोगों ने जाना ही नहीं। पूर्व में मैने भी गृहस्थ विद्वानों द्वारा लगाये गये अनेक शिवरों में भाग लिया परन्तु दर्शन ज्ञान चारित्र की बात को गौण ही पाया और मेरे को लगा शिविर एक मात्र भीड़ इकट्ठा करने का साधन मात्र रह गया है चूंकि मैं संत संगति में रहा इसीलिए शिविरों के प्रति मेरी आस्था डगमगा गयी। अजमेर नगर में ज्यों ही शिविर लगने की बात आयी तो मेरे अनेक मित्रों ने मेरे को शिविर में भाग लेने को प्रेरित किया परन्तु पूर्व में अनेक कटु अनुभवों को देखते हुए मैं अपने को तैयार नहीं कर पा रहा था किन्तु मेरा सौभाग्य ही था कि मेरे एक अजीज मित्र द्वारा अन्तिम समय अजमेर चलने को कहने पर मैं तैयार हो गया और उस अद्भुत आनन्द को प्राप्त करने में सफल रहा जिसकी मैने कभी कल्पना भी नहीं की थी। कल्पना भी कैसे करते ? क्योंकि शिविर में ऐसे अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ जैसा सोचा भी नहीं था। ८ ता. की शाम को ही हमारा सारा सामान जैन वीर दल के कार्यालय में जमा कर लिया गया और हमें श्वेत धवल वस्त्र श्रावक संस्कार शिविर समिति द्वारा यह कहते हुए प्रदान कर दिये कि आज से ही आप समस्त प्रकार के आरम्भ समारम्भ से दूर रहेंगे और दो जोड़ी धोती दुपट्टे मात्र ही आपके पास रहेंगे।

वस्तुतः संकल्प पूर्वक समस्त कार्यों का त्याग पूर्व में कुछ अवधि के लिए भी न किए जाने पर मन में ऊहा-पोह की स्थिति थी पर फिर भी अपने आपको हल्का महसूस कर रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो हम बन्धन से मुक्त हो गये हों। सारे शिविरार्थी जो भारत वर्ष के अनेक नगरों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे वे अति उत्साहित थे। एक जिज्ञासा सभी के मन में थी कि क्या हम पूज्य गुरुदेव के चरणों में दस दिनों के लिए भी क्या सही, पूर्ण समर्पित हो पायेंगे ?

इसी विचार के साथ कि कल सुबह ठीक 3 बजकर 40 मिनिट पर हमें उठ जाना है और प्रार्थना के लिए जाने से पूर्व कायोत्सर्ग पूर्वक जगत के समस्त जीवों के प्रति करूणा भाव हृदय में लाना है। श्रावक संस्कार शिविर प्रथम दिवस और सुबह के 3.40 होते ही सभी शिवरार्थी भाई घण्टी बजने के साथ ही शयन कक्ष में उठकर बैठ गये और कायोत्सर्ग करने लगे। कायोत्सर्ग करने के पश्चात् ब्रह्मचारी श्री अजित जी के निर्देशन में प्रार्थना करते हैं और सुप्रभात स्तोत्र का पाठ करते हैं। सुप्रभात स्तोत्र के उपरान्त शिवरार्थी भाई नित्य क्रिया से निवृत्त होने के लिए खुले स्थान में चले आते हैं। स्थान की बात अब आ गयी तो हम शिवरार्थियों के निवास स्थान के बारे में भी कुछ चर्चा कर लें। सुप्रसिद्ध समाज सेवी श्री भागचन्द जी सोनी की कोठी के नाम से जाने जानी वाली (जो वर्तमान में श्री विमलचन्द जी सोगानी के अधिकार में है) उस कोठी में शिविरार्थी भाइयों को ठहरने की अति उत्तम व्यवस्था की गई जिसमें अनेक बरामदे, ध्यान कक्ष, शयन कक्ष और सभा कक्ष अलग-अलग थे और एक साथ जहाँ 700 शिविरार्थी भाई रूके उस स्थान की कल्पना आप स्वयं कर सकते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य से घिरा हुआ यह स्थान शिवरार्थियों की धर्म साधना में माला का काम कर रहा था। नजदीक में ही पहाड़ और विशाल मैदान जहाँ शुद्ध प्रासुक जल की उत्तम व्यवस्था थी। शिवरार्थी भाई अपनी दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर पर्वत से नीचे की ओर चले आ रहे थे और विचार कर रहे थे कि "हे भगवन् यह आनन्द की अनुभूति प्रति क्षण हमारे साथ यूं ही बनी रहेगी क्या" ? मौन

पूर्वक आते हुए अपने अन्य साथियों को देखकर मेरा मन रोमांच से भर गया मैं सोचने लगा यदि मैंने यह अवसर छोड़ दिया होता तो सच्चे श्रावक बनने की कला से मैं वंचित रह जाता और न जाने फिर कभी मेरा उपादान उस अद्भुत आनन्दकारी संस्कार शिविर में भाग लेने के लिए जोर मार पाता । यह विकल्प पूरा ही नहीं हो पाया था कि सोनी जी की नसियां के मध्य में विख्यात सिद्ध कूट चैत्यालय तक हम शिवरार्थी भाई आ गये और देवाधिदेव आदिनाथ भगवान् की चरण वन्दना कर कुछ समय के लिए वहीं मौन पूर्वक णमोकार मंत्र का जाप करने के उपरान्त अयोध्यापुरी के जिनालय के तीसरे खंड स्थित छत पर सभी शिवरार्थी भाई क्रमशः इस तरह बैठ गये कि अन्य दूसरे शिवरार्थी भाई का स्पर्श न हो । एक साथ 700 शिविरार्थी भाइयों का क्रमशः छत पर बैठ जाना और ब्रह्म महूर्त की हल्की हल्की लालिमा का पड़ना, अति आलोकिक दृश्य था । इसी बीच एक गगन भेदी ज़ोरदार जयकारा होती है "बोलो परम् पूज्य आध्यात्मिक संत मुनि श्री सुधासागरजी महाराज की जय" और जयकारा के साथ ही मुनि श्री का ध्यान स्थल पर आगमन होता है मुनि श्री के चरणों में नमन करने के उपरान्त सभी शिवरार्थी भाई शान्त चित्त बैठ जाते हैं और संत श्री की मधुर वाणी के साथ ही ध्याम करना प्रारम्भ कर देते हैं और पता नहीं लगता सुबह के 6-15 कब बज जाते हैं । क्योंकि इस बीच सभी यह अलोकिक आनन्द में खो जाते हैं । और आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की जय, अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी की जय के साथ ही ध्यान की क्लास पूर्ण होती है और मुनि श्री की जय जयकार करते हुए शिवरार्थी भाई सिद्ध कूट चैत्यालय के द्वितीय खण्ड के बाहर विशाल छत पर जिसे विशेष कक्ष का रूप दिया गया था बहुत ही आकर्षक ढंग से सँवारा गया था जहाँ एक साथ सारे शिविरार्थियों को पूजन करने हेतु दि. जैन समीति, जैन वीर दल के समर्पित नोजवान भाइयों द्वारा पूजन की सम्पूर्ण सामग्री व्यवस्थित कर पूर्व से ही रखी गयी थी । शिवरार्थी भाई पहुँचकर देवाधिदेव का अभिषेक देखकर और जय जय कार के साथ जिन गंधोदक को अपने ललाट पर और मस्तिष्क पर धारण करते हैं और प्रो. सुशील कुमार जी पाटनी की मधुर वाणी में जो जैन संगीत मण्डल अजमेर के संगीत से सजी थी और ब्रह्मचारी अजित जी व पण्डित अजित कुमार आगरा के निर्देशन में देवाधिदेव की स्तुति पूजन और गुणगान आरम्भ हो जाता है । प्रोफेसर सुशील कुमार पाटनी की वाणी में इतनी मधुरता थी कि शिविरार्थी भगवान् की भक्ति में लीन होकर नृत्य गान करने लगते हैं। यह दौर लगभग 7.50 बजे तक चलता है । पूजन समाप्त होने के उपरान्त समस्त शिविरार्थी भाई प्रवचन हॉल की ओर बढ़ जाते हैं और यथा स्थान सभी बैठते हैं शिविरार्थियों के लिए विशेष स्थान सुरक्षित है इसी बीच मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी एवं क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज के साथ आगमन होता है । कार्यक्रम का कुशल संचालन कर रहे श्री कपूर चन्द जी एडवोकेट मंगलाचरण के लिए दिल्ली निवासी अजमेर प्रवासी श्रीमति कनक जैन को आमन्त्रित करते हैं । कनक जैन की मधुर वाणी से वातावरण धर्ममय हो जाता है । अब क्षुल्लक श्री धर्यसागर जी महाराज द्वारा तत्वार्थ सूत्र का वाचन किया जाता है । सूत्र जी की महापूजा के लिए धवल वस्त्रों से सुसज्जित हार मुकूट पहने हुए एक सज्जन पूर्व से ही तैयार खड़ा है और अर्घ समर्पित करते हैं । तत्वार्थ सूत्र के वाचन के उपरान्त मुनिश्री सुधासागर जी महाराज का मंगल प्रवचन प्रारम्भ हो इसके पूर्व प्रमुख श्रोता के रूप में उपस्थित व्यक्ति द्वारा दीप प्रज्वलन किया जाता है । दीप प्रज्वलन होने के बाद मुनि श्री का प्रवचन पर्वराज पर्यूषण का निमित्त होने से उत्तम क्षमा धर्म पर होता है । मुनि श्री की मार्मिक वाणी जनता जनार्दन के अंतर मन को झंकारित कर देने वाली थी । गुरुदेव की वाणी में इतना आकर्षण है कि व्यक्ति अपने स्थान से टस से मस नहीं होता मुनि श्री का अद्भुत चिन्तन उस ओजस्वी वाणी में चार चाँद लगा देता है । प्रवचन इस तरह धारा प्रवाह चलता है जैसे सरिता की लहरें चलती हैं । मुनि श्री का समझाने का तरीका भी अलग है अनेक सूक्तियों और उदाहरणों से श्रोताओं के अन्तर मन को झंकृत कर देता है । आज सोनी जी की विशाल नसियां जी भी छोटी जान पड़ रही है जनता जनार्दन की उपस्थिति को देखते हुए । लोग नसियां जी के बाहर सड़क के दोनों ओर बैठे हुए प्रवचन का क्लोज सर्किट टी.वी. द्वारा आनन्द ले रहे हैं । नसियां जी की दोनों और छतों पर गेलरी, चौक, हॉल जहाँ तक कि सीढ़ी पर भी एक आदमी को बैठने की जगह नहीं दिख रही थी । चूँकि प्रथम दिवस की वाद-विवाद प्रतियोगिता में मेरे द्वारा ज्ञान के पक्ष में बोले जाने से अनेक लोग मेरे सन्निकट आ गये थे और अनायास ही उन्होंने मेरे से कहा "इस चातुर्मास के पहले यह नसियां कभी छोटी नहीं पड़ी यह पहला अवसर है अजमेर जैन समाज नसियां को छोटा पा रहा है । वस्तुतः पूर्व में इतनी उपस्थिति कभी नहीं रही जो अभी देखी जा रही है । पक्ष, पंथ और भट्टा के व्यामोह को तोड़कर सभी जन चातुर्मास के आनन्द को लूटने में लगे हैं । मुनि श्री के प्रवचन के उपरान्त क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज द्वारा प्रवचनों पर आधारित प्रश्न मंच का कार्यक्रम किया जाता है। क्षुल्लक श्री द्वारा किए गये प्रश्नों का सही उत्तर देने वालों को तत्काल पारितोषिक दिये जाते हैं और जिनवाणी स्तुति के साथ ही प्रवचन सभा विराम को प्राप्त हो जाती है। एक सूचना आती है आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप के समस्त शिविरार्थी नीचे हॉल में रहेगें और शेष शिवरार्थी पूजन हॉल में रहेंगे ।

चूंकि शिविरार्थियों को तीन वर्गों में आयु वर्ग के हिसाब से इस तरह बाँटा गया है बुजुर्ग पीढ़ी को आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप में जिनकी उम्र 45 वर्ष से अधिक है । 22 वर्ष से 45 वर्ष के शिविरार्थी भाइयों को आचार्य विद्यासागर जी ग्रुप में और 22 वर्ष तक के शिविरार्थियों को सुधासागर जी ग्रुप में रखा गया । और इस तरह से शिविर में आये हुए अतिथियों की सुविधाओं का भी ध्यान रखा गया । लगभग 10 बजने को है मुनि श्री एवं क्षुल्लक द्वय आहार चर्या के लिए नगर की ओर निकल जाते हैं और इस शिविर की आत्मा इस शिविर की जान और इस संस्कार शिविर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता कि "शिविरार्थी भाई अब गृहस्थों के घर आहार करने विनम्रता पूर्वक लेजाने पर ही जा रहे हैं । शिवरार्थी भाइयों का मौन मन्दिर में ही देव दर्शन के समय से ही आता है और मन्दिर वापस आने पर ही वह देव दर्शन के बाद ही मौन खोलते हैं । समस्त शिविरार्थी भाई त्यागी व्रती की तरह एक समय ही भोजन करते हैं और समीचीन दर्शन ज्ञान चारित्र की आराधना में निरन्तर क्रियाशील रहते हैं । प्रथम जब शिविरार्थीजन आहार लेने आ रहे थे तब नगर के माहौल में अद्‌भुत शांति छाई हुई थी और शिविरार्थी भाई नगरवासियों के आकर्षण का केन्द्र बने हुए थे । जब मैं अपने अन्य साथियों के साथ आहार लेने सरावगी मौहल्ला स्थित एक जिन श्रेष्ठी श्रावक के घर पहुँचा तो उनकी हमारे प्रति भावना पूर्वक की गयी विनय को देखकर मैं भावविभोर हो गया, आनन्दित हो गया ! यह मेरे जीवन का इस तरह का प्रथम अनुभव था । आसन पर बैठते ही हमें थाली दिखाई गयी और शुद्ध प्रासुक आहार दिया गया । वास्तव में विरले ही लोगों के जीवन में इस तरह की घटनायें घटती है ऐसा मैं मानता हूँ । इस क्षण मुझे अहसास हुआ कि संयम का जीवन में क्या स्थान है । आहार के बाद यथायोग्य विनय कर हमें श्रावकजन मन्दिर जी तक पहुँचाने आये चूंकि समस्त शिविरार्थी भाइयों का गृहस्थों से किसी भी प्रकार की वार्तलाप करना निषेध था इसीलिए हम सिर्फ अभिवादन स्वीकार करते हुए मन्दिर जी आ गये । लगभग 11.30 पर समस्त शिवराथी भाइयों की उपस्थिति दर्ज की गयी तदुपरान्त समूहिक भक्ति की गयी इसके बाद ब्रह्मचारी अजित जी के निर्देशन में मध्यान्ह काल की सामायिक सभी शिवरार्थी भाई करने लगे । सामायिक के उपरान्त सामायिक पाठ का वाचन करते है और जगत के समस्त जीवों के प्रति सामूहिक प्रेम वात्सल्य की भावना भाते हैं। 1 बजे से 2 बजे तक का समय शिविरार्थी भाइयों के लिए फ्री रखा गया इस दौरान शिविरार्थी भाई आपस में अपनी शंका का समाधान करते रहे ।

मध्यान्ह काल में द्वितीय सत्र प्रारम्भ होता है लगभग 2.15 पर मुनि श्री का आगमन होता है और मंगलाचरण के साथ ही द्रव्य संग्रह का वाचन परम् पूज्य मुनि श्री द्वारा कराया जाता है । 3 बजे से संस्कार निधि नामक पुस्तक मुनि श्री द्वारा पढ़ायी जाती है जिसमें विशेष रूप से जैन जौगरफी का उल्लेख किया गया है । 3.30 बजे से 4 बजे तक मुनि श्री शिविरार्थियों की तमाम शंकाओं का समाधान क्रमशः करते हैं । शंका समाधान के उपरान्त जिनवाणी स्तुति के साथ ही एक जोरदार जयकारा के बीच धर्म सभा विसर्जित हो जाती है । इसी दौरान लगभग 3 से 4 बजे तक क्षुल्लक श्री 105 धैर्यसागर जी महाराज द्वारा तत्त्वार्थ सूत्र का वाचन प्रतिदिन किया जाता है जिसका लाभ श्रावक जन उठाते हैं । 4 बजे से 5 बजे तक का समय शिविरार्थी भाइयों के लिए जलपान ग्रहण करने का है । समीपस्थ छोटे धड़े की नसियां में शिविरार्थियों के लिए शुद्ध प्रासुक जलपान की उत्तम व्यवस्था की गयी । इसमें दि. जैन समिति के निर्देशन में श्री जैन वीर दल के मुस्तैद कार्यकर्ता शुद्ध धुले हुए वस्त्र पहन कर अपने दायित्वों का निर्वाह कर रहे थे । नगर के अनेक श्रेष्ठी जनों के द्वारा यह व्यवस्था संचालित की गयी । जलपान ग्रहण के उपरान्त सोनी जी की नसियां स्थित पूजन भक्ति हॉल में सामूहिक प्रतिक्रमण किया जाता है और तदुपरान्त परम् पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज पूज्य क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर एवं धैर्यसागर जी महाराज के सानिध्य में आचार्य भक्ति करने का सौभाग्य सभी शिविरार्थियों को प्राप्त होता है । आचार्य भक्ति करने के उपरान्त समस्त शिविरार्थी जन भक्ति में विभोर होकर आरती उतारते हैं । और अब प्रारम्भ होता है दिवस का तृतीय सत्र आचार्य ज्ञानसागर जी ग्रुप की क्लास पं. अजितकुमार जी आगरा द्वारा छोटे धड़े की नसियां में ली जाती है । जो आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप का विश्राम स्थल भी है । आचार्य विद्यासागर जी ग्रुप की क्लास पूजन हॉल में ही पूज्य क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी द्वारा ली जाती है । मुनि श्री सुधासागर ग्रुप की क्लास अयोध्यानगरी जिनालय की छत पर डॉ. शीतल चन्द जी जैन प्राचार्य जैन संस्कृत महाविद्यालय (जयपुर) द्वारा ली जाती है । इसी दौरान क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी महाराज द्वारा जनता को धार्मिक कथायें कथा कथन कार्यक्रम के दौरान सुनायी गयी । धार्मिक क्लास सांयकाल 8 बजे समाप्त होती है जिसमें तीनों ग्रुपों को बड़े आकर्षण ढंग से संस्कार निधि का प्रथम भाग पढ़ाया गया । क्लास के समाप्त होते ही दिशावन्दन के साथ ही सामायिक करायी जाती है । और सामायिक के उपरान्त सामायिक पाठ करते हैं और इस तरह शिविर का अन्तिम सत्र समाप्त होता है और शिविरार्थी नसियां जी से कोठी की ओर प्रस्थान कर देते हैं । कोठी पर पहुँचकर सभी शिविरार्थी भाई अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं और मेरी भावना पढ़ते है तदुपरान्त आवश्यक कार्य से निपटकर लगभग 10 बजे विश्राम की तैयारी करते हैं और इस तरह शिविर का प्रथम दिवस पूर्ण होता है । द्वितीय दिवस में

पुनः यही क्रम चलता है और लगातार 9 दिन तक यह क्रम आगे चलता रहता है । इस दौरान तत्वार्थ सूत्र का वाचन अलग-अलग दिनों में क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी धैर्यसागर जी व ब्र. संजय भैय्या द्वारा किया गया । महाअर्घ्य का समर्पण व प्रवचन के प्रमुख श्रोता बदलते रहते हैं । मुनि श्री द्वारा दसों धर्मों का बहुत ही आकर्षक मार्मिक सरल व मधुर भाषा में प्रवचन किया जाता रहा जिसे मैं अपनी लेखनी के द्वारा व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ वस्तुतः प्रवचन इतना सरल व सुबोध रहा कि उसमें से कुछ बिन्दु नहीं दिए जा सकते क्योंकि सारा प्रवचन ही बहुत उपयोगी है । मुनि श्री में विभिन्न घटनाओं उदाहरणों द्वारा जटिल विषय को भी बहुत ही सरलता से उपस्थित करने की अद्भुत कला है निःसन्देह आपके पास क्लिष्ट से क्लिष्ट जैन दर्शन की जटिलताओं और गूढ़ताओं को सरल से सरल बनाकर प्रस्तुत करने की अनुपम कला है । आपके प्रवचन में अद्भुत गाम्भीर्य तथा प्रभाव है । कैसा भी नास्तिक व्यक्ति क्यों न हो आपकी जादूमयी वाणी को सुनकर आपके चरण सान्निध्य में रहकर आपका ही हो जाता है । आपके प्रवचन की विशेषता आप अपनी परम्पराओं को बहुत ही आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते हैं इस अमृतमयी वाणी को सुनकर जनमानस अपने आपको सनमार्ग में लगा रहा है । आपके द्वारा दोपहर में ली जाने वाली क्लास में अनेक विषयों पर आकर्षण प्रवचन भी हुआ इन प्रवचनों को सुनकर शिविर में आये हुए समस्त शिविरार्थी भाइयों ने सप्त व्यसन का त्याग, मिथ्या मान्यताओं का त्याग, गुटखा आदि अभक्ष्य पदार्थों का त्याग, जुआ लाटरी आदि का त्याग, दस धर्मों का पालन करना अपने पूज्य जनों की विनय करना, जिनवाणी की रक्षा करना, नित्य व साप्ताहिक पूजन करने का नियम लेना आदि अनेक नियम शिविरार्थी भाइयों ने लिए । आपने प्रतिदिन मन में उठने वाली सैकड़ों शंकाओं का समाधान किया और शिविरार्थियों को उनमें आने वाले जीवन के बारे में लगातार मार्ग दर्शन दिया । अन्तिम दिवस में प्रतिदिन पढ़ायी जाने वाली नियमित क्लासों की लिखित परीक्षा की गयी जिसमें तीनों ग्रुपों से प्रथम द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले शिविरार्थियों का समाज द्वारा सम्मान किया गया । शिविर में कुछ भाइयों ने 10-10 उपवास किए व अनेक भाइयों ने 5 या 5 से अधिक उपवास किए 1 या 2 उपवास करने वाले शिविरार्थियों की संख्या तो सैकड़ों से अधिक थी । इस तरह यह दस दिन शिविरार्थियों की संयम यात्रा के रूप में आये थे शिविर के समापन दिवस की बेला में प्रातः काल 7 बजे बाबाजी की नसियां में समस्त शिविरार्थियों की जलपान की उत्तम व्यवस्था थी । ग्यारहवें दिन भी शिविरार्थी सोनी जी की नसियां में इकट्ठे हो गये और पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रातः 8 बजे परम पूज्य मुनि श्री एवं क्षुल्लक द्वय के सानिध्य में सम्पूर्ण जैन समाज के साथ एक विशाल जुलूस निकाला गया जुलूस का स्वरूप कुछ इस तरह था कि सर्वप्रथम बैंड़ पार्टियां आगे चल रही थी उनके बाद अनेक वाद्य यन्त्रों से सुसज्जित संगीतकार चल रहे थे और सर्वप्रथम सुधासागर ग्रुप के शिविरार्थी भाई तीन-तीन की पंक्ति से उनके पीछे विद्यासागर जी ग्रुप के तत्पश्चात आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप के शिविरार्थी क्रमशः चल रहे थे । सभी शिविरार्थी जन श्वेत, धोती, दुपट्टा धारण किये थे और विश्व शांति का प्रतीक श्वेत ध्वज अपने हाथों में लिये थे । शिविरार्थीयों के बाद जलूस के बीचों बीच परम पूज्य मुनि श्री व क्षुल्लक द्वय चल रहे थे और उनके पीछे अपार जन समूह चल रहा था जलूस का प्रथम छोर जब नया बाजार पर था तब दूसरा छोर सोनी जी की नसियां स्थित जिनालय पर था अपार जन समूह सड़क के दोनों और खड़ा होकर प्रसन्न मुद्रा में शिविरार्थीयों का स्वागत कर रहा था । जलूस सरावगी मुहल्ला स्थित जिनालयों की ओर पहुँचा और शिविरार्थियों ने जिन चैत्यालयों की वंदना की । तदुपरांत यह विशाल शोभा यात्रा नया बाजार, चूड़ी बाजार, वीतराग विज्ञान मन्दिर, मदार गेट होते हुए केसर गंज पहुंची केसर गंज मार्ग के दोनों ओर श्रावकजन क्रमशः हाथ जोडकर खड़े हुए शिविरार्थी परम पूज्य मुनि श्री व समस्त शिविरार्थीयों ने देवाधिदेव की वंदना की और परम् पूज्य मुनि श्री संघ सहित केसर गंज जिनालय से ही आहार चर्या के लिए उठे केसर गंज में ही समस्त शिविरार्थी भाइयों का सामूहिक प्रीतिभोज हुआ केसर गंज स्थित समाज के नौजवान युवकों ने तत्परता पूर्वक शिविरार्थी भाइयों का सत्कार किया तदुपंरात वहाँ देवाधिदेव के कलशाभिषेक हुये और क्षमावणी रूप मुनि श्री का हृदयस्पर्शी, मार्मिक प्रवचन हुआ जिसे सुनकर जनता भाव विभोर हो गई और उत्तम क्षमा का वास्तविक अर्थ समझ कर मुनि श्री की जय-जयकार करने लगी ।

पुनः जलूस वहाँ से चल कर रेल्वे स्टेशन, मदार गेट, नया बाजार, आगरा गेट होते हुये सोनी जी की नसियां स्थित सिद्धकूट चैत्यालय आया जो बाद में एक विशाल धर्म सभा रूप में परिवर्तित हो गया धर्म सभा में मुख्य अतिथि के रूप में राजस्थान विधान सभा के अध्यक्ष माननीय श्री हरिशंकर जी 'भाभड़ा' और श्री ओंकार सिंह जी लखावत अध्यक्ष नगर सुधार न्यास (अजमेर) तथा सांसद श्री रासासिंह जी रावत, सिटी मजिस्ट्रेट श्री यादव जी आये व समारोह की अध्यक्षता माननीय श्री भागचन्द जी पहाड़िया ने की ।

धर्म सभा का प्रारम्भ दीप प्रज्जलन के साथ हुआ मंगलाचरण ललितपुर के शिविरार्थी भाई ने किया तदुपरांत श्री पंकज जैन (ललितपुर) ने अपनी कविता प्रस्तुत की इसके बाद लेखक ने (सिघंई) विजय धुर्रा अशोक नगर) शिविर की प्रशंसा में

एक कविता प्रस्तुत की इसके बाद शिविर के संयोजक श्री कैलाशचन्दजी पाटनी ने शिविर की विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की इस बीच मुख्य अतिथियों, सभी विद्वानों व श्री विमलचन्दजी सौगाणी का समाज द्वारा सम्मान किया गया । सम्मान की श्रृंखला में परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले एवं शिविर में भाग लेने वाले उन तेरह शिविरार्थी का जिन्होंने दस उपवास किये तथा 67 शिविरार्थी जिन्होंने पाँच उपवास किये का सम्मान श्री मदनलालजी गोधा (बम्बई) श्री राजेन्द्रकुमार जैन अहमदाबाद वालों ने वस्त्र एवं रजत पत्र तथा टीकमचन्द जी गदिया ने रजत सिक्के व समिति ने सकल शिविरार्थी को भव्य चित्र तथा श्री मान विमल चन्दजी सोगानी ने मनोहारी चित्र भेंट कर सम्मान किया प्रमुख अतिथि विधान सभा अध्यक्ष श्री भाभड़ा ने मुनि श्री के चरणों में श्री फल भेंट कर समाज पर किये गये उपकार की भूरी-भूरी प्रशंसा की । आपकी विनयांजलि में विनम्रता व भारतीय संस्कृति की अपूर्व छाप थी इसके बाद ओंकार सिंह जी लखावत साहब ने मुनि श्री के सम्बन्ध में कहा कि परम् पूज्य सन्त श्री के नगर आगमन से हमारी धार्मिक प्यास ही नहीं बल्कि लौकिक प्यास की भी इस वर्ष पूर्ति हुई है यह सब आपके श्री चरणों का प्रताप है । श्री लखावत साहब ने आगे कहा कि मुनि श्री ने हम पर अपूर्व कृपा की है । जो अजमेर नगर में वर्षा योग किया । श्री लखावत साहब ने प्रसन्नता पूर्वक गुरु चरणों में धर्म क्षेत्र अजमेर में सकल दिगम्बर जैन समाज को अरावली पर्वतमाला की अजमेर श्रृंखला पर भव्य क्षेत्र बनाने हेतु स्थान देने की घोषणा की सांसद श्री रासासिंह जी ने भी परम् पूज्य मुनि श्री के चरणों में अपनी विनयांजलि प्रस्तुत की ।

इसके बाद परम् पूज्य मुनि श्री के मंगल प्रवचन हुये परम् पूज्य मुनि श्री ने अपने आशीष वचनों में शासन के पदाधिकारियों को गौ वंश की पूर्ण रक्षा हेतु सजग किया तथा प्रांत में लाटरी पर प्रतिबन्ध लगाने हेतु सजग किया । मुनि श्री ने कहा कि साधु समाज ओर सरकार यदि तीनों धर्ममय हो जाये तो इस भारत वसुन्धरा पर राम राज्य आने में देर नहीं लगेगी । अन्त में श्री सोनी जी साहब ने आभार व्यक्त किया सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन डॉ. श्री शीतलचन्द जी जैन (संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर) ने किया अपरान्त बड़े धड़े की नसियाँ में एक विशाल प्रीतिभोज का आयोजन किया गया भोजन के उपरान्त समस्त शिविरार्थी जन मुनि श्री को श्री फल भेंट कर घर जाने की आज्ञा लेने आये यह एक अत्यन्त ही मार्मिक दृश्य था अनेक शिविरार्थी भाई आपस में मिल रहे थे परिचय कर रहे थे और अपने-अपने नगर में अन्य शिविरार्थीयों को आने का निमंत्रण दे रहे थे । इस विशाल संस्कार शिविर में भारत वर्ष के अनेक प्रान्तों से सैंकड़ों लोगों ने भाग लिया । जिसमें विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के अनेक नगरों से लगभग 250 शिविरार्थीयों ने भाग लिया विशेष रूप से प्रदेश के ललितपुर नगर व आगरा, लालबेहर, जाखलोन से अच्छी उपस्थिति थी । मध्य प्रदेश के अशोक नगर, सागर, जबलपुर बेगमगंज, टीकमगढ़, साढ़ोरा आदि अनेक नगरों से व राजस्थान प्रांत के जयपुर, उदयपुर, ब्यावर, किशनगढ़, कोटा, नसीराबाद, सांगानेर, पदमपुरा आदि-आदि अनेक नगरों से शिविरार्थियों ने शिविर में भाग लिया बहुत से शिविरार्थी मिलन की बेला में पुनः अगले शिविर में आने का एक दूसरे से निवेदन कर रहे थे और इस तरह यह अभूत पूर्व यात्रा अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर अनन्त में विलीन हो गई ।

सिंघई विजयकुमार धुर्रा

❑❑❑

चरैवेति

साधक को साधना के क्षेत्र के निरंतर चलते रहना चाहिये । कभी भी विराम का नहीं सोचना चाहिये । विराम का चिन्तन साधक के गिराव (पतन) का सूचक है ।

मैं एक शिविरार्थी

आज जग के कीट को भी जिनेन्द्र पद मिल जायेगा,
आज इस विक्षिप्त सर में भी कमल खिल जायेगा ।

सुधीर पाण्ड्या

बन्धुवर !

हमारी सोच, कल्पना, मिथ्यात्व और भोगों से परे एक चमत्कार हुआ है । एक ऐसी अतिशयकारी, सुखद और सौम्य आयोजन था जिसमें प्रत्येक शिविरार्थी ने सर्वार्थ सिद्धि के देवों का सा सुख उठाया । जिस तरह से सर्वार्थ सिद्धि के देव अपना समय धर्म चर्चा में व्यतीत करते हैं उसी तरह से प्रत्येक शिविरार्थी ने अपना समय सम्पूर्ण रूप से सिर्फ और सिर्फ धर्ममय होकर ही व्यतीत किया । उसकी प्रत्येक चर्चा में सोने-जगने, खाने-पीने, नहाने-धोने आदि में भी धर्म ही था, तत्वों का चिन्तन था।

शिविर नहीं था यह तो सांसारिक बन्धनों, रीति-रिवाजों, झूठे रिश्ते-नातों, पारिवारिक उलझनों और राग-द्वेष से मुक्त ब्रह्माण्ड में एक ऐसी उड़ान थी, एक ऐसा विचरण था, जिसमें हमें हमारे वास्तविक स्वरूप का वास्तविक ज्ञान और वास्तविक शक्ति का अहसास हुआ और यह शक्ति थी अहम् ब्रह्म अहम् ब्रह्म, अहम् ब्रह्म ।

क्या आप विश्वास कर सकेंगे कि अपनी सभी शिविरार्थी दस दिन के लिए मोक्ष का सुख उठा कर आये हैं ? मोक्ष? इस पंचम काल में और वह भी सशरीर ?

मान्यवर,

बात कुछ ऐसी ही है । एकाएक कानों को तो क्या, आँखों से देखने पर भी विश्वास नहीं हो सकता । जिस ध्यान के माध्यम से हमने सिद्ध शिला पर आसन ग्रहण किया, जिस ध्यान के माध्यम से हमने अपनी आत्मा को साक्षात्कार ग्रहण किया, उसकी महिमा का बखान करना वैसा ही होगा जैसे कोई गूंगा व्यक्ति गुड़ का रसास्वादन करके उसका स्वाद अपने शब्दों में व्यक्त करे । जिस आसानी से जिस सहज भाव रूप से जिस स्वाभाविकता से हमने सिद्ध शिला पर पद्मासन लगाया, उस आसानी से और सहजता से तो हम अपने घर में भोजन के समय का आसन भी ग्रहण नहीं कर पाते होंगे ।

पूजन जिस भाव तन्मयता से और जिन पवित्र और निर्मल भावों से हमने की तो आभास कुछ ऐसा होता था जैसे कि हम अपने जन्म-जन्मांतर के पाप और समस्त भवों की भटकन इन क्षणों में ही मिटा देना चाहते हों । लगता था जैसे हम साक्षात् जिनेन्द्र भगवान् का ही अभिषेक पूजन कर रहे हों क्योंकि ध्यान में तो हम स्वयं परमेष्ठी बन चुके थे और ध्यान के बाद ही पूजन था ।

आहार चर्या के समय तो भाव ऐसे थे कि कब हमारे आहार में कोई बाल या कोई अन्तराय कारण नजर आवे और कब हम हाथ धोकर उठ खड़े होवें । सोच कर खाने में तो कई शिविरार्थियों में परम् श्रद्धेय गुरुदेव के निर्देश को भी ध्यान में नहीं रखा जिन्होंने कहा था कि जिस चीज में अन्तराय कारण नजर आवे वही सिर्फ छोड़नी है बाकी चीजों का आहार तो कर सकते हैं । पर मन में जो लगन उन्होंने जगा दी थी जो अलख उन्होंने छोड़ दिया था वह तो मौजूद था ही ।

सामायिक के समय तीन बार रोम-रोम में गूंजने वाला "नमोऽस्तु" और "औम् नमः सिद्धेभ्य" का उच्चारण किया नहीं कि ध्यान स्वत सिद्ध । फिर नासा दृष्टि किये हुये इस मनहारी धुन में णमोकार मंत्र का जाप कि रोम-रोम् झंकृत हो उठे सभी वंदनीयोंको आदरपूर्वक चित्तभाव से नमस्कार और फिर सामायिक पाठ इस चिंतवन से करना कि परम् परमेष्ठी भगवान् से सीधा साक्षात्कार हो रहा हो ।

मैं कौन हूँ, कहां से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है, इन सब बातों का जवाब मानो वे स्वयं ही दे रहे हो ।

पूज्य गुरुदेव की कक्षा में जो आध्यात्मिक ज्ञान हमें हुआ, उसके आगे संसार का ये मिथ्याज्ञान, अव्यवहारिक शिक्षा हमें

तुच्छ नजर आने लगी । स्वयं को ज्ञानी ध्यानी, परम् विद्वान् ज्ञाता दृष्टा बनाने जैसा ज्ञानार्जन हुआ । ऐसी-ऐसी बातें हमें बताई कि लगा - "रोंगटे खड़े कर देने के लिए रोम-रोम को पुलकित करने के लिए, सुखद आश्चर्यात्मक अनुभूति के लिए किसी अतिशय की आवश्यकता नहीं बल्कि हमारे देव/शास्त्र/गुरु का प्रत्येक शब्द ही स्वयं में एक अतिशय है । और प्रतिक्रमण ! स्वतः ही ऐसा भाव हो जाता था कि लगता मुझसे ज्यादा पापी इस संसार में कोई है ही नहीं । भले ही इन दिनों यथाशक्ति पुण्य कमाना और पाप से बचना ही हमारा ध्येय भी था पर भाव कुछ ऐसे बनते थे -

"जो कुछ भी किया विगत में पुण्य पाप आ रहा उदय में स्वयमेव आप ।"

ऐसे-ऐसे पाप जिनको करने की बात तो दूर उनका नाम भी नहीं सुना होगा लेकिन लगता था कि सबसे बड़े दोषी हम ही हैं । और हरेक पाप के लिए सिर्फ एक ही उच्चारण - "तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।"

और फिर विश्राम इसीलिये क्योंकि संसार के सारे जीव अब अपने-अपने शयनावली में चले गये हैं तो हम भी अब तत्वों का चिंतन करने हेतु अपने को निराकुल, निराकारी मानते हुए तथ्यों का शांत भाव से चिंतन करें ।

इसी तरह से हम धीरे-धीरे अपने मोक्षपद को सुरक्षित करते हुए अपने गुरु के वरद् हस्त के नीचे अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य का असीम कभी न खत्म होने वाला आनन्द उठा रहे थे ।

पर यह क्या ? क्या हमसे कोई भूल हो गई गुरुवर क्या हमसे आपके किसी आदेश का उल्लंघन हो गया है ? क्या हम इस लायक भी नहीं कि आपका सान्निध्य आपका आशीर्वाद, आपके चरणों की धूल भी हम अपने माथे से लगा सकें ? क्या हमारी भक्ति, हमारी श्रद्धा में कोई खोट है ?

यदि ऐसा नहीं तो फिर क्यों हमें उसी मायाचारी में उसी दलदल में, उसी नश्वरता और मिथ्यात्व में धकेला जा रहा है ? क्यों हमें मान, मोह, राग-द्वेष, लोभ-क्रोधादि कषायों का पुतला बनाया जा रहा है ?

क्यों हमसे सिद्ध शिला का अनन्त चतुष्टय का सुख छीनकर नरक की भट्टियों में जलने के लिये छोड़ा जा रहा है।

क्यों हमसे गुरु का वात्सल्य, गुरु का वरद हस्त, गुरु का समझाना, उनकी हँसी, उनका देखना, उनका बोलना, उनका चलना, उनका पढ़ना, उनका पढ़ाना, उनका पूछना और जवाब ना देने पर हल्के से मुस्करा देना, हम से छीना जा रहा है ?

क्या आपने कभी देखा, सुना या पढ़ा है कि किसी को उसके अध्यात्म से किसी को उसके धर्म से, किसी को उसके इष्ट से, उसके गुरु से जुदा कर दिया गया हो ।

बन्धुवर !

शरीर से भले ही जुदा हो जायेंगे
पर अपने धर्म में अपने अध्यात्म में
अपने चिंतन में अपने ध्यान में

अपने कर्म में, अपने ज्ञान में
हम तो क्या आप भी हमारे गुरु को ही पायेंगे
सीखा तो यही है कि,

जो कुछ भी है, सब तुझमें है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, महावीर सब मुझमें है । हमारा ये शरीर सिर्फ मल-मूत्र का संग्रहक ही नहीं इसी शरीर में विद्यमान आत्मा ही रत्नधारी है । यही आत्मा हमारे लिए मोक्ष का मार्ग है । यही आत्मा बल है, यही वस्तुतः सिद्ध है और यही सिद्ध परमेष्ठी भी है । गुरु दक्षिणा के रूप में भी सिर्फ हमसे हमारा भला ही माँगा गया ।

संस्कार शिविर तो पूज्य गुरुदेव के द्वारा दिखाया गया एक ट्रेलर मात्र ही था, एक झलक मात्र ही थी जब ट्रेलर ही इतना रोमांचकारी, अविस्मरणीय और सुखद था तो फिल्म कैसी होगी ?

गुरु दक्षिणा के रूप में उन्होंने हमसे क्या मांगा ? हमारा भला । हमसे ज्यादा से ज्यादा पापमुक्त दोषमुक्त रहना ही मांगा गया ताकि हम इस भव से मुक्त होकर अपनी इस आवक-जावक पंजिका की समाप्ति कर दें और मुक्ति रमा का वरण कर अन्तिम शेष के रूप में छोड़े कुछ भी नहीं Nil Nil Nil

ऐसे गुरुवर के लिए- गुरु की महिमा वरणी ना जाये,
गुरु नाम जपो मन वचन काय ।

ओम् आदि-वीर-ज्ञान-विद्या सुधासागरेभ्यो नमः

उदयाचल से उदित गुरुकुल परम्परा

बा. ब्र. अजित् जैन "सौरई"

श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर गवरपुरा ललितपुर (उ.प्र.)

भारत का गौरव - एक समय था जब यह भारत वर्ष अपने उत्कर्ष पर था, अन्य देशों का गुरु बना हुआ था, सब प्रकार से समृद्ध था और स्वर्ग के समान समझा जाता था ।

भारत की कीर्ति-लता दशों दिशाओं में व्याप्त थी उसका विज्ञान, कला-कौशल और आत्मज्ञान अन्य समस्त देशों के लिये अनुकरणीय था । उसमें जिधर देखो उधर प्रायः ऐसे ही मनुष्यों का सद्भाव पाया जाता था जो दृढ़ाङ्ग, निरोगी और बलाढ्य थे, स्वभाव से ही जो तेजस्वी मनस्वी और पराक्रमी थे, रूप और लावण्य में जो स्वर्गों के देव-देवाङ्गनाओं से स्पर्धा करते थे, सर्वाङ्ग सुन्दर और सुकुमार शरीर होने पर भी वीर रस से जिनका अङ्ग-अङ्ग फड़कता था, जिनकी वीरता, धीरता और दृढ़ प्रतिज्ञा अटूट रहती थी, जो कायरता, भीरुता सप्त व्यसन और आलस्य को घृणा की दृष्टि से देखा करते थे, आत्मबल से जिनका चेहरा दमकता था, उत्साह जिनके रोम-रोम से स्फुरायमान था, चिन्ताओं में, संकटों में और दुखों में जो अपना आत्म समर्पण (आत्मघात) करना नहीं जानते थे, जन्म भर में शायद कभी जिनको रोग का दर्शन होता हो, जो सदैव अपने धर्म-कर्म में तत्पर और पापों से भयभीत रहते थे ।

शिक्षा का प्रभाव - जो अपने हित-अहित का विचार करने में चतुर तथा जो एक दूसरे का उपकार करते हुए परस्पर प्रीतिपूर्वक रहा करते थे । क्योंकि पहले गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते थे, गुरुकुल अर्थात् सच्चरित्र साधुओं के सत्सङ्ग में शिक्षा प्राप्त करते थे ।

जीने की कला - वहाँ मात्र ज्ञान ही नहीं दिया जाता था बल्कि जीवन कैसे जीया जाय यह कला सिखाई जाती थी जिससे आत्मनिर्भर चारित्र सम्पन्न बनकर आनन्द के साथ जीवन जीते थे । उदाहरण के तौर पर बलभद्र, रामचन्द्र जी, देशभूषण-कुलभूषण जी, अकलंक निकलंक जी, विजय-विजया आदि का जीवन चरित्र पढ़कर देखें । तो पता चलता है कि प्रारम्भिक जीवन किस प्रकार से संस्कारित करना चाहिए तभी जीवन की जीवितता, भीरूता का त्याग कर वीरमय बन जाती है ।

आनन्द का अभाव - लेकिन आज की शिक्षा पद्धति में प्राचीन संस्कार विधि पूर्णतः समाप्त हो चुकी है । इसलिए व्यक्ति शब्दिक ज्ञान तो अर्जित कर लेता है, लेकिन जीवन में चरित्र न आने के कारण जिन्दगी का वास्तविक आनन्द नहीं ले पाता ।

अतीत का प्रयास - इस प्राचीन संस्कार युक्त ज्ञान की पद्धति को पुनः जीवित करने के लिए दशलक्षण महापर्वराज पर्यूषण पर दिनांक 20-9-93 से 29-9-93 तक ललितपुर चतुर्मास से तथा दिनांक 9-9-94 से 18-9-94 तक अजमेर चतुर्मास में परम् पूज्य प्रातः स्मरणीय संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परम् शिष्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, क्षुल्लक द्वय - परम् पूज्य क्षु. गम्भीर सागरजी, परम् पूज्य क्षु. धैर्यसागरजी, एवं ब्रह्मचारी द्वय - आदरणीय ब्र. संजय जी के साथ मेरे भी सानिध्य में श्रावक संस्कार शिविर लगाया गया जिसमें प्राचीन संस्कार देने के जो प्रयास किये गये थे वह साकार हुए अतः मुझे इन दोनों शिविरों के लग जाने के बाद ऐसा अनुभव हुआ कि......

साक्षात् उपलब्धि - कल जो कायर और डरपोक बने हुए थे, वे आज वीर क्यों बन गये ? मूर्खता और असभ्यता की मूर्तियाँ विज्ञान और सभ्यता की मूर्तियों में कैसे परिणित हो गई ? जिस पुण्य के कार्य से कल इन्हें घृणा थी, आज उसी को यह प्रेम के साथ क्यों कर रहे हैं ? एक असदाचारी सदाचारिता क्यों करने लग गया ? कल जो सप्त व्यसनों में फँसे थे वे अब श्रावक के मूलगुण पालक क्यों करने लग गये ? जिन्हें घर दुकान से समय नहीं मिलता था वे अधिक समय जिन मन्दिर धर्म ध्यान में कैसे लगाने लग गये ? किसने इनके हृदय में धर्म प्रेम तथा संसार भीरुता का संचार भर दिया है ? इन सारे प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि श्रावक संस्कार शिविर की उपलब्धि जैन संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट पर्वराज पर्यूषण पर्व के पुण्यावसर पर संत शिरोमणि, प्रातः स्मरणीय, आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आदर्श शिष्य, संस्कृति के रक्षक ओजस्वी वक्ता, मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने प्राचीन जैन गुरुकुल परम्परा द्वारा जो गुरुकुलों में अन्तेवासी संयमधारियों को दर्शन-ज्ञान-चारित्र की त्रिवेणी के तट पर एकत्रित करके उनकी कर्म-चेतना को उपादेय बनाकर, धर्म प्रभावना तथा धर्मवृद्धि की भूमिका में प्रशिक्षित किया जाता था । इस परम्परा को प्रकाशित करने के लिये मुनि श्री ने इस शिविर के शिविरार्थियों को दस दिन का गृह-त्याग करवाके श्रावक की साधना का अभ्यास करने के लिये अनेक प्रयोग बताये ।

आगमयुक्त विवेचन - पञ्च परमेष्ठि, श्रावक के छः आवश्यक, सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि, निमित्त-उपादान, व्यवहार नय-निश्चयनयादि विषयों पर आगम के अनुसार ऐसा स्पष्ट विवेचन किया कि सभी शिविरार्थियों के हृदय की कालिमा धुल गयी तथा उज्जवल जीवन के लिये यम-नियम धारणकर, शिविर की यादगार अपने पास रखी । मुनि श्री ने जो ध्यान की प्रक्रिया बतायी वह अभूत पूर्व थी ।

आगन्तुक शिविरार्थी - शिविर में उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों से ७०० शिविरार्थियों ने भाग लिया । मुझे शिविर कार्यक्रम संचालन का मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने आशीर्वाद दिया जिसके प्रभाव से श्रावक संस्कार शिविर के शिविरार्थी गणों का हृदय दस दिनों में सरोवर में रहने वाले कमलों की भांति खिल गया ।

शक्ति का प्रदर्शन - शिविरार्थियों ने शिविर के सम्पूर्ण कार्यक्रम में भाग लेने के साथ में 5 से 10 दिनों के उपवास करके इस भौतिक युग में भी देखा कि आज भी आलौक शक्ति हम युवकों में है ।

महती प्रभावना - पर्यूषण पर्व के उपरान्त जिनदर्शन तथा नगर परिक्रमा में सात सौ शिविरार्थी शान्ति के प्रतीक धवलध्वज व ड्रेस धारण करके जुलूस में चल रहे थे । ताका दृश्य अजमेर नगर में अभूतपूर्व था ।

शिविर की विशेष उपलब्धि - हमने अनुभव किया कि दस दिन के बाद शिविरार्थियों कि घर जाने की भावना नहीं हो रही थी । लेकिन शिविर समाप्ति के कारण घर गये । घर घर जाने पर गृहस्थी के (मायाजाल) कार्यक्रम में मन नहीं लग रहा था जैसे पंक में कमल होता है उसी प्रकार इन शिविरार्थियों का जीवन हो गया है, और श्रावक संस्कार की एक विशेष उपलब्धि देखी गई कि जहाँ मन्दिरों में पूजा - प्रक्षालन करने वाले नहीं मिलते थे वहाँ अब पुजा-स्वाध्याय-सामायिक करने वालों को मन्दिर का स्थान छोटा पड़ जाता है, यह ललितपुर, आगरा, पद्मपुरा, अजमेर श्रावक संस्कार शिविर का साक्षात् प्रभाव है।

गृह में आदर्श - शिविरार्थियों की घर की चर्या क्या कहूँ मात्र उनका कुछ आदर्श रख रहा हूं - प्रतिदिन धोती दुपट्टा से देव दर्शन-पूजन करना । रात्रि भोजन नहीं करना । पानी छानकर पीना । लाटरी की टिकिट नहीं खरीदना । चमड़े की वस्तु का प्रयोग नहीं करना । हिंसाजन्य सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग नहीं करना । सप्त व्यसनों से सदा दूर इत्यादि नियम-यम उनके सह जीवन के अंग बन गये हैं ।

समाज का कर्त्तव्य - इसी तरह यदि आप अपने सम्पूर्ण देश या समाज का उत्थान चाहते हैं और उसके सुधार की इच्छा रखते है तो आप उसमें उत्थानात्मक और सुधार - विषय ऐसे शिविर को सर्वत्र फैलाइये अर्थात् अपने देश व समाज के व्यक्तियों को स्वावलम्बन की शिक्षा दीजिये, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना सिखलाइये, भाग्य के भरोसे रहने की उनकी आदत छुड़ाइये, 'कोई दैवी शक्ति हमें सहायता देगी' इस ख्याल को दिल से भुलाइये, अकर्मण्य और आलसी मनुष्यों को कर्मनिष्ठ और पुरुषार्थी बनाइये, पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, घृणा निन्दा और अभिमान भाव को हटाकर आपस में प्रेम का संचार कीजिये, निष्फल क्रिया-कांडों और नुमायशी (दिखावे के) कामों में होने वाले शक्ति के ह्रास को रोकिये, द्रव्य और समय का सदुपयोग करना बतलाइये, विलास-प्रियताकी दलदल में फँसने और अन्धश्रद्धा के गड्ढे में गिरने से बचाइये, सच्चरित्रता और सत्यका व्यवहार फैलाइये, विचार, स्वतन्त्रता को खूब उत्तेजना दीजिए, योग्य अहार-विहार द्वारा बलाढ्य बनना सिखलाइये, वीरता, धीरता निर्भीकता, समुदारता, गुणग्राहकता, सहनशीलता और दृढ़प्रतिज्ञता आदि गुणों का संचार कीजिये, मिलकर काम करना, एक दूसरे को सहायता देना तथा देश और समाज के हित को अपना हित समझना सिखलाइये ।

शिक्षा का इतना प्रचार कर दीजिये कि देश या समाज में कोई भी स्त्री, पुरुष, बालक और बालिका अशिक्षित न रहने पावे । इन सब बातों के सिवाय जो रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार अथवा सिद्धान्त उन्नति और उत्थान में बाधक हों, जिनमें कोई वास्तविक तत्व न हो और जो समय-समय पर किसी कारण विशेष से देश या समाज में प्रचलित हो गए हों उन सबकी खुले शब्दों में आलोचना कीजिए और उनके गुण-दोष सर्वसाधारण पर प्रगट कीजिये ।

सच्ची आलोचना में कभी संकोच न करना चाहिए । बिना समालोचना के दोषों का पृथक्करण नहीं होता । साथ ही उस बात का भी खयाल रखिये कि इन सब कार्यों के सम्पादन करने और कराने में अथवा यह सब फैलाने में आपको अनेक प्रकार की आपत्तियाँ आवेगी, रूकावटें पैदा होगी, बाधाएँ उपस्थित होगी, और आश्चर्य नहीं कि उनके कारण कुछ हानि या कष्ट भी उठाना पड़े, परन्तु उन सबका मुकाबला बड़ी शांति और धैर्य के साथ होना चाहिए, चित्त में कभी क्षोभ न लाना चाहिए-क्षोभ में योग्य-अयोग्य का विचार नष्ट हो जाता है-और न कभी इस बात की पर्वाह ही करनी चाहिए कि हमारे कार्यों का विरोध होता है, विरोध होना अच्छा है, वह शीघ्र सफलता का मूल है । कैसा ही अच्छे से अच्छा काम क्यों न हो, यदि वह पूर्व-संस्कारों के प्रतिकूल होता है तो उसका विरोध जरूर हुआ करता है ।

विरोधी-अनुयायी - अमेरिका आदि देशों में जब गुलामों को गुलामी से छुड़ाने का आन्दोलन उठा तब खुद गुलामों ने विरोध किया था । पागल मनुष्य अपना हित करने वाले डाक्टर पर भी हमला किया करता है । इसलिए महान् पुरुषों को इन सब बातों का कुछ भी खयाल न होना चाहिए । अन्यथा वे लक्ष्य-भ्रष्ट हो जावेंगे और सफल मनोरथ न कर सकेंगे । उन्हें अपना कार्य और आन्दोलन बराबर जारी रखना चाहिए । आन्दोलन के सफल होने पर विरोधी शान्त हो जावेंगे, उन्हें स्वयं अपनी भूल मालूम पड़ेगी और आगे चलकर वे तुम्हारे कार्यों के अनुमोदन और सहायक ही नहीं बल्कि अच्छे प्रचारक और तुम्हारे अनुयायी भी बन जायेंगे । इसलिये विरोध के कारण घबराकर कभी अपने हृदय में कमजोरी न लाना चाहिये । बल्कि बड़े धैर्य और गाम्भीर्य के साथ बराबर उद्योग करते रहना चाहिये ।

सच्चे हृदय से काम करने वालों और सच्चे आन्दोलनकारियों को सफलता होगी और फिर होगी । उन्हें अनेक काम करने वाले, सहायता देनेवाले और उनके कार्यों को फैलाने वाले मिलेंगे । इसलिए घबराने की कोई बात नहीं है । जो लोग देश या समाज के सच्चे हितैषी होते हैं वे सब कुछ कष्ट उठाकर भी उसका हित-साधन किया करते हैं । अतः स्वपर हितकारक ऐसे श्रावक संस्कार शिविर का आयोजन डगर-डगर में फैलायें ।

ऐतिहासिक कार्य - भारत के राजस्थान राज्य के हृदय अजमेर नगर में जहां विद्यासागर रूपी दिवाकर का उदय हुआ हो, जहां रायबहादुर सेठ मूलचन्द सोनी ने अयोध्या नगरी, अयोध्या का राजमहल, प्लेट पर अंकित 16 स्वप्न, देवविमान, देवों का जुलूस, छप्पन कुमारियाँ भगवान् की माता नवजात शिशु सहित, ऐरावत हाथी पर बालक तीर्थंकर, सुमेरु देवगण अभिषेक के लिये क्षीर समुद्र से जल के 1008 कलश ले जाते हुए, बालक तीर्थंकर पालने में, ऋषभदेव सिंहासनारुढ़, नीलांजना का नृत्य, नीलांजना की जगह अन्य देवी, ऋषभदेव का संसार से वैराग्य, केशलोच करते हुए आदिनाथ, ध्यानस्थ ऋषभदेव, हस्तिनापुर, राजा श्रेयांस द्वारा आदिमहाराज को प्रथम आहार, कैलाश पर्वत पर 72 जिनालय, भगवान् का विहार-चरणों के नीचे व चारों ओर स्वर्ण कमल, समवशरण आदि का दिग्दर्शन स्वर्ण, खचित प्रतिरूप (मॉडलों) द्वारा किया गया हो, ऐसी सोनी जी की नसियाँ में मुनि श्री सुधासागर जी की प्रेरणा से श्रावक संस्कार शिविर लगाया गया हो तो वह ऐतिहासिक स्वाभाविक रूप से हुआ इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

शिविर में योगदान - श्री दिगम्बर जैन समिति तथा सकल दि. जैन समाज अजमेर के कार्यकर्त्ताओं ने जो शिविरार्थियों की आवास स्वास्थ्य, भोजन तथा समय पर विधिवत् जो पूजन की समुचित व्यवस्था कर महान् पुण्य .... अर्जित किया । शिविर संयोजक श्री कैलाशचन्द जी पाटनी ने लग्नता से कार्यभार संभाला । दान-दातारों ने भी खुले हृदय से धन का सदुपयोग किया।

शिविर में तन-मन-धन से जिन महानुभावों ने अपना योगदान दिया है उसका मूल्यांकन करने की क्षमता इन पंक्तियों के लेखक में नहीं है । वह इतना ही कह सकता है उन्होंने तो सातिशय पुण्य बंध कर जीवन सफल किया ।

लेखक की भावना - अन्त में मेरी यही भावना है कि इसी प्रकार से सकल समाज हमेशा ऐसे शिविर आयोजित करती रहे ताकि समस्त समाज सदाचारी और धर्ममय हो जाय ।

"किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या"

॥ श्री ॥

प. पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज के द्वादशम दीक्षोत्सव पर आयोजित त्रि-दिवसीय समारोह
22 सितम्बर से 24 सितम्बर के अन्तर्गत सम्पन्न

शाकाहार संगोष्ठी/प्रदर्शनी/प्रचार/सजीव झांकिया

प्रस्तोता एवं संयोजक
प्रो. सुशील पाटनी
सरावगी मौहल्ला, अजमेर

प. पू. मुनिराज 108 श्री सुधासागरजी महाराज के द्वादशम दीक्षा दिवस को त्रि-दिवसीय भव्य कार्यक्रमों के माध्यम से समारोह पूर्वक मनाने का सौभाग्य सकल दिगम्बर जैन समाज को उनके अजमेर नगर में वर्षावास के दौरान पुण्योदय से प्राप्त हुआ था। त्रि-दिवसीय कार्यक्रम के अन्तर्गत दिनांक 22 सितम्बर से 24 सितम्बर, 1994 तक शाकाहार प्रचार/प्रसारार्थ, शाकाहार गोष्ठी, शाकाहार प्रदर्शनी एवं सजीव झांकियों का आयोजन किया गया तथा शाकाहार का जन-जन तक प्रचार/प्रसार करने के लिये जैनेतर समाज में निशुल्क साहित्य वितरित किया गया। सकल कार्यक्रम पूज्य महाराज श्री के सान्निध्य एवं क्षुल्लक श्री गम्भीरसागरजी एवं श्री धैर्यसागरजी के कुशल मार्गदर्शन में सफलतापूर्वक सुसम्पन्न हो सका। आयोजनों का संक्षिप्त प्रतिवेदन निम्न प्रकार है -

सजीव झांकियों द्वारा प्रदर्शनी - शाकाहार के सुपरिणामों मांसाहार के दुष्परिणामों/पाँच पाप एवं उनके फलों/सप्त व्यसनों एवं उनके परिणामों तथा नर्क में भोगे जाने वाले दुखों को विभिन्न बीभत्स सजीव दृश्यों के माध्यम से दर्शाया गया। अजमेर नगर के इतिहास में इस प्रकार की सजीव झांकियों का प्रदर्शन प्रथम बार ही पंचायत श्री नया धड़ा अजमेर की नसियाँ के जैन भवन प्रांगण में किया गया। कुछ एक दृश्य तो इतने विस्मयकारी एवं सजीव से लगे रहे थे कि दर्शकों को दांतों तले अंगुली दबाते हुये, विस्मयपूर्ण मुद्रा में देखा गया। नर्क के दुःखों में तिल-तिल करे देह के खण्ड के अन्तर्गत मनुष्य के सभी अंगों को काटकर पृथक-पृथक प्रदर्शित किया गया था। व्यक्ति की धड़ कहीं तो खोपड़ी कहीं आदि दृश्यों का बड़ी कुशलता से प्रदर्शन किया गया। दुष्कर्म करने के परिणामों से नर्क में खोलते हुये पानी में मनुष्य को वेदना देने की झांकी भी कलाकारों ने प्रस्तुत की। ललितपुर की प्रसिद्ध संस्था श्री जैन युवा जागृति संघ द्वारा लगाई गई उक्त झांकियों के अतिरिक्त चमत्कारी गाय भी जनता का मुख्य आकर्षण बिन्दु बनी रही तो सिक्का या राशि डालने पर श्री सुधासागरजी महाराज की जयघोष करने पर ही दूध देती थी।

सजीव झांकियों का प्रदर्शन उक्त संस्था के अलावा छोटे बच्चों की संस्था श्री वीर क्लब ललितपुर के द्वारा भी किया गया। संस्था द्वारा लगायी गयी झांकियों में पाँच पाप एवं फलों यथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एवं परिग्रह तथा सप्त व्यसनों एवं उनके फलों का प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुतीकरण किया गया।

उक्त संस्था के सकल कलाकार बधाई के पात्र है।

शाकाहार सर्वश्रेष्ठ बलकारी आहार - शाकाहार के सम्बन्ध में विश्व में फैली भ्रांति (कि शाकाहार के मुकाबले मांसाहार अधिक बलवर्द्धक आहार है) को निर्मूल करने के दृष्टिकोण से श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन उर्फ छोटे पहलवान ललितपुर ने हैरत अंगेज कारनामों के द्वारा शाकाहार की श्रेष्ठता सिद्ध की। अपने दांतों से 20-25 सवारियों से भरी जीप को खींचकर ले जाना, बांस के माध्यम से नारियल को फोड़ना, अपना सिर गड्ढे के अन्दर तथा शेष शरीर गड्ढे से बाहर तथा सिर बाहर एवं समस्त शरीर गड्ढे के अन्दर आदि कारनामों से शाकाहर के बलवर्द्धक आहार होने का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया वे धन्यवाद के पात्र है।

शाकाहार चित्र/पोस्टर प्रदर्शनी - सजीव झांकियों के अतिरिक्त चित्र एवं पोस्टर्स के माध्यम से दो प्रदर्शनियाँ भी लगायी गयी थी।

1. श्री विद्यासागर परिषद् ललितपुर द्वारा आधुनिक साज सज्जा से युक्त लेमीनेटेड 200 चित्रों/पोस्टर्स की मनोहारी चित्ताकर्षक एवं प्रभावकारी प्रदर्शनी लगायी गयी थी।

2. अजमेर में मात्र 15 दिनों के परिश्रम से पूज्य क्षुल्लक श्री धैर्यसागरजी महाराज के सानिध्य एवं मार्गदर्शन में अजमेर के उत्साही नवयुवकों ने अहिंसक भाईयों के बैनर पर 'कत्ल खाने के सौ तथ्य' नामक प्रदर्शनी लगायी गयी । प्रदर्शनी बड़े तरकीब एवं सुन्दर ढंग से लगाई गयी थी । प्रदर्शनी का सौजन्य श्री राजेन्द्रकुमारजी शाहबजाज टीकमगंज की ओर से था।

4. नशे एवं परिणामों से सम्बन्धित प्रदर्शनी - शाकाहार से सम्बन्धित प्रदर्शनियों के अतिरिक्त श्री कैलाशचन्द चौधरी, भीलवाड़ा द्वारा नशे एवं दुष्परिणामों एवं बीमारियों की जानकारी दी गयी थी ।

5. शाकाहार गोष्ठी - शाकाहार प्रचार कार्यक्रम के अन्तर्गत दिनांक 23 दिसम्बर, को रात्रि 7.30 बजे से सोनीजी की नसियाँजी में क्षुल्लक श्री गम्भीर सागरजी के सानिध्य में एवं श्री मान् निर्मलचन्दजी सोनी की अध्यक्षता में शाकाहार गोष्ठी का आयोजन किया गया । क्षुल्लक जी महाराज के अलावा प्रो. धर्मवीर एवं डॉ. यू. बी. जैन ने विशेष विचार प्रकट किये ।

6. शाकाहार साहित्य का निःशुल्क वितरण - शाकाहार के वास्तविक प्रचार के उद्देश्य को ध्यान में रखकर, शाकाहार सम्बन्धी साहित्य को विभिन्न कार्यालयों में अजैन अफसरों, कर्मचारियों तथा अन्य व्यक्तियों को निःशुल्क उपलब्ध कराया गया । साहित्य विभिन्न दातारों के आर्थिक सौजन्य से प्राप्त किया गया था । कत्लखाने के सौ तथ्य, माँसाहार के सौ तथ्य, अण्डे के सौ तथ्य, कत्लखाने का नर्क, कत्ल, क्रूरता, हिंसा, प्रदर्शनी ये खून से सने हमारे बर्बरशोक तथा मेरी भावना आदि पुस्तकों का सेट खूबसूरत शाकाहार से सम्बन्धित लिखे वाक्यांशों से बने रंगीन रेपर में लिपेटकर, खूबसूरत छपे लिफाफे में रखकर भेंट किया गया था जिसकी अत्यधिक मांग रही । लिफाफे पर अण्डे को निर्जीव साबित करने वाले को उचित इनाम की घोषणा का भी वाक्यांश उल्लेखित किया गया तथा अन्य आवश्यक जानकारियाँ छपवायी गयी ।

कृतज्ञता/आभार/धन्यवाद - शाकाहार प्रचार के अन्तर्गत किये गये सकल कार्यक्रमों में पूज्य महाराज का एवं क्षुल्लक द्वय जी का सानिध्य एवं मार्गदर्शन रहा जिसके परिणामस्वरूप कार्यक्रम सफलता की चरम सीमा पर पहुँचे एतदर्थ मैं सकल संघ के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं ।

सजीव प्रदर्शनियों एवं शाकाहार पोस्टर्स प्रदर्शनियों के उद्घाटन हेतु श्रीमान् पूनमचन्दजी लुहाड़िया, श्रीमान् भागचन्दजी गदिया एवं श्रीमान् कंवरीलालजी सेठी, मेड़ता रोड़ वालों का तथा शाकाहार साहित्य के विमोचनार्थ श्री घीसूलालजी पाटनी का आभार- शाकाहार प्रचार के लिए आर्थिक दानदातारों का आभार, झांकियों तथा प्रदर्शनियों लगाने के लिए स्थान की उपलब्धि तथा आवश्यक सुविधाओं के प्रदानार्थ पंचायत श्री छोटा धड़ा एवं पंचायत श्री नया धड़ा का आभार आवश्यक सम्मान को निशुल्क उपलब्ध कराने हेतु श्री अशोक ट्रेडिंग कं. एवं श्री महावीर इलेक्ट्रीकल्स का आभार-सुन्दर लिफाफों तथा रेपर्स के बनाने/बनवाने हेतु एवं सहयोग देने हेतु श्री पदमकुमारजी जैन कर सलाहकार एवं श्री धर्मचन्द पाटनी का विशेष आभार, प्रो. धर्मवीर एवं डॉ. यू. बी. जैन का गोष्ठी में विचार व्यक्त करने हेतु आभार ।

सर्वाधिक आभार की पात्र है वे संस्थायें एवं व्यक्ति जिनकी वजह से कार्यक्रम सफल हुये यथा जैन युवा जागृति संघ ललितपुर, वीर क्लब ललितपुर, श्री विद्यासागर परिषद, ललितपुर श्री नरेन्द्र प्रकाश जी जैन उर्फ छोटे पहलवान, ललितपुर, श्री अहिंसक भाई, अजमेर तथा श्री कैलाशचन्द जी चौधरी भीलवाड़ा आदि ।

श्रीमान् निहालचन्द जी पाटोदी, श्री धनराजजी पाटोदी, श्री सुनील लुहाडिया श्री भीकमचन्द चाँदीवाल, श्री नीरज पाटनी, श्री सुनीलकुमारजी बडजात्या एवं श्री जैनेन्द्रकुमार सोगानी, श्री जैन वीर दल अजमेर का सहयोगार्थ विशेष धन्यवाद. श्री विनयचन्दजी विमलकुमारजी सोगानी एवं श्री दि. जैन संगीत मण्डल, अजमेर द्वारा आगन्तुक दलों के सम्मतनार्थ पारितोषिक प्रदान करने हेतु आभार श्री दि. जैन समिति के पदाधिकारियों सदस्यों के प्रत्यक्ष/परोक्ष योगदान हेतु धन्यवाद ।

शाकाहार कीजिये - लम्बी उम्र लीजिये

की मंगल भावना के साथ

उसे क्या हक है कि-

जो मनुष्य जिस काम को नहीं जानता, उसे उसके फल को भोगने का क्या अधिकार है ? जो कपड़ा बुनना नहीं जानता उसे कपड़ा पहनने का अधिकार नहीं है । जो अन्न पैदा नहीं कर सकता उसे खाने का क्या अधिकार है? प्राचीन काल में बहत्तर कलाएं प्रत्येक को सीखनी पड़ती थी । उनमें कपड़ा बुनना और खेती करना क्या सम्मिलित नहीं था ?

वीरोदय महाकाव्य की संगोष्ठी के तीन दिन

जैसे की बहुत दिनों से सुन रखा था की आचार्य विद्यासागर जी महाराज के परम् शिष्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का चातुर्मास अजमेर में होने जा रहा है तब सारे राजस्थान में खुशी की लहर दौड़ गई । और जब चातुर्मास की निमंत्रण पत्रिका नगर-नगर भेजी गई तो उसमें प्रकाशित कार्यक्रम देखकर मन प्रसन्न हो उठा ।

श्रावक संस्कार शिविर जिसने भारत में ऐतिहासिक रुप धारण कर लिया है उसमें तो मैं शामिल नहीं हो सका लेकिन दूसरी जो राजस्थान के इतिहास में आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के वीरोदय महाकाव्य पर अखिल भारतवर्षीय विद्वत् संगोष्ठी अजमेर में हुई उसमें जरूर मैं शामिल हुआ महाकाव्य की गोष्ठी 13-14-15 अक्टूबर को सम्पन्न हुई थी । गोष्ठी में 40-45 विद्वानों ने भाग लिया उन्होंने अलग-अलग विषयों के ऊपर आलेखों का वाचन किया गोष्ठी का वातावरण इतना सुहावना था की अनेक विद्वानों के अनेक लेखों में मतभेद होते हुए भी रंच मात्र भी मतभेद दिखाई नहीं दे रहा था । हर लेख के बाद वाचक से समस्त विद्वान एवं समस्त जनता प्रश्न करती थी जिसका उत्तर लेखवाचक को देना पड़ता था । उस उत्तर का अंतिम समाधान महाराज श्री द्वारा दिया जाता था । सत्र के उपसंहार में महाराज श्री का ओजस्वी प्रवचन सुनने को मिले जो समस्त लेखों के विषय को स्पष्ठ कर देते थे ।

इस गोष्ठी में विद्वानों द्वारा महाराज जी के आशीर्वाद से आचार्य ज्ञानसागर संस्कृत शब्दकोष निर्मित किया जाए यह निर्णय लिया गया जो बहुत ही प्रशंसनीय है । महाराज श्री ने अपने प्रवचनों में कहा की दार्शनिक बहुत देखे, संत बहुत देखें, साहित्यकार बहुत देखे लेकिन इन तीनों का समावेश यदि एक ही जीवात्मा में देखा गया तो वे है साहित्यक दार्शनिक संत आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज जिन्होंने अपने जीवन मंदिर में चारित्र की साधना करते हुए दर्शन के शिखर एवं साहित्य साधना का कलश रोहण किया है । मैंने अपने जीवन में बहुत सी संगोष्ठियाँ देखी लेकिन इस संगोष्ठी में जो उपलब्धि हुई वह अवरणीय एवं अनुपम हैं, अजमेर के इतिहास में यह स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है ।

अजमेर सकल दिगम्बर जैन समाज ने आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज का साहित्य प्रकाशित कर अपने धन का सदुपयोग करके आलौकिक कार्य किया है । जिसके आशीर्वाद से यह सब कार्य हुआ ऐसे प्रातः स्मरणीय मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के चरणों में मैं अपनी विनयांजलि प्रस्तुत करता हूँ और जिनदेव से प्रार्थना करता हूँ की मुझे भी इनके समान रत्नत्रय धारण करने की शक्ति प्राप्त हो ।

भागचन्द गोधा
एम.ए.एल.बी
कोठियाँ (भीलवाड़ा)

वह अकारथ है

जिस ज्ञान से चारित्र लाभ नहीं होता
वह ज्ञान निष्फल है - अकारथ है ।

।। ज्ञान-विद्या-सुधासागरेभ्योनमः ।।

"णमोकार महामंत्र अखण्ड पाठ"

प. पूज्य आध्यात्मिक वक्ता, संत शिरोमणि आचार्य परमेष्ठी 108 श्री विद्यासागर जी महाराज के परम् सुयोग्यतम शिष्य महान् दार्शनिक संत श्रेष्ठतम प्रवचन कारपूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज क्षुल्लक द्वय गम्भीरसागर जी एवं धैर्यसागरजी ब्र. संजय भैय्या का भव्य अनूठा चिरस्मरणीय चातुर्मास हमारे महान् पुण्योदय से इस वर्ष 1994 अजमेर नगर श्री सिद्धकूट चैत्यालय में अनेक महान् परमधार्मिक कार्यक्रमों के साथ सानन्द सम्पन्न हो रहा है । पूज्य महाराज श्री का प्रवचन अतुलनीय है एवं इस से स्वतः प्रमाणित है कि प्रत्येक दिन के प्रवचन की कैसेट की बुकिंग अग्रिम रहती है ।

प्रत्येक विषय को इस प्रकार विश्लेषण करके श्रोताओं को हृदयगंम कराना आपके प्रवचन की प्रमुख विशेषता है ।

सितम्बर माह में देश के गुजरात प्रान्त (सूरत) में महान् प्रलंयकारी रोग प्लेग का प्रकोप फैला । इस दुःखद समाचार से पूज्य महाराज श्री अवगत हुए, करुणा के सागर परोपकारी महाराज ने अपने एक दिन दिनांक 26 सितम्बर, 94 के प्रवचन में प्लेग महामारी का विवेचन किया ।

वात्सल्यकारी प्रवचन में महाराज ने बतलाया कि जब मानव के सभी प्रकार के प्रयत्न दवाई आदि विफल हो जाते है तो भारतीय संस्कृति में उसके पास एक ही उपाय बचता है, दवा के बाद दुआ, प्रत्येक व्यक्ति यह दुआ करता है प्रार्थना करता है कि उस पर आया किसी प्रकार का दुःख दूर हो । अतएव आईये हम सब मिलकर देश पर आये इस संकट के समय में यह भावना आये, प्रार्थना करे, पाठ करे, कि यह संकट दूर हो महाराज श्री ने मेरी भावना की इन पक्तियों को उद्धृत करते हुए।

मैत्रीभाव जगत में मेरा, सबजीवों से नित्य रहे ।
दीन दुःखी जीवों पर मेरा उर से करुणा स्त्रोत बहे ।।

सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी नहीं घबरावे ।
वैर, पाप, अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावें ।

ईति भीति व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे ।
धर्म निष्ट होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ।।

रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे ।
परम् अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे ।।

प्रबुद्ध श्रोताओं एवं समाज को परोपकारी महाराज ने संकेत किया कि देश में ऐसे रोग भरे दुर्भिक्ष तथा महामारी के समय हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि प्राणी मात्र के लिये, भाई-बहनों के लिये दवा नहीं तो दुआ करें प्रार्थना करे, और इसके लिये महान् हितकारी, कल्याणकारी "णमोकार महामंत्र" का अखंड पाठ करना चाहिये ।

उपदेश को आगे बढ़ाते हुए गुरुदेव ने कहा कि आप लोग कृत संकल्प होकर सामूहिक महामंत्र का पाठ कीजिये, निश्चिय रूप से इसका प्रभाव पड़ेगा यह हमारा दृढ़ विश्वास है, श्रद्धान है ।

प्रतिफल यह हुआ कि दूसरे दिन प्रातः 7 बजे से अतिशय कारी श्री छोटाधड़ा नसियाँजी में श्री दि. जैन समिति के तत्वाधान में प. पू. 108 श्री सुधासागर जी महाराज ससंघ के पावन सानिध्य में कृत संकल्प होकर 120 घंटे का अखंड पाठ का शुभारम्भ हुआ । श्री भीकमचन्द जी पाटनी को व्यवस्थापक बनाया गया । नसियाँजी से नया बाजार तथा सब्जी मण्डी पर विशेष ध्वनि प्रसारक यंत्र लगाये गये । सड़क पर चलने वाला राहगीर स्वतः "णमो अरिहंताणं णमोसिद्धाणं" गुन गुनाने लग जाता था ।

इस प्रकार इस महामंत्र का अखंड पाठ 120 घंटे अर्थात् 5 दिन (27-9-94 से 2-10-94) प्रातः तक लगातार चला। बाल, अबाल, समाज के प्रत्येक वर्ग में इतना अधिक उत्साह रहा कि पाठ बोलने वालों की एक लम्बी श्रृंखला लग जाती थी।

समापन की शुभा बेला पर महाराज श्री ने शुभाशीर्वाद दिया, एवं बतलाया कि आप लोगों ने अखण्ड 120 घंटे तक जिस कल्याणकारी, जनहितकारी महामंत्र के बीजाक्षरों का उच्चारण किया है, निश्चित रूप से प्रभावकारी है, अतिशयकारी है एवं देश में इसका प्रभाव पड़ा है ।

अपने संक्षिप्त प्रवचन में आपने समझाया कि जिस मंत्रोच्चारण का पाठ किया है वायुमंडल इससे प्रभावित हुआ है "ॐ की उच्च ध्वनि" "णमोकार" मंत्र के बीजाक्षरों का ब्रह्माण्ड में प्रकम्पन होता है और यह बीजाक्षर वायुमण्डल में उपस्थित रहते है हजारों वर्ष पूर्व बोले गये रामायण महाभारत आदि के शब्द आज भी इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान है, अतः आप लोगों के द्वारा किये गये इस अखंड पाठ के शब्द सदैव विद्यमान रहेंगे और यदि इन्हें एकत्रित कर लिया गया तो ये ही शब्द प्रतिध्वनित हो जायेंगे ।

समापन के शुभावसर पर पंचपरमेष्ठी विधान का भव्य आयोजन श्रेष्ठी श्री निहालचन्दजी सोहनलालजी लुहाड़िया एवं परिवार द्वारा किया गया । सहयोगियों एवं विधान में सम्मलित होने वाले नर नारियों को श्रीफल देकर पुण्यार्जन किया । णमोकार महामंत्र अखण्ड पाठ में स्थापित मंगलकलश की बोली का सौभाग्य श्रीमान् भागचन्द जी गदिया को प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार महान् परोपकारी महामंत्र का अदम्य उत्साह भरे वातावरण में लगातार 120 घंटे चलकर सानन्द सम्पन्न हुआ। प. पूज्य महाराज 108 श्री सुधासागरजी को शत शत नमन ।

प्रस्तुतकर्ता
भीकमचन्द पाटनी मंत्री
श्री दि. जैन समिति अजमेर

वीरों में भी वीर

जो कदम आपने आगे रख दिया है,
उसे पीछे मत हटाओ, तभी आप विजयी होंगें ।
आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए आपको वीरों में भी वीर बनना पडेगा ।
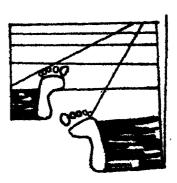
आडम्बर अर्थात् दम्भ

जिसमें जितनी सजावट होगी, उसमें उतना ही नकलीपन होगा ।
आडम्बर दम्भ का द्योतक है । जिसको वस्तु - स्वरूप का
ज्ञान नहीं होता, वही आडम्बर को पसन्द करता है ।

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के प्रवचनों का सारांश

धर्म और धर्मात्मा

संकलनकर्त्ता
कमलकुमार जैन (बड़जात्या)

धर्म की रक्षा करनी है तो पहले धर्मात्मा की रक्षा करनी पड़ेगी । घी को बचाने के लिये घी के बर्तन को बचाना जरूरी है । यदि बर्तन फूट गया तो घी भी नहीं बचेगा । साधु को बाहरी क्रिया सुखदाई लगती है । साधु कहता है कि पुण्य का कितना उदय है कि मेरे पास धागा नहीं है, जबकि गृहस्थ सोचता है कि पाप का कितना उदय है कि मेरे पास वस्त्र नहीं है । साधु जिसमें सुख मानता है आप उसमें दु:ख मानते हो । साधु सारे कष्टों में भविष्य की पर्याय देख लेता है । शीत, उष्णता साधु व गृहस्थ दोनों को लगती है, पर साधु कष्ट का अनुभव नहीं करता, इसलिये महान् हो जाता है । आप जिसे दु:ख का कारण मानते हो साधु उसे सुख का कारण मानता है । वह वर्तमान में बैठकर भविष्य की पर्याय को देख लेता है जिस प्रकार गृहस्थ भोजन बनाने में भोजन खाने की पर्याय के आनन्द को देख लेता है और भोजन बनाने में हुए दु:ख को दु:ख नहीं मानता । भोजन बनाना व खाना दोनों को आवश्यक मानता है । उसी प्रकार व्यवहार की क्रिया में निश्चय की साधना करनी है । धर्म में दोनों ही आवश्यक है । सच्चा व्यवहार आज तक नहीं किया, यदि कर लेते तो निश्चय की उपलब्धि हो जाती । सच्चे भक्त नहीं बने इसलिये भगवान् भी नहीं बन सके । जब तक मस्तक नहीं झुकाओगे, समर्पण नहीं करोगे, तब तक पूज्य नहीं बनोगे । जैसा-जैसा गुण उपास्य में होगा वैसे-वैसे गुण उपासक में आयेंगे । जो जिसको पूजता है वह वही बनता है । अरहंत बनना है तो अरहंत की पूजा करो । धन सम्पत्ति, जमीन जायदाद, भोगसामग्री की प्राप्ति के लिये पूजा मत करो। क्योंकि ये चीजें भगवान् तुम्हें दे नहीं सकते ये तुम्हारे लिये अहितकर है । जहाँ पूज्यता का भाव हो वहाँ कुछ नहीं मांगना। मांगने वाला भिखारी होता है । और भगवान् भक्त को भिखारी नहीं बनने देना चाहते वे तो भक्ति को भगवान् के रूप में देखना चाहते हैं । जो व्यक्ति अपना जीवन ऐश आराम में बिता रहा है तो समझो उसका पतन निश्चित है । लोग पुण्य के उदय में भगवान् को भूल जाते हैं और पाप के उदय में भगवान् याद आते हैं । पुण्य के उदय में धर्म से लौट जाते हैं और पाप के उदय में धर्म में लौट आते हैं ।

असंख्यात जीवों की हिंसा का पाप एक बार रात्रि भोजन करने से होता है । सूर्यास्त से दो घंटे पूर्व एवं सूर्योदय से दो घंटे बाद खाने को कहा है अभव्य को रात्रि भोजन त्याग का परिणाम नहीं होता है । जिस घर के पुरुष समय पर भोजन करे एवं महिलाएँ पुरुषों के बाद में भोजन करें तो वह घर स्वर्ग कहलाता है । गृहस्वामिनी सब के बाद में भोजन करती है। घर भी एक भंडार है । घर में रहने वाले एक दूसरे के सुख-दु:ख में भागीदार है । वे आपस में कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं करते। जहां घर में भोजन बनता है वहाँ हरेक व्यक्ति नहीं जा सकता । भोजन बनाने वाला भी नहा धोकर जायेगा, भोजन बनाते समय एक दाना भी मुँह में नहीं रखेगा जब सब भोजन कर चुकेंगे तब वह भोजन करेगा । आज तो परोसने वाला पहले खा लेता है इसलिये सिद्धि भी नहीं होती । एक महीने का भोजन 25 दिन में ही समाप्त हो जाता है । आज घरों में जूते चप्पल पहन कर भोजन करता है, बिना हाथ मुँह धोए भोजन करते हैं । भोजन बनाते समय धार्मिक पाठ करना चाहिए, जिससे भावना शुद्ध होगी, यह भावना भोजन में भी जाएगी और यदि नास्तिक भी वह भोजन करेगा तो आस्तिक हो जायेगा । भावना का बहुत बड़ा परिणाम होता है । भोजन बनाने वाले के क्रोधमय परिणाम होंगे तो खाने वाले के भी क्रोधमय परिणाम होंगे । यदि चौका (रसोई) भ्रष्ट है तो तुम भी भ्रष्ट हो जाओगे ।

❑❑❑

ज्ञान

- *विद्या कामधेनु है ।*
- *विद्या मनुष्यों की यशदात्री है ।*
- *विद्या कल्याणकारी मानी गई है ।*
- *विद्या साथ जाने वाला धन है ।*
- *विद्या मनुष्यों के लिए चिन्तामणि के समान है ।*

प्रकृति एवं पुरुष

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज
का प्रवचनांश

प्रकृति तो मानव के अनुकूल चलती है पर मानव प्रकृति के अनुकूल नहीं चलता । प्रकृति जीवद्रव्य का विनाश बहुत कम करती है पर यह मानव प्रकृति का (पुद्गलद्रव्य) बहुत विनाश करता है । आज जल पर अग्नि पर वायु पर, वनस्पति पर कितना अत्याचार हो रहा है । कितना पानी नालियों में दिन भर व्यर्थ बहता रहता है । जल कहता है कि या तो नालियों को सूखा रखो या नदी को सूखा रखो । जल से बिजली बनाई जा रही है । वाहनों से कितना प्रदूषण फैल रहा है । गाड़ियों से जो धुआँ छोड़ा जा रहा है उसके कारण प्रतिवर्ष 8 करोड़ टन कार्बन जमा हो रहा है । बिजली उत्पादन के फलस्वरूप जल का शोषण हो रहा है । प्रकृति की वेदना को, उसके आंसुओं को सन्त देख रहा है । सृष्टि की स्थिति जटिल होती जा रही है । एक न एक दिन सारे आविष्कार बंद हो जायेंगे । प्रदूषण के लिये हम दोषी हैं, प्रकृति दोषी नहीं है । प्रकृति में कार्बन को बदलने की क्षमता है । प्रकृति ऑक्सीजन देती है । लेकिन कार्बन यदि ज्यादा मात्रा में छोड़ा जायेगा तो बदलने में समर्थ नहीं होगी । शरीर से श्वास के द्वारा जो कार्बन निकलता है वह तो प्रकृति परिवर्तित कर देती है । लेकिन कृत्रिम कार्बन तो जमा होता रहता है । प्रदूषण के कारण ही अनेकों बीमारियाँ फैल रही है । आज मानव की कमाई का आधा भाग दवाइयों पर खर्च हो रहा है ।

आज शरीर को सजाने के लिये, दो सैकण्ड के शौक के लिये अनेकों जीवों की हत्या कर देते हैं । आपके लिये जो क्रीम, पाउडर, शेम्पू, लाली आदि जो बनती है । रेशमी साड़ियाँ, कोषा का कुर्ता ये सब जीव हिंसा से बनती है । दस हजार कीड़े मरते हैं तब एक कोषा का कुर्ता बनता है । कपड़ा पहनना बुरा नहीं है पर जीव हिंसा से बनने वाले कपड़ों का त्याग होना चाहिये । सौंदर्य प्रसाधन के प्रयोग से कुरुप शरीर मिलता है.। .कर्म की बदौलत जैसा शरीर रूप मिला है वही सही होता है । सारी जिंदगी शरीर को साफ करने में गुजार दी । शरीर तो कोयले के समान है जिसको कितना भी साफ करो, पर सफेद नहीं होगा । यह तो ध्यान रूपी अग्नि से ही साफ हो सकता । शरीर ऐसा बदमाश है कि इसे न खिलाओ तो काम नहीं करता, खिलाओ तो भी काम नहीं करेगा । मात्र सोयेगा ।

व्यक्ति की आत्मा में जैसा परिणाम आना शुरू होता है, संसार में प्रकृति पर वैसा ही प्रभाव शुरू हो जाता है । तुमने मारने के लिये हाथ उठाया, पुद्गल भी कहता है कि तुम्हें भी मारा जायेगा । आत्म तत्व से प्रभावित होने की शक्ति प्रत्येक द्रव्य में है । जितना ज्यादा व्यक्ति के मन में छलाव आया प्रकृति भी तुम्हारे साथ छल छलाव करेगी । संसार नहीं बदला है, हम बदलते जा रहे हैं इसलिये प्रकृति भी बदलती जा रही है । तुमने एक बार किसी का अहित किया तो तुम्हारा दस बार अहित होगा । यदि तुम्हारे मन में सृष्टि के प्रति अहित के भाव नहीं है, कल्याण के भाव हैं, किसी को कष्ट देने के भाव नहीं है, तो तुम्हें भी कोई कष्ट नहीं देगा । यह सोचो कि जीभ की लोलुपता के लिये कितने जीवों की जिन्दगी बरबाद कर दी । दुनियाँ में जितने भी जीव हैं वे जन्म से कभी मांसाहारी नहीं होते हैं । जन्मते ही माँ का दूध पीते हैं । बाद में माता पिता द्वारा सिखाने पर मांस भक्षण करने लगते हैं । मांस भक्षण (मांसाहार) पर्यावरण के लिये सबसे बड़ा अभिशाप है । एक दिन की भूख मिटाने के लिये एक जिन्दगी को बरबाद कर देते हैं । जब यह अत्याचार बढ़ते जायेंगे बूचड़खाने खुलते जायेंगे गायों की हत्याएँ होती जायेगी । जहाँ पूर्व में गायें पूजी जाती थी, वहीं कटती जा रही है । जिस माँ ने तुम्हे दूध पिलाया उसी को निःसहाय होने पर तुमने कसाई को कटने के लिये बेच दिया । जिस गाय का दूध पीया उसका ऋण चुकाना तो दूर उसे कटने के लिये बेच दिया । यह भारत गर्त के दलदल में चला जायेगा । किसी भी शास्त्र में मांस खाने की बात तो दूर मांस स्पर्श करने को भी मना किया है । तुम राम को अपना आदर्श मानते हो, राम के भक्त कहलाते हो । उनके आदर्श को जीवन में अपनाओ । राम ने कभी मांस नहीं खाया, यदि बनवास में कभी फल-फूल नहीं मिले तो भूखे रह गये । अतः जैसा राम का जीवन था वैसा ही तुम्हारा भी होना चाहिए ।

इसी प्रकार नशे की बात है । सदमा कभी नशे से दूर होने वाला नहीं है । बल्कि नशे से सोचने की ताकत नष्ट होती है । एक सिगरेट से खर्च हुई ताकत को 250 ग्राम बादाम खाकर भी प्राप्त नहीं कर सकते । जब बल्ब फ्यूज होना होता है तो प्रकाश बढ़ जाता है, उसी प्रकार नशे से ताजगी नहीं आई यह शक्ति नाश का सूचक है । ताजगी फ्यूज होने का प्रतीक है ।

❑ ❑ ❑

राम राज्य लाने के लिये राम को मत बुलाओ, तुम राम बन जाओ । घट-घट में राम जगाओ । घट-घट में राम बैठा है । पहले अपने आपको सुधारने की बात करो । एक-एक कण से भण्डार भरता है । एक व्यक्ति सदाचारी बन जाय तो सारी सृष्टि सदाचारी बन जायेगी । जब तक तुम्हारी दशा नहीं बदलेगी तब तक दुर्दशा ही रहेगी ।

पाप के उदय में पाप होता नहीं है । पाप के उदय में मात्र आत्म हत्या के परिणाम हो सकते हैं । पुण्य के उदय में ही तुम पाप करते हो । नरक में विश्वास जाग जाता है, वहाँ असंख्यात सम्यग्दृष्टि हैं जो मनुष्य पर्याय प्राप्त कर, मुनि बन आत्म कल्याण करने के लिए लालायित है । यहाँ तुम मनुष्य पर्याय प्राप्त कर यों ही खो रहे हो । सब पुण्य के संगी साथी है । पाप के उदय में सगे मित्र भी साथ छोड़ देते हैं । संसार भय के कारण ही व्यक्ति मुनि बनता है । धर्म के कारण नहीं बनता । मोक्ष मार्ग के आनन्द को चखकर कोई मोक्ष मार्ग की ओर नहीं आता, उसे यह श्रद्धान हो जाता है कि संसार दुःखदायी है । आप धर्म की खोज में लग रहे हो, इसीलिये भटक रहे हो । पाप को पहचानो, अधर्म के स्वभाव को जानो । जहर को पहिचान लोगे तो मरने से बच जाओगे । स्वभाव की रक्षा क्या करना, विभाव की पहरेदारी करनी है । स्वभाव कहीं भाग नहीं रहा है । बाहर का विभाव निमित्त अन्दर न चले जावे अतः उसे हटाने का प्रयास करना है । विभाव क्या-क्या है, इसको समझना है । विभाव को हटाते ही स्वभाव प्रकट हो जायेगा ।
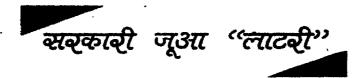
मुनि श्री सुधासागरजी महाराज
का प्रवचनांश

यदि पाप को राजकीय संरक्षण मिल जाय तो वह सिर पर सवार हो जाता है । आज लाटरी को सरकारी संरक्षण प्राप्त है । लाटरी के चक्कर में कई करोड़पती-रोडपती हो गये । तुम जैन हो, चाहे भीख मांग लेना पर लाटरी का काउन्टर मत खोलना। लाटरी का काउन्टर खोलकर अपने को शकुनि मामा के वंशज मत कहलवाना । यदि लाटरी की दुकान खोलो तो उसका नाम "शकुनि मामा के भांजे की दुकान" रखना । मामा की दुकान पर दुर्योधन (भाजा) ही टिकट खरीदने जायेगा । लाटरी के टिकट खरीदने वाले दुर्योधन के वंशज हैं । जहाँ दुर्योधन का वंशज शकुनि का वंशज मिल जाता है वहाँ लाटरी जूआ होता है । वहीं महाभारत होता है एक घर भी अग्नि देने को नहीं बचता । एक दिन के जुए ने सती को नंगा करने की कोशिश की । भीम, अर्जुन जैसे महाबली को भी दास बनना पड़ा, चौदह वर्ष तक वन की ठोकरें खानी पड़ी । खून की नदियाँ बह गई । एक दिन का जुआ सारी जिन्दगी को बरबाद करने के लिये काफी है । आज मनुष्य का लाखों-करोड़ों रुपया रोजाना लाटरी में खर्च हो रहा है । रोज हजारों परिवार बरबाद (दरिद्र) हो रहे हैं । जब हजारों परिवार बरबाद होते हैं, तब मात्र एक परिवार बनता है । जो लाटरी में रुपया खर्च करता है, उससे धनवान बनना चाहता है, वह तो मूर्ख शिरोमणि है ।

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज
का प्रवचनांश

चौका मन्दिर जैसा पवित्र होता है । यदि महिलाएँ खड़े होकर भोजन बनाएगी तो खड़े होकर ही भोजन किया जाएगा आज बफर (बफे) सिस्टम चालू हो गया है जिसे गिद्ध भोज भी कहते हैं । गिद्ध भोज भारत के विनाश के लिए एक तरह का कीड़ा है । यह भारतीय संस्कृति नहीं है । भारतीय संस्कृति में मुनि बैठकर एवं गृहस्थ खड़े होकर भोजन करें तो भ्रष्ट हो जाता है। भारतीय व्यक्ति खाने का भूखा नहीं होता है । पूर्व में जब बैठा कर थाली में भोजन परोसा जाता था तब खाया करते थे । आज बफर में खाने को टूट पड़ते हैं । ऐसा आभास होने लगता है कि या तो नरक से आये हो या नरक जाने की तैयारी कर रहे हो । स्वयं के घर में भी गृहस्वामिनी द्वारा भोजन के लिए आग्रह करने पर भारतीय व्यक्ति भोजन करता है वर्ना भूखा रह जाता है । भोजन कराना गृहस्वामिनी का कर्तव्य है । अपने हाथ से स्वयं भोजन नहीं उठायेगा, जब उसके निमित्त से भोजन परोसा जायेगा तब भोजन करेगा । जब घर में इतना स्वाभिमान है तो दूसरे के घर पर कितना स्वाभिमान होगा। बफर सिस्टम में तो सारा झूँठा भोजन ही है और झूठा भोजन या तो श्वान पर या मातंग ही करेगा, जैनी कहलाने वाला तो नहीं करेगा । जो जैनी बफर भोजन करता है व

करवाता है, वह जैनी नहीं शूद्र है । अब एक प्राण है आप उसकी शुद्धता को भूल गये । आप संस्कृति का विनाश कर रहे हैं । आप महाजन हो, भिखारी नहीं हो । अतः बफर सिस्टम को छोड़ो, जैनत्व को मत छोड़ो।

कूकर, गैस चूल्हा के खाने से अनेकों बीमारियाँ पैदा होती है । ज्यादा ताप देने के कारण खाद्य-वस्तु के तत्व जल जाते हैं और भोजन अनिष्टकारी हो जाता है । यदि घर में रात्रि भोजन होता है तो उस पाप का छठा हिस्सा घर के मुखिया को भोगना पड़ेगा चाहे वह स्वयं रात्रि भोजन नहीं करता हो । परिवार में जितने भी सदस्य यदि पाप करते हैं तो उसके फल का छठा हिस्सा मुखियाँ को भोगना पड़ता है । यदि किसी बरात में शराबी है तो वह शूद्रों की बारात है ।

जिस घर में महिलाएँ सभ्य है, वह स्वर्ग के समान है । जिसका गृहस्थ जीवन समाचीन नहीं है, उसका परमार्थ भी समीचीन नहीं हो सकता । महिलाओं को घर धर्म को संभालना चाहिये । घर में अनीति, कलह, अत्याचार नहीं होने चाहिये। अभक्ष्य भक्षण नहीं होना चाहिये । घर के सभी सदस्यों को एक आत्मा शरीर अलग-अलग के समान रहना चाहिये ।

गर्भपात

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज
का प्रवचनांश

दुनियाँ भले ही निष्ठुर हो जाय पर जन्म देने वाली माँ कभी निष्ठुर नहीं होती है । यदि माँ निष्ठुर हो गई तो समझो कि वह माँ नहीं नागिन है । आज वर्तमान समय में कितनी निष्ठुरता बढ़ गई है कि गर्भपात (Abortion) पद्धति को अपनाया जा रहा है जिसे तुमने बुलाया है तो तुम्हारी शरण में (गोद में) आ गया है तुम उसकी हत्या कर देते हो । क्षत्रिय तो वह होता है जो अनाथ को कभी नहीं मारता है, वह स्त्री, बालक, अनाथ पर कभी शस्त्र नहीं चलाता है । गर्भ में जो शिशु (जीव) आया है, वह भी अनाथ है, तुम उसकी हत्या कर देते हो, वह भी धर्म के लिये नहीं, अपनी वासना की पूर्ति के लिये । अपने लाल की हत्या कर देते हो । पहले घर-घर के बूचड़ खानों को बंद करो, तब भारत वर्ष के बूचड़खानों को बंद कराने की कोशिश करना । तुम्हारे अन्दर के मातृत्व परिणाम, पितृत्व परिणाम, अहिंसक परिणाम ही घर के बूचड़खाने बंद करा सकते हैं। धर्म ग्रन्थों में पुत्र को मंगल नहीं कहा, पुत्री को मंगल कहा है । धार्मिक कार्यों में कन्या को बुलाते हैं । शादी के बाद भी सौभाग्यवती के रूप में बुलाते हैं । पुत्र यदि साधु बन जाय तभी मंगल है वर्ना तो मात्र दंगल ही है । जो मांगलिक है, उसका आप विनाश कर रहे हैं तो पापी ही हैं । पुत्री जो मांगलिक है उसके पैदा होते ही उसे पापिन कह दिया जाता है । यह दुर्भाग्य ही है ।

आज नारी का जितना शोषण हुआ है, जितना अपमान हुआ है उसमें नारी का ही हाथ ज्यादा है । नारी की उपेक्षा नारी ही करती है । जितनी बहुएँ दहेज के लिये जल रही है वह नारी के कारण ही जल रही है । कोई पुरुष अकेला नारी के प्राण नहीं ले सकता । अतः घर-घर के बूचड़ खानों को बंद करें ।

पाप से डरो

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज
का प्रवचनांश

अज्ञानी प्राणी क्रोध करने के बाद पछताता है । जबकि ज्ञानी क्रोध करने पूर्व विचारता है । पश्चाताप का नाम ही भेद-विज्ञान है । आप मात्र जिनवाणी को सुनते हैं, मानते नहीं है । यदि मानते तो उसी अनुसार चलते । मैं कभी किसी चीज का त्याग नहीं कराऊँगा । मैं तो फल के बारे में बताऊँगा । बड़े बड़े तत्त्ववेत्ता भी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करा पाते, वही सम्यग्दर्शन कभी-कभी वेदना के माध्यम से उत्पन्न हो जाता है । मानव के जीवन में जब सुख का उदय आता है तब वह पाप की ओर प्रवृत्ति करने लग जाता । जब पाप कर्म का उदय आता है उस समय भगवान् को याद करता है । किसी भी कार्य को करने से पहले सोचलो, विचार करलो ताकि पछताना न पड़े तब कोई अनर्गल कार्य नहीं होगा । अपना दुःख मिटाने के लिये आदमी क्या-क्या अनर्थ कर जाते हैं । प्राण बचाने के लिये प्राण प्यारों को मारने में भी नहीं चूकते, पैरों से रौंद देते हैं । जब व्यक्ति ऐसा विचार करता है कि अपने मुख से ऐसी वाणी नहीं बोलूँगा, जिससे दूसरे को कष्ट हो तो सारे मंत्र सिद्ध हो जायेंगे । मन से किसी का बुरा नहीं विचारूँगा ऐसा भाव होने पर मन की सिद्धि हो जाती है । जिसके मन में एक अन्तर्मुहूर्त के लिये भी यह संकल्प हो जाता है कि मेरे द्वारा किसी जीव की विराधना न हो तो उसे चारण ऋद्धि की प्राप्ति हो जाती है । मन, वचन काय से किसी का बुरा नहीं विचारोगे तो केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी । इसमें शक्ति की संहनन की आवश्यकता

भी नहीं है । दिगम्बर साधु कभी भी साधना से प्राप्त शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करते । उनको तो शक्तियों के प्राप्त होने तक का भी ध्यान नहीं होता । वह तो अपनी आत्मा में लीन रहता है । उस अवस्था का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

सबसे कम कर्मों का बंध काय से करता है उससे अनंतगुणा वचन से करता है एवं जितना वचन के द्वारा कर्मों का बंध करता है उससे अनंत गुणा मन से करता है । काय से हिंसा कम होती है । काय से हिंसा करते-करते प्राणी थक जायेगा, एक समय ऐसा भी आयेगा कि वचन से भी थक जायेगा, लेकिन मन से किये पाप की कोई सीमा नहीं होती । मन से किया पाप देखने में भी नहीं आता, कोई पकड़ नहीं पाता । वचन व काय के द्वारा किया पाप पकड़ में आ सकता । मन से किये पाप की अदालत कर्म है जहाँ पाप के फल का निर्णय होता है ।

पाप छोड़ने के लिए सबसे पहले काय से पाप करना छोड़े, फिर वचन के द्वारा पाप करना छोड़े उसके बाद मन से पाप करना छोड़े । यदि पहले सीधा ही मन पर आक्रमण किया, उसको कंट्रोल करने की कोशिश की तो असफल, पागल हो जाओगे । अत: मन को वश में करने का तरीका पहले काय से पाप करने पर कन्ट्रोल करो क्योंकि शरीर से पाप कम होता है । फिर वचन पर कंट्रोल करो । यदि मन दोड़ता है तो दोड़ने दो । पहले शरीर को स्थिर करो । यदि काय (शरीर) स्थिर हो गया तो धीरे-धीरे मन भी स्थिर होने लग जायेगा ।

साधु का मन पीछे-पीछे चलता है और स्वादू का मन आगे-आगे चलता है । अत: मन को आगे मत रखो, पीछे रखो। पहले मन को कन्ट्रोल करने की कोशिश की तो तनाव में आजाओगे । अत: यदि माला फेरने बैठे तो छोड़ना नहीं चाहे मन कितना भी परेशान करे, कितना ही इधर-उधर भटके । चिंता नहीं करें ।

ध्यान का बहुत महत्व होता है । ध्यान में बैठा शिष्य गुरु के द्वारा भी वंदनीय होता है । जो सुधरने में लगा है वह महान है जो सुधारने में लगा है वह महान् नहीं है । आत्मा का कल्याण सुधरने में होगा । आज 21 वीं सदी में साधु परमेष्ठी कम है । यह देश खुदाओं का है यहाँ खुदा का बंदा नजर नहीं आता है । आज आचार्य ज्यादा है । जब तक आचार्य पद का त्याग नहीं करेंगे तब तक निर्विकल्प समाधि नहीं हो सकती । साधु निर्विकल्प होता है । प्रवृत्ति में आचार्य पद वंदनीय है पर निवृत्ति में निश्चय ही साधु वंदनीय है ।

दहेज नहीं देहज मांगिए

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज का प्रवचनांश

आज मानव दहेज के पीछे पड़ा है । प्राचीन काल में सगा लड़का भी कभी भूलकर भी बाप की कमाई नहीं खाता था । जो बाप की कमाई नहीं खाता, वह पत्नि के बाप की कमाई खावे यह संभव ही नहीं था । सगर चक्रवर्ती के 60 हजार पुत्रों ने अपने पिता के धन का उपभोग करने मे मना कर दिया । जो स्वयं न कमावे, वह पुण्यात्मा नहीं, पापात्मा है, अकर्मण्य है । सच्चा जैनी वह है जो बाप की नहीं आपकी (स्वयं) की कमाई खायेगा । जो पत्नी के बाप की कमाई खा रहे हैं, दहेज ले रहे हैं, वे जैनी नहीं, भिखारी हैं ।

प्राचीन काल में लड़के का पिता लड़की के पिता के पास जाकर कहता था कि आपको देहज यानि जो देह से उत्पन्न हुई है, यानि कन्या मेरे लड़के के लिए प्रदान करें । शादी में मात्र देहज यानि कन्या लाओगे तो देव कहलाओगे । और दहेज लाओगे तो राक्षस कहलाओगे, भिखारी कहलाओगे । जो दहेज देता है वह दान है । दान जो देता है, वह चुपचाप स्वीकार किया जाता है । जो मांग कर लिया जाता है, वह भीख है । जो बाहू से न कमा सको (यानि कन्या) उसे मांगलो । जो बाहू से कमा सको (धन) उसे मत मांगो । मांग कर दहेज लेना एक प्रकार का कर्ज है, जिसे इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में नौकर बनकर चुकाना पड़ेगा । जब तक दोनों हाथ है तब तक हाथ की कमाई से खाओ । धन कैसे कमाया जाता है, यह कला तो सीख लेना, पर दूसरे के धन को लेने की इच्छा न करना । कन्या दान भी करुणादान के अन्तर्गत आता है । जो दहेज मांगता है वह कुपात्र है, भिखमंगा है ।

जो बाप अपने लड़के के लिये दहेज मांगता है, वह बाप नहीं, बैरी है, पापाजी नहीं, पापीजी है । मछुआरा (धीवर) जो पेट भरने के लिये मछलियां बेचता है, वह जितना हिंसक, पापी नहीं है जितना दहेज लेने वाला, लड़कों को बेचने वाला बाप है। वह तो बाप नहीं, सौदागर है जो लड़कों का सौदा करता है । वह लड़का उसका पुत्र नहीं, सौदा है और वह बाप नहीं, व्यापारी है । युवकों को चाहिये, जिस दिन पता चले कि उनका पिता दहेज मांग रहा है, उस दिन से उन्हें पापाजी नहीं पापीजी कहने लग जाओ । क्योंकि पापा कभी अपने पुत्र को बेच नहीं सकता जो बेच रहा है वह पापा हो नहीं सकता ।

❑❑❑

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के प्रवचनों में से संकलित सूक्ति वाक्य

सुधासिन्धु के अनमोल मोती

प्रस्तुति : भरतकुमार बड़जात्या

- साधु हृदय का कच्चा (कोमल) होता है और राजा कान का कच्चा होता है ।
- धार्मिक कार्यों में विघ्न डालने पर निःकाचित कर्मों का बंध होता है ।
- शत्रु को मारने में नहीं, उसको दुख देने में शत्रु को आनंद आता है ।
- असंयम के साथ सम्यग्दर्शन अनर्थ करा देता है और संयम के साथ सम्यग्दर्शन कर्मों का क्षय करा देता है ।
- मान कषाय में दूसरे को अपमानित करने के भाव होते हैं।
- दूसरे को कमजोर और अपने को बड़ा मानने वाला अहंकारी सबसे ज्यादा कमजोर होता है ।
- दो अहंकारी मिलने पर कुश्ती चालु हो जाती है ।
- दो ज्ञानी मिलते है तो ज्ञान के रहस्य खुलते हैं।
- धोखे से प्राप्त ज्ञान कल्याणकारी नहीं होता ।
- अहंकारी के सामने उसकी तारीफ कर दें तो वह आपके सामने पानी भरने लग जायेगा ।
- ऊंट का अहंकार पहाड़ के निकट नष्ट होता है ।
- चाय अंदर के ज्ञानतंतुओं का विनाश कर देती है ।
- धर्म नीति में सबको साथ लेकर चलते है, राजनीति में दूसरे को मिटाने का भाव होता है ।
- अहंकार की चोटी पर चलने वाला अवश्य नीचे गिरेगा।
- भोग निर्जरा का कारण नहीं है, योग निर्जरा का कारण है।
- संत वह है जिसके पास शब्द नहीं अनुभव है ।
- पांच परमेष्ठी का राग यदि आग है तो पांच पापो का राग भी आग है ।
- पूजा तब तक करनी है जब तक पूज्य नही बन जाओ।
- प्रशंसा की भट्टी में अच्छे-अच्छे पिघल जाते हैं।
- सब जीवों को अपने जैसा मानो यही मैत्री है।
- सीमित व्यक्तियों को अपना मानना मोह है।
- साधु सारी दुनियां को अपना मानते हैं और निर्मोही कहलाते हैं ।
- पर घात सो घात परन्तु आत्महत्या महाघात है ।
- मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ अच्छा है ।
- निषेध भी आकर्षक का कारण बनता है ।
- मेरे द्वारा कोई दुखी न हो जाय ऐसी भावना वाला धर्मात्मा है । मेरे द्वारा कोई सुखी न हो जाय, ऐसी भावना वाला पापात्मा हैं ।
- सम्यक् दृष्टि भिखारी को भिखारी नहीं कहता, वह कहता है कि इसमें भी केवलज्ञानी होने की शक्ति है ।
- दूसरे की निंदा से नीच गौत्र का बंध होता है ।
- वैद्य यदि जहर भी दे देवे तो ले लेना लेकिन जो वैद्य नहीं है वह अमृत कहकर भी देवे तो ग्रहण मत करना। क्योंकि कभी अमृत भी मार देता हैं ।
- जो कल पर टालता है उसका कल कभी नहीं आता है।
- भविष्य को जानने वाला काल विजेता है ।
- अधर्म व पाप को कल के लिये टाल दो तो कल्याण हो जायेगा ।
- भगवान् ने जो जाना उस पर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है।
- भगवान् ने जो कहा उस पर चलना सम्यग्चारित्र हैं।
- जब मौत का समय मालूम नहीं तो हर पल जागरुक रहना पड़ेगा ।
- भीख मांगने वाला फिर भी स्वाभिमानी हो सकता है पर नौकरी करने वाला कभी स्वाभिमानी नहीं हो सकता ।
- जिसको दुनियां की कोई ताकत नहीं झुका पाती उसे कर्म झुका देते हैं ।
- महत्वाकांक्षी वर्तमान सुख से भी वंचित हो जाता है।
- वह जिसने ब्रह्म मुहुर्त को बिगाड लिया उसने सारा दिन ही बिगाड़ लिया ।
- जिसके पास कुछ धन है उसको मखमल की गद्दी पर भी नींद नहीं आती।
- धन साधु की साधना में बाधक है ।
- अनजाने रास्ते पर जो पहले स्वयं चले वह धर्म नेता है और अनजाने रास्ते पर दूसरों को आगे कर दे वह राज नेता है।
- मंदिर बनता है धन से लेकिन पूजा होती है मन से ।
- जो आज पापी है वह पुण्यात्मा भी हो सकता है ।
- इसीलिये पापी से नहीं पाप से घृणा करो ।
- जहां क्या पता ? वहां सब लापता ।
- जो गुणवानों से अपनी पूजा करवाता है वह अगले भव में लूला लंगड़ा होता है ।
- यदि नरक जाना है तो निर्माल्य खाना शुरु कर दो ।

- धर्म करने में तो आकुलता करो पर धर्म में आकुलता न करो मजबूरी का नाम मार्ग नहीं है ।
- पंथ में अहंकार है पथ में सद्भाव है। पंथ के अहंकार में धर्म नही है ।
- जो आता है वह जाता है जो शाश्वत है वह न आता है न जाता है ।
- दूसरे की टांग वही खींचता है जो स्वयं लंगड़ा होता है। सौ बका एक लिखा, (हाँ) और सौ लिखा एक लखा ।
- साधु स्वयं के लिये निर्दय होता है लेकिन दूसरे के लिये दयालु है ।
- साधु नारियल की तरह बाहर में कठोर व अंदर से मुलायम होता है ।
- जो जैसा है, वह दुनिया को वैसी ही मानता है ।
- पर के लिए नीर बह जाय तो वह नीर नहीं मोती है। स्वंय की पीर पर नीर बह जाय तो वह कायरता है ।
- परकी पीर पर आंसू न आवे तो वे आँखे नहीं नारियल के दो छेद हैं ।
- अपनी किस्मत को अपने ज्ञान के द्वारा ज्ञेय रुप बनाओ। पुण्य के उदय में रावण मुस्कराता है और पाप के उदय में राम मुस्कराता है ।
- जो उपकार को भूल जाते है वह धर्म करता हुआ भी दुर्गति का कारण हो जाता है ।
- कर्मफल बता रहा है कि तुमने अतीत में क्या बोया था?
- वर्तमान में जो जैसा कर रहे है उसका भविष्य वैसा ही है ।
- जिसने यह श्रद्धान कर लिया कि "यह भी जायेगा" वह कभी नहीं घबरायेगा ।
- न पुण्य क्रिया हेय है न पाप क्रिया उपादेय है ।
- शरीर के साथ जेलर एवं जेली का व्यवहार मत करो, इसके साथ तो मालिक और नौकर का व्यवहार करना चाहिये यही भारतीय सभ्यता है ।
- गृहस्थ धर्मात्मा रुपी वृक्ष की जड़ है ।
- पाप करना छोड़ा नहीं और पुण्य करना छोड दिया तो डूब जाओगे ।
- पांचों इंद्रियों का भोगी ,भेद विज्ञानी नहीं है ।
- जिसने अपने आपको अपनी आंख से देखना शुरु कर दिया वह संयमी है ।
- दुनियां को पापी कहना सरल है पर अपने आपको अज्ञानी पापी, दुष्टात्मा कहना कठिन है ।
- ज्ञान के साथ संयम सोने में सुहागा के समान है ।
- जो छोड़ देता है वह शिव है, जब दूसरे छुड़ाते है वह शव है ।
- जो वस्तुएं जीवन में आवश्यक नहीं है उन्हें छोड़ दो ।
- बिना प्रयोजन अपनी प्रवृत्ति से जो क्रिया होती है उससे पाप कर्म ज्यादा बंधते हैं ।
- मुनि को मुनिपने का अहंकार नहीं आना चाहिये ।
- जिस शरीर को बनाने में तुम मिट गये जिंदगी बरबाद कर दी, वह भी साथ नहीं देता । जिसे सगा माना वही दगा दे गया ।
- जितना-जितना पर पदार्थों से मोह छूटता जाता है, उतना-उतना व्यक्ति सुखी होता चला जाता है ।
- पहले मन में विकार आएगा बाद में इंद्रिया विकारी होगी। दुखी को दुखिया मिल जाय तो आधा दुख दूर हो जाता है ।
- राजनेता जिस सीढ़ी से ऊपर चढ़ता है उसे चढ़ने के बाद उसे लात मार कर गिरा देता है ताकि उसके जरिये दूसरा ऊपर ना चढ़ सके। धर्मात्मा जिस सीढ़ी से ऊपर चढ़ता है तो उसे और मजबूत कर देता है ताकि दूसरा भी आसानी से ऊपर चढ़ सके ।
- उपादान की शक्ति तो अनन्तकाल से बैठी है, जब तक सच्चा निमित्त नहीं मिलेगा तब तक शक्ति जागेगी नहीं ।
- डूबते को सहारा मिल जावे तो आनंद का क्या पार ?
- अतिशय भगवान् में नहीं भक्त के मस्तिष्क में होता है ।
- मंत्र पर विश्वास हो तो विद्यासिद्ध हो जाती है ।
- विदेशों में भारत की पहिचान धन से नहीं आध्यात्मिकता से है ।
- दान धर्म नहीं, त्याग का साधन है ।
- वस्तु की कीमत नहीं है उसकी उपयोगिता की कीमत है।
- आप लखपति (धनपति) नहीं धन के गुलाम हैं ।
- चर्चा के साथ अर्चा को जीवन में अपनाना होगा ।
- जिसको मृत्यु की आहट सुनाई देगी, वह सब कुछ छोडने को तैयार हो जायेगा ।
- जातिभाई पर प्रहार करने वाला श्वान होता है, वीर नहीं ।
- तुम्हारे पहले भी दुनियां थी तुम्हारे बाद भी दुनियां रहेगी।
- मुमुक्षु वही है जिसकी ड्रेस व एड्रेस एक हो ।
- सरल रेखा को खींचना सरल नहीं होता ।
- ज्ञानी को कर्म बंधते नहीं, अज्ञानी के कर्म कटते नहीं ।
- निष्कपट व्यक्ति नंगे बालकवत् होता है ।
- रागी व्यक्ति वीतरागता में भी राग देखता है और वीतरागी राग में भी वीतरागता देखता है। जैसे दुर्योधन को कोई निष्कपट नहीं मिला और युधिष्ठर को कोई कपटी नहीं मिला ।
- शरीर में भगवान् दिख जावे तब वह मंदिर है, वर्ना वह तो मल का पिटारा है ।
- गोली चूक जाय पर बोली नहीं चूकती है। गोली एक जीव को मारती है पर बोली अनेक जीवों को मार सकती है।
- भव-भव की निधि गुरु के माध्यम से प्रकट हो जाती है। दिगम्बर मुद्रा जवानी में दिख जाय तो यह (उपादान कृत) चित चमत्कार है ।

- [illegible] है, जो गुरु के बिना प्राप्त नहीं हो सकती।
- मांसाहारी कभी मांसाहारी का मांस नहीं खाता, शाकाहारी का मांस खाता है क्योंकि मांसाहारी के मांस में जहर पैदा हो जाता है।
- जब परिणमन निश्चित है तो आकुलता की क्या आवश्यकता है।
- जड़-जड़ को ही काटता है। जड़ चेतन को काट दे ऐसी शक्ति जड़ के पास नहीं है।
- परघात पुण्य के उदय में होता है। स्वयं का घात पाप के उदय में होता है।
- धर्म पुरुषार्थ बीज है। अर्थ पुरुषार्थ एवं काम पुरुषार्थ फल है।
- जो मानने लग गये व तर गये, जो जानने में लग गये, भटकते रहे।
- पंथ के व्यामोह ने दुनियां को बरबाद किया, पथ का व्यामोह करिये।
- जो मंदिर कल्याण के कारण थे वे पंथ के कारण [illegible] के कारण बन गये।
- साधु को पथ की दृष्टि से देखो, पंथ की दृष्टि से देखोगे तो धोखा खा जाओगे।
- राग द्वेष के निमित्त मिले और अन्दर हलचल न होवे वही प्रशम भाव है।
- जिसका नमक खाया, यदि संकट की घड़ी में उसके काम नहीं आए तो नमक हराम कहलाओगे।
- परदेश जाने पर भी नारी का अनुराग रहे, यही नारी की परीक्षा है और कंगाली में भी मित्र हाथ मिलाने आ जाय यही मित्र की परीक्षा है।
- निमित्तों के बीच में से स्वयं हट जाना ही दीक्षा है।
- दूसरों को समझाना स्वयं को उलझाना है। संसार से भयभीत होने पर ही मोक्ष मार्ग की ओर आओगे।

समर्पण की कोई भाषा - परिभाषा नहीं होती।

संकलनकर्ता
भरतकुमार जैन (बड़जात्या)

स्थायी विजय

वैर की शान्ति अवैर से होती है। प्रेम के द्वारा ही दूसरों के हृदय पर प्रभुत्व स्थापित किया जा सकता है। यह सच्ची और स्थायी विजय है।
और ऐसी सच्ची एवं स्थायी विजय प्राप्त करना ही जैनधर्म या सनातन धर्म है।

बोये बबूल, खाये आम ?

अच्छी और सदाचारी संतान
उत्पन्न करने के लिए माता पिता को
अच्छा और सदाचारी बनना चाहिये। बबूल
के वृक्ष में आम का फल नहीं लग सकता।

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का अजमेर प्रवास

यह अजमेर का सौभाग्य रहा कि इस वर्ष संत शिरोमणि परम् पूज्य, आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य मुनिराज श्री 108 सुधासागर जी महाराज का भव्य चातुर्मास और उसके बाद आयोजित श्री इन्द्र ध्वज महामंडल विधान पूजन (15 नवम्बर से 21 नवम्बर) तथा 22. 11.94 को समापन पर विश्व शांति महायज्ञ एवं तत्पश्चात् नगर में भगवान जिनेन्द्र देव की शोभा यात्रा, जिसमें 11 हाथी, 11 घोड़े, दो ऐरावत हाथी, इन्द्र गाड़ी, नसियांजी के विश्व प्रसिद्ध स्वर्ण रथ में श्रीजिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाजी विराजमान थी, जिसे सोनी परिवार के वरिष्ठ सदस्य सेठ निर्मलचन्द सोनी चला रहे थे। शोभायात्रा में मुनि श्री की प्रेरणा से करीब 15-20 हजार श्रृद्धालु नंगे पांव शामिल हुवे। जुलूस का मुख्य आकर्षण पीले वस्त्रों में सजे संवरे छः सौ से अधिक इन्द्र इन्द्राणी जिन्होंने इस विधान पूजन में भाग लिया था, अपने हाथों में भक्ति के प्रतीक केसरिया ध्वज, गले में मालायें तथा सिर पर मुकुट धारण कर के जय जयकार करते हुए चल रहे थे। शांति पाठ के बाद जुलूस का समापन हुआ तथा बाद में बाहर से पधारे महानुभावों एवं सकल स्थानीय दिगम्बर जैन समाज के लिए सामूहिक प्रीतिभोज का आयोजन था।

पूज्य मुनि श्री एवं संघस्थ क्षुल्लकगण श्री गंभीरसागरजी, श्री धैर्यसागरजी, ब्रह्मचारी संजयजी एवं अजीतजी के भी विशिष्ट एवं गणमान्य भक्त मंडली के साथ डेढ किलो मीटर लम्बे जुलूस में शामिल होने से जुलूस की गरिमा द्विगुणित हो गई।

मुनि श्री ससंघ के 16 जुलाई 1994 को अजमेर आगमन से ही प्रतिदिन सेठ जी नसिंया में होने वाले प्रवचनों ने न केवल जैन धर्मावलंबियों को, अपितु अन्य समाज के व्यक्तियों को विस्मृत सा कर दिया, हजारों व्यक्तियों ने मुनि श्री के शुभाशीर्वाद से मधु, मांस का त्याग एवं जुआ, लाटरी, तमाखु, गुटखा आदि खाना छोड़ दिया। यहां तक कि अनेक महिलाओं ने सौंदर्य प्रसाधन लाली लिपिस्टिक, आदि का त्याग कर अपनी जीवन शैली ही परिवर्तित कर दी। रात्रि भोजन बनाना, खाना एवंपरोसना, बफर सिस्टम से भोजन करना आदि बातों पर मुनिश्री के जो प्रवचन हुये, उन्होंने जनमानस को ऐसा प्रभावित किया कि सैकड़ों लोगों ने इस का त्याग किया। अनेक पंचायतों ने अपने आयतनों में रात्रि भोजन त्याग नियम का समावेश कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

मुनिश्री के प्रवास में इस वर्ष पर्युषण पर्व में दस दिवसीय श्रावक संस्कार शिविर का आयोजन हुआ जिसमें करीब 700 से अधिक श्रावकों ने भाग लेकर धर्म पालन किया एवं अपने दैनिक जीवन क्रम में प्रभात चार बजे से रात्रि दस बजे तक विभिन्न नियमों, विधि विधान, तथा धर्म शिक्षा कक्षाओं से अपना ज्ञान वर्धन कर अपनी जीवन शैली में जो सुधार किया वह अनुकरणीय है। मुनिश्री ने सभी शिविरार्थियों को शिविर समापन पर व्यक्तिगत तौर पर एक-एक को बुलाकर श्रावकों के लिये षट आवश्यक नियमों के पालन हेतु तथा जुआ, लाटरी, गुटखा, तंबाखू आदि के त्याग हेतु प्रतिबद्ध किया।

मुनिश्री के बारहवें दीक्षा दिवस पर त्रिदिवसीय कार्यक्रम के अन्तर्गत शाकाहार प्रदर्शनियां अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन, शाकाहार गोष्ठी का कार्यक्रम रहा। इस अवसर पर श्री भगवान् महावीर विकलांग सहायता समिति अजमेर के सहयोग से दिगम्बर जैन समाज के सौजन्य से एवं मुनिश्री के शुभाशीर्वाद से विकलांगो को करीब साठ ट्राइसाइकिलों का तथा बधिरों को दस श्रवण यंत्रों का वितरण किया गया। जैन विश्व के इतिहास में ऐसा कार्यक्रम पूर्व में कभी देखने नें नहीं आया, जब पूरे जिले के सभी विकलांगों को इस प्रकार का अनुकरणीय दान दिया गया हो। श्री देवेन्द्र भूषण गुप्ता जिलाधीश अजमेर ने भी इस कार्यक्रम को अपने हाथों सम्पन्न कर अपना जीवन धन्य किया तथा मुनिश्री का आशीर्वाद प्राप्त किया।

अपने दादागुरु परमपूज्य आचार्य श्री 108 ज्ञानसागरजी महाराज द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य 'वीरोदय' के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डाल कर दिनांक 13 से 15 अक्टूबर को मुनि श्री के संघ सानिध्य में आयोजित अखिल भारतीय विद्वत संगोष्ठी के कार्यक्रम अजमेर नगर जैन जगत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य रहे।

समापन बेला पर उपसंहार में मुनिश्री ने जो अपना मंगल प्रवचन/ आर्शीवाद दिया उसमें 40 मूर्धन्य विद्वानों ने आठ सत्रों में जो अपने अभिलेख पढ़कर सुनाये उन सब का मुनिश्री ने क्रमांक से विधिवत् विश्लेषण किया, वह अवर्णनीय है। यद्यपि प्रत्येक सत्र के उपसंहार में मुनिश्री विद्वानों द्वारा पठित आलेख को समालोचना पूर्वक व्याख्या करके जन साधारण को भली भांति समझाते थे, तथापि समापन पर महाराज ने विद्वानों को जो संदेश, आर्शीवाद एवं आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के प्रति जो

कृतज्ञांजलि समर्पित की वह अत्यन्त योग्य थी। इस विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन जैन साधक श्री राजेन्द्र कुमार दनगसिया के आर्थिक सौजन्य से हुआ एवं जैन समाज अजमेर द्वारा विद्वानों का जो स्वागत किया गया। वह अभूतपूर्व था।

मुनिश्री की प्रेरणा से परम् पूज्य दादा गुरु आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज के चौबीस ग्रंथों का पुनःमुद्रण, दान दातारों के सहयोग से रेकार्ड टाइम में हुआ, जो सभी प्रमुख जैन मंदिरों, जैन विद्वानों विश्वविद्यालयों आदि को निःशुल्क भेजे जा रहे हैं।

मुनि श्री संघ सानिध्य में श्री शांतिनाथ जिन बिम्बवेदी प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन सर्वोदय कालोनी अजमेर के नवनिर्मित जिनालय में दिनांक 2 से 4 दिसम्बर 94 को सुसम्पन्न हुआ। इस त्रिदिवसीय कार्यक्रम के सौधर्म इन्द्र श्री विजय कुमार दनगसिया एवं अन्य 15 इन्द्रगण थे। समापन के दिन मुनि श्री की प्रेरणा से विशाल जुलुस में सभी लोगों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया तथा एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। इस शोभायात्रा में भी दस हाथी, घोड़े तथा नसियाँजी का लवाजमा था। मुनि श्री की प्रेरणा से जिनबिम्बों को विराजमान करने का सौभाग्य बिना किसी प्रकार की बोली के उन महानुभावों ने अर्जित किया, जिन्होंने इस मंदिर में प्रतिदिन पूजन प्रक्षाल के नियम लिये।

इसी क्रम में मुनि श्री संसघ सानिध्य में आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन 22, 23, व 24, जनवरी 1995 को हो रहा है जो संभवतः अजमेर में ही है। वैसे ब्यावर जैन समाज ने इसके वहां आयोजन हेतु मुनिश्री को श्रीफल समर्पित किया है। इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी में आचार्य ज्ञानसागर लघुत्रयी काव्यों 'सुदर्शनोदय' 'दयोदय' (चम्पू) एवं समुद्रगुप्त (भद्रोदय) पर देश के मूर्धन्य विद्वानों द्वारा विशद् विवेचन एवं पत्र वाचन होगा। सर्वश्री डॉ. जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर एवं अरुणकुमार जैन शास्त्री ब्यावर के संयोजकत्व में इसका आयोजन हो रहा है।

आ. ज्ञानसागर लघुत्रयी गोष्ठी

परमपूज्य मुनिराज श्री 108 सुधासागरजी महाराज संसघ के सानिध्य में दिनांक 22 जनवरी से 24 जनवरी 1995 तक आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन अरुण कुमार जैन शास्त्री ब्यावर तथा डॉ. जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर के संयोजकत्व में होगा। इसमें आचार्य ज्ञानसागर लघुत्रयी काव्यों सुदर्शनोदय 'दयोदय (चम्पू) समुद्रदत्त चरित्र (भद्रोदय) पर जो विवेचन एवं पत्र वाचन होगा उसमें देश के करीब 24 मूर्धन्य विद्वान भाग लेगें। अभी इसका स्थान निश्चित् नहीं है लेकिन संभवतः इसका आयोजन अजमेर अथवा ब्यावर में होगा।

हीराचंद जैन
3 च 18, कंचन सदन
वैशाली नगर, अजमेर, (राज.)
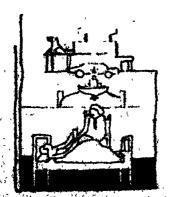
सच्ची श्रीमन्ताई

बड़े बड़े शानदार बंगले बनवानेमें, दो चार कुत्ते पालने में, या मोटर गाडीमेंरखने में और उसे चारों ओर फिरा कर धूल उड़ानेमें भले ही आज तुम्हें श्रीमन्ताई दीखती हो, पर ज्ञानियों की दृष्टि में वह सच्ची श्रीमन्ताई नहीं है। जो जनसमाज की अधिक से अधिक सेवा करते हैं वहीं सच्चे श्रीमन्त हैं और उन्हीं की सच्ची श्रीमन्ताई जगत् के लिए हितकारी है।

ज्ञानमूर्ति आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के साहित्य का प्रकाशन

प्रस्तुति : कपूरचन्द जैन, एडवोकेट

परम् पूज्य सुधासागर जी महाराज ससंघ पदमपुरा अतिशय क्षेत्र पर विराजमान थे । वहाँ पर डॉ. शीतलचन्द जी जैन प्राचार्य संस्कृत महाविद्यालय जयपुर का दर्शनार्थ पधारना हुआ । महाराज श्री से डॉ. शीतलचन्द जी जैन ने ज्ञानमूर्ति परम् पूज्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज द्वारा विरचित विभिन्न महाकाव्यों एवं रचनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की तथा साथ ही उन महाकाव्यों एवं रचनाओं से सम्बन्धित संगोष्ठी आयोजित किये जाने हेतु निवेदन किया ताकि ऐसे साहित्य मनीषी आचार्य तथा उनके द्वारा विरचित महाकाव्यों एवं रचनाओं का भारत के विभिन्न विद्वानों तथा जनसाधारण को जानकारी प्राप्त हो सके ।

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की समाधि दिनांक 1-6-74 को नसीराबाद में हुई । अतः आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज के 21 वें समाधि दिवस पर पूज्य आचार्य श्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अखिल भारतीय विद्वत गोष्ठी आयोजित की जावे । और यह गोष्ठी आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज के समाधि दिवस की पावन बेला में ही आचार्य श्री के नसीराबाद स्थित समाधि स्थल में आयोजित किया जाना प्रस्तावित किया गया ।

नसीराबाद की दिगम्बर जैन समाज भी इसके लिये तैयार थी किन्तु विधि की विडम्बना कुछ ओर ही थी । राजस्थान का आधा भाग रेगिस्तान एवं वन रहित है । परम् पूज्य सुधासागर जी महाराज एवं ससंघस्थ त्यागियों का अब तक विहार मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश प्रान्तों में ही रहा है जहाँ चारों ओर शस्य श्यामला भूमि तथा प्रकृति की उदात्त कृपा के कारण वातावरण सदैव अनुकूल ही रहता है । ऐसे प्रान्तों से निकल कर सभी त्यागियों का जून माह की प्रचंड गर्मी में इस प्रान्त के लिये - विहार न केवल श्रावकों वरन् श्रमणों के लिये एक दुष्कर कार्य है । और यही कारण संघस्थ त्यागियों के नसीराबाद की ओर विहार करने में बाधक रहा ।

पदमपुरा के समीपस्थ सांगानेर की दिगम्बर जैन समाज ऐसे पावन अवसर को अपने हाथ से नहीं जाने का मानस बनाकर मुनिराज श्री सुधा सागर जी एवं संघस्थ त्यागियों से सांगानेर विहार करने तथा वहीं पर ज्ञानमूर्ति आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज द्वारा विरचित महाकाव्यों एवं विभिन्न रचनाओं पर आधारित विद्वत गोष्ठी दिनांक 9 जून से 14 जून 94 को आयोजित किये जाने हेतु निवेदन कर दिया ।

त्रिदिवसीय संगोष्ठी की फलश्रुति पूज्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज कृतित्व का मूल्यांकन जैन जैनेतर मनीषियों द्वारा किया जाना बहुत बड़ी उपलब्धि थी । संगोष्ठी समापन की पावन बेला में विद्वत जनों की सम्पन्न हुई सभा में विद्वत जनों ने आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज के द्वारा रचित सभी कृतियों को प्रकाशित कराये जाने का प्रस्ताव मुनि श्री के सम्मुख रखकर निवेदन किया कि इन उच्च कोटि की रचनाओं का प्रकाशन विद्वत जनों द्वारा कराया जावेगा ।

कहावत है कि विद्वान को भाषा विद्वान ही समझ सकता है । विद्वतजनों की वेदना को मुनि श्री ने समझा । यद्यपि विद्वत जनों ने सभी कृतियों को प्रकाशित किये जाने का बीड़ा उठाया किन्तु मुनि श्री को आभास था कि उनके द्वारा न जाने कितने समय में कृतियों का प्रकाशन सम्भव हो सकेगा । समय की तलाश थी अजमेर नगर में चातुर्मास निश्चित हुआ और इस दूरगामी महति योजना के बारे में मुनि श्री ने समाज को अवगत कराया और देखते ही देखते ज्ञानमूर्ति आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की समस्त कृतियों के प्रकाशन की धर्म प्रेमी महानुभावों ने स्वीकृति प्रदान की ।

प्रकाशन का कार्य जुलाई में प्रारम्भ हुआ और जिस गति से प्रकाशन का कार्य हुआ उसका परिणाम यह निकला कि तीन माह में 26 ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका और एक मुश्त दिनांक 15-10-94 को विद्वत गोष्ठी के समापन समारोह के अवसर पर उनका विमोचन किया गया ।

जिन महानुभावों ने ज्ञानमूर्ति आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के ग्रन्थों को प्रकाशित किये जाने में अर्थ सहयोग प्रदान किया वह इस प्रकार है ।

प.पू. आचार्य 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज के ग्रन्थों की सूचि

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	दाताओं की सूची	प्रतियाँ
1.	समयसार	श्री राजेन्द्रकुमार जी अशोककुमार जी, केसरगंज, अजमेर	5000
2.	प्रवचनसार	श्री ज्ञानचंद जी जैन, किरण बैटरी वाले, केसरगंज, अजमेर	2000
3.	जयोदय पूर्वार्द्ध	श्री अशोककुमार जी पाटनी, R.K. मार्बल्स, मदनगंज – किशनगढ़	2000
4.	जयोदय उत्तरार्द्ध	श्री अशोककुमार जी पाटनी, R.K. मार्बल्स, मदनगंज – किशनगढ़	2000
5.	श्री तत्त्वार्थ सूत्र	श्री नेमीचंदजी रविन्द्र कुमारजी जैन, केसरगंज श्री हजारीलाल जी सोनी	1300 700
6.	पवित्र मानव जीवन	श्री बंगालीमल जी सुभाषचन्द जी जैन दनगसिया केसरगंज, अजमेर श्री नेमीचंदजी ताराचंदजी सेठी, नसीराबाद श्री गुप्त दातार – मार्फत मोरतमल जी बोहरा, अजमेर	1000 500 500
7.	मानव धर्म	श्री गुमानमल जी सुशीलचंद जी लुहाड़िया, नया बाजार, अजमेर श्री रतनलालजी गंगवाल, अजमेर स्व. श्री ताराचंदजी की स्मृति में श्री मुकेश एवं श्री दिनेश पाटनी द्वारा, बैंक कॉलोनी, अजमेर	1000 500 500
8.	कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन	श्री टीकमचंदजी पूरनचंदजी जैन सुथनिया केसरगंज, अजमेर श्री माणकचंदजी सुभाषचंदजी बड़जात्या आगरा गेट, अजमेर श्री विजयकुमार विनयकुमार अजमेरा द्वारा स्व. पू. पिताजी श्री शिखरचंदजी एवं माताजी श्रीमति सरोजदेवी की स्मृति में	1000 500 500
9.	ऋषभ चरित्र	श्री राजेन्द्रकुमारजी सीमेंट वाले	1000
10.	सुदर्शनोदय	श्री राजेन्द्रकुमार जी ढिलवारी केसरगंज, अजमेर	2000
11.	सचित्त विचार	गुप्त दातार	2000
12.	स्वामी कुन्दकुन्द सनातन धर्म	श्री प्रफुल्लचंद जी गदिया, अजमेर जैन साड़ी एम्पोरियम, अजमेर	2000
13.	सचित्त विवेचन	श्री बहादुरमल जी चौधरी, अजमेर श्री पदमचन्दजी साहूला, मदार गेट, अजमेर श्री गुप्त दातार हस्ते उमरावमलजी गंगवाल, अजमेर	1000 500 500
14.	जैन विवाह संस्कार	श्री कमलकुमारजी बड़जात्या, अजमेर श्री गुप्त दातार मार्फत अमरचंद जी केसरगंज, अजमेर	1000 1000
15.	भाग्योदय (भाग्य परीक्षा)	श्रीमति सुशीला पाटनी धर्मपत्नी श्री अशोक कुमारजी पाटनी R.K. मार्बल्स मदनगंज – किशनगढ़ श्री नमीचंदजी विनोद कुमारजी प्रमोद कुमारजी बाकलीवाल, पीसांगन श्री विवेक सागर जागृति मण्डल, नसीराबाद	 1000 500 500

16.	हितोपदेश	श्री शांतिलाल जी, प्रकाशचन्द जी, सुशीलकुमार जी, प्रदीपकुमार जी गदिया (सपरिवार) शान्ति निकेतन, ब्यावर श्री दिगम्बर जैन जागृति महिला मण्डल, अजमेर श्री शांतिलालजी सुरेन्द्रकुमारजी गंगवाल, जेठाना वाले, अजमेर	 1000 500 500
17.	श्री समुद्रदत्त चारित्र (भद्रोदय)	सु. श्री श्रद्धा सुपुत्री श्री अजयकुमार जी दनगसिया श्री बाबूलालजी नरेन्द्रकुमारजी जैन दनगसिया, केसरगंज श्रीमति मैनादेवी धर्मपत्नी श्रीमांगीलालजी पाटनी महावीर इलेक्ट्रिक, खाईलैण्ड, अजमेर	100 300 500
18.	दयोदय	श्री छगनलाल जी मदनलालजी गोधा, बम्बई श्री नेमीचंदजी जितेन्द्र कुमारजी जैसवाल कोठी वाले, हाथी भाटा, अजमेर श्रीमति सुशीलादेवी सोगाणी धर्म पत्नी श्री शांतिलाल जी सोगाणी, नसीराबाद	1000 500 500
19.	वीरोदय	श्री गुप्त दातार	2000
20.	मुनिमनोरंजनाशीति	श्रीमति निर्मला पाण्ड्या, अजमेर	2000
21.	भक्ति संग्रह	श्री सुभाषचन्द जी बोहरा बापूनगर, अजमेर श्रीमति सरलादेवी धर्मपत्नी स्व. श्री चेवरचंदजी बाकलीवाल, अजमेर श्री विमलचन्दजी अजीतकुमारजी टीकमगंज, अजमेर	1000 500 500
22.	गुण सुन्दर वृत्तान्त	जैन युवा मेला समिति *श्री अनारदेवी धर्मपत्नी श्री नेमीचंद जी उन्नेरिया* ब्ल्यूकेसल, अजमेर श्री मगनचंदजी अशोककुमारजी जैन सारोला वाले C/o नवीन इलेक्ट्रिकल्स, अजमेर	1000 500 500
23.	विवेकोदय	श्री जयकुमार जी महेन्द्र कुमार जी जैन केसरगंज, अजमेर	1000
24.	सम्यक्त्वसारशतकम्	श्री प्रकाशचंद जी सुभाषचंद जी भागचंद जी दोसी मदनगंज - किशनगढ़ श्री दुलीचन्द जी, पदमचन्दजी, कैलाशचन्दजी गोधा, अजमेर श्री कैलाशचन्द जी पाटनी, आगरा गेट, अजमेर श्री माधोलालजी गदिया, अजमेर	 500 500 500 500
25.	श्री शांतिनाथ पूजा विधान		2000
26.	हे ज्ञानदीप! आगम प्रणाम		1000

इस प्रकार इतने सारे ग्रन्थों का इतने कम समय में एक साथ प्रकाशन एवं विमोचन का उदाहरण अजमेर की जैन समाज ने प्रस्तुत कर भारत में जिनवाणी प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया वह वस्तुत मुनि श्री की प्रेरणा का प्रतिफल है । इससे अजमेर की जैन समाज की प्रतिष्ठा द्विगणित हुयी है । इस प्रकार इतने ग्रन्थों का एक साथ प्रकाशन एवं विमोचन होना जैन धर्म एवं संस्कृति के इतिहास में अत्यन्त अलौकिक घटना है ।

तृतीय खण्ड

दिगम्बर संस्कृति का एक उदीयमान नक्षत्र

प्रस्तुति : प्रो. सुशील चन्द्र जैन "शील" अजमेर

वात्सल्य मूर्ति, समता – स्वभावी, आगम के निर्भीक व
ओजस्वी प्रवक्ता,
आध्यात्मिक एवं दार्शनिक सन्त

पूज्य मुनिपुङ्गव सुधासागरजी महाराज

का

सुधामयी व्यक्तित्व

देश-विख्यात चिन्तक मनीषियों की दृष्टि में

प्रस्तुति :
प्रो. सुशील चन्द्र जैन "शील"
अजमेर

प्रवचन से पूर्व मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

जी महाराज
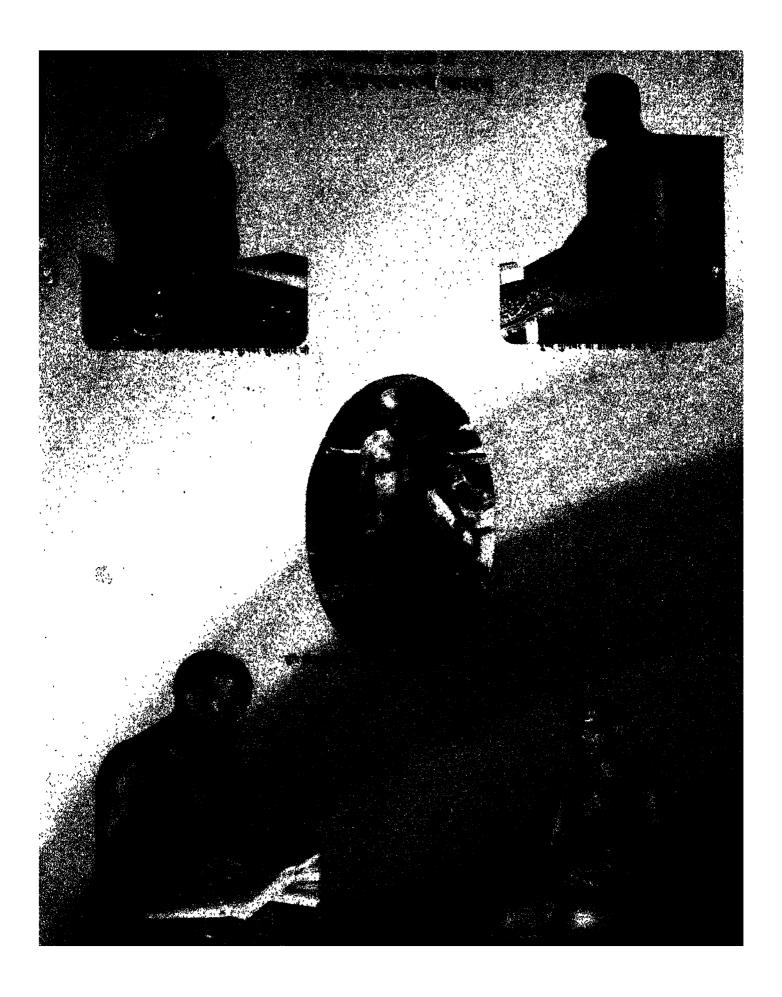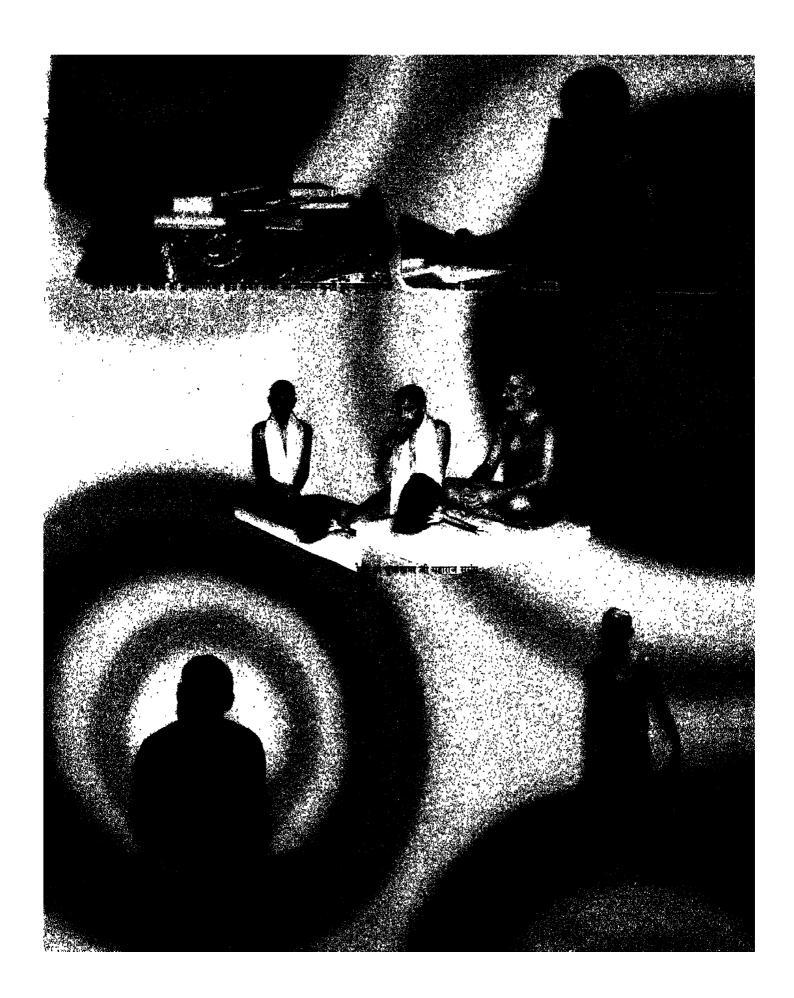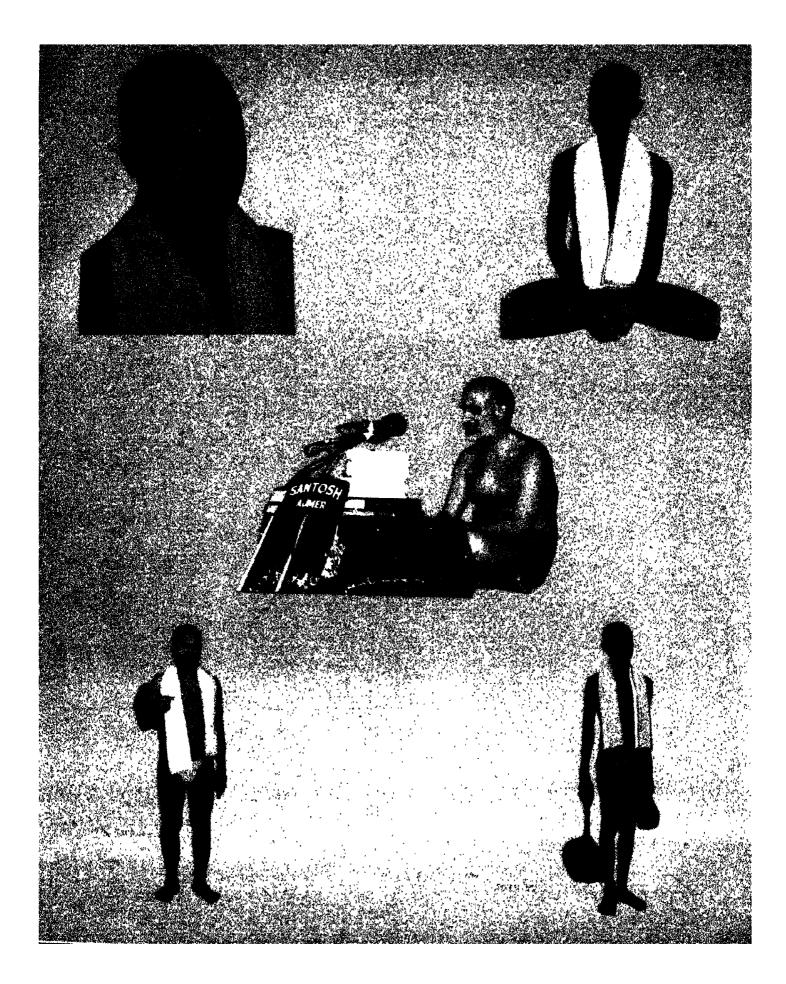
लेखक : नवल किशोर सेठी, अजमेर

सुप्रसिद्ध साहित्यकार जयशंकर प्रसाद ने कहा कि पूर्ण मनुष्यत्व ही काल्पनिक देवत्व है । मेरी समझ से पूर्ण मनुष्यत्व देवत्व से भी बड़ा है । देवता का शरीर भी नहीं होता और होता भी तो अक्षय और अविनाशी, शायद वह पूर्णकाम भी होता है, किन्तु मानव तो हाड़ मांस का होता है, उसमें राग-द्वेष, काम-क्रोध तो होंगे ही किन्तु जो मानव राग-द्वेष से ऊपर उठ जाता है, वह देवत्व से भी ऊपर होगा ही ।

मुनि श्री सुधासागरजी एक ऐसे ही महामानव है । जिनके रक्त-मांसल-शरीर में एक वीतराग-चैत्य पुरुष सदा जागृत रहता है । ऐसा नहीं कि मुनि श्री सुधासागर जी को अप्रसन्नता नहीं होती किन्तु यह उनके अन्तरतम को बहुत स्पर्श नहीं करती। समुद्र की लहरें जिस प्रकार ऊपर ही अपनी क्रीड़ा करती है उसी प्रकार जय-पराजय, लाभ हानि, अनुकूलता-प्रतिकूलता मुनि श्री सुधासागरजी के ऊपर ही रह जाती है । इसलिये वे ग्रंथहीन या निर्ग्रन्थवृत्ति के हैं । यही कारण है कि कोई गलती करके भी वे निर्दोष रहते हैं और किसी से खिलाफ कोई गठरी बाँधकर नहीं चलते । साम भले ही उनका अस्त्र हो किन्तु दाम दंड और भेद तो वे जानते ही नहीं । यही प्रवचन शून्यता उनकी आध्यात्मिकता का आधार है । इसी को ऋजुता कहते हैं ।

मुनि श्री सुधासागरजी विद्वान हैं लेकिन उनकी विद्वता "अतिमानसिक" है । इसका अर्थ है कि उनका चिन्तन मनन आदि मानसिक स्तर से भी ऊपर से होता है इसी को प्रातिभ-ज्ञान या परोक्षानुभूति कहते हैं । कोई भी समस्या रखिये उसका विश्लेषण एवं समाधान वे बहुत सोच-विचार कर नहीं करते, वह तो स्वतः एवं स्वयं स्फूर्त ढंग से उनसे निःसृत हो जाता है। किसी को उनमें शास्त्र ज्ञान दिखता हो, किसी को स्वाध्याय की शक्ति किन्तु वास्तविक रूप से वे प्रतिभा-ज्ञान से ही काम लेते हैं । लेकिन यह प्रतिभाज्ञान प्रत्यक्ष या अनुमान से बाधित नहीं है क्योंकि 'ज्ञान-विज्ञान सहित' प्रातिभज्ञान शास्त्र-ज्ञान या अनुभवजन्य ज्ञान के विरुद्ध नहीं हो उससे परे अवश्य है ।

आप शास्त्रकार से भी अधिक एक अकृत्रिम युवाआध्यात्मिक, जैन संत है उनमें प्रदर्शन या आत्म-प्रकाशन का भाव नहीं। श्रोताओं की संख्या, मंच की काया, प्रशस्ति आदि की आकांक्षा उन्हें नहीं छूती । प्रवचन में कोई शब्द शिल्प नहीं, कोई चढ़ाव उतार नहीं, सस्ती लोकप्रियता या प्रदर्शन-भाव तो मानो उन्होंने सीखा ही नहीं ।

व्यक्ति की अराजकता समाज तथा राष्ट्र में अशान्ति उत्पन्न कर देती है । यदि इसे रोक दिया जाये तो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का सुधार संभावित है । इसलिये मुनि श्री हर संभव तरीके से इन बुराइयों और उनके परिणामों को समझाने का अपने प्रवचनों में प्रयास करते हैं । शैली में जहाँ नितान्त निजीपन की झलक है वहीं पर्याप्त वैज्ञानिकता और तार्किकता भी विद्यमान है । जो कुछ भी अपने प्रवचनों में वे कहते हैं उस पर श्रोताओं को कुछ सोचने व क्रियान्वित करने को स्वतः मजबूर होना पड़ता है ।

25 सितम्बर, 1983 को सन्त शिरोमणी आचार्य श्री विद्यासागर जी से दिगम्बर मुनि की दीक्षा धारण कर उत्कर्ष यात्रा प्रारम्भ करने वाले मुनि श्री सुधासागर जी के अजमेर चातुर्मास के लिए मंगल प्रवेश के समय प्रकृति ने भी हर्षोल्लासित होकर रिम-झिम वर्षा के रूप में नृत्य कर स्वागत किया । आपके संघ में क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी एवं क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी तथा ब्रह्मचारी श्री संजय जी है ।

राजस्थान के हृदय स्थल इस शहर को परम् सौभाग्य मिला कि आचार्य विद्यासागर जी के दीक्षित मुनियों में से आप ही सर्वप्रथम अजमेर में अपना चातुर्मास करने पधारे । अजमेर का जर्रा-जर्रा अपने को सुशासित महसूस कर रहा है । ज्ञान गंगा के भागीरथ की अमृतवाणी से हजारों स्त्री-पुरुषों का आत्म कल्याण हो रहा है ।

दैदीप्यमान नक्षत्र के समान मुनिश्री का उदित होना शहरवासियों की उस कल्याण शक्ति के अनुरूप है । जिसमें हम अपने भीतर एक अलौकिक ज्ञान पुंज का स्पर्श करते हैं । अजमेरवासियों के लिए परम् सौभाग्य की बात है कि मुनि श्री के गुरु आचार्य श्री विद्यासागर जी ने भी 26 वर्ष पहले अजमेर की धरा पर नसियाजी की नसियां में संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य ज्ञान सागरजी से दीक्षा ग्रहण कर इस नगर को पावन बना दिया था । हमारा सौभाग्य फिर जाग गया है कि मुनि श्री सुधासागरजी ने अजमेर में 16 जुलाई से अजमेर वासियों को अमृतपान करवाना प्रारम्भ कर उपकार किया है ।

मुनिश्री का गृहस्थ नाम श्री जयकुमार जैन था । मध्य प्रदेश के सागर जिले में स्थित ग्राम ईशुरवारा में 21 अगस्त 1958 को जन्म लेकर अपने पिता श्री रूपचन्दजी एवं माता श्रीमती शान्ति देवी को धन्य किया । ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुए आपने वाणिज्य में स्नातक तक की लौकिक शिक्षा प्राप्त की ।

10 जनवरी, 80 को प्रसिद्ध तीर्थ स्थल नैनागिर में क्षुल्लक दीक्षा धारण की और आपके दीक्षा गुरु आचार्यवर विद्यासागर जी ने आपका नाम परम् सागर रखा । इसके पश्चात् मध्यप्रदेश के सागर जिले में स्थित मोराजी में ऐलक दीक्षा ली 25 सितम्बर 1983 को प्रसिद्ध तीर्थ श्री सम्मेद शिखर जी में मुनि दीक्षा धारण कर उत्कर्ष यात्रा प्रारम्भ की ।

मुनि श्री सुधासागर जी को संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी भाषाओं के ज्ञान व अतिरिक्त अध्यात्म दर्शन सिद्धान्त में पांडित्य हासिल है । ओजस्वी प्रभावनामयी वाणी के कुशल वक्ता के अलावा कई काव्य सृजन कर हिन्दी साहित्य में रचना की है । आपकी लेखनी बड़ी सशक्त प्रभावमयी एवं सरल है ।

ऐसे युवा आध्यात्मिक संत मुनि श्री सुधासागरजी की दीक्षा जयन्ती पर मेरा कोटिशः नमन एवं अभिनन्दन ।

❑ ❑ ❑

प्रकाश स्तम्भ रूप मुनिश्री

डॉ. वागीश शास्त्री
वाग्योग चेतनापीठम
शिवाला, वाराणसी

ज्ञानसुधासागर 108 मुनिश्री सुधासागर जी महाराज की मेधाशक्ति का स्वाध्यायशीलता एवं कल्पना शक्ति के साथ असाधारण सामंजस्य बन पड़ा है । ज्ञान सुधासागर की अन्तस्पर्शिनी गंभीरताओं में उतरकर सम्प्राप्त ज्ञानसुधावृष्टि द्वारा प्रसुप्तचेतन जिज्ञासुओं को जीवन्तता से आप्यायित कर देने की अपूर्व प्रतिभा से भास्वर हैं आप । दिग्भ्रान्त समाज के पोत के लिए आप निश्चयतः प्रकाशस्तम्भ के रूप में विराजमान हैं ।

भक्तवत्सल मुनि श्री 108 सुधासागरजी महाराज

डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
बिहार राष्ट्रभाषा संस्थान
पी. एन. सिन्हा कॉलोनी,
पटना - 800006

महामनीषी मुनिश्री सुधासागरजी महाराज की आत्मा अविच्छिन्न: वात्सल्य रस से परिप्लुत है। उनका मन वचन में प्रतिष्ठित है, तो वचन मन में। और फिर, उनके मन और वचन वात्सल्य में प्रतिष्ठित हैं। इतना ही नहीं, उनकी समग्र अन्तश्चेतना वात्सल्य से ओतप्रोत है। इसलिए वह जब बोलते हैं, तब उनके प्रत्येक शब्द से वात्सल्य की धारा फूटती है। उनकी मुस्कान से झरने वाले वात्सल्य निर्झर से तो उनके भक्त भींग-भींग जाते हैं। भक्तवत्सल गोपाल कृष्ण की मधुर मुस्कान जैसे व्रजवासियों को लहालोट कर देती थी, वैसे ही महाराजश्री की मधुर मुस्कान अपने भक्तों की उद्वेलित मानसिकता को धीर स्थिर और प्रशान्त कर देती है।

महाश्वेता सुधासागरजी महाराज की तपोनिरत आँखों की बन्द पलकों पर तो मानों वत्सलता थिरकती सी मालूम होती है और जब ये खुलती हैं, तब स्वयं वात्सल्य की सुधा से स्नात प्रतीत होती हैं और भक्तों को तन-मन से वात्सल्य विभोर कर देती हैं।

सच पूछिए तो, मुनिश्री का मुख उस कमल के समान है, जिस पर वात्सल्य के मधुर बिन्दु ढुलकते-से लगते हैं। उस कमल का मृणाल उस दीर्घ ज्ञान के समान है, जिसका अन्तिम छोर उनके हृदय के सागर की अतल गहराई में प्रतिष्ठित है और उस गम्भीर ज्ञान मृणाल के दण्ड पर प्रस्फुटित मुखकमल पर जैसे साक्षात् सरस्वती विराजती है, जो अपनी वीणा के तारों पर मौन के अनहदनाद का झंकार करती रहती हैं, जिसमें वात्सल्य रस की शीतलता का तारल्य प्रवहमाण रहता है।

भक्तों के लिए अभयप्रदायिनी मुनिश्री की मधुभरी कल्याणी वाणी वात्सल्य के करुणामय अक्षरों में जब मुखर होती है, तब वह उनके अपने भक्तों के अज्ञान तिमिर से आवृत हृदय के समस्त आवरणों को दूर कर देती है। मुनिश्री के सहज निश्छल और निःस्वार्थ वात्सल्य के अभूतपूर्व प्राणस्पन्दी स्पर्श से भक्तों के ज्ञानावर्णीय, दर्शनमोहनीय आदि समस्त अन्तराय निर्मूलित हो जाते हैं और वे क्षायोपशम जैसी स्थिति को प्राप्त कर मोक्ष मार्ग की ओर उन्मुख हो जाते हैं।

जो भक्त वत्सल होता है, वह अपने भक्तों के दुःख से द्रवित होता रहता है। उसका हृदय नवनीत के समान होता है। अपने नाम को पूर्णतया अन्वर्थ करने वाले मुनिश्री सुधासागर जी ज्ञानदया के प्रतिरूपी हैं। उनका हृदय भी नवनीत सम है। भक्तों के दुःख की तनिक-सी आँच लगते ही वह द्रवित होने लगता है। सचमुच, वह उदात्त से अभिभूत भक्तवत्सलता से विमण्डित साधनापुरुष हैं।

स्नेहसिक्त तथा दयाद्रवित मुनिश्री की जीवन साधना वात्सल्य साधना का ही प्रतिरूप है। वात्सल्य, शिशु के लिए जिस प्रकार उस के माता-पिता की त्याग-तपोमय जीवन की साधना का आयात्म भाष्य है, उसी प्रकार मुनिश्री सुधासागरजी की समग्र जीवन-साधना अपने भक्तों के लिए उत्सर्जित वात्सल्य का ही त्यागोज्ज्वल महाभाष्य है।

भक्तों के सर्वतोभद्र उत्कर्ष के निमित्त सतत तपस्साधनारत मुनिश्री सुधासागरजी महाराज ने संयम का, त्याग का, तप का, सल्लेखना का जो कठोर जीवन अंगीकृत किया है, उसका एकमात्र उद्देश्य उस सर्वसह पिता के समान है, जो अपने शिशु के सर्वतोमुख कल्याण के लिए आत्मार्पित हो जाता है।

मैं, उस वात्सल्य-विमण्डित उत्तर पुरुष की, भक्तों के लिए सर्वात्मना समर्पित भाव चेतना से सम्पन्न पुण्यातिशय भगवन्ता के प्रति प्रणतशीर्ष हूँ।

□□□

शिव पथ पन्थी गुरुवर प्रणाम

डॉ. रमेशचन्द जैन
जैनमन्दिर के पास, बिजनौर, उ.प्र.

पूज्य मुनिवर श्री 108 सुधासागर जी महाराज समय के एक साधक सन्त हैं । आप पूज्य गुरुवर श्री 108 आचार्य विद्यासागर महाराज के शिष्य हैं । सुयोग्य गुरु के शिष्य होने के कारण गुरु जैसी चर्या और गुरु जैसा व्यवहार आपके संयमी जीवन में रच पच गया है । वे एक अन्वेषी प्रकृति के सन्त हैं । अपने दादागुरु आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की साहित्यिक कृतियों को खोजकर, उनके पुनर्मुद्रण की प्रेरणा देकर उनका प्रकाशन अल्प समय में ही करा कर आपने विलक्षण कार्य किया है । यद्यपि आचार्य ज्ञानसागर का कार्य स्वयं महान् है, किन्तु विद्वानों की दृष्टि उस ओर नहीं गयी थी, फलस्वरूप आपने सांगानेर (जयपुर) में 9 जून, 1994 से 11 जून, 1994 तक विद्वद् गोष्ठी का आयोजन कराया, जिसमें पूज्य आचार्य ज्ञानसागर महाराज की समस्त कृतियों पर विद्वानों ने अपने आलेखों का वाचन कर उन पर ऊहापोह किया ।

सांगानेर संगोष्ठी में विद्वानों ने यह अनुभव किया कि महाराज ज्ञानसागर जी का कृतित्व इतना महान् है कि एक कृति का एक लेख में मूल्याङ्कन सम्भव नहीं । अत: यह निर्णय लिया गया कि प्रत्येक कृति पर एक स्वतन्त्र संगोष्ठी का आयोजन किया जाय । इस निर्णय के अनुरूप दिनाङ्क 13 अक्टूबर, 1994 से 15 अक्टूबर 1994 तक आचार्य विद्यासागर जी महाराज की तपोस्थली अजमेर में 'वीरोदय महाकाव्य' पर एक विद्वद् गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें देश के कोने-कोने से लगभग 50 विद्वान् पधारे और वीरोदय के विभिन्न पक्षों पर निबन्ध पाठ कर उन पर पर्याप्त विचार विमर्श किया । पूज्य श्री सुधासागर जी महाराज तथा क्षुल्लक द्वय श्री 105 गम्भीरसागर जी महाराज एवं श्री धैर्य सागर जी महाराज के निरन्तर सान्निध्य एवं मार्गदर्शन का लाभ विद्वानों को मिला । इस बीच मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने भी आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के वीरोदय काव्य की महत्ता पर प्रकाश डाला । संगोष्ठियों की यह परम्परा पूज्य महाराज श्री के श्रीचरणों में समय-समय पर आगे भी चलती रहे, यह सबका सङ्कल्प है और इस हेतु महाराज श्री का आशीर्वाद भी प्राप्त है ।

बुन्देलखण्ड के अनेक प्राचीन क्षेत्र जैसे देवगढ़, सेरोन आदि प्राचीन कलात्मक वैभव और मूर्ति शिल्प के लिए विश्वविख्यात हैं, किन्तु उनके प्रति समाज की घोर उपेक्षा के कारण मन्दिर जीर्णशीर्ण हो रहे थे, मूर्तियों को तस्कर ले जा रहे थे, मूर्तियाँ बाहर खुले में धूप और हवा और पानी के सङ्कट से ग्रस्त थीं, अनेक मूर्तियों के अङ्ग भङ्ग हो रहे थे । इस दुर्दशा को देखकर महाराज श्री सुधासागर जी ने मन्दिर और मूर्ति के जीर्णोद्धार का महान् सङ्कल्प कर उसे मूर्तरूप दिया, जिसकी सभी ने मुक्तकण्ठ से सराहना की ।

पूज्य महाराज श्री सुधासागर जी महाराज में एक विचित्र प्रकार की वक्तृत्व शक्ति है, जो श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध सा कर लेती है । वे किसी विषय पर जब बोलना प्रारम्भ करते हैं तो उसकी पर्तों पर पर्तें खोलते चले जाते हैं और तब तक उस विषय पर बोलते चले जाते हैं, जब तक वह विषय श्रोताओं के हृदय में अन्त: प्रविष्ट न हो जाय । बीच-बीच में वे रोचक प्रसङ्गों, मुहावरों, व्यंग्योक्तियों, संस्कृत तथा हिन्दी के पद्य, उर्दू के शेर, लोकोक्तियों आदि का ऐसा प्रयोग करते हैं कि महाराज श्री का प्रवचन समय बीतने पर भी लोग चाहते हैं कि महाराज श्री निरन्तर अपनी वाङ्माधुरी से उपकृत करते रहें । प्रवचन सभा में से जाने की आदत वाले भी उनकी सभा में सजग होकर बैठते हैं और रुचिपूर्वक सुनते रहते हैं । विषय निरूपण हेतु वे अपने सैद्धान्तिक ज्ञान का भी प्रकाशन करते हैं, जिससे प्रवचन विद्वानों से लेकर सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य हो जाता है । उन जैसे अध्यात्म प्रवक्ता साधु बहुत कम हैं ।

एक बार महाराज श्री सान्निध्य में ललितपुर में सल्लेखना पर संगोष्ठी का आयोजन हुआ । मैंने सोचा सल्लेखना जैसे विषय पर इतनी लम्बी गोष्ठी कैसे चलेगी, किन्तु जब गोष्ठी तीन दिन चलती रही और विद्वान तथा महाराज श्री सल्लेखना के विषय में निरन्तर अपनी वाग्धारा प्रवाहित करते रहे, तब विषय की उपयोगिता की ओर लोगों का ध्यान गया और सब महाराज श्री की ज्ञानगरिमा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे । पूज्य महाराज श्री के सानिध्य में अनेक स्थानों पर गजरथ, पंचकल्याणक आदि के आयोजन बड़ी धूमधाम से हुए और उनमें महाराज श्री की संगठन शक्ति और विषय नियोजन की अपूर्व शक्ति देखी

रखते । वे स्वयं जैसे अनुशासित हैं, उसी प्रकार समाज को अनुशासन बद्ध देखना चाहते हैं । श्रावक संस्कार शिविरों का आयोजन महाराज श्री जी की ही सूझबूझ का परिणाम है । आज ऐसे शिविरों में सैकड़ों नवयुवक भाग लेकर एक प्रकार से साधना का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं और निरन्तर ऐसे शिविरों के लिए लालायित रहते हैं । महाराज श्री के सान्निध्य में निरन्तर स्वाध्याय, बाल प्रशिक्षण, महिला प्रशिक्षण, वृद्ध प्रशिक्षण और युवा प्रशिक्षण के कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं । इस प्रकार की बहुमुखी प्रवृत्तियों के बीच वे निरन्तर आत्मकल्याण की साधना में निरत दिखाई पड़ते हैं । इनके चरणों में अभद्र भी भद्र हो जाता है । वे करुणा, क्षमा, दया और शान्ति के भण्डार हैं, प्रणामाञ्जलि समर्पित है ।

सुधामय व्यक्तित्व मुनि सुधासागर

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'
हिन्दी विभाग
सेवासदन महाविद्यालय, बुरहानपुर

भारतीय वसुन्धरा जिन संत चरित्रों की चरणरज का सतत स्पर्श कर धन्यभाग्य हो गई उनमें परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य मुनि श्री 108 सुधासागरजी महाराज का नाम अग्रगण्य है । त्याग, तपस्या, संयम से अद्‌भुत तेज उनके आभामण्डल का चिरस्थायी अंग बन गया है । वीरोचित शौर्य, अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग, सतत सिद्धत्व प्राप्ति की ललक, पदविहार, जीवरक्षण के साथ-साथ जीवोत्थान की उत्कट भावना उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रखर सूत्र हैं । वे 'साधयतिसहजभावं प्राकृतिक वेशं वा सः साधु' की परिभाषा पर खरे उतरते हैं । आपके रूप में साधुत्व समीप आता हुआ सा दिखाई देता है । जिस विराट् साधु परम्परा में पूज्य मुनि श्री अनवरत चल रहे हैं वह शान्ति, शिव, ज्ञान और विद्या की उत्कृष्ट परम्परा है जिसकी संयम, ज्ञान, साधना और तपस्या के लिए आम जनमानस में विशिष्ट पहचान है ।

पू. मुनि श्री की विचारणा है कि "स्वयं को समझो । जो देख रहा हूँ वहाँ मैं नहीं, जिससे देख रहा हूँ, वह मैं हूँ।" वास्तव में स्वयं को देखने वाला ही स्वयं को प्राप्त होता है, यह जिनकी दृष्टि है, ऐसे परम् संत पूज्य सुधासागर जी महाराज आमजन के लिए सुधामय हैं और वे ऐसे सुधाकर हैं जो । उस सुधा को बाँटते रहने में ही अपने सुधाकर होने की सार्थकता मानता है ।

पूज्य मुनि श्री के सान्निध्य एवं प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रेरणा से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, गजरथोत्सव, तीर्थोद्धार, श्रुत सेवा एवं श्रावकोत्थान के उल्लेखनीय कार्य हुए हैं जिनसे समाज/विद्वान अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हुए हैं ।

मैं पूज्य मुनि श्री के चरणों में नमोस्तु करता हुआ उनके सुदीर्घ जीवन की कामना करता हूँ ताकि उनके माध्यम से जिनवाणी रूप सुधावर्षा का रसास्वादन करते हुए आत्मानुभूति कर सकूँ ।

❑❑❑

परिश्रान्त मानवता के उन्नायक विद्वानों में विद्वान् मुनि श्री सुधासागरजी

लेखक–विश्वनाथ मिश्र
जैन विश्व भारती लाडनूं

त्याग तपस्या और ज्ञान के मूर्तिमान् विग्रह श्रद्धेय मुनि श्री सुधासागरजी वर्तमानकालिक उद्‌भ्रान्त क्लान्त और परिश्रान्त मानवता के उन्नायक हैं । निर्मलस्वान्त: सम्पन्न निर्दम्भ व्यक्तित्व के अधिष्ठान श्री सुधासागरजी महाराज का प्रेरणाप्रद उपदेशामृत मनुष्य के ज्ञानावरणीय कर्मों के विलयपुरःसर आस्रव का निरोधक तथा निर्जरोन्मुख जीवन के लिये मंगलमय पाथेय है । सरल और ललित भाषा में दिया गया आपका उपदेश अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान के अलौकिक आलोक से साधक के अन्तराल को आलोकित कर देता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

आपकी उज्ज्वल चारित्रिक सम्पत्ति बरबस मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे सत्पथानुगामिनी बनाती है । आपके प्रभावक व्यक्तित्व के प्रभाव से आज मनुष्य में नव जागरण एवं नई चेतना का संचार हुआ है । आपके द्वारा भीषण भवाटवी में भटकती मानवता का कल्याण सदा होता रहेगा ।

परम् श्रद्धेय श्री सुधासागर जी महाराज के पावन सानिन्ध्य में त्रिदिवसीय विद्वत संगोष्ठी निर्विघ्न सम्पन्न हुई । लगभग चालीस विद्वानों के महत्वपूर्ण शोधपत्रों का वाचन इस संगोष्ठी में हुआ । पत्र जो स्वयं में गवेषणात्मक थे उनके वाचन के उपरान्त प्रश्नोत्तर के माध्यम से जो वैचारिक मन्थन यहाँ हुआ, वह अपने में अभूतपूर्व था ।

इस संगोष्ठी में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य के रूप श्रद्धेय सुधासागरजी महाराज की सूक्ष्मेक्षिका को प्रस्तुत किया जा सकता है । पत्रवाचन के पश्चात् समस्त पत्रों के ऊपर गहन चिन्तन समन्वित सारगर्भित टिप्पणी मुनि श्री सुधासागर जी की असाधारण प्रतिभा को अभिव्यञ्जित करती थी ।

निश्चय ही इस प्रकार की संगोष्ठी दैनन्दिनक्षीयमाण शास्त्रीय प्रौढि की संरक्षिका हो सकती है अतः ऐसे आयोजन के नैरन्तर्यता व्याघात नहीं होना चाहिये ।

अमृतमयी वाणी के सागर: मुनि श्री सुधासागर

डॉ. जगन्नाथ पाठक, इलाहाबाद

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के प्रवचन मैंने प्रथम बार सांगानेर (जयपुर) की संगोष्ठी के अवसर पर सुने थे । उनके व्यक्तित्व का जो प्रभाव उनके प्रथम दर्शन में अनुभूत हुआ उनके प्रवचनों ने उसे और भी गहरा और दृढ़ किया । उनकी वाणी में जो सत्य और अहिंसा के प्रति निष्ठा का भाव लक्षित हुआ वह हमारी समग्र परम्परा का फलितार्थ प्रतीत हुआ । 'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति' की पुनरावृत्ति सी उनके प्रवचनों में प्रतीत होती है और नैषधकार का वह वचन भी इनके संक्षिप्त प्रवचनों में घटित होता प्रतीत है- "मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता" सही मायने में मुनि श्री सुधामयी वाणी के सागर हैं ।

डॉ. प्रेमचन्द रांवका
1910, खेजड़े का रास्ता, जयपुर

श्रमणों की पुनीत-परम्परा में इस युग के अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, संस्कृत वाङ्मय के अप्रतिम महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के उत्तराधिकारी चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जी के शिष्य परम् पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी एक दशक से अपने हृदय-स्पर्शी वाणी से जन-जन को प्रभावित कर रहे हैं ।

जून, 94 में सांगानेर की चित्रकूट कॉलोनी में मैंने आपके प्रथमतः मंगल दर्शन किये । प्रथम दर्शन में ही आपकी दार्शनिक आभा ने मुझे अन्तस्तल से प्रभावित किया और सांगानेर में अल्प प्रवास काल ने 15 कि. मी. दूर स्थित जयपुर जैन समाज को प्रातः 6.30 बजे होने वाले आपकी धर्म सभा में तत्त्व श्रवण के लिये बाध्य कर दिया, जब कि वहाँ अन्य मुनिराज भी विराजमान थे ।

परम् पूज्य मुनि श्री सुधासागर योग्य गुरु के योग्य शिष्य हैं । आपके समग्र व्यक्तित्व और कृतित्व से वीतरागता झलकती है । यह वीतरागता जिसमें ज्ञान गरिमा से युक्त हितोपदेशिता है - स्वतः ही वन्दनीय जीवन्त प्रतीक हैं । "ॐ नमःसिद्धेभ्यः" की ओंकार मयी मंगल ध्वनि से प्रारम्भ आपके प्रवचनों में श्रोता गण सावधान मुद्रा में आपके मुखारबिन्द से निस्सरित ज्ञानरस धारा में आस्वादन लेता हुआ उसमें निमग्न होने लगता है । आपकी विशिष्ट प्रवचन शैली में दार्शनिक संतत्व झलकता है । जहाँ सुकरात जैसा दार्शनिक विद्वान भी कह देता था I know that I know nothing यह अल्पज्ञता नहीं जिज्ञासा है जो मनुष्य को

कल्याण की ओर ले जाती है । मुनिश्री सुधासागर ऐसे ही धार्मिक संत हैं, जिनकी चरण सान्निध्य में बैठने से तन-मन-धन को विश्रांति, शान्ति और ज्ञानामृत सुधारस प्राप्त होती है । वस्तुतः मुनि श्री ज्ञान-विज्ञान के सुधा सागर हैं । इन्हें नमन है ।

डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय
नेहरू रोड, बड़ौत, मेरठ

मुनि श्री का प्रथम परिचय ही व्यक्ति की अन्तरात्मा को पूर्णरूपेण प्रभावित कर देता है । उनकी युवावस्था, विशाल वक्षःस्थल तथा भाल पर विराजमान तपस्तेज उनके आकर्षण व्यक्तित्व के अङ्ग हैं ।

उनकी साहित्य साधना उनकी इस छोटी सी अवस्था को देखते हुए महान् लगती है । हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी आदि भाषाओं का उनका असाधारण ज्ञान यह प्रमाणित करता है कि उनमें किसी बात को, भाषा को सीखने की कितनी असाधारण क्षमता है ।

उनकी प्रवचन शैली अत्यन्त आकर्षण है । उनकी वाणी सरल, सरस तथा सबके प्रति अकृत्रिम स्नेह से सम्पन्न रहती है । उनका व्यवहार अत्यन्त अनुशासित तथा संयत है । उनकी देवोपम, भव्य आकृति सुन्दर प्रवचन शैली, दिव्य ज्ञान तथा जैन एवं अजैन विषयों का असाधारण ज्ञान तथा इन सभी को अत्यन्त उत्कृष्ट रूप से समन्वित कर सामान्य जनता को मन्त्रमुग्ध कर देने वाली क्षमता असाधारण है ।

मेरी कामना है वे अपने युग की चुनौती का सामना करते हुए अपने कर्त्तव्य पर डटे रहेंगे तथा अपने मुनि जीवन के आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मानवता के भावी को आलोकित और प्रशस्त करने का भागीरथ प्रयत्न करते रहेंगे ।

विजय धुर्रा
तुलसी पार्क
अशोक नगर (म. प्र.)

श्रावक श्रेष्ठी के घर जन्मा 'श्रावक' श्रमण संस्कृति अग्रदूत होगा ऐसी कल्पना उन महान् श्रेष्ठी श्री रूपचन्दजी के मन में भी नहीं आयी होगी । भले ही उन श्रेष्ठी महानुभाव ने उन महान् श्रमण रत्न को जन्म के पूर्व ही संस्कारित करना प्रारम्भ कर दिया हो और वस्तुतः उन्हीं के संस्कार जो बालक जय की जीवन झाँकी में बाल्यकाल में ही झलकने लगे थे । श्रमण संस्कार से जुड़ने के पूर्व अपनी चरम सीमा पर वह पहुँच गए और उनकी पूर्णता श्रमण रत्न श्री सुधासागर जी महाराज के रूप में हुई । और उन प्रतिभा पुष्प महाश्रमण की एक अनोखी श्रमण संस्कार यात्रा शुरु हुई जिस यात्रा का हम स्वागत तो कर सकते हैं परन्तु इस वेश में पूर्णता शामिल नहीं हो सकते । समयचक्र के घूमने के साथ-साथ यह यात्रा वीर भूमि अजयमेरु में प्रविष्ट हुई । इस यात्रा का पूर्व की तरह ही इतना प्रभाव था कि जन मानस उस यात्रा को देखकर ही यात्री बनने को उत्सुक होने लगे । और उस महायात्री ने विश्राम साधना के लिए अपनी स्वीकृति ही प्रदान नहीं की - कि लोग श्रावक संस्कार यात्रा में प्रवेश करने शुरु हो गए और इतने लोग शामिल हो गए कि जिस दिन यह यात्रा यहाँ से पुनः आरम्भ होगी उस दिन इस अजयमेरु की पावन घाटी की इस यात्रा को आगे बढ़ाने का दुःख सहना मुश्किल होगा और जनमानस अपनी भावनाओं को सिर्फ आँसुओं में दिखा पायेगा ।

जब इस अपूर्व यात्रा की झलक पाने के लिए मैं अजयमेरु में आया तो उस यात्री से मुलाकात हो गयी जो इस यात्रा में प्रथम दिन ही शामिल हो गया था उस यात्री की भावना स्याही से मेरी कलम चल उठी । यात्री कहता है कि "मैंने कभी भी पहले दिगम्बर साधु के प्रति विनय तक प्रकट नहीं की । मेरा व्यापार (पेट्रोल पम्प) प्रायः ऐसा है कि मैं रात्रि भोजन करता था बस उन महाश्रमण जिनका नाम सुनते ही मेरे मन में जिज्ञासा पैदा हो गयी थी एक झलक पाने में भी चल दिया और देखकर ठगा सा रह गया । अन्दर मन में से भाव आए आज से रात्रि भोजन जीवन में कभी नहीं करूँगा । जिनालय आते-जाते चमड़े का भी त्याग कर दिया । जमीकन्द आदि का त्याग कर दिया । युवक क्या नहीं करता ? यह मैंने आप पर छोड़ा बस उसने सिगरेट का भी त्याग कर दिया । यहाँ तक कि आलू जैसी अति प्रचलित चीज का भी त्याग कर दिया । अपूर्व श्रावक संस्कार शिविर के दौरान प्रति रविवार पूजन का नियम, प्रतिदिन देवदर्शन का नियम आदि अनेक नियमों को धारण किया वो कहते हैं कि आज मुझे देखकर मेरे पड़ोसी में भी सुधार आ रहा है । वे भी इस संस्कार यात्रा में शामिल हो रहे हैं ।"

जब मैं पाली से बस में लौट रहा था तो मेरे बगल में एक तिलकधारी सज्जन आ बैठे और बड़ी विनम्रता से पूछते है कि आप कहाँ से पधारे और कहाँ जा रहे हैं । शायद उन्हें मेरी भाषा से ज्ञात हो गया था कि मैं यहाँ का नहीं हूँ ? मैंने कह दिया म. प्र. अशोक नगर से आया हूँ । वो महानुभाव माहेश्वरी समाज के थे । उन्होंने मुझसे पूछा ओसवाल समाज से हो क्या ? मैंने कहा कि नहीं दिगम्बर जैन हूँ तो वह बोले कि दिगम्बर जैन मन्दिर नसियाँ जी जरूर जाना वहाँ सुधा सागर जी महाराज आए हुए हैं । उनके द्वारा महाराज के बारे में यह और कहा गया कि अजमेर में ऐसे साधु मैंने आज तक नहीं देखे और मुझसे निवेदन किया कि मेरी तरफ से आप महाराज के पास जरूर जाना और मेरा नमोस्तु कहना । तब मुझे यह अहसास हुआ कि संस्कार यात्रा में केवल जैन ही नहीं अपितु जैन-जैनेतर सभी शामिल हो रहे हैं । आप भी शामिल हो इसी भावना के साथ ।

मुनि श्री की निरीह वृत्ति

प्रियंका, नीलम गंगवाल
सरावगी मौहल्ला, अजमेर

अध्यात्म सन्त मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के बारे में कई वर्षों से अभी तक बहुत कुछ सुना गया । विशेष कर उनकी चर्या के बारे में । चातुर्मास के पूर्व लोगों को बहुत जिज्ञासा रही परन्तु जैसा कि आपके बारे में सुना गया । वस्तुतः आपकी जैसी चर्या सुनी वैसी ही पायी । आहारचर्या के प्रति आपकी जो निरीह वृत्ति है वह अनोखी है आपके लिए जैसा भी प्रासुक भोजन दे दिया जाता है वैसा आप लेकर चले जाते हैं । आहार के समय आपके द्वारा अभूतपूर्व संयम साधना का परिचय झलकता है । उसी तरह आपकी शरीर के प्रति निरीह वृत्ति कड़ी सर्दी में भी चटाई न लेने से झलकती है । जब आप एक बार अशोक नगर से जबलपुर की ओर विहार कर रहे थे तो रास्ते में आपके पैरों में बड़े-बड़े छाले पड़ गए थे जिन्हें सूवे गर्म करके फोड़ दिए गए आपके पैर अत्यधिक कट गए थे इसके बावजूद भी आप गुरु आज्ञा होने के कारण कच्चे मार्ग पर निरन्तर चलते रहे। परिणाम स्वरूप बीना नदी (खुरई) के नजदीक किनारे पर ही सांझ होने के कारण आपने आगे विहार करने का विचार त्याग दिया । चूंकि यह दिसम्बर का माह था और कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी फिर भी आप रात्रि विश्राम के लिए आगे-पीछे 1-2 किलोमीटर भी नहीं बढ़े और एक कच्ची झोंपड़ी में लकड़ी की पट्टियों पर रात्रि व्यतीत की । सर्दी इतनी तेज थी कि संघ में चल रहे गृहस्थ लोग दो-दो तीन-तीन रजाई ओढ़ कर भी निद्रा को प्राप्त नहीं कर सके और सारी रात लकड़ी की अलाव जगाकर तपते रहे । ऐसे में आपके द्वारा बड़े समता परिणाम से रात्रि व्यतीत किया जाना आपके शरीर के प्रति निरीह वृत्ति को दर्शाता है । इसी तरह आपकी पूर्व गृहस्थ अवस्था में भी परिवार के प्रति निरीह वृत्ति रही । जब आप डॉ. सर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर में विद्या अध्ययन कर रहे थे तो आपके शरीर को अग्नि ने पीड़ा पहुँचाने की कुचेष्टा की । और उसने अपना स्थायी प्रभाव भी आपके ऊपर छोड़ने की भरपूर कोशिश की परन्तु आपने उसी समय संयम के संकल्प को जीवन में धारण कर आगे बढ़ने का निश्चय किया और वस्तुतः यही प्रसंग आपके जीवन में वैराग्य का मूल प्रसंग रहा जिसके परिणाम स्वरूप में आपको एक सन्त मनीषी के रूप में पा रही हूँ केश लौंच आप ऐसे करते है जैसे कोई सूखी घास को खेत से उखाड़ कर फैंक देते हैं । वस्तुतः केश लौंच की पीड़ा का अनुभव मुझे रहा है जब मैंने एक बार अपने कुछ बाल उखाड़ लिए तो कई दिन तक मुझे शारीरिक कष्ट रहा । ऐसे में आपके द्वारा केश लौंच करना आपके शरीर के प्रति निरीह वृत्ति रही ।

आपके जीवन की अनेक घटनायें सुनी हैं जो इस बात को बताती हैं कि आप एक कठोर साधक रहे हैं। आपके द्वारा मुक्तागिरि में किये गये एक आहार एक उपवास की एक माह तक चली आपकी साधना की महत्ता को प्रदर्शित करती है। आप अपने साधना जीवन में ७-७ माह तक मौन रहकर अपने आप तक ही सीमित रहते हैं। यह आपकी जन मानस के प्रति निरीह वृत्ति है।

वस्तुतः संसार से निरीह वृत्ति साधना की चरम सीमा है जो आपके जीवन में पानी की तरह समाई है। ऐसे उत्कृष्ट साधक को मैं कोटि-कोटि प्रणाम करती हूँ और भावना भाती हूँ कि मैं भी आपके समान साधना के पथ पर अग्रसर हो सकूँ।

गुरु श्री चरणों में कोटि-कोटि कोटि नमन।

□□□

उत्कृष्ट प्रवचन शैली के धनी : मुनि श्री सुधासागर

राहुल गंगवाल
बी. कॉम. तृतीय वर्ष
सरावगी मौहल्ला, अजमेर

आध्यात्मिक संत मुनि श्री सुधासागर जी महाराज की प्रवचन शैली जनमानस के बीच विशेष रूप से सराही जा रही है। आपकी चिन्तन शैली उत्कृष्ट है। प्रखर वक्ता होने के साथ-साथ आप उत्कृष्ट चारित्र के धनी एवं कठोर साधक हैं। आप इस युग के ओजस्वी वक्ता, ज्ञान मनीषी व आध्यात्म के प्रकांड विद्वान हैं।

आप कठिन से कठिन विषय को अनेक सूक्तियों, कथा-कहावतों और उदाहरणों के माध्यम से धर्म की बात को जन मानस के हृदय में उतार देते हैं। आपके प्रवचन साहित्यिक एवं धार्मिक दृष्टि से परिपक्व होते हैं। आपके प्रवचनों में अद्भुत जादूमयी शक्ति, गाम्भीर्य और धैर्य की छटा झलकती है। आपकी सरल, सुबोध, स्वच्छ, ओजस्वी, निर्मल वाणी मर्म स्पर्शी हृदय पर चिरस्थायी प्रभाव छोड़ती है। आप नकारात्मक वाक्यों को भी इस तरह सहज रूप से प्रस्तुत करते हैं कि लोग नकारात्मक वाक्यों का भी सकारात्मक अर्थ ग्रहण करते हैं। आपके चरणों में बड़े-बड़े नास्तिक आकर नतमस्तक हो जाते हैं। यह सब आपकी वाणी का ही प्रभाव है। निःसंदेह आपके पास कठिन से कठिन सभी दर्शनों की गूढ़ताओं और जटिलताओं को सरल से सरल बनाकर रोचक दृष्टांतों, पौराणिक उदाहरणों मनमोहक वाक्यों सूक्तियों के माध्यम से आबाल, वृद्ध सभी को धर्म की गहराई से परिचित कराने की अद्भुत क्षमता है। आप उत्कृष्ट नैतिक मूल्यों अनुशासन व सदाचार के समर्थक हैं। आपके मुखारविन्द से निकले हुये शब्द सत्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं। इस सम्बन्ध में अशोक नगर की एक एक घटना की चर्चा दूर-दूर तक लोग किया करते हैं। घटना के अनुसार आपके मुख से त्रिकाल-चौबीसी के साथ-साथ विद्यमान बीस तीर्थंकर की स्थापना के वाक्य भी मुख से निकल गये और आपके चरण सान्निध्य का ही प्रभाव था कि यह कार्य समाज के अल्प प्रयास से ही पूर्णता को प्राप्त हो गया। इस घटना को अशोक नगर के विजय भाई बड़े रोचक ढंग से प्रसंग आते ही सुनाते हैं। इन्हीं के मुख से ऐसी अनेक घटनायें सुनायी गयी जिनको सुनकर हर्षमयी आश्चर्य होता है। यह सब आपकी वाणी का प्रभाव है।

आपकी अनवरत साधना और स्वाध्याय लिप्सा और ओजस्वी वाणी को श्रावकजन पीते नहीं अघाते हैं। जिस क्षेत्र में आपके प्रवचन एक-दो बार हो जाते हैं। वहाँ के लोग आपके प्रवचनों के दीवाने हो जाते हैं वस्तुतः आपकी प्रवचन शैली के बारे में मैं कुछ ज्यादा नहीं कह सकती क्योंकि मुझे साहित्य का इतना ज्ञान कहाँ? जो आप जैसे उत्कृष्ट मनीषी के बारे में मैं कुछ कह सकूँ। आपकी प्रवचन शैली का ही प्रभाव है कि अजमेर नगर का प्रत्येक श्रावक आपका भक्त बन गया है। ऐसे अलौकिक दिव्य ज्ञान के धारी मुनिराज श्री सुधासागर जी महाराज के चरणों में शत शत वन्दन। और उनकी अमृतमयी वाणी को कोटि-कोटि नमन।

□□□

[illegible]

ब्र. [illegible]

[illegible]

भारत वर्ष के मध्य प्रदेश प्रांत के सागर जिले में अतिशय क्षेत्र ईशुरवारा ग्राम में श्रावण शुक्ला सप्तमी की शुभ तिथि की मंगल बेला में श्री रूपचन्द जी शांति देवी के गृह जन्मे बालक जयकुमार की जीवन झांकी प्रारम्भ से ही तप एवं [illegible] के आधार पर सजी है । सागर विश्वविद्यालय के लौकिक शिक्षा बी. काम. की डिग्री प्राप्त करने के बाद इस त्याग एवं वैराग्यमयी उपादान को ऐसे ही अनुकूल निमित्त प्राप्त होते रहे कि आपका तप/त्याग/संयम उत्तरोत्तर निखरता ही गया ।

महाविद्यालय में अध्ययनरत रहते हुये लेम्प का आपके शरीर पर गिरना आपके त्याग की भावना को बलवती बनाने की घटना थी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज से क्षुल्लक एवं ऐलक की दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् सिद्ध भूमि श्री सम्मेद शिखरजी के पास स्थित ईशरी शुभ स्थान पर मुनि श्री सुधासागरजी का जन्म हुआ । आपके त्यागी एवं संत के रूप में [illegible] अब तक की जीवन झाँकी, आत्म कल्याण की भावनायुक्त, महान तप में रत उपसर्गों से अविचलितपना निज पर कल्याण की इच्छा से परिपूर्ण तथा अनेक प्रतिकूलताओं में अनुकूलता बनाने का समवेग भाव सुसज्जित एवं अनुकरणीय रही है ।

मध्य प्रदेश/उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान आदि अनेक प्रान्तों के नगरों/महानगरों में आपकी प्रेरणा से हुये महान अतिशयकारी कार्य तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें, तीर्थक्षेत्रों/अतिशयक्षेत्रों का जीर्णोद्धार/विशाल गजरथ महोत्सव/तीन चौबीसियों की स्थापना/ पदमपुरा अतिशय क्षेत्र में की गयी धर्म प्रभावना/शिक्षण शिविर/सांगानेर जिनमन्दिर के तल घर से यक्षरक्षित जिनबिम्बों का जनता के लिए दर्शनार्थ बाहर लाना/अजमेर का श्रावक संस्कार शिविर/ शाकाहार प्रचार कार्यक्रम/अध्यात्मिक कवि गोष्ठी/विद्वत सम्मेलन आदि] आपकी अद्वितीय तथा शुभाशीर्वाद के ही परिणाम रहे हैं ।

इन सबसे ऊपर आपकी निष्पक्ष, निर्भीक, सरल, स्वच्छ एवं अमृतमयी तर्कपूर्ण प्रवचन शैली आपके चुम्बकीय व्यक्तित्व की परिचायक है । लाखों की संख्या में एकत्रित भव्य प्राणियों की आपकी धर्मसभा, समवशरण का प्रतिरूप होती है । जटिलतम विषयों को खेल-खेल में समझा कर आप अनेक दिशाभ्रांत श्रावकों/भव्यों को सन्मार्ग पर लगा रहे हैं ।

हम आपकी बहुमुखी योग्यता एवं बहुआयामी व्यक्तित्व का बार-बार वन्दन करती हुयी वीर प्रभु से मंगल कामना करती है कि हम शीघ्र हमारी स्त्री पर्याय का अवसान कर निकट भवों में अपना आत्म कल्याण करें ।

डॉ. अभय प्रकाश जैन
एन/14 चेतनपुरी,
ग्वालियर 474009 (म. प्र.)

मुनि श्री सुधासागर अध्यात्म और दार्शनिक संतों के सिरमौर हैं उनके अन्तस् में दिव्य चेतना का गूढ और प्रबल आवेग है यही आवेग उनकी सजीव अनुभूति वाक्य सृजन की प्रेरणा देता है । मन ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जिन भावनाओं और संवेदनाओं को वे ग्रहण करते हैं, उसके रस का स्वाद वे कविता में उतारकर अनहद का विस्तार प्रस्तार शब्द की असीम-अनंत अन्तहीनता के बोध को प्रस्तुत करते हैं ।

मुनि श्री की कवितायें जगत के रूपान्तरण, आत्म अनहद की स्वर लहरी के प्रवाह और अनूठी दिव्य प्यास का अनूठा संगम है ।

'बूंद से बूंद' कविता पृष्ठ ११ पर उनकी अनुभूति का रसास्वादन महत्व है वह बिन्दु जिसकी लम्बाई चौड़ाई, मोटाई नहीं होती - पर बिन्दु का अस्तित्व तो है - सत्य शाश्वत है ।

ये पंक्तियाँ ओस की बूंदें नहीं है जिनके चाटने से प्यास नहीं बुझती परन् सुधा की वे बूंदें हैं जो परम आनन्द की तृप्ति देती हैं । पृष्ठ ४० पर धूनीजी पर लिखी कविता टैगोर के शब्द 'एकला चलो रे' की भावनामय उनके ये शब्द अन्दर भीतर तक छू जाते हैं -

"मैं बटोही .....
राह के हर अनुभव से गुजरना चाहता हूँ
मंजिल को पाने को"

कवि ने अनेकानेक ऐसे स्थलों को स्पर्श किया है जो अत्यंत मार्मिक और शाश्वत मूल्यों को प्रतिपादित करते हुए जनमानस को संस्कारित करते हैं ।

उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं चुटीले व्यंग्य भी हैं जो पाठक को तिलमिला कर रख देते हैं, यह तिलमिलाहट जीवनदर्शन की है ।

मुनि श्री की छांव में बैठकर हम वह सब कुछ पाते हैं जो हमें भौतिक सुखों से भी प्राप्त नहीं हो पाती । उनका ज्ञानदिव्य है - उनकी कवितायें जीवन में रसायन का काम करती है हमें महाराज श्री से और भी ऐसा रचनायें पढ़ने को मिलती रहेंगी ऐसी हमारी हार्दिक कामना है -

एक साहित्य प्रेममयी मार्गदर्शक

प्रो. सुशील पाटनी शील, अजमेर

परम् पूज्य आचार्य शिरोमणी १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज के परम् शिष्य १०८ श्री सुधासागर जी महाराज जहाँ, अपने दीक्षा गुरु की भाँति त्याग/तप/संयम/साधना/मुनिचर्या आदि के क्षेत्र में श्रेष्ठ श्रमण हैं - मानवता के क्षेत्र में दया/वात्सल्य/परोपकार/सहिष्णुता/क्षमा की सच्ची प्रतिमूर्ति है, तो साहित्य संस्कृति एवं आध्यात्म के क्षेत्र में उत्कृष्ट मनीषी एवं प्रणेता हैं जो उनकी हृदय प्रभावक प्रवचन शैली के निर्झर से प्रमाणित है । संस्कृति एवं साहित्य के अध्येता/अन्वेषक पूज्य मुनिराज श्री सदैव जिनागम के प्रचार, प्रचारार्थ अध्यवसायी रहते हैं/उनकी यही कामना रहती है कि वर्तमान समय में आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का चिन्तन/मनन/पठन हो तथा ये ग्रन्थ पाठकों के लिए स्वाध्यार्थ सहज रूप में उपलब्ध हो सके । परम् पूज्य आचार्य १०८ श्री ज्ञानसागरजी महाराज के २४ ग्रन्थों का एवं विभिन्न विद्वत् गोष्ठियों में प्रस्तुत आलेखों का आपकी पावन प्रेरणा से अत्यन्त अल्प अवधि में, श्रावकों द्वारा प्रकाशन आपके साहित्य प्रेम एवं अनुराग तथा सेवा के अनुकरणीय उदाहरण है ।

प्रस्तुत लेख द्वारा पूज्य महाराज श्री के प्रवचनों/कविताओं तथा विद्वत् गोष्ठियों में उनके द्वारा दिये गये शुभाशीर्वादात्मक प्रवचनों को साहित्य के रूप में प्रकाशित की गयी पुस्तकों का परिचय मात्र कराने का प्रयास किया गया है । यह कल्याणकारी एवं महत्वपूर्ण कार्य पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री गम्भीर सागर एवं १०५ श्री धैर्य सागर जी की प्रेरणा से ही श्रावकों द्वारा सम्भव हो पाया है ।

पूज्य महाराज श्री का (संसघ) इसी प्रकार आगम प्रेममयी मार्गदर्शन चिरकाल तक मिलता रहे, जिससे हम सभी श्रावक अपने मानवीय जीवन को सरलता की ओर प्रशस्त कर सकें ।

□□□

नग्नत्व क्यों और कैसे

प्रवचन : मुनि श्री सुधासागर जी
प्रेरक प्रस्तुति : क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी
क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी
सम्पादक : डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर
प्रबन्ध सम्पादन: ज्ञानोदय नवयुवक सभा, जबलपुर (म.प्र.)
प्रकाशक: श्री दि. जैन पंचायत कमेटी एवं
गजरथ महोत्सव कमेटी, ललितपुर
संस्करण : प्रथम आवृत्ति 2000
मूल्य : 10 रुपये
कुल पृष्ठ : 68
प्राप्तिस्थान : 1. श्री कुशलचन्द जैन एडवोकेट:ललितपुर
2. मुकेश जैन:चावल गल्ला मण्डी, जबलपुर
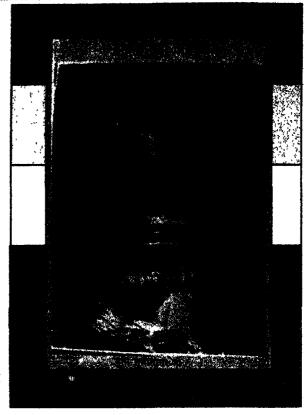
प्राकृतिक अभिराम दृश्य निर्झर के कवर पृष्ठ के आकर्षक एवं सुन्दर चित्र से छपी एवं प्रकाशित यह पुस्तक मुनि श्री सुधासागर जी के ११ वें मुनिदीक्षा वर्ष १९९३ के उपलक्ष्य में ललितपुर की समाज द्वारा प्रकाशित कराई गयी है। सन् १९९३ के वर्षा-काल में मुनि श्री के लगभग १५० प्रवचनों में से दिगम्बर देशना के तीन आयामों नग्नत्व/ केशलोंच/ आहार पर प्रवचनों में प्रखर एवं गूढ़तम दृष्टि को विवेचित किया गया है ।

कृति की पृष्टभूमि पर प्रेरक उद्गार मे क्षुल्लक द्वय पू. श्री गम्भीरसागर एवं श्री धैर्यसागर द्वारा मुनि श्री की प्रवचनशैली की ओजस्विता एवं प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में लिखा गया है "मानों साक्षात् केवली का अभाव वर्तमान में होने पर भी केवली जैसा सद्भाव हो ।"

चातुर्मास काल के इन प्रवचनों मे दिगम्बर क्या है? इनकी चर्या क्या है? केशलोंच क्यों? कैसे किया जाता है, आहार क्यों ? एवं कैसे ? विषयों पर दिगम्बर मुनि की चर्या का रास्ता सरल, सहज एवं सारयुक्त विवेचन किया गया है। प्रवचनों में उक्त विषयों को आगम सम्मत युक्तिपूर्ण, अद्भुत शैली एवं तार्किक व्याख्या के द्वारा उद्घाटित किया गया है, जो पठनीय एवं मननीय है ।

आध्यात्मिक पनघट

प्रवचनः मुनि श्री सुधासागर जी

सम्पादकः ऐलक १०८ श्री निःशंकसागर जी

प्रकाशकः श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन त्रिकाल चौबासी क्षेत्र अशोक नगर, गुना

संस्करणः द्वितीय

मूल्यः १० रुपये

कुल पृष्ठः ७३

प्राप्तिस्थानः
1. ज्ञान विद्या सुधाशास्त्र केन्द्र, सुभाषगंज, अशोक नगर ।
2. श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, बजरंगगढ़ (गुना) ।
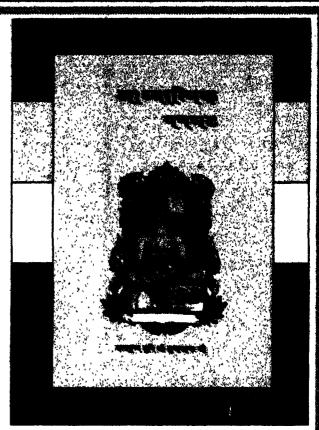
पुस्तक में गुना नगर में ग्रीष्म काल १९९३ के समय मुनि सुधासागर जी द्वारा महावीर भवन में दिये गये प्रवचनों का लिपिबद्ध प्रकाशन है। प्रवचनों के इस संकलन से जीवन की अमूल्य धरोहर देव शास्त्र गुरु के प्रति धर्मात्मा की आत्मनिष्ठा से लेकर समीचीन दिशा का दिग्दर्शन कराया गया है। प्रवचनों में धर्ममार्ग पर चलने में असमर्थ व्यक्तियों के लिए उपासना/पूजा आदि कर्मों में रत रहकर सम्यग् मार्ग प्राप्त करने का संकेत दिया गया है ।

जिन्दगी एक प्रश्न है ? पूज्य बनो या पूजा करो। अनहोनी जो होनी हो गयी। नमस्कार में चमत्कार । क्या से क्या हो गया। आदि शीर्षकों से पांच प्रवचन प्रकाशित किये गये हैं। वस्तुतः जीवन की उलझी गुत्थियों को सुलझाने के हित से प्रकाशित यह प्रवचन संकलन बिन्दु में सिन्धु जैसा है। सुबोध एवं सरल शैली में प्रकाशित यह पुस्तक जनमानस के लिए पठनीय मननीय एवं आचरण योग्य है। पुस्तक की पृष्ठभूमि में ऐलक श्री निशंकसागर द्वारा रचित जो पाया उसे खोना होगा कविता के माध्यम से समर्पण भावों को बडे सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

कृतिकार: मुनि श्री सुधासागर जी

सम्पादन: अजित जैन, एडवोकेट

सह सम्पादन: सतीश जैन, नेता

प्रकाशक: ज्ञानोदय नवयुवक सभा, लार्डगंज, जैन मंदिर, जबलपुर

आवरण छायाकार: सन्देश जैन, जबलपुर

संस्करण: प्रथम आवृत्ति 3000

सौजन्य राशि: 10 रुपये

कुल पृष्ठ: 50
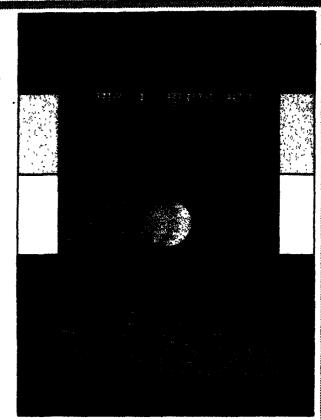
यह पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज द्वारा रचित कविताओं मे से ३६ कविताओं के संग्रह का प्रकाशन है। कविताओं के शीर्षक जितने अधिक आकर्षक हैं। अर्थाविबोध उनसे कहीं अधिक है। कविताओं में सन्त कवि ने समय-समय पर अनुभूत अपने भावों को संजोया है। कृति सहज, सरल एवं सुबोध अभिव्यजना में मानों गागर में सागर भर दिया हो, जैसी है।

पुस्तक में कविताओं को तीन वर्गों यथा-अध्यात्म, चिन्तनदर्शन एवं सामाजिक चेतना (व्यंगात्मक) में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है । अध्यात्म कविताओं मे कब खफा हो दफा हो जाये, नग्न बून्द से बिन्दु, तीर्थंकर नहीं तो तीर्थ तो बनालो, आदि कविताओं ने सुप्त अध्यात्म को जगाने का प्रयास किया है । चिन्तन दर्शन में/खुदा का हृदय भी कराह उठा, चूल्हे की आग, माफ नहीं इन्साफ होगा, रंगरूटों के बूंट, कौडी, आखिर जहर किसका, दूध का नाम अमृत भी आदि कवितायें मुनि हृदय में समाविष्ट अहिंसा एवं मानव कल्याण की उत्कट भावनाओं का उद्घाटन है। सामाजिक चेतना (व्यंगात्मक) कविताओं में रास्ते में वास्ते का नाश्ता, ज्योति के पूर्व का धुँआ, जाकिट में पाकिट न हो, पीर पर नीर आदि शीर्षकों से समाज एवं देश में व्याप्त दिशाहीनताओं पर चोट की गयी है ।

सम्पादक जी के शब्दो में, काव्य कृति में मानव जगत के रूपान्तरण, आत्मतत्त्व की ओर प्रवाह व्याप्त विसंगतियों में संगति के प्रति प्रयास कर अनूठा संगम है। कृति एक चिन्तन योग्य पुस्तक है ।

जीवन एक चुनौती

प्रवचन: मुनि श्री सुधासागर जी

सम्पादक: श्री बाबूलाल बडकुंल, जबलपुर

प्रबंध सम्पादक: निर्मल कासलीवाल, महावीर बज, नरेन्द्र पांडया

प्रकाशक: ज्ञानोदय नवयुवक सभा लार्डगंज, जबलपुर

संस्करण: प्रथम आवृति 2000

आवरण: विनय अम्बर, जबलपुर

मूल्य: 15 रू.

प्राप्ति स्थान: श्री दि. जै. मन्दिर अतिशय क्षेत्र, मन्दिर संघीजी, सांगानेर (जयपुर)

कुल पृष्ठ: 74

प्रतीकात्मक आधुनिक चित्र से सुसज्जित सुन्दर कवर पृष्ट में छपी एवं प्रकाशित यह पुस्तक मुनि श्री सुधासागर जी के प्रवचनों का संकलन है। पूज्य महाराज जब अतिशय क्षेत्र पद्मपुरा से विहार करते हुये सांगानेर के विशाल एवं गगनचुम्बी मंदिर संघी जी में जिनबिम्बों के दर्शनार्थ पधारे और वहाँ प्रवचन किये तब उनके प्रवचनों को कमेटी की प्रबल भावनानुसार लिपिवद्ध करा प्रकाशित किया गया पुस्तक में सामान्यजनों का जीवनक्रम विचारों की प्रवृत्ति और व्यवहारिकता को नियमित एवं संयमित बनाये रखनें के उद्देश्य से दिये गये प्रवचनों का संकलन है ।

पुस्तक में 'नाव में सहारा दो', 'नाविक का सहारा लो', 'कारण और कारण के कारण', 'यह सत्य है कि वह सत्य है', 'पावर नहीं बिल पावर' आदि शीर्षक से गृहस्थों / श्रावकों को देव, शास्त्र, गुरु से प्रीति करना आवश्यक [illegible] का महत्त्व, स्वपर कल्याण के भाव, धर्म की शाश्वतता, गुणों का ग्रहण, संयम एवं ध्यान, शुभोपयोग, गुरु का महत्व, चतुर्थकाल / पंचमकाल, संत एवं दार्शनिक संत सुख एवं कारण, सत्य की सत्ता, कीचड में रहकर कमल बने, संकटो में मुस्कराते रहो, जीवन एक चुनौती है आदि विषयों का तार्किक विश्लेषण किया गया है ।

पुस्तक के प्रारम्भ एवं अन्त में पूर्व आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के महाकाव्य, मूकमाटी से दो कविताओं को भी छापा गया है। आवरण चित्र कृतिकार विनय अम्बर जबलपुर की चित्र शैली विशिष्ट है, जिसमें सहज आकृतियों के माध्यम से सम्पूर्ण जीव समाज (पशु, पक्षी, एवं मानव) की चुनौतियों को दर्शाने का प्रयास किया गया है ।

पुस्तक का पाठ निम्न पंक्तियों में झलकता है :-

जीवन एक चुनौती है इसे स्वीकार करो
जीवन एक स्वप्न है उसे साकार करो

पुस्तक पठनीय एवं माननीय है ।

आचार्य ज्ञानसागर की साहित्य साधना

(सांगानेर में आयोजित अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी में पठित शोध-पत्रों का प्रकाशन)

आशीर्वाद एवम् सान्निध्य

पू. १०८ मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

पू. 105 क्षु. गम्भीरसागर जी महाराज

पू. 105 क्षु. धैर्यसागर जी महाराज

सम्पादक

डॉ. शीतलचन्द जैन, जयपुर

एवं

डॉ. रमेशचन्द जैन बिजनौर

प्रकाशक

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर, संघीजी

जैन मन्दिर रोड़, सांगानेर (जयपुर - राज.)

इस ग्रन्थ में पूज्य मुनिश्री के ससंघ सान्निध्य में दि. ९ जून, ९४ से ११ जून, ९४ तक आयोजित संगोष्ठी में अखिल भारतीय जैन/अजैन विद्वानों द्वारा आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की कालजयी कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए शोधपत्रों का पाठन किया गया। उन महत्त्वपूर्ण लगभग ४० लेखों को समायोजित करके एक अभिनव प्रकाशन किया गया।

इस ग्रन्थ में भारतभारती पुरस्कार प्राप्त डॉ. मण्डनमिश्र-दिल्ली, डॉ. प्रभाकर शास्त्री-जयपुर, डॉ. रमेशचन्द जैन-बिजनौर, डा. श्रेयांशकुमार जैन-बड़ौत, डॉ. जयकुमार जैन-मुजफ्फरनगर आदि विद्वानों के लेख जहाँ एक ओर आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की कृतियों का आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत करते हैं, वहीं दूसरी आचार्यश्री की अप्रतिम काव्य प्रतिभा को उभार कर सामने लाते हैं। इन निबन्धों (शोध-पत्रों) के पूर्व मुनिराजश्री का आरम्भिक विशालकाय लेख कनकमहल पर मणिमय कलश की शोभा पाता है।

मुनि श्री सुधासागरजी - एक बेबाक दृष्टि

धर्मानुरागी, संयमी, शास्त्रवेत्ता उदारचित्त महामना परम् पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज के बारे में लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। अनंत गुणों की खान मुनि श्री के विषय में लेखन सागर के किनारे सीपियां बटोरने के समान है क्योंकि सम्पूर्ण जीवन भर सागर के किनारे सीपियाँ बटोरते हुए भी सागर की थाह पा लेना सम्भव नहीं है, ठीक उसी प्रकार मुनि श्री के गुणों की थाह पा लेना सम्भव नहीं है। फिर भी अग्रलेख मेरा एक तुच्छ प्रयास है ।

वचनमिष्ट, दया के सागर, शास्त्रों में पारगंत, क्रोध, मान व माया से रहित आचार्य श्री 108 सुधासागजी महाराज इस युग के उन इने गिने संतों में से हैं जिन्होनें जैन धर्म को समझने और अनुभव में लाने के क्रम में ना सिर्फ जैन ग्रन्थों बल्कि अन्य अनेक धर्मग्रन्थों जैसे वेद, पुराण, गीता, महाभारत, बाइबल आदि का सांगोपांग अध्ययन किया है।

अहोभाग्य है यह धरा आचार्य श्री 108 श्री विद्यासागरजी महाराज जैसे विरले आचार्य अपने शिष्यों को अध्ययनमनन व तपस्या की भट्टी में तपाकर मुनि श्री सुधासागरजी जैसा विद्वत् शिष्य तैयार करते हैं। उनके सान्निध्य में साधु ऐलक या ब्रह्मचारी इतनी विद्वत्ता प्राप्त कर लेता है जो सचमुच हमारे लिए प्रसन्नता व रोमांच का विषय है। इनकी असीन करुणा, दया, स्नेह व वात्सल्य की तरिणी में तरकर जीव अपना जीवन धन्य कर लेता है।

मुनि श्री सुधासागरजी की असीम अनुकम्पा का ही प्रतिफल है कि जनसाधारण को सुधा रुपी वाणी प्राप्त हो रही है। आपके सद्प्रयासों से ही विभिन्न विषयों पर गोष्ठियों का आयोजन कराया जा रहा है जिसमें पूज्य आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज के अनेक ग्रन्थों का सूक्ष्मता व विषयवार शोध निबन्धों के माध्यम से गूढतम रहस्यों का खुलासा कराया जा रहा है। इसके परिणामस्वरुप धर्म व जीवन का यथार्थ सामने आए बिना नहीं रह सकता । भिन्न-भिन्न विषयों में पी. एच. डी. प्राप्त विद्वान व मनीषियों के साथ लगातार विचार मंथन से जो सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त हो रहा है वह सुधासागर जी जैसे विद्वान् व मनीषी सन्त ही पचा सकते हैं। यही वह पृष्टभूमि हैं जिसमें मुनि श्री का ज्ञान अपनी उत्कृष्टता की ओर बढ़ रहा है। ज्ञान के आलोडन विलोडन के बाद जो अमृत वाणी प्राप्त हो रही है उसकी गहराई व वास्तविकता के कारण ही साधारण से लेकर विशिष्टजन कैसे अप्रभावित रह सकता है।

जिस मनीषी की ज्ञान दृष्टि और अनुभव की पृष्ठभूमि में इतने साहित्य का विशद अध्ययन हो निश्चय ही उसके उद्गार विचारणीय व अनुकरणीय होगें। इसी के दृष्टिगत रखकर ही मैंने उनके विचार व अनुभव पर आधारित इस लेख का शीर्षक "बेबाक दृष्टि" रखा है।

समाज व्यवस्था - इसके अन्तर्गत महाराज श्री ने स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक के समाजों को सम्मिलित करते हुए इस सिद्धान्त पर जोर दिया कि जो समाज , राज्य या राष्ट्र सामाजिक सिद्धान्तों की नींव धर्म पर आधारित नहीं करते, वे समाज राज्य राष्ट्र अपनी जनता को कभी भी सच्चे रुप में सुख व शान्ति प्रदान नहीं कर सकते । जिस समाज राष्ट्र या राज्य की नीतियाँ अहिंसा, सदाचार, व लोकहित पर आधारित नहीं होती वह कभी भी उत्कृष्टता को प्राप्त नहीं कर सकता। कितने पावन उद्गार हैं महाराज श्री के । महाराज श्री ने देश व राज्यों की उन सरकारों को धृतराष्ट्र की संज्ञा उचित ही दी है जिन्होंने लाटरी चला रखी है। जिस धृतराष्ट्र ने जुए को राजकीय मान्यता देकर महाभारत के युद्ध जैसी विभीषिका में देश को धकेला, ठीक वही कार्य हमारे देश की सरकार व राज्य सरकारें कर रही हैं। इन राज्य सरकारों ने जुए की प्रवृति को लाटरी के रुप में राजकीय मान्यता दी है ऐसे निकृष्ट कार्यों को करने वाला व्यक्ति या राज्य धर्म से तो कोसों दूर है ही उन्हे अपने इतिहास का भी होश नहीं है इतने समसामयिक विचारों पर स्पष्ट दृष्टि श्री सुधासागर जैसे महान् मनीषी की ही हो सकती है।

राजनीतिक दलों के प्रति महाराज श्री का आक्रोश उचित ही तो है। आज ना सिर्फ इन दलों की कथनी व करनी में अन्तर आ गया है वरन् राजनीतिक दलों का एक मात्र ध्येय येनकेन प्रकारेण सत्ता प्राप्ति एवं सत्ता में बनें रहना ही रह गया है। ये राजनीतिक दल भावुक लुभावने व आकर्षक नारों की बदौलत सत्ता में आ जाते हैं किन्तु जब इन भावुक व हृदयस्पर्शी नारों से जनता से किये गये वायदों को अमल में लानें की बात होती है तो ये दल कन्नी काट जाते हैं। मुनि श्री ने उचित ही तो कहा है कि वास्तव में पशुवध या गौ हत्या बंद करना चाहते हैं तो सरकारी कार्यालयों में चमड़े का उपयोग पर रोक

लगाये। जूते बेल्ट्स व अन्य रुप में चमड़े का उपयोग सेना, पुलिस व अन्य संस्थानों में बंद करें। तब ही गौ हत्या बंदी के वादे सार्थक हो सकती हैं। क्या राजनीतिक दल अपना वर्ग चरित्र बदल सकते हैं ? निश्चय ही नहीं। जीव हत्या के प्रति कितनी मार्मिक पीड़ा है आचार्य श्री के मन में ।

विषय भोग की भौतिक वस्तुओं से साधुओं का क्या वास्ता, जो जैन साधु मोटर गाडियाँ व अन्य सामान रखते हैं उन साधुओं को धिक्कारते हुए महाराज श्री का यह आह्वान कि जैन साधु तो अपरिग्रही होते हैं उनका ऐसे साजों सामान से क्या वास्ता? ऐसे में जनता को उनका सामान अपने कब्जे में ले लेना चाहिये यह भी पुण्य का कार्य ही होगा। अतः महाराज श्री ने जनता से यह आह्वान किया है कि जनता जैन साधुओं से साजों सामान छीनलें उनकें पास पीछी व कमण्डलु के सिवाय कुछ ना छोडें। महाराज श्री ने ऐसे सामान देने वालों को भी उचित ही धिक्कारा कि उनका कार्य पाप है। अतः इसे बंद करो और भूलकर भी साधु को परिग्रह से जोडने में सहयोग न करें । ऐसी निष्पक्ष दृष्टि के आचार्यों का सान्निध्य निश्चय ही असीम पुण्यों के बाद प्राप्त हो सकता है।

हमारे अहोभाग्य है कि महाराज श्री का सान्निध्य हम लोगों को मिला । मुनि श्री ने सत्य ही कहा है कि पहले हम धर्म के मर्म को समझें उसे अनुभव की कसौटी पर कसकर उसकी परख करें क्योंकि अनुभव बिना कोरा ज्ञान कुज्ञान ही है। अतः धर्म का मर्म समझे बिना आत्मा का उद्धार सम्भव नहीं है। कितनी दूर दृष्टि व विशाल चिन्तन है महाराज श्री का।

सामाजिक व धार्मिक अपराधों के विषय में भी महाराज श्री के विचार अत्यंत सुन्दर व ज्ञान की पराकाष्ठा लिये हुए है। महाराज श्री स्पष्ट रुप से कहते हैं कि पाप करने का कभी समर्थन नहीं करना और यदि किसी ने पाप कर दिया है तो ऐसे पापी से घृणा मत करना, वह तो दया का पात्र है। उस पापी को पाप से उबार सको तो उबारने का भाव रखना, कीचड़ में गिरे बालक को मां कीचड़ से बाहर निकालने का भाव रखती है, उसे कीचड़ में न तो छोडती है और न ही कीचड़ में डूबने देती है। हमारी जिनवाणी व समाज भी मां के समान ही है। सामाजिक व धार्मिक अपराधों में प्रायश्चित व अन्य शुद्धिकरण क्रियाओं द्वारा जीव के उद्धारक बनना, कभी भूलकर उसके विनाश या स्थायी रुप से वह पाप में प्रवृत रहे, ऐसे कार्य में निमित्त नहीं बनना। कवि की पंक्तियां भी यही बताती हैं:

यदि भला किसी का कर ना सको तो बुरा किसी का मत करना।
अमृत न पिलाने को घर में तो जहर पिलाते भी डरना ।।

• करुणा ज्ञान व तेज के सागर महाराज श्री की हर बात तर्क विज्ञान धर्म और दर्शन, सभी पर खरी उतरती है। उनमें शंका समाधान में कैसे भी प्रश्न रखे जावें उनका उत्तर सहज व स्पष्ट होता है। ऐसे साधु बिरले ही होते हैं। ऐसे उपकारी साधु के विषय में जितना भी कहा जाय कम है। हमें जब अवसर मिले इनका लाभ लेना चाहिये व शंकाओं का समाधान कर, अपनी दृष्टि को सम्यक् बनाना चाहिये।

नरेन्द्र कुमार जैन 'बी. ए.'
प्रधान सम्पादक
स्वतंत्र जैन चिन्तन (मासिक पत्रिका)
कबीर मार्ग, अजमेर

☆☆☆

वह प्रकाश नहीं देगा

जिस दीपक में केवल बत्ती होगी या केवल तेल ही होगा वह प्रकाश नहीं दे सकता । इसी प्रकार ज्ञान के अभाव में अकेली क्रिया से या क्रिया के अभाव में अकेले ज्ञान से कल्याण नहीं हो सकता ।

एक भव्यात्मा : मुक्तिपथ की ओर बढ़ते चरण

डॉ. सुदर्शनलाल जैन
मन्त्री अ.भा. विद्वत् परिषद्
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परम् शान्ति की तलाश में भटकते हुए एक भव्यजीव ने देवी स्वरूपा शान्तिनाम धारिणी माता के गर्भ में, शुभ बेला में अवतरण किया। गर्भावतरण के साथ माता-पिता के अन्तःस्थल में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र रुप रत्नत्रय का प्रकाश दिनों दिन अभिवर्द्धित होने लगा । उस भव्यात्मा ने जब गर्भगृह का परित्याग किया तो मानो संसार का ही परित्याग कर दिया हो, इसी बात को द्योतित करने के लिए ही मोक्ष सप्तमी (21 अगस्त 1958) का चयन किया गया। जन्म लेते ही चारों ओर जय-जयकार की होने वाली ध्वनि ने दशों दिशाओं को आप्लावित कर दिया। फलस्वरुप माता पिता ने संसार विजयी उस बालक रुपधारी भव्यात्मा का नाम जयकुमार रखना श्रेयस्कार समझा । उस भव्यात्मा के पदार्पण से वह 'ईशुरवारा' गांव अपने सही रूप में 'ईश्वरवाला' हो गया ।

समीपवर्ती 'सागर' नगर से वह भव्यात्मा सिद्धिदायी क्षेत्र नैनागिर में 10 जनवरी 1980 क्षुल्लक दीक्षा, १५ अप्रेल 1982 को ऐलक दीक्षा के परमसागर (क्षुल्लक-ऐलक अवस्था का नाम) बना पश्चात् पारसमणि तुल्य आचार्य ज्ञानसागर की परम्परा से प्राप्त आचार्य विद्यासागर (मुनि दीक्षा 25 दि. 1983) के स्पर्शमात्र से परम् सागर से सुधासागर बना सुधासागर बनते ही कितने ही मिथ्यादृष्टि उस शान्ति सुधारस का पान करके समयग्दृष्टि बन गए।

सागर का जल खारा होता है। इस अपवाद वचन का अपलाप करते हुए रत्नत्रय रूपी शान्ति सुधारस का निरन्तर बिना भेदभाव के जन जन को पान कराने हमें संलग्न हो गए । मुक्तिपथ की ओर बढ़ते हुए चरण वाले के शान्तिरस का पान करके हम भी परम् शान्ति को प्राप्त करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकें ऐसी मेरी कामना है। ऐसे भव्यात्मा पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी के चरणों में मेरा शत शत वन्दन हैं।

सुधा बनाम-महावीरा

सुभाष चन्द जैन
नसीराबाद

जिस समय धर्म का ह्रास हुआ व श्रावक श्रावकपने से भ्रष्ट हुआ उसी समय मुनिश्री ने हमें उबारने का निःस्वार्थ प्रयास अपनी मधुरवाणी, छोटे-छोटे उदाहरण देकर इतना सरल कर दिया कि अनपढ़ असमझ को भी समझ में आ गई ।

श्रावक संस्कार शिविर, विशुद्ध वीरोदय महाकाव्य संगोष्ठी. एक श्रावक को श्रावकपना क्या है सामाजिक बुराई, मृत्युभोज, तम्बाखू का सेवन मंदिर का पैसा खाना आदि विषयों पर मुनि श्री का तीखा व सटीक प्रवचन हरेक श्रावक को कुछ सोचने पर मजबूर कर देता। आज हर इंसान अपने को प्रसन्न चित्त व खुश देख रहा है तथा श्री जो कहे वो ही तुरन्त करने को तैयार रहते है तो क्या नहीं कहा जा सकता है कि सुधासागर ही महावीर का रूप है या ईश्वर का जीवंत अंश है हमारा भाग्य उज्ज्वल जो हमारे नगर भगवान् पधारे । कभी चेहरे पर क्रोध नहीं देखा। कंजूस से कंजूस व्यक्ति भी दान देकर अपने को धन्य मानने लगा। दीक्षा जयंती समारोह शाकाहार दिवस, कवि सम्मेलन भी अपने आपमें विशाल व ज्ञानवर्धक कार्यक्रम थे।

ऐसे संघ का उपकार क्या श्रावक चुका पायेगा ? इन समस्त अलौकिक दृश्यों को देखकर समाज को यह अहसास हो गया कि सुधासागर मुनि पंचम काल के नहीं हैं, चतुर्थकाल के ही मुनि हैं ।

क्षुल्लक श्री धैर्यसागर व गम्भीरसागर ने अभूतपूर्व तत्वार्थसूत्र का वाचन व प्रश्नमंच स्थापित किया व विद्यासागरजी के सच्चे शिष्य होने का परिचय दिया ।

अजमेर समाज भी धन्यवाद के पात्र है जिन्होंने बाहर से आये अतिथियों का सत्कार करने में कोई कंजूसी नहीं की। महाराज श्री के चरण कमलों से पूरा अजमेर पवित्र हो गया। ऐसा मौका फिर मिले ऐसी ही भगवान् से सुधासागरजी से प्रार्थना है।

जय जिनेन्द्र !

दया के सागर
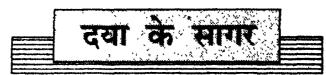
पारसमल बाकलीवाल
नसियां जी के सामने, अजमेर

परम् पूज्य ज्ञान रत्नाकर आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के परम् तपस्वी चारित्र नायक, दृढ़ चारित्र धारी जैन आगम के रहस्यों को सरल शैली में खोलने वाले शिष्य 108 आचार्य श्री विद्यासागर जी के परम् शिष्य था नाम तथा गुण कहावत को पूर्ण रूपेण चरितार्थ करने वाले आत्मध्यानि उत्कट तपस्वी, उन्चज्ञान के क्षयोपशम धारी तथा श्रेष्ठ प्रवचन कर्त्ता 108 मुनि सुधासागर जी का अजयमेरू में इस वर्ष 1994 में पावन एवं भव्य चातुर्मास सुसम्पन्न हो रहा है।

मुनि श्री स्व कल्याण के साथ साथ जीवमात्र के कल्याण के प्रति जितने करुणावान् है। यह उनके व्यक्तित्व की एक अलग से पहिचान बनाने वाली विशेषता है। प्रतिदिन विश्वविख्यात सोनीजी की नसियां में प्रात: होने वाले नियमित प्रवचनों में जहाँ जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है वहीं अन्य धर्मों के साथ उनके सामञ्जस्य का भी वर्णन होता है। गूढ़ से गूढ़ तत्वों का सरल उदाहरण देकर मुनि श्री द्वारा निरूपण करना देखते ही बनता है । श्रोता समुदाय अनायास ही वाह के साथ ही अपने को धन्य मानने लगता है।

मुनि श्री का स्पष्ट उद्घोषण रहा कि जीवन को उज्ज्वल तथा त्यागमय बनाने के लिये सबसे पहले अपने घर परिवार को उन्नत बनाना आवश्यक है। अत: सर्वप्रथम उन्होंने सन्तान को अपने माता-पिता तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों को यथा योग्य विनय और आदर देना तथा माता-पिता को उनमें अच्छे संस्कार डालने, शिक्षा दीक्षा देने तथा उनके योग्य होने तक आर्थिक सम्बल देने का उपदेश दिया। फिर समाज तथा राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों का और तत्पश्चात आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त किये जाने के मार्ग का बोध कराया ।

प्रकृति मानव के प्रति कितनी करुणावान् है, पृथ्वी-जल-वायु वनस्पति और आकाश मानव तथा अन्य जीवों पर कैसे और कितना कल्याण करते है इसका विशद विवेचन करते हुये हम मानवों द्वारा इनके शोषण और दोहन के कुकृत्यों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया। मुनि श्री ने स्पष्ट उदबोध दिया है कि जो लोग यह कहते हैं कि प्रकृति बदल रही है इसलिये हमारे कष्ट बढ़ रहे हैं । उनका यह कहना सही नहीं है। सही तो यह है कि इस क्रूर मानव के परिवर्तित व्यवहार और आचार द्वारा कष्ट बढ़ रहे हैं। हमारे द्वारा श्वास छोड़ने की प्रक्रिया में छोड़ी जाने वाली समस्त कार्बन डाईआक्साइड को फिर से आक्सीजन रुपी जीवन वायु मे बदलने का कार्य आज भी प्रकृति करती है किंतु भौतिकता तथा वैज्ञानिक युग में बडे-बड़े कल कारखानों तथा अनगिनत वाहनों द्वारा छोड़े जाने वाले प्रदूषण को शुद्ध करने की क्षमता प्रकृति की नहीं रही । इसका सबसे बड़ा कारण रहा वृक्ष सम्पदा का विनाश जो वृक्ष हमारे हितैषी हैं हम अपने स्वार्थ में उन्हें काट रहे हैं जबकि बढ़ती जन संख्या के अनुसार वनस्पतियों / वृक्षों में बढ़ोतरी की है । अत: हमें यह संकल्प लेना चाहिये कि यदि अपरिहार्य कारणों में एक वृक्ष काटना पडे तो उसके स्थान पर दो वृक्ष लगायेंगे। इसी प्रकार जल का अनावश्यक प्रयोग बंद करना होगा। यदि हम एक बाल्टी से स्नान कर सकते हैं तो इससे ज्यादा जल का उपयोग ना करें। जल के बढ़ते हुये उपयोग से जल क्षेत्र सूख रहे हैं- यहां प्रकृति का दोष नहीं है इसके पीछे है सीमित संसाधनों का दुरुपयोग जीव हिंसा बढ़ती मानव और सरकार प्रकृत्ति के प्रति भी मुनि श्री बार-बार ध्यान आकृष्ट करते हैं। सौंदर्य प्रसाधनों में निरीह प्राणियों की जीवन लीला समाप्त कर उनके विभिन्न अवयवों के प्रयोग की बात कहकर अहिंसक समाज का दावा करने वाली जैन समाज, हिन्दू समाज तथा ब्राह्मण समाज पर कड़ा प्रहार करते हुये मुनि श्री ने कहा कि ऐसी सौंदर्य प्रसाधन की वस्तुओं का हमारी लालियों (महिलाओं) द्वारा अपने रुप रंग को संवारने के नाम पर करना क्या शर्मनाक नहीं है। इस महावीर राम तथा गांधी की अहिंसक धरती पर प्रतिदिन लाखों पशुओं को बडे-बडे कत्लखाने खोलकर जहाँ हमारे द्वारा चुने हुये सांसदो और विधायकों द्वारा नये कत्लखानों के खोले जाने को स्वीकृति देकर निरीह एवं मूक प्राणियों को काटा जा रहा है वहीं मतदाताओं द्वारा राजनेताओं को इन कुकृत्यों की ओर सचेत नहीं करना उसकी अकर्मण्यता है। हिंदू राष्ट्र कहे जाने वाले देश में प्रतिदिन इतने प्राणियों की हिंसा- हमारे लिये अपमान जनक ओर शर्म की बात नहीं तो और क्या है। क्या यह स्थिति भगवान् महावीर स्वामी के समय से अधिक शोचनीय नहीं है ?

मुनि श्री के द्वादशम दीक्षा जयन्ति समारोह पर आयोजित त्रिदिवसीय कार्यक्रमों में शाकाहार प्रदर्शनी का मुनि श्री की प्रेरणा से आयोजन किया गया इस अवसर पर विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में कौन 2 से जानवरों की हत्या कर उनके अवयवों का उपयोग किया जाता है, जूते, बैल्ट आदि चमड़े की वस्तुओं के निर्माण हेतु छोटे-छोटे बछड़ों को गर्म पानी में उबालकर अथवा हंटरों से मार-मार कर उनके चमडे को फुलाने-मुलायम करने का वीभत्स कार्य किया जाता है। इसकी जानकारी विभिन्न पुस्तकों तथा प्रभावी चित्रों के माध्यम से दिग्दर्शन कराया गया। इस अवसर पर अपने प्रातः कालीन प्रवचन में जो महाराज साहब ने करुण दृश्य उपस्थित किया उससे प्रभावित होकर हजारों लोगों ने चमडे की वस्तुओं को उपयोग में ना लाने का संकल्प लिया। मुनि श्री की स्पष्ट उद्घोषणा थी कि भारत के नागरिक यदि चमडे की वस्तुओं का उपयोग ना करें - सौंदर्य प्रसाधन जिनके लिये जीव हिंसा होती है- हमारी मातायें-बहिनें उपयोग में ना लायें तो तत्सम्बन्धी-हिंसा अपने आप समाप्त हो जायेगी। इसी प्रकार सितम्बर माह के अंत में देश में प्लेग के समाचार रेडियो टी.वी. तथा समाचार पत्रों में आने लगे तो दया सिन्धु महाराज भी इसकी वीभत्सता से विचलित हो गये क्योंकि प्लेग ने पूर्व में कितने लोगों को लील लिया था यह उन्होने पढ़ा था ।

अपने प्रातः कालीन प्रवचन में इस विषय का उद्बोधन देते हुये कहा कि इन दिनों पर न्यूमोनिक प्लेग का संकट आया हुआ है। सरकार इस पर नियंत्रण पाने के भरसक प्रयास कर रही है फिर भी हम सभी का भी कर्तव्य है कि हम भी इसकी शाँति के लिये प्रयास करें और वह हो सकता है, प्रभु भक्ति। अतः आज से ही सभी धर्मावलम्बी अपने-अपने आराध्य देवों की इस महामारी की शांति हेतु आराधना करें। जैन समाज को मुनिश्री की प्रेरणा थी कि वे कम से कम पाँच दिन के लिये अखण्ड णमोकार महामंत्र का पाठ सामूहिक रुप से आयोजित करें। उसी समय धर्म सभा के अंत में मुनिश्री के वर्षा योग की व्यवस्थाओं के लिये बनी श्री दि. जैन. समिति के अध्यक्ष श्री भागचन्दजी गदिया ने घोषणा की कि कल दि. 27.9.94 से श्री पंचायत छोटे धड़े की नसियां जी में महामंत्र णमोकार मंत्र का अखण्ड पाठ प्रातः 7 बजे से आरम्भ होगा? मुनिश्री ने स्वयं इस अवसर पर पहुँचकर मङ्गल कलश की स्थापना की णमोकार महामंत्र की पूजन हेतु मण्डल विधान पर दीप प्रज्वलन तथा आदिनाथ महावीर भगवान् एवं मुनिश्री के जय घोषों के बीच इस जाप्य-पाठ के फल के रुप में न्यूमौनिक प्लेग की शांति की पावन भावना के साथ उपस्थित समुदाय के साथ सामूहिक रुप से णमोकार महामंत्र के पाठ का शुभारम्भ हुआ यह पाठ अखण्ड रुप से दिन-रात 27.9.94 से 1.10.94 तक निर्बाध रुप से चला। दि. 2.10.94 को प्रातः 7.30 बजे मुनिश्री के सानिध्य में ही 108 बार णमोकार महामंत्र का पाठ कर जय घोषों और शांति भावना के बीच इस कार्यक्रम का समापन किया गया। परिणाम सभी के सम्मुख दि. 23.10.94 रविवार की धर्म सभा में एक और बुरे प्रचलन पर मुनिश्री ने अपने प्रवचन में उद्बोधन दिया और वह प्रथा है दीपावली के पावन त्यौहार पर पटाखे चलाने की । मुनिश्री ने कहा कि दीपावली का त्यौहार अत्यन्त पवित्र त्यौहार है। इस युग के अंतिम तीर्थंकर कार्तिक कृष्णा अमावस्या को निर्वाण पधारे थे उस पवित्र स्मृति में तथा रामचन्द्र जी 14 वर्ष के वनवास के पश्चात् अयोध्या वापिस पधारे थे इस प्रसन्नता में हम यह त्यौहार मनाते हैं। सभी लोग विशेष 4-4 बाती वाले सोलह-सोलह दीपक जलाते हैं घरों की सफाई करते हैं अपने प्रतिष्ठानों और घरों को सजाते हैं, रंगोली मांढते हैं शुद्ध मिठाई बनाते है । चार-चार बाती वाले 16 दीपक जलाने का अर्थ है कि महावीर इस दिन भगवान् महावीर बने थे और उन्हें 64 ऋद्धियाँ प्राप्त हुई थी। अतः ऐसी ऋद्धियाँ हमें प्राप्त हो इस पवित्र भावना से प्रकाश करते हैं । शुद्ध मोदक बनाकर प्रातः काल मंदिरों में जाकर अभिषेक तथा पूजनादि के उपरांत मोदक समर्पित करते हैं आदि-आदि । यह सब तो ठीक है, किन्तु इस पावन त्यौहार पर फटाके चलाकर, उनसे निकले विषैले कार्बन से असंख्य जीव अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं । सारा वातावरण दूषित हो जाता है और पूरे देश के अरबों रुपये इन फटाकों की तथा धूएं में स्वाहा हो जाते हैं । इन रातों में बेचारे मूक पक्षी सो नहीं पाते, अपने घौसलों से इधर-उधर उडते रहते हैं । खुशी मनाने का यह कौनसा तरीका है, किस ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख है ? सोचें क्या अधिकार है हमें दूसरे छोटे-छोटे जीवों को प्राण हरने का वातावरण को दूषित करने का देश की मुद्रा को इस प्रकार फूंकने का ? दीपावली मनाओं धूम धाम से अडौसी-पडौसियों में मिठाई बांटो, एक दूसरे के गले मिलो, दीपों का आलोक हम सबके हृदयों में भी ज्ञान प्रकाश आलोकित करे ऐसी पवित्र भावना भावो । मुनि श्री ने इस त्यौहार पर जूए की कुप्रथा पर करारी चोट की । धनतेरस मनाने के कारण तथा इसमें भी आई बुराई की ओर प्रकाश डाला । मुनि श्री के उद्बोध से प्रेरित होकर हजारों नर-नारियों ने बम-फटाके दीपावली के पावन त्यौहार पर ना चलाने तथा जूए आदि का व्यसन छोड़ने का संकल्प लिया।

इस प्रकार पूरे वर्षा योग के प्रवचनों में सैद्धान्तिक तथा आध्यात्मिक चर्चाओं के साथ-साथ समस्त प्राणियों पर करुणा किये जाने सम्बन्धी अनेक विषयों पर मुनि श्री द्वारा दिये गये उद्बोधन गृहस्थों को प्रतिदिन अपने आचार-विचार सुधारने की प्रेरणा देना, पर कल्याण हेतु उनकी असीम कृपा का द्योतक है । उनके इस परम उपकार के प्रति हम सभी अत्यन्त कृतज्ञ हैं । हम अपने को महान धन्य मानते हैं जो ऐसे करुणा के सागर का वर्षा योग का लाभ ले रहे हैं । इस महान अवसर रूपी निमित्त पाकर भी यदि हम अपने उपादान को जगा कर सुधार नहीं ला सके हो फिर अनन्त संसार तो है ही । पूरे वर्षा योग में मुनिश्री प्रति दिन जो अपनी अमृतवाणी की वर्षा कर रहे हैं, हमें सद्मार्ग पर लाने की प्रेरणा देने के लिये अपने समय में से समय निकाल कर उपदेश दे रहे हैं इस सबकी सच्ची गुरु दक्षिणा भी यही होगी कि मुनि श्री द्वारा बताये गये मार्ग का अवलम्बन लें, जीव हिंसा के कर्मों को छोड़ें - अपने जीवन में सरलता लायें ।

संघस्थ पूज्य द्वय क्षुल्लक महाराज 105 श्री गम्भीर सागरजी एवं 105 श्री धैर्यसागर जी भी मुनि श्री द्वारा प्राणीमात्र के कल्याण हेतु छेडे गये अभिमान में पूर्ण योगदान कर रहे हैं । पूज्य 105 गम्भीर सागर जी महाराज प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में वर्णित पौराणिक कथाओं के आधार पर प्रतिदिन अपने उपदेश में पापों-कषायों-हिंसा जनित कार्यों से मिलने वाली नरकादि अधोगति से भय उत्पन्न कराकर पुण्य कार्यों से मिलने वाली सदगति की प्रेरणा देकर एक महान कार्य कर रहे हैं वहीं पूज्य 105 श्री धैर्यसागरजी महाराज छोटे बालक बालिकाओं को संस्कारित करने का विशेष प्रयास कर रहे हैं। लेखन आदि अपने आवश्यकों के साथ नियमित चलता ही है । चारित्र के पालन में दृढता पूरे संघ की देखते ही बनती है ।

इसी प्रकार पूज्य ब्रह्मचारी श्री संजय जी भी छहढ़ाला आदि का सरल भावार्थ कर हम गृहस्थों पर महान उपकार कर रहे है। संघस्थ सभी त्यागी गण पूज्य मुनिराज सहित बाल ब्रह्मचारी हैं।

वास्तव में अजमेर का इस वर्ष का वर्षा योग वर्षों-वर्षों तक याद आता रहेगा ।

The Real Saint

V.C.Jain

The most auspicious arrival of Muniraj Shri 108 Sudhasagar Ji Maharaj with his sangh.

The name and fame of the saint spreads like fire and it sparkles widely when he proceeds future for Vihar leaving behind his foot prints.

Long before the auspicious arrival (Mangal Agaman) of Muniraj Shri Sudhasagar Ji Maharaj with his sangh to Ajmer. There were talks and talks not rumours on the tip of every tongue about Muniraj. The best efforts were being made to bring the saint to Ajmer for his Varshayoga or Chatturmas (four months stay in a fixed place for the protection of the living creative and for the bene violence of mankind in the rainy season

In this connection I would like to mention a single name who made many efforts to bring the sangh to Ajmer. It was the greatest and luckiest fortune of the Digamber Jain Samiti of Ajmer that it could have the presence of such holymen After all that most fortunate day arrived It was the 16th July 1994 morning when the holy sangh printed their feets on the soil of Ajmer. There was a keen competition for the reception of the Sangh between the people and "Indra" (the lord of gods) the battle won, since it rained in the previous night. He was a bit sorry for spoiling preparations of decoration of reception and great warm welcome of the sangh.

There was a short & sweet speech of the Muniraj after entering in the Nasia. From 17th July and onwards Muniraj's learned attractive and effective Pravachan (religious discuss) commenced. Besides local Jain people, crowd from far and wide gathered to hear their words and the number increase day by day.

After Pravachan the Muniraj himself read Sutraji & Bhaktamber Strotre in order to teach correct reading and right pronunciation of words. Then came the Question hour (Prashan Manch) individuals with their numerous of various prizes came forward to winners to encourage them. Really it was a novel scheme to test the grasping power of the audience.

It will not be out of place to mention some of the physical features or chief characterstics of Muniraj who is the living embodiment of highest characters and greatest morals. A great personality which adds beauty of benefits to the renowned name Muniraj has a charming and great personality. His symmetric body with a broad and high forehead, his shining bright eyes, lotus like hand to make

people understand the gospel of his preaching and teachings. His smiling face indicates his inner heart. The saint never asks anyone to take a vow or to give up precious things. He always says "Do whatever you like but before doing you must think of the consequences and estimate the result. The chief qualities of Muniraj are punctuality, observance and strict discipline. There is pindrop silence within his Pravachan, he never allows worthless questions or talks.

In the history of Ajmer never was arranged "Shravak Sanskar Shiver" it was a unique, and pearless shiver. Another great arranged was "Kavi Sammalen" in which more then a score of poets assembled. They give their pure emotional religious poems only. The audience appreciated the Sammelen very much. The poets were honoured with rewards.

Then again a great assembly of learned persons is going to be held on 13th, 14th, 15th October the discussion on most popular Mahakavya of Acharya Gyansagar Ji Maharaj "The Virodaya Mahakavya".

It was my luck that hardly I missed his Pravachan for a single day. In conclusion I would like to write that Muniraj is a very great Saint, May he live long to enlighten our path.

beuevlenee of manking in the vaing season

In this conneetion of worth eive to nebbfon a single name who left no stone unfurnek to bring the sangh to Ajmer, Later kion he wos Joinal by maney.

It was the gieatesh one luekuish fortune of the Digamles Jaind Sech of Ajmer that it conls have The poresenee of such holymen

After all that most forhunate day arrived atwas the 16th July 1994 morning wheir the tholy songh pruked theirfeet on the solt of Ajmer there was a neen compefition for the reeeption of the songh belween thepeople kone Inolra) The eord of godk) The letter won sunee it nained in the forevion night he was a bighsorry For ispiorling kpreparationof deeoration of reception own greeh wonn welcome of the songh

❑❑❑

संस्कार - बीज

बड़ वृक्ष के संस्कार जैसे उसके बीज में मौजूद रहते हैं, उसी प्रकार आत्मा के द्वारा की हुई क्रियाओं के संस्कार आत्मा में मौजूद रहते हैं और वे संस्कार के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा को शुभ या अशुभ फल प्रदान करते हैं।

पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री गम्भीर सागर जी

-: परिचय :-

भीकमचन्द पाटनी, अजमेर

रात्रि के गहन अन्धकार के बाद जब सूर्य अपनी पहली किरण के साथ प्रकट होता है तो रात्रि का गहन अन्धकार दूर भाग जाता है और सुबह का उजियाला सभी को सुख प्रदान करने वाला होता है, उसी प्रकार मध्यप्रदेश की संस्कार धानी जबलपुर नगर के फूटाताल मौहल्ले में धर्मनिष्ठ परिवार पिता श्री कपूरचन्द जी व माँ श्री मति कस्तूरी बाई की कोख से सभी को सुख प्रदान करने वाले ऐसे ही बालक का जन्म हुआ ।

रक्षाबन्धन का दिन था घर में सभी खुशियाँ मना रहे थे। खुशी केवल पर्व की ही नहीं थी अपितु घर में जन्मे उस नन्हे बालक की खुशी से सभी आनन्दित हो रहे थे। चन्द्रमा की श्वेत शीतल किरणों से भी अधिक देदीप्यमान बालक का मनोहारिक आभामण्डल मानों आगामी भविष्य की सूचना दे रहा था। गुणानुरूप बालक का नाम 'राकेश' रखा गया ।

सुरेश, महेश, राकेश और दिनेश इन चारों भाइयों व सुलोचना और किरण बहनों में परस्पर बेहद स्नेह था। सुख शान्तिपूर्ण सन्तोषपूर्ण वृति से जीवन यापन करने वाले इस धर्मनिष्ठ परिवार पर ऐसा वज्रघात हुआ कि पिताश्री जी का आपकी बाल्यावस्था में ही अकस्मात् निधन हो गया। शायद इस महान् घटना ने आपके जीवन को झकझोर दिया तथा वैवाहिक जीवन स्वीकार न करने का बीजारोपण सा हो गया। कुछ समय पश्चात् आपको पूज्य मुनिश्री संभव सागर जी का सानिध्य मिला। बचपन से ही आप में धार्मिक संस्कार पल्लवित पुष्पित होने लगे। स्पोर्टस, व्यायामशाला आदि में जाना भी आपकी रुचि रही है। शारीरिक स्वस्थता व परोपकार के लिए ही आप अपनी शक्ति का प्रयोग करते थे ।

इसी बीच पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी का ससंघ मढ़िया जी में आगमन हुआ उनकी अमृतमयी वचन वृष्टि से आर्द्रीभूत आध्यात्मिकता की ओर स्वयं ही कदम अग्रसर होने लगे। और आपकी शैक्षणिक योग्यता बी. एस. सी. के मध्य ही विराम पा गयी तथा चतुर्विध संघ की सेवा तथा ब्राह्मी विद्या आश्रम की देख रेख में आपका अधिकांश समय व्यतीत होता था। युवा संघ की ज्ञान, ध्यान व चारित्र में दृढ़ता को देखकर आपके भाव सन् १९८४ में चारित्र की ओर कदम बढ़ाने के हुये और आपने अपने समग्र भावों को आचार्य श्री के समक्ष रखकर उत्तम तप के दिन व्रताचरणों में श्रेष्ठ उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत आजीवन धारण करने की प्रतिज्ञा बद्ध होकर पीछी परिवर्तन समारोह में पुरानी पिच्छि का जो ग्रहण किया और घर में ही एक टाइम आहार, सामायिक, स्वाध्याय आदि अटूट साधना प्रारंभ कर दी ।

आहारजी में आचार्य श्री के दर्शनार्थ पहुँचे तो देखा कि यहाँ पर तो दीक्षा समारोह है वहां आपकी दीक्षा लेने की तीव्र भावना थी पर एक घन्टे लेट पहुंचने के कारण सौभाग्य से वंचित रहे और आचार्य श्री जी के सम्मुख अपनी खेद खिन्नता व्यक्त की। पूर्ण आश्वासन को प्राप्त करके अपनी मां की अश्रुधार की परवाह न करते हुए नैनागिर जी में 1 जनवरी सन् 1987 को गृहत्याग कर ब्रह्मचारी वेशभूषा धारण कर ली। तीव्र पुण्य कर्म के उदय से भावों की तीव्रतम विशुद्धता होने पर आचार्यश्री के समक्ष संयम को ग्रहण करने की भावना व्यक्त की। और आप सफल मनोरथ वाले हुए। आपकी भावनाओं की तीव्र उत्कण्ठा को देखकर नैनागिर में ही 10 फरवरी 1987 को 23 दीक्षाओं के मध्य आपको 'क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी' इस नाम से सम्बोधित किया गया। आचार्य संघ के साथ अपनी चर्या का सम्यक निर्वाह करते हुए ज्ञान ध्यान साधना में तल्लीन रहे। थूवोनजी, कुण्डलपुर मुक्तागिरी इत्यादि स्थानों पर चातुर्मास आचार्य संघ के साथ किए और फिर गुरु की आज्ञा से सागर पंचकल्याण के पश्चात् आध्यात्मिक सन्त श्री मुनि सुधा सागरजी के साथ विहार करते हुए ललित नगरी ललितपुर को संसंघ पृथक होने पर प्रथम चातुर्मास कराने का सौभाग्य प्राप्त किया मुनि श्री की अमृत वृष्टि से तो जन-जन आप्लावित था ही, पर आपके सहयोग ने उसमें चार चांद लगा दिये। प्रथमानुयोग में निष्णात आपके मुखारविन्द से कथा कहानी के माध्यम से बच्चों से लेकर वृद्धों तक नवीन स्फूर्ति का संचार हो रहा है। तथा सभी यथायोग्य आंशिक रूप से शील संयम आदि व्रतों को ग्रहण करके अपने जीवन को सफल बनाने में प्रयत्नरत हैं। बच्चों में प्रारंभिक संस्कार डालने का सारा श्रेय आपको ही है। सोलहकारणादि व्रत तपश्चरण करते हुए भी आपकी चर्या में शिथिलता नहीं आयी और अपने दैनन्दिनी कार्य अध्ययन अध्यापन आदि कार्यों में शिथिलता का कोई

स्थान न रहा। इसी बीच पर्यूषण पर्व में शाम को दस धर्मों पर प्रवचन के माध्यम से जनता को उद्बोधित किया। मुनिश्री के लिए व धार्मिक संस्कार शिविर में आपका सहयोग प्राप्त हुआ। चातुर्मास के पश्चात् ललितपुर में भी गजरथ प्रतिष्ठा महोत्सव आप सभी के आशीर्वाद व प्रेरणा से सानन्द सम्पन्न हुए। वहां से विहार में धर्म प्रभावना करते हुए दूसरे चातुर्मास का सौभाग्य आप अजमेर वालों को प्राप्त हुआ और इनकी प्रतिभा अब आपसे छिपी हुयी नहीं है। स्वाध्याय ध्यान साधना में लवलीन यहाँ भी प्रतिदिन नवीन-नवीन कहानियों के माध्यम से अनवरत धार्मिक संस्कार डालने का यथासम्भव प्रयास किया जा रहा है।

ऐसे गुरुओं का सान्निध्य पाकर भी अगर हमारे मन में प्रकाश की किरण प्रवेश नहीं करती तो अपना दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। गुरु चरण रज के प्रताप से जीवन धन्य हो जाता है. अतः उनके प्रत्येक शब्द का अनुकरण करने का प्रयास करें। इसी भावना, कामना के साथ गुरु चरणों में शत शत वन्दन

पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री धैर्यसागर जी

भीकमचन्द पाटनी, अजमेर

मध्य प्रदेश की संस्कार धानी जबलपुर नगर में श्री युक्त श्रेष्ठी श्री प्रेमचन्द जी जैन एडवोकेट एवं श्रीमति अंगूरी देवी की कोख से 1963 को एक होनहार बालक ने जन्म लिया जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी शीतलता से संसार को सुख प्रदान करता है उसी प्रकार बालक का जन्म सभी को सुख देने वाला हुआ, उस बालक नाम 'संजय' रखा गया। तीन भाई और एक बहिन सभी प्रेमपूर्वक सुखमय बाल्यावस्था के आनन्द में मगन थे। करीब-करीब 12-13 वर्ष की अवस्था में मुनि श्री संभव सागर जी का आगमन हुआ और उसी समय से ही आपने आलू, प्याज जैसी अभक्ष चीजों का त्याग कर दिया। पास-पड़ोस में घटित घटनाओं का आपके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा और यही घटनायें आपके वैराग्य का कारण बनी।

सन् 1984 में चारित्र के धारक महान् तपस्वी सन्त शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का ससंघ आगमन मढ़ियाजी में हुआ। दिन प्रतिदिन वह मंगलमयी वातावरण आचार्य श्री के वचनामृत सहज ही आपके हृदय में प्रवेश पा गए और आपके विचार भी उन्हीं की तरह संयम के मार्ग पर बढने के हुए। बचपन में उदासीन रुप से पड़ा हुआ वह बीज अंकुरित सा होने लगा। फलस्वरुप आपने संयम मार्ग पर बढ़ने का संकल्प कर आचार्य श्री के सम्मुख आकर अपनी भावनाओं को व्यक्त किया। इस मार्ग के योग्य समझकर आपको 5 वर्ष के ब्रह्मचर्य व्रत के आशींवाद दिया। इसी बीच आपने बी. काम लौकिक शिक्षा को भी पूरा किया। तभी ब्राह्मी विद्या आश्रम की स्थापना भी हुई और प्राथमिक व्यवस्थाओं में अपनी मित्र मंडली (वर्तमान में गम्भीरसागर जी, चन्द्रसागर जी महा.) के साथ संस्था को सहयोग प्रदान करते रहे। घर में भावों को क्रमशः बढाते हुए दृढ़ साधना करने लगे। जहां आप एक ओर इतने महृदय है कि दूसरों की पीड़ा को देखते ही आपका हृदय भर जाता है वहीं दूसरी ओर अपने परिवार के खिन्न हृदयों को देखकर भी आप अपनी साधना के मार्ग मे बिल्कुल भी विचलित नहीं हुए और 1 जनवरी 1987 को आचार्य श्री के समक्ष ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्णता प्रदान कर गृहत्याग कर दिया। चारित्र की ओर से अग्रसर होने की प्रबल इच्छा धैर्य को धारण नहीं कर सकी और आपने 10 फरवरी 1987 को विशाल आचार्य संघ के बीच संयम मार्ग के सच्चे पथिक बनने की प्रतिज्ञा की और आपको 'क्षुल्लकश्री धैर्यसागर जी' के नाम से ही उद्बोधित किया गया। साथ ही आपकी मित्र मण्डली की भी दीक्षा सम्पन्न हुई। वास्तव मित्र तो वही होता है जो हर समय साथ देता है। आचार्य संघ में 6 वर्ष तक अनवरत स्वाध्याय आदि क्रियाओं में संलग्न रहे। फिर आचार्यश्री की आज्ञा से आध्यात्मिक सन्त मुनि श्री सुधासागरजी के साधर्म प्रभावना हेतु विहार किया। गुरु से अलग होने के पश्चात् आपके प्रथम चातुर्मास का सौभाग्य ललितपुर वालों को प्राप्त हुआ। अपनी साधना स्वाध्याय में तल्लीन शाकाहार आदि के सम्बन्ध में विशेष निर्देशन दिए। शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद भी पर्यूषण पर्व में तत्त्वार्थ सूत्र की व्याख्या करके संस्कार शिक्षण शिविर के माध्यम से मुनि श्री को सहयोग प्रदान किया व समाज के युवा वर्ग के लिए धर्माभिमुख करने के लिए छहढ़ाला जैसे महान् ग्रन्थ के माध्यम से अथक प्रयास किया। पंचकल्याण प्रतिष्ठानों व गजरथों में अपना पूर्ण सहयोग देते हुए तथा महती धर्म प्रभावना करते हुए आपने अजमेर नगर को पावन धरा को धन्य कर दिया। यहां पर भी अपनी यथोचित रीति से दैनिक क्रियाओं को करते हुए शारीरिक अस्वस्थता की परवाह न करते हुए प्रतिदिन बच्चों को धार्मिक संस्कारों से (बालबोध: एक, दो तीन) संस्कारित करने में प्रयत्नरत है। पर्यूषण पर्वराज में शिक्षण शिविर में शिक्षा प्रदान कर व तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्या, प्रश्नमंच आदि कार्यों को करते हुए व्यस्त रहकर भी थकान का नहीं वरन् आनन्द का ही अनुभव करते थे। ऐसे आत्मोन्मुख, दृढ़ संयमी, मोक्ष मार्ग के सच्चे पथिक गुरुदेव के चरणो में मेरा कोटि कोटि वन्दन। शत शत बार नमन।

❑❑❑

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज का विकलांगों पर परम उपकार

उदयलाल कोठारी

श्री परम् पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के अजमेर चातुर्मास (1994) में अनेक कीर्तिमान स्थापित हुए हैं। उनकी विद्वत्ता व प्रवचन कला पर तो मेरे जैसे तुच्छ अज्ञानी का लिखना कोई अर्थ नहीं रखता । अनेक प्रभावशाली प्रवचनों ने लाखों नर नारियों पर अमिट छाप छोडी है और उन्होंने दुर्व्यसनों को त्यागा है ।

मुनि श्री के द्वादशम दीक्षा जयन्ति के पावन अवसर पर श्री विकंलाग शिविर के आयोजन का सुझाव श्री युवराजकुमारजी जैन व मुझे दिया । लगभग 30,000/- रुपये की रकम का कैसे प्रबन्ध होगा । वैसे भी जयपुर प्रधान कार्यालय ने अजमेर शाखा को सन् 1981 में स्थापित होने के पश्चात 3-4 तीन पहियों की साईकिल लगभग 8 वर्ष पहले भेजी थी फिर भी णमोकार मन्त्र का स्मरण करके जयपुर 10 साईकिल व 10 श्रवण यंत्र के लिए पत्र लिखा । मुनिश्री का अतिशय व चमत्कार करीब 15 दिन के पश्चात् एक सज्जन मेरा मकान खोजते सुबह 8 बजे 10 श्रवण यंत्र दे गये और 3 दिन पश्चात् 10 साईकिलें भी प्राप्त हो गयी । 14.10.94 दशहरे पर आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के वीरोदय पर आयोजित अखिल भारतीय विद्वत् गोष्ठी के दिवस पर नमियां जी मे विकलागों को साईकिल व श्रवण यंत्र वितरित किये गये । उसी समय एक दानी सज्जन श्रीमान राजेन्द्रकुमारजी दनगसिया ने साईकिल व श्रवण यंत्र की पूरी कीमत देने की घोषणा करी। मन ही मन में मैने मुनि श्री का वन्दन किया और उनकी जय बोली। मुनि श्री ने अन्य विकंलागों को अन्य दातारों द्वारा साइकिल आदि उपलब्ध कराने की प्रेरणा दी । अतः मुनिश्री का स्मरण करके मैने 15 साईकिलों के लिए जयपुर पत्र लिखा। इधर पांच दिगम्बर बंधुओं ने पांच साईकिल की कीमत समिति के पास जमा करा दी । अजमेर में साईकल बनवाकर 11.94 को विकलांगो को साईकिलें भेट करीं ।

जयपुर से आशा कम ही थी, पर मुनिश्री का अतिशय रात 2.30 बजे ट्रक चालकों ने मेरे मकान पर आवाज लगाई। मेरे पूछने पर उसने बताया कि सुभाष बाग में रात को ही एक धर्मात्मा सज्जन ने मेरे को मकान बताया । 15 साइकिलें प्राप्त हो गई। और 13.11.94 को महाराज श्री के आर्शीवाद के बाद लोगों को जिलाधीश श्री डी. के. गुप्ता द्वारा साइकिलें वितरित की गई ।

प्रवचन में पूज्य श्री ने प्रेरणा दी कि अजमेर जिले के सभी पात्र विकलांगों को साईकिल आदि प्रदान करने का प्रयास किया जाये । जैसे बिजली के करन्ट का असर होता है मुनि श्री के प्रवचन के दौरान ही अनेक दानदाताओं ने साईकिल देने की घोषणा की 20 दानदाताओं से राशि प्राप्त हो चुकी है । जयपुर पत्र भी लिख दिया गया है ।

अजमेर भगवान महावीर विकलांग समिति के श्री युवराजकुमारजी व मै स्वयं व्यक्तिगत रुप से मुनिश्री के आशीर्वाद से धन्य हो गये । औसत एक साईकिल प्रतिदिन विकंलागों को भेंट करके अजमेर दिगम्बर जैन समाज ने राजस्थान में इतिहास रचा है जिसके लिए महावीर विकलांग समिति अजमेर दिगम्बर जैन समाज का बहुत आभार प्रकट करती है ।

इस शुभ कार्य में श्री युवराजकुमारजी का, श्री हीराचंदजी बडजात्या का व श्री सुरेश मेहरा का बहुत योगदान रहा है। अजमेर जिले के विकलांगों पर मुनिश्री ने जो उपकार किया उसके लिए महावीर विकलांग समिति व मैं मुनिश्री का बहुत आभारी हूँ ।

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की जय हो ।
मुनिश्री सुधासागरजी महाराज की जय हो ।
क्षुल्लक जी गम्भीरसागरजी महाराज की जय हो ।
क्षुल्लक श्री धैर्यसागरजी महाराज की जय हो ।

उदयलाल कोठारी
महामन्त्री, श्री भगवान् महावीर
विकलांग सहायता समिति, अजमेर ।

एक अमृतमय-व्यक्तित्व- मुनिश्री सुधासागरजी महाराज

प्राचार्य निहालचंद जैन

कामदेव और आत्मदेव की संधि-मित्रता

परम् पूज्य 108 श्री विद्यासागरजी महाराज इस युग के संत शिल्पी आचार्य हैं जिनकी मंद-मंद मुस्कान में जीवन सौरभ की अपरिमेय गंध बिखरती है। जिनके चरण-वीतराग-चारित्र की ओर अनथके अनवरत बढ़ रहे हैं । इस संत ने अपने पीछे, एक महान शिष्य परम्परा का स्वर्ण इतिहास रच डाला है । पूज्य मुनिश्री योगसागर व समयसागर जैसे कर्मों का बंधन काटने के लिए घर का घर परवाना हो गया । पू. मुनि क्षमासागर- एक संवेदनशील दार्शनिक संत पू. मुनि सरलसागर- आगम के गहरे गोताखोर आदि हैं । शिष्य परम्परा के इन नामों के साथ एक स्वनामधन्य पूज्य मुनि सुधासागरजी म. हैं जिनकी देह में कामदेव और विदेह में आत्मदेव की संधि मित्रता है ।

गौरवर्ण, समानुपातिक देहयष्टि, नयनाभिरामी तेजस्वी मुखमण्डल, गाम्भीर्य मुस्कान बिखेरती पारदर्शी आँखें, दमकता उन्नत ललाट एक सम्पूर्ण साधुत्व को सहेजे एक अमृतमय व्यक्तित्व ।

अतीत के झरोखों से अनागत के दर्शन

ईसुरवारा'- बीना-सागर रेल्वे लाइन का एक छोटा रेल्वे स्टेशन आज पू. सुधासागरजी के नाम से जुड़कर वंदनीय हो गया है । बुन्देलखण्ड की माटी ने न केवल विद्वानों को जन्मा है, वरन संतों की महान परम्परा को भी अक्षुण्ण बनाये रखा है। ईसुरवारा : एक अतिशय क्षेत्र भी है जिसने पू.सुधासागरजी को जन्म देकर इसे वंदनीय दर्शनीय बना दिया । स्टेशन के आते ही यात्रियों को 'सुधासागरजी का नाम मुखरित हो जाता है ।

21 अगस्त 1958 मोक्षसप्तमी को जन्मा बालक जयकुमार- श्रीमती शांतिदेवी की कोख को धन्य कर गया । पिता श्री रूपचंद जैन ने क्या यह सोचा होगा कि 'जय' की शिला पर बैठकर एक दिन मेरा बेटा, विश्रुत मनोज्ञ मुनि बनेगा । हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.) से बी. काम. की लौकिक शिक्षा आपके परिचय अक्षत का एक कण है। लेकिन इसी शिक्षा ने साधना व संयम की आलौकिक-शिक्षा के लिए एक-पृष्ठ भूमि दी, वह भला कैसे अकिंचित्कर हो सकती है ।

जब पू. आचार्य 108 श्री विद्यासागर म. सिद्धक्षेत्र नैनागिरी ने अपूर्वज्ञान का मंगल प्रसाद, अभीष्ट-जनों को मुक्त हस्त से बाँट रहे थे, 10 जन, 1980 की वह काल-लब्धि आत्म-चितैरे-जयकुमार के लिए, आत्म उपलब्धि का प्रथम सोपान बन गई। उस दिन ब्र. जयकुमार ने उत्कृष्ट श्रावक का क्षुल्लक व्रत को अंगीकार कर श्री 105 क्षु. परमसागर के रुप में संस्कारित हुए 'विद्यासागर' के सागर तट पर अपने अवगाहन करते हुए अपनी क्षुल्लक साधना को परिष्कृत किया और शीघ्र ही सागर में 15 अप्रैल 82 को ऐलक दीक्षा ग्रहण की ।

संस्कार का बीज-साधना की भूमि में- वटवृक्ष की ओर

आचार्य विद्यासागर की यश सुरभि दिगदिगंत में व्याप्त हो चुकी थी । पूरा संघ श्री सम्मेदशिखरजी' की यात्रा पर बिहार प्रान्त की ओर अभिमुख हुआ था । ईसरी (रेल्वे स्टेशन - पार्श्वनाथ) सम्मेदाचल यात्रा का प्रथम पड़ाव है जिसका नाम आते ही पू. सन्त गणेशवर्णी की पुण्य स्मृति बरबस आ जाती है, जहां वर्णी जी की समाधि स्थली है। इसी पवित्र स्थली पर ऐ., परमसागर जी ने, देह के वसन ही नहीं वरन वासना के वसन उतारकर "दिगम्बर मुनि दीक्षा" अपने गुरु पू. आचार्य विद्यासागर जी से प्राप्त की और महाव्रत की संयम साधना में संकल्पित हुए । 25 सित. 83 का दीक्षा दिवस आपके जीवन रूपान्तरण का 'अमृत दिवस' (सुधा-दिवस) बन गया । गुरुवर्य ने दीक्षित मुनिश्री को नए नाम से संस्कारित कर श्री 108 मुनिश्री सुधासागर म. सम्बोधित किया - जैसे 'सुधा' नाम धन्य हो गया है इस संत से जुड़कर ।

दीक्षा की चिरन्तनता-ज्ञान की ओर

मुनि दीक्षा, वीतरागी आत्मसाधना के लिए एक प्रबल निमित्त है, निमित्त को कौन झुठला सकता है ? निमित्त उपादान की अभिव्यक्ति बनता है । निमित्त आकाश देता है । उपादान को पैर पसारने के लिए संत बनना केवल इसी जन्म की साधना

नहीं होती, इसके पीछे कई जन्मों की साधना होती है । वह अतीत की साधना, वर्तमान के संस्कार बनते हैं, उन संस्कारों को प्राण देता है-दीक्षा मंत्र । 'गुरु' के सम्बल के बिना उपादान भी निरुपाय बना रहता है । 'गुरु-अनुकम्पा' में जीवन की सिद्धियां विराजती है । गुरु के वरदहस्त ने "सुधासागर" के हाथों में सुधा का घट थमा दिया ।

यह महान् संत -हिन्दी / संस्कृत/ प्राकृत-अपभ्रंश ओर अंग्रेजी भाषाओं की पीठ पर चढ़कर वैदुष्य की बहुआयामी दिशाओं में द्रुतगति से बढ़ने लगा । वे आगम व अध्यात्म से साथ -दर्शन /इतिहास/न्याय/ सिद्धान्त/व्याकरण/ मनोविज्ञान/ ओर योग विद्याओं में पारगंत होने लगे । ज्ञान क्षमोपशम की प्रबलता-स्वाध्याय से कहीं अधिक जीवन की तप साधना ओर ध्यान योग से कहीं ज्यादा प्राप्त होती है । मुनिश्री "ब्रह्मचर्य" की अखण्ड साधना के आलोक में गहन गूढ़ शास्त्रों में डूबकर आध्यात्म के मोती चुनने लगे ।

जैन संस्कृति के रक्षक-तीर्थक्षेत्रों के जीर्णोद्धारक

तीर्थ- जैन संस्कृति के शिलालेख हैं । बुन्देलखण्ड के जैनतीर्थों का बिखरा हुआ पुरातात्विक वैभव जीर्णोद्धार के अभीप्सित है । मुनि सुधासागर जी के नाम पुरातत्व की सम्पदा से युक्त "देवगढ़" के जीर्णोद्धार के साथ जुड़ गया है ।

यद्यपि मुनि- किसी वस्तु का कर्ता नहीं होता, न होना चाहिए परन्तु श्रावकों की भावना को साकार करने में, आशीर्वाद देने में कृपण भी नहीं बनता । साधु परिग्रह से रहित होता है- परन्तु समाज से जुड़ा रहता है समाज के कल्याण की भावना में उसकी साधना का एक पल्लू जुडा होता है । मुनिश्री ने श्रावकों के धार्मिक महोत्सवों को अपनी साधना के मंगल- अर्घ्य द्वारा सफलता के हिमालय तक अवश्य पहुंचाया ।

'गजरथ महोत्सवों' में नये कीर्तिमान स्थापित करने में आपका व्यक्तित्व अद्‌भुत रहा । मेरा अनुभव है 1989 बीना में होने वाले पंचकल्याणक महोत्सव में मुनिश्री का दिशा- निर्देशन आपके बहुआयामी व्यक्तित्व का एक हिस्सा था ।

वक्तृत्व में सम्मोहन

शब्द या भाषा में बड़ी शक्ति होती है । संतों का मुख कमल के समान तथा वाणी - "कमल सौरभ" के समान होती है । लेकिन प्रभावक वाणी का वरदान-सबको प्राप्त नहीं होता । आगम व आध्यात्म से जनमानस को आंदोलित कर देना, वाणी का वैशिष्ट्य होता है । मुनिश्री में अभिव्यक्ति की विशिष्ट कला है । वाणी में इस सिद्धि है । चाहे शीर्ष राजनेता हो या शीर्ष प्रशासनिक-अधिकारी चाहे संत-समागम हो या विद्वानों की संगोष्ठी, अपनी वाणी माधुर्य से सभी को प्रभावित किये बिना नहीं रहते/प्रतीकों/बिम्ब-विधानों/सटीक-उदाहरणों से आगमानुसार प्रतिपाद्य वस्तु को प्रस्तुत करने की कला मुनिश्री में विद्यमान है। अपने जीवन के अनुभवों को प्रवचन के साथ जोड़कर उसमें प्राण फूंकना आपकी तात्कालिक तीक्ष्ण-बुद्धि का कौशल है ।

साहित्य से सृजेता

दार्शनिक होना बड़ी बात है । संत होना उससे भी बडी बात है, लेकिन दार्शनिक संत होना बहुत बड़ी बात है । मुनिश्री सुधासागर एक दार्शनिक संत है मौलिक चिंतन आपकी थाती है ।

मुनिश्री की कृतियां

'आध्यात्मिक पनघट 'अधः सोपान', 'जीवन एक चुनौती', 'सल्लेखना' आदि आपके चिन्तनशील प्रवचनों के संकलन हैं। 'प्रवचन' वह चिरन्तन धारा है, जिससे अन्तस् विशुद्ध बनता है । साहित्य सृजन में ये कृतियां मुनिश्री के सशक्त हस्ताक्षर हैं ।

"मुनिश्री का मुखरित मौन" -एक काव्य कृति ने काव्य विधा को छुआ है । साधना की अतल गहराईयों में पेठकर जो शब्द जन्म लेते हैं वे शब्दातीत-अनुभव को वेदी पर विराजमान होकर काव्य रुप में स्पन्दित होते हैं । अन्तर्यात्रा के लिए प्रेरित ऐसे अनुभवजन्य शब्द- मुनिश्री की कलम की नोंक से सिरजे हैं वे हैं "विरागभावना" मां मुझे मत मारो " सीप के मोती" 'अमृत-भारती' आदि । ये सभी कृतियां मुनि श्री की साहित्यिक प्रतिभा के उज्जवल -पृष्ठ हैं ।

गुरुणां गुरु के प्रति श्रद्धावनत आगम-पुरुष

मुनि श्री की साधना का एक दूसरा पहलू 'राजस्थान' की 'आगम यात्रा' के पुनीत-प्रसंग पर प्रगट हुआ है । आगरा से जयपुर महावीरजी की ओर गमन करते हुए अपने गुरुवर्य आ. विद्यासागरजी के गुरु प. पू. आचार्य ज्ञानसागरजी, स्मृति पटली

पर उतर आये । उनके विस्तृत होते संस्कृत-काव्य ग्रन्थों एवं अन्य हिन्दी ग्रन्थों (जिनकी संख्या लगभग 22 है) के पुनर्प्रकाशन के लिए तथा उन महाकाव्यों में अभिप्रेत आगम रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए विविध साहित्यिक पक्षों के परिप्रेक्ष्य में न केवल स्वयं स्वाध्याय करने का मन बनाया वरन देश के विशिष्ट जैन विद्वानों, संस्कृत-साहित्य विदों के साथ बैठकर विचार विमर्श किया ।

तत्सम्बन्धी विद्वत् संगोष्ठियों में शोध लेखों का वाचन स समीक्षात्मक अध्ययन के द्वारा आचार्य ज्ञानसागर के अथाह ज्ञान से सम्पूरित साहित्य का पुनरवलोकन किया ।

लौकिकता में जैसे नाती- बब्बा से पिता की अपेक्षा ज्यादा लगाव रखता है । इस संतपुरुष ने अध्यात्म के दादा-आचार्य ज्ञानसागर को इस प्रकार सच्ची श्रद्धाञ्जली अर्पित की । सॉंगानेर के प्राचीन अतिशय पूर्ण मंदिरो के तल गृहो से चैत्यालय (जो यक्ष रक्षित हैं) को बाहर दर्शन हेतु लाकर अपनी चमत्कारिक योग साधना का प्रभाव दिखाया । यह घटना मई 94 की है ।

मुनिश्री का सहज स्वभाव

मुनिश्री सुधासागर जी एक संवेदनशील संत-पुरुष हैं । करुण की निर्झरणी- आपके अन्तस में सतत प्रवाहमान रहती है। मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रबल समर्थक आप में असहाय व अपंगों के प्रति एक सहज कारुणिक समवेदना है । विद्वानों एवं गुणी जनों के प्रति वात्सल्य भाव -आपकी एक सहजता है। आप में बालक की निश्छलता युवा की संकल्प कर्मठता और ज्ञान की प्रौढ़ता विद्यमान हैं ।

प्रवचन प्रभा के ज्योति पुरुष

आपके आध्यात्मिक प्रवचन- श्रावकों / जन मानस के अन्तस्तल में सीधे प्रवेश कर चेतना को झंकृत करने वाले होते हैं वाणी में मिसरी सा मीठापन एक विशिष्ट सम्मोहता लिए होती है । शिक्षण शिविरों के माध्यम से धार्मिक चेतना का संचार करना आपके वैदुष्य का ही प्रभाव हैं । आपके मंगल-प्रवचन "जीवन -अनुभूति" से अनुस्यूत रहते हैं ।

जब आप मुस्कान भरी मुद्रा ऊपर उठाते हैं तो लगता है आपका रोम-रोम हँस रहा है । क्रोध तरसता है आपके पास आने को, माया सकुचाई हुई दूर खडी रहती है ।

"संत हंस - गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार"

के आप साक्षात् पुण्यात्मा हैं ।

युगीन -सन्दर्भों के अन्वेषक

आप ऐसे धर्म की पुकार के लिए खडे हैं तो विद्रूप हिंसा की बाढ़ को रोक सके ओर समाज के वैमनस्य, तनाव तथा असंतुलन को मिटाकर सूखते वात्सल्य को, प्रेम की सलिल धारा में रुपान्तरित कर सके । इस दिशा में मुनि श्री का संकल्प अटूट है । अट्ठाइस मूल गुणों के रेलों को अपनी साधना के किरीट में जडाए मुक्ति आकांक्षा की अन्तर्यात्रा पर बढ़ते हुए हे बालयोगी ! तुम्हें इस अकिञ्चन लेखक का शत-शत प्रणाम निवेदित है ।

पं. निहालचंद जैन, प्राचार्य
शास उ. मा. वि. 3 के समाने
बीना (म. प्र.) 170113

❑ ❑ ❑

पद्मप्रभुजी एवं [illegible]

डॉ. शीतलचन्द जैन

राजस्थान प्रान्त में सन्त शिरोमणी आचार्य विद्यासागर जी के युवा मनीषी परमशिष्य पू. मुनि श्री सुधासागरजी का ससंघ पदार्पण समाज के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है । पूज्य मुनिश्री को लाने का प्रयास श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र पदमपुरा (बाड़ा) जयपुर की प्रबन्ध समिति ने वहां आयोजित 21 फुट खड्गासन देवाधिदेव पद्मप्रभु के पंचकल्याणक के अवसर पर किया था परन्तु वह प्रयास निष्फल रहा । परन्तु आगरा शहर के कमला नगर में आयोजित ऐतिहासिक पंचकल्याणक में आपके पधारने से, हम सभी को आशा हो गई थी कि पूज्य मुनि श्री का पदार्पण अब राजस्थान की भूमि पर होगा । वस्तुतः राजस्थान की जनता धन्य हुई, जब मुनि श्री का भरतपुर से विहार करते हुए श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र महावीर जी में 6 अप्रैल 94 को ब्राह्ममुहर्त में मंगल प्रवेश हुआ ।

यह संयोग ही था कि श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र बाड़ा पदमपुरा का स्वर्ण जयन्ती समारोह मई 94 में आयोजित था। तभी पूज्य मुनिश्री का निवेदन किया पदमपुरा पधारने के लिए । परन्तु संघ की परम्परा के अनुसार वही उत्तर मिा "देखो क्या होता है ।" पूज्य मुनिश्री के चरण इस ओर मुड़ गये ओर हर्ष की लहर छा गई ओर पदमपुरा का स्वर्ण जयन्ती समारोह धन्य हो गया । समारोह में श्रेष्ठिवर्य श्री पूनमचन्दजी गंगवाल झरियां झण्डा रोहण करने वाले थे और पदमपुरा के मुख्य जिनालय के मुख्य द्वार पर कलशारोहण करने वाले दानवीर श्रेष्ठिवर्य श्री उम्मेदमलजी पाण्ड्या सा. थे ।

जिस दिन 21 फूट खड्गासन भगवान् पदमप्रभुजी का महामस्तकाभिषेक था, उस दिन जनसमूह उमड पड़ा और पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज की अमृतवाणी सुनकर जनता धन्य हुई । ऐसे अवसर पर श्रावक संस्कार शिविर ने समारोह में चार चांद लगा दिये । इसी क्षेत्र पर पूज्य मुनि श्री के मन में विचार आया कि इस धरा पर हमारे गुरूणां गुरु पूज्य आचार्य प्रवर 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने जन्म लिया । इसी प्रान्त में हुई उनकी समाधि । यह भी एक संयोग था कि लेखक मुनि श्री के चरणों की सेवा में था । विचार हुआ कि पूज्य आचार्य प्रवर ज्ञानसागरजी महाराज के 21 वें समाधि दिवस पर पूज्य आचार्य श्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी आयोजित की जाये परन्तु स्थान के निश्चय करने में सौभाग्य प्राप्त हुआ श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघी जी सांगानेर जयपुर को, जिसकी कायापलट हो गई, मुनिश्री के चरण पड़ने से ।

सांगानेर में मुनिश्री के पधारने से राजस्थान की राजधानी जयपुर के निवासियों में अत्यन्त हर्ष हुआ और पुज्य मुनि श्री के ओजस्वी प्रवचनों की ख्याति ओर सुगन्ध ग्राम-ग्राम में पहुंचने लगी । प्रतिदिन श्रोताओं की भीड़ उमड़ने लगी । बस क्या था कि ऐतिहासिक संघी जी का मंदिर, जो 18 गगनचुम्बी शिखरों से शोभायमान ओर सात मंजिल का विशाल मंदिर है, सभी की नजरों में आ गया ओर सचमुच में वह तीर्थ क्षेत्र बन गया ।

9 जून से 14 जून तक आयोजित त्रिदिवसीय विद्वत् संगोष्ठी एवं त्रिदिवसीय यक्षरक्षित भूगर्भ स्थित जिनबिम्ब दर्शन समारोह में अनेक प्रान्तों के श्रावक श्रेष्ठि आकर इन जिनबिम्बो के दर्शन कर धन्य होने लगे । 12 जून 94 का दिन ऐतिहासिक था। जिस दिन बालयति मुनि श्री सुधासागर जी महाराज इसी मन्दिर के तीन मंजिल नीचे से भूगर्भ स्थित यक्ष रक्षित जिनबिम्बों को अपनी साधना के प्रभाव से मात्र 3 दिन के लिए बाहर लाये । लगभग 25 हजार जनता से प्रथम बार दर्शनकर अपने भाग्य को सराहा और इस अवसर पर मुनिश्री का प्रवचन ऐतिहासिक था। श्रेष्ठिवर्य श्री निरंजनलाल जी बैनाड़ा और उनके परिवार को उन जिनबिम्बों के अभिषेक करने का सुअवसर प्राप्त हुआ । इस समारोह से 11 सौ वर्ष प्राचीन मन्दिर, जिसमें सं. 15 के जिनबिम्ब विराजमान है, वह अतिशय क्षेत्र अपनी गौरवगाथा को गा रहा है । त्रिदिवसीय संगोष्ठी की फलश्रुति पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के कृतित्व का मूल्यांकन जैन- जैनेतर मनीषियों द्वारा किया जाना बहुत बड़ी उपलब्धि थी । इस तीर्थ क्षेत्र का जीर्णोद्धार और जिनवाणी का प्रचार, पूज्य मुनिश्री के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से संभव हो सका । आज आबाल बाल-वृद्ध पूज्य मुनिश्री के प्रवचनों को सुनने के लिए लालायित रहते है । बुजुर्गों के मुख से यही सुना जा रहा है कि पूज्य मुनिश्री के प्रवचनों में पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी की वाणी सुनने को मिल रही है । आज अजमेर नगर धन्य है, जो मुनिराज के प्रवचनों एवं दर्शनों का लाभ ले रही है । पूज्य मुनि श्री के 12 वें दीक्षा दिवस पर मेरी यही भावना है कि मुनि श्री की दीक्षा रजत जयन्ती भी इसी राजस्थान की भूमि पर होवे ।

डॉ. शीतलचन्द्र जैन,
प्राचार्य, जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुर

-: संक्षिप्त जीवन परिचय :-

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में सर्वाधिक विस्तृत प्रान्त मध्य प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सागर जिले का प्रमुख नगर सागर यथा नाम तथा गुणधारी है । सागर में 1500 दिगम्बर जैन परिवार निवास करते हैं, जो षटावश्यक पालते हुए धर्म ध्यान पूर्वक अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यहां से मात्र 27 कि. मी. दूर विन्ध्यगिरी की तलहटी में "ईसुरवारा" एक रमणीक अतिशय क्षेत्र है, जहाँ विन्ध्यगिरी पर्वतमाला पर 15 वीं शताब्दी के श्री पानाशाह द्वारा बनवाये गये व प्रतिष्ठित जिन मन्दिर में चक्रवर्ती कामदेव तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ भगवान कुन्थुनाथ व भ. अरहनाथ की 9 9 फुट उत्तुंग मनोरम प्रतिमाजी विराजमान हैं। अतिशय क्षेत्र विकासोन्मुख है, यहां लाईट एवं सीढ़ियों का निर्माण कार्य हो गया है । तथा अन्य कई योजनायें कार्याधीन हैं। भव्य पाठकों को जीर्णोद्धार में अर्थराशि भेजकर पुण्य संचय करना चाहिए। प्राचीन जिनालय के जीर्णोधार में नवीन मंदिरजी के निर्माण से आठ गुना अधिक पुण्य संचय होता है, ऐसा शास्त्रों में बताया है ।

36 वर्ष पूर्व इस अतिशय क्षेत्र की पुण्य धरा के निवासी परवार ज्ञातीय परम् धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठी श्री रुपचंदजी के यहां सोने का सूरज उगा । विघ्न हरण, मंगलकरण "भगवान् पार्श्वनाथ के निर्वाण कल्याणक के शुभ दिवस को उनकी सुलक्षणा धर्मपत्नी 'श्रीमति शांति देवी' ने उत्तम मुहर्त में महाभाग पुत्र रत्न को जन्म दिया। बालक का शुभ नाम 'जयकुमार' रखा गया। यथानाम तथा गुणानुसार बालक के जन्म के समाचार सुनकर सारा परिवार एवं ग्रामवासी खुशी से झूम उठे। समस्त रिश्तेदार एवं ग्रामवासियों से बधाईयां आने लगी और मंगलगीत गाये जाने लगे ।

बालक जयकुमार अपने माता-पिता के दुलार में पलता हुआ किशोर अवस्था को प्राप्त हुआ, बड़े भाई का भी स्नेह मिला। पिता द्वारा विद्याध्ययन की व्यवस्था की गई । विधार्थी जीवन में ही "होनहार बीरवान के होत चिकने पात" वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। अल्प समय में ही लौकिक एवं शैक्षणिक प्रतिभा प्रतिभासित होने लगी। श्रद्धा तथा विनय भाव रखने के कारण वे अपने अध्यापकों के निकटस्थ शिष्यों में माने जाने लगे । जब अध्ययन करने बैठते तो इतने तल्लीन हो जाते कि इन्हें खाने पीने की भी सुध नही रहती और कभी-कभी एकान्त में घण्टों उदासीन भाव से चिन्तन करते रहते । इस प्रकार बालक जयकुमार ने सागर विश्वविद्यालय से बी. काम की डिग्री प्राप्त कर लौकिक शिक्षा को आत्मसात् कर लिया । परन्तु विधि को तो कुछ और ही मन्जूर था अर्थात जयकुमार ने अपने नाम को चरितार्थ करने की ओर कदम बढ़ा दिया। परिणाम स्वरुप माता पिता भी चिन्तित हो गये। परन्तु दृढ़ निश्चय के आगे माता-पिता को भी झुकना पड़ा और जयकुमार 'जय' प्राप्त करने के लिये अध्यात्म बोध की खोज करते हुए सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर पहुंच गया । वहां पहुंचने पर परम् पूज्य प्रशममूर्ति सदा, स्वाध्यायरत आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी के दर्शन किए और दर्शन करते ही उन्हें अपनी अध्यात्म शोध का निर्देशक मन ही मन मान लिया। युवा जयकुमार जगह-जगह भ्रमण करते हुये अपने निर्देशक आचार्य श्री विद्यासागरजी से मौन निर्देशन प्राप्त करते रहे ।

संयम में प्रवेश:

एक बार युवा जयकुमार अन्य 8-10 युवा साथियों को लेकर निर्देशक आचार्य श्री विद्यासागर जी को अपनी लौकिक अध्ययन स्थली "सागर" में आमंत्रित करने के लिये गये और श्री फल चढ़ाकर बोले कि महाराज अभी तक आपके पास सफेद बाल वाले आते थे, लेकिन इस बार हम लोग काले बाल वाले आये हैं। तब आचार्य श्री मुस्कराते हुये बोले भैया । सफेद बाल वाले आते हैं और चले जाते हैं लेकिन काले बाल वाले पास आते तो हैं फिर वापस नहीं जाते हैं, बस । फिर क्या था यही निर्देश शोधकर्ता जयकुमार को वाचनिक रुप से प्रथम बार मिला । इस निर्देशन पर कुछ शोध कार्य (साधना) घर पर गृहकार्य के रुप में करने लगे । कुछ समय पश्चात् दीपावली के दिन युवा जयकुमार सिद्ध क्षेत्र नैनागिरि में दुबारा आचार्य श्री के पास पहुंचे और इस शोध कार्य को लिखित रुप से शुरु कर दिया अर्थात 5 वर्ष के लिये ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया । उसी दिन क्षुल्लक श्री समयसागर जी की ऐलक दीक्षा हुई थी ।

कुछ दिन बाद ब्रह्मचारी जयकुमार जी को तीर्थ यात्रा करने की भावना हुई और आप सिद्धक्षेत्र नैनागिरी, आचार्य श्री के पास यात्रा की सफलता हेतु आशीर्वाद लेने गये और आचार्य श्री से बोले कि मैं तीर्थ यात्रा के लिए जा रहा हूं। आचार्य

श्री ने जयकुमार के चेहरे को देखा और न जाने इनके चेहरे में आचार्य श्री को क्या बात दृष्टिगत हुई कि वे धीरे से बोले कि तीर्थ यात्रा का आशीर्वाद लेने आये हो, यदि आपको ही "तीर्थ" बना दिया जावे तो कैसा रहेगा।

बस ! इस वाक्य से आपके ऐसा लगा कि मानो शोध कार्य पूरा हो गया हो, और निर्देशित किया गया हो कि थीसिस प्रस्तुत कर दो । जयकुमारजी कुछ मुख से बोलते इसके पहले उनका मस्तिष्क स्वतः ही गुरु के चरणों में झुक गया, और गुरु ने उनका वरद हस्त एवं मयूर पिच्छिका सिर पर रख दी और कहा कि यही मयूर पिच्छिका अब आपको हाथ में लेना है। वह दिन 8 जनवरी 1980 का था। एक दिन के अन्तराल के बाद 10 जनवरी 1980 को 21 वर्ष की आयु में आचार्य श्री ने ब्र. जयकुमारजी को क्षुल्लक दीक्षा दे दी और नाम रखा "परम सागर" । इसके लगभग दो साल बाद दिनांक 15 अप्रेल 82 को सागर की दूसरी वाचना में वर्णी भवन मोराजी की शान्तिकुटि में आपकी ऐलक दीक्षा हुई ।

इस प्रकार गुरु की छाया में आध्यात्मिक साधना करते हुए गुरु के साथ अनंतानंत तीर्थंकरों की सिद्ध स्थली अनादि निधन सिद्ध क्षेत्र सम्मेद शिखर जी गये। इसी सिद्ध क्षेत्र की तलहटी एवं क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी की साधना एवं समाधि स्थली ईसरी में संघ सहित चार्तुमास की स्थापना हुई एवं इसी चार्तुमास में 25 सितम्बर 1983 अश्विन कृष्णा तीज को मुक्ति का बीज रत्नत्रय को अंकुरित करने के लिए आपको (मुनि दीक्षा) आचार्य श्री के कर कमलों से हुई तथा आचार्य श्री ने आपका मुनि सुधासागर जी नामकरण किया।

श्रेष्ट प्रवचन कार

परम् पूज्य अध्यात्म योगी मुनि श्री सुधासागरजी महाराज प्रखर चिन्तक, उत्कृष्ट चारित्र के धनी एवं तपोभूत मोक्षमार्ग के साधक हैं। आप इस आधुनिक युग के प्रकृष्ट मुनि हृदय कवि तेजस्वी वक्ता और ज्ञान मनीषी सन्त हैं । आपका हृदय इतना है कि इसमें पक्षी-प्रतिपक्षी सभी समाहित हो जाते हैं। आपके प्रवचन साहित्यिक एवं धार्मिक दृष्टि से पूर्ण निर्दोष रहते हैं । आपकी ओजस्वी सरल सुबोध स्वच्छ, निर्मल निश्चल मर्मस्पर्शी वाणी हृदय को छूने वाली है और श्रोता एवं पाठक के हृदय पर एक चिरस्थायी प्रभाव डालती हैं । जैसा आपका नाम है उसी अनुरुप आपके प्रवचनों में सुधा-अमृत की वर्षा होती है ।

आपके प्रवचनों में अपूर्व गाम्भीर्य तथा जादूमयी अद्‌भूत शक्ति है । कैसा भी धर्म विरोधी नास्तिक व्यक्ति क्यों न हो आपका चरण सानिध्य पाकर और प्रवचन ग्रहण करके वह आपका ही होकर रह जाता है ।

नि:सन्देह आपके पास क्लिष्ट जैन दर्शन की गूढताओं और जटिलताओं को सरल से सरल बनाकर मन मोहने रोचक दृष्टान्तों, पौराणिक उदाहरणों मनोरंजक वाक्यों द्वारा आबाल वृद्धों को धर्म से परिचय कराने की क्षमता है। आप सदाचार, नैतिकता व अनुशासन प्रिय हैं । आपकी दिगम्बर मुद्रा, समन्वित प्रतिभा से अलंकृत सौरभ सम्पन्न, शान्ति, तपस्या, ध्यान, निर्मलता तथा वीतरागता आदि गुणों से ओत प्रोत होने के कारण ही दर्शनार्थी एवं श्रोता के अन्तःकरण को छू लेती है। वे हर्ष विभोर हो जाते एवं वास्तविकता के सन्निकट पहुंच जाते हैं । अपनी मिथ्या धारणाओं को त्याग देते हैं एवं सन्मार्ग की होते कदम बढ़ा देते हैं एवं आनन्दित होते हैं ।

आपकी अनवरत एवं स्थायित्व को लिए साधना दर्शकों को भाव विह्वल कर आस्था से मनीभूत करती है । जिससे वह स्वंय ही चरणों में झुक जाता है और अपनी कषायों की पोटली खोल देता है ।

तपोरत

तपस्या साधु जीवन का एक शृंगार होता है । इन दिगम्बर मुनि श्री सुधासागरजी के जीवन के रग-रग में समाया है। इनकी तपस्या तो हमने करीब तीन वर्षों तक प्रत्यक्ष देखी है एवं मैंने इसकी महिमा, इनके साथ में रहने वाले पूज्य साधु वर्ग से एवं ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी बहनों से सुनी है । जिन्होंने इन्हें तब से ही जाना है, जबसे इन्होंने अपने परम् पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के चरणों में आकर साधना प्रारम्भ की ।

इस सदी के प्राय: पण्डित / विद्वान जो कि अपने आपको अध्यात्म का वेत्ता समझते हैं, उनमें भी हम ऐसा ही सुनते रहते है कि इस पंचम काल में कोई मुनि नहीं बन सकता है, यदि बनता भी है तो विशेष तप साधना नहीं कर सकता क्योंकि सहनन कमजोर है । पर सभी बातें आचार्य श्री जी के विषय में एवं इनके महान-महान शिष्यों के विषय में बिल्कुल झूठी सिद्ध हो जाती है। इन साधकों में परम पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी की साधना के बारे मे क्या मैं लिखूं । शायद लेखनी उनकी तपस्या को लिखने में थक जायेगी । पर तपस्या कलम से लिखना सम्भव नहीं है फिर भी विद्वानों व पण्डितों की झूठी मान्यताओं की

भावनाओं को मिटाने के लिए एवं मेरी स्वयं की भक्ति और श्रद्धा को रोक न पाने से कुछ चन्द विशेषतायें लेखनी से लिखने की कोशिश कर रहा हूं, जो मैंने प्रत्यक्ष में देखी सुनी हैं ।

इनके जीवन की शुरुआत की तपस्या से हुई । जब यह घर में रहते थे और कॉलेज में पढ़ाई कर रहे थे तो अचानक ऊपर से लेम्प इनके ऊपर गिर गया। जिससे इनके शरीर में आग लग गयी इस होनहार मुनि के मन में आया कि ये शरीर तो नश्वर है ही। यदि बच गया तो इससे तप करूंगा । ऐसे शुभ विचारों से एवं हम सब, श्रावकों के भाग्य से वो सुरक्षित बच गये और कुछ वर्ष बाद उन्होंने पूज्य आचार्य श्री के संघ में जाकर क्षुल्लक दीक्षा ले ली । शुरु से ही आप अपने शरीर से इतने निस्पृह एवं निर्मोह थे कि कभी-कभी बाहरी लोगों से कोई मतलब नहीं रखते थे । एक कोने में बैठे-बैठे ही हमेशा ध्यान अध्ययन में लीन रहते थे। सब से बहुत ही कम बोलते थे, वह भी अपने संघ के साधुओं से ही। ब्रह्मचारियों, बहिनों व श्रावकों से भी नहीं।

दीक्षित होने के प्रारम्भ में जब ये आहार चर्या को चौके में जाते थे तो वहां पर यदि श्रावक पानी देता जाता तो उसी को लेकर आते थे। अन्य ग्रास वगैरह नहीं लेते थे । क्योंकि वे सोचते थे कि आगम में लिखा है कि "यथालब्ध "जैसा जो योग्य परासुक आहार श्रावक दे वो ले लेना ऐसा कई माह तक करते रहे शरीर को आहार न मिलने से कमजोरी आ गयी, तब भी अन्य आवश्यकों में कमी नहीं आयी। परन्तु बाद में आचार्य श्री को पता चला तब उन्होंने समझाया कि यथालब्ध का अर्थ ऐसा नहीं है और आज भी आहार के समय उनकी समता सहजता देखते ही बनती है कि मुंह से हूं भी नहीं निकलती, कितनी भी भीड़ हो या अन्य कोई प्रतिकूलता हो ।

सन् 1983 में कई रसों का त्याग कर दिया था । आज भी प्रतिदिन नीरस जैसा आहार ग्रहण करते हैं। करीब 9 वर्ष से आपने चटाई त्याग दी है । आपने बहुत सी साधनायें आचार्य श्री के बिना पूछे ही कर डाली । उन्हे डर था कि आचार्य श्री जी अभी मना कर देंगें क्योंकि आचार्य श्री जी अपने शिष्यों से कहते थे कि अभी तो इतनी छोटी उम्र में इतनी साधना नहीं करनी चाहिए । धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिये तो भी ये गुप्त रुप से पूरे शीतमास में अपने बगल में चटाई रखकर लेटे रहते थे। उसका उपयोग नहीं करते थे। कुछ समय बाद जब साधना पूर्ण हो गयी। पूज्य गुरुवर के पास जाकर आपने आगे के लिये चटाई का त्यागकर दिया और इस प्रकार भीषण ठण्ड में भी आप चटाई तथा घासादि का प्रयोग नहीं करते हैं ।

आपकी तपस्या के बारे में क्या कहें ज्येष्ठ की तपती कड़कड़ाती दुपहरी में जब आग की लपटें चारों ओर से निकलती हैं तब ऐसे ग्रीष्म ऋतु में भी प्रति अष्टमी चतुर्दशी को एवं अन्य दिन भी उपवास करते हैं । ये कभी-कभी एक-एक माह तक एक अन्तर से उपवास एवं साधना करके अपने कर्म दहन करते हैं।

आसन ध्यान भी इनका दृढ़ है । एक बार मढ़ियाजी जबलपुर में करीब 12 घण्टे तक एक जगह खड़े रहे। उनके पैर हरे नीले हो गये तथा पैरों में सूजन तक आ गयी, पर ये अपने संकल्प से डिगे नहीं । इसी प्रकार आहार जी में 2 बार 15 एवं 18 घण्टे तक खडगासन प्रतिमायोग धारण किया । आज वर्तमान में भी आप 22 घण्टे की सामायिक उत्कृष्ट रुप से कर रहे हैं ।

21 जनवरी, 1994 को सायं जमीन से एक किलोमीटर ऊपर स्थित 10 फुट लम्बी तथा 6 फुट गहरी गुफा में पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज 12 घण्टे ध्यान में लीन रहे। इसी प्रकार सन् 1990 में मुक्तागिरी में एक आहार एक उपवास एक माह किया इसी मध्य 28 घण्टे खडगासन मुद्रा में और 7 घण्टे पद्मासन मुद्रा में ध्यान किया । उस एक माह में प्रतिदिन 7-8 घण्टे ध्यान में रत रहे । इसी प्रकार कई ओर साधनायें इनके जीवन का अंग बन गयी हैं ।

मौन लेने में भी आप कम न थे। इतने बड़े संघ के बीच रहकर तथा सब जानकर भी नहीं बोलना, कितना कठिन। पर आपको यह सब सहज था। एक बार आपने एक दो का ही नहीं बल्कि निरन्तर 9 माह का मौन धारण किया। धन्य हैं ऐसे मौनी गुरु को । धन्य है हम सब जो निरन्तर ऐसे मुनियों के दर्शन करते हैं, और धन्य हैं वे गुरु जिनको ऐसे साधक शिष्य मिले ।

श्रुत एवं गुरु की आराधना में भी आप पीछे नहीं हैं । आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक सभी प्रकार का अध्ययन आपका निरन्तर चलता रहता है । आप जैसे ही ध्यान से बाहर आते हैं तो आप गुरु एवं श्रुत की आराधना करना शुरु कर देते हैं। आपने षटखण्डागम, जयधवला, महाधवला, लब्धिसार, क्षपणसार समयसार, राजवार्तिक, गोम्मटसार, कर्मकाण्ड जीवकाण्ड तिलोय पण्णति,

त्रिलोकसार समन्तभद्र ग्रन्थावली व्याकरण, नियमसार, प्रवचनसार, मूलाचार तथा न्याय के शास्त्र, कुन्द-कुन्द के आध्यात्मिक शास्त्र इस प्रकार चारों अनुयोगों के अनेक ग्रन्थों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया। अपने सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर अपने जीवन को ढाला और हमेशा आप इन्हीं ग्रन्थों का चिन्तन मनन करते रहे। कुन्द-कुन्द एवं समन्तभद्र द्वारा रचित प्रायः सभी ग्रन्थ कण्ठस्थ किए हुये हैं।

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज वैय्यावृति में भी पीछे नहीं हैं। आपकी वैय्यावृति की प्रशंसा सारा संघ करता है। एक बार जब अतिशय क्षेत्र थूवोनजी में, जब आचार्य श्री का ससंघ चातुर्मास चल रहा था तब सारे संघ के साधु बीमार पड़ गये केवल आप ही बीमार न हुये। तब आपके द्वारा 24 घण्टे पूरे संघ की वैय्यावृति की जाती थी। आपकी वैय्यावृति को देखकर श्रावक लोग आश्चर्य चकित रह जाते थे। आप सारे साधुओं की चर्या करने के बाद ही आहार के लिए जाते थे। गुरु महाराज इतने अधिक अस्वस्थ हो गये थे कि उन्हें सहारा देकर उठाना पड़ता था। जब वे आचार्य महाराज का हाथ पकड़कर सहारा देकर चौके तक ले जाते थे, तो वहाँ सम्पूर्ण आहार अपनी दृष्टि अवलोकित करके कराते थे और आप स्वंय बाद में अल्प आहार लेकर वापस आ जाते थे।

वैय्यावृति के सम्बन्ध में मुनि श्री के जीवन की एक घटना और है, जब आप ऐलक अवस्था में थे। उस समय क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी (जिनका नाम सिद्धान्त सागर था) की समाधि शिखर जी सिद्ध क्षेत्र में चल रही थी। उस समय वर्णी जी की वैय्यावृति का पूरा कार्यक्रम आपके हाथ में था, और आपने वैय्यावृति इतनी तल्लीनता से की कि आपने रात्रि में सोने का तथा आराम करने का भी त्याग कर दिया। उस समय आप अल्प आहार लेकर वैय्यावृति के कार्यों में तल्लीन रहते थे। अल्प आहार तथा कम सोने के कारण से आपको वर्णी जी की समाधि के बाद पीलिया हो गया।

आपके दीक्षा लेने के लगभग एक साल बाद कर्मों ने तीव्रता से आपकी परीक्षा लेना शुरु कर दिया और कर्म आपके पास मलेरिया ज्वर के रुप में परीक्षा लेने आते थे। चार माह तक निरन्तर प्रतिदिन 104 से 107 डिग्री तक आता था। आपकी स्थिति इतनी जर्जर हो गयी थी कि आप बिना सहारे के लघु शंका को भी नहीं उठ पाते थे। इतनी परेशानी के बावजूद भी आपके समता परिणाम व्रतों के प्रति आस्था तथा लगन यथावत बनी रही। आपको आचार्य श्री की बीमारी (मलेरिया) के समय अपने सामने खड़े होकर ओषधि के रुप में घना पंचक का काढ़ा एक-एक कटोरा तक पिलाते थे। लेकिन पेपर बहुत कठिन था अर्थात कर्मों की बाढ़ इतनी तीव्र थी की घना पंचक का काढ़ा एक-एक कटोरा कई माह तक पीने पर भी बुखार कम न हुआ। दीपावली के बाद जब बुखार स्वंय ही थक गया तो वह कुछ विश्राम करने लगा अर्थात मुनि श्री को जब कुछ आराम मिला।

जब संघका चार्तुमास मुक्तागिरि सन् 1980 में हुआ, तब मुक्तागिरी से आप संघ सहित लौट रहे थे। किसी व्यक्ति के द्वारा गलत रास्ता बता दिये जाने पर संघ भटक गया और भीषण ठण्ड चारों ओर पानी से भरे नारंगी के बगीचे थे। वहीं पर सारा संघ संध्या काल होने पर रुक गया। रात्रि में इतनी ठण्ड पड़ी कि दांतों ने हारमोनियम बजाना शुरु कर दिया। अर्थात दाँत किटकिटाने शुरु हो गये। सारे संघ ने सारी रात इस ठण्ड में बैठे-बैठे बितायी। आप उस समय क्षुल्लक अवस्था में थे। आपके पास दुपट्टा था, लेकिन आपने दुपट्टा नहीं ओढ़ा। प्रातः होते ही विहार कर दिया। विहार करते जा रहे हैं, न जाने कितना चलना है कहां चलना है, किस दिशा में बढ़ना है, कोई भी रास्ता बताने वाला नहीं था, बस चलते जा रहे हैं, क्योंकि चलना ही जीवन है। रात्रि जागरण होने तथा विहार की थकान होने के कारण विहार करते-करते आपका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। पेट खराब हो गया चक्कर आने लगे। लेकिन संघस्थ साधुओं के सहारे से जैसे-तैसे महाराष्ट्र के एक नगर में आये (हीवर खेड़) उस समय सामायिक काल होने के कारण आप सामायिक में बैठ गये। डेढ़ बजे संघ आहार को उठा आचार्य श्री के निर्देशन के अनुसार औषधि के रुप में पित्त शमन हेतु दूध में बूरा डालने की बात श्रावकों के समक्ष आयी। आहार के समय एक श्रावक आपके साथ चौके में गया। वहां पर एक कटोरे में नमक रखा हुआ था, वह उसने बूरा समझकर दूध में मिला दिया क्योंकि आचार्य श्री का बूरा देने का निर्देशन था।

आपने जैसे ही दूध को अपने कटोरे से एक दो घूंट पिया दूध के पेट में जाने के बाद आपको उल्टी (वमन) हो गयी। नमक के कारण क्षार की मात्रा बढ़ गयी थी। इस प्रकार से उल्टी होने के कारण आपका अन्तराय हो गया, तो संघ का विहार रुक गया। दूसरे दिन बड़ी मुश्किल से अल्प आहार हुआ तथा 20-25 किमी. विहार किया। इस प्रकार के अनेक व साधना पूर्ण अद्भुत चमत्कार आपके जीवन में देखे जाते हैं।

गुरु आज्ञा से विहार एवं धर्म प्रभावना

इस प्रकार आपने 10 वर्ष तक साधना अपने गुरुवर, पूज्य आचार्य 108 श्री विद्यासागरजी के चरणों में की। फिर बाद में आपकी उत्कृष्ट साधना, वैराग्य की दृढ़ता एवं धर्म की प्रभावना के पूर्ण योग्य जानकर आपके संघस्थ साधुओं को भी आपकी साधना एवं प्रभावना में सहायक बने रहने के लिये अच्छे हृदय से आशीर्वाद देकर भेजा । मुनि श्री सुधासागर जी कभी नहीं चाहते थे कि हम अपने गुरु से अलग होकर कोई प्रभावना करें, परन्तु अपने गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करना ही था । सो किया ।

आपकी अपनी स्वयं की साधना एवं गुरु के द्वारा हृदय से दिये गये आशीर्वाद का इतना प्रभाव है कि आज जहां भी मुनि श्री के चरण पड़ते हैं, वहाँ के जन मानुष में धर्म के प्रति तथा अपनी संस्कृति के गौरव के प्रति अटूट आस्था जाग जाती है । एवं चौथे काल जैसा धार्मिक वातावरण छा जाता है ।

आपकी ओजस्वी वाणी के शब्द निकलते ही व्यक्ति के जीवन में घुल जाते हैं और यही कारण है कि इतने थोड़े समय में अर्थात लगभग 3 वर्ष के अन्दर दो इतने बड़े-बड़े महान कार्य आपके प्रेरणात्मक उपदेश से किये जो कोई भी सैकड़ों वर्षों से नहीं करा पा रहा था। जैसे कि सबसे पहले सिरोंज (विदिशा जिला) के क्षेत्र का जीर्णोद्धार एवं देवगढ़ अतिशय क्षेत्र (उ.प्र) का जीर्णोद्धार कर पंच गजरथ महोत्सव के साथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के द्वारा करीब 500 मूर्तियों में प्राण प्रतिष्ठा भी आपके चरणों का देवगढ़ में पड़ने का अतिशय है । इसी प्रकार सीरौनजी, बजरंगगढ़ (उ.प्र.) में खण्डारजी क्षेत्र का एवं पावागिरि सिद्ध क्षेत्र के जीर्णोद्धार का कार्य भी प्रारम्भ हो चुका है ।

आपके आशीर्वाद से नव निर्माण के बहुत से कार्य हो चुके हैं । एवं हो रहे हैं, जो भारतवर्ष के इतिहास में हमेशा स्वर्ण अक्षरों से अंकित रहेंगे । जैसे अशोक नगर (म.प्र) में इतनी विशाल त्रिकाल चौबीसी का निर्माण एवं पंचकल्याणक तथा सप्त गजरथ महोत्सव विश्व में पहली बार हुआ। वर्तमान में ललितपुर (उ.प्र.) में चौबीसी की स्थापना एवं नव (9) गजरथ महोत्सव एवं श्री सुधासागर कन्या इन्टरकॉलेज की स्थापना आपके ही आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस प्रकार आप मुँगावली, बीना, जय-श्री नगर, बेगमगंज, तालबेहट आदि अनेक जगहों पर अमिट प्रभाव पड़ा जो भविष्य में कभी भी भूलाया नहीं जा सकेगा। जब तक सूर्य तथा चन्द्र रहेंगे तब तक पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी के गुणों का गान होता रहेगा।

संकलनकर्ता श्री निहालचंद जैन
सेवानिवृत प्रिंसीपल,
अजमेर

□ □ □
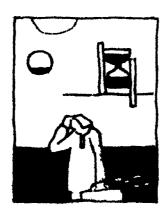
इसकी कोई चिन्ता है ?

देखना चाहिये की जीवन तत्व कहाँ जा रहा है ?
दो पैसे गुम जाने का तो रंज होता है
मगर समग्र जीवन बीता जा रहा
इसकी कोई चिन्ता नहीं है ।

ज्ञानध्यान तपोरक्तस्तपस्वीसः प्रशस्यते

सरसेठ श्री निर्मलचंदजी सोनी

अजमेर नगर के असीम पुण्योदय से इस वर्ष श्री 108 श्री मुनिराज सुधासागर जी महाराज का ससंघ चार्तुमास यहां स्थापित हुआ। मुनिराज के नगर प्रवेश के दिन से ही जो उल्लास का वातारवरण बना वह दिनों दिन धर्माचरण के रूप में बढ़ता ही चला गया । यह सब मुनिराज की आकर्षक प्रवचन शैली का ही प्रभाव रहा जिसने दीर्घकाल से सुषुप्त श्रावकों को सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया । अनेक व्यक्तियों ने रात्रि भोजन भक्षण सप्तव्यसन, चमड़ा प्रयोग आदि का त्याग किया । चार्तुमास में अनेक आयोजन हुए जिसमें सर्वप्रथम दसलक्षण पर्व में श्रावक संस्कार शिविर हुआ जिसमें अजमेर व बाहर से आये हुए लगभग 600 श्रद्धालुओं ने भाग लेकर किस प्रकार एक सच्चे श्रावक की दैनिक चर्चा होती है ऐसा अभ्यास कर अपने आपको कृतार्थ किया । धर्म साधन का ऐसा यज्ञ अजमेर के इतिहास में कभी देखने में नहीं आया ।

इसके बाद त्रिदिवसीय विद्वत संगोष्ठी में ज्ञान की गंगा प्रवाहित हुई जो स्वाध्याय प्रेमियों के लिये अत्यन्त उपयोगी रही।

इस प्रकार देव शास्त्र गुरु के प्रति श्रद्धा जगाकर ,सूक्ष्म तत्व को इतनी सरलता से समझाकर जिसे बाल वृद्ध सभी ग्रहण कर सकें तथा सभी को चारित्रवान बनने की प्रेरणा देकर मुनिराज ने रत्नत्रयी की अमृत मयी धारा बहा दी जिसमें स्नान करने वाला अवश्य ही भाग्यवान है। किसे क्या उपलब्धि हुई अथवा हो सकती है वह मुनिराज के चरण सान्निध्य से ही ज्ञात हो सकती है, शब्द इसका वर्णन नहीं कर सकते हैं। ऐसे सन्तों का सदा समागम मिलता रहे ऐसी भावना से उनके चरणों में विनम्र विनयांजलि अर्पण करता हुआ ।

निर्मलचन्द सोनी

इतना अवश्य जानें कि

यदि तू अधिक जाने तो इतना अवश्य जान कि जैसी तेरी आत्मा है, वैसी ही दूसरे की भी है । जो बात तुझे बुरी लगती है, वह दूसरे को भी वैसी ही लगती है ।

दिगम्बर मुनि १०८ श्री सुधासागरजी महाराज

-: व्यक्तित्व एवं कृतित्व :-

लेखक: मूलचन्द गदिया
पार्श्वनाथ कालोनी, (नसीराबाद), अजमेर

जांचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन
बिन जांचे बिन चिन्तवे धर्म सकल सुखदैन

कविवर भूधरदास

प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु ने कहा है कि मृत्यु नहीं होती तो धर्म नहीं होता। मृत्यु ही सबसे बड़ा दुःख है। मृत्यु के निकट आने पर आत्मा छल कपट छोड़ देती है । और इसी कारण न्यायालय में भी "मृत्युकालिन" कथन सत्य माना जाता है। मृत्यु के विषय में निश्चित होते हुये भी उसके समय के विषय में हम अनिश्चित हैं, और यह अनिश्चितता मृत्यु के भय के झटके के लिये शौक - अबजोरबर का कार्य करती है । इस कारण हम ज्यों के त्यों रह जाते हैं । जिन व्यक्तियों का यह शौक - अबजोरबर टूट जाता है उनका जीवन धार्मिक हो जाता है। बुद्ध ने कहा कि अगर जरा और मृत्यु निश्चित है तो फिर क्या फर्क पड़ता है कि वह आज आये या पचास वर्ष बाद । मैं तो प्रतिक्षण वृद्ध हो रहा हूं। प्रति क्षण मर रहा हूं। जीवन यात्रा वास्तव में मृत्यु की यात्रा है, मृत्यु उसकी अंतिम कड़ी है ।

Our life is but chain of many deaths" Rev. Edward Young.

यौवन अवस्था में ही बुद्ध वन को चल दिये । महावीर ने चतुर्मास व्यवस्था स्वीकार नहीं की । मृत्यु अवस्था नहीं देखती । इस कारण तीस वर्ष की उम्र में घर बार छोड़ धर्म की शरण को प्राप्त हो गये। महावीर भगवान् महावीर हो गये ।

ये 2500 वर्ष पुरानी घटनायें हैं। लेकिन वे कितने महान हैं जिन्होंने इस कलिकाल में भी वासना में प्रवेश ही नहीं किया। सुदूर दक्षिण से धर्म की खोज में 17,18 वर्ष की उम्र का युवक अजमेर नगरी आया और उस विद्याधर युवक ने आचार्य ज्ञानसागर महाराज को अपना जीवन समर्पित कर दिया और 22 वर्ष की उम्र में निर्ग्रंथ दीक्षा धारण कर ली। आज वही आचार्य विद्यासागर महाराज के नाम से जैन जगत् में सर्वाधिक श्रेष्ठता, श्रद्धा, आस्था और पूज्यता को प्राप्त है ऐसे ही क्षत्र-चूडामणि का अनुसरण करने वाले श्री 108 मुनि सुधासागर महाराज का वर्षाकालीन योग का लाभ आज हम सबको अजमेर में हो रहा है ।

श्री १०८ मुनि सुधासागरजी महाराज का जीवन-वृत

मध्य प्रदेश में अतिशय क्षेत्र ईसुरवारा के श्रेष्ठी श्री रूपचंदजी व माता श्री शान्तिदेवी के पुत्र जयकुमार ने सागर विश्वविद्यालय से बी. कॉम परीक्षा तो उत्तीर्ण की लेकिन जिस आश्रम को अंततोगत्वा छोड़ना था । उस गृहस्थ आश्रम में प्रवेश ही नहीं किया। और अनादि सिद्ध-क्षेत्र श्री सम्मेद शिखर की तलहटी में वर्णी-आश्रम ईसरी में 25 सितम्बर 1983 की मंगलमय बेला में लगभग पच्चीस वर्ष की अवस्था में ही 'महाजनो येन गतः सपंथा' का अनुसरण करते हुये अपने गुरु आचार्य श्री विद्यासागर महाराज से हजारों धर्मानुयायियों के समक्ष जयकुमार ने भगवती दीक्षा ग्रहण कर श्री 108 सुधासागर नाम के मुनि हो गये । जय-जय के शब्दनाद से नभ गुंजायमान हो गया।

"चतुर नगन मुनि दरसत,
भगत उमग उर सरसत ।
नुति थुति करि मन हरसत,
तरल नयन जल बरसत ।।

दिगम्बरत्व (सर्वोत्कृष्ट सन्यासी भेष)

अन्तर विषय वासना बरतै बाहर लोक लाज भय भारी।
तातै परम दिगम्बर मुद्रा, धर न सके दीन संसारी ।।

ऐसी दुर्धर नग्न पीरषह, जीते साधु शीलव्रत धारी ।
निर्विकार बालकवत निर्भय, तिनके पायन ढोक हमारी ।।

पार्श्वपुराण

महान जैनाचार्य कुंद कुंद ने कहा है कि "णग्गो हि मोक्खमग्गो, ऐसा उमग्गाया सव्वे" अर्थात नग्नता ही मोक्ष मार्ग है शेष सब उन्मार्ग हैं।

आज की तहजीब नग्नता को असभ्यता कह सकती है जिस तहजीब के विषय में डॉ. इकबाल के ये शब्द कितने मार्मिक है ।

तुम्हारी तहजीब अपने खंजर से आपकी खुदकशी करेगी ।
जो शाखे नाजुक पै आशियाना बना ना पायदार होगा ।

नग्नता या दिगम्बरत्व साधु के उत्कृष्ट भेष रुप में सर्वत्र स्वीकार की गई है । भले ही इस कठिन मार्ग का पालन आज के युग में सिर्फ दिगम्बर जैन मुनियों में ही मिलता है । वेद, उपनिषद पुराणों में तो तुरियातीत, अवधूत परमहंस साधु के नग्न रहने का विधान मिलता ही है लेकिन गैर भारतीय धर्म इस्लाम ईसाई यहूदी धर्म व उनके दरवेश व संतों की वाणी में भी यत्र तत्र इसके उल्लेख मिलते है। तुर्किस्तान में "अब्दल" जाति के दरवेश नंगे रहते है। औरंगजेब के काल में सूफी संत सरयद सैकड़ों भक्तों के साथ दिल्ली की सड़कों पर नग्न घुमता था। औरंगजेब की आपति पर उसने जबाव दिया, पोशानीद लवास हरकरा ऐबे दीव वे ऐवा रा लबास अर्यानी दाद' याने खुदा ने जिसमें ऐब न पाया उनको नंगे पन का लिवास दिया। क्लीमेनटाईन होमीलीज पीटर कहते हैं "चाहे वे फिर कपड़े लते हों या दूसरी कोई चीज पाप को रखे हुये हैं। क्योंकि हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये । हम सब के लिये परिग्रह पाप है ।"

"मनुष्य मात्र की आदेश स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष- विकार शून्य होता हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

"I hold that the need nothing is divine and the less a man needs the nearer does he approach divinity sporetes."

दिगम्बर मुनि की चर्या

भगवान् कुंद कुंद कहते है "नग्न दु:ख पाता है, संसार सागर में भ्रमण करता है उसे बोधि-ज्ञान प्राप्त नहीं होता अगर वह जिन भावना से दूर है । भाव रहित को सिद्ध की प्राप्ति नहीं होती भले ही वह बिल्कुल नग्न हुआ, हाथों को लम्बे करके करोडों जन्मों तक नाना प्रकार के तप करता रहे"

भावों की विशुद्धि के लिये ही बाह्य परिग्रह का भी त्याग किया जाता है। जिनके भीतर परिग्रह की वासना है उनका बाह्य त्याग निष्फल है। जो देह की ममता और कषाय से मुक्त है अपनी आत्मा में लीन रहता है वही साधु है। जैन मुनि के लिये इस कारण 28 मूलगुणों का पालन अनिवार्य है। जिन गुणों के पालन से उनका मन इतना निर्मल हो जाता है कि निर्मल जल की उपमा मुनि के मन से दी जाती है। "मुनि मन सम उज्जवल नीर प्रासुक गंध भरा"

जैन मुनि के २८ मूलगुण

नग्नता तो 28 मूल गुणों में एक मूल गुण है। उनके 28 मूलगुण निम्न है। पंच महाव्रत, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ।

पांच समिति : ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान-निक्षेपण प्रतिष्ठापना

पांचो इन्द्रियों : स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु, कर्ण का निरोध

षट आवश्यक पालन : सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, कार्योत्सगर्ग और प्रत्याख्यान

सातशेष : नग्न रहना, केशलोच करना, पिछली रात्रि में भूमि पर एकासन से सोना हवन का व दंत-धोवन का त्याग, एक बार खडे-खड़े अपने हाथों में शुद्ध लक्ष्य अहार लेना और परिषह सहना ।

साधु षट-काय के जीवों की हिंसा का त्याग कर द्रव्य हिंसा का और राग द्वेष सभी भाव हिंसा का त्यागी होकर सब शास्त्रों का, व्रतों और गुणों के पिण्ड भूत अहिंसा महाव्रत का पालन करता है। असत्य और अहितकारी वचन का त्याग कर सत्य

महाव्रत का पालन करता है । जल और मिट्टी के अलावा बिना किसी द्वारा दिये दांत साफ करने की सींक तक ग्रहण नहीं कर अचौर्य महाव्रत का पालन करता है । मैथुन संसर्ग अधर्म का मूल है इसीलिये मैथुन सेवन का सर्वथा त्याग कर निग्रन्थ साधु ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करता है। अपरिग्रह महाव्रत के लिये कहा है

"सन्निधिंच्न कुर्वीत, लेपमात्रया संयत
पक्षीपत्र संमादाय निरपेक्ष परिव्रजेत"

साधु लेश मात्र भी संग्रह नहीं करता है। पक्षी की तरह संग्रह से निरपेक्ष रहकर केवल संयम के साधन पीछी कमंडल लेकर विचरण करता है। किसी प्रकार के वाहन, फ्रीज, तबूं आदि का तो प्रश्न ही नहीं है ।

श्री १०८ मुनि सुधासागरजी महाराज का व्यक्तित्व व कर्तव्य

इस काल में जहां दिगम्बर श्रमण के दर्शन दुर्लभ हैं, वहां निरतिचार मूलगुणों का पालन करने वाला संयमी तपस्वी प्रतिभावान व प्रभावी वक्तृत्व कला से विभूषित श्रमण मिलना और अधिक कठिन हैं। मुनि श्री में संयम ज्ञान व चमत्करिक अभिव्यक्ति का संगम मिलता हैं। अजमेर में चातुंमास काल में आपसे प्रवचन से सैकड़ों जैनाजैन भव्यात्माओं में धर्म संस्कार व सदाचार का बीजारोपण हुआ हैं। घंटो खडकासन पदमासन योग में ध्यान करने वाले, अनावश्यक बातचीत से दूर निरन्तर स्वाध्यायन चिंतन मनन उपदेश आदि में जिनका समय व्यतीत होता है से प्रभावित होकर अनेक तीर्थक्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों, मंदिरों के जीर्णोद्धार, गजरथ महोत्सव, शिक्षा-संस्थान स्थापना आदि कार्य हुये हैं। अजमेर में श्रावक संस्कार शिविर के अलावा आपकी प्रेरणा से श्री 108 ज्ञानसागर महाराज के साहित्य लगभग 24 कृतियों का प्रकाशन और विद्वत गोष्ठीयों का आयोजन हुआ है। शाकाहार प्रदर्शनी, शाकाहार गोष्ठी, अध्यात्मिक कवि सम्मेलन आदि से अजैन समाज में भी शाकाहार का प्रचार हआ ।

तार्किक प्रवचनकार

सरल स्वभावी प्रतिभा के धनी मुनि श्री के सरल और सहज भाषा में रत्नत्रय-धर्म सात-तत्व कर्म मीमांसा, मूलाचार, श्रावकाचार, श्रद्धा, भक्ति, महापुरुषों के चरित्र पर सार गर्भित प्रवचन हुये हैं। अपनी विशिष्ट तार्किक शैली में गूढ़ विषय उपादान-निमित निश्चय-व्यवहार, श्रद्धा ज्ञान, अध्यात्म क्रियाकांड, सर्वज्ञता-कर्मबद्धता दैव-पुरुषार्थ पर प्रकाश डाला हैं। आप जब विषय वस्तु का प्रतिपादन करते हैं। तब ऐसा लगता है कि जीव अगर गृहस्थ अवस्था में वकालात करते तो उत्कृष्ट कोटि के अभिवक्ता होते है । हमारा मत है कि भारतीय दर्शन शास्त्रियों की तुलना में अभारतीय दर्शन शास्त्रियों बोने हैं। इन दर्शन कारों ने अपने सिद्धान्त के मंडन और अन्य केन् खंडन में जो पैने तर्क दिये हैं। उसे देखकर उनकी कुशाग्र बुद्धि बडे-बडे विधि विज्ञों से तीक्ष्ण प्रतीत होती हैं । भगवान् महावीर का सप्त भंगी न्याय सूत्र अद्वितीय अकाग्र विर्वचन विधि (law of interpretation) हैं।

पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर महाराज व इनके संघ के साधुओं ने यथा संभव त्रितिचार मूलगुणों का पालन करके मुनि मार्ग में श्रावकों की श्रद्धा को पुर्न-स्थापित किया है। श्री 108 सुधासागर महाराज इसके प्रमाण है। अभी अजमेर में। संयम और ज्ञान में ज्ञानसागर के विद्यासागर विद्या के सागर हो है और विद्यासागर से निकसी सुधा सुधासागर ही ज्ञान और संयम का अनूठा संगम हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक जान लोके कहता है

"the actions of men are the first interpreters opf their thought : John Locke"

अजमेर की नगरी मुनि श्री सुधासागर महाराज के वर्षाकालीन प्रवास से धन्य हो गई हैं।

जे गुरु चरण जहां धरे, जग में तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढे भूधर मागे ऐह ।।

□ □ □

एक चित्त चमत्कारी व्यक्तित्व: मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

लेखक: इन्दरचन्द पाटनी 'शास्त्री'
रंगमहल, अजमेर

खुदी को कर बुलंद इतना कि, खुदा तुझसे पूछे कि तेरी रजा क्या है ?

भारी भीड़ में खड़ा व्यक्ति अलग से पहचान मे आ जावे ऐसी पहचान को ही व्यक्तित्व माना जाता है । दिगम्बरत्व को अठाईस मूल गुणों की कड़ी सुरक्षा में धारण करने वाले ऐसे हो एक प्रकाश पुंज गत 16 जुलाई से अजमेर में विराजते हुऐ संपूर्ण देश के आहत मानव समाज को 'ज्ञान सागर मंथन से प्राप्त ' ज्ञान सुधा रूपी अमृत के अमरत्व व शांति की सुधा का पान करा रहे हैं। अहिंसादि 12 महाव्रतो के विशाल शामियाने में विराजित वे भावी केवलज्ञानी "व्यक्तित्व" जिसके प्रकाश में अवलोका काशमें व्याप्त सभी जीव राशि को अपने समान देखने व मानने की कला सिखाकर सभी को जीवन दान प्रदान करा रहे हैं ।

'सम्यक् रत्नत्रय' को एकरूपता को अपने व्यक्तित्व में आत्मसात किये दिशा भ्रमित भक्तों को "सच्चे देवशास्त्र" गुरु के स्वरुप का सही श्रृद्धान करा रहे है । जिनके व्यक्तित्व में क्षमादि "धर्म के दस लक्षण" निरन्तर प्रस्फुटित हो रहे हैं । सुमेरु पर्वत की तरह अडिग मनोबल वाले आत्म कल्याण की कठोर साधना मे रत यह व्यक्तित्व परम पूज्य 108मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का ही हो सकता है। व्यवहार व चर्या के मूलाचार स्पष्ट करने वाले कुन्दकुन्द' सदृश दिगम्बर भेष धारी मुनि श्री जब अपनी अमृतवाणी की वर्षा करते हैं तो सन्तप्त प्राणी शीतलता पाकर 'समयसार' की सी तृप्ति अनुभव करने लगते हैं। वस्तु तत्व की निर्भिकता से उजागर करने वाले 'समन्तभद्र' की सी क्षमता के धारी मुनि श्री के मन मोहक व्यक्तित्व, मनोहारी मुस्कान, और मुक्त हंसी में छिपी करुणा व वीतरागता हम सभी के लिये परम वन्दनीय है । मुझे तो पक्का विश्वास है कि इस आकाशी व्यक्तित्व के धर्मा पथिक का पथानुकरण करके 'शिव' तक पहुंचा जा सकता है नक्षत्र मण्डल के बीच घिरा "प्रकाश" ही चन्द्रमा का व्यक्तित्व है किन्तु 'यह भी जायेगा' तभी शास्वत् अमरत्व रुपी "व्यक्तित्व" आयेगा ।

व्यक्तित्व अहिंमक आत्मानुरागी और विश्व मैत्री लिये है तो कर्तत्व भी वैसा ही होगा । इसमें शंका की कोई गुंजाईश नहीं है चारों और फैलती हिंसा और भौतिकता और अनैतिकता की आग को जय करने की इच्छा से जयकुमार जैन ने दिगम्बरत्व और वीतरागता स्वीकार कर ली । शिव पथिक के पथ मे यह मील का पहला पत्थर था । मुनि का मुखरित मौन खुला और सिरोज व देवगढ़ अतिशय क्षेत्र में वर्षो से खण्डित पड़ी अनेक जिन प्रतिमाओं का जीर्णोद्धार करा पंच गजरथ महोत्सव के साथ मूर्तियां की प्राणक प्रतिष्ठा कराई । आपकी ओजस्वी व प्रेरणाप्रद वाणी के फलस्वरुप सीरोनजी बजरगंढ, खण्डार जी क्षेत्र का व पावागिर सिद्ध क्षेत्र के जीर्णोद्धार का कार्य प्रगति पर है । जीर्णोद्धार के साथ नव निर्माण भी आपकी कार्य शैली का एक अंग है । अशोक नगर में त्रिकाल चौबीसी की स्थापना पर पंचकल्याणक व सप्त गजरथ महोत्सव विश्व में अपनी तरह का एक पहला आयोजन ही था ।

ललितपुर में चौबीसी की स्थापना व नव गजरथ महोत्सव का आयोजन कर भावी पीढ़ी को एक उपलब्धि प्रदान की है । शिक्षा के महत्व का प्रसार हो इसी हेतु ललितपुर में श्री सुधासागर कन्या इंटर कॉलेज का निर्माण मुनिश्री के कर्तव्य का एक ज्वलन्त उदाहरण है। धर्म प्रभावना मुनि श्री कर्तव्य का एक प्रमुख अंग है । पदमपुरा से 21 फुट खड्गासन प्रतिमाजी के महामस्ताभिषेक, सांगानेर में संघीजी के मंदिर में विराजमान रत्नमूर्ति यक्ष रक्षित जिन प्रतिमाओं को बाहर निकलाकर अनेक श्रद्धालुओं को दर्शन लाभ कराना अपूर्व धर्म प्रभावना का ज्वलन्त उदाहरण है ।

अजमेर नगर में मुनि श्री का वर्तमान चातुर्मास 'न भूतो ना भविष्यति' की तरह एक ऐतिहासिक घटना साबित होगी। अजमेर में आयोजित श्रावक संस्कार शिविरों जैसे शिवरों के माध्यम से नई पीढ़ी मे नैतिक व धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण मुनिश्री का एक विशष्ट प्रयोग साबित हो रहा है । साहित्य विद्या मे भी मुनि श्री की गहरी पेठ है । मानव पीड़ा व संवेदनाओं का बोध आपसी सशक्त लेखनी से उजागर होता है मानव के क्रूर कृत्यों परलिखी कविता खुला का हृदय की कराह उठा और फिर मार्ग दर्शन ऐसे आत्म साधक ओर करुणा बोध से प्रेरित स्व पर हितकारी मुनिश्री के पावन चरणों में मेरा शत: शत: नमन् ॥

हंसते को रुलाने की, तुझे दरकार नहीं है ।
रोते को हंसा दोगे, तो... तू खुद खुदा बन जायेगा ।

ऐसे आत्म साधक और करूणा बोध से प्रेरित स्व पर हितकारी मुनि श्री के पावन चरणों में मेरी शत्-शत् नमन् ।

समाप्त

गीत-प्रसूनाञ्जलि

याद रखेगें बरसों बरसों- मुनि श्री सुधासागर जी के प्रति

एक हवा थी एक हवा है
एक हवा होगी कल-परसों
जो सुबास दे जन मानस को
उसकी यादें रहती बरसों
ऐसे संत सुधासागर जी
भूलेगा अजमेर न तुमको
मात्र आज ही नहीं तुम्हें हम
याद रखेगें बरसों बरसों ।

द्विगुणित आभा के प्रपुंज तुम
रवि शशि सा परिवेश आपका
धैर्य, गम्भीर उदधि के संग
कलुष न धरा पर रहे पाप का
नत मस्तक हम सभी वीर वर
पुण्य-प्रताप समय का आगा
हाँ आपके चरण-कमल हों
नाम मिटेगा अभिशाप का ।

सुधियों की यह सुधा सींचकर
आप प्रवासी हो जायेंगे
स्मृतियों के पावन निर्झर में
हम 'स्व' को नहलायेंगे
मानव जन्म सफल हो जाये
ऐसा दो आशीष मुनीश्वर
कर्मबंध के बंध काटकर ही
पंछी हम उड़ पायेंगे।

निर्मलचन्द निर्मल
सागर

संगोष्ठी संगम

तप: स्थली ज्ञानसागर की विद्यासागर दीक्षा धाम
राजस्थान हृदय स्थल, अजमेर नगर पावन प्रियधाम

वर्षावास श्री गुरुवर का प्रथम हुवा है महिमावान
हुये अनेकों अतिशयकारी, काम नगर में अति महान

उसी कड़ी में तीन दिवस एकत्रित थे जन श्री धीमान
ग्रन्थ ज्ञानसागर वीरोदय पर संगोष्ठी करी मति[illegible]

सिद्ध हुआ संगोष्ठी से यह, ज्ञानसिंधु थे महाकविज्ञान
श्रवण मनन चिन्तन से लाभान्वित हो गये नरनार सुजान

अध्यात्म गंगा में मिली गत दिनों यमुन साहित्य नदी
दर्शन शील त्रिवेणी संगम की घड़ियां पाई उजली ॥

आओं हम सब ज्ञान त्रिवेणी में अवगाहन करें सुजान
पाप पंक धोकर निखारें निज आतमगुण अति महान ॥

अ.भा.वि. संगोष्ठी, दिनांक 13.14,15, नवम्बर अवसर पर पठित
रचियता प्रो. सुशील पाटनी

धन्य भूमि बुंदेलखंड की, धन्य ग्राम ईशुरवारा ।
संत सुधासागर- सा मुनि दे जैन संस्कृति को सम्हारा ॥
गुरु सुधासागर-सी यश कीर्ति, जगह जगह पर फैल रही ।
जिनके मुखमण्डल की छवि लख, हृदय सुमन की खिले कली ॥

नाम देवगढ़ जहाँ की रचना, स्वयं देवताओं ने की ।
कोटि कोटि सुन्दर प्रतिमाएँ भव्य मनोज्ञ अरु दुर्लभ भी ॥
काल गति के चक्कर से, धूमिल होकर पड़ी रहीं ।
नजर पड़ी जब सुधासागर की, हृदय में झंकार उठी ॥
और पुनः एक बार वह, बना देवगढ़ अतिसुन्दर ।
लख जिसकी छवि मन नहिं भरता, प्रतिमाओं के दर्शन कर ।
जिन- संस्कृति के उद्धारक पोषणकर्ता हैं सुधासागर ।
जो बजा रहे हैं जैन धर्म का, डंका गांव-शहर जाकर ॥

जहाँ भी चरण पडें मुनिवर के, वहाँ का कण कण है खिल जाता ।
बाल युवा और वृद्ध सभी को मानों नवजीवन मिल जाता ॥
सुनने को उपदेश गुरु का, दौडे- दौडे आते लोग ।
त्यागमयी जीवन को धारें, स्वयं छोड़ते विषयन भोग ॥
चाहे जैन अजैन कोई हो, या कोई पशु- पक्षी हो ।
भुला परस्पर भेदभाव को सुनते मुनि की वाणी को ॥
प्यासा पानी पीकर जाये और भरे अपनी गागर ।
ज्ञानामृत हैं बाँट रहें देखो अरे ! गुरु सुधासागर ॥

जिनकी वाणी के प्रताप से, लोगों के भ्रम दूर हुए ।
निश्चय और व्यवहार के झगडे मिटे मंसूबे चूर हुये ॥
जिनने अज्ञान के वशीभूत हो, जिन मुनियों की निंदा की ।
वे दुखित हुए अपनी करनी पर पछताये निज निंदा की ।
सचमुच दुनियां में जैन साधु-सा त्यागी कोई और नही होता ।
ज्ञान ध्यान चारित्र युक्त पद, वंदनीय जग में होता ॥
ये श्रावक का कर्तव्य नहिं कि मुनियों का वो करें सुधार ।
करें सुधार स्वयं का पहले, समझाते मुनिवर बार-बार ॥

धन्य 'अजयमेरु' की नगरी, जहाँ पर पावन वर्षा योग ।
पूज्य सुधासागर मुनि ऐलक 'धैर्य,' 'गम्भीर', 'सागर' संयोग ॥
अतिशयकारी आयोजन निशदिन चतुर्मास में हुए यहाँ ।
मुनि की पावन कल्याणी वाणी की सरिता बही जहाँ ॥
प्रश्नमंच ने श्रोताओं को, ध्यान मग्न तल्लीन रखा ।
जिनवाणी के पावन अमृत का स्वाद सभी ने यहाँ चखा ॥
गुरु विद्यासागर की दीक्षा- स्थली, आज शिष्य का स्वागत है ।
'नयन' खुशी के आँसू भर, मुनि- चरणों में विनयावनत है ॥

प्रस्तुतिः- विनोद कुमार नयन
जिला सागर (म.प्र.)

महावीर अवतारी है

श्री कैलाशचन्द्र 'तरल' उज्जैन

भक्ति की गंगा में न्हावो, पुण्य कमावो चारों मास
श्री सुधासागर जी का है 'अजयमेरु' मे वर्षावास ॥
ज्ञान का दीप जलाने वाले ये एक संत भवतारी है ।
तप का तो पर्याय बने ये महावीर अवतारी है ।
जिनके दर्शन की होड लगी है, बदल गये सारे इतिहास ॥ श्रीसुधा ॥
जिसने इनके चरणों की रज को ही चन्दन समझा ।
क्षणभर का सानिध्य मिला तो युग युग का वन्दन समझा ।
तृप्ति का घट नहीं भरा है, अभी अधूरी सबकी प्यास ॥ श्री सुधा ॥
स्नेह नयन मे, क्या हृदय मे वाणी यों अमृत बरसे
जिनके प्रवचन की स्वाति बून्द को चातक सा हर कोई तरसे
गुणगान 'तरल' गाते ही रहना, जब तक रहे सांस में सांस ॥ श्री सुधा ॥

आदिनाथ के वंशज:-सुधासागर

श्री चन्द्रसेन जैन
भोपाल

ये तो सौभाग्य तुम्हारा यहां हुवा इनका चौमासा ।
राजस्थान की पावन माटी, पुष्कर की ये पावन घाटी ॥
अजयमेरु की पावन नगरी, अध्यात्म रस पूरित नगरी ।
जाने कब से प्यासी थी, पूरी हो गई सबकी आशा॥ यहां ॥

इस नगरी में महक रही है इन संतों की गौरव गाथा ।
इस नगरी में चहक रही है इन संतों की गौरव गाथा ॥
इन संतों के दीक्षांत दिवस को हमको ऐसे मनाना है ।
सारी बस्ती महक उठे हमको वो अन्दाज दिखाना है ॥

संत आ गये बस्ती में तो रौनक आ गयी बस्ती में ।
ओ विद्यासागर के परम शिष्य ओ जिनवाणी के परम मित्र ॥
तुमको मैं क्या गीत सुनाऊं तुमसे ही तो सबकुछ पाया ।
तुमको वापिस क्या लोटाऊँ -
दीक्षांत दिवस की इस बेला में सुधासागर जी तुम्हे नमन

इस धरती पर संत है जितने उन सबको मेरा है नमन ॥
संत मिले तो लगा कि जैसे कोई शीतल छाँव मिले ।
मंजिल तक जाने वालों को जैसे उसके पांव मिले ॥

जीवन के इस महासफर में, थके हुये को छांव मिले ।
निर्वासित लोगों को जैसे वापिस अपने गांव मिले ॥
दीक्षांत दिवस की इस बेला में स्वीकार करो प्रणाम हमारा ।
घर-घर तक पहुँचा देंगें, सुधासागर जी पैगाम तुम्हारा ॥

दीक्षांत दिवस की इस बेला में दीप जलालो ।
ये रात दीवाली हो जाये आज छेड़ दो सरगम ॥
आदिनाथ ब्रह्मा के वंशज, ये संत है यारो धरती पर ।
आदिनाथ महावीर के वंशज ये संत यारो धरती पर ॥

नफरत की दीवार तोड़ते, ये संत है यारो धरती पर ।
मोक्ष मार्ग से हमें जोड़ते ये संत है यारो धरती पर ॥
इन संतो के सम्मानों में जिस रोज कमी आ जायेगी ।
मैं कहता हूं यारो दुनियां उसी रोज मर जायेगी ॥

इन संतो से हर सांस हमारी , हर संत जान से है प्यारा ।
ये संत हमारी पूजा यारो उनसे हिन्दुस्तान हमारा ॥
दीक्षांत दिवस की इस बेला में जय जोर से बोलो सुधासागर की ।
इन धर्मप्रभावी संतो के इन मेलों में दिल खोल के बोलो सुधासागर की ॥

संत चरण होते हैं पावन इन्हें चूमके बोलो सुधासागर की ।
धरती और आकाश गूंजादो जरा झूम को बोलो सुधासागर की ॥
धरती जिनसे सम्मानित है, उस संत का नाम सुधासागर है ।
हम सबका सम्मान है जिसमें , उस संत का नाम सुधासागर है ॥

आगम के पहचान है जिसमें उस संत का नाम सुधासागर है ।
सांगानेर अतिशय दिखलाया उस संत का नाम सुधासागर है ॥
यक्ष ने जिसको शीश झुकाया उस संत का नाम सुधासागर है ।
शब्द-शब्द में महक है जिसकी उस संत का नाम सुधासागर है ॥

शब्द-शब्द में चहक है जिसकी उस संत का नाम सुधासागर है ।
धरती पर भगवान् खड़े हैं उस संत का नाम सुधासागर है ॥
अजयमेरु ये ठहर गया है वो बोलो कौन यायावर है ।
दिलखोल के बोलो जरा जोर से बोलो उस संत का नाम सुधासागर है ॥

कुछ भी पास नहीं है गुरुवर बस श्रद्धा के फूल हैं ।
जीवन के इस महासागर में जो पाये वो शूल हैं ॥
माफ हमें कर देना गुरुवर हम चरणों की धूल हैं ।
चन्द्रसेन का बस चलता तो आज यहाँ में बतला देता ।
संत तुम्हारी क्या चाहत है दिल खोल के अपना दिखला देता ॥

रोम-रोम में बसे हो गुरुवर तुमको भूल नहीं पायेंगे ।
जब तक सांसों मे दम है हम गीत तुम्हारे ही गायेंगे । ।
महावीर के अनुयायी, इतना यारो ध्यान रहे ।
अपने प्राणों से भी ज्यादा, संतो का सम्मान रहे ॥

संत शरण में जो ना आये अपने होकर हुये पराये ।
इनसे यारों कह -
देना बड़े-बड़े ज्ञानी विज्ञानी, बड़े-बड़े मानी अभिमानी ।
बड़े-बड़े राजे रजवाड़े बड़े-बड़े दौलत वाले ॥

इनको शीश झुकाते है:-
फिर अपनी औकात क्या बोलो फिर अपनी तो बात क्या बोलो -
संतो के करके परहेज, हम मोक्ष नहीं जा पायेंगे ।
संत हमारे दुःखी हुये, हर कोई दुखी हो जायेगें ॥

❑❑❑

दृश्य के पीछे

अज्ञानी लोग हाड़पिंजर का बाहरी रूप देखकर मोहित हो जाते हैं और ज्ञानी जन बाहर दिखाई देने वाले रूप के पीछे क्या छिपा है इस बात का विचार करके वैराग्य - लाभ करते हैं ।

सुधासागर अष्टक

भागचंद "भास्कर"
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

तुम्हारे हर नदी नाले सुधा के घट से पूरे हैं ।
नहीं कोई बचा ऐसा जहाँ तुम आज नहिं पहुंचे ॥
तुम्हारे घट घटों से भर गया है ज्ञान का सागर ।
नमन मेरा तुम्हीं को है, नहीं तो सब अधूरे हैं ॥

तुमसे समाज को मिली हुई है नई-नई चेतन धारा ।
संगोष्ठी से प्रस्तुत होगा ज्ञान-अज्ञान का गारा ॥
अध्यात्म योग के मानस से तुमने सब को मोड़ दिया है ।
जैन और जैनेतर के बीच सेतु का काम किया है ॥

वीतरागी साधना में तुम सरलता से पगे हो ।
स्वानुभव की धारणा में आत्मरस से तुम मड़े हो ॥
हंस जैसे नीर-क्षीर विवेकधारी हे मुनि ।
संयमी होकर महाव्रत साधना में तुम जुटे हो ॥

तपसोज से दीप्त चेतना में आतम स्वर गहराया ।
लयों और गीतों में भरकर इधर-उधर दुहराया ॥
स्वाध्याय की पृष्ठभूमि में चिन्तन को आयाम मिला ।
ज्ञान और विद्या का चादर तुमसे निश्चित कृतकृत्य हुआ ॥

अजित मेरु की छाया में अलख ज्ञान की ज्योति जगी ।
सागानेरी जिन मंदिर की पाषाण प्रभा भी चमक उठी ॥
जैनधर्म की मानवता को अपनी-अपनी भाषा दे दी ।
सौम्य भाव से जिन संस्कारों ने सर्वोदय की बात कही ॥

भेद विज्ञान की शिला भूमि पर बैठे सबको उपदेश दिया ।
सप्तव्यसन को दूर हटाकर चारित्र मार्ग समृद्ध किया ॥
उपदिष्ट जीवनसूत्र छिन में ही उतर जाते गले ।
प्रकृति प्रत्यय जोड़कर नये-नये अर्थ सजों देते ॥

सामुदायिक चेतना के काव्य घट से रस छलकता ।
अध्यात्म की पावन धरा पर आगमों का रुप खिलता ॥
आपने डुबकी लगाई मन बहुत प्रमुदित हुआ ।
आपके व्यक्तित्व के प्रति भाव से मन भर गया ॥

विद्यासागर की सरिता मे तुमने अवगाहन पूर्ण किया ।
तपोनिष्ट होकर तुमने ज्ञानाराधन कार्य किया ॥
दर्शन ज्ञान चारित्र साधना रोम-रोम में भरी हुई है ।
पूर्णचन्द्र वत् सुधा के सागर ! इसलिए वन्दना की है ॥

❑❑❑

मंगल-आगमन

प्रोफेसर सुशील पाटनी 'शील', अजमेर

तर्ज- गणगोर

धन्य हुआ म्हैं आज, पधारया नगर महा रिषिराज,
एतद गावो मंगलाचार बधाई, सब "अजमेर" समाज ॥ टेर ॥

आचारज श्री 'विद्यासागर,' शिष्य कहावो आप,
ऐ जी धन्य 'सुधासागर,' गुरुवर रो नाम् जगत विख्यात ।
नाम जगत विख्यात ता संघ सोहे द्वय क्षुल्लकराज,
ऐ जी 'श्री गम्भीर', 'धैर्यसागर जी', संघ में रहे विराज ।
ता संघ रहे विराज कि गंगा ज्ञान अरु विद्या पाय ॥एतद॥

बहु धरमां री सरितावां को सागर है 'अजमेर',
ऐ जी ज्ञान किरण चमका करस्यां म्है दूर मिथ्यात अंधेर ।
दूर मिथ्यात अंधेर, कि तोड़ा आठ करम रो घेर,
ऐ जी आतम उजली करस्यां चढ़कर भेद-विज्ञान सुमेर ।
भेद विज्ञान सुमेर कि सुण प्रवचन श्री मुख गुरुराज ॥
अभिवन्दन शतवार, दिगम्बर मुनि मुद्रा कर जोड़,
ऐ जी समता समदृष्टि वाली, ये मुद्रा जग सिरमोर ।
मुद्रा जग सिरमोर निराकुल, निष्पृह, गुण-भंडार,
ऐ जी स्वपर प्रकाशी जिनवाणी मे करते जग उपकार ।
करते जग उपकार, नमत मन 'शील' चरण गुरुराज ॥एतद॥

गुरुवर चातुर्मास करो थापित, अजमेर मझांर,
ऐ जी अरज करे कर जोड़, नगर साधर्मी नर-नार ।
साधर्मी नर-नार कि बरखा धर्मसुधा री पाय ॥
शांत हुवै पापां की पावस, धर्म चमन महकाय
धर्म चमन महकाय, वरै पद 'शील' मुकत रो ताज,
एतद गावो मंगलाचार बधाई, सब अजमेर समाज ॥धन्य॥

करल्यो गुरु वन्दना आज

पं. ताराचन्द्र पाटनी 'तारा'
अजमेर

आये सुधासिन्धु मुनिराज यहां चलके -
गुरुवन्दना आज सभी मिल के ॥टेर॥ १

संत शिरोमणि विद्यासागर के ये शिष्य निराले
अठाईस मूलगुण तारा निरतिचार ये पाले
आओं गाये गुणगान सभी मिल के ॥करलो॥ २

यक्ष वंद्य जिन प्रतिमा तारा सांगानेर सुहाये
जा भू गर्भ मांहि ले आये सबने दर्शन पाये
हो गये पूरे अरमान सभी दिल के ॥करलो॥२॥
धर्म सुधारस पान कराते जो भी शरण आवे
धर्मामृत वर्षा कर तारा सार्थकनाम धराये
क्षुल्लक 'गम्भीर' 'धैर्य' संग आये खिलके ॥करलो॥३॥

वैयावृत्ति संयम तप अरु व्रत का अवसर आया
पूजन वन्दन धर्म श्रवण दर्शन कर मन हर्षाया
करलयो पुण्य कमाई आज सभी मिल के ॥करलो॥४॥

'तारा' पुण्य कमावण वाली या शुभ बेला आई
पूजन-वन्दन दान-दया का आया पर्व अठाई
आओ ध्यान धरें आतम झलके ॥करलो॥५॥

मंगल—प्रवेश

श्री सुधासिन्धु गुरु राज का मंगल प्रवेश।
विद्या गुरु सुशिष्य का, अभिवंदन श्रद्धेश॥

मंगल-प्रवेश-महा मंगल प्रवेश ॥

'ईशुरवारा' के प्रांत के प्यारे 'रूप' शांति के राजदुलारे-
'जय ने विजय पाई है फिर तो- धरादिगम्बर भेष ॥मंगल॥

क्षुल्लक 'गंभीर' 'धैर्य' सागर रत्नत्रय के हैं रत्नाकर ।
अजमेर नगरी धन्य भई है-गुरु विद्या के संदेश ॥मंगल॥

गंगा कल-कल स्वर से बरसे, गुरु की अमृत वाणी बरसे ।
भरते गागर जन-जन अपनी, बिना किसी संक्लेश ॥मंगल॥

उषा थाल सुनहरा भरती, जगमग करता प्रभाकर आरती ।
चंदा बिछाये चाटंनी अपनी, नयन सफल 'निर्मलेश' ॥मंगल॥

नाचे मोर पपीहा बोले, जन-जन लेता हृदय हिंडोले ।
आज बलैया लेकर गुरु को, लखता है 'निर्निमेष' ॥मंगल॥

धरती गूंजे जय की ध्वनि से, हृदय के फूल हारों से-
करते स्वागत सुधासंघ का, वंदन कर प्रत्येक ॥मंगल॥

श्री सुधासिंधु गुरुराज का..........................॥

श्रीमती निर्मला पाड्या
अजमेर
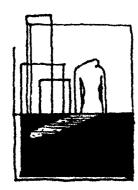
सुख की परछाई आगे आगे

ज्ञानी जन तृष्णा के पीछे नहीं दौड़ते । उन्होंने समझ लिया है कि अगर कोई अपनी परछाई पकड़ सकता है तो तृष्णा की पूर्ति कर सकता है । मगर अपनी परछाई के पीछे कोई कितना ही दौड़े, वह आगे-आगे दौड़ती रहेगी, पकड़ में नहीं आ सकेगी ।

अभिवन्दना-गीत

[प्रो. सुशील पाटनी 'शील', अजमेर]

[तर्ज: पंछीड़ा..... रे आई न कही जे... गरबा]

भाईड़ा रे आई न कही जै नगर-नगर मां,
गुरु 'सुधासागर आये, 'अजयमेरु मां ।।टेर।।

आज रिषिवर का मंगल हुआ आगमन,
गूंजे जयकार नारों से, धरती गगन ।
झूम-झूम मनवा गाये, सुबधाईयां,
दरश पा मुनीश संघ, हरषाईयां ।।भाईड़ा।।१।।

छटा 'अजमेर' आज है, मनभावनी,
खिले तनमन नगरवासियों के धनी ।.
कदम-क़दम सजे द्वार है लुभावने
स्वागतार्थ मन-मयूर लगे नाचने ।।भाईड़ा।। ।।२।।

चार महीने, खिरी-वाणी, मौका मिला।
भक्ति रंग डूबेंगे नरनारी सब,
स्वपर बोध जागेगा, 'शील' अर अब ।।भाईड़ा।! ।।३

वीतरागी मन दो

एक विनय गीत

(ज्ञानचन्द भारिल्ल)

तुम भले तीनों भुवन लो,
सृष्टि के शतशः नमन लो,
पर सुधा-सागर ! तुम मुझे
वीतरागी एक मन दो ।
पुण्यमय अपनी शरण दो ।

युग युगान्तर से भटकता फिर रहा संसार में,
और अब आबद्ध हूँ -इस देह कारागार में,
पाश अपने ही रचाएं जकड़ते ही जा रहे-
मुक्ति के सोपान हैं जो वे युगल पावन चरण दो ।
वीतरागी एक मन दो ।

स्वप्न-से उड़ते चले जाते सभी सम्बन्ध हैं,
जिधर देखूं उधर ही बस मोहमय आक्रन्द हैं,
दृष्टि ऐसी दो कि जो दर्शन करे ध्रुव सत्य का -
और जो आकर न फिर लौटे कभी वह सिद्ध क्षण दो ।
वीतरागी एक मन दो ।
पुण्यमय अपनी शरण दो ।

❑❑❑

सुधासिन्धु मंगलाष्टक गा दो..

श्री हेमन्तलाल जी काला, बम्बई

सुधायति,मंगलाष्टक गा दो
मुझसे मेरा ब्याह रचा दो
खोज-खोज मैं खोज ना पाया
मुझसे मेरा दूल्हा मिला दो।।सुधायति।।

सुधायति हो 'बाबुल' मेरे
सुसुराल की रीति बता दो
पी के घर से लौट न पाऊं
मुझको वह चारित्र जगा दो।।सुधायति।।

सुधायति हो 'सखि' तुम मेरे
मुझको दुल्हन रूप सजा दो
आज रमें ज्यों आप तिरे गुरु
मुझको मुझसे आप रमा दो ।।सुधायति।।

सुधायति हो देवर मेरे
मुश्किल सब आसान करा दो
जेठ जिठानी सास सुसर बन
सम्यक् पथ पर बाढ़ लगा दो।।सुधायति।।

सुधायति हो दाई मेरे
अनंत चतुष्टय पुत्र जना दो
मैं अज्ञानी विधि नहीं जानूं
मेरा सुखद प्रसव करा दो ।।सुधायति।।

अजमेर-नगर में

चातुर्मास मंगल कलश स्थापना

[रचयिता-प्रो. सुशील पाटनी 'शील' अजमेर (राज.)]

मंगलगीत

आज घड़ी शुभ आई है, आज घड़ी शुभ आई है ।
मंगलगीत बधाई गावो, ज्ञान सुधा हम पाई है ।टेर।।

'सुधासागर गुरुराज पधारे, जागे सोये भाग्य हमारे ।
थापन 'चातुर्मास समय ये, आज बना सुखदाई है ।।आज।।

गूढ़ विषय को, शब्द सरल में, करते आप खुलासा पल में ।
आकर्षित युवकों को कर, की महिमा धर्म सवाई है ।।आज।।

चातुर्मास स्थापन बेला, लग रहा यहां खुशियों का मेला ।
हर्षित 'अजयमेरु' नरनारी गाते आज बधाई है ।।आज।।

हम बालक गुरु आप है ज्ञानी, करना माफ सभी नादानी ।
चातुर्मास हो मंगलकारी, आशा 'शील' जगाई है ।।आज।।

वंदन आज तुम्हारा है।

नवलकिशोर सेठी

हे मानव धर्म के उन्नायक ! अभिनन्दन आज तुम्हारा है !
श्रद्धा सुमनों से पूज्यपाद ! यह पूजन आज तुम्हारा है !!

तुमने हमको पथ दिखलाया,
सत्कर्म करें, यह सिखलाया ।
सत्-असत् भेद का ज्ञान करा ।
क्या अकरणीय यह बतलाया ॥

हे धर्म प्राण ! हे तप पूत ! यह वन्दन आज तुम्हारा है !

तुम सत्य अहिंसा के पालक,
तुम उत्तम क्षमा धर्म धारक
आराधक तुम मानवता के
तुम दुर्गम अणुव्रत के साधक

इन शब्द गीतमय छन्दों से, यह अर्जन आज तुम्हारा है !
हे मानव धर्म के उन्नायक ! अभिनन्दन आज तुम्हारा है !

हे त्याग मूर्ति, हे निर्ग्रन्थ मुनि
हे विद्या सागर के लघु नन्दन
हे मुनि सुधा सागर
तुम धर्म गगन के चन्द्र

यह भक्ति भाव के दीपों से निरन्जन आज तुम्हारा है !
हे मानव धर्म के उन्नायक ! अभिनन्दन आज तुम्हारा है !!

सुधासिन्धु की है ये कहानी

(भगवान 'दास' जैन दनगसिया, अजमेर)

सुनो-सुनो सब सुनने वालों 'सुधा सिन्धु' की है ये कहानी,
ये साधु निर्ग्रंथ मुनि हैं, आतम के सच्चे ध्यानी ।टेर॥
बुंदेलखंड में विंध्याचल, पर्वत है हरा भरा सारा,
विंध्यगिरि पर्वत के ऊपर, अतिशय क्षेत्र बना प्यारा
शान्ति, कुंथ अरु अरहनाथ का, बना जिनालय न्यारा,
नौ-नौ फुट उत्तंग हैं प्रतिमा, मन भावन स्थल सारा,
प्रभू शरण में बसा हुआ इक, ग्राम नाम ईश्वर-वारा,
जन्मभूमि कहलाती इनका, बाल्यकाल बीता सारा ।सुनो॥

मोक्ष सप्तमी सन् अट्ठावन तो, संयोग मिला न्यारा,
इक्कीस अगस्त को जन्म हुआ, 'श्री रूपचन्द' का सुतप्यारा,
हर्ष अपार हुआ माता श्री, 'शांतिदेवी नयनों का तारा,
पूर्व नाम 'श्री जयकुमार' की घर-घर हो रही जय जयकारा,
धन्य है जननी धन्य धरावो, चमके जैसे ध्रुवतारा,
पुण्योदय से स्वयं विराजे, पावें निश्चय शिवद्वारा ।सुनो॥

दीवाली को नैनागिरि में, जाकर गुरु का दर्श किया,
वचन सुने संकल्प किया, व्रत ब्रह्मचर्य मन धार लिया,
घरको पर घर् मानके ये, संसार असार है जान लिया,
दस जनवरी अस्सी को, पद 'क्षुल्लक' गुरु प्रदान किया,
दो वर्ष के बाद बने 'ऐलक', आचार्य श्री उपकार किया,
तपोपूत ये ज्ञानमनीषी, जिनवाणी रस पान किया ॥सुनो॥

ध्यान तपस्या में रत् रहकर उपसर्गों को सहन किया,
'आचार्य श्री विद्यासागर', गुरुवर ने इनको परख लिया,
आश्विन बदी तृतीया को, दीक्षा ले, नाम 'सुधासागर पाया,
भेष दिगम्बरधार इन्होंने, आतम का है सुख पाया,
बारवीं दीक्षा पर्व आज, सौभाग्य से सुअवसर आया ॥सुनो॥

वर्षायोग समय जब आया, चातुर्मास पर नजर लगी,
धर्म की बगिया सूख रही ये, हरी भरी हो आस लगी,
'ज्ञान' पौत्र बन 'विद्यासागर' की गागर से झड़ी लगी,
'सुधासिन्धु' की वाणी सुनने, नगर-नगर से भीड़ लगी,
श्रावक के संस्कार शिविर से, धर्म ध्यान आशक्ति जगी,
यथा नाम सम योग मिला, रत्नत्रय की यो धड़ी लगी ॥सुनो॥

वीतराग विज्ञान विवेचन,आत्मसात् 'सन्मार्ग दिया,
एकान्तवाद का कर निस्तारा, अनेकान्त विस्तार दिया,
'गम्भीर 'धैर्यसागर क्षुल्लक के, प्रश्नमंच ने ज्ञान दिया,
चेतनतीर्थ प्रत्यक्ष विराजे, समोशरण सा लगा दिया,
मंत्र दिया 'यह भी जायेगा, श्रोताका मन मोह लिया,
सरस्वती मां कंठ विराजी, जिन आगम कंठस्थ किया ॥सुनो॥

अजयमेरु के वासी मुनिवर, हाथजोड़ ये अर्ज करें,
क्षुधा मिटा एवं मिटी त्रास, कैसे जीवन उत्थान करें
यही कामना दीर्घायु हों, वीर प्रभु से विनय करें,
इनकी महिमा वर्णी न जाये, कैसे हम गुणगान करें,
शत-शत वंदन नमन् हमारा करुणाकर कल्याण करें,
'दास' तेरा अज्ञानी, भूल-चूक हो क्षमा करें ॥सुनो॥

तुम धन्य हुये हे मुनि पुंगव

तुम धन्य हुए हे मुनि पुंगव, जिन सार मनुज भव पाया है।
भव भोग ओर घर बार तजा, व्रत आकिञ्चन अपनाया है॥

जिला सागर ईशुर वारा में पितु रुपचन्द घर जन्म लिया,
जयकुमार नाम तुम्हें देकर, शान्ति मां ने सुख परम् लिया,
बढ़ बाल चन्द्र सम फिर तुमने, कुल की कीर्ति को बढ़ाया है ॥तुम ॥१॥

बी. कॉम. किया, हिन्दी, इंग्लिश, संस्कृत प्राकृत भाषा जानी।
सिद्धान्त व्याकरण, काव्य सृजन आदिक के हो उद्भट ज्ञानी,
जिन आगम के श्रद्धानी हो, सम्यक्त्व निधि को पाया है ॥तुम ॥२॥

शुभ योग गुरु विद्यासागर, ऋषिराज का सान्निध्य मिला,
गुरुवाणी सुधा का पान किया, वैराग्य कमल मन मांही खिला,
नैनागिरि सिद्ध क्षेत्र पर आ, क्षुल्लक पदवी को पाया है। ॥तुम ॥३॥

दो वर्ष अनन्तर सागरआ, आगे बढ़ना है मन भाया,
अति विनम्र विनती कर गुरु से, निज का मन भाव है प्रकटाया,
फिर परमसिन्धु क्षुल्लक वर ने, ऐलक का रुप धराया ।।तुम।।४।।
सम्मेद शिखर के आँचल में, ईसरी नगर में जब आये,
पच्चीस सितम्बर उन्नीस सौ, तियासी को श्रेणी चढ़ पाये
निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा धारी, सुधासिन्धु नाम रखाया है ।।तुम ।।४।।
आचार्य शान्ति, गुरु वीर और शिव सागर की जो परम्परा,
जिनमें गुरु ज्ञानसागर हुए, अरु विद्यासागर ने गमन करा,
इस धार में सन्त सुधा ने बह, गुरु जन का नाम दिपाया है ।।तुम ।।६।।
है नाम यथा गुण भी वैसे, धर्मामृत की वर्षा करते,
धारावाहिक प्रवचन करते, श्रोता को मंत्र मुग्ध रहते,
'प्रभु' बार-बार ये दिन आये, कर भाव ये पद शिर नाया है ।।तुम ।।७।।

प्रभुदयाल जैन 'प्रभु'
अजमेर

शीश झुकाने आया हूँ

ललित नगर से अजयमेरु में
शीश झुकाने आया हूं ।
द्वादश जनम दिवस पर इनकी
महिमा गानें आया हूं ।
सन् तैरासी नगर ईसरी
विद्यासिन्धु गृह जनम लिया
मन में अमृत देख गुरु ने
सुधा सिन्धु इन्हें नाम दिया
अमृत वाणी के सुधा कलश
ये गली-गली बिखराते हैं ।
लगे असम्भव काम जो सबको
ये सम्भव कर दिखलाते हैं ।
पाप गलाये अपने सारे
सो खुद को पागल कहते हैं ।
अमृत वाणी मोहनी मूरत
जग को पागल कर देते हैं ।
इनकी चरणों की रज को तो
बस किस्मत वाले पाते हैं ।
फूटी किस्मत जिसकी भैया
करम ठोक रह जाते हैं ।
मोक्ष में जिनको जाना है
उन्हें इन चरणों में आना होगा ।
देव शास्त्र की पूजा की तो
गुरु को शीश झुकाना होगा ।
देव का दर्शन सम्यग् दर्शन
आगम ही है सम्यग् ज्ञान

चारित्र मयी है साधु जीवन
मिले तीन तो है कल्याण ।

रचियता- पंकजकुमार जैन ललितपुर (उ.प्र.)

परम् पूज्य १०८ श्री सुधासागरजी महाराज

के 12वें दीक्षोत्सव के पावन प्रसंग पर समर्पित

विनयांजलि/कृतज्ञता प्रसून

प्रोफेसर सुशील पाटनी 'शील'
अजमेर (राज.)

आज घड़ी शुभ आई है, आज घड़ी शुभ आई है ।
पूज्य 'सुधासागर' मुनि द्वादश दीक्षाजयंती आई है ।।टेर।।

'ईशुरवारा' माटी मोती 'रूप' अरु 'शांति' उर ज्योति,
नाम यथा गुणधारी गुरुवर, जय जयकार कराई है ।।आज।।

'विद्यासागर' सूर्य से फैली, किरण 'सुधासागर' सु-जैली,
श्रेष्ठ गुरु के श्रेष्ठ शिष्य की, आर्ष प्रथा अपनाई है ।।आज।।

गूढ़ विषय को शब्द सरल में, करते आप खुलासा पल में,
दुर्गुण, दुर्व्यसनों के प्रति जनता में ग्लानि जगाई है ।।आज।।

काम हुये है अतिशयकारी, हतप्रभ है सारे नरनारी।
निशि भोजन, अंडा, मद्य, गुटखा चमड़ा छोड़ा भाई है ।।आज।।

महिलाओं ने भी उर धारा, 'जीवो जीने दो', का नारा,
लाली खुशबू लिपिस्टिक को, त्यागा, समझ जगाई है ।।आज।।

'श्रावक संस्कार शिविर' ने, बरता चौथा काल नगर में,
गली, मोहल्लों, घर, बाजारों में यश कीर्ति पाई है ।।आज।।

गुरु उपकार कहां तक गाऊं, गान करन स्वर कहां से लाऊं,
तद-गुण मम उर लखे पावन आशा, 'शील' जगाई है ।।आज।।

निशिदिन वन्दे गुरुवर तुमको, सम्यग् बुद्धि देना हमको,
सिद्ध बनो तुम आसन्न भव में, 'शील' भावना भाई है ।।आज।।

शत-शत वन्दन-अभिनन्दन
श्री दिगम्बर जैन संगीत मण्डल, अजमेर [राज,]

शांति देवी के नन्दा..........

तुम्हें सूरज कहूं या चंदा तेरी भक्ति करे ये बंदा
तूने नाम किया है रोशन जग में शांति देवी के नंदा ।।टेर।।

मेरा मन था खाली-खाली छाई थी अजब उदासी
नहीं लगता था मन मेरा, मैंने ध्यान लगाया तेरा
तुझे ध्याते ही खुशियों से, भर गया ये जीवन सारा ।।तूने।।

मैं कब से तरस रही हूं प्रभु दर्शन मुझको दे दो
दर्शन की प्यास बुझाकर फिर चरणों में मुझको ले लो
तुम स्वामी हो इस जग के गुण गाऊं मैं सुखकन्दा ।।तूने।।

कर्मों ने मुझको घेरा अज्ञान का छाया अंधेरा
तू साथी है जग में मेरा मुझे एक सहारा तेरा
तुम दुःखियों के दुःखहारी भक्तों के करुणाकन्दा ।।तूने।।

मै तेरी महिमा गाऊँ भक्ति की ज्योति जगाऊँ
मै शरण तुम्हारे पाऊँ जीवन को पवित्र बनाऊँ
अब भक्त जनों को उबारो मिट जाये कर्म का फन्दा ॥तूने॥

कुमारी अनीता-सुनीता जैन, अजमेर

॥ जय श्री ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥
तपोनिधि, प. पू. मुनि श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज ससंघ
चातुर्मास के सुसमापन पर

(रचियता: भगवान दास जैन रंगवाले, अजमेर)

दोहा

'सुधासिंधु ऋषिराज ये, सुधी सुधाधरवान्।
'विद्यासिंधु आचार्य के, श्रेष्ट शिष्य हैं महान्॥
सानन्द से सम्पन्न भयो, मुनिश्री वर्षाकाल ।
भावोदय भावित करूँ, सुनो गुणी गुणमाल॥

तर्ज.... चौपाई

वर्षायोग ये अनुपम आया, धर्म ध्यान का अलख जगाया ॥
बोलजय बोल 'सुधासागर' की जय बोल ॥टेर॥

परम विरागी बाल ब्रह्मचारी, धर्म शिरोमणि करुणा कारी ॥बोल जय॥
'विद्यासिन्धु'-ज्ञान- सुरसरिता, मुनि 'सुधासागर' दुख हरता ॥बोल जय॥
द्वय क्षुल्लक भी संग पधारे, यथा नाम गुण काज संवारे ॥बोल जय॥
शांतवान 'गम्भीर के सागर', धैर्यवान ये धैर्य के सागर ॥बोल जय॥
ब्रह्मचारी जी 'संजय भैया, छोड़ जिया घर भूल भुलैयां ॥बोल जय॥
बड़भागी 'सोनीजी' की नसियां, जहाँ विराजे जगमन बसियां ॥बोल जय॥
धर्म सभा देखी नहीं इतनी, वाणी मधुर सुबोध सरससी ॥बोल जय॥
दृश्याभास हुआ यहाँ ऐसा, चतुर्थकाल सा समां हो जैसा ॥बोल जय॥
चातुर्मास की महिमा न्यारी, मंगलकरन अमंगल हारी ॥बोल जय॥
क्षुल्लक प्रश्न मंच विस्तारा, श्रोता का श्रुतज्ञान सँवारा ॥बोल जय॥
'दादागुरू' लिखित जिनवाणी, करी प्रकाशित सुन मुनि वाणी ॥बोल जय॥
रक्षा-बन्धन सार बताया, 'रक्षा सूत्र' का चलन चलाया ॥बोल जय॥
आचार्य 'शान्तिसागर' गुरु नायक, मुनि विहार के पथ संचालक ॥बोल जय॥
समाधि दिवस इनका भी आया, गुरु सान्निध्य में पर्व मनाया ॥बोल जय॥
'शिविर' लगा षट्कर्म सिखाये, श्रावक संस्कार सुधराये ॥बोल जय॥
नगर भ्रमण शिविरार्थी कराया, अद्भुत नया इतिहास बनाया ॥बोल जय ॥
शाकाहारी दिवस मनाया, जीवदया प्रति भाव जगाया ॥बोल जय॥
मंत्र दिया 'यह भी जायेगा' नित्य जपे वो सुख पायेगा ॥बोल जय॥
अंध पंथ की व्याधि मिटाते, पंथ नहीं 'पंथ मोक्ष' बताते ॥बोल जय॥
उपसर्गों के संत विजेता, सौम्यभाव समता के प्रणेता ॥बोल जय॥
'विद्वत् सम्मेलन' करवाया 'पितामह' बहुमान कराया ॥बोल जय॥
क्या क्या लिखूँ ? लिखे जो थोड़ा, जो कुछ सुना भाव लिख जोड़ा ॥बोल जय॥

चातुर्मास ये अतिशय कारी, चित्त चमत्कारिक हितकारी ॥बोल जय।
गुरू बिन ज्ञान कहाँते पाऊँ, मैं अल्पज्ञ ज्ञान किम पाऊँ ॥बोल जय॥
'गुरु उपकार' कहाँ तक गाऊँ गुरु सानिध्य नहीं बिसराऊँ ॥बोल जय॥
वर्षा योग समापन बेला, बिखर रहा अजमेर का मेला ॥बोल जय॥
पुन: पधारें भूल न जाना, अजयमेरु नगरी 'गुरुथाना' ॥बोल जय॥
कृपाकरो गुरु 'दास' तुम्हारा, सिद्ध बनें यही भाव हमारा ॥बोल जय॥

सिद्ध नाम सत्य है

श्री मिश्रीलाल जी जैन-गुना

पीछे-पीछे दूर तक, दिख रही जो भीड़ है,
पंछी शाख से उड़ा, खाली पड़ा नीड है ।
सृष्टि सारी देख ले, पर्याय ही अनित्य है,
कि सिंह नाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है ।
आगे-आगे अपनी अर्थी के मैं गाता चलूं,
कि सिद्ध नाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है ॥सिद्ध॥

जिनको मेरे सुख दुख से, कुछ नहीं था वास्ता,
उनके ही कांधो पे, मेरा कट रहा है रास्ता ।
आँख जब मुंदी तो कोई शत्रु है ना मित्र है,
कि सिद्धनाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है ॥१॥

डोरियों से मै नहीं, बंधा मेरा संस्कार था,
एक कफन पर मेरा, रह गया अधिकार था ।
तुम उसे उतारने जा रहे ये सत्य है,
कि सिद्ध नाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है ॥२॥

आपके अनुराग को, आज ये क्या हो गया,
जिस चिता पर चढ़ा, महान् कैसे हो गया ।
जो अनित्य वो ही नित्य, नित्य ही अनित्य,
कि सिद्धनाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है ॥३॥

मैं अरूपी गंध धूल, उड़ गयी थी फूल से,
लहर थी चली गयी, थी दूर मृत्यु कूल से ।
सत्य देख हंस रहा कि जल रहा वह सत्य है,
कि सिद्ध नाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है ॥४॥

आपके ही वंश का, बिछुड़ा हुआ हूं देवता,
आत्म तत्व छोडकर, मैं जगत को देखता ।
ये अनादि काल की, ही भूल का ही कृत्य है,
कि सिद्ध नाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है ॥

❑❑❑

सुधा सिन्धु जो अमृत पीते

'सुधा सिन्धु' जो अमृत पीते, हमने पीकर देखा ।
'विद्यासागर जी' कैसे जीते, हमने जीकर देखा ॥
जिस दिन अपना शिविर लगा था, उस दिन बादल बरस रहे थे ।
मानों शिविर में भर्ती होने, देव लोग भी तरस रहे थे ॥
उनसे अच्छी किस्मत है । ये कितना पुण्य हमारा है,
देव शास्त्र की शरण मिली, और गुरु का मिला सहारा है ॥

देव शास्त्र गुरु पूज्य हमारे, प्यारा धर्म हमारा है ।
इनकी पूजा इनकी रक्षा, ये कर्तव्य हमारा है ॥
इनकी रक्षा कैसे करना, हमें यही बतलाया है ।
प्राण जाये पर धर्म न जाये, हमें यही सिखलाया है ।
गुरुदेव तुम्हारे चरणों में, इतनी कसम बस खायेंगे ॥
दिये हुये जो वचन तुम्हारे, मरते दम तक निभायेगें

रचियता - पंकज कुमार जैन
(नौंती वावा)
351/2 कृष्णा टाकीज के बगल में
सिविल लाइन, ललितपुर (उ.प्र.)

सुधासिंधुस्स विंदू

डॉ. उदयचन्द्र जैन
रीडर-प्राकृत विभाग
सु. वि. वि. उदयपुर (राज.)

जन्मो भवेदि दूध लोभ-ममत्त-रूवे
जन्मेदि धम्म-गुण-पूद-महंत-जादो ।
सो जम्म-जम्म-णर-जम्म पवित्त-पूदं
कुव्वेदि वीरगुण-गाण-सुसंत-विज्जे ॥१॥

सेट्ठी-गुणादु धण-पूरिद रूवचंदो
मंदो ण मंद-धर-धम्म-समत्त-जुत्तो ।
जाएदि णिच्च-जिण-मन्दिर-गत्त-सुद्धं
झाएदि धण्ण-धण-धण्ण-समिद्ध-हेदु ॥२॥

जो जोव्वणे अहिरमेदि धणम्हि णिच्चं
तस्सेव संतिपियए सिरिसंतिदेवी ।
संती-गुणेण अहिसिंचदि अप्प-भत्तं
भत्तं सुभत्ति-गुण-रंजिद-संति-संतिं ॥३॥

जो रूवचंद-वरणंद-विहीण-जादे
सो संति-देवि-गुण-रदो णहु संति-जुत्तो ।
किण्णू संति-सद-भावण-भाव-मुत्तो
ताहे रमेदि णिय-अप्प-ववार-भावे ॥४॥

धम्मे रदा पिय-पदा सददं वि होंति
संतिं सरूव-लहिदुं जिण-सासणम्हि।
गच्छेदि रूव-णिय-रूव-पसंत-कत्तुं
जायादु जाद-जय-बालग-बाल-बालो ॥५॥

सा संतिदेवि-णिय-बालग-दिस्स-दिस्सं
जम्मस्स जम्मसहलं अहिमण्णदे मा ।
बुंदेल-ईसुरयवार-पवार जुत्तो
सो सागरम्हि जिल अतंरभाग-भागे ॥६॥

णामादु जो जयकुमार-कुमार-काले
सामण्ण-सिक्खण-सुबाल-सुबालबोधं ।
गच्छेदि रत्ति रयणीइ च पाठ-सालं
धम्माण सुत्त-दविर्य समयं च सारं ॥७॥

सो लोगिगस्स अहलोगण-लोग-सत्थं
वावार- सिक्खण लहेदि सो सागरम्हि ।
बी काम-काम कमणं हि कमादु कामं
णो जाणदे च लहुभूद जयकुमारो ॥८॥

विज्जाइसागर-मुणिस्स अगम्म-गम्मे
बुंदेलखंड-महिखंड-सुधम्म-जुत्तो ।
तेहिं पहाव-समदाइ -सुणाण-णागे
राजेंति राज-महराज-मुमंत-भावे ॥९॥

विज्जाइवंतमुणिवंत-मंहत-लोए
जाएंति तेसु चरणेसु सुविज्जविज्जं ।
सो बाल-णिम्मल सुधाजयोकुमारो
जाएदि तेसु चरणेसु सुणाण-णाणं ॥१०॥

तं सण्णिगाड-परमं सरसं सुधाए
णाणामिदं च परिपूरिद-अप्प-णाणं ।
आक्किण्णदूण मुणिदूण च तं सुधारं
धारेदि सो जयकुमार-कुमार काले ॥११॥

णाणाविहं चरण-णाण-पहाण-धम्मं
सम्मत्त-दंसण-गुणं पगडं च हेदुं ।
विण्णेय-विण्ण-विद णाण-ममत्त-भावं
पत्थेदि विज्जगुरुसागर-विज्जविज्जं॥॥१२॥

सोम्मो सहावपरिपुण्णग-आइरीयो
आदेसदे महुरभाव-उदत्त-रूवे।
अण्णाइ तं सिरसि धारयमाणा-बालो
धण्णं विधण्णमवि जाद-पबुद्ध हेदुं ॥१३॥

णेणागिरिस्स सुपसिद्ध-सुसिद्ध खेत्तो
तं खेत्त खेत्त-णियखेत्त-सुखेत्त-खेत्तं ।
मुण्णेदि सो जयकुमार-कोमार-काले
दिक्खाइखुल्ल-सुदिक्ख-कुमार-काले ॥१४॥

दिक्खाइ खुल्लग-पदे-गद खुल्लगो सो
लंकेदि तं अवि पदं सुदधम्म-पाठे ।
सो एलगो परमसागर-णाम-लंको
लकं किदं णियपदं समयम्हि रूवे॥१५॥

साहू-पदे गद-सुधा-णिय-अप्प-अप्पे
पूदं किदं अमिद-पूरिद-सिंधु-विज्जं ।
णाणा-सुणाण-समयाण करत्थ-हेदुं
विज्जा-पवित्त-इय सोप-परत्थ-विज्जा ॥१६॥

विज्जामुणीसरगुणे रद-णाण-हेदुं
हिंदी च भास-परभास-विभास-जुत्तं ।
सो अंगरेजि-पद-सिक्खिद-देस-काले
सो पागिदं पयडि:सक्कय-सक्किदं च ॥१७॥

भासासु भास-अवभंस-मणुण्ण-भासं
बुंदेलि-बेलि-सुकुमाल-पदाण-भासं ।
कव्वे रदे च इदिवुत्त-मणोविणाणं
णाए च दंसण-सुदंसण दंमणत्थं ॥१८॥

जोगं च जोग-मणजोग-वयं वि कायं
झाणस्स झाण-विसयाण विमुत्त-हेदुं ।
तेणं विणा ण हु गुणा पवलंति लोए
तुम्हादु जोग-मुणणे सददं पजण्णो ॥१९॥

सिद्धंत-सत्थ-रहस्सं सरसं सुणाणं
रम्मेदि वागरण-सत्थ-पुराण-सुत्ते ।
लोए जणाण पयडिं च कुपच्चयं च
सत्थाण सुत्ति-मण-मुत्ति-पजुत्ति-ताथे ॥२०॥

इत्थं विचिंतयमुणंत-गुणंत-भूदो
चत्ता मुधं मुद-मुदस्स लहेदि साहुं ।
साहुत्तणं चरण-दंसण-साहु-भावे
तम्हा हि सो परसुधं विदरेदि लोए ॥२१॥

विज्जामुणीसर-पदे गद-संति-भावे
सिद्धंत-सत्थ-समयं अमिदं च हेदुं ।
अज्झेदि चिंतदि सदा णिय-अप्प-अप्पं
णिट्ठेदि झादि पडिवाद-पमादएदि ॥२२॥

झाणे णिबज्झसुसुधा किणु सायरम्हि
सव्वे जणे च उद्बोहण-अप्प भावं ।
गामाणुगाम चरमाणसुधामुणी सो
धम्मं पवट्टण-णियप्प: सुधा-सुधीणं ॥२३॥

सो हं सुधीसुध-सुधा-मुणि-सायरो वि
बोहेदि बोहणगबोह-सुबोह-बोहं ।
अप्पप्प-अप्प-णिय-अप्प महप्प-अप्पं
जाणंत माणिद-गदो च सुधा-सुधीओ ॥२४॥

सिंधू-समा गहिर-धीर-सुधामुणी तुं
बिंदूहि सिंधुमणि मोक्ख-विमुत्त-भूदं ।
वंदे सुधं सुध-सुधं गहिदुं वि अम्हे
णम्मीभवा गुणिजणा विमलं लहंति॥२५॥

सुधा-स्तवन

लेखक - विमलचन्द जैन
पाली बाजार, ब्यावर (राज.)

अजस्र सिंधु की अनादि सृष्टि में अविरल धारा बहती है ।
सृष्टि सिंधु में भव्य बोधन को तीर्थंकर करुणा झरती है ॥

काल सिंधु में काल चक्र वश "ऋषभ" नामक उत्तुंग लहर उठी ।
"वर्द्धमान" सिंधु रूप में उसने छू ली धर्म शिखर की गुरु चोटी ॥

नाद सिंधु में "गौतम गणधर" ने द्वादशांग का उद्घोष किया ।
"कुन्द कुन्द" के करुणा सिंधु में भव्य जीवों ने आ स्नान किया ॥

"शांति" सिंधु को "वीर भाव" ने "शिव" पद हेतु पार किया ।
"ज्ञान" सिंधु में "विद्या" वारिधी ने आकर कल्लोल किया ॥

"विद्या" सिंधु में "समय" "योग" वश "क्षमा" "संयम" दि सरितायें आई ।
सुधा सिंधु में अमृत रसास्वादन हेतु जन मेदिनी चली आई ॥

अजयमेरु के लघु सिंधु स्थित् सिद्ध कूट के अतिशय की खबरें आई ।
धर्म सिंधु अब बनी ये नगरी घर-घर सर्वत्र ये चर्चा छाई ॥

सुधा सिंधु के शीतल जल में आलोकन करती "धैर्य" और "गंभीर" सरि ।
महा सिंधु की "विमल" सुसौरभ जड़ चेतन सबने खूब गही ।

□□□

श्री सुधासागर पञ्चकम् स्तोत्रम्

ऋषभदेव वास्तव्यः महेन्द्रकुमारो "महेश" शास्त्री

मित्रयोः संवादः

कोऽयं मित्रवर ! प्रवरकुण्डलो, वैराग्यशांतिदः,
यो सर्वाङ्गमनोहरो विलसति, प्राज्ञः प्रभावीमहान् ॥
रे! रे! जल्पसि किम् मूर्खवच्च मा, ज्ञातम् न किम् भो! त्वया,
सोऽयं ज्ञानचरित्रवासरमणिः साधुः सुधासागरः॥1॥

यस्य ज्ञानविभां विलोक्य विबुधाः सर्वे सदा विस्मिताः,
यः संसारशरीर-भोग-विरत स्त्यागेऽन्तरश्चाभवत् ।
योगी कामजयी प्रचण्डसुभटः शीघ्रम प्रसिद्धो बभौ,
सोऽयं ज्ञानचरित्रवासरमणि, जीयात् सुधासागरः॥2॥

आयान्ति बहवः जनाश्च विबुधाः यस्यान्तिके भक्त्या,
लोहं चुम्बकवत् यथैव हि तथा, चाकर्ष यत्यत्र वै॥
यस्य ज्ञानगुणान् सदैव विबुधाः गायन्ति भक्त्यावरान् ,
सोऽयं ज्ञान चरित्रवासरमणिः स्तुत्यः सुधासागरः॥3॥

यस्य ज्ञानयुतोगुणी च जनकः श्री रूपचन्द्रो महान्,
माता वै सुखशांतिदा च जननी, श्री शांतिदेवी शुभा॥
येनैवात्र हि सागरे च नगरे, प्राप्ता सुविद्यावरा,
सोऽयं ज्ञानचरित्रवासरमणि जीयात् सुधासागरः॥4॥

विद्यासागर सूरिवर्यविबुधात् जग्राह दीक्षाम् वराम्,
शीघ्रम् यो प्रमुखोऽभवत् मुनिगणे, संघे यशस्वी बभौ॥
प्राक्कालादभवत् तथैव स यति जंम्बूकुमारो यथा,
सोऽयं ज्ञानचरित्रवासरमणि, वंद्यः सुधासागरः॥5॥

सुधासिन्धोर्मुनेःस्तोत्रम् पञ्चकम् रचितम् मया॥
महेशाख्येन भावेन, पठन्तु प्रवराः जनाः॥

समाप्त

चतुर्थ खण्ड

अजमेर के आस्था स्थल

प्रस्तुति :

श्री कपूरचन्द जी जैन एडवोकेट
दौलत बाग, अजमेर

अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की

राजधानी

ऐतिहासिक नगरी अजयमेरु (अजमेर)

के

दिगम्बर जैनों के

"आस्था के प्रतीक"

श्री दिगम्बर जैन मंदिरों
की
गौरवमयी विवरणिका

अजमेर के दिगम्बर जैन मन्दिर

मंदिर दिगम्बर जैन धर्म एवं संस्कृति के एक सुदृढ़ आधार स्तम्भ है । ये हमारी सांस्कृतिक एवं सामाजिक धरोहर हैं। प्रतिदिन देव दर्शन हमारी संस्कृति का प्रमुख अंग है । देव दर्शन करना सम्यक रूप से जीवन यापन करने एवं आत्मशुद्धि की ओर अग्रसर होने का अवसर प्रदान करता है । वहीं एक उद्देश्य इस धरोहर की रक्षा भी है । प.पू. सुधासागर जी महाराज ने इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि यद्यपि जैनागम में प्रतिदिन प्रात: देव दर्शन करना आवश्यक है किन्तु आज इससे भी अधिक अहम प्रश्न मंदिर और उनकी संपत्तियों की सुरक्षा का है । हर दिगम्बर जैन व्यक्ति दिन में किसी भी समय मंदिर की छत के नीचे आ जावे तो निश्चित रूप से इस विशाल एवं अमूल्य धरोहर की रक्षा संभव हो सकेगी । ऐसा तब ही संभव होगा जबकि समाज के वर्तमान एवं भविष्य को इस संबंध में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध हो ।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि अजमेर नगर स्थापना काल से ही जैन धर्म एवं संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थल रहा है । अजमेर नगर की स्थापना लगभग 2000 वर्ष पूर्व हुई । गत दो हजार वर्षों में नगर में अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन हुये किंतु उनको लिपिबद्ध किये जाने का प्रयास नहीं किया गया । यही हाल हमारे जिनालयों एवं ऐतिहासिक स्थलों का हुआ। अनेक जिनालयों की स्थापना समय-समय पर हुई उन्हें विध्वंस किया गया । यह अलग विषय है । वर्तमान में अजमेर नगर में निम्नांकित जिनालय/मंदिर हैं ।

(१) श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (गोधा गवाडी) नला बाजार

अजमेर नगर का यह सर्वाधिक प्राचीनतम मंदिर है । इस जिनालय का निर्माण एवं पंच कल्याणक प्रतिष्ठा वीरम जी गोधा ने 24 लाख रूपये लगाकर सं. 998 (1057ई.) में करवाई थी । यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आचार्य माघनन्दि के आचार्यत्व में सुसम्पन्न हुई । इस जिनालय में भगवान पार्श्वनाथ एवं अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाकर विराजमान किया तथा जिनालय को पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर के नाम से विख्यात किया । इस मन्दिर की एतिहासिकता के बारे में दीवान बहादुर हरबिलास जी शारदा ने "अजमेर हिस्टोरिकल एवं डिस्क्रिप्टिव" पृष्ठ 447 पर यह उल्लेख किया है कि जैन मतानुसार "अढाई दिन का झोपडा" जो जैन मंदिर था, उसे शहाबुद्दीन गौरी द्वारा मस्जिद में परिवर्तित कर दिया तब इस मंदिर की मूर्तियां इस मंदिर में लाकर विराजमान की गई । इस मंदिर के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ है तथा इसमें एक वेदी है । इसी मंदिर जी में तीन चौबीसी की एक मात्र भव्य प्रतिमाजी विराजमान है ।

यहां यह भी उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि श्रेष्ठि वीरम जी गोधा ने दिगम्बर जैनियों के लिये इसी समय मोहल्ले का निर्माण करवाया जिसमें सभी जैन परिवार निवास करते थे । इस मोहल्ले को गोधा गुवाडी के नाम से विख्यात किया तथा वर्तमान में भी यह इसी नाम से विख्यात है । इस जिनालय की प्रबंध व्यवस्था श्री बडा धडा पंचायत के पास है ।

(२) श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (बड़ा मंदिर) सरावगी मौहल्ला

सन् 1207 ई. में अजमेर में भट्टारक गद्दी की विधिवत स्थापना हो गई थी । इसी समय इस मंदिर का निर्माण कराया गया । इसी मंदिर जी में अढाई दिन के झौपडा (जो जैन मंदिर था) की मूर्तियां विराजमान है ।

(३) धर्मदास जी गंगवाल का मंदिर-सरावगी मौहल्ला

इस जिनालय का निर्माण श्रेष्ठि धर्मदास जी गंगवाल ने कराया । इसका वृहद पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मिति बैसाख सुदी 5 सं. 1852 (1795 ई.) में करवाया था । इस पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में सैकड़ो मूर्तियां प्रतिष्ठित की गई ।

सेठ साहब की हवेली का चैत्यालय

यह चैत्यालय सेठ साहब की हवेली अनूप चौक की तीसरी मंजिल में अवस्थित है । इस चैत्यालय का निर्माण सेठ साहब श्री जवाहरमलजी ने कराकर मित्ती माह शुक्ला 5 सं. 1905 के शुभ एवं मांगलिक मूहूर्त में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा विराजमान की । यह प्रतिमा जयपुर से मेघराज जी लुहाड़िया की मारफत आई । प्रतिमाजी मिति माह सुदी 4 को अजमेर आई तथा छोटा धडा नागौरी गोठ की नसियां जी में इनका स्वागत हुआ तथा वहीं से प्रतिमाजी को रथ में विराजमान कर जुलूस के साथ हवेली लाया गया । चैत्यालय की प्रबंध व्यवस्था सोनी परिवार द्वारा ही की जाती है । इस चैत्यालय में एक वेदी है

जिसमें तीन प्रतिमायें है । मूल नायक प्रतिमा शांतिनाथ भगवान की है तथा दो प्रतिमायें भगवान आदिनाथ और भगवान महावीर की है । सभी प्रतिमायें अष्टधातु की पदमासन प्रतिमायें है ।

श्री चंद्रप्रभु दिगम्बर जैन चैत्यालय नया बाजार

यह चैत्यालय नया बाजार में बादशाही बिल्डिंग के सामने अवस्थित है । इसकी स्थापना श्री महेन्द्र कुमार जी बोहरा ने अपने स्व:निर्मित भवन में की और चंद्र प्रभु भगवान की प्रतिमा मिति आश्विन शुक्ला 10 सं. 2040 (1983) को विराजमान की ।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन चैत्यालय (डिग्गी बाजार)

इस जिनालय का निर्माण स्वर्गीय श्री मूलचंद जी पुत्र श्री मोतीलाल जी पाटोदी ने करवाया था । उन्होंने अपना निजी भवन स्वेच्छापूर्वक चैत्यालय को प्रदान किया तथा मंदिर में मिती वैसाख शुक्ला 12 सं. 1975 (सन् 1928) को वेदी प्रतिष्ठा कराकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान की । स्वर्गीय श्री मूलचंद जी ने मंदिर की व्यवस्था हेतु वसीयतनामा दिनांक 14.1.1930 द्वारा उनकी स्वयं की हवेली के दो मकानात भी मंदिर को अर्पण किये । इस मंदिर में मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ है । मूलनायक प्रतिमा सहित पाषाण की पांच प्रतिमायें है । प्रारम्भ में वसीयतनामें के अनुसार मंदिर की व्यवस्था किशनलाल जी पुत्र शिवलाल जी सेठी डिग्गी बाजार अजमेर एवं मूलचंद पुत्र श्री रतनलाल जी जैन ब्यावर द्वारा की जाती रही थी । न्यायालय मुन्सिफ पश्चिम द्वारा पारित डिगरी के अनुसार इसकी प्रबंध व्यवस्था हेतु सर्वश्री मुन्नालाल जी [illegible] एवं नथमलजी गंगवाल को नियुक्त किया गया । दोनों का स्वर्गवास हो चुका है । वर्तमान में इसकी प्रबंध व्यवस्था श्री [illegible] सोनी व प्रदीप बोहरा व सुरेश गंगवाल कर रहे हैं ।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (पार्श्वनाथ कॉलोनी) आतेड

इस मंदिर एवं सार्वजनिक सभा भवन के निर्माणार्थ भूमि पूजन तथा कलशाभिषेक समारोह दिनांक 7.2.1988 को सुसम्पन्न किया जाकर शिलान्यास श्री प्रकाशचंद जी दोसी के कर कमलों द्वारा सुसम्पन्न हुआ । इस जिनालय में भगवान पार्श्वनाथ एवं आदिनाथ की प्रतिमाओं को दिनांक 16.9.1988 को विराजमान किया गया । इसी के साथ ही अजमेर में नये जैन मंदिर का शुभारम्भ हुआ । प्रतिमाओं को विराजमान किये जाने के पूर्व विधि विधानानुसार पूजन एवं हवनादि का कार्यक्रम श्री विजयकुमार जी बोहरा द्वारा सुसम्पन्न करवाया गया । इस जिनालय की स्थापना से वैशालीनगर जीवन बीमा निगम कॉलोनी, वैशाली नगर में निवास कर रहे लगभग 300 परिवारों को लाभ हुआ ।

श्री महावीर दिगम्बर जैन जिनालय (मदार गेट)

यह मंदिर मदार गेट के समीप जाटियावास के बाहर अवस्थित है । इस जिनालय का शिलान्यास परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सानिध्य में शुभ मिति मगसर सुदी 1 वि.सं. 2031 शनिवार दिनांक 14.12.1974 को जैन समाज की ओर से सरसेठ सा. श्री भागचंद जी सोनी द्वारा किया गया ।

निर्माण कार्य प्राम्भ हुआ । नीचे की सतह तक का निर्माण कार्य हो चुका था । कतिपय लोगों द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 23.12.1974 द्वारा निर्माण कार्य रूकवा दिया गया । यह वाद ग्यारह वर्ष पश्चात् दिनांक 3.9.1985 को निरस्त हुआ । जिनालय का निर्माण कार्य पुन: दिनांक 16.9.1985 को प्रारम्भ हुआ । तीन माह में भव्य तीन मंजिला जिनालय भवन, जिसका कि क्षेत्रफल 16 फुट चौड़ा तथा 18 फुट लम्बा है, बनकर खड़ा हो गया । उसके पश्चात् वेदी, शिखर तथा अन्य कार्य सुसम्पन्न हुए । सन् 1985 का पर्यूषण समीप था । जाटियावास एवं आस-पास के निवास करने वाले दिगम्बर जैन बंधुओं ने पर्यूषण पर्व में पूजादि का लाभ उठाने हेतु मुख्य हाल के निर्माण होते ही मिती भादवा सुदी 5 सं. 2042 को डिग्गी के मंदिर जी से चंद्रप्रभु भगवान की खड्गासन प्रतिमा लाकर विराजमान की ।

यह जिनालय 16 फुट चौडे तथा 18 फुट लम्बें भूखण्ड पर बना हुआ है । जिनालय का भवन तीन मंजिला है । प्रथम मंदिर तलघर है जो पूजा सामग्री धोने आदि के काम में आता है । इसी तलघर में हैण्डपम्प भी लगा हुआ है । दूसरी मंजिल में मंदिर जी का गर्भगृह तथा मुख्य हाल है । इसी मंजिल में श्वेत संगमरमर की वेदी स्थापित है जिसमें पांच मनोज्ञ जिनबिंब तथा एक यंत्र भी विराजमान है। वेदी श्वेत संगमरमर की है जो मकराना से बनवाकर मंगवाई गई तथा जिसके निर्माण में 21000/- रूपये व्यय हुए । इसी हाल में कांच का अत्यंत सुंदर कार्य है । संपूर्ण जिनालय संगमरमर का बना हुआ है । इस जिनालय की वेदी प्रतिष्ठा

महोत्सव समारोह पं. श्री चंपालाल जी जैन नसीराबाद के आचार्यत्व में बुधवार दिनांक 2.5.1990 मिती बैसाख शुक्ला 8 वीर निर्वाण सं. 2516 वि. सं. 2047 से रविवार दिनांक 6 मई 1990 मिति बैसाख शुक्ला 12 वीर निर्वाण सं. 2516 वि.सं. 2047 तक विभिन्न मांगलिक कार्यक्रमों के साथ सुसम्पन्न हुआ । इस मंदिर का वार्षिक उत्सव प्रतिवर्ष मिती आश्विन कृष्णा 6 को आयोजित किया जाता है जिस रोज कलशाभिषेक का आयोजन होता है । इस जिनालय की प्रबंध व्यवस्था मंदिर समिति द्वारा की जाती है जिसके कि अध्यक्ष श्री पदमचंद जी जैन एवं मंत्री श्री कैलाशचंद जी कासलीवाल है ।

श्री पल्लीवाल दिगम्बर जैन मंदिर कोकिल कुंज

यह मंदिर कोकिल कुंज पाल बीचला श्री नगर रोड पर स्थित है । मंदिर भवन का शिलान्यास शनिवार दिनांक 14.12.1981 को श्रीमती दमवंती देवी पत्नी सेठ रमेशचंद जी पल्लीवाल (मालिक फर्म भैरोलाल कपूरचंद) के कर कमलों द्वारा सुसम्पन्न की गई । मंदिर जी का निर्माण चल रहा था किन्तु श्रावकों की सुविधा हेतु जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा विराजमान की गई तथा प्रथम कलशाभिषेक का आयोजन मिती आसोज बदी 13 सं 2039 दिनांक 15.9.1982 को किया गया । उसके बाद यहां वार्षिक कलशाभिषेक इसी तिथि को होता रहा है । मंदिर की वेदी प्रतिष्ठा एवं रथ यात्रा महोत्सव दिनांक 27 नवम्बर से 30 नवम्बर सन् 1987 को सुसम्पन्न हुआ ।

श्री दिगम्बर जैन जैसवाल मंदिर (चुंगी नाका मदार)

इस जिनालय का शिलान्यास मिति बैसाख सुदी 13 सं. 2044 सोमवार तदानुसार दिनांक 11.5.1987 को प्रातः 9 बजे परम पूज्य 108 उपसर्ग विजयी आचार्य श्री दर्शन सागर जी महाराज तथा संघस्थ ऐलक सकल कीर्ति जी, महावीर कीर्ति जी, नमिसागर जी के सानिध्य में फूलपुर निवासी श्री रामस्वरूप जी व अन्य कोलनायक परिवार (हाल केसर गंज अजमेर) के कर कमलों द्वारा सुम्पन्न हुआ ।

यह मंदिर श्रीनगर रोड नाका मदार में है । यह भव्य मंदिर 500 वर्गगज भूमि पर बना हुआ है । इसके एक बड़े हाल में एक संगमरमर की वेदी है । मूलनायक प्रतिमा भगवान पार्श्वनाथ की है जो काले पाषाण की है । इस जिनालय की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मिती माघ शुक्ला 8 सं. 2049 रविवार दिनांक 31.1.1993 से मिती माघ शुक्ला 14 सं. 2049 शनिवार दिनांक 6.2.1993 तक भव्य कार्यक्रमों के साथ सुम्पन्न हुआ । यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव अजमेर नगर में 200 वर्षों के उपरांत परम पूज्य आचार्य श्री दर्शन सागर जी, उपाध्याय समतासागर जी, मुनि कुलभूषण जी, श्रुतसागर जी, शिवसागर जी एवं क्षुल्लक महावीर कीर्ति जी के सानिध्य एवं वाणीभूषण व्याख्यान वाचस्पति प्रतिष्ठा प्रभाकर संहितासूरी पं. विमलकुमार जी जैन सोरिया टीकमगढ़ के आचार्यत्व तथा प. वर्धमान कुमार जी जैन सोरिया टीकमगढ़ एवं प. पवनकुमार जी शास्त्री दीवान मुरैना के सह आचार्यत्व में सुसम्पन्न हुआ ।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव दिनांक 31.1.1993 को झंडारोहण के साथ प्रारंभ हुआ । दिनांक 1 फरवरी सन् 1993 को निकली सेठ साहब की नसियांजी की आठ सवारियों, अनेको हाथियों, ऊटों, घोड़ों बैंडो तथा 751 सौभाग्यवती इंद्राणियों के मस्तक पर विराजमान मंगल घट कलश शोभायमान हो रहे थे । ऐसी अपूर्व घटयात्रा राजस्थान में पूर्व में देखने में नहीं आई।

श्री दिगम्बर जैन मंदिर-आतेड की छतरियाँ

यह मंदिर आतेड स्थित छतरियों पर है । यहां पर मिती आश्विन शुक्ला 13 सं. 2050 दिनांक 28.10.1993 गुरुवार के दिन चैत्यालय बनवाकर श्री दिगम्बर जैन बड़ा धड़ा पंचायत ने श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित की । प्रतिमा प्रतिष्ठापन्न का कार्य प्रतिष्ठाचार्य श्री कुमुदचंद जी सोनी द्वारा सुसम्पन्न किया गया । प्रतिमा बड़े धड़े मंदिर जी से लाकर विराजमान की गई । प्रतिमा स्थापना से अजमेर में एक नये दिगम्बर जैन मंदिर के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ । प्रतिमा स्थापना प. पूज्य गणधराचार्य कुंथुसागरजी महाराज के अजमेर प्रवास के समय इस स्थल को रिषभगिरी की घोषणा के फलस्वरूप उनके द्वारा निर्देशित मुहूर्त में ही की गई ।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैसवाल जैन मंदिर (बालुपुरा नगरा)

इस जिनालय में वेदी शिलान्यास समारोह दिनांक 19.12.1993 को प्रातः साढे नौ बजे शुभ मुहूर्त में श्री कुमुदचंद जी सोनी के प्रतिष्ठाचार्यत्व में बालुपुरा नगरा में सुसम्पन्न हुआ । निर्माण कार्य चालू है । इस जिनालय का निर्माण होने पर आदर्शनगर एवं नगरा में रहने वाले दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियों को धर्म लाभ होगा ।

श्री नेमीचंद जी जैन का चैत्यालय (पडाव)

इस चैत्यालय की स्थापना श्री नेमीचंद जी जैन पुत्र श्री बंशीधर जी जैन उनेरिया ने अपने बल्लू कैसल स्थित निवास स्थान पर की ।

श्री दिगम्बर जैसवाल जैन मंदिर (चंद्रनगर, अजमेर)

श्री दिगम्बर जैसवाल जैन मंदिर चंद्रनगर ब्यावर रोड़ अजमेर की वेदी प्रतिष्ठा समारोह 9 मई 1989 से 11.5.1989 तक पण्डित चम्पालाल जी जैन के आचार्यत्व में सुसम्पन्न हुई । इस में एकचवरी है । मूलनायक देवाधिदेव आदिनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान की गई समारोह में भव्य रथ यात्रा भी निकाली गई । इस मंदिर का निर्माण अजमेर नगर के प्रतिष्ठित महावीर ट्रांसपोर्ट परिवार ने कराया । यह मंदिर चुंगी चौकी रामगंज के पास स्थित है । इसके साथ ही एक धर्मशाला भी है । इस की व्यवस्था महावीर ट्रांसपोर्ट परिवार के श्री पवनकुमार जी जैन, श्री दिलीप जी जैन एवं उनके भ्रातागण करते हैं ।

श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन जिनालय (सर्वोदय कॉलोनी)

अजमेर नगर के पूर्वी क्षेत्र स्थित शास्त्रीनगर, सर्वोदय कॉलोनी, जवाहरनगर, स्टेट बैंक कॉलोनी, पुलिस लाइन में नगर के विस्तार के साथ-साथ काफी संख्या में दिगम्बर जैन बंधुगणों ने अपने-अपने भवन बनाकर निवास करने लग गये । इन कॉलोनियों से शहर के जिनालय कॉफी दूर पडने लगे । धर्म साधना हेतु जिनालय की आवश्यकता महसूस की गई । अन्तत: दिनांक 20.1.86 को उक्त क्षेत्रों में निवास करने वाले दिगम्बर जैन महानुभावों की तथा समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सभा श्री कपूरचंद जी जैन एडवोकेट की अध्यक्षा में सुसम्पन्न हुई । सभा में जिनालय निर्माण कराये जाने तथा इस हेतु भूमि क्रय करने का निर्णय लिया गया । तथा जिनालय का नाम, श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन जिनालय, रखे जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । भूखण्ड क्रय किये जाने के पश्चात् इस जिनालय का शिलान्यास दिनांक 26.4.1986 को प्रात: साढे सात बजे श्री पूनमचंद जी लुहाडिया के कर कमलों द्वारा सुसम्पन्न हुआ । भूमि पूजन तथा शिलान्यास संबंधी क्रियायें पण्डित चंपालाल जी जैन द्वारा करवाई गई । निर्माण कार्य में प्रगति हुई । सन् 1987 में कार्य काफी हो चुका एतदर्थ धर्म साधना की परेशानी को दूर करने के लिये दिनांक 16.1.1987 को प्रात: 8 बजे भगवान की प्रतिमा विराजमान की गई ।

इस मंदिर में एक बड़ा हाल है जिसमें एक संगमरमर की वेदी है । इस वेदी की नींव का मांगलिक शिलान्यास दिनांक 27.12.1991 मिति चेत कृष्णा सप्तमी शुक्रवार को प्रात: 8.15 से 10.15 बजे पं. प्रवर श्री चंपालाल जी जैन नर्सीराबाद के सानिध्य में सम्पन्न हुआ । विराजमान किये जाने वाली जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा अजमेर नगर में दिनांक 31.1.1993 से 6.2.1993 तक सम्पन्न हुई पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में हुई । मंदिर तथा वेदी प्रतिष्ठा का भव्य आयोजन दिनांक 2.12.1994 से 4 दिसम्बर 1994 तक विविध मांगलिक कार्यक्रमों के साथ सुसम्पन्न हुआ । इस मंदिर में कुवां है तथा व्यवस्था उक्त कॉलोनियों में निवास करने वाले व्यक्तियों की समिति के हाथ में है । जिसके अध्यक्ष श्री कैलाशचंद जी पाटनी तथा मंत्री श्री छीतरमल जी गदिया है ।

नम्रता और अकड

वृक्षों में भी जो वृक्ष नम्र होता है वह अच्छा समझा जाता है और जो अकडा रहता है वह ठूंठ कहलाता है । नम्र वृक्ष में फल भी रसीले और मीठे होते हैं, जबकि अकडे रहने वाले वृक्ष के फल कटुक और खराब होते हैं ।

श्री सिद्धकूट चैत्यालय अजमेर
(सेठ साहब की नसियां - सोनी जी की नसियां)

लेखक: कपूरचन्द जैन एडवोकेट

राजस्थान की सांस्कृतिक एवं पोराणिक हृदय स्थली अजयमेरु नगरी में विश्व विख्यात सोनी परिवार के अग्रणीय, धर्मात्मा एवं भव्यात्मा, रायबहादुर श्रेष्ठि श्रीमूलचन्द जी सोनी ने "श्री सिद्धकूट चैत्यालय अजमेर" नाम का एक भव्य एवं विशाल जिनालय का निर्माण करवाया । इस जिनालय में स्वर्णिम अयोध्या नगरी आदि होने से इसे 'स्वर्ण मंदिर' तथा करौली के लाल पत्थरों से निर्मित होने के कारण "लाल मंदिर" और सेठ मूलचन्द जी सोनी द्वारा निर्माण कराये जाने के कारण सेठ मूलचन्द जी की नसियां तथा सोनी परिवार के वंशजो द्वारा समय समय पर निर्माण, विस्तार एवं संवर्द्धन कराये जाने के कारण इसे 'सेठ साहब की नसियां' तथा 'सोनी जी की नसियां' नाम से भी जाना जाता है ।

इस विशाल भव्य जिनालय की नींव का मुहुर्त राय बहादुर सेठ मूलचन्द जी सोनी ने मिती आसोज सुदी 10 सं 1921 दिनांक 10 अक्टूबर सन् 1864 को विधिवत भूमि पूजन कर सुमंगल वेला में सुसम्पन्न किया । इसके निर्माण में उनका अभूतपूर्व उत्साह रहा । जैन शास्त्रानुसार जयपुर के पंडित सदासुखजी कासलीवाल का निर्देशन एवं स्वयं सेठ साहब की देखभाल और रुचि एक उच्च कोटि के शिल्पी से कम नहीं थी और इनके साथ जुडे हुए थे मुनीम शिवराज जी सेठी । इन सबको देख-रेख में कुशल कारीगरों द्वारा नसियां जी का निर्माण इस प्रकार व्यवस्थित किया गया कि लगभग एक वर्ष में इसका एक भव्य भवन (मूल भाग) बनकर तैयार हो गया ।

सेठ मूलचन्द जी सोनी द्वारा इस जिनालय की भव्य वेदी में भगवान आदिनाथ की पदमासन प्रतिमा मिती ज्येष्ठ शुक्ला 2 सं. 1922 दिनांक 26 मई सन् 1865 के पावन एवं मांगलिक मुहुर्त में एक भव्य महोत्सव सुसम्पन्न कराकर प्रतिष्ठापित की गई तथा जिनालय का नाम 'श्री सिद्धकूट चैत्यालय' रखा गया । इस प्रतिमा पर उत्कीर्ण प्रशस्ति से यह तथ्य भी स्पष्ट है कि इसकी प्रतिष्ठा सेठ साहब श्री मूलचन्द जी सोनी के ही द्वारा रतलाम में मिती फाल्गुन सुदी 1 सवंत 1921 को आयोजित पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में करवा ली गई थी । यह प्रतिमा श्वेत पाषाण की 1-3/4 फीट ऊंची है ।

राय बहादुर मूलचन्द जी सोनी ससंघ संवत 1925 में इंदौर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में सम्मिलित हुए । उन पर इस पंच कल्याणक विधि के साक्षात दर्शन का अभूतपूर्व प्रभाव पडा और उनके मन में विचार आया कि पंच कल्याणक विधि मेले के रूप में केवल पांच दिन ही देखी जाती है । यदि इन पंच कल्याणक के दृश्यों को सुस्थिर बना दिया जावे तो यह अधिक प्रभावक और सुस्थिर हो सकते हैं । इस पुनीत भावना को मूर्तरूप देने हेतु आपने जयपुर से कुशल कारीगरों एवं शिल्पियों को बुलवाया तथा सिद्धकूट चैत्यालय में मूल नायक श्री आदिनाथ भगवान की जन्मभूमि अयोध्यानगरी तथा उनके पंच कल्याणकों की स्वर्णिम प्रतिकृतियों की रचना का कार्य संवत 1927 में पंडित सदासुख जी कासलीवाल की देख रेख में जयपुर में ही प्रारम्भ किया गया । लगभग 25 वर्षों में जयपुर के सर्वोतम कारीगरों के अथक परिश्रम एवं उच्च कोटि की कला के परिणाम स्वरुप संवत 1951 में इस स्वर्णिम अयोध्या नगरी एवं भगवान आदिनाथ के पंचकल्याणकों सम्बन्धी रचना का कार्य जम्बूद्वीप-पांडुकशिला आदि सहित सुसम्पन्न हुआ ।

पंच कल्याणक रचना का कार्य सम्पूर्ण होने पर सम्पूर्ण रचना को 'रामनिवास बाग स्थित अल्बर्ट हाल म्यूजियम' में विधिवत सजाया गया तथा मिती चैत्र बदी 2 सं. 1952 से चैत्र बदी 12 सं. 1952 सन् 1895 में दस दिवसीय प्रदर्शन एवं विशाल मेला तथा समारोह जयपुर में सुसम्पन्न हुआ । इस रचना को देखने तथा समारोह मे सम्मिलित होने के लिये जयपुर के तत्कालीन नरेश महाराजा सवाई माधो सिंह जी स्वयं दो बार पधारे तथा समारोह की समस्त व्यवस्था जयपुर स्टेट द्वारा सुसम्पन्न की गई। जयपुर के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व समारोह हुआ जिसमें लगभग दो लाख व्यक्ति सम्मिलित हुए । जयपुर स्टेट द्वारा इस भव्य रचना को कर मुक्त किया गया तथा अजमेर तक पहुंचाने की पूर्ण सुरक्षात्मक व्यवस्था की । इन तथ्यों का विस्तृत विवरण जयपुर नरेश द्वारा प्रदत्त प्रशस्ति से स्पष्ट है ।

इस स्वर्णिम रचना को अजमेर बंद पेटियों मे लाया गया । इस हेतु विशेष भवन का निर्माण संवत 1948 में प्रारम्भ किया जो नौ वर्षों में सम्पूर्ण हुआ । भवन निर्माण के पश्चात् मिती फाल्गुन बदी 5 संवत 1957 के शुभ मुहुर्त में इस महान एवं अपूर्व रचना को भवन की ऊपरी मंजिल में विराजमान किया गया ।

इस रचना के प्रतिष्ठापित हो जाने के कारण अजमेर को पुष्कर और दरगाह के साथ-2 जैन तीर्थ की महत्ता भी प्राप्त हुई । यह रचना भगवान आदिनाथ के जन्म स्थल अयोध्या से संबंधित होने के कारण इसे 'अयोध्या नगरी' कहा जाने लगा और आज भी यह इसी नाम से विख्यात है ।

अयोध्या नगरी एवं पंच कल्याणक रचना

अयोध्या नगरी एवं उसमें स्थापित पंच कल्याणक रचना श्री सिद्धकूट चैत्यालय का सबसे प्रमुख एवं आकर्षक भाग है। अयोध्या नगरी का निर्माण मुख्य मंदिर के पीछे के भाग में किया गया है । यह दो मंजिला भवन है तथा जन साधारण के लिये खुला है । इस नगरी एवं इसमें स्थित स्वर्णिम रचना को देखते ही मंत्र मुग्ध होना स्वभाविक है । वास्तव में यह रचना अपने आप मे एक अनूठी रचना है । इस रचना के समकक्ष विश्व में कहीं भी ऐसी रचना नहीं है । विश्वभर में केवल मात्र इस जिनालय में ही यह स्वर्णिम प्रतिष्ठित पंच कल्याणक रचना है जो इनके निर्माताओं एवं उनके परिवार एवं वंश की गौरवशाली धार्मिक परम्पराओं का यशोगान करती हुई जैन धर्मावलम्बियों का भक्ति स्थल है ।

अयोध्या नगरी का भवन

मुख्य मंदिर के पृष्ठ भाग में अयोध्या नगरी के विशाल भवन का निर्माण राय बहादुर सेठ मूलचन्दजी ने संवत 1948 में प्रारम्भ किया । इस विशाल भवन की भूतल में लंबाई 89 फुट व चौडाई 64 फुट तथा ऊंचाई 92 फीट है इस भवन की विशालता, सुन्दरता तथा भव्यता का वर्णन लेखनी से करना संभव नहीं है । प्रत्यक्ष में देखने से यह प्रमाणित हो सकता है कि इसके निर्माताओं का कितना विशाल हृदय था । कैसी भव्यात्माएं थी जिन्होंने इसके निर्माण में विपुल द्रव्य का तो सदुपयोग किया ही था अपितु अपनी सारी सुख सुविधायें इसके लिये समर्पित कर दी थी । यह भवन अजमेर में सबसे ऊंचा भवन है । यह यद्यपि दो मंजिला है किन्तु इसका निर्माण इस प्रकार से हुआ है कि चार मंजिल दिखाई देते है । इस भवन के शीर्ष में एक विशाल गुम्बज के अतिरिक्त आठ अन्य गुम्बज है तथा चहुं ओर कलात्मक छतरियाँ बनी हुई है । भवन के सामने वाले भाग में झरोखा एवं इसके ऊपर विशाल छतरी शोभायमान है । गुम्बज एवं छतरीयां कलात्मक एवं आकर्षक है जिनके ऊपर स्वर्ण कलश उनकी शोभा को द्विगुणित करते हैं । इस नगरी के चारों ओर 10 फीट ऊंचे व 6 फीट चौडे दरवाजे लगे हुए हैं । ये दरवाजे तीनो मंजिलों में ही लगे हुए हैं तथा दोनों मंजिलो के चारों ओर भव्य एवं कलात्मक कटहरे हैं । जिनकी कला अनुपम है। इस भवन का ऊपरी भाग करौली के पत्थर का बना हुआ है ।

इस भवन के ऊपर वाली मंजिल में सुमेरु व तेरह द्वीप एवं समुद्रों की रचना अयोध्यानगरी व पंच कल्याणकों का दिग्दर्शन स्वर्ण खचित मांडनो द्वारा किया गया है । छत पर कांच व सोने का काम है । छत से देवों के विमान लटक रहे हैं जो तीर्थंकर के पांचो कल्याणकों में उत्सव मनाने आ रहे हैं । इसकी ऊपर वाली छत अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक है। इसमें श्वेत विदेशी गोले हैं । देवों के विमानों को इस प्रकार बनाया और लगाया गया है कि अधर लटके हुए हैं और विमानों में बैठे देव देवियां वास्तव में आकाश मार्ग में विचरण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं ।

अयोध्या नगरी

अयोध्या नगरी के मध्य में भगवान् ऋषभ कुमार का महल है जो 12 फीट ऊंचा एवं 4-1/2 फीट चौडा है यह महल तीन मंजिला है । एक मंजिल में भगवान ऋषभदेव राज दरबार कर रहे हैं, दूसरी मंजिल में इन्द्र एवं देवगण आदि को नृत्य करते हुए दिखलाया गया है । इसी मंजिल व भवन में नीलांजना को नृत्य करते हुए दिखाया गया है ।

भगवान के महल के दाहिनी ओर उनके पिता महाराजा नाभिराय का दो मंजिला महल है । ऊपर की मंजिल में शयनागार है और नीचे की मंजिल में राज्य सभा है । इसी प्रकार बांयी ओर भगवान की माता का महल है जो दो मंजिला है । ऊपर की मंजिल में भगवान् की माता द्वारा 16 स्वप्न देखना दृष्टांकित है तथा नीचे की मंजिल में बालक भगवान् का जन्म होता बताया गया है ।

अयोध्या नगरी के सुदृढ परकोटे, जिनालय, बाजार, वेदिकाएँ, पुष्प वाटिकाओं आदि का सजीव निर्माण-चित्रण है । अयोध्या नगरी के चारों कोने के चार महल 3-3/4 फीट ऊंचे व 2-3/4 फीट लंबे व 2 फीट चौड़े हैं । बाकी अन्य आवासीय गृह कुछ छोटे हैं । विभिन्न भवनों एवं महलों पर उनके अधिपति कोई अध्ययनरत हैं । कोई संगीत सुनने में तो अन्य धर्म चर्चा में निमग्न दिखलाई दे रहे हैं । नीचे मुख्य दरवाजे पर संतरी पहरा दे रहे हैं । नगरी मे जगह-जगह सुंदर वृक्ष खडे हैं और मनोहारी पुष्प वाटिकाएँ हैं । नगरी के चारो ओर कोट बना हुआ है , जिसमें चारों दिशाओं में चार दरवाजे हैं और उन पर संतरियों का पहरा है । कोट के चारों तरफ भगवान् के जन्म कल्याणक की सवारियां जा रही है ।

जन्म कल्याणक

इस रचना में माता द्वारा सोलह स्वप्नों का देखना, माता की 56 कुमारी देवियों द्वारा विभिन्न उपकरणों को धारण कर सेवा करना, भगवान का जन्म, भगवान के जन्म होने पर इन्द्रो के सिंहासनों का कम्पायमान होने से उन्हें भगवान् के जन्म को सूचना प्राप्त होना, सौधर्म इन्द्र सहित समस्त इन्द्रों एवं देवो द्वारा आकाश मार्ग से अयोध्या नगरी में भगवान के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिये प्रस्थान, सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी द्वारा राजमहल में प्रवेश, इन्द्राणी द्वारा प्रसुति गृह में मायावी बालक को रखकर बालक भगवान् को लाकर सौधर्म इन्द्र को सौंपना, इन्द्राणी द्वारा नृत्य, सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी का ऐरावत हाथी पर भगवान् को लेकर बैठना, राजसी वैभव एवं ठाठ बाट से विशालतम जुलुस का निकलना, तथा अयोध्या नगरी की तीन प्रदक्षिणा करना दिग्दर्शित किया गया है । इन दृश्यों के अतिरिक्त इन्द्र द्वारा क्षीर सागर के जल से बालक भगवान् को सुमरु पर्वत पर ले जाकर बालक भगवान् का 1008 कलशों से अभिषेक करना सुमेरु पर्वत से क्षीर समुद्र तक इन्द्रों एवं देवों की पंक्ति जुलुस का वापिस अयोध्या नगरी जाना, बालक को उनके पिता को सोपना तथा इन्द्र द्वारा तांडव नृत्य किया जाना भी दिग्दर्शित किया गया है ।

संसार की असारता का भान

उक्त सूक्ष्मतम दृश्यों के साथ 2 ऋषभ कुमार का राज्याभिषेक, इन्द्र द्वारा उनके दरबार में नीलाजंना, अप्सरा का नृत्य आयोजित करना, नृत्य के मध्य नीलाजंना का देहत्याग उसी क्षण इन्द्र द्वारा मायावी नीलाजंना का नृत्य करवाना, तथा ऋषभ कुमार को संसार की असारता का आभास होने के दृश्य अति सुन्दरतम एवं मार्मिक ढंग से दिग्दर्शित किये गये हैं ।

तप कल्याणक-प्रयाग का दृश्य

ऋषभ कुमार की जीवन की समस्त घटनाएं अयोध्या नगरी में घटित हुई । भगवान् आदिनाथ संसार की असारता का ज्ञान होने के पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्य सौंपकर 4000 राजाओं सहित वन को प्रस्थान करते हैं । इस दृश्य में इन्द्रों एवं देवों द्वारा ऋषभदेव को पालकी मे बैठाकर गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम-प्रयाग की ओर ले जाना दर्शाया गया है। इसके पश्चात् अक्षयवट के नीचे ऋषभदेव द्वारा समस्त वस्त्राभूषणों को त्याग कर दिगम्बर वेष धारण करना, केश लोच करना, कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ होने के दृश्य अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावी ढंग से दिग्दर्शित किये गए हैं ।

हस्तिनापुर नगरी एवं भगवान् का प्रथम आहार

हस्तिनापुर नगरी इसकी तीसरी रचना है । इसमें समस्त महल एवं भवन स्वर्णमयी है । एक ओर महाराजा श्रेयांस का राज प्रसाद है । नगरी में बाजार, वापिकाएें, पुष्प वाटिकाओं का सजीव चित्रण एवं दिग्दर्शन है । भगवान् आदिनाथ एक वर्ष की तपस्या के बाद हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान करते हैं जहां हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस के यहां अक्षय तृतीया (बैशाख शुक्ला तृतीया) के दिन इक्षु रस का भगवान् का आहार होना बताया गया है ।

केवल ज्ञान कल्याणक एवं समवसरण रचना

चोथी रचना में भगवान् आदिनाथ को केवल ज्ञान प्राप्त होने का दृश्य दिखलाया गया है । समवसरण रचना के मध्य गंध कुटी पर भगवान् विराजमान है । चारो दिशाओं में 12 सभागार हैं जिसमें देव, मनुष्य पशु पक्षी बैठकर धर्मोपदेश सुन रहे हैं । भगवान् ऋषभदेव की दिव्य ध्वनि खिरने तथा भव्य जीवों को संसार से छुटकारा प्राप्त करने हेतु समीचीन धर्मोपदेश देने का दृश्य है ।

मोक्ष कल्याणक-स्वर्ण कमलों की रचना एवं कैलाश पर्वत

जैन शास्त्रों के अनुसार केवल ज्ञान के उपरान्त तीर्थंकरो का आकाश में गमन होता है । इस विहार के समय इन्द्र उनके चरणों के नीचे 225 स्वर्ण कमलों की रचना करता है ।

यह पांचवी रचना है । इस रचना में कैलाश पर्वत एवं स्वर्ण कमलों की रचना का दिग्दर्शन किया गया है । यह गिरीराज बहुत ही सुन्दर बना हुआ है । इसमें नदी, नालों झरनों का बहना, जीव जन्तुओं का विचरण, गुफाएँ तथा उनमें शेर बघेरों का होना अनेक मुनियों एवं तपस्वियों का ध्यानस्थ मुद्रा में होना बतलाया गया है । इस पर्वत के ऊपरी भाग में सगर चक्रवर्ती द्वारा निर्मित 72 जिनालयों तथा उसके साठ हजार पुत्रों द्वारा पर्वत के चारों ओर बनाई गई खाई का दिग्दर्शन किया गया है । यह भगवान् के मोक्ष का स्थान है ।

इसी भवन के नीचे की मंजिल में जिनेन्द्र भगवान् की शोभा यात्रा में निकाले जाने की स्वर्णिम सवारियाँ रखी हुई हैं। इन सवारियों में दो श्वेत अश्वों का स्व-यंत्र चालित स्वर्णिम रथ, दो बैलों का रथ, तीन घुमटी का गज रथ, भव्य एवं विशाल ऐरावत हाथी तथा अन्य विभिन्न हाथियों सहित लगभग बारह सवारियों रखी हुई हैं ।

इन रचनाओं को देखने के लिये चारों तरफ बहुत ही सुन्दर दरवाजे हैं इनमें 10 फुट ऊंचे और 6 फुट चौडे कलईदार काँचों का उपयोग किया गया है जो सब विदेशी कांच है । बाहरी दरवाजों और अन्दर के दरवाजो के मध्य 10 फीट चारों ओर गेलरी है । जिसमें दर्शक चारों ओर से इस भव्य रचना के दर्शन करते हैं । इस भवन के पूर्व और पश्चिम की ओर सीढियाँ बनी हुई हैं । जिनमे से पूर्व की ओर की सीढियों से दर्शक अयोध्या नगरी में प्रवेश करते हैं और पश्चिम की ओर की सीढियों से दर्शक वापस आते हैं ।

यद्यपि इस विशाल जिनालय के अति आकर्षक उक्त भाग के निर्माण का श्रेय राय बहादुर सेठ मूलचन्दजी सोनी को है तथापि उनके उत्तराधिकारीयों ने भी इस क्रम में उत्तरोत्तर वृद्धि करने में किसी प्रकार की कमी नहीं रखी और यह क्रम अब भी चालू है । राय बहादुर सेठ मूलचन्द जी के सुपुत्र राय बहादुर नेमीचन्द जी ने नसियां में भव्य बारहदरी का निर्माण कराकर उसका विस्तार ही नहीं किया अपितु इसकी भव्यता में और चार चांद लगा दिये । राय बहादुर सेठ नेमीचन्द जी के सुपुत्र रायबहादुर टीकमचन्दजी ने गर्भ गृह के भीतरी हाल का सोवर्णयकन से मंडन किया जो अत्यन्त ही कलापूर्ण है और दर्शनार्थियों के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोडे बिना नहीं रहता ।

मानस्तम्भ

परमपूज्य तपस्वी मुनिराज 108 चन्द्रसागर जी महाराज की धर्मोपदेशना से नसियाँ जी के प्रांगण के मध्य में राय बहादुर सेठ टीकमचन्दजी सोनी द्वारा मिती मंगसर सुदी 6 संवत 1990 के शुभ दिन विशाल मानस्तम्भ का शिला रोपण किया गया किन्तु इसका निर्माण उनके पुत्र सर सेठ भागचन्दजी सोनी द्वारा कराया गया । इसके निर्माण में तीन वर्ष लगे । यह मानस्तम्भ 83 फुट ऊँचा विश्व में सबसे ऊँचा मानस्तम्भ है । इस मानस्तम्भ का प्रतिष्ठा महोत्सव मिती ज्येष्ठ शुक्ला 10 सं. 2010 सोमवार दिनांक 22.6.1953 की पावन बेला में सुसम्पन्न हुआ और चैत्यालय की मूलवेदी मे आदिनाथ भगवान का महान बिंब विराजमान किया गया तथा मानस्तम्भ के शिरोभाग में चार जिन बिंब आदिनाथ, चन्द्र प्रभु, शांतिनाथ, और महावीर भगवान् के विराजमान किये। इस मानस्तम्भ के चारों और श्वेत वर्ण हाथी अपनी अम्बारी सहित ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसी उत्सव में जा रहे हों । मानस्तम्भ का वर्ण श्वेत है ।

सरस्वती भंडार

इसी श्रृंखला में सर सेठ साहब श्री भागचन्दजी सोनी ने प. पू. आचार्य विद्यासागरजी की सत्प्रेरणा से मिती मंगसिर सुदी 10 सं. 2031 रविवार सन् 1974 को सरस्वती भवन की संस्थापना की । इस सरस्वती भंडार में स्वर्णिम लेखनी तथा ताडपत्रों के ग्रन्थ भी उपलब्ध है । यह सरस्वती भंडार राजस्थान के प्रमुख शास्त्र भंडारो में अपना स्थान रखता है।

इस नसियां जी में पांच द्वार बनाए जाने की योजना थी । वर्तमान मे चार द्वार पश्चिम की ओर है एक उत्तर दिशा में है । उत्तर दिशा वाला द्वार मुख्य द्वार है । जो सिंह द्वार है । ये सभी द्वार करोली के लाल पत्थर के हैं । स्थापत्य कला की दृष्टि से सिंह द्वार अति कलात्मक ढंग से निर्मित किया गया है । इस द्वार की ऊंचाई 28 फीट तथा चौडाई चौदह फीट है । इसके ऊपर कलात्मक तीन छतरियां बनी हुई हैं । सिंह द्वार के बाहर दोनों और गोखडे हैं तथा उनके ऊपर झरोखे हैं।

मंदिर के भीतर स्थित संगमरमर की जैन मूर्तियों की कलात्मकता, बरामदों का स्थापत्य, सौंदर्य और अयोध्या नगरी का शिल्प अत्यन्त ही मनोहर मुग्धकारी है । इस अनुपम, मनोज्ञ एवं विशाल जिनालय के प्रेरणा स्त्रोत जयपुर के पं. सदासुख जी कासलीवाल थे । यहां हर स्थल जैन पुरातत्व के अनुसार तथा श्रीमद् जिनसेनाचार्य रचित आदि पुराण के आधार पर निर्मित है।

इस विशाल जिनालय का निर्माण 10 अक्टूबर सन् 1864 में रायबहादुर मूलचन्द जी सोनी ने कराया था। 26 मई 1865 को श्री आदिनाथ भगवान् की मूर्ति मध्य वेदी में स्थापित की गई। सन् 1870 में अयोध्यानगरी और भगवान् के पंच कल्याणक रचना निर्माण की योजना बनी। सन् 1895 में रचना को इस जिनालय के पृष्ठ भाग में स्थापित किया गया। इसके बाद राय बहादुर नेमीचन्द जी ने मंदिर के चारों ओर संगमरमर का विशाल बरामदा बनवाया। उनके पुत्र रायबहादुर टीकमचन्द जी सोनी ने पूरे मंदिर की छत ऊँची करवा कर स्वर्ण एवं कांच की मिली जुली चित्रकारी करवाई। उन्होंने ही मानस्तम्भ की नींव डलवाई। तत्पश्चात इनके पुत्र सर सेठ श्री भागचन्द जी सोनी ने 83 फुट ऊँचा मानस्तम्भ बनवाया तथा दिनांक 22 जून 1953 को शुभ अवसर पर धार्मिक समारोह का आयोजन कर इसकी प्रतिष्ठा सुसम्पन्न करवाई।

इस जिनालय के वर्तमान प्रन्यासी सर सेठ साहब के सुपुत्र श्री निर्मलचन्दजी सोनी, सुशीलचन्दजी सोनी तथा उनके पौत्र गण श्री प्रमोदचन्द जी, सुदर्शन जी एवं सुकोशल जी सोनी हैं। वर्तमान प्रन्यासी गण भी इस जिनालय के विस्तार एवं भव्यता की अभिवृद्धि करने हेतु कटिबद्ध हैं। इस क्रम में हस्तिनापुर नगरी, समवशरण, स्वर्ण कमल, कैलाश पर्वत को सुव्यवस्थित रूप से प्रतिस्थापित किये जाने तथा वर्तमान बरामदे का और विस्तार करने की योजना बन चुकी है।

यहाँ यह उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि सन् 1995 में इस भव्य जिनालय के इतिहास में एक नवीन अध्याय का सूत्रपात होगा। इस वर्ष अयोध्या नगरी की स्थापना का शताब्दी समारोह के साथ 2, 83 फुट उत्तुंग मानस्तम्भ का महा मस्तकाभिषेक, सर सेठ भागचन्द जी सोनी स्मृति ग्रन्थ का विमोचन तथा उक्त योजनाओ का शिलान्यास आदि कार्यक्रम सुसम्पन्न होने की पूर्ण आशा है।

❑❑❑

श्री महापूत जिनालय

श्री मद्‌भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत महापुराण में जिस प्रकार वैभवशाली श्री महापूत जिनालय का वर्णन किया गया उसी के अनुरूप सुन्दर भव्य एवं अनुपम श्री महापूत जिनालय का निर्माण अजमेर में मूलचन्द सोनी मार्ग सरावगी मौहल्ला में जैन जगत के सुप्रसिद्ध सोनी परिवार के अग्रज श्रेष्ठी श्री जवाहरमल जी मूलचन्द जी सोनी द्वारा करवाया गया।

संवत 1905 में श्रेष्ठि श्री मूलचन्द जी सोनी का संघ सहित सम्मेद शिखर जी की यात्रा करके वापिस अजमेर पदार्पण हुआ। वापिस लौटते समय संघ सहित जयपुर पहुंचे तब पं. सदासुख जी कासलीवाल ने एक सुवर्णमयी समवशरण रचना का निर्माण कराने का उन्हें सदुपदेश दिया। पंडितजी का सदुपदेश एवं श्रेष्ठि श्री मूलचन्द जी सोनी की अमित धर्म रूचि ने भारी कांचन योग का कार्य किया। तत्काल विश्वस्त मुनीम श्री शिवराज जी सेठी को इस पुनीत कार्य के लिये नियुक्त किया और इसका निर्माण पं. सदासुख जी कासलीवाल की देखरेख में प्रारम्भ हुआ। समवशरण के निर्माण के साथ-साथ इसे विराजमान करने के लिये भव्य जिनालय की आवश्यकता भी प्रतीत हुई। कालान्तर में यही भावना महापूत जिनालय के रूप में फलित हुई। उपलब्ध रेकार्ड से यह स्पष्ट है कि सेठ सा. श्री जवाहरमलजी मूलचंदजी ने मंदिर निर्माण हेतु मिती चैत्र शुक्ला 1 सं. 1908, भादवा बदी 4 सं. 1908 तथा श्रावण बदी 14 सं. 1910 को जमीनें खरीदी। तथा इस जिनालय की नींव का शुभ मुहूर्त मिती मगसर सुदी 10 सं. 1910 को लगाकर निर्माण कार्य का शुभारंभ किया। जयपुर में समवशरण जी बन चुके थे। मंदिर जी मे मूल नायक श्री सुपार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा जयपुर से ही लाई गई थी। बड़े समारोह के साथ प्रतिमा जी और समवशरण रचना का अजमेर में प्रवेश हुआ। मंदिर जी की प्रतिष्ठा, प्रतिमा स्थापन एवं समवशरण रचना की स्थापना मिती बैसाख सुदी 12 वि.सं. 1912 तदनुसार दिनांक 29.4.1855 रविवार को सुसम्पन्न हुई। जिनके विधि विधान पं. सदासुख जी कासलीवाल द्वारा कराये गये। इन सभी तथ्यों के संबंध में मंदिर जी के मुख्य द्वार पर लगा हुआ शिला लेख सुस्पष्ट है।

स्वस्ति श्री यह जिनालय सुप्रतिष्ठित स्थिर मूलनायक श्री 1008 श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र का अजमेर में, समवशरण रचना स्थापित होने के अर्थ जैन दिगम्बर मूल संघ सरस्वती गच्छ बलात्कारगण श्री कुंद कुन्दाचार्य आम्नाय तेरापंथ सम्प्रदाय श्रावक धर्म खंडेलवाल कुल सोनी गोत्री दासानुदास श्रेष्ठी जवाहरमल तत्पुत्र मूलचन्द सुगनचन्द अरु फूलचन्द पुत्र श्री मूलचन्द के इन्होंने सवाई जयपुर निवासी भाई सदासुख जी कासलीवाल का उपदेश सुनकर श्रीमती विक्टोरिया महारानी के राज्य मे लार्ड केनिंग साहब बहादुर गवर्नर जनरल हिन्दुस्तान, सर हेनरी लारेंस साहब बहादुर एजेन्ट गवर्नर जनरल राजपूताना, डिक्सन साहब बहादुर कमिश्नर अजमेर

[illegible] के समय में तारीख 29 अप्रैल सन् 1855 ई. वि. सं. 1912 वैसाख सुदी 12 रविवार [illegible] मंगल, [illegible] [illegible] मुहुर्त में मंगलगान नृत्य वादित्र महामहोत्सव पूर्वक कलश स्थापन ध्वजा रोपणादि मंदिर प्रतिष्ठा सहित करायी । इस जिनालय कुं. महापूत जिनालय नाम कर विख्यात किया ।

इस जिनालय में मूल वेदी मे 1008 श्री सुपार्श्वनाथ भगवान विराजमान किये गए । बड़ा भारी समारोह हुआ । इस अवसर पर बाहर से भारी संख्या में दर्शकगण आये थे । उनके साथ ही समस्त अजमेर के साधर्मियों को प्रीतिभोज दिया गया था और नगर के ब्राह्मणों को एक-एक कलदार एवं एक सेर खांड दक्षिणा में भेंट दी गई थी ।

यह भव्य तीन मंजिला जिनालय करौली के लाल पत्थरों का बना हुआ है इसके विशाल गुम्बज, कठहरे आदि बहुत ही कलात्मक हैं । मन्दिर की दूसरी मंजिल में तीन वेदियां हैं । मूल नायक सुपार्श्वनाथ भगवान् की वेदी बहुत ही सुंदर व अद्वितीय है । इसमें कांच का अद्वितीय सुन्दर काम कराया गया है । भिति चित्र भी बहुत सुंदर बने हुए हैं । जिन पर स्थान स्थान पर सोना लगाया गया है ।

तीसरी मंजिल में स्वर्णिम समवशरण की रचना स्थापित है । दीवारों पर समवशरण का परिचय चौबीस गर्भो की चर्चा का नक्शा, भाषा में स्तुतियां, छहढाला, चक्रवर्ती विभूति वर्णन, इन्द्र विभूति वर्णन, श्रुत स्कंध का नकशा आदि मोटे 2 अक्षरों में लिखाये गये हैं । इसी मंजिल में एक भव्य वेदी है जिसमें मूल नायक श्री चन्द्रप्रभु भगवान् की स्फटिक मणि की प्रतिमा विराजमान है इस प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य प्रतिमाएँ भी बहुत ही कलात्मक है । चन्द्रप्रभु भगवान् की प्रतिमा की ऊँचाई 1-1/4 फीट है । जिसे सेठ सा. श्री मूलचन्दजी नेमीचन्द जी सोनी ने करवाई । प्रतिमा की प्रतिष्ठा मिती फाल्गुन बदी 11 संवत 1945 में आयोजित पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव भानुपुरा में सुसम्पन्न हुई । इस प्रतिमा पर अंकित प्रशस्ति निम्नानुसार है -

संवत 1945 फाल्गुन बदी 11 श्री मूलसंघ कुन्द कुन्दा आये चन्द्रप्रभु जिन भानुपुरा प्रतिष्ठित मूलचन्द नेमीचन्द प्रणमति अजमेर ।

समवशरण रचना

यह स्वर्णिम रचना सेठ साहब श्री मूलचन्द जी सोनी ने जयपुर में बनाई । इसका निर्माण सवंत 1904 आषाढ़ माह में आरम्भ हुआ । इसके निर्माण में लगभग चार वर्ष लगे । इस रचना की मिती माह सुदी 8 सवंत 1908 को अजमेर लाया गया। यह रचना आदिनाथ महापुराण के अनुसार ही निर्मित की गई है जो श्री महापूत जिनालय की तीसरी मंजिल पर स्थित 14 इन्टू 14 फीट के हाल में स्थापित है । रचना के अनुरुप ही अन्दर भव्य हाल का निर्माण हुआ है । जिसमें काचांदि का सुन्दरतम कार्य किया गया है । इसकी छत पर पांच कांच के सुन्दरतम झाड फनूस शोभायमान है । विद्युत प्रकाश से ये झाड इस प्रकार शोभायमान होते हैं मानो देवगण आकाशमार्ग से भगवान् के समवशरण में सम्मिलित होने के लिये गमन कर रहे हों । इस समोशरण में धूलीसाल (चारों तरफ का परकोटा) जिसके चारों दिशाओं में स्वर्ण के बने हुए खंभो पर स्वर्ण व रत्नो की मालाओं से लटकते हुए तोरणद्वार हैं । धूलीसाल के भीतर गलियों के बीचो बीच चारों दिशाओं में चार स्वर्णिम मान स्तम्भ है । मान स्तम्भ के चारों और तीन कोट तथा प्रत्येक कोट में चारो दिशाओं मे चार 2 बडे दरवाजे है । तीनों कोटों के भीतर एक वेदिका है। मान स्तम्भों के समीप वर्ती प्रदेश मे बावडियां तथा समवशरण की भूमि को चारो ओर घेरे एक परिखा (खाई) निर्मित है । उक्त परीखा के भीतर की ओर एक लतावन है । लतावन के भीतर सुवर्णमय एक कोट जो समवशरण की भूमि को चारो ओर घेरे हुए है । तीन 2 मंजिली नाटय शालाएँ, धूपघट आगे चलकर अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक और आम्रवन क्रमशः पूर्व दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशा में अवस्थित है । इनमें स्वर्ण निर्मित वेदिका एवं चैत्य वृक्ष है । उक्त वनों के अंत में चारों ओर एक वन वेदी तथा उसके आगे भूमि में स्वर्ण के खंभो पर लटकती हुई एक एक दिशा में एक एक प्रकार की एक सो आठ ध्वजाएँ शोभायमान हैं ।

इसके आगे द्वितीय कोट है जो भी प्रथम कोट की तरह है । इसके बाद तीसरा कोट है जिसमें चार दरवाजे तथा उसके आगे श्री मंडप है । इसके मध्य भाग मे गंधकुटी है । जिसके ऊपर सिंहासन है यहां से भगवान् की दिव्य ध्वनि खिरती है। इस गंधकुटी में चार स्टफिक की सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं । इसी प्रकार इस गंधकुटी के प्रथम एवं द्वितीय कटनी में क्रमशः 4 व 3 रत्नों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं ।

[illegible] की रचना गोलाकार है। तथा जो गन्धकुटी के प्रत्येक किनारे में 6-6 फीट है यह रचना विशेष गोलाकार है जो आकाश से 12 इंच ऊँचा है। यह रचना अत्यन्त ही सुन्दर एवं दर्शनीय है। आदिनाथ पुराण में वर्णनानुसार 12 योजन प्रमाण के अनुसार इस रचना का विस्तार 12 फीट वृत्ताकार है।

यह जिनालय कलाकृतियों के दृष्टिकोण से अद्वितीय है। स्वर्णिम स्वर्णांकित दो श्वेत अश्वों का रथ, ऐरावत हाथी, [illegible] विमान हाथी एवं इत्यादि अजमेर नगर की नहीं वरन जैन संस्कृति की अद्वितीय निधियाँ हैं। जिन रथयात्राओं में ये सवारियाँ सम्मिलित होती हैं उस रथयात्रा की गरिमा ही अद्वितीय हो जाती है। ऐसी रथोत्सव की सवारियाँ अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इस जिनालय का निर्माण तथा इसकी प्रबन्ध व्यवस्था सेठ सा. श्री मूलचन्द जी सोनी तथा उनके पश्चात् सेठ सा. श्री नेमीचन्द जी, टीकमचन्दजी, भागचन्द जी एवं वर्तमान में निर्मलचन्दजी सोनी द्वारा की जाती रही है। इस कारण अब यह सेठ सा. के मन्दिर से भी विख्यात है।

यहाँ यह उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि दिनांक 25.10.1988 से इस जिनालय की प्रबन्ध व्यवस्था श्री दिगम्बर जैन तेरहपंथी बड़ा पंचायत अजमेर द्वारा की जा रही है, यह पंचायत राजस्थान सोसायटीज अधिनियम द्वारा पंजीकृत संस्था है तथा इसके अध्यक्ष सेठ श्री निर्मलचन्द जी सोनी है। श्री महापूत जिनालय प्रन्यास राजस्थान सार्वजनिक प्रन्यास अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत प्रन्यास है। श्री महापूत जिनालय प्रन्यास द्वारा इस मंदिर जी के नीचे भाग में श्री सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पुस्तकालय भवन संचालित है जिसमें हजारों की संख्या में हस्तलिखित महत्वपूर्ण शास्त्र है, शास्त्रों का भी अच्छा संग्रह है। श्री दिगम्बर जैन तेरह पंथी बड़ा पंचायत द्वारा श्री सुपार्श्वनाथ धार्मिक विद्यालय एवं श्री भाग्य मातेश्वरी बालिका पाठशाला संचालित है। यह जिनालय तेरापंथ आम्नाय का है।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन जिनालय, शांतिपुरा

यह मंदिर आनंद नगर शांतिपुरा में स्थित है। इस मंदिर का निर्माण श्रेष्ठि श्री सुवालालजी गंगवाल ने करवाकर श्री पार्श्वनाथ भगवान् तथा अन्य तीर्थंकरो की प्रतिमाएँ मिती प्रथम आषाढ़ बदी 5 संवत् 1988 (सन् 1931) को विराजमान की। मंदिर जी मे एक वेदी है तथा सात प्रतिमाएँ व दो यंत्र है। मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथ की है व अन्य प्रतिमायें श्री आदिनाथ, पद्मप्रभु, चंद्रप्रभु, विमल नाथ, नेमीनाथ, महावीर भगवान् की है। यह शिखरबंद मंदिर है। इसकी प्रबन्ध व्यवस्था श्री सुवालालजी गंगवाल द्वारा नवम्बर 1953 तक तथा उसके पश्चात् उनके सुपुत्रों सर्व श्री ललित कुमार जी, सुरेन्द्र कुमार जी, शांतिलाल जी, विजय कुमार जी गंगवाल द्वारा की जाती हैं। मंदिर का वार्षिक कलशाभिषेक मिति आसोज बदी 7 को प्रतिवर्ष होता है। इसी रोज इस मंदिर जी पर ध्वजा चढ़ाई जाती है। इस कार्यक्रम में श्री सुवालाल जी गंगवाल के पौत्र सर्व श्री अनिल कुमार जी पुत्र श्री शांतिलाल जी, निर्मल कुमार जी पुत्र श्री ललित कुमार जी, सुरेश कुमारजी, पुत्र सुरेन्द्र कुमार जी मुन्नालाल जी पुत्र श्री विजयकुमार जी गंगवाल का विशेष योगदान रहता है।

श्री दिगम्बर जैन चैत्यालय मंदिर जी (सरावगी मौहल्ला)

यह मंदिर सरावगी मौहल्ला में स्थित है कुछ कारण वश नया बड़ा पंचायत से 7 पंच अलग हो कर श्री दिगम्बर जैन चैत्यालय धड़ा पंचायत की संवत् 1968 में स्थापना की और इसी के साथ सरावगी मौहल्ला में भाग्य मातेश्वरी कन्या पाठशाला भवन के पास वाले (सरावगी मौहल्ला के मुकड़ वाले) भवन में छोटी मूर्ति विराजमान कर अस्थाई चैत्यालय बनाया। विक्रम संवत् 1973 में वर्तमान जिनालय की भूमि खरीद कर मंदिर जी का निर्माण किया गया। मूलनायक प्रतिमा श्री 1008 अरहनाथ भगवान् की सेठ साहब श्री नेमीचन्द जी सोनी द्वारा भक्तियों जी से प्रदत्त की गई। प्रारम्भ में एक ही प्रतिमा जी थी। उसके पश्चात् पर्वों आदि पर कलशाभिषेक तथा विशेष कार्यक्रमों हेतु चल प्रतिमाजी की आवश्यकता अनुभव की गई। अतः इस हेतु सन्. मूलचन्दजी कासलीवाल द्वारा 1008 श्री महावीर भगवान् की प्रतिमा बड़नगर से प्रतिष्ठा करके लाई गई तथा इन्हें श्री माणकचन्द जी कासलीवाल द्वारा श्री मंदिर जी में विराजमान की गई।

यह मंदिर तीन मंजिला है। दूसरी मंजिल में दो वेदियां है तथा तीसरी मंजिल में एक वेदी है। दूसरी मंजिल की एक वेदी में जिनालय के मूलनायक अरहनाथ भगवान की प्रतिमा के अतिरिक्त महावीर स्वामी,पारसनाथ, चौबीस तीर्थंकर, सिद्ध भगवान् की प्रतिमाओं के साथ 2 ऋषि मंडल यंत्र है। दूसरी वेदी में मूलनायक श्री चंद्रप्रभु भगवान् की प्रतिमा के अतिरिक्त संभवनाथ, ऋषभनाथ, शांतिनाथ भगवान् की प्रतिमाएं तथा सिद्ध यंत्र विराजमान है। इस वेदी का निर्माण भी जगमालजी उम्मेदमलजी [illegible] द्वारा वि.सं. 2007 में कराया गया। श्री चंद्रप्रभु भगवान् की प्रतिमा भी उनके द्वारा विराजमान की गई।

तीसरी मंजिल पर स्थित वेदी में मूलनायक श्री ऋषभनाथ भगवान् की प्रतिमा के अतिरिक्त महावीर, वासुपूज्य, शांतिनाथ, पारसनाथ, अरहनाथ भगवान् की प्रतिमाएँ विराजमान हैं । इस वेदी में कलिकुंड यंत्र, ऋषि मंडल यंत्र, सिद्ध यंत्र, पंच परमेष्ठी यंत्र हैं । इस वेदी का निर्माण श्री हेमराज जी बडजात्या द्वारा वि. सं. 2007 में करवाया गया तथा आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा विराजमान की गई । इस मंदिर जी में धार्मिक पुस्तकों, ग्रन्थों, पूजा की पुस्तकों, सभी प्रकार के विधानों की पुस्तकों का उत्तम संग्रह है । इस मंदिर के निर्माण एवं नित्य प्रति सायंकालीन स्वाध्याय, पूजा की परम्परा डालने में प्रमुख योगदान श्री फूलचन्द जी कासलीवाल का रहा । इनके द्वारा ही मंदिर जी का मुख्य द्वार भेंट किया गया । इन्हीं के पौत्र श्री स्वरूपचन्द जी कासलीवाल का इस मंदिर के विकास तथा शास्त्र भण्डार की अभिवृद्धि में योगदान प्रशंसनीय है । अधिक से अधिक पुजारी जिनेन्द्र पूजन हेतु आवें इस हेतु इनके द्वारा तत्सम्बन्धी सुविधायें जुटाने का प्रयास किया जाता रहा है । व्यक्तिगत रूप से भी वे पूजन करने की प्रेरणा देते रहे हैं और यही कारण है कि इन मंदिरजी में अच्छी संख्या में पुजारी जिनेन्द्र पूजन करते हैं।

श्री सीमंधर दिगम्बर जैन मंदिर (पुरानी मंडी)

यह जिनालय नगर परिषद के सामने पुरानी मंडी में स्थित है । इस जिनालय की स्थापना श्री पूनमचन्द जी लुहाडिया द्वारा प्रस्थापित श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट द्वारा की गई । श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट की स्थापना रजिस्टर्ड ट्रस्ट डीड दिनांक 15.4.1985 द्वारा की गई, जिसके द्वारा बाल भवन की सम्पूर्ण संपति इस ट्रस्ट को हस्तान्तरित कर दी । इस तीन मंजिले भवन की तीसरी मंजिले में मंदिर की स्थापना की गई । वेदी का शिलान्यास समारोह दिनांक 26 नवम्बर से 28 नवम्बर 1988 तक विभिन्न कार्यक्रमों के साथ सुसम्पन्न हुआ । तथा वेदी का शिलान्यास दिनांक 28 नवम्बर 1988 को प्रातः 9.30 बजे श्री पूनमचन्द जी लुहाड़िया तथा उनके परिवार द्वारा किया गया । शिलान्यास समारोह के पूर्व प्रातः भव्य मंगल कलश शोभायात्रा श्री नया धडा नसियां जी से वीतराग विज्ञान भवन तक निकाली गई । उसके पश्चात् उनके द्वारा प्रीतिभोज दिया गया।

वेदी के निर्माण के दौरान भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा 1.3.1990 को विराजमान की गई । पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव जयपुर में प्रतिष्ठित श्री सीमंधर, आदिनाथ, एवं महावीर भगवान् की प्रतिमाएँ दिनांक 3.1.1991 को इस मंदिर में विराजमान की गई । वेदी का निर्माण माह अप्रेल मई 1991 में सम्पूर्ण हुआ । जिसका कि वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव दिनांक 9.12.1991 से 11.12.1991 तक विभिन्न भव्य कार्यक्रमों के साथ सुसम्पन्न होकर दिनांक 11.12.91 को मध्याह्न 11 बजे जिन बिंबों को विराजमान किया। इसी के साथ ही कलशारोहण, ध्वजारोहण एवं परमागम की स्थापना मंदिर जी में की गई ।

वेदी प्रतिष्ठा समारोह में दिनांक 9.12.91 को प्रातः शोभायात्रा दिनांक 10.12.91 को घट यात्रा 11.12.91 को गजरथ शोभा यात्रा निकाली गई । तीनों ही शोभा यात्राएँ अत्यन्त ही अद्वितीय थी । अजमेर नगर में गजरथ शोभायात्रा प्रथम बार आयोजित हुई । वेदी प्रतिष्ठा में अनेक राजनेता सम्मिलित हुए । विशाल प्रीतिभोज सम्पन्न हुआ ।

इस ट्रस्ट ने पं. सदासुख कासलीवाल की पावन स्मृति में पं. सदासुख कासलीवाल ग्रन्थमाला प्रस्थापित की है जिसके अन्तर्गत मृत्यु महोत्सव, सहज सुखसाधन, भावना शतक, साधना के सूत्र ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है । पं. सदासुख जी कासलीवाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व शोध करने वाले विद्वान को 21000/- रूपये का नगद पुरस्कार ट्रस्ट द्वारा प्रदान करने तथा शोध ग्रन्थ को प्रकाशित किये जाने की योजना है ।

श्री दिगम्बर जैन मंदिर (उतार घसेटी)

यह मंदिर उतार घसेटी में स्थित है । इस मंदिर की स्थापना करने का संकल्प श्रीमती भंवरी बाई धर्मपत्नी श्री राजमल जी काला द्वारा निष्पादित ट्रस्ट डीड दिनांक 29.8.1945 के द्वारा किया गया । इस ट्रस्ट डीड के अनुसार श्रीमती भंवरी बाई ने अपने तीन मंजिला भवन में इसी वर्ष पर्युषण पर्व के पूर्व भगवान् सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा स्वयं एवं अन्य साधर्मी बन्धुओं के धर्म साधना हेतु विराजमान की । इस मंदिर में एक वेदी है । इसकी व्यवस्था ट्रस्ट डीड में उल्लेखानुसार ट्रस्ट मंडल द्वारा की जाती है ।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैसवाल जैन मंदिर (केसरगंज)

यह मंदिर महावीर मौहल्ला केसरगंज अजमेर में स्थित है । अजमेर नगर के प्रमुख दिगम्बर जैन मंदिरों में इस मंदिर की गणना की जाती है ।

[illegible] में इस मंदिर का आकार बहुत ही छोटा था । इस चौबीसी [illegible] के आगे [illegible] है [illegible] ने मूलनायक आदिनाथ भगवान् को विराजमान किया । उस समय दो धातु की और प्रतिमाजी थी । उसके बाद कुछ प्रतिमाजी [illegible] के मंदिरजी से आई । तत्पश्चात् एक सुन्दर मंदिर बनवाया गया । जिसकी कि वेदी प्रतिष्ठा सं. 1875 (1918ई.) में करवाई गई । मिती पौष बदी 9 सं. 1985 (4.1.1929) को 2919/- रुपये में जायदाद और ग्राम के श्रावकों से खरीदी गई। मंदिरजी में स्व. [illegible]लाल जी द्वारा वेदी व फर्श लगवाया गया था । मिती फाल्गुन बदी 10 सं. 1999 दिनांक 1.3.43 को एक और जायदाद क्रय की गई । कांच के मंदिरजी की वेदी के पीछे परिक्रमा बहुत ही संकरी थी । दर्शनार्थी आसानी से नहीं निकल सकते थे । इस संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ । अतः समाज ने अगहन सुदी 15 रविवार दिनांक 21.10.46 को निर्णय लिया कि पीछे की जायदाद को तोड़कर बड़ा मंदिर बनवाया जावे । इस निर्णयमें स्व. सर सेठ भागचंदजी सोनी व परम पूज्य मुनि 108 मल्लिसागर जी महाराज का विशेष सहयोग रहा । कांच जड़ित मंदिर के स्थान पर संगमरमर का भव्य विशाल मंदिर बनकर तैयार हुआ । तीन वेदियां बनवाई व बड़ी 2 प्रतिमाजी आई । नवीन वेदियों की प्रतिष्ठा हेतु दिनांक 6.1.1952 को कमेटी गठित हुई । व 1953 में प्रतिष्ठित हुई । श्री कन्हैयालाल जी ने रथयात्रा निकलवाई । सन् 1956 में श्री सुमतिचंद जी शास्त्री के सानिध्य में कमेटी का विधिवत गठन हुआ । दिनांक 25.9.1965 को देवस्थान एक्ट के अंतर्गत मंदिर का पंजीकरण हुआ।

कमेटी के गठन के पूर्व मंदिर की व्यवस्था स्व.पंडित ग्यारसीराम जी जैन शाह बजाज द्वारा की जाती रही । मंदिर का वर्तमान रूप अत्यंत ही भव्य एवं चित्ताकर्षक है । इसमें चार मनोहारी वेदियों के साथ एक बड़ा हाल कुआ, भंडार, गृह आदि है । मंदिर भवन के अंतर्गत ही औषधालय व वाचनालय संचालित है । हर वर्ष पूर्णिमा को कलशाभिषेक होते हैं । पर्युषण पर्व की शास्त्र सभा में समाज के सभी बंधु एवं महिलाएं हिस्सा लेती हैं ।

ज्ञान विद्या धर्म स्थली : गेगल

अजमेर से 16 किलोमीटर दूर जयपुर मार्ग पर स्थित गेगल ग्राम में श्री कन्हैयालाल जी नरेन्द्र कुमार जी जैन उन्नेरिया द्वारा अपने जीवन कृषि फार्म में मंदिर बनाने की योजना है । इस मंदिर हेतु मूर्ति की प्रतिष्ठा नाका मंदिर स्थित मंदिर के सम्पन्न हुए पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में हो चुकी है इस मंदिर के राष्ट्रीय राजमार्ग पर होने के कारण इसकी महत्ता बढ़ गई है।

इस स्थल पर दो तरणताल बनाये जा रहे हैं । एक महिलाओं के लिए व दूसरा पुरूषों के लिए । 17 बीघा जमीन में बनने वाला यह मंदिर अपने आप में अनूठा है । प्रकृति के शांत वातावरण में स्थित यह स्थल धर्म साधना हेतु उपयोगी है।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन जैसवाल चैत्यालय : हाथीभाटा

इस चैत्यालय का निर्माण स्व श्री नेमीचंद जी शाहबजाज (कोठी वाले) ने अपनी कोठी में ही कराया । मिती ज्येष्ठ सुदी 5 सं 2034 दिनांक 23.5.1977 सोमवार को प्रातः 6.30 बजे शुभ मुहुर्त में चैत्यालय की आधारशिला रखी गई । मिती ज्येष्ठ सुदी 10 सं 2038 दिनांक 12.6.1981 के शुभ दिन श्री 1008 पार्श्वनाथ भगवान् व अन्य प्रतिमाएं वेदी में प्रतिष्ठित किए गए । यह वेदी प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुई । इस मंदिर की व्यवस्था ट्रस्ट के अनुसार की जाती है । मंदिर के साथ एक धर्मशाला भी है । मुख्य ट्रस्टी श्री नेमीचंद जी जैन आगरा वाले हैं ।

आप हंस, मैं हंस

आप हंस की भांति विवेकबुद्धि प्राप्त करो और मोती के समान
अच्छी बातों को स्वीकार कर लो और शेष का परित्याग कर दो ।
मैं भी हंस के समान बनना चाहता हूँ । जैसे हंस दूध और पानी
को पृथक् कर देता है और मोती को ही चुगता है,
उसी प्रकार मैं भी अच्छी बातों को ही ग्रहण करना चाहता हूँ ।

श्री दिगम्बर जैन नया धड़ा नसियांजी

यह नसियां सुभाष उद्यान के सामने जवाहर लाल नेहरू हॉस्पिटल रोड पर अवस्थित है । श्री दिगम्बर जैन नया धड़ा पंचायत के तत्कालीन सदस्य गण माननीय श्रेष्ठी श्री चांदमल जी अजमेरा, माणकचन्द जी [illegible], राजमलजी सेठी, [illegible] जी बाकलीवाल व भवर लालजी दोसी ने नसियांजी की स्थापना किए जाने हेतु भूमि वि. सं. 1980 (~1924 ई.) में क्रय की ।

"12000 विमलचंद अजमेरा सुपुत्र श्री बापूलालजी मालिक फर्म चांदमल राजमल ने मार्फत अपने [illegible] श्री नेमीचंदजी पाटनी पूज्य नानाजी साहब व मामाजी साहब श्रीमान् राजमलजी सौभागमल जी सेठी की पुण्य स्मृति में नसियांजी का मुख्य बड़ा हाल व मूलनायक प्रतिमा के मूलनायक प्रतिमा की वेदी व बरामदा व कलश बनाने व प्रतिष्ठा मिती फाल्गुन सुद 5 सं. 2009 बुधवार दिनांक 18/2/53 करवाने में खर्च किया ।" नसियां जी में एक वेदी है मूल नायक आदिनाथ भगवान की विशाल एवं भव्य प्रतिमा है । नसियां जी के अलावा ही धर्मशाला है जिसकी कि नींव भगवान् महावीर निर्वाणोत्सव के समय लगाई गई । काफी कमरे व रसोई घर कुवां आदि का निर्माण हो चुका है ।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर-गोधों का धड़ा, अजमेर

यह जिनालय सरावगी मोहल्ला में धर्मदासजी के मंदिर के पास अवस्थित है । दिगम्बर जैन बड़ा धड़ा से सर्व श्री जिणदासजी, जयचन्द्दास जी, महाचंदजी, मनरूप जी, धन्नालालजी, छोटूलालजी, छोगालालजी, फतेहलालजी, रतनलालजी गोधा वि. सं. 1916 सन् 1859 ई. में तत्कालीन भट्टारक रतनभूषणजी के समय में विलग हुए और अपने धार्मिक विचारों के अनुसार धार्मिक कार्य करने के लिए अपनी भूमि व नोहरे आदि भेंट कर मंदिर जी का निर्माण करवाया तथा उसमें मूलनायक 1008 श्री पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा विराजमान की तभी से यह मंदिर श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर-गोधों का मंदिर के नाम से विख्यात है।

इस जिनालय में तीन वेदियाँ है । एक वेदी के मूलनायक श्री पार्श्वनाथ दूसरी वेदी के मूलनायक चन्द्र प्रभु भगवान् तथा तीसरी वेदी के मूलनायक शांतिनाथ भगवान् है । इन वेदियों का निर्माण क्रमशः गोधा परिवार, चौथमलजी, हीरालालजी वैद, था श्रीमती पट्टी बाई ने करवाया । विक्रम संवत 1916 में मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान् की जो प्रतिमा विराजमान की गई उसके खंडित हो जाने पर मिती आसोज सुदी 2 संवत 2010 को वेदी प्रतिष्ठा सम्मारोह हुआ जिसमें वर्तमान प्रतिमा को जयपुर में निर्माण श्री मौहरीलाल जी चिरंजीलाल जी पांडया द्वारा कराया गया । तथा वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव में सर्वाधिक बोली का सुअवसर प्राप्त कर श्री मोरतमल जी पांडया ने इस प्रतिमा जी को वेदी में विराजमान किया । इसी के साथ-साथ वेदी की मरम्मत आदि भी कराई गई । यह वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव पं. श्री मिलापचंद जी कटारिया केकड़ी द्वारा सुसम्पन्न करवाई गई ।

यहां उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि गोधा परिवार ने मंदिर जी में चार दुकाने, मूलचंदजी सेठी ने, छोगालाल जी सौगानी ने भेंट की । इसी प्रकार उपर के वेदी में सर्वधातु की प्रतिमा मौहरीलाल जी पांडया द्वारा विराजमान कराई गयी। चाँदी के किवाड़ भी श्री सौभागमलजी दोसी की बहन के सोलावणें में भेंट किये गये ।

मंदिर जी के मुख्यद्वार पर मकराने की सीढ़ियाँ मदनलाल जी सौगानी तथा माल का कटहरा श्री केवलचंदजी पांडया की धर्मपत्नि ने बनवाया । इस मंदिर की व्यावस्था गोधा धड़ा पंचायत द्वारा की जाती है ।

ऐसे मोती बनेंगे कि

सत्य की सीप में अपने मन, वचन, काय को डाल दोगे तो ये मोती बन जायेंगे । ये ऐसे मोती बनेंगे जो महाराजाओं के आदर के ही पात्र नहीं बनेंगे वरन् देवता भी इनकी पूजा करेंगे ।

लेखक: पीकमचंद पाटनी

अजमेर नगर के ऐतिहासिक सुभाष बाग के सामने हास्पिटल रोड पर अजमेर नगर की तीर्थ स्थली – श्री छोटा बड़ा धड़ा नसियां जी अवस्थित है । यह स्थल सभी जैन जैनेतर धर्मावलम्बियों का आकर्षण का केन्द्र है । जहां प्रातः से रात्रि तक दर्शनार्थियों का तांता लगा रहता है । वैसे अजमेर नगर में नागौरी भट्टारक पीठ का शुभारम्भ संवत् 1877 में हो ही चुका था तभी यहां श्री दिगम्बर जैन छोटा धड़ा मंदिर की स्थापना हुई थी । इसी मंदिर के अंतर्गत संवत् 1910 में इस नसियां की स्थापना की गई । नसियां जी में श्री 1008 आदिनाथ मूलनायक भगवान् है । इसी प्रतिमा के कारण यह नसियां तीर्थ बन चुकी है ।

नसियां जी में पांच वेदियां है । मुख्य वेदी में आदिनाथ भगवान् की पद्मासन प्रतिमा है । यह काले पाषाण की अत्यन्त ही अतिशयकारी प्रतिमा है । प्रतिमा बहुत प्राचीन है तथा इसके लेख से स्पष्ट है कि यह विक्रम संवत् 602 की प्रतिमा है । *इस चतुर्थकालीन चमत्कारिक प्रतिमा को नागौर पीठ के तत्कालीन भट्टारक श्री हेमकीर्ति जी ने सिद्धवर कूट से लाकर यहां विराजमान* करवाया । इस प्रतिमा के सातिशय दर्शन मात्र से मन् में अत्यन्त शांति हो जाती है । यहां प्रतिदिन हजारों भक्तगण दर्शन पूजा कर सातत् लाभान्वित होते हैं और अपनी मनोकामना पूरी करते हैं ।

आदिनाथ भगवान् की मुख्य वेदी के दोनों ओर दो वेदियां है जिनमें क्रमशः भगवान् शांतिनाथ व भगवान् महावीर की पीत वर्ण पाषाण की मनोज्ञ पद्मासन भव्य एवं विशाल प्रतिमाऐं हैं । पंच कल्याण प्रतिष्ठा महोत्सव में मिती वैशाख सुदी 5 वीर संवत् 2465 को प्रतिष्ठा भट्टारक जयकीर्तिजी के सानिध्य में सुसम्पन्न हुई । प्रतिमाओं की प्रशस्तियों का अवलोकन करने से यह तथ्य स्पष्ट है कि इन प्रतिमाओं को श्रेष्ठि श्री चांदमलजी बाघमल जी बड़जात्या ने बनवाया तथा प्रतिष्ठा भट्टारक जयकीर्तिजी के सानिध्य में सुसम्पन्न हुई ।

चौथी वेदी में अतिप्राचीन मूर्ति श्री 1008 श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर की सर्वधातु की मनोज्ञ, भव्य प्रतिमा है जिसमें मूलनायक श्री 10008 श्री शांतिनाथ भगवान् है । इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा आचार्य श्री भगवद जिनसेन स्वामी द्वारा वीर संवत् 1263 में मलैखेड़ में हुई । इस प्रतिमा को 105 भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति जी महाराज गादी नागौर की ओर से 108 आचार्य शिवसागर जी महाराज के संसंघ विराजमान के समक्ष में उनके तत्वाधान में मिती कार्तिक सुदी 15 संवत् 2016 विक्रमी इतवार को वेदी प्रतिष्ठा होकर विराजमान की गई । ये तथ्य इस वेदी के ऊपर लगे हुए शिलालेख से भी स्पष्ट है ।

पांचवी वेदी में भगवान् शांतिनाथ अरहनाथ, कुंथनाथ की एक संयुक्त भव्य प्रतिमा के अतिरिक्त भगवान् आदिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी, शांतिनाथ, नवग्रह चरण पादुका की सप्तधातु की प्रतिमाएं थी जिन्हें दिनांक 19-11-1987 को चुराकर ले गए। उसके कुछ समय पश्चात् इस वेदी में चतुर्विंशति तीर्थंकर भगवान् की सप्त धातु की प्रतिमा जिसके मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान् है विराजमान की गई । उक्त पांचों वेदियों के अतिरिक्त मानभद्रजी, एवं धरेंद्र एवं पद्मावती माता की भी दो वेदियां है ।

इस नसियां जी ने के विकास में क्षुल्लक 105 श्री सिद्धसागर जी महाराज (लाडनूवालों) के आशीर्वाद एवं योगदान को नहीं भुलाया जा सकता । सन् 1982 में क्षुल्लक रत्न सिद्धसागर जी महाराज का अजमेर नगर में चातुर्मास सुसम्पन्न हुआ। चातुर्मास के दौरान आप इसी नसियांजी में विराजे । चातुर्मास के दौरान आपके मर्मस्पर्शी प्रवचनों से प्रभावित हो नसियां जी में "आचार्य 108 श्री धर्म सागर स्वाध्याय एवं व्रती सदन" एवं उत्तंग शिखर का निर्माण तथा विशाल संगमरमर की वेदी का निर्माण कराया गया। मुख्य वेदी श्री नथमल जी बज गोधा गवाड़ी द्वारा बनवाई गई । उत्तंग शिखर के चारों ओर वेदियां बनवाई गई । इस नव निर्मित वेदी व शिखर की चारों वेदियों की प्रतिष्ठा व रथयात्रा महोत्सव दिनांक 11-7-1983 से 15-7-93 तक बाबाजी सूरजमल जी निवाई वालों के आचार्यत्व में सुसम्पन्न हुई तथा मिती आषाढ़ शुक्ला 5 संवत् 2040 दिनांक 15-7-93 को प्रातः श्री आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा तथा अन्य प्रतिमाएं विराजमान की गई । यहां इस तथ्य का उल्लेख करना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि मुख्य वेदी के सम्मुख वेदी के सम्मुख चांदी के सिक्के सन् 1990 में विभिन्न भक्तगणों ने लगवाए ।

मुख्य मंदिर के अतिरिक्त आचार्य धर्मसागर स्वाध्याय एवं व्रती सदन का इस नसियाँ जी में प्रमुख भवन है । यह भवन त्यागियों एवं व्रतियों के लिए बनवाया गया । यह भवन दो मंजिला है । नीचे की मंजिल में हाल तथा दो कमरे है । ऊपर की मंजिल में मेडीरी तथा दो कमरे है । यह गुलाबी रंग की मार्बल का बना हुआ है । यह नसियां जी अजमेर में एक तीर्थस्थल

है । प्रतिदिन हजारों नर-नारी काले बाबा के दर्शन एवं पूजनार्थ आते हैं । यहां [illegible] ज्योति, पूजन सामग्री आदि की समुचित प्रबंध व्यवस्था है ।

नसियां जी में 32 कमरे दो भोजनशाला, दो बड़े बरामदे के अतिरिक्त सम्पूर्ण पक्का प्रांगण, प्याऊ, विद्युत मोटर सहित मीठे जल का कुंआ, सभी कमरों आदि में पंखों की व्यवस्था, यात्रियों के लिए बिस्तर, बर्तन, फर्नीचर तथा पूजन प्रक्षाल की सम्पूर्ण व्यवस्था प्रतिदिन उपलब्ध है । इस सम्पूर्ण व्यवस्था हेतु वैतनिक व्यवस्थापक नियुक्त है ।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर (श्री छोटा धड़ा पंचायत)

यह मंदिर खटोलापोल - श्री मण्डी नया बाजार में स्थित है । नगर की स्थापना काल से ही अजमेर नगर में एक समाज एक पंचायत एक आम्नाय चली आ रही थी विक्रम संवत् 1877 में कुछ सदस्यों ने उक्त पंचायत से अलग होकर पृथक पंचायत की स्थापना की जो छोटा धड़ा पंचायत और पूर्व वाली पंचायत बड़ा धड़ा पंचायत के नाम से जानी जाने लगी ।

श्री छोटा धड़ा पंचायत ने नागौर पट्ट के तत्कालीन भट्टारक अनंतकीर्ति जी की प्रेरणा से इस मंदिर की स्थापना की। इस जिनालय के मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् है । इस मंदिर में तीन वैदियां है ।

श्री पल्लीवाल दिगम्बर जैन मंदिर-मदन गोपाल रोड, केसरगंज, अजमेर

इस मंदिर की स्थापना श्री गणेशीलाल जी द्वारा बनाए गए श्री गणेशीलाल कलावती चैरीटेबल ट्रस्ट की इच्छानुसार की गई इस ट्रस्ट के तत्कालीन मंत्री श्री जोहरीलाल जी जैन (बारोलिया) अपने बहनोई श्री हजारी लाल जी जैन के सहयोग से भगवान् मुनिसुव्रतनाथ जी की प्रतिमा ग्राम पाडेला (महावीर जी) से लाए । प्रतिमा लाने के लिये श्री जंवरीलाल जी, हजारीलाल जी, गुलाबचन्दजी, मक्खनलाल जी जैन पल्लीवाल गए ।

दिनांक 29-12-52 को सम्पन्न हुई वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव में प्रातः 7.30 बजे श्री पल्लीवाल दिगम्बर जैन मंदिर की बिल्डिंग ब्यावर बाजार केसर गंज अजमेर की तीसरी मंजिल के एक ब्लाक में उक्त प्रतिमा विराजमान की गई । उसके पश्चात् मध्यान्ह 3.30 बजे एक जलूस केसरगंज से निकला जिसमें करीबन 2000 नर नारियों ने भाग लिया । देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान् के 4 बजे कलशाभिषेक हुए । इसके बाद सर सेठ श्री भागचन्द सोनी के सुपुत्र श्री निर्मलचन्द जी सोनी के कर कमलों से मंदिर जी की स्थापना सम्पूर्ण हुई ।

कुछ कारणों के कारण मंदिर जी की वेदी नहीं बन सकी । सन् 1992 में वेदी मंदिर जी में स्थापित की गई जिसके कि वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव मिती मंगसर शुक्ला 3 सं. 2049 से मगसर शुक्ला 5 सं. 2049 दिनांक 27-11-92 से 29-11-92 तक परम् पूज्य गणधराचार्य 108 श्री कुंथुसागर जी महाराज संसघ के सानिध्य में पं. प्रवर बाबाजी सूरज मल जी संहितासूरी निवाई के आचार्यत्व में विभिन्न कार्यक्रमों के साथ सुसम्पन्न हुआ और दिनांक 29-11-1992 रविवार को मध्यान्ह 11 बजे भव्य रथ यात्रा सेठ साहब की नसियांजी से प्रारम्भ होकर आगरा गेट, नया बाजार, चूड़ी बाजार, जी. पी. ओ. मदार गेट, केसर गंज होती हुई मंदिर जी पहुंची । रथयात्रा में गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी महाराज का विशाल संघ भी सम्मिलित था । मध्यान्ह 1 बज कर 30 मिनट पर जिनेन्द्र भगवान् को नवीन वेदी में प्रतिष्ठापन किया गया तथा शिखर पर कलशारोहण एवं कलशाभिषेक सुसम्पन्न हुए । इस अवसर पर प. पू. गणधराचार्य कुंथुसागर जी महाराज के मांगलिक हृदय स्पर्शी प्रवचन हुए ।

यहां यह उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि श्री गणेशीलाल जी ने दिनांक 22-11-1948 को गणेशीलाल कलावती पल्लीवाल दि. जैन चेरीटेबल ट्रस्ट बनाया था और अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति ट्रस्ट के नाम पर कर दी थी ।

गोधा धड़ा नसियां जी

यह नसियां सुभाष उद्यान रोड पर स्थित है । इस नसियां में देवाधिदेव आदिनाथ भगवान् की मूलनायक प्रतिमा विराजमान है । जिसे सर्वश्री रूपचन्द जी पाटनी एवं सुगनचन्दजी झांझरी हरसौर से लाए । तथा वेदी प्रतिष्ठा समारोह मिति फाल्गुन सुदी 2 वि. सं. 1973 को सुसम्पन्न हुआ । नसियांजी में तीन वेदियाँ थीं लेकिन श्री गोधा धड़ा पंचायत के सदस्यगण सर्वश्री कैलाशचन्द जी पाटनी (बापसुरी वाले) एवं श्री निहालचन्दजी पांड्या द्वारा अलग-अलग वेदी का जीर्णोद्धार का कार्य सम्पन्न कराया तथा उन्होंने क्रमशः वासुपूज्य भगवान् एवं महावीर भगवान् की अष्ट धातु की प्रतिमाएँ मिति आषाढ़ कृष्णा 10 सं. 2050 दिनांक 14-6-1993 सोमवार को मध्याह्न 11.30 बजे विराजमान की । दोनों प्रतिमाएँ खड्गासन है तथा इनकी अवगाहना 2.1/4 फीट है । इन

दोनों प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा अजमेर नगर में दिनांक 31-1-1993 से 6-2-1993 तक सम्पन्न हुए पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में सुसम्पन्न हुई थी । इस प्रकार इस नसियाँजी में पाँच वेदियाँ है । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी इस नसियाँ जी का महत्वपूर्ण स्थान है । इस नसियाँ को एक और क्रान्तिकारियों की कर्मस्थली होने का गौरव प्राप्त है । राष्ट्र भक्त भगतसिंह, चन्द्रशेखर, आदि अनेक अमर शहीदों ने अपनी क्रांतिकारी गतिविधियाँ का यहीं से संचालन किया था । इसी के साथ स्व. पंडित गोपाल दास की वरैया कुंवर दिगविजयसिंह जी एवं आर्य समाज के विद्वानों के मध्य सन् 1912 के जून माह में शास्त्रार्थ इसी नसियाँजी के प्रांगण में सुसम्पन्न हुआ था जिसमें जैन विद्वानों को आर्य समाज के द्वारा फैलाये जाने वाले मिथ्यात्व का शास्त्रार्थ द्वारा सार्वजनिक रूप से खंडन किया गया था ।

श्री दिगम्बर जैन नयाघड़ा मन्दिर जी - सरावगी मौहल्ला

यह जिनालय सरावगी मौहल्ला में अवस्थित है । इसकी स्थापना मिति बैसाख सुदी 12 वि. सं. 1949 (सन् 1892) को हुई । इस मन्दिरजी में तीन वेदियाँ हैं । प्रथम वेदी में मूलनायक प्रतिमा श्री महावीर भगवान् की है । द्वितीय वेदी में श्री आदिनाथ भगवान् तथा तृतीय वेदी में पदमप्रभु भगवान् की मूलनायक प्रतिमाऐं हैं । इस मन्दिर जी की व्यवस्था श्री दिगम्बर जैन नया घडा पंचायत अजमेर द्वारा की जाती है । यह मंदिर दो मंजिला है । नीचे की मंजिल में हाल है और दूसरी मंजिल में तीनों वेदियाँ हैं ।

छतरी-पार्श्वनाथ कॉलोनी - सुभाष उद्यान

यह चैत्यालय सुभाष उद्यान के समीप स्थित पार्श्व नाथ कॉलोनी में अवस्थित है । यह भट्टारक रतन कीर्तिजी की छत्री है । जिसका कि अन्यत्र वर्णन किया जा चुका है । इस छतरी में चरण चिन्ह है । यहाँ सन् 1965 में भगवान् की प्रतिमा विराजमान की गई ।

दो शताब्दीयाँ पश्चात्

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अजमेर नगरी की पुण्य भूमि में भव्य पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव दिनांक 31-1-1993 से 6-2-93 तक

अजमेर नगर में स्वर्णिम समोवशरण रचना तथा पंच कल्याणक रचना गत दो शताब्दियों में स्थापित हुई । अनेक भव्य जिनालयों का निर्माण हुआ, कई बड़े से बड़े धार्मिक समारोह यहाँ के श्रेष्ठी जनों द्वारा सुसम्पन्न कराए गए । लेकिन साक्षात पंच कल्याणक महोत्सव इन दो शताब्दियों में यहाँ किसी न किसी कारण वश सुसम्पन्न नहीं हो सका ।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दिगम्बर जैन जैसवाल समाज का पूर्व राजस्थान एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश से शुभागमन हुआ । यह समाज प्रारम्भ से आगमनिष्ठ, कुल परम्परापालक, जिन भक्त एवं गुरुभक्त आदि उत्कृष्ट गुणों के कारण उत्तरोत्तर वृद्धिगत हुई और इस समाज के लगभग 200 से अधिक परिवार अजमेर नगर में निवास कर रहे हैं ।

इस समाज के फूलपुर के कोलनायक गोत्रीय लगभग बीस परिवार जैन समाज के सदस्य हैं । इन परिवारों के फूल पुर नहीं रहने के कारण वहाँ की जिन प्रतिमाओं को आदर पूर्वक वे अजमेर ले आए । इसी परिवार ने परम् पू. उपसर्ग विजेता, कणिरत्न धर्म केशरी, चारित्र चूड़ामणि वात्सल्य मूर्ति आचार्य श्री 108 दर्शनसागर जी महाराज संसघ के सानिध्य में दिनांक 11-5-87 को नाका मदार पर मंदिर जी का शिलान्यास किया । शिलान्यास के समय आचार्य श्री ने पंच कल्याणक महोत्सव का भव्य कार्यक्रम सुसम्पन्न कराने की प्रेरणा दी ।

मन्दिर का निमार्ण पूर्ण होने पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सुसम्पन्न कराये जाने का निर्णय हुआ । पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रेरक पूज्य आचार्य श्री दर्शन सागर जी महाराज ससंघ का पदार्पण दिनांक 21-1-1993 को हुआ । पंचकल्याणक प्रतिष्ठा स्थल की भूमि शुद्धि एवं वेदी का शिलान्यास दिनांक 24-1-1993 को हुआ ।

झंडारोहण ३१-१-१९९३

आयोजन का शुभारम्भ रविवार दिनांक 31-1-1993 को अरिहंत नगर (नाका मदार) में आचार्य दर्शन सागर जी महाराज के शुभाशीर्वाद और मंगलाचरण द्वारा हुआ । महोत्सव का ध्वजारोहण श्री नत्थीलालजी कोलानायक ने किया जो कोलानायक परिवार

के वयोवृद्ध सदस्य थे । "प्रातः आचार्य श्री ससंघ केसरगंज मन्दिर से मेला स्थल तक पहुँचे जहाँ मुख्य द्वार पर कोषाध्यक्ष परिवार के सदस्यों व समाज के बंधुओं ने श्रीफल द्वारा आचार्य श्री के चरणों में नमोस्तु करते हुए सफलता का आशीर्वाद प्राप्त किया। इस अवसर पर नर नारियों के "अहिंसा परमो धर्म, यतो, धर्म स्ततो जय के उद्घोषों से गगन गुंजायमान हो उठा । आचार्य श्री ने जन समुदाय को सम्बोधित करते हुऐ कहा कि पंचकल्याणक मानव जीवन की श्रेष्ठतम उपलब्धि है । इस कार्यक्रम की सफल सम्पन्नता से ही राष्ट्र, समाज और समुदाय में शांति का मार्ग प्रशस्त होता है ।

ध्वजारोहण के बाद वेदी की शुद्धि की गई । अनुकंरारोपण कार्यक्रम के अन्तर्गत महिलाओं द्वारा जलूस के रूप में मिट्टी लाकर बीजारोपण किया । दसों दिशाओं में देवताओं को अर्घ समर्पित मंगल कलश स्थापित किये । विभिन्न व्यक्तियों से प्राप्त नवीनतम प्रतिमाओं को प्रतिष्ठापित करने के लिए उनका पंजीकरण किया गया । इसके बाद नंदी विधान, भक्तामर विधान आदि सम्पन्न हुए । इसी समय सेवा संगठन का भी ध्वजारोहण सम्पन्न हुआ । ध्वजारोहण मुख्य अतिथि श्री वासुदेव प्रसाद ने किया । कार्यक्रम अध्यक्ष श्री महेन्द्र कुमार निराले ने द्वीप प्रज्वलित कर संगठन कार्यालय का शुभारम्भ किया । अजमेर नगर के लगभग 21 नवयुवक मंडलों को पंचकल्याणक हेतु "सेवा संगठन" के अन्तर्गत सम्मिलित कर एक ही ड्रैस के अन्तर्गत लगभग 375 नवयुवकों की सेवाऐं इस आयोजन हेतु उपलब्ध कराई गई । सेवा संगठन में जनरल कैप्टिन श्री नरेन्द्र कुमार जैन को चुना गया । जिन्होंने आठ उप कप्तानों के सहयोग से मेले की सम्पूर्ण व्यवस्था को पूरी सफलता के साथ संचालित किया ।

गर्भ कल्याणक (पूर्व रूप) (दिनांक १-२-१९९३)

दिनांक 1-2-1993 को प्रातः केसरगंज स्थित जैन मंदिर से अजमेर के पुलिस अधिक्षक श्री एम. एन. भवन ने हरी झन्डी दिखाकर घट यात्रा का शुभारंभ किया । विभिन्न बैंडों की मधुर ध्वनि के बीच शुरू हुए इस घट यात्रा में केसरिया परिधान में 725 सौभाग्यवती महिलाएं अपने सिर पर मंगल कलश व श्री फल रखे हुए णमोकार मंत्र का उच्चारण करती हुई साक्षात इन्द्राणी ही दिखाई दे रही थी । दो किलोमीटर लम्बे इस जलूस में अपार जन समुदाय के साथ अनेकों हाथियों ऊंटो, घोड़ो, पांच रथ तथा अन्य सेठ साहब की नसियांजी की सवारियां सम्मिलित थी । एक रथ में श्री नेमीचन्दजी जैन, एवं उनकी पत्नी श्रीमती रतन देवी जैन भगवान् के माता पिता के रूप में विराजमान थी ।

यश सोभायात्रा केसरगंज से प्रारम्भ होकर मदन गोपाल रोड़, आर्य समाज रोड़, मार्टिन्डल ब्रिज, श्रीनगररोड़ गुलाब बाड़ी होता हुआ अरिहंत नगर पचं कल्याण स्थल पहुंचा । जहां पर कमेटी के संरक्षक श्री निर्मलचन्द जी सोनी, अध्यक्ष श्री श्रीपति जी जैन, महामंत्री श्री भगवान् दास जी जैन, तथा स्वागताध्यक्ष श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन ने सभी का स्वागत किया ।

मध्यान्ह मे तत्कालीन जिलाधीश श्रीमती अदिति मेहता ने फीता काटकर पंचकल्याणक मेले पण्डाल का विधिवत उद्घाटन किया । श्रीमती मेहता ने आयोजन को भूरि-भूरि प्रशंसा की और सफलता की कामना की । श्रीमती मेहता को महिला मंडल की अध्यक्षा श्रीमती मुन्नी देवी व श्रीमती माया देवी जैन ने माल्यार्पण कर स्वागत किया । इसके पश्चात् इन्द्रणियों की उपस्थिति में ही मंदिर, वेदी व भूमि की शुद्धि की गई । रात्रि में आरती, नृत्य व प्रवचन पश्चात् इन्द्र सभा, तत्वार्थ इन्द्रासन कंपित होना, कुबेर द्वारा रत्न वृष्टि, अष्ट देवियों एवं छप्पन कुमारी देवियों द्वारा माता मरूदेवी की सेवा व सोलह स्वपन्न दर्शन के तत्पश्चात् गर्भ कल्याणक की आंतिरक क्रियाओं का कार्यक्रम हुआ ।

गर्भ कल्याणक (उत्तर-रूप) (दिनांक २-२-९३)

आज प्रातः पूजन हुई रात्रि को गर्भ कल्याणक का उत्तररूप महाराजा नाभिराय का दरबार माता मरूदेवी द्वारा स्वप्न फल जिज्ञासा, महाराजा नाभिराय का फल बतलाना, सौधर्म इन्द्र द्वारा माता-पिता को भेंट समर्पण, अष्ट देवियों द्वारा माता की सेवा तथा प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम सुसम्पन्न हुआ । ब्रह्मचारिणी सरला बहिन व संगीता बहन के सानिध्य में बालिकाओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुए ।

बुधवार जन्म कल्याणक (दिनांक ३-२-९३)

दिनांक 3 फरवरी 1993 को प्रातः आदिकुमार का जन्म हुआ । जन्मोत्सव के अन्तर्गत समस्त इन्द्र इन्द्राणियों ने ताण्डव नृत्य कर भगवान् के जन्म को खुशियां मनाई । तथा नगर के मुख्य मार्गों पर भव्य शोभायात्रा निकाली गई । शोभायात्रा मदार से प्रारंभ होकर श्रीनगर रोड़, मार्टिन्डल ब्रिज, स्टेशन रोड़, नयाबाजार, आगरा गेट, जयपुर रोड़ होते हुए पटेल मैदान पहुँची ।

शोभायात्रा निकालने वाले सभी मार्गों पर स्वागत गेट लगाये गये व उनको सजाया गया था । विभिन्न वाद्य यंत्रों एवं बैंड बाजों के साथ निकाली गई दो किलोमीटर इस शोभायात्रा में नौ हाथी, छः ऊंट, इक्कीस घोड़े, द्वारा बालक सात स्वर्णमयी

रथों में सवारियाँ निकाली गयी । इन्द्र द्वारा बालक आदिकुमार को शोभायात्रा के रूप में धूमधाम के साथ गीत, भजन गाते उमंग और हर्षोल्लास के साथ शहर के मुख्य बाजारों से होता हुआ पटेल मैदान में बनाए गए नव निर्मित मेरू पर्वत पर अभिषेक हेतु लाया गया । शोभा यात्रा में हाथियों पर विराजमान इन्द्र इन्द्राणियाँ भगवान् बालक को साथ लेकर चल रहे थे ।

पटेल मैदान पर बैठी बीस से पच्चीस हजार जनता की गगन चुम्बी जयघोष के बीच सौधर्म बने अजमेर निवासी रविन्द्रकुमार जैन ने रत्न जड़ित कलश से बालक भगवान् का अभिषेक करने का सौभाग्य प्राप्त किया । बारह इन्द्रो द्वारा रत्न कलश, स्वर्ण कलश व रत्न कलश करने के पश्चात् हजारों व्यक्तियों ने ताम्र कलश से बालक आदिनाथ का अभिषेक कर अपने को धन्य किया ।

इसके पश्चात् इन्द्र अपने साथी इन्द्र इन्द्राणियों को लेकर पुनः बस स्टेंड, पलटन बाजार होते हुए महोत्सव स्थल पहुँचकर बालक भगवान् को माँ के पास रख उल्लासित होकर ताण्डव नृत्य करते हुए भक्ति विभोर हो उठे ।

शाम को आरती के पश्चात् भगवान् बालक आदिकुमार को अनेक प्रकार की बाल क्रीडाओं के द्वारा पालने में झुलाकर आनन्द मनाया गया । आज ही आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज ससंघ भी किशनगढ़ से चलकर आदिकुमार के जन्माभिषेक शोभायात्रा में सम्मिलित हुए ।

इसी दिन जैनाचार्य विद्यासागर महाराज की चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन हुआ जिसे देखने के लिए श्रद्धालुओं का ताँता लगा हुआ था । यह प्रदर्शनी जबलपुर के नवयुवक मंडल के तत्वाधान में लगाई गई । परम् पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज की 25 वर्ष पूर्व अजमेर में ही मुनि दीक्षा सम्पन्न हुई थी ।

तपकल्याणक (दिनांक ४-२-९३ गुरुवार)

आज बालक आदिकुमार के जन्म के बाद तपकल्याण के दिन बाल क्रीड़ा हुई । उसके बाद महाराजा नाभिराय के दरबार में बालक भगवान् का राज्याभिषेक किया गया तथा बत्तीस मुकुटबद्ध राजा सलामी के साथ राज दरबार में आए और नाभिराय को भेंट चढ़ाई । उसके बाद देवी नीलांजला का नृत्य करते करते अपने पार्थिक शरीर को छोड़ने का दृश्य देखकर महाराजा आदिनाथ को संसार की असारता का ध्यान होते ही वैराग्य भाव के बीजांकुर अंदर ही अंदर प्रबल हो उठे और उन्होंने राजपाट त्याग दिया व मोक्षमार्ग को प्रशस्त करने की ओर बढ़ चले ।

आज आदिनाथ की पालकी उठाने का प्रश्न आया तो मानवों एवं देवों में विवाद हो गया कि पालकी कौन उठावे ? इस संबंध में आचार्य श्री दर्शनसागर जी महाराज ने आगम के आधार पर यह स्पष्ट किया कि पालकी उठाने का अधिकार उसी व्यक्ति को है जो तात्कालिक जीवन से संयम धारण कर मोक्ष मार्ग पर चल सकता है आज यह कार्य देवों के लिए नहीं, मानव के लिए ही संभव है । इसी के पश्चात् आदिनाथ प्रभु को पालकी में बिठाकर जयघोष के बीच पूरे पण्डाल की परिक्रमा लगायी गई । रात्रि को डी.पी. कौशिक पार्टी मुजफ्फरनगर के द्वारा बहुत की सुन्दर रोचक एवं प्रभावपूर्ण सांस्कृति कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया ।

शुक्रवार ज्ञान कल्याणक (दिनांक ५.२.९३)

आज ज्ञानकल्याणक के अंतर्गत तपकल्याणक पूजा के पश्चात् महाराजा श्रेयांस के यहां आचार्य श्री दर्शनसागर जी महाराज द्वारा नव प्रतिमाओं को सूर्य मंत्र दिया गया फिर केवल ज्ञान का परत खुला । उसके बाद 46 दीपक से भगवान् की मंगल आरती की गई । समवशरण की रचना व केवलज्ञान का दिन था । मुनिराज ने भगवान बनने का पुरुषार्थ किया । तप करने के उपरांत एक ज्ञान प्राप्त हुआ जिसकी कि कोई सीमा नहीं और जिसमें कि समस्त चीजें झलक रही है । इसे जैनागम में "कैवलज्ञान" कहा जाता है ।

रात्रि में सुविख्यात फिल्म संगीतकार श्री रवीन्द्रजैन एण्ड पार्टी बंबई व उनके साथ दिल्ली की गायिका, हेमलता, कलकत्ता से आये श्री राजेन्द्र जैन संगीतकार द्वारा जैन भक्ति संध्या कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया ।

शनिवार मोक्ष कल्याणक (दिनांक ६-२-९३)

आज मोक्षकल्याणक में दो हाथियों द्वारा खीचें जाने वाले टीमकगढ़ (म प्र.) से लगाया गया विशेष गजरथ-समारोह का मुख्य आकर्षक रहा । गजरथ में नव निर्मित मंदिर में स्थापित की जाने वाली भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा को विराजमान कर मेला पाण्डाल की सात प्रदक्षिणा लगाकर गाजे बाजे के साथ प्रतिष्ठित कर दी गई । नव निर्मित मंदिर में भगवान् पार्श्वनाथ के अलावा भी कई मूर्तियां प्रतिष्ठित की गई । इसके पूर्व कैलाशपर्वत पर तीर्थंकर आदिनाथ ने ध्यान अवस्था में निर्माण (मोक्ष) प्राप्त किया । तत्पश्चात् निर्वाण कल्याणक पूजन के बाद विश्व शांति महायज्ञ की पूर्णाहुति हुई ।

इसी अवसर पर अजमेर निवासी श्री शांतिलाल जी ज्ञानचंदजी ने 16 हजार वर्ग गज भूमि स्वेच्छा से धार्मिक कार्यों के लिए दान दी । रात्रि को विराट कवि सम्मेलन हुआ जिसमें ख्याति प्राप्त कविगण सर्वश्री भूपेन्द्र जैन, विजेन्द्र चकोर, शबनम, कोटा के जगदीश सोलंकी, ममता शर्मा, प्रदीप चौबे, वेद प्रकाश शर्मा, डॉ. उर्मिलेश, बाबा निर्भय हाथरसी, गजानन मस्त पुरकर, नीलिमा जैन, मीनाक्षी दीक्षित ने अपने सभी श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर दिया ।

इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में परम् पूज्य आचार्य श्री के संघ में बाल ब्रह्मचारी उपाध्याय मुनि श्री समतासागरजी, मुनिराज श्रुतसागरजी, कुलभूषणजी, शिवसागरजी तथा क्षुल्लक महावीर कीर्ति जी का सानिध्य प्राप्त हुआ । इसी के साथ पं. सुमतिचन्द्रजी शास्त्री मुरैना, प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाशजी जैन फिरोजाबाद, डॉ. श्रेयांसकुमारजी जैन, पं. हेमचन्द्रजी शास्त्री के समय-समय पर प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त हुआ । महोत्सव में बाहर से आने वाले श्रद्धालुओं का तांता लग गया था । उनके भोजन व आवास की विशेष व्यवस्था की गई। मेले ग्राउन्ड पर ही 60 दुकानों का बाजार लगाया गया तथा मनोरंजन हेतु स्वचलित झूले आदि लगाये गए ।

नगर के विभिन्न मंदिर लाइटिंग डेकोरेशन से जगमगा हो उठे । पंचकल्याणक महोत्सव के दौरान सेठ साहब की नसियां जी में विशेष लाइटिंग की व्यवस्था की गई ।

मेला क्षेत्र में तैयार किए जाने वाले भव्य पण्डाल निर्माण का काम राजस्थान के सुप्रसिद्ध एवं ऐसे आयोजन के विशेषज्ञ महावीर टैंट हाऊस अजमेर को सौंपा गया । पंडाल क्षेत्र 50,000 वर्ग फुट था । प्रकाश सज्जा का काम न्यू महावीर लाइट कम्पनी आगरा को सौंपा गया । सजावट में 5000 बत्तियां व अन्य वस्तुएं प्रयोग हेतु दो ट्रक भरकर लाई गई । चौपड़ा साऊंड जयपुर को ध्वनि प्रसारण का काम सौंपा गया । मेला स्थान से स्टेशन तक लगभग 4 किलोमीटर लम्बे मार्ग के खंभों पर 100 हार्न लगाए गए । आधुनिकतम तकनीक पर फोर ट्रेक साऊंड सिस्टम लगाया गया । श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए 16 रंगीन सी. सी. टी.वी. लगाए गए । प्रो. राजेश जैन द्वारा वीडियो कैमरों से कार्यक्रमों का विभिन्न कोणों से संचालन कर सीधा प्रसारण किया गया ।

इस प्रकार अजमेर नगर यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अन्तर्गत दिनांक 31-1-1993 से 6.2.1993 तक अष्ट दिवसीय आयोजन एवं समारोह भव्यता एवं धर्म प्रभावना के साथ सुसम्पन्न हुआ । ❑❑❑

पंडित सदासुखदास जी कासलीवाल का अजमेर के जैन इतिहास में अपूर्व योगदान

लेखकः श्री पूनमचंद लुहाडिया

पण्डित सदासुख जी कासलीवाल की प्रेरणा व उनके निर्देशन में बना विश्व प्रसिद्ध श्री सिद्धकूट चैत्यालय अजमेर (सोनी जी की नसियां) एक अनुपम कृति है जो राजस्थान तो क्या भारतवर्ष में एक अद्भुत रचना है । इस गौरवमयी रचना में उनका अपूर्व योगदान रहा है ।

पं. सदासुखदास जी आचार्यकल्प पं. टोडरमल जी परम्परा के विद्वान थे । जिनने अपना सम्पूर्ण जीवन मां सरस्वती की उपासना में व्यतीत किया और ज्ञान रूपी महादान की परम्परा को आज तक अक्षुण्ण बनाये रखने का आपने ही पूर्ण श्रेय प्राप्त किया ।

पं. सदासुखदास जी का जन्म जयपुर में विक्रम सं. 1852 के आसपास हुआ । आपके पिता का नाम दुलीचन्द जी था। आपके पुत्र गणेशलाल जी थे उनके दत्तक पुत्र श्री राजूलाल जी हुए और राजूलालजी के पुत्र मूलचन्दजी थे, अब आपके वंश में कोई नहीं है।

मनिहारों का रास्ता, जयपुर में स्थित आपके मकान में एक चैत्यालय था जो आज भी डेडाकों का चैत्यालय कहलाता है पं. जी के पूर्वज डेडराज जी थे, अतः उन्हीं के नाम से 'डेडाका' कहलाने लगे ।

आप पं. मन्नालाल जी के शिष्य और पं. जयचन्द जी छाबड़ा के प्रशिष्य थे अतः आपके विचारों पर उनकी छाया पूर्ण रूप से पड़ी जान पड़ती है आपकी चित्तवृत्ति, सदाचारिता, आत्म निर्भरता, अध्यात्म रसिकता, विद्वता, सच्ची धार्मिकता, धर्मात्माओं

और साधर्मियों के प्रति वात्सल्य, जिनवाणी का निरन्तर स्वाध्याय चिन्तवन आदि से ओत प्रोत थी । आपमें सन्तोष, सेवाभाव और जिनवाणी के प्रति अपार स्नेह भक्ति थी । इसी कारण से आपका अधिकांश समय शास्त्र स्वाध्याय, सामायिक, तत्त्वचिन्तन, पठन-पाठन और ग्रन्थों के टीका तथा अनुवाद आदि प्रशस्त धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत होता था ।

आपकी एकमात्र लगन स्व-पर के भेद विज्ञानरूप आत्मरस के आस्वादन में ही मग्न रहने की थी फिर भी शास्त्रों के प्रति ममता आपके हृदय में अपना विशिष्ट स्थान रखती थी ।

पं. जी शास्त्र प्रवचन में वस्तु तत्व का निरुपण इस रूप में करते थे कि श्रोताजन मंत्रमुग्ध हो जाते और हमेशा सन्तुष्टि का अनुभव करते थे । कहा जाता है कि आपको राजकीय संस्था से जिनमें आप कार्य करते थे 8) या 10) मासिक वेतन मिलता था और वह बराबर 40 वर्षों तक उतना ही मिलता रहा । आपने उसमें कभी कोई वृद्धि नहीं चाही, जबकि उस विभाग में कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियों के वेतन में तिगुनी-चौगुनी तक वृद्धि हो चुकी थी । एक बार जयपुर महाराज की दृष्टि में यह बात आई और उन्होंने अपने कर्मचारियों को डांटा और पंडितजी से कहा कि - हम तुम्हारे कार्य से प्रसन्न हैं, तुम जितना कहो उतना वेतन बढ़ा दिया जाय ? पंडितजी ने कहा कि महाराज ! यदि आप सचमुच मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे काम के घण्टे 8 के स्थान पर घटाकर 4 कर दिये जाँय जिससे कि मैं और अधिक धर्म साधना कर सकूं । जयपुर महाराज ने उनके इस उत्तर से प्रसन्न होकर उनके काम के घंटे भी आधे घटा दिये और वेतन में भी दुगनी वृद्धि कर दी । पंडितजी ने बढ़ा हुआ वेतन लेने से इन्कार कर दिया । प्रारम्भ से ही आपको जैन शास्त्रों के अध्ययन की रुचि थी एवं शास्त्र ज्ञान भी अच्छा था । पं. मन्नालाल जी संगाका, जयपुर के पास आपने विधाभ्यास किया और कुलक्रम से बीसपंथी होते हुए भी तेरहपंथी शैली को आपने अपनाया ।

आपकी सर्वप्रथम रचना भगवती आराधना की हिन्दी वचनिका है दूसरी रचना सूत्रजी लघु टीका है । (3) सूत्रजी की बड़ी टीका - अर्थ प्रकाशिका (4) समयसार नाटक वचनिका (5) अकलंकाष्टक वचनिका (6) मृत्यु महोत्सव (7) रत्नकाण्ड श्रावकाचार, (8) नित्य नियम पूजा है । एक ऋषि मंडल पूजा भी आपने बनाई । पं. नाथूलाल जी दोसी, पं. पारसदास जी निगोतिया, पं भोलीलाल जी सेठी, विजयलाल जी, आनन्दीलालजी, सेठ मूलचन्द जी सोनी अजमेर आदि आपके प्रमुख शिष्य थे । इस समय आपने बहुतों को ज्ञानदान दिया । पंडित जी की विद्वता और सेवा कार्य की प्रशंसा आरा, अजमेर, आगरा आदि प्रसिद्ध नगरों तक थी ।

लगभग 70 वर्ष की वृद्धावस्था में पंडितजी के जीवन में एक ऐसा मोड़ आया जिसके कारण पंडितजी परेशान हो गए एकमात्र सहारा 20 वर्षीय पुत्र गणेशलाल जो सुयोग्य और अच्छे विद्वान बन गए थे वह इस नश्वर देह का त्याग कर दुनिया से उठ गए । पण्डित जी पर वज्रपात सा हो गया । तत्पश्चात् अजमेर निवासी प्रसद्धि सेठ श्री मूलचन्दजी सोनी (सेठ श्री भागचन्दजी सोनी के दादा) ने आपको ढाढस बंधाया और कहा कि गणेशलाल नहीं तो मैं उसकी जगह मौजूद हूं और सेठजी पं. सदासुखदास जी को अजमेर ले आये और फिर वह अजमेर में ही रहने लगे ।

जब उन्हें अपनी इस पर्याय के अन्त होने का आभास होने लगा तो उन्होंने जयपुर से अपने प्रधान शिष्य पं. पन्नलाल संघी एवं भोलीलालजी को अपने पास अजमेर में बुलाया और अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा अब मैं इस अस्थायी पर्याय से विदा होता हूँ मैने और मुझसे पूर्ववर्ती विद्वानों ने असीम परिश्रम करके अनेक उत्तमोत्तर ग्रंथों की सुलभ भाषा बचनिकायें बनाई हैं और नवीन ग्रन्थ भी बनाये हैं ।

परन्तु देश-देशांतरों में उनका जैसा प्रचार होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ है और तुम इस कार्य के सर्वथा योग्य हो तथा जैन धर्म के मर्म को भी अच्छी तरह समझ गए हो । अतएव मैं गुरु दक्षिणा में तुमसे केवल यही चाहता हूँ कि जैसे बने वैसे इन ग्रन्थों के प्रचार का प्रयत्न करो । वर्तमान समय में इसके समान पुण्य का और धर्म की प्रभावना का अन्य कोई दूसरा कार्य नहीं । उनकी अन्तिम इच्छा यही थी कि समाज में मिथ्यात्व और शिथिलाचार न फैलने पावे, विद्वानों और सत्साहित्य प्रकाशन की परम्परा सदा कायम रहे, पंडितजी के आदेश पालन की सबने प्रतिज्ञा की, कार्यान्वित भी किया और हस्तलिखित ग्रन्थ सारी जगह भेजे गए ।

पण्डितजी ने अन्त समय में सर्वसंकल्प विकल्पों को छोड़कर अजमेर में ही समाधिमरण लेने की भावना अपने शिष्यों से व्यक्त की थी जो भगवती अराधना की टीका प्रशस्ति के निम्न दोहों से प्रकट है :-

मेरा हित होने को और, दीखै नाहिं जगत में ठौर ।
यातैं भगवती शरण जु गही, मरण आराधन पाऊ सही ॥

हे भगवति ! मेरे परमार्थ मरण समय मत होउ विषाद । -
पंच परमगुरु पद करि ढोक, संयम सहित लहूं परलोक ॥

वास्तव में पण्डितजी का जीवन एक आदर्श जैन गृहस्थ विद्वान का जीवन और मरण एक पण्डितमरण था । प्रत्येक ज्ञानी सद्गृहस्थ को इसी प्रकार के जीवन और इसी प्रकार की मरण की भावना भाना चाहिए ।

पूनमचन्द लुहाड़िया

प्रस्तोता - अभयकुमार जैन

सोनी परिवार

राजस्थान की वीर प्रसविनी भूमि ने जहाँ महाराणा प्रताप जैसे स्वतंत्रता प्रेमी और स्वदेशाभिमानी वीर पुरुषों को पैदा किया है, वहाँ उसने अनके धार्मिक और समाजसेवी मानवों को भी जन्म दिया है । आज जिन व्यक्तियों की धर्मभावना और समाजसेवा से अजमेर नगर ही नहीं समस्त जैन व जैनेतर भारतीय परिचित हैं, वे हैं सोनी परिवार के पराम्परागत व्यक्ति, जिनके पूर्वज अजमेर आकर बस गये थे । इनमें सेठ जवाहरमलजी के पुत्र रा. ब. सेठ मूलचन्दजी सोनी प्रमुख थे । इनका जन्म वि. सं. 1887 में पौष कृष्णा 15 को हुआ था । आप धर्मवीर रा. ब. सर सेठ भागचन्दजी सोनी के प्रपितामह थे । सोनी वंश के उज्ज्वल नक्षत्रों का निम्न संक्षिप्त परिचय निश्चय ही पठनीय और आचरणीय है ।

सेठ जवाहरमलजी सोनी

आपके पूर्वज राजस्थान के अन्तर्गत किशनगढ़ राज्य के निवासी थे और आज से लगभग 170 वर्ष पूर्व किशनगढ़ छोड़कर व्यवसायोन्नति के लिए अजमेर आ गये थे । आपके पूर्वजों द्वारा बनाई गई हवेली वहीं पर अब भी विद्यमान है । अजमेर आने पर ही जवाहरमल गंभीरमल फर्म का सूत्रपात 140 वर्ष पूर्व हुआ ।

इस फर्म के संस्थापक रा. ब. सेठ मूलचंदजी सोनी के पिता श्री सेठ जवाहरमल जी थे और इनसे इस प्रख्यात सोनी वंश की अभिवृद्धि प्रारम्भ हुई । एक ओर जहां वैभव का विकास प्रारम्भ हुआ, वहीं धर्मभावना भी उत्तरोत्तर बढ़ती गई । सेठ जवाहरमलजी ने अब से 125 वर्ष पूर्व श्री पं. सदासुखजी काशलीवाल जयपुर के परामर्श एवं सहयोग से स्वनिर्मापित श्री महापूत जिनालय में स्वर्णमयी समवशरण रचना जयपुर के चतुर कारीगरों से तैयार कराई थी । श्री पं. सदासुखजी उस समय के सुयोग्य भाषानुवादकर्त्ता, शस्त्रज्ञ, प्रतिभाशाली वक्ता और धर्मनिष्ठ विद्वान थे । सेठ जवाहरमलजी व सेठ मूलचन्दजी का इनसे अत्यन्त घनिष्ठ धार्मिक संबन्ध था ।

सेठ जवाहमलजी अत्यन्त सरल और उदार व्यक्ति थे, इनकी धर्म में अत्यधिक रुचि थी । प्रतिदिन स्वाध्याय, पूजन, सामायिकादि कर्म बड़े उत्साह और तत्परता से सम्पन्न किया करते थे । धार्मिक जन वात्सल्य तो इनमें कूट-कूटकर भरा था । इन्होंने आज से 125 वर्ष पूर्व जब देश में यातायात के साधन सुलभ नहीं थे, मार्ग भी निरापद नहीं, तब एक हजार यात्रियों को साथ लेकर श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रार्थ यात्रा संघ का संचालन किया था । यह संघ सात माह बाद लौटकर अजमेर आया । इस संघ की सभी सुख सुविधायें आपने रखी और सर्वसंघ को यात्रा में निराकुल रखकर महती धर्म प्रभावना की ।

आपने अपनी हवेली के सामने वि. सं. 1912 में श्री महापूत जिनालय का निर्माण कर अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग किया । यह जिनालय अपनी भव्यता एवं कला के लिए आज भी अद्वितीय है ।

आपकी व्यापार जगत में बड़ी साख हो गई थी । आप अपनी धार्मिक वृत्ति के कारण काफी जनप्रिय थे ।

राय बहादुर सेठ मूलचंद जी सोनी

रा. ब. मूलचन्दजी सोनी इस परिवार के जाज्वल्यमान रत्न थे । आपने अपनी धर्म भावना से प्रेरित होकर श्री महापूत जिनालय और श्री सिद्धकूट चैत्यालय जैसी अनुपम कृतियों का निर्माण व संवर्धन किया । आज इनके द्वारा निर्मित "नशियाँजी"

भारत में ही नहीं विदेशों में भी अपनी गरिमा और कला के लिये विश्रुत है । वि. सं. 1919 में नगर के बाहर नशियांजी निर्माण का संकल्प किया और वि. सं. 1922 में इसका निर्माण होकर भगवान् आदिनाथ प्रभु महती प्रभावना के साथ विराजमान किये गये । इस कार्य में जयपुर निवासी पं. सदासुखजी काशलीवाल का सत्परामर्श रहा । तत्पश्चात् नशियांजी के भव्य भवन और उसमें अयोध्या नगरी की स्वर्णमयी कलात्मक रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ, जो 25 वर्ष में जयपुर में बनकर तैयार हुआ और अपने जीवनकाल में ही सेठ सा. द्वारा विराजमान कर दी गई । इस रचना में निर्माण की समाप्ति पर आपने जयपुर में एक बड़ा उत्सव किया, जिसमें लगभग एक लाख धार्मिकों ने सम्मिलित होकर पुण्य लाभ लिया । आप बड़े सरल स्वभावी, निरभिमानी, उदार, धर्मवत्सल और कट्टर धार्मिक व्यक्ति थे । समाज सेवा इनके जीवन का प्रधान अंग बन गई थी ।

आपका स्वाध्याय प्रेम अटूट था । स्वयं वक्ता बनकर शास्त्र सभा का आयोजन करते थे । आपकी धारणा थी कि जब तक साधारण जनता में ज्ञान और आचरण का प्रचार नहीं होगा, तब तक जैनधर्म और जैनवर्ग की उन्नति कदापि नहीं हो सकती है । इसी विचार से प्रेरित होकर आपने महापूत जिनालय में विद्वानों द्वारा शास्त्र पठन पाठन की व्यवस्था की । श्री पं. सदासुखजी के बाद जयपुर के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों के सम्पर्क में आप रहे । अजमेर में श्री पं. बलदेवदासजी, पं. गोपालदासजी, पं. मथुरादास जी; पं. नरसिंहदासजी प्रभृति विद्वाना आपके पास रहे । आप स्वयं श्रोता बनकर बैठते और मन्दिरजी में दर्शनार्थ आने वाले व्यक्तियों को प्रेरित करते । आपने अनेक स्तोत्रों और तत्त्व चर्चाओं को मन्दिरजी की दीवारों पर लेखबद्ध कराया ताकि स्वाध्याय की प्रवृत्ति लोगों में बढ़ सके । बालकों में धर्मशिक्षा के प्रचार के लिये आपने अनेक प्रयत्न किये । पाठशालाओं की स्थापना, पारितोषिक पुरस्कार आदि द्वारा बालकों को उत्साहित करना आपका सामयिक कार्यक्रम था ।

जैन जनता में शुद्ध आहार-विहार का प्रचार करने के लिये स्वयं के व्यय से हवेली पर शुद्ध तैल, शुद्ध घी, बूरा आदि की व्यवस्था कर रखी थी । आप स्वयं शुद्धाहार करते थे । सामूहिक व्रत पालन करने की प्रथा के आप पक्षपाती थे । आपने सोलहकारण, रत्नत्रय व्रत आदि अनेक व्रतों की शास्त्रोक्त विधि से दृढ़तापूर्वक साधना की थी और व्रतोद्यापनों में अपना धन सार्थक किया ।

जैन शास्त्रों के लेखन और उपकरण निर्माण के लिये आपने जयपुर दुकान में एक शाखा ही खोल दी थी, जिसमें शास्त्र लिखाकर और उपकरण बनाकर सारे भारत में भेजे जाते थे ।

आप भा. दि. जैन महासभा के संस्थापकों में से थे । इस संस्था के द्वारा जैनधर्म पर आये हुए अनेक संकटों और बाधाओं का निवारण होता था और हो रहा है । जैन तीर्थ क्षेत्रों के अनेक झगड़े आपके सतत उद्यम और लगन से समाप्त हुए और कई स्थानों पर आपने रथयात्राएं चालू कराईं ।

वि. सं. 1924 में आपने यात्रा संघ साथ लेकर गिरनार सिद्धक्षेत्र की यात्रा की और यात्रा के अन्तर्गत आये हुए चैत्यालयों और धर्मायतनों को धन और उपकरण समर्पित किये । आप दक्षिण यात्रा में श्रवणबेलगोला व मूडबिद्री भी पधारे । इस महान संघ द्वारा जैनधर्म का विशेष उद्योत हुआ। उस समय आपने धवलादि सिद्धान्त ग्रंथों के लिये बहुत प्रयत्न किया ।

अपनी समाज और जन सेवा के कारण आपकी लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई । अजमेर के नागरिकों में आपका नाम आपके सेवा कार्य से विख्यात था । छोटे या बड़े सामाजिक कार्यों में आपका प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग रहता था । अंग्रेजी सरकार, राज दरबार और जैन व जैनेतर समाज में आपकी अपूर्व प्रतिष्ठा थी । आप "रायबहादुर" पद से सम्मानित थे । आप म्युनिसिपल कमिश्नर और आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी थे । आपकी समाज सेवा की परम्परा का लोग अब भी स्मरण करते हैं ।

व्यापार के क्षेत्र में आपने अपने बुद्धि चातुर्य और साहस से वह कार्य किया कि आप राजपुताने के श्रेष्ठ व्यवसायी माने जाने लगे । आपकी कई कोठियां बम्बई कलकत्ता आदि भारत के प्रमुख नगरों में थी । सत्यांश यह है कि आपके द्वारा ही सोनी परिवार के यशोमहल की नींव पड़ी और आप उसमें महान स्तम्भ बने । 72 वर्ष की आयु में आपने अपनी जीवन लीला सवरण की परन्तु आपका यश सूर्य के प्रकाश के समान अब भी सर्वतः आलोकित कर रहा है ।

राय बहादुर सेठ नेमीचंदजी सोनी

आपके सुपुत्र श्री रा. ब. सेठ नेमीचंदजी सोनी आपके ही अनुरूप थे । आपका जन्म वि. सं. 1913 में हुआ था । आपने अपने पूज्य पिताजी द्वारा लगाये हुए कार्यांकुरो को पनपाने में अपना मनोयोग लगाया और अपनी वंश परम्परागत ख्यातियों का संरक्षण किया । आपका जीवन अत्यन्त सरल और त्यागमय रहा । आप सतत स्वाध्यायशील थे और मन्दिरजी में पर्व के अवसरों पर व्याख्यानादि द्वारा श्रोताओं को आनन्दित कर देते थे । वैसे तो प्रतिदिन आपका स्वाध्याय, पूजन, नियम आदि का कार्यक्रम नियत ही था । आपने अनेक व्रत किये और उनकी पूर्णता पर नाना प्रकार के उपकरणों का धर्मायतनों में दान दिया था । साधर्मीजनों से आपका अति अनुराग था । साधर्मी विद्वानों को बुलाकर उन्हें सत्कृत करने में आपको बड़ा आनंदानुभव होता था ।

आपने संस्कृत का अध्ययन किया था और उर्दू में रुचि होने के कारण गुलिस्तां बोस्तां भी पढ़ी थी । दिगम्बर जैन तीर्थों की यात्रा करने में आपको विशेष रुचि रही । आपने स्वयं पूज्य पिताजी के साथ कई तीर्थ यात्राएं की । आपने जीवन में तीर्थों को जहां धन का भारी योग दिया, वहीं तीर्थों की रक्षा करने में भी आपका पूर्ण सहयोग रहा। सम्मेदशिखरजी के केस के संबंध में मधुबन में अब से करीब 65 वर्ष पूर्व प्रथम मीटिंग हुई थी । आपने उसमें तत्काल सम्मिलित होकर क्रियात्मक योग दिया था । सिद्धकूट चैत्यालय (नशियांजी) की जो भव्य दर्शनीय और कलात्मक बारादरी बनी हुई है, उसका निर्माण आप ही के द्वारा कराया गया था ।

आपकी सरलता के उदाहरण आज भी लोकश्रुति बने हुए हैं । जनसाधारण के संकेत मात्र पर आप उसकी आवश्यकता पूरी करने के अभ्यासी थे ।

आपको सरकार व देशी रजवाड़ों में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त थी । जैन समाज का नेतृत्व तो आपको विरासत में मिला था। आप "रायबहादुर" पद से तो सम्मानित थे ही, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट और म्यूनिसिपल कमिश्नर भी रहे । प्रथम महायुद्ध में आपने ब्रिटिश सरकार की सहायता की थी । व्यावसायिक क्षेत्र में भी आपने प्रगति की और स्ववंशोन्नति के लिये अनेक उल्लेखनीय कार्य किये ।

वि. सं. 1974 में आपका स्वर्गवास हुआ ।

धर्मवीर रा. ब. सेठ टीकमचंद सी सोनी

सेठ टीकमचंदजी सोनी का जन्म वि. सं. 1939 में हुआ । आप बड़े धर्मात्मा, उदार, निरभिमानी और सरल स्वभावी व्यक्ति थे । सिद्धकूट चैत्यालय (नशियांजी) में प्रतिदिन पूजन, स्वाध्याय आदि नित्य कर्म करना आपका नियमित चला करता था, आपका दैनिक जीवन धर्ममय था । स्वाध्याय की ओर अधिक रुचि थी । अत: विद्वानों का जीवन भर समागम बनाये रहे । प्रत्येक धर्म कार्य में इनका सहयोग होता था । कहीं भी धार्मिक कार्य में कोई बाधा उपस्थित होती तो आपको तब तक चैन नहीं पड़ता था, जब तक कि उसका निवारण नहीं हो जाता था । समाज के कार्यों में अग्रसर रहना आपका स्वभाव था । आप जैन समाज की अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष थे । आप दो बार भा. दि. जैन महासभा के सभापति चुने गये । खंडेलवाल दिगम्बर महासभा ने भी आपको सभापति पद से दो बार सम्मानित किया था आपकी धार्मिक सेवा व धर्मवृत्ति के कारण ही आपको 'धर्मवीर' की पदवी से अलंकृत किया गया था ।

आपका स्वभाव अत्यन्त कोमल था । कोई भी व्यक्ति आपके सम्पर्क में आ जाता तो वह आपसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता । आपकी दयालुता की जनश्रुतियां अब भी लोगों के मुख से सुनने में आती है ।

आपने अपने पिताजी श्री रा. ब. सेठ नेमीचंदजी की स्मृति में एक विशाल धर्मशाला का निर्माण कराया । वह अजमेर की प्रख्यात धर्मशाला है । आपने पूज्य 108 मुनिराज श्री चन्द्रसागरजी महाराज के सदुपयोग से नशियांजी में एक विशाल मानस्तम्भ बनाने का शिलारोपण किया जिसकी पूर्ति आपके सुपुत्र सर सेठ भागचंदजी सोनी ने की यह जैन संसार का 82 फुट ऊंचा अपनी कला का एक विशालतम मानस्तम्भ है । नशियांजी के भीतरी भाग जो राजपूती कला का स्वर्णमय कार्य हुआ है, वह आपकी भक्तिभावना का फल है ।

आपने सन् 1927 में शिखरजी की यात्रा का संचालन किया था, उसमें आपने अत्यन्त उदारता व सहृदयता से योग दिया। तेरापंथी कोठी में 'मुख्य द्वार' व बाद में "प्रभाचंद गेट" आपके द्वारा ही निर्मापित किये गये थे । यात्रा के समय में आपने अनेक उपकरण किये । श्री पावापुरीजी क्षेत्र के लिये पूरी जमींदारी लेकर और मंदारगिरी में धर्मशाला का निर्माण कराया ।

आपकी सामाजिक सेवाएं उल्लेखनीय है । ऑनरेरी मजिस्ट्रेट और म्युनिसिपल कमिश्नर भी रहे । आपकी सर्वप्रियता के कारण ही आपको जयपुर जोधपुर रियासतों द्वारा स्वर्ण कटक व ताजीम किया गया था । सोनी वंश परम्परा में आप "रायबहादुर" थे ।

व्यावसायिक क्षेत्र में आपने फर्म की प्रतिष्ठा में चांद लगा दिये थे । बी. बी. एण्ड सी. आई. रेल्वे के खजांची और आप कई देशीय रेल्वे के ट्रेजरार रहे । कई रजवाड़ों का खजाना आपके द्वारा संचालित होता था । आपके समय में फर्म की कई नई कोठियां खोली गई और व्यवसाय में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हुई ।

वि सं. 1990 में आपका आकस्मिक स्वर्गवास हो गया ।

श्री दानवीर, जैन जाति शिरोमणि, धर्मवीर कैप्टिन राजयबहादुर सर सेठ भागचंदजी सोनी

राजस्थान के अन्तर्गत अजमेर नगर का यह सोनी परिवार अत्यन्त प्राचीन व अपनी धर्म, समाज एवं जनसेवा के लिये ही लगभग दो शताब्दी से प्रसिद्ध रहा है । इस घर में लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही का सतत आवास रहा है । इसी कारण
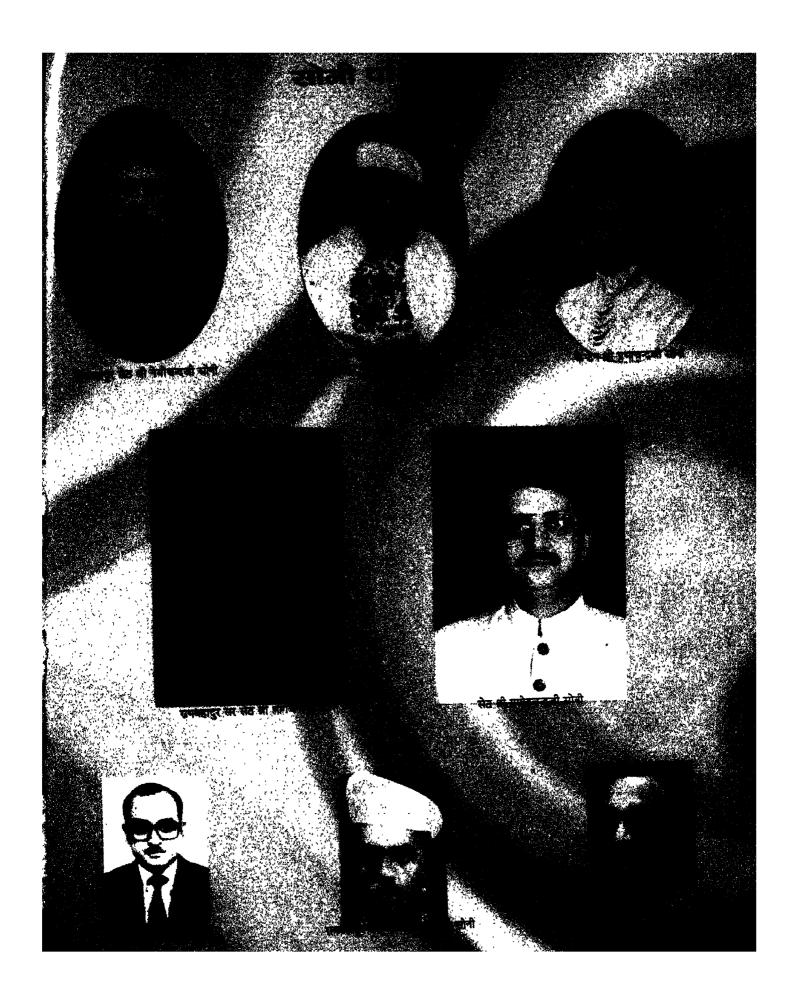
इस परिवार के पूर्वजों द्वारा जो भी धर्म एवं समाज संबंधी ठोस कार्य हुए हैं, उनका विवरण देना कोई सरल कार्य नहीं है। इस परिवार के उत्तराधिकारियों ने अपनी परम्परा के अनुसार जिस उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है वह अजमेर नगर के इतिहास में ही नहीं, भारतीय जैन समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता रहेगा। श्री रा. ब. सेठ टीकमचंदजी सोनी के तीन पुत्र हुए जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का अल्पवय में ही शरीरान्त हो गया। द्वितीय पुत्र श्री सर सेठ भागचंदजी सोनी हैं, आपके छोटे भाई श्री दुलीचंदजी सोनी युवावस्था के प्रारम्भ में ही दिवंगत हो गये थे।

सर सेठ साहब का जन्म 11 नवम्बर सन् 1904 को इस यशस्वी परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री रा. ब. सेठ टीकमचंदजी सोनी व माता श्रीमती रूपवती देवी जी थीं। आप दोनों ही बड़े धार्मिक, उदार व सेवाभावी थे। अहर्निश परोपकार करते हुए आत्म कल्याण में तत्पर रहते थे।

स्वानामधन्य प्रतिभावान जीवन्त व्यक्तित्व के धनी श्री सर सेठसाहब की शिक्षा स्थानीय गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में हुई। विशेष शिक्षा स्थानीय गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में हुई। विशेष शिक्षा का योग घर पर ही योग्य विद्वानों द्वारा प्राप्त हुआ। आप हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं का पूरा-पूरा ज्ञान रखते हैं और इन भाषाओं के साहित्य में अमित रुचि है। अनेक साहित्यिक विद्वान आपके प्रसंग में सतत आते रहे हैं। जैन धार्मिक विद्वान तो शायद ही कोई ऐसा हो जो आपके सम्पर्क या प्रसंग में न आया हो, आपका धार्मिक ज्ञान परिपक्व है। आपकी संगीतप्रियता प्रशंसनीय है। साहित्य, फोटोग्राफी, उद्यानप्रियता व हिन्दी उर्दू की कविताओं में आपकी विशेष रुचि है। किसी भी विषय का सूक्ष्म विश्लेषण करना और किसी निष्कर्ष पर पहुँचना ही आपकी ज्ञान गरिमा का लक्ष्य है। आपकी वक्तृत्व शैली मधुर व प्रभावक है। परिणामतः समस्त दिगम्बर जैन समाज आपको अपना अग्रणी नेता मानता है। आपका व्यक्तित्व आकर्षक है। आपके पूर्वजों ने सदियों से समाज का श्लाघ्य नेतृत्व किया और वही परम्परा अब भी अक्षुण्ण चली आ रही है।

आपका प्रथम विवाह श्रीमन्त रा. ब. रा. रा. सरसेठ हुकमचन्दजी सा नाइट इन्दौर की प्रथम पुत्री सौ. तारादेवीजी के साथ हुआ। आप अत्यन्त उदार, दक्ष और शिक्षित महिला थीं। आपसे एक पुत्र कुंवर प्रभाचन्दजी सोनी बी. ए. और एक पुत्री सौ. चाँदराजाबाई प्रभाकर हुई। कु. प्रभाचंदजी सोनी का जीवन अल्प ही रहा। आप बड़े होनहार, उदार और मेधावी युवकरत्न थे।

आपका दूसरा विवाह बुरहानपुर निवासी सेठ केशरी-मलजी लुहाड़िया की सुपुत्री सौ. रत्नप्रभादेवीजी से हुआ। आप सुशिक्षित, उदार, कार्यकुशल, धर्मात्मा सद्गृहणी हैं, दैनिक नित्य कर्मों में सदोत्साही हैं। आपसे दो पुत्र हैं कुंवर निर्मलचन्दजी सोनी बी. एससी., एल. एल. बी. मद्रास में व्यवसाय कर रहे हैं और द्वितीय पुत्र कुं. सुशीलचन्दजी सोनी कलकत्ता में एक फैक्ट्री के संचालक हैं। तीसरी कन्या सौ. राजनन्दिनीबाई हैं।

अपने पूज्य पिताजी के स्वर्गारोहण के बाद जीवन के तीन दशक समाप्त होने पर सरसेठ सा. "जुहारमल गंभीरमल" फर्म के उत्तराधिकारी हुए। इस छोटी अवस्था में सारा कार्य आपके ऊपर आ पड़ा। इसी वर्ष आप सेन्ट्रल असेम्बली में बड़े बहुमत से निर्दलीय सदस्य चुन कर गये। अजमेर प्रान्त की जनता ने इस परिवार के साथ अपना स्नेह औदार्य प्रदर्शित किया। आपने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण व्यवसाय में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। भारत के मुख्य-मुख्य नगरों में आपकी व्यापारिक कोठियां है। आपका प्रमुख व्यवसाय हुंडी, चिट्ठी, साहूकारी व बैंकिंग रहा। आपके द्वारा टैक्सटाइल मिल व जीनिंग प्रैसिंग फैक्ट्री का संचालन भी होता था। आपके माइनिंग डिपार्टमेन्ट में पन्ना व अभ्रक का उत्पादन होता था। भारत में पन्ने की प्रथम खोज का श्रेय केवल इसी एक फर्म को है। भिन्न-भिन्न नगरों में इस फर्म की अनेक शाखायें थी।

अंग्रेजी शासन काल में आप बी. बी. एण्ड. सी. आई. रेल्वे के ट्रेजरर रहे और देशी रियासती रेल्वे जोधपुर, जयपुर और उदयपुर राज्य रेल्वे के खजांची रहे। व्यापारिक क्षेत्र में आपके व्यावसाय की धाक थी। राज्य सरकारें आप पर विश्वास रखती थीं अतएव आप भरतपुर, धौलपुर, शाहपुरा स्टेट के ट्रेजरर रहे और ग्वालियर, जोधपुर, भरतपुर, रेजीडेन्सी के खजांची रहे। आप भारत की कई प्रमुख कम्पनियों के डाईरेक्टर रहे तथा भारत के प्रमुख व्यापारियों में आपकी गणना की जाती रही है।

ब्रिटिश सरकार के समय में आपके पूर्वजों ने एक शताब्दी तक सुयोग्य सम्मान प्राप्त किया था। उल्लेखनीय है कि आपकी चार पीढ़ियाँ "रायबहादुर" पद से लगातार विभूषित रही हैं। अआप अपने जीवन के अभ्युदय काल में अजमेर मेरवाड़ा प्रदेश की ओर से केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली के मेम्बर चुने गये और सन् 1935 से सन् 1945 तक सदस्य रहे। राजस्थान चैम्बर ऑफ कामर्स के आप वर्षों से सम्माननीय संरक्षक हैं।

स्थानीय नगर परिषद् में सन् 1929 में कमिश्नर का पद आपने सुशोभित किया और सन् 1942 से 1946 तक आप म्युनिसिपल कमेटी के चेयरमैन रहे।

शासकीय गतिविधियों में भी आपका पूर्ण समादर रहा । आप 1929 से 1956 तक फर्स्ट क्लास ऑनरेरी मजिस्ट्रेट रहे। जनवरी सन् 1935 में आपको "रायबहादुर" पद से अलंकृत किया गया । आपकी सार्वजनिक सेवाओं के कारण जनवरी सन् 1941 में आप ओ. बी. ई. बनाये गये । इतना ही नहीं जून सन् 1944 में आपको "सर नाइट हुड" पद से सम्मानित किया गया ।

आपकी जनप्रियता और लोक सेवा के कारण सन् 1935 में आप सेन्ट्रल जेल अजमेर और डिटेन्सन जेल देवली के लगातार नॉन ऑफिसियल निरीक्षक रहे । आपकी सेवाओं और व्यक्तित्व के फलस्वरूप सन् 1953 में भारत सरकार के राष्ट्रपति महोदय ने "ऑनरेरी कैप्टिन" पद से सुशोभित किया । वैसे आप सन् 1944 से इण्डियन टेरी टोरियल आर्मी में ऑनरेरी कैप्टिन घोषित किये जा चुके थे ।

जैन समाज को दी गई आपकी सेवाओं का विवरण देना वास्तव में एक कठिन कार्य है । आप दि. जैन विद्यालय और दि. जैन औषधालय के जहाँ संरक्षक है वहीं जैन समाज की अनेक शिक्षा संस्थाओं के सभापति हैं । आपका शिक्षा प्रेम अगाध है । आपने अपने पूज्य पिताजी की स्मृति में "टीकमचंद जैन हाई स्कूल" की स्थापना की और वर्षों तक उसका संचालन किया । श्री भाग्यमातेश्वरी कन्या पाठशाला अब भी आपके संरक्षण में आपके द्वारा संचालित है ।

आपके सम्पादित सेवा कार्यों के उपलक्ष में जैन समाज द्वारा आपको जैन जाति शिरोमणि, दानवीर जैसी उपाधियों से सम्मानित किया गया है । आप अ. भा. दि. जैन महासभा के वर्षों तक सभापति और अब संरक्षक हैं । भा. दि. जैन तीर्थ रक्षा कमेटी के लम्बे अरसे से उपसभापति हैं ।

आपने श्री सिद्धकूट चैत्यालय नशियांजी में 82 फुट ऊंचा विशिष्ट कलापूर्ण श्वेत मानस्तम्भ निर्माण कर नशियांजी की शोभा वृद्धि ही नहीं की है अपितु जैन संसार में एक अभूतपूर्व धर्मायतन की रचना कर डाली है । जिनवाणी माता के आप परम भक्त ही नहीं, साहित्य और शास्त्र सुरक्षा में आपकी दुरदर्शिता अनुकरणीय है । आपने अपने संकल्प से नशियांजी में एक विशाल सरस्वती भंडार का निर्माण परमपूज्य आचार्य विद्यासागरजी महाराज के चरण सानिध्य में कराया । ग्रन्थ संग्रह की यह पूरी योजना कुछ ही समय में एक अद्वितीय विशाल ग्रन्थागार के रूप में साकार होगी । साहित्यिक रुचि की परिपुष्टि के लिये इस ग्रन्थागार के अतिरिक्त आपके साधन बहुत ही उत्तम हैं । आपका एक निजी पुस्तकालय है जिसमें लगभग सात हजार पुस्तकें संग्रहीत हैं ।

क्रीड़ा के क्षेत्र में आपकी लगन और उत्साह प्रशंसनीय रहा है । आप फुटबाल और क्रिकेट एसोसिएशन के सक्रिय सदस्य रहे हैं । राजपूताना ओलम्पिक एसोसिएशन के कई वर्षों तक लगातार आप सभापति रहे चुके हैं । संगीत से आपको प्रारम्भ से ही रुचि रही है, भक्ति भावना से प्रेरित होकर जब भी आप कोई संगीतमय पद बोलते हैं तब आप और आपके श्रोता भावविभोर हुए बिना नहीं रहते हैं । आप अजमेर म्यूजिक कॉलेज के दीर्घकाल से प्रधान हैं ।

राजस्थान व मुख्यतया अजमेर नगर की तो शायद ही कोई प्रमुख संस्था हो जिसके कार्यकर्त्ता न रहे हों या जिसमें आपका किसी न किसी रूप में योगदान न हो । किसी के आप संरक्षक हैं तो किसी के सभापति या उपसभापति हैं । आप सावित्री कन्या महाविद्यालय के उपसभापति हैं । इस प्रकार अनेक सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में आपका सहयोग रहा है ।

आप जैन समाज के तो नररत्न हैं ही, जैनेतर समाज भी आपकी सेवाओं द्वारा उपकृत है और आपको सदा ही आदर व श्रद्धा की दृष्टि से देखता है ।

परिणामतः यशःपुंज सोनी परिवार के अग्रगण्य रा. ब. सेठ मूलचंदजी सोनी द्वारा जिस श्रीवृद्धि का बीजारोपण हुआ था, उसमें आने वाले यशःपूतों का सराहनीय सुयोग रहा और यह परिवार अपने देश, जाति, समाज और राष्ट्र की सेवाओं में सक्रिय योग देने के कारण सम्मानास्पद है । इस परिवार के द्वारा दी गई सहयोग राशि का विवरण रूप में यदि संकलन किया जाय तो वह पचास लाख से कम नहीं होगी । इनके द्वारा मुक्तहस्त से जैन व जैनेतर संस्थाओं को बिना किसी भेदभाव के दान दिया गया ।

आज भी यह ध्रुव सत्य है कि जहां अथवा जिस समारोह में गुलाबी पगड़ी से सुशोभित धवल कीर्तिधारी सर सेठ साहब पहुँच जाते हैं, वह परिपूर्ण माना जाता है और जहाँ कदाचित नहीं पहुंच पाते हैं, वहां लोग दृष्टि दौड़ाते ही देखे जाते हैं ।

जहां तक इस कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, यह निःसन्देह है कि इस परिवार के सभी व्यक्तियों को ब्रिटिश सरकार द्वारा मान्यता रही है और देशी रियासतों द्वारा इस परिवार को श्लाघनीय सम्मान प्राप्त होता रहा है । जनता और हमारी सरकार भी इस परिवार को बड़ी समादर की दृष्टि से देखती रही हैं । राजस्थान के लगभग सभी राजघरानों से इस परिवार का घनिष्ठ संबंध रहा है । साधारण नगर जनता तो इनकी समाजसेवाओं से उपकृत रही है, जिसको कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता है ।

इस परिवार की सेवा परम्परा अक्षुण्ण रहकर जनता, समाज और राष्ट्र की सहगामिनी बनकर लोकहित करती रहे और यह परिवार सर्वतः समृद्धिमय यशःकीर्तिधारक रहे, यही हमारी मंगल भावना है । □□□

अजमेर : जैन संस्कृति तथा इतिहास की गौरव गाथा

अपने स्थापना काल से ही अजमेर नगर जैन संस्कृति का एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण गढ माना जाता रहा है । लिखित दस्तावेजों के अभाव में सदियों पुराना अतीत का इतिहास, उत्थान एवं पतन, आदि का क्रम बद्ध अनुमान लगाना असंभव है । अतः इस सम्बन्ध में धर्म शास्त्रों, शिलालेखों, मूर्तियों की प्रशस्तियों से जो जानकारी मिल सकी है, इन्हीं के आधार पर वर्णन किया जा रहा है ।

इन सभी में शिलालेखों का एक महत्वपूर्ण स्थान है जो इतिहास की प्रमाणिकता का दिग्दर्शन कराता है किन्तु दुर्भाग्य से गत दो शताब्दियों से शिलालेखों के लगाने पर संकीर्ण मनोवृत्ति वालों ने जो उदासीनता प्रकट की यह जैन संस्कृति की रक्षा के उत्तरदायित्व से मुंह मोडना है । जैन इतिहास को जानबूझ कर लुप्त करने की इस उदासीनता के लिये भावी इतिहास एवं पीढ़ी हमें माफ नहीं करेगी । अतः अजमेर नगर तथा जैन समाज को इस बात पर गंभीरता से त्वरित मनन और निर्णय लेकर उपलब्ध शिलालेखों को सम्बन्धित पंचायती मंदिरों में लगाने का निर्णय लेकर इन्हें सुरक्षित करने का उत्तरदायित्व निभाना चाहिये।

अजमेर नगर में शिलालेखों के माध्यम से जो भी थोड़ा बहुत इतिहास सुरक्षित है वह अत्यंत महत्वपूर्ण, सुस्पष्ट एवं एतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यंत उच्च कोटि के दस्तावेज हैं । ये प्रमुख शिलालेख स्थल इतिहास की एक प्रमाणिक कड़ी ही नहीं अपितु एक महत्वपूर्ण एवं एतिहासिक धरोहर है । जैन धर्म एवं संस्कृति के एतिहासिक स्थलों की सुरक्षा किया जाना परम आवश्यक है । इनके प्रति किसी भी प्रकार की उपेक्षा, उदासीनता निश्चित रूप से जैन संस्कृति के लिये घातक सिद्ध होगी।

जैन धर्म एवं संस्कृति की प्रमुख ऐतिहासिक धरोहरें

अजमेर नगर में जैन धर्म एवं संस्कृति तथा इतिहास की जो विभिन्न महत्वपूर्ण धरोहरें विभिन्न शिलालेखों तथा स्मारकों के रूप में उपलब्ध है तथा जो अतीत के वैभवशाली इतिहास की ओर इंगित करती है निम्नांकित है ।

(1) आंतेड की छतरिया

(2) पांडुकशिला (जैन सुमेरु)

(3) भट्टारक जी की छतरी (पार्श्नाथ कौलोनी-सुभाष बाग)

उक्त सभी धरोहरें मंदिर श्री पार्श्वनाथ भगवान् अजमेर की है । अठाहरवीं शताब्दी तक अजमेर नगर में एक ही सामाजिक संगठन था । विभिन्न कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी से विभिन्न पंचायतों का गठन प्रारंभ हुआ । मूल रूप से जैन समाज के सभी जिनालय एवं विभिन्न सम्पत्तियां मूल पंचायत के पास रही जो श्री दिगम्बर जैन (अजमेरी आम्नाय) बीस पंथी धडा पंचायत के नाम से विख्यात हुई । ये सभी ऐतिहासिक धरोहरें भी उनके ही प्रबंधाधीन है ।

आंतेड की छतरिया :

अजमेर नगर से लगभग 8 किलोमीटर दूर उत्तर की ओर आंतेड की गाल के नाम से सुप्रसिद्ध एवं सुन्दर स्थल है। इस गाल में सदा निर्मल जल का झरना प्रवाहित होता रहा है । इसी झरने के समीप एक छोटी पहाड़ी पर दिगम्बर जैन समाज का सर्वाधिक प्राचीनतम आतेड की छतरियों के नाम से ऐतिहासिक स्थल अवस्थित है जो आठवीं शताब्दी से दिगम्बर जैन धर्म एवं संस्कृति का शिलालेखों एवं चरण पादुकाओं के माध्यम से प्रमाणिक एवं जीवंत इतिहास है ।

इस पावन स्थल पर 8 शताब्दी से प.पू. आचार्यों, मुनिराजों, आर्यिकाओं भट्टारकों अन्य त्यागियों एवं पंडितो की समाधि सुसम्पन्न होती चली आ रही है तथा उनकी स्मृति स्वरूप छतरियों अथवा चबूतरियों का निर्माण समय-समय पर किया जाकर उनमें चरण पादुका । चरण चिन्ह स्थापित किये जाते रहे हैं । इन छतरियों एवं चबूतरियों में एक दो को छोड़कर सभी छतरियों में चरण पादुकाएं एवं चरण चिन्ह हैं । तथा इसके साथ ही उनमें लेख भी अंकित किए गए हैं । ये लेख ऐतिहासिक दृष्टि कोण से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं इन शिलालेखों के माध्यम से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ईसा की आठवी शताब्दी में अजमेर नगर विद्यमान था तथा उस समय जैन धर्म एवं संस्कृति चर्मोत्कर्ष पर थी ।

इन शिलालेखों में सबसे प्राचीनतम शिलालेख संवत् 817 (760ई.) का है यह शिलालेख भट्टारक रत्न कीर्ति जी के शिष्य पंडित हेमराज जी के स्वर्गारोहण की यादगार में निर्मित छतरी में स्थापित है । इस शिलालेख के पश्चात् विभिन्न छतरियों एवं चबूतरीयों पर निम्नांकित शिलालेख स्थापित है ।

शिलालेख की तिथि	विवरण
संवत् 905 (845 ई.)	बिरदीचन्द जी के स्वर्गारोहण की यादगार में निर्मित चबूतरी ।
संवत् 911 (854 ई.)	शिवजीराम जी के स्वर्गारोहण की यादगार में निर्मित चबूतरा ।
मिती जेठ सुदी 5 रविवार सवंत 928 (871 ई.)	पं.तुलसीराम शिष्य श्री हेमराज जी के स्वर्गारोहण की यादगार में निर्मित चबूतरा।
संवत् 973 (916 ई.)	भट्टारक विजयकीर्ति जी की छतरी ।
मिती जेठ बदी 9 सवंत 1027 (970 ई.)	मंडलाचार्य रत्नकीर्ति जी के स्वर्गारोहण पर निर्मित चबूतरा ।
मिती बैसाख सुदी 13 वि.सं. 1228 (1171 ई.)	आचार्य श्री श्री राजकीर्ति जी की छतरी ।
फाल्गुन बदी 5 सवंत 1572 (1515 ई.)	भट्टारक रत्नकीर्ति जी की छतरी ।
माघ सुदी 5 सं. 1766 (1709 ई.)	भट्टारक रत्नकीर्ति जी का चबूतरा ।
आषाढ सुदी 5 सवंत 1782 (1715 ई.)	आचार्य विशाल कीर्ति जी का चबूतरा ।

उक्त शिलालेखों के बाद एक छतरी में निम्नलिखित शिलालेख लगे हुए है

फाल्गुन सुदी 11 सं. 1801 (1744 ई.)	भट्टारक विजय कीर्ति जी ।
सं. 1840 (1753 ई.)	भट्टारक अंतत कीर्ति जी ।
माघ सुदी 1 सं. 1810 (1753 ई.)	भट्टारक विद्यानंदजी ।
मंगसिर सुदी 11 सं. 1813 (1756 ई.)	आचार्य रतन भूषण जी ।
श्रावण सुदी 1 सं. 1814 (1757 ई.)	आचार्य देवेन्द्र कीर्तिजी ।
कार्तिक सुदी 2 सं. 1821 (1764 ई.)	आचार्य तिलक भूषण जी ।
सं. 1828 (1771 ई.)	आचार्यराज कीति जी ।
माघ सुदी 1810 (1753 ई.)	भट्टारक भुवन भूषण जी (छतरी)
फाल्गुन बदी 4 सं. 1829 (1772 ई.)	भट्टारक विजय कीर्तिजी (छतरी)
आसोद बदी 14 सं. 1837 (1780 ई.)	भट्टारक त्रिलोकेन्द्र कीर्तिजी (छतरी)
माह सुदी 5 सं 1892 (1835 ई.)	भट्टारक रतन भूषण जी (छतरी)
वि.सं. 1901 (1844 ई.)	पंडित पन्नालाल जी ।
वि.सं. 1928 (1871 ई.)	भट्टारक पदम नंदिजी (शिष्य नवनिधिजी)

उक्त शिलालेखों मे यह पूर्णतया स्पष्ट है कि जैन धर्म एवं संस्कृति का यह स्थल अत्यंत पावन एवं पवित्र रहा है । एक और यहां अनेक तपस्वियों को यहां समाधियां हुई वहीं इसे आचार्यो एवं मुनियों की तपोस्थली होने का भी गौरव प्राप्त है ।

इसी संदर्भ में यह उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि सन् 1971 में आर्यिका पद्मावतिजी, शांतिमतीजी, आसोज बदी 1 व 2 को संवत 2028, सन् 1947 में क्षुल्लक श्रेयासं सागरजी, दिनांक 26.9.1988 को आर्यिका राजमती माताजी, 29.1.86 को ब्रह्मचारी प्यारेलालजी बडजात्या, 24.3.91 को बाल ब्रह्मचारी सुगनचंदजी गंगवाल का यहीं पर अंतिम संस्कार सुम्पन्न किया गया । इसी स्थली को प.पू. आचार्य धर्मसागरजी महाराज और आचार्य विद्यासागर महाराज की तपोस्थली होने का गौरव प्राप्त है । जहां कि इन आचार्यों ने अनेकों दिवस वहाँ रहकर धर्म साधनाएं की । प.पू. आचार्य श्री विद्यासागर महाराज अपने चार्तुमास काल वर्ष 74 में कई घंटो तक यहां ध्यानरत रहे । वास्तव में यह स्थल एक सिद्ध भूमि से कम नहीं है । यहां का कण-कण पूज्यनीय है पवित्र है ।

भट्टारक जी की छतरी

(पार्श्वनाथ कॉलोनी- सुभाष बाग-अजमेर)

भट्टारक जी की छतरी वर्तमान में पार्श्वनाथ कोलोनी, सुभाष बाग अजमेर के मध्य अवस्थित है । यह स्थल बड़े धड़े नसियांजी के उत्तर तथा छोटा धड़ा नसियांजी के दक्षिण में अवस्थित है ।

स्थापना

इस छत्री की स्थापना दिगम्बर जैन भट्टारक ललित कीर्तिजी द्वारा अपने गुरु भट्टारक रत्नभूषण की स्मृति में की गई। इस छत्री के निर्माण होने पर मिती बैसाख शुक्ला 3 संवत 1939 को पू. भट्टारक जी की चरणपादुकाएं प्रतिष्ठापित की गई । यह छत्री अति मनोज्ञ एवं कलापूर्ण है । सम्पूर्ण छतरी संगमरमर की बनी हुई है ।

ऐतिहासिक स्थली

भट्टारक जी की छतरी सहित उक्त समस्त भूमि जैन धर्म एवं संस्कृति की ऐतिहासिक स्थली होने के साथ-साथ एक पावन भूमि थी । यह वही पावन स्थली है जहाँ मिती आषाढ़ शुक्ला 5 सं. 2025 दिनांक 30 जून सन् 1968 को चारित्र शिरोमणि तपोमूर्ति प. पू. 108 आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज को मुनि दीक्षा प.पू. 108 आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा प्रदान की गई थी । यह वही स्थली है जहां गत अर्द्ध शताब्दी के दौरान अजमेर नगर में आये तथा चातुर्मास करने वाले परम् पूज्य आचार्यों एवं मुनिराजों ने विभिन्न धार्मिक आयोजनों में देव-शास्त्र गुरु के प्रति श्रद्धान- उनकी पूजा अर्चना की, समाज को देशना दी । इस भूमि का कण-कण पवित्र है । मस्तिष्क पर रखने योग्य है । मुनिराजों तथा आचार्यों के चरण कमलों से सिंचित यह पावन भूमि न केवल धार्मिक देशना का स्थल रहा है अपितु इतिहास इस बात का भी साक्षी है कि इसी पावन भूमि पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन खंडेलवाल महासभा का वृहद अधिवेशन सर सेठ सा. श्री भागचंदजी सोनी की अध्यक्षता तथा सेठ श्री राजकुमार सिंह जी कासलीवाल इंदौर के मुख्यातिथ्य में सन् 1953 में सुसम्पन्न हुआ था । सम्मेलन इतना प्रभावी रहा कि इस सम्मेलन में पारित प्रस्तावों को राष्ट्रीय स्तर पर दिगम्बर जैन खंडेलवाल समाज ने ही नहीं अपनाया वरन् अन्य दिगम्बर जैन समाजों ने भी इसी के अनुसार सामाजिक प्रस्ताव पारित किए ।

इस प्रकार यह स्थल धर्मस्थली ही नहीं वरन् सामाजिक क्रांति की जन्म स्थली भी है और यह दोनों गौरव इस पावन स्थली को प्राप्त हुए ।

विशाल धर्मस्थल बनाने की योजना

इस भूमि के गौरव एवं महत्ता को देखते हुए सन् 1967 मे प.पू. आचार्य देश भूषण जी महाराज के सानिध्य में यहां विशाल धर्मशाला तथा धार्मिक प्रयोजनार्थ निर्माण कराए जाने का निश्चय किया गया तथा प.पू. आचार्य देशभूषण जी महाराज की पावन देशनानुसार नींव का मुहूर्त भी कर दिया गया ।

विद्यासागर वाटिका

सुयोग से मिती आषाढ़ शुक्ला 5 सं. 2049 दिनांक 4.7.1992 से आगामी आषाढ़ शुक्ला 5 सं. 2050 तक प.पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज दीक्षा रजत जयंती महोत्सव "संयम वर्ष" के रूप में विविध कार्यक्रमों के साथ आयोजित करने का अजमेर दिगम्बर जैन समाज द्वारा निर्णय लिया गया । इस महोत्सव का शुभारंभ दिनांक 4.7.1992 को झंडारोहण के साथ उक्त भूमि के मध्य स्थित छतरी के उत्तरी एवं दक्षिण की खुली भूमि पर किया गया ।

पांडुक शिला (जैन सुमेरु)

यह पांडुक शिला (जैन सुमेरु) वर्तमान में जवाहरलाल नेहरू मेडीकल कालेज के पीछे प्रांगण में अवस्थित है । इस पांडुक शिला का निर्माण चैत्र एवं बैसाख माह संवत् 1852 में संघी धर्मदास जी गंगवाल ने वृहद पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन उपलक्ष में करवाया था ।

यहां यह उल्लेखनीय होगा कि अजमेर नगर में इन दो सहस्राब्दियों में मिती बैसाख शुक्ला 5 संवत 1852 (1795) में अंतिम पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सुसम्पन्न हुआ । इस पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में भगवान् के जन्म कल्याणक के दिन जो कलशाभिषेक हुए वह इसी पाण्डुक शिला पर सुसम्पन्न हुए थे । इस अवसर पर विशाल जन्मोत्सव शोभायात्रा निकाली गई जो सरावगी मौहल्ले से प्रांरभ होकर नगर के विभिन्न मार्गों से होती हुई पांडुक शिला पहुंची, जहां जिनेन्द्र भगवान् के कलशाभिषेक हुए।

पांडुक शिला का स्वरूप एवं शिलालेख

यह पाण्डुक शिला 11 फीट ऊंची बनी हुई है । समय-समय पर इसकी मरम्मत की गई । यह जैन धर्म एवं संस्कृति का दो सौ वर्ष प्राचीन एवं ऐतिहासिक स्थल है । इस पर लगा हुआ शिलालेख मिती बैसाख शुक्ला 5 संवत् 1852 (1795) में सम्पन्न हुई पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस शिलालेख पर निम्नांकित लेख उत्कीर्ण है-

श्री जिनायतन

श्री दिगम्बर जैन पाण्डुक शिला (जैन सुमेरु) (अजमेर नगर का प्राचीन दिगम्बर जैन ऐतिहासिक स्थल)

स्थापित - बैसाख शुक्ला 5 संवत् 1852

सुमेरु अन्तर्गत भूमि-सीमा 300×150×90 फीट

वर्तमान स्थिति

उपरोक्त सुस्पष्ट तथ्यों के बावजूद मंदिर पार्श्वनाथ सरावगी मौहल्ला अजमेर के प्रबंधक श्री दिगम्बर जैन बीस पंथी बड़ा धड़ा पंचायत अजमेर द्वारा इसकी सुरक्षा, व्यवस्था तथा यहां पर होने वाले वार्षिक कलशाभिषेक किया जाता है उक्त भूमि का कुछ भाग अभी भी खाली पड़ा हुआ है । प्रबंध कमेटी को इसके विकास की योजना बनाना चाहिये । ☐ ☐ ☐

अजमेर नगर के जैन शास्त्र भंडार

शास्त्र-परम्परा का इतिहास

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् कई शताब्दियों तक श्रुत की परम्परा मौखिक रूप से सुरक्षित रही । जब इसे स्मृति से सुरक्षित रखना संभव नहीं रहा, तब आचार्यों ने उसे लिपिबद्ध करना आरंभ किया । लिपिबद्ध श्रुत का इतिहास लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन है ।

इन दो सहस्राब्दियों में आगम ग्रंथों पर देश व काल का प्रभाव पड़ा, जिसके फलस्वरूप उनमें परिवर्तन और परिवर्द्धन हुआ । इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन समय में ग्रंथों को लिपिबद्ध करने की सुविधाओं का पूर्णतया अभाव था । लेखन पत्र तथा लेखाकार भी उपलब्ध होना दुर्लभ था । ऐसी परिस्थितियों में तत्कालीन आचार्यों ने ताड़पत्रों एवं धातु से निर्मित प्लेटों पर ग्रंथों को लिपिबद्ध कर श्रुत को विकसित करने का जो कार्य किया उसे जैन संस्कृति कभी भूल नहीं सकती । ये ग्रंथ जैन परंपरा की सांस्कृतिक धरोहर है । जैन संस्कृतिक ऐसे आचार्यों के प्रति नतमस्तक है । ऐसे विस्मृत कार्यों के लिए जैन संस्कृति हमारे आचार्यों की सदा-सदा के ऋणी रहेगी ।

समय के परिवर्तन के साथ ग्रंथों को प्रतिलिपियों को लिपि बद्ध करने का कार्य प्रारम्भ हुआ । प्राचीन ग्रंथ प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत तथापाली भाषा में पर्याप्त रूप मे उपलब्ध थे । तत्कालीन समय में ग्रंथो की प्रतिलिपियां पेशेवर लेखकों एवं प्रतिलिपिकारों से कराई गई । ये लिपिकार प्राय: भाषा एवं विषय के ज्ञाता नहीं थे । मात्र लिपि से परिचित थे तथा आजीविका के लिए लेखन कार्य करते थे । वे शास्त्रों की परंपरा से भी अपरिचित थे । प्रतिलिपि में त्रुटि होना असंभव नहीं था । इस सबके उपरान्त भी हम उनके ऋणी है । उनके परिश्रम के कारण शास्त्र परम्परा आज सुरक्षित रह सकी ।

तीर्थंकर महावीर के पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द ही ऐसे समर्थ आचार्य हुए जिन्होंने श्रुत की परम्परा के सुरक्षा प्रदान की तथा उसको विकसित किया । आचार्य कुंदकुंद के ग्रंथ प्राकृत भाषा में हैं । ये ग्रंथ जैन परम्परा के इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं । आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राचीन आगमों की विलुप्त परंपरा के अनेक विषयों को अपने ग्रंथो में सुरक्षित किया है । इसीलिए उनके ग्रंथ पारम्परिक श्रुत की श्रेणी में माने जाते हैं । प्राकृत के यही ग्रंथ श्रुत या आगम माने जाते हैं ।

आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चात् जैन परम्परा में आचार्य उमास्वामी, समंतभद्र, पूज्यपाद, नेमिचंद्र, मानतुंगाचार्य, अकलंक, रविषेण, कुमारसेन, जटासिंहनंदि, अपराजित, स्वयम्भू, जिनसेन, विद्यानंदि, वीरसेन, धनंजय, श्रीधर, गुणभद्र, अमृतचंद्र, अमितगति, हरिषेण, सोमदेव, देवसेन, वीरनंदि, प्रभाचंद्र, भावसेन, प्रभाचंद्र, नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती, अमितगति 2, क्षेमधर, कीर्तिवर्मा, आदि सहस्त्रों सुप्रसिद्ध आचार्य हुए । इन्हीं आचार्यों ने समयसार, अष्टपाहुड, नियमसार, प्रवचनसार, षटखंडागम, तत्वार्थसूत्र, श्रावकाचार, परमात्म प्रकाश, भक्तामर स्त्रोत, पद्मपुराण, विजयोदया, पउमचरिऊ, हरिवंशपुराण, धवला, जयधवला, उत्तरपुराण, योगसार प्राभृत, दर्शनसार, नीतिवाक्यामृत, आचारसार, प्रमेयकमल मार्तण्ड, प्रद्युम्न चरित्र, चारित्रसार, गोम्मटसार, श्रावकाचार, आयुर्वेदज्ञ, महापुराण, द्रव्य संग्रह, प्रतिष्ठापाठ, दर्माभृत आदि अनेक ग्रंथों को विरचित कर इस विश्व को विभिन्न विषयों पर ज्ञानबोध उपलब्ध किया । अध्यात्म के अतिरिक्त खगोल, भूगोल, इतिहास, आयुर्वेद, नीति, राजनीति, न्यास आदि विभिन्न विषयों पर शास्त्र परम्परा इन्हीं आचार्यों की देन है । जैन संस्कृति ऐसे ही विद्वत् विभूतियों से गौरान्वित है ।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ ग्रन्थों को लिपिबद्ध करने में जैन विद्वानों को भूमिका को भी नहीं भूलाया जा सकता। बारहवीं शताब्दी के पश्चात ज्ञात अज्ञात अनेक विद्वानों ने शास्त्र परम्परा में द्विगणित वृद्धि की । इन विद्वानों ने न केवल ग्रंथों की रचना की वरन देश विदेश में जैन धर्म के सिद्धांतो को प्रचार प्रसार करने की दृष्टि से उन ग्रंथो की प्रतिलिपियां, टीकाएं, भावार्थ आदि करने में अपनी अहम भूमिका अदा की । इन्हीं के कारण जन साधारण जैन सिद्धांतो को समझने में समर्थ हो सका ।

शास्त्र भंडार

आचार्य कुन्दकुन्द तथा उनके उत्तरवर्ती आचार्यों द्वारा रचित ग्रंथों की हजारों प्राचीन पाडुंलिपियाँ देश विदेश के शास्त्र भंडारो में सुरक्षित है । उनकी लिपि देवनागरी, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश है । अभी तक उनके सर्वेक्षण के व्यापक प्रयत्न नहीं हुए । वे अज्ञात है । यद्यपि कतिपय शास्त्र भंडारो की सूचियां प्रकाशित हुई हैं किन्तु वे नहीं के बराबर है ।

बीसवीं शताब्दी के पश्चात् शास्त्र भंडारों में उपलब्ध कुछ ग्रंथों का मुद्रण हुआ किन्तु अधिकांश पाण्डुलिपियों का अपेक्षित उपयोग नहीं हुआ यह एक चिंता का विषय है ।

शास्त्र भंडारों की स्थापना

प्रारंभिक काल में शास्त्र भंडारों की स्थापना तथा शास्त्रों की पांडुलिपियों की सुरक्षा का श्रेय हमारे आचार्यों को है जिन्होंने ग्रंथों के महत्व को पहचाना, अध्ययन किया तथा जैन सिद्धांतों का प्रचार प्रसार किया। ये आचार्य प्रभावक थे तथा जन साधारण इनसे अत्यंत प्रभावित था। अनेक आचार्यों ने अपने जीवन का सर्वोत्कृष्ट समय इन शास्त्र भंडारों की स्थापना एवं इनकी सुरक्षा हेतु समर्पित किया। इन्हीं के कारण शास्त्रों की पाण्डुलिपियां विभिन्न शास्त्र भंडारों में उपलब्ध है और इन्हीं के कारण शास्त्र भंडार सुरक्षित रह सके। मध्यकालीन युग में काल के प्रभाव के कारण भट्टारक परम्परा का अभ्युदय हुआ। ये भट्टारक जिन मंदिरों में रहते थे। अध्ययन एवं सुरक्षा की दृष्टि से इन भट्टारकों ने धार्मिक ग्रंथों की पांडुलिपियां संग्रहित की। यही कारण रहा कि जहां-जहां भट्टारक गण थे अथवा विहार किया वहीं पर शास्त्र भंडारों की संस्थापना की। भट्टारकों ने न केवल शास्त्र भंडारों की स्थापना की अपितु पांडुलिपियों की प्रतिलिपियों को लिपिबद्ध कराने में भी अहम भूमिका अदा की।

आचार्यों एवं भट्टारकों के अतिरिक्त शास्त्र भंडारों की संस्थापना एवं ग्रंथों की प्रतिलिपियों को लिपिबद्ध कराने में श्रेष्ठि वर्ग का भी कम सहयोग नहीं रहा। इन्होंने भी धर्म प्रचार एवं प्रसार में समय पर अद्वितीय सहयोग प्रदान कर अपनी चंचला लक्ष्मी का जन-कल्याण हेतु सदुपयोग किया।

अजमेर नगर के शास्त्र भंडारो का इतिहास

अजमेर नगर एक प्राचीनतम नगर है। इसकी संस्थापना का सही समय यद्यपि ज्ञात नहीं है किन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि तीर्थंकर महावीर के समय में यह नगर सुस्थापित था। प्रारम्भ से ही यह नगर जैन धर्म और संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थल रहा। इस नगर में भट्टारकों का विशेष, प्रभाव रहा, जिन्होंने लगभग दस शताब्दियों तक जैन धर्म एवं संस्कृति का जो विकास, अभिवृद्धि एवं सुरक्षा हेतु किया, वह अवर्णनीय है। स्थान-स्थान पर जिनालयों के निर्माण, संरक्षण एवं विकास के साथ-साथ शास्त्र भंडारों की स्थापना कर जैन संस्कृति एवं साहित्य का प्रचार प्रसार किया।

अठारहवीं शताब्दी में अजमेर नगर में विश्व विख्यात सोनी वंश का अभ्युदय हुआ। इस वंश में श्रेष्ठि जवाहरमलजी सोनी, रायबहादुर मूलचंदजी सोनी, रायबहादुर नेमीचंदजी सोनी, रायबहादुर टीकमचंद जी सोनी सर सेठ भागचंद जी सोनी एवं श्रेष्ठि निर्मलचंदजी सोनी यशस्वी, समृद्धिशाली, लोकोपकारी धर्मात्मा एवं उच्च कोटि के चारित्रधारी तथा विद्वान महापुरुष हुए। इसी वंश के नर रत्नों के कृतित्व के कारण न केवल दिगम्बर जैन जाति, धर्म तथा संस्कृति वरन् नगर प्रांतीय तथा राष्ट्रीय इतिहास भी लगभग दो शताब्दियों तक इस परिवार के इर्द गिर्द घूमता रहा। इतिहास इस बात का साक्षी रहेगा कि इस वंश के नर रत्नों के कारण जैन धर्म एवं संस्कृति को न केवल नया तथा अलौकिक वैभव प्राप्त हुआ किंतु उन्होंने जो धार्मिक एवं सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया, उससे इस वंश की भव्यात्माओं का स्थानराष्ट्र एवं समाज में शीर्ष स्थान पर रहा और आज भी है। जैन धर्म संस्कृति, तीर्थस्थल तथा परम्पराओं की इस परिवार द्वारा अक्षुण्य रक्षा हेतु जो कार्य किए उसे इतिहास भूल नहीं सकेगा। भव्य, विशाल एवं अलौकिक जिनालयों के निर्माण के साथ-साथ पाण्डुलिपियों के लिपिबद्ध करवाने में भी इस परिवार ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि श्रेष्ठि जवाहरमलजी सोनी की प्रेरणा से ही पंडित सदासुखजी कासलीवाल ने शास्त्र लेखन और भाषानुवाद करना प्रारंभ किया। पंडित सदासुखजी कासलीवाल ने संवत् 1898 से यह कार्य प्रारम्भ किया और तभी से वे सोनी परिवार के अभिन्न अंग हो गये। श्रेष्ठि जवाहरमलजी सोनी के पश्चात् सोनी वंश के उत्तरवर्ती महापुरुषों ने शास्त्र लेखन की परम्परा का निरन्तर एवं निर्बाध रूप से निर्वाह किया तथा इसी के साथ-साथ शास्त्र भंडारों की स्थापना की। इस परिवार ने अनेक संस्थानों पर विद्वत जनों को इसी कार्य हेतु नियुक्त किया जिनके लिपिबद्ध शास्त्र राजस्थान के अनेक शास्त्र भंडारों की अनुपम निधियां है।

इस प्रकार अजमेर नगर में शास्त्र भंडारो को स्थापित करने का मुख्य श्रेय भट्टारकों एवं सोनी परिवार को है। इनके द्वारा स्थापित शास्त्र भण्डार अद्वितीय एवं जैन परम्परा की सांस्कृतिक धरोहर है। वर्तमान में अजमेर में निम्नांकित शास्त्र भंडार हैं-

1. श्री बड़ा धड़ा मंदिरजी शास्त्र भंडार
2. श्री सिद्धकूट चैत्यालय-सरस्वती भवन
3. श्री सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन स्वाध्याय भवन
4. श्री चंद्रसागर पुस्तकालय
5. श्री महावीर जैन पुस्तकालय
6. श्री चैत्यालय धड़ा मंदिर शास्त्र भंडार

(१) श्री बड़ा धड़ा मंदिर जी शास्त्र भंडार

यह शास्त्र भंडार सरावगी मौहल्ला अजमेर स्थित श्री बड़ा धड़ा मंदिर जी में स्थापित है। यह शास्त्र भंडार राजस्थान के ग्रंथ भंडारों में अत्यंत महत्वपूर्ण, समृद्ध एवं विशिष्ट स्थान रखता है। इस शास्त्र भंडार में लगभग 7000 पांडुलिपियां हैं जो विभिन्न भाषाओं में लिपिबद्ध हैं। इस शास्त्र भंडार की स्थापना कब हुई यह तो निश्चित नहीं है किन्तु इस शास्त्र भंडार में उपलब्ध पांडुलिपियों को देखने से यह स्पष्ट है कि इसकी स्थापना तेरहवीं शताब्दी के अंत में अथवा चौदहवीं शताब्दि के प्रारंभ में तत्कालीन भट्टारक जी द्वारा की गई थी। यह मंदिर श्री 1008 पार्श्वनाथ भगवान् का है और इसी मंदिर में अजमेर की विश्व

विख्यात भट्टारक पीठ का आठवीं शताब्दी के पूर्व अभ्युदय हुआ । अजमेर की भट्टारक पीठ आठवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक अपने चर्मोत्कर्ष पर थी ।

इस शास्त्र भंडार में सबसे प्राचीनतम शास्त्र पांडुलिपि विक्रम संवत् 1349-1406 ईस्वी की है । इस पांडुलिपि का नाम समयसार प्राभृत है । इस शास्त्र भंडार में अधिकांश पांडुलिपियां 14 वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी की हैं । इस तथ्य से यह पूर्णतया सुस्पष्ट है कि इस काल में यह शास्त्र भंडार धर्म एवं साहित्य का सर्वोत्कृष्ट स्थल था । धर्म एवं सिद्धांत शास्त्रों के अतिरिक्त आयुर्वेद, ज्योतिष तथा मंत्र शास्त्र भी इस शास्त्र भंडार में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं । इन शास्त्रों में अध्यात्म-रहस्य पंडित आशाधर जी का 'जिनसार-समुच्चय-वृषभनंदिजी का 'समाधि मरणोत्सव' "दीपिका" सकलकीर्तिजी का तथा "चारपथसतक" चरपथजी की लिखित संस्कृति में लिपिबद्ध कृतियां अति महत्वपूर्ण एवं अनुपम हैं । इसी प्रकार प्राकृत और अपभ्रंश की कुछ महत्वपूर्ण पांडुलिपियां हैं जिनमें प्राकृत में लिपिबद्ध "गौम्मटसार" दुर्लभ कृति है । इसी प्रकार से "पिंगल चतुर्विंशति" रूपक एवं "पाश्चर्या" तेजपालजी कृत ग्रंथ इस शास्त्र भंडार में सुरक्षित हैं । हिंदी और राजस्थानी भाषा के भी अनेक दुर्लभ, विशिष्ट एवं अनुपम ग्रंथ इस शास्त्र भंडार की अद्वितीय निधि है । "बुद्धि-प्रकाश" एवं "विशाल कीर्तिगीता" "श्री देहला," "धर्मकीर्तिगीता" श्री बछराज, "शुभचन्द्र चरित्र" "उपाध्याय विनयसागर" एवं "शांतिपुराण" ठाकुर की कृतियां सौलवीं शताब्दी में लिखित ग्रंथ हैं जो न केवल ऐतिहासिक वरन तत्कालीन भट्टारक पीठ की परम्परा तथा उनके द्वारा जैन जगत हेतु किए गए उल्लेखनीय कार्यों के बारे में प्रकाश डालते हैं" ।

इस शास्त्र भंडार में प्राचीनतम शास्त्रों की पांडुलिपियों के अनेक गुटकों, ताम्रपत्रों, ताडपत्रों, पर उद्धृत शास्त्र भी हैं जो अपने आप में अद्वितीय हैं एवं जिनके दर्शन करने मात्र से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन भट्टारकों ने आगम को सुरक्षित रखने हेतु कितना कठोर श्रम किया होगा । इस शास्त्र भंडार को अत्यंत धनाढ्य, एवं सुसम्पन्न स्वरूप प्रदान करने में भट्टारकों के द्वारा जो कार्य किया गया उसे जैन संस्कृति भूल नहीं सकती ।

२ श्री सिद्धकूट चैत्यालय शास्त्र भंडार

यह शास्त्र भंडार श्री सिद्धकूट चैत्यालय, जो सेठ सा. की नसियांजी के नाम से विख्यात है, में अवस्थित है । वैसे इस शास्त्र भंडार का शुभारंभ सुप्रसिद्ध राय बहादुर सेठ श्री मूलचंदजी सोनी के द्वारा ही किया जा चुका था किन्तु इसको वैज्ञानिक पद्धति के अनुरुप समृद्ध बनाने में इस ट्रस्ट के प्रमुख ट्रस्टी सर सेठ श्री भागचंद जी सोनी का प्रमुख हाथ रहा है।

सर सेठ साहब श्री भागचंदजी सोनी लक्ष्मी और सरस्वती पुत्र थे । स्वयं विद्वान थे तथा जैन वाङमय के स्थान संरक्षण के प्रति कटिबद्ध थे । उसका प्रचार, प्रसार, प्रकाशन उनके जीवन का अंग था ।

सौभाग्य से युवाचार्य 108 श्री विद्यासागरजी महाराज का सन् 1974 में अजमेर में चार्तुमास स्थापित हुआ । यह वह स्मरणीय वर्ष था जब भारत की सकल दिगम्बर जैन समाज भगवान् महावीर का 2500 वां निर्वाण महोत्सव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बड़े उत्साह और विभिन्न समारोहों के रूप में मनाने का उपक्रम कर रही थी । विक्रम सवंत् 2031 सन् 1974 का वर्ष जैन परम्परा में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा । इस महोत्सव में जितनी सामूहिक, व्यक्तिगत धार्मिक योजनाएं बनी उतनी पूर्व काल में कभी नहीं बनीं । इसके अतिरिक्त जैन धर्म और भगवान् महावीर विषयक जो साहित्य रचना हुई और नवीन प्रकाशन हुए वह इस निवार्ण महोत्सव की महान् उपलब्धि थी ।

ऐसे पावन वर्ष में सर सेठ साहब श्री भागचंदजी सोनी ने श्री सिद्धकूट चैत्यालय में शास्त्र भंडार स्थापित करने हेतु नसियां जी के नीचे भाग में दो सुंदर कमरों का निर्माण करवाया । चातुर्मास के उपरांत भगवान् महावीर के निष्क्रमण ज्ञान कल्याणक मिती मंगसिर बदी 10 सवंत 2031 रविवार सन् 1974 वीर निर्वाण संवत् 2051 के मंगल प्रभात में आचार्य विद्यासागर जी महाराज के चरण सानिध्य में बड़े उल्लास के साथ श्री सिद्धकूट चैत्यालय सरस्वती भंडार का उद्घाटन हुआ । रायबहादुर सेठ सा. श्री मूलचंदजी सोनी के समय में दक्षिण से प्रतिलिपि कराए गए धवल, जयधवल और महाधवल ग्रंथ सेठ साहब की हवेली से बड़े जूलूस के साथ नसियांजी लाए गए । अन्य शास्त्रों का संग्रह भी क्रमशः होता रहा है ।

वर्तमान में इस शास्त्र भंडार में लगभग ९00 हस्तलिखित शास्त्र तथा लगभग 3000 मुद्रित शास्त्र हैं । इसमें हर वर्ष नवीन संवर्द्धन और संरक्षण किया जा रहा है जिससे इसकी समृद्धि और प्रतिष्ठा निरंतर बढ़ रही है । आज यह शास्त्र भंडार अजमेर ही नही वरन् राजस्थान के प्रमुख एवं प्रसिद्ध शास्त्र भंडारों में से एक है । इस सरस्वती भंडार में स्वर्णिम लेखनी तथा ताडपत्रों के ग्रंथ भी उपलब्ध हैं । इन ग्रंथों के कारण यह शास्त्र भंडार अद्वितीय भंडार की गणना में आता है ।

इस शास्त्र भंडार का विधिवत सर्वेक्षण एवं सूचीकरण किया गया है । सुरक्षा की उत्तम व्यवस्था है । अनेकों शोधार्थी इस शास्त्र भंडार में उपलब्ध ग्रंथों का उपयोग कर ज्ञान वृद्धि कर रहे हैं । फिर भी शोध के लिए और सुविधाओं का बढ़ाना आवश्यक है । जो भी हो इस चैत्यालय के संचालक शास्त्र भंडार के विस्तार, इसकी समृद्धि, देखरेख, सुरक्षा, रख रखाव के प्रति अत्यंत जागरुक हैं । और वह समय दूर नहीं जबकि यह शास्त्र भंडार भारत के प्रमुख शास्त्र भंडारों में से एक होगा ।

इस शास्त्र भंडार का प्रारंभ से ही संचालन पंडित हेमचंदजी शास्त्री कर रहे हैं किन्तु इस शास्त्र भंडार को अधिक उपयोगी एवं समृद्ध बनाने के लिए पूर्णकालिक विद्वान की आवश्यकता है । वर्तमान भवन में नवीन ग्रंथों को रखने का स्थान अपर्याप्त है । इसलिए शास्त्र भंडार के भवन का विस्तार शीघ्रतिशीघ्र किया जाना अपेक्षित है ।

३ श्री सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन स्वाध्याय भवन

यह शास्त्र भंडार श्री महापूत जिनालय अजमेर में अवस्थित है । इस जिनालय का निर्माण सेठ सा. श्री जवाहरमल जी मूलचंदजी सोनी ने करवाया था । इसकी वेदी प्रतिष्ठा मिती बैसाख सुदी 12 संवत् 1912 में सुसम्पन्न हुई । इसी के साथ रायबहादुर सेठ मूलचंदजी सोनी ने मंदिरजी में शास्त्र भंडार की सुस्थापना की और धर्म और सिद्धांत ग्रंथो को लेखकों से लिखवा कर इसे समृद्ध किया । श्री महापूत जिनालय में यह आम्नाय रही कि मंदिर जी में मुद्रित ग्रंथ न रखे जावें । यह परम्परा वर्तमान में भी ज्यों की त्यों सुरक्षित है । शास्त्र गद्दी पर हस्तलिखित ग्रंथों एवं शास्त्रों का ही बांचना होता है ।

इस प्रकार इस शास्त्र भंडार का शुभारंभ चरित्र नायक राय बहादुर सेठ श्री मूलचंदजी सोनी के द्वारा ही किया जा चुका था किन्तु, इसको सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक पद्धति के अनुरुप समृद्ध बनाने में सेठ साहब निर्मलचंद्रजी सोनी एवं श्री कपूरचंद जी जैन एडवोकेट का प्रमुख योगदान है ।

यहां यह उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि श्री महापूत जिनालय अजमेर का सार्वजनिक प्रन्यास अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकरण का वाद सन् 1961 से सन् 1990 तक सहायक देवस्थान कमिश्नर जयपुर की न्यायलय में चला एवं श्री कपूरचंदजी जैन एडवोकेट के सदपरामर्शानुसार विवाद का निपटारा दिनांक 22.9.90 को हुआ । इस विवाद के विचाराधीन के दौरान ही श्री महापूत जिनालय की प्रबंध व्यवस्था सेठ सा. श्री निर्मलचंदजी सोनी ने श्री दिगम्बर जैन तेरहपंथी धड़ा पंचायत अजमेर को लिखित राजीनामे के द्वारा दिनांक 25.10.88 को स्थानान्तरित कर दी । श्री कपूरचंद जी जैन श्री दिगम्बर जैन तेरहपंथी धड़ा पंचायत अजमेर के सन् 1983 से सदस्य हैं । इसके पूर्व पंचायत का भी राजस्थान संस्था पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत दिनांक 14.6.88 को पंजीकरण हो चुका था ।

जैसे ही मंदिरजी की व्यवस्था सेठ साहब ने पंचायत को हस्तान्तरित की वैसे ही पंचायत के जागरूक सदस्यों ने मंदिर जी भवन के जीर्णोद्धार करवाना प्रारंभ किया । इसी दौरान इस समृद्ध शास्त्र भंडार के बारे में श्री कपूरचंदजी जैन को बताया गया । उन्होंने इस शास्त्र भंडार को जनोपयोगी एवं समृद्ध किए जाने की योजना सेठ साहब श्री निर्मलचंद जी सोनी के सम्मुख प्रस्तुत की । सेठ साहब श्री निर्मलचंदजी सोनी स्वयं जैन दर्शन के अच्छे विद्वान एवं वक्ता हैं । उन्हें यह योजना अत्यंत प्रिय लगी और सहज ही इसे मूर्तरूप प्रदान करने की स्वीकृति प्रदान कर दी । इसके पूर्व यह अमूल्य निधि तीसरी मंजिल में श्री चंद्रप्रभु भगवान् की वेदी के सामने वाली कोटरी में अनेक वर्षों से डिब्बों में बंद थी ।

स्वाध्याय भवन को मूर्तरूप प्रदान करने का भार श्री कपूरचन्द जी जैन एडवोकेट पर ही अततः डाल दिया गया । इस शास्त्र भंडार को स्थापित करने हेतु मंदिर जी के नीचे का सारा भाग खाली करवाया गया तथा इस भाग को शास्त्र भंडार हेतु आरक्षित कर वांछित निर्माण किया गया । भवन को सभी दृष्टिकोणों से सुसज्जित किया गया तथा ऊपर के समस्त शास्त्रों को विधिवत प्रदर्शित किया गया ।

इस शास्त्र भंडार का उद्घाटन माननीय सेठ सा. श्री निर्मलचंदजी सोनी के कर कमलों से मिती बैसाख शुक्ला 12 संवत् 2047 वीर निर्वाण सं. 2516 रविवार दिनांक 6 मई सन् 1990 को मध्याह्न 12.30 बजे सुसम्पन्न हुआ । इसी पावन दिवस पर श्री महापूत जिनालय की वेदी प्रतिष्ठा सुसम्पन्न हुई । दिनांक 6 मई सन् 1990 को ही श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर जाटियावास की वेदी प्रतिष्ठा सुसम्पन्न हुई ।

यह शास्त्र एक अद्वितीय शास्त्र भंडार है । वर्तमान में इस शास्त्र भंडार में लगभग एक हजार हस्तलिखित शास्त्र एवं लगभग 2000 मुद्रित ग्रंथ हैं । समय-समय पर इसका संवर्द्धन एवं संरक्षण किया जा रहा है । इस शास्त्र भंडार में ताड़पत्रों के ग्रंथ भी उपलब्ध है । इसकी समृद्धि हेतु श्री कपूरचंद जी जैन ने काफी ग्रंथ स्वयं ने भेंट किए तथा अनेक व्यक्तियों से ग्रंथ लाकर इस शास्त्र भंडार को समृद्ध बनाया ।

यह शास्त्र भंडार 'श्री सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन स्वाध्याय भवन' से सुप्रसिद्ध है । ग्रंथों के रख रखाव, सुरक्षा, देखरेख के प्रति इसके संचालक जागरुक हैं । यद्यपि इस स्वाध्याय भवन की श्री दिगम्बर जैन तेरहपंथी धड़ा पंचायत द्वारा की जाती है किन्तु पंचायत की ओर से इसका संचालन श्री मिलापचंदजी पाटनी कर रहे हैं । इनके भागीरथी प्रयास के फलस्वरूप शास्त्रों का विधिवत सर्वेक्षण एवं सूचीकरण हो सका । गत कुछ वर्षों से नवीन मुद्रित ग्रन्थों का भी संकलन किया जा रहा है ।

योजना के अनुसार यह शास्त्र भंडार तीन खंडीय किया जाना प्रस्तावित है । एक खंड हस्तलिखित ग्रंथो का दूसरा खंड जैन धर्म एवं सिद्धांतों के मुद्रित ग्रंथों का एवं तीसरा खंड सभी धर्मों के ग्रंथों, जैन पत्र पत्रिकाओं तथा वाचनालय होगा । इस शास्त्र भंडार को अधिक उपयोगी एवं समृद्ध बनाने के लिए पूर्णकालिक विद्वान की अत्यंत आवश्यकता है । इसके लिए पंचायत जागरुक एवं सजग है ।

४ श्री चंद्रसागर पुस्तकालय

इस पुस्तकालय का शुभारंभ आचार्यकल्प 108 श्री चन्द्रसागरजी महाराज की प्रेरणा से सन् 1933 में श्रेष्ठि श्री सुजानमलजी सोनी ने किया । श्रेष्ठि श्री सुजानमलजी सोनी एक उच्च कोटि के विद्वान, आगम ज्ञाता एवं प्रतिष्ठाचार्य थे । आचार्य कल्प चंद्रसागर जी महाराज के परम भक्त थे । सौभाग्य से सन् 1933 में आचार्य चंद्र सागर जी महाराज का अजमेर में चातुर्मास हुआ और उन्हीं के चरण सानिध्य में इस पुस्ताकलय की सुस्थापना हुई और आज यह एक उच्च कोटि का शास्त्र भंडार है । इस शास्त्र भण्डार में हस्तलिखित शास्त्र यद्यपि अधिक नहीं है । और संख्या में केवल मात्र 10 है लेकिन लगभग 2000 उच्च कोटि के धर्म और सिद्धांत ग्रंथ है । इस पुस्तकालय का प्रारंभ से ही संचालन स्वयं श्रेष्ठि श्री सुजानमलजी सोनी करते रहे हैं जिन्होंने इस शास्त्र भंडार को समृद्ध बनाने में कोई कसर नहीं छोडी । अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथो का संग्रह है जो त्यागियों, व्रतियों एवं समाज के लिए सतत् उपयोगी बना हुआ है । इसी स्वाध्याय भवन के माध्यम से श्री सुजानमलजी सोनी ने "चंद्र प्रकाश" पत्रिका का वर्षों तक सम्पादन किया ।

वर्तमान में इस शास्त्र भंडार की देखरेख एवं संचालन का भार श्री सुजानमलजी सोनी के सुयोग्य पुत्र श्री कुमुद चन्द्रजी सोनी कर रहे हैं जो स्वयं एक विद्वान हैं । एक समृद्ध एवं उच्च कोटि का शास्त्र भंडार होने के बावजूद इसका विधिवत रूप से सूचीकरण नहीं किया गया । यह एक सोनी परिवार का निजी शास्त्र भंडार है किन्तु इसे अधिक उपयोगी एवं समृद् करने हेतु सर्वेक्षण एवं सूचीकरण किया जाना आज की परम आवश्यकता है ।

५. श्री महावीर जैन पुस्तकालय

इस पुस्तकालय का शुभारंभ सन् 1944 में महावीर जंयती के पावन दिवस पर समाज के लब्ध प्रतिष्ठित महानुभाव सर्वश्री सोहनलालजी झांझरी, पूनमचंदजी पाटोदी एवं निहालचंदजी पाटनी के प्रयासों से सरावगी मौहल्ला स्थित पदमावती मंदिर जी के नीचे वाले भाग में हुआ ।

इस पुस्ताकलय में लगभग 8000 मुद्रित ग्रंथ एवं पुस्तकें हैं । यहां एक वाचनालय भी है । वर्षों तक रहे अध्यक्ष स्व. सुंदरलाल जी सोगानी तथा स्व. श्री निहालचन्द जी पाटनी, स्वरूपचन्द जी कासलीवाल, पारसमल जी पाटनी, शिखरचन्द जी जैन, खुशालचन्द जी गंगवाल तथा पारसमल जी बाकलीवाल ने अपने सद प्रयत्नों से इसे समृद्ध किया ।

पिछले कुछ वर्षों से विशेष, रूप से श्री पारसमलजी पाटनी के स्वर्गवास के पश्चात् धनाभाव तथा महत्वपूर्ण पदों पर आरूढ अक्षम एवं उदासीन कार्यकर्ताओं के कारण यह महत्वपूर्ण संस्था अपने अतीत के गौरव के दिनों की वापिसी के लिये अपनी पलकें बिछाये हुए हैं । विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों, पुस्तकों के अतिरिक्त इस पुस्तकालय द्वारा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धार्मिक ग्रंथों के विक्रय की भी व्यवस्था की हुई है । प्रतिवर्ष आकर्षक क्षमावणी कार्ड भी छपाये जाते हैं । इतना सब होते हुये भी जिले के निजी क्षेत्र के इसने बड़े पुस्तकालय को उसका अतीत वाला महत्व दिलाया जा सकता है । आवश्यकता है समर्पित कार्यकर्ताओं की एवं समाज द्वारा आर्थिक सहयोग प्रदान करने की ।

६. श्री चैत्यालय धडा मंदिर जी शास्त्र भंडार

इस शास्त्र भंडार का शुभारंभ सन् 1968 में श्री दिगम्बर जैन चैत्यालय धडा के सदस्य श्री स्वरूपचंदजी कासलीवाल के प्रयासों से हुआ । इस शास्त्र भंडार में इंद्रध्वज मंडल, सर्वतोभद्र मंडल विधान, नंदीश्वर मंडल विधान, सोलह कारण, सिद्धचक्र, रत्नत्रय, शांति मंडल, दसलक्षण मंदल विधान आदि पूजा एवं प्रतिष्ठा संबंधी पुस्तकों का अच्छा संग्रह है । अनेक मुनिराजों, आर्यिकाओं एवं आचार्यों द्वारा लिखित ग्रंथ उपलब्ध है । लगभग 2000 धर्मग्रंथों का संग्रह है । इसका संचालन श्री स्वरूपचंद जी कासलीवाल पंचायत की ओर से कर रहे हैं । प्रत्येक विधान की अनेकों प्रतियाँ हैं और अन्य मदिंरो में भी विधान होने पर पुस्तकें यहां से दी जाती हैं । साथ ही ग्रंथो की सुरक्षा, व्यवस्था, रख रखाव भी बहुत अच्छा है । प्रतिवर्ष नवीन पुस्तकें मंगाई जाती रहने से इस भण्डार में बढ़ोतरी होती है ।

उपसंहार

अजमेर नगर जैन धर्म एवं संस्कृति का स्थापना काल से एक प्रमुख केंद्र रहा है । वर्तमान में यहां की दिगम्बर जैन समाज की जनसंख्या लगभग 15 हजार है । भव्य जिनालयों के साथ साथ समृद्ध शास्त्र भंडार है किन्तु सभी शास्त्र भंडारों में परिपूर्ण व्यवस्था का अभाव है । अभी तक इनके सर्वेक्षण के व्यापक प्रयत्न नहीं हुए । अत: वे अज्ञात हैं । सर्वेक्षण की दिशा में विशेष, प्रयत्न अपेक्षित हैं । संबंधित संस्थानों एवं समाज को सर्वेक्षण, सूचीकरण एवं उनके प्रकाशन हेतु सम्यक प्रयास करना चाहिए जिससे इस अमूल्य सम्पदा को सुरक्षित किया जा सके तथा अनुसंधान एवं शोध करने वाले महानुभावों एवं विद्वानों को आवश्यक जैन ग्रन्थ सुलभ कराये जा सकें ।

हम अब तक अपनी सांस्कृतिक एवं पुरातात्विक संरक्षण के प्रति निष्क्रिय रहे हैं और जितनी सक्रियता अपेक्षित थी उतनी नहीं हो सकी । फिर अपनी कमियों को सुधारना आज की आवश्यकता है । अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है । ताम्रपत्रों, ताडपत्रों एवं कागजों पर लिपिबद्ध जो सामग्री अवशेष रही है, उसकी सुरक्षा के प्रति समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जागरुक होना चाहिए । इस पुण्य कार्य हेतु संस्थाओं, साधुओं, विद्वानों और श्रेष्ठियों को एक जुट होकर सामने आना चाहिए । ❑ ❑ ❑

अजमेर में सुसम्पन्न पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें

लेखक- कपूरचन्द जैन, एडवोकेट, अजमेर

अजमेर नगर भारत के प्राचीनतम नगरों में से एक नगर है । इस नगर की स्थापना कब और किसने की यह सुनिश्चित एवं ज्ञात नहीं है । किन्तु यह तथ्य स्पष्ट है कि अजमेर नगर को कितने ही शासकों ने बसाया, उसका विकास किया और उसी के साथ ही उसके नाम का परिवर्तन हुआ । अजमेर हिस्टोरिकल एवं डिस्क्रिप्टिव में दीवान बहादुर हरबिलास शारदा 1941 संस्करण के पृष्ठ सं. 395 में यह मत व्यक्त किया है कि तीर्थंकर भगवान् महावीर के समय के पश्चात् वर्तमान पुष्कर तत्कालीन काल में जैनियों के 'कौंकण तीर्थ' के नाम से विख्यात था । इस साम्राज्य की राजधानी पद्मावती नगरी था जिसका शासक महाराज पद्मसेन था । महाराज पद्मसेन जैन था और पद्मावती नगरी जैन नगरी थी । किन्तु काल के प्रभाव से इस नगरी को विध्वंस कर दिया गया । महाराज पद्मसेन के वंशज महाराजा इन्द्रसेन ने तारागढ़ तलहटी के नीचे 'इन्द्रावती नगरी' बसाई जो वर्तमान में इन्द्रकोट के नाम से विख्यात है और आज वर्तमान में अजमेर नगर का एक मौहल्ला है ।

इस प्रकार इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अजमेर नगर की स्थापना इसा के पूर्व ही हो चुकी थी और उसके तत्पश्चात् समय-समय पर विभिन्न शासकों ने इस नगर का नामकरण किया । जो भी हो नगर की स्थापना काल से ही यह नगर जैन धर्म एवं संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थल रहा है । इस नगर में भट्टारकों का विशेष प्रभाव रहा, जिन्होंने लगभग दस शताब्दियों तक जैन धर्म एवं संस्कृति का जो विकास, अभिवृद्धि एवं सुरक्षा की वह अवर्णनीय है । इसी नगर से ही भट्टारकों ने उत्तर भारत में जैन धर्म एवं संस्कृति की प्रभावना की । स्थान-स्थान पर जिनालयों का निर्माण, संरक्षण एवं विकास के साथ-साथ जैन संस्कृति एवं संहिता का प्रचार प्रसार किया ।

ज्ञात एवं अज्ञात रूप से यह तथ्य सुस्पष्ट है कि अजमेर नगर की स्थापना लगभग 2000 वर्ष पूर्व हुई थी । इन दो हजार वर्षों में इस नगर में कितनी पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएं हुई इसका कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है । किन्तु मूर्तियों पर अंकित प्रशस्तियों, लेखों तथा प्रतिष्ठा पाठ आदि से जो जानकारी प्राप्त हुई, उनके आधार पर अजमेर नगर में सम्पन्न हुई पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं का विवरण निम्नांकित है-

प्रथम पंचकल्याणक प्रतिष्ठा (संवत 717-660ई.)

अजमेर नगर में प्रथम पंच कल्याणक प्रतिष्ठा संवत् 701 में सुसम्पन्न होने का उल्लेख है । अजमेर नगर के श्रेष्ठि श्री वीरमजी काला ने 9 लाख रूपए लगाकर विशाल जिनालय का निर्माण करवाया । पूरा मन्दिर संगमरमर का था । इस जिनालय की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संवत 701 में सुसम्पन्न हुई । इस जिनालय का शिलान्यास जैन भट्टारक श्री विश्वनन्दीजी द्वारा किया गया तथा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में लगभग 9 लाख रुपए व्यय हुए । जिनालय में देवाधिदेव भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा मूलनायक के साथ-साथ अन्य प्रतिमाएं विराजमान की । तथा जिनालय को पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर के नाम से विख्यात किया ।

खण्डेलवाल दिगम्बर जैन समाज का वृहद इतिहास पृष्ठ 164 में डा. किस्तूरचन्द कासलीवाल ने उक्त तथ्यों का उल्लेख किया है । उनके मतानुसार मुसलमानों ने आक्रमण के समय उस पर कब्जा करके एक जनश्रुति के अनुसार उसे दरगाह में परिवर्तित कर दिया । उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि यह पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सुसम्पन्न होने का कहीं-कहीं संवत् 717 का भी उल्लेख मिलता है, जो वीरमजी अजमेरा द्वारा करवाई गई थी । दीवान बहादुर हरबिलासजी शारदा ने 'अजमेर हिस्टोरिकल एवं डिस्क्रिप्टिव' पृष्ठ 69 में उल्लेख किया है कि जैन मतानुसार सेठ वीरमदेव काला ने जैन मन्दिर का निर्माण कराकर संवत् 717 (-660 ई.) में पंच कल्याणक महोत्सव करवाया जिसमें 7 लाख रुपए व्यय हुए एवं जिसका कि शिलान्यास भट्टारक श्री विश्वनंदजी ने किया। इस प्रकार का मत डा. कैलाश चन्द्र जैन ने जैनिज्म इन राजस्थान पृष्ठ 119 में प्रकट किया है । उनके मतानुसार भी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा संवत् 717 (660 ई.) में हुई तथा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा में 7 लाख रुपए व्यय किए । जिनालय का शिलान्यास भट्टारक विश्वनन्दजी द्वारा किया गया तथा निर्माण सेठ वीरमदेवजी काला ने करवाया तथा यह जिनालय इतना विशाल बनवाया गया कि इसका निर्माण मिती माघ बदी 9 संवत 1132 तक होता रहा । इस बाबत अजमेर स्थित धर्मदासजी के मन्दिर में रेकार्ड उपलब्ध है ।

द्वितीय पंच कल्याणक प्रतिष्ठा (सं. ७७६-७१९ ई.)

अजमेर नगर में द्वितीय पंच कल्याणक प्रतिष्ठा संवत 776-719 ई. में सिंघटजी गंगवाल ने गंगवाड़ा में प्रतिष्ठा करवाई थी । इस पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य आचार्य अनन्तकीर्तिजी थे । इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में लगभग 70 लाख रूपए खर्च हुए थे । इस पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का उल्लेख डा. किस्तूरचन्द कासलीवाल ने 'खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद इतिहास' पृष्ठ 164 में किया है । यह पंच कल्याणक प्रतिष्ठा किस मन्दिर की करवाई गई थी, इसका उल्लेख ज्ञात नहीं है ।

तृतीय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा (सं. ९९८-१०५७ ई.)

अजमेर नगर में तृतीय पंच कल्याणक प्रतिष्ठा वीरमजी गोधा ने 24 लाख रुपए लगाकर करवाई थी । यह पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आचार्य माधनन्दि के द्वारा सुसम्पन्न हुई । इस जिनालय में भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा सहित अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवा कर विराजमान किया तथा जिनालय को पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर के नाम से विख्यात किया ।

दीवान बहादुर हरबिलास शारदा ने भी 'अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव' पृष्ठ 447 पर यह उल्लेख किया है कि गोधा गवाड़ी नला बाजार में पार्श्वनाथ मन्दिर का वीरमजी गोधा ने निर्माण करवाया था । जैन मतानुसार अढाई दिन का झौंपड़ा जो जैन मन्दिर था, उसे शाहबुदीन गौरी द्वारा मस्जिद में परिवर्तित कर दिया तब इस मन्दिर की मूर्तियाँ इस मंदिर में लाकर विराजमान की गई । यही मन्दिर अजमेर का सबसे प्राचीनतम मन्दिर आज विद्यमान है । यहाँ यह भी उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि श्री वीरमजी गोधा ने जैनियों के लिए इसी समय मौहल्ले का भी निर्माण करवाया, जिसमें सभी जैन परिवार निवास करते थे । इस मौहल्ले को गोधा गुवाड़ी के नाम से विख्यात किया तथा वर्तमान में भी इसी नाम से विख्यात है ।

चतुर्थ पंचकल्यामक प्रतिष्ठा (सं. ११९२-११७१ ई.)

अजमेर नगर में चतुर्थ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा मिती बैसाख सुदी 10 संवत् 1112-1171 ई. को श्रेष्ठि गोसला के पौत्र एवं श्रेष्ठि केला के पुत्र वीरमजी काला छोटे द्वारा सम्पन्न कराई गई । श्रेष्ठि वीरमजी काला ने पहिले बीस चौक का विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया और आचार्य महाचन्द्रजी के सानिध्य में यह प्रतिष्ठा महोत्सव सुसम्पन्न करवाई ।

यह पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव इतना विशाल था तथा इतनी संख्या में चतुर्विध संघ सम्मिलित हुआ कि उसमें 84 मनखांड लग गई और इतने ही वजन के पत्तल-दोने लग गए । उस समय अजमेर में माणक चौहान का शासन था । इस पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्बन्धी जो प्रशस्ति प्राप्त हुई उसको मूल रूप में उल्लिखित किया जाता है । जो इसकी प्रमाणिकता का ठोस आधार है-

'संवत 1112 की बैसाख सुदी 10 अजमेर में छोटा
वीरमजी एक बीस चौक को मन्दिर करायो ।
प्रतिष्ठा कराई । जीमे ईतो संघ भेलो हुयो जी
मे घो खांड की तो कोई गिनती नहीं । और चौरासी
मन पाकी पातला लागी । रुपया 27 लाख लाग्या ।
आचार्य महीचन्द्र के वारे । राजा माणक चौहान
की वार म । गोसला के पुत्र केला के पुत्र वीरम
घटियाली के मल्लू शाह ने माल 125 मोहरा में ली थी ।'

(खंडेलवाल दिगम्बर जैन का वृहद इतिहास लेखक डा. किस्तूरचन्द काशलीवाल-पृष्ठ 164)

अजमेर नगर में बीस चौक के मन्दिर भवन का निर्माण किया जाना उल्लेखित है । इस जिनालय का वर्तमान में कोई अस्तित्व नहीं है । इससे यह सुगमता से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस विशाल एवं जिनालय को भी मुगल आक्रांताओं द्वारा मस्जिद में परिवर्तित कर दिया । और जब ख्वाजा साहब का देहावसान मार्च 1233 ई. में यहां हुआ तब यह स्थल ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के नाम से विख्यात हुआ । आज यह स्थल विश्वविख्यात है तथा सालाना उर्स में लगभग 5 से 7 लाख जायरीन सम्मिलित होते हैं । इस स्थल पर भव्य जिनालय होने के संकेत इस बात से भी प्रमाणित होते हैं कि इस दरगाह का सिंह द्वार उत्तर दिशा की ओर झांकता हुआ है तथा इसमें पाँच दरवाजे हैं । ऐसा अन्य मुगल धर्मस्थलों में नहीं पाया जाता ।

इस जिनालय के समय अजमेर में चौहान वंशीय सम्राट सौमेश्वर (1170-79 ई.) का साम्राज्य था । यह सम्राट जैन धर्म एवं संस्कृति के प्रति अति उदार तथा सहिष्णु था । इनके शासन काल में जैन धर्म एवं संस्कृति का बहुत विकास हुआ। सम्राट सौमेश्वर 'राजा माणक चौहान' के नाम से भी प्रसिद्ध था ।

इस प्रशस्ति से यह भी स्पष्ट है कि ग्राम घटियाली जो कि केकड़ी के पास स्थित है संवत् 1112 में भी था तथा वहाँ के दिगम्बर जैन परिवार काफी सम्पन्न तथा धार्मिक प्रवृत्ति के थे ।

सात सौ वर्षो तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन नहीं

चतुर्थ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा संवत् 1112-1171 ई. में सुसम्पन्न हुई उसके तत्पश्चात् लगभग 700 वर्षों में अजमेर नगर में कोई पंच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह का आयोजन नहीं हुआ । यह बड़ी आश्चर्य जनक बात हुई । अजमेर में इस बात का कोई उल्लेख अथवा प्रशस्थि उपलब्ध नहीं है जिससे कहीं पर यह ज्ञात हो सके कि चतुर्थ पंच कल्याणक के उत्तरवर्ती काल में लगभग 700 वर्षों के मध्य कोई पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन हुआ हो । और इसका कारण भी सुस्पष्ट है।

बारहवीं शताब्दी के अन्त में सन 1195 ई. में अजमेर का अन्तिम हिन्दू सम्राट हरिराजा था । इसके पूर्व चौहान शासक पृथ्वीराज चौहान महान मौहम्मद गौरी के हाथों 1192 ई. में मारा गया । अजमेर की शासन व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी । जैन एवं हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया जाकर मस्जिदों में परिवर्तित किया जा रहा था । सन् 1195 से 1400 ई. तक विदेशी मुगल आक्रांताओं का शासन काल रहा । *तथा उसके पश्चात् 1400-1455 ई. महाराणा कुंभा चित्तौड़ तथा 1558 तक विभिन्न शासकों का शासन रहा । सन् 1558 से 1719 तक मुगल सम्राटों के अधीन अजमेर चला गया । इस काल में सभी दिगम्बर जैन मन्दिरों को ध्वस्त किया जा चुका था । जिनालयों पर ही नहीं वरन् जैन धर्म संस्कृति, जाति पर अनेकों प्रकार के अत्याचार किए गए । और जो कुछ भी उस काल की विरासत, संस्कृति, साहित्य आज है उसको सुरक्षित करने का सारा उत्तरदायित्व भट्टारकों ने ही सम्भालकर संरक्षण प्रदान किया । जैन धर्म एवं संस्कृति का इतिहास इस कृतज्ञता को कभी नहीं भूल सकता ।

इन 700 वर्षों में जैन धर्मावलम्बियों को इतना कुचला गया कि इन वर्षों में अजमेर में कोई नेतृत्व भी उभर नहीं सका। धर्म परिवर्तन, महिलाओं का अपहरण सामान्य बात थी । और यह काल अजमेर में भट्टारकीय पीठ को व्यवस्थित, सुदृढ़ तथा सर्वशक्तिमान बनाने में सहायक हुआ ।

पंचम पंचकल्याणक प्रतिष्ठा (सं. १८५२-१७९५ ई.)

मुगल साम्राज्य का पतन होने के पश्चात् 1719 से 1755 ई. तक जोधपुर नरेशों तथा 1756 से 1818 ई. तक ग्वालियर के सिंधिया नरेशों का अजमेर में शासन स्थापित हुआ । ग्वालियर सिंधिया शासक जैन धर्म एवं संस्कृति के प्रति अत्यन्त उदार थे।

सन् 1794 में ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया का अजमेर में शासन था । मिती बैसाख शुक्ला 5 संवत् 1852-1795 ई. में अजमेर नगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं की कड़ी में संघी धर्मदासजी गंगवाल ने वृहद पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन करवाया था । इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में सैकड़ों मूर्तियों की प्रतिष्ठा सुसम्पन्न हुई जो देश और प्रांत के अनेक जिनालयों में विराजमान हैं । इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित अनेक प्रतिमाएं जयपुर में विराजमान हैं । दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा दीवानजी में तीनों विशाल प्रतिमाएं अजमेर में ही प्रतिष्ठित हुई थी । जिस जिनालय की यह पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई गई वह जिनालय आज भी धर्मदासजी के मन्दिर से विख्यात है। मन्दिर भव्य है तथा सरावगी मौहल्ले में स्थित है । इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के शुभावसर पर विशाल जन्मोत्सव शोभायात्रा निकाली गई जो सरावगी मौहल्ले से प्रारम्भ होकर नगर के विभिन्न मार्गों से निकलती हुई पांडुकशिला पहुंची जहाँ जिनेन्द्र भगवान् के कलशाभिषेक हुए । यह पांडुशिला आज भी मौजूद है तथा इस पर लगा हुआ शिलालेख संवत् 1852-1795 ई. में सम्पन्न हुई पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव प्रमाण है । वर्तमान में हर वर्ष आसोज सुदी तेरस को पर्यूषण के पश्चात् वार्षिक कलशाभिषेक समारोह होता है जिसमें सकल दिगम्बर जैन समाज सम्मिलित होती है ।

धर्म चक्र-प्रवर्तन योजना एवं अजमेर अंचल

धर्म चक्र-प्रवर्तन की प्रेरणा परम श्रद्धेय 108 उपाध्याय मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज एवं अन्य मनीषियों द्वारा प्राप्त हुई । परम पूज्य मुनिराज के सान्निध्य में अनेक बार इस विषय पर विचार-विमर्श हुआ । विचार विमर्शोपरान्त एक योजना तैयार की गई । आल इन्डिया दिगम्बर भगवान् महावीर 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव सोसाइटी ने सहर्ष इस योजना को कार्यान्वयन की स्वीकृति प्रदान की और समिति के अध्यक्ष साहू शान्ति प्रसाद जी जैन ने अपना विशेष उत्साह दिखाकर इस योजना को मूर्त रूप देने का प्राणप्रण से प्रयत्न किया । इस योजना का प्रचार बड़ी निष्ठा और लगन के साथ किया गया । जिस देश की माटी में भगवान् महावीर जन्मे थे, जिसके कण-कण में भगवान् वीर की दिव्य ध्वनि समाविष्ट हुई थी । उसी देश में एक बार पुनः धर्म चक्र प्रवर्तन से स्थान-स्थान पर भगवान् महावीर की वाणी का स्रोत फूट निकला और उसका पावन प्रवाह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के प्रति सबको आस्थावान बनाता चला गया । जहाँ-जहाँ धर्मचक्र गया, वहाँ-वहाँ वह क्षेत्र के रूप में परिवर्तित होता चला गया । शासकीय और अन्य सभी महानुभावों ने भगवान् वीर के प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित किए। धर्म चक्र के साथ-साथ विद्वद् वर्ग एवं अनेक भजन मंडलियां और भगवान् महावीर साहित्य उसकी कीर्ति को और भी अधिक द्युतिमान बनाते चले गए । हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, पारसी एवं अन्य भाइयों ने स्थान 2 पर धर्म चक्र का स्वागत कर अपनी सद्भावना वृत्ति का परिचय दिया । डगर-डगर, नगर-नगर, गाँव-गाँव, शहर-शहर सर्व जैन भगवान् की वाणी मुखरित हो उठी।

---

* (1) सन् 1195 जनवरी 7 से 14 जनवरी 1290 तक दिल्ली के सुलतानों का शासन रहा, 14 जनवरी 1290 से 12 फरवरी 1320 तक खिलजियों का, तथा सन् 1320 से 1558 तक तुगलक वंशीय सम्राटों का शासन अजमेर में रहा ।

(2) सन् 1558 से 1605 अकबर, 1605 से 1628 तक जहांगीर, 1628 से 1658 तक शाहजहाँ, 1658 से 1707 औरंगजेब, 1707 से 1712 तक बहादुरशाह, 1712 से 1713 जहांदर शाह, 1713 से 1819 फरुक शायर आदि का शासन था ।

धर्म चक्र-योजनानुसार समस्त भारत में 6 धर्मचक्रों ने भ्रमण किया । प्रथम धर्म चक्र का प्रारम्भ मध्य प्रदेश के इन्दौर नगर में हुआ और वही धर्म चक्र सम्पूर्ण मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान के कुछ भागों में भी गया । दूसरा धर्मचक्र दिल्ली से प्रारम्भ हुआ और वही धर्म चक्र हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, जम्मू और उत्तर प्रदेश में गया । तीसरे धर्म चक्र का प्रारम्भ श्रवण बेलगोला से हुआ । वही धर्म चक्र कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र एवं केरल आदि प्रान्तों में गया । चतुर्थ धर्म चक्र ने गुजरात में भ्रमण किया और वही धर्म चक्र समस्त भारत के प्रमुख तीर्थों एवं नगरों मे तीन मास तक भ्रमण करता रहा । पांचवाँ धर्मचक्र मद्रास से प्रारम्भ हुआ और इसने सम्पूर्ण तमिल नाडु प्रान्त का भ्रमण किया । छठा धर्मचक्र बिहार प्रान्त बंगाल, उड़ीसा, आसाम, मेघालय, नागालैंड और मणिपुर प्रदेशों में भ्रमण किया ।

अजमेर अंचल में धर्म चक्र प्रवर्तन-योजना

दूसरा धर्म चक्र दिल्ली से प्रारम्भ हुआ और वही धर्म चक्र राजस्थान से विविध स्थानों पर भ्रमण करता रहा । धर्म चक्र राजस्थान के विभिन्न नगरों और ग्रामों में भगवान् महावीर के पावन संदेशों को जन-जन में फैलाता रहा । संकीर्णता की दीवारों को तोड़कर जन मानस उमड़ पड़ता था और भगवान् महावीर के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता था ।

4 मई 1975 को धर्म चक्र का स्वागत किशनगढ़ में किया गया । इसके पश्चात् रूपनगढ़, कुचील, पुष्कर, गोविन्दगढ़, पीसांगन ब्यावर में धर्मचक्र का स्वागत किया गया । 10 मई को धर्म चक्र अजमेर पहुंचा । अजमेर पहुँचने पर जिलाधीश श्री रणजीत सिंह कुमट ने धर्म चक्र की अगवानी की और माल्यार्पण किया । श्री भागचन्द जी सोनी ने भी धर्म चक्र का स्वागत किया । केसर गंज मन्दिर से शोभा यात्रा निकाली गई । सारा नगर सजाया गया । रात को महावीर कार्नर में आम सभा का आयोजन श्री भागचन्द जी सोनी की अध्यक्षता में किया गया । अनेक वक्ताओं ने अपने सारगर्भित भाषण दिए ।

इस प्रकार धर्म चक्र ने राजस्थान में हजारों मील की यात्रा की और भगवान् की कल्याणी वाणी का प्रचार और प्रसार किया।

ऐतिहासिक घटनाक्रम

अजमेर जिले में भगवान् महावीर का २५००वां परिनिर्वाणोत्सव

अजमेर जिले में 2500 वें परिनिर्वाण महोत्सव को मनाने के लिये वर्ष 1971 से पूर्व ही प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये गये थे । भारत वर्षीय स्तर पर दिगम्बर सोसायटी की केन्द्रीय समिति की शाखा सम्भागीय समिति के रूप में गठित की गई जिस के अध्यक्ष - श्रीमान् धर्मवीर सर सेठ भागचन्द जी सोनी, कार्याध्यक्ष - श्रीमान् सुन्दरलाल जी सोगानी वकील, महामंत्री - श्रीमान् कैलाशचन्द्र जी पाटनी तथा कोषाध्यक्ष - श्रीमान् नौरतमल जी दोसी बनाये गये ।

निर्वाणोत्सव का मंगल प्रभात दि. 13 नवम्बर 74 जीवमात्र का कल्याणकारी दिन असीम धूमधाम एवं उत्साह से मनाया गया । प्रातः ही सुभाष उद्यान में निर्मित परिकल्पित पावापुरीय जल मन्दिर में निर्वाण मोदक समर्पण कर जैनजन ने वीर प्रभु के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित किये । प्रशासन ने कार्यक्रम की कमनीयता से प्रभावित होकर उस स्थान को महावीर कार्नर तथा समापन समारोह स्थल समीप स्थित (बडा धडा की नसियां के सामने) फव्वारे को महावीर सर्किल के नाम से घोषित किया।

स्थाई महत्व के कार्यक्रमों में प.पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी की प्रेरणा से श्री सिद्ध कूट चैत्यालय में सरस्वती भण्डार आचार्य श्री सुमतिसागर जी की प्रेरणा से केसरगंज में औषधालय मदनगंज में कीर्तिस्तम्भ, ब्यावर में छात्रवास का निर्माण, नसीराबाद में स्व. आचार्य श्री ज्ञान सागर जी की समाधि स्मारक का निर्माण आदि के अतिरिक्त जिलाधीश श्री रणजीत सिंह कुमट के प्रयत्नों से श्री महावीर स्मारक भवन आदि उल्लेखनीय है । साहित्य प्रकाशन में आचार्य श्री विद्यासागर द्वारा रचित श्रमण शतकम् का प्रकाशन युगवीर क्लब द्वारा दो वर्ष तक युगवीर स्मारिका एवं ब्यावर समाज द्वारा स्मारिका एवं निजानुभवशतक का प्रकाशन हुआ ।

अजमेर में आदर्श कारागृह में जैन साधुओं के प्रवचन तथा निर्वाणोत्सव के उपलक्ष में यहां कैद में 5 दिन की कटौती की घोषणा हुई ।

समापन के अवसर पर जैन दर्शन साहित्य सेमिनार का समायोजन हुआ जिसमें देश के करीब 75 विद्वानों ने भाग लिया। सेमीनार के स्वागताध्यक्ष श्री नाथूलाल जी जैन सदस्यलोक सेवा आयोग, स्वागत मंत्री श्री प. अभय कुमार शास्त्री सम्पादक जैन

संयोजक एवं संयोजक श्री कैलाशचन्द पाटनी बनाये गये । इसी अवसर पर अजमेर का प्रकाशन किया गया । निर्वाणोत्सव के आयोजनों में राज्य के कई मंत्रीगणों, विधायकों एवं अन्य उच्च स्तरीय शासकों ने भाग लेकर सहयोग दिया ।

समापन समारोह नवम्बर 75 पर दीपावली के दिन महावीर सर्किल पर श्री सन्मति परिषद द्वारा सार्वजनिक मोदक समर्पण समारोह का आयोजन किया गया ।

वर्ष भर के सभी कार्यक्रमों में समाज की सभी पंचायतों संस्थाओं ने सहयोग दिया । वर्ष में स्थानीय स्कूलों, नगर परिषद भवन एवं राजकीय कालेज में महावीर कक्ष की स्थापना की गई जहां जैन साहित्य भेंट रूप दिया गया ।

कैलाशचन्द्र पाटनी

स्व. श्री मांगीलाल जैन का

पारिवारिक – परिचय

भारत में भारतीय संस्कृति के अनुरूप मान्य धार्मिक परम्पराओं में अटूट श्रद्धा रखने वाले, समाज के गिने चुने परिवार ही कार्य शैली के अनुसार सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में, कृति-कारित-अनुमोदना के कारण समाज में अपनी विशेष छवि व स्थान प्राप्त कर लेते हैं । ऐसे ही दिगम्बर जैसवाल जैन समाज में से एक परिवार स्व. मांगीलाल जी जैन, सुपुत्र स्व. श्री लालाराम जी जैन गोत्र 'शाहबजाज' का आज से 90 वर्ष पूर्व से पहले परिवार में सात पुत्रियां व चार पुत्र हैं, ये सभी धार्मिक व सामाजिक कार्यों में अपने पिताश्री की भांति अभिरुचि रखते चले आ रहे हैं ।

श्री मांगी लाल जी ने अपनी सूझ-बूझ व सौम्यभाव के कारण अखिल भारतीय जैसवाल जैन समाज में अपी अटूट गुरुभक्ति, धर्म निष्ठता एवं सामाजिक प्रबतिबद्धता के कारण सर्वत्र विशेष ख्याति अर्जित की । आप स्थानीय समाज की संस्थाओं – मंदिर कमेटी, औषधालय, धर्मशाला व विद्यालय आदि में अध्यक्ष व मंत्री पद को सुशोभित कर अपनी सेवा वर्षों तक देते रहे, विशेषतः औषधालय एवं दर्मशाला की अपने कार्यकाल में तथा तद्पश्चात भी ऐसी मजबूत नींव रखी कि जिसके परिणाम स्वरूप ये संस्थाएं आज उन्नति करती हुई जन साधारण को लाभान्वित करते हुए समाज का गौरव बढ़ारही है ।

आपका कोमल हृदय तो था ही, किन्तु धार्मिक विषय हो या सामाजिक आप सभी में अपनी स्पष्टवादिता एवं दृढ़ता तथा निपुणता से समाधान करने के कारण विख्यात थे और सदैव समाज को एक सूत्र में बांधने व चलाने में दृढ़ विश्वास के साथ तत्पर व अग्रसर रहते थे । समाज के अधिकांश बन्धु आपसे समय-समय पर सभी विषयों में सलाह लेते और उन्हें तदनुकूल अपनी सम्मति से संतुष्ट करने में सिद्ध-हस्त थे, यही कारण था कि मांगीलाल जी के प्रति छोटे या बड़े सभी समाज के बन्धु उनका समादर व सम्मान करते थे ।

आप उदार चित्त से समय-समय पर दान कार्य में भी अग्रणी भूमिका निभाते हुए दूसरों को भी दान कार्य हेतु पुण्य लाभ की प्रेरणा के स्त्रोत् थे । गुरुओं की वैयावृत्ति में तथा धार्मिक अनुष्ठानों में नित्य नियम पूजन अआदि हेतु भी युवा वर्ग को प्रेरित करते हुए उन्हें सद्मार्ग में लगाने की अभिरुचि की चेष्टा करते रहते थे । आपका सादा जीवन, उच्च विचार व व्यवहारिकता अनुकरणीय है वे सदा ही समाज की उन्नति हेतु विचार मग्न रहते थे तथा शांत परिणामों से आप सन् 1992 में तिरोहित हो गये । आपके सुपुत्रों में श्री महेन्द्र कुमार, राजेन्द्र कुमार अशोक कुमार व अभय कुमार जैन हैं जो अपने पिता श्री के बताये हुए सद्मार्ग पर चल धार्मिक व सामाजिक कार्यों में सेवारत् हैं । जिनका जीवन पद्धति इस प्रकार है –

श्री महेन्द्रकुमार जैन 'निराले' के नाम से विख्यात हैं । आप युवावस्था से सामाजिक कार्य-रत्ता के रूप में कार्यरत रहते है । लगभग 38 वर्ष पूर्व वीर वाचनालय की स्थापना आपके संयोजन में हुई । धर्मशाला कमेटी के अध्यक्ष पद पर रहते हुए 'जैन भवन' के द्वितीय चरण का खूबसूरत निर्माण कार्य कराया व सुचारू संचालित किया । आपने मंदिर कमेटी व विद्यालय में भी सदस्य रहकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । आपकी संगीत में रुचि होने के कारण आप कविता एवं धार्मिक भजनों के रचियता भी हैं और आपने पार्श्वनाथ संगीत मंडल के संस्थापक हैं साथ ही पूर्व में आप स्वयं सेवक मंडलों में भी सक्रिय रूप से भाग लेते रहे व संचालन करते रहे हैं ।

श्री राजेन्द्रकुमार जैन मृदुभाषी एवं उदारमना हैं । आप अपने पिता श्री की प्रेरणा से उनके पद् चिन्हों पर चलकर गुरुभक्ति, धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में अग्रसर रहते हैं श्री दिगम्बर जैसवाल जैन धर्मशाला, श्रीमहावीर जी की स्मारिका 'एक युग एक प्रतीक' के तो कार्गण हेतु महामहिम राष्ट्रपति महोदय श्री संकरदयाल शर्मा के हाथों मैं प्रथम प्रति भेंट करने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ । स्थानीय नवीन विशाल स्कूल भवन का उद्‌घाटन भी आपके कर-कमलों से ही हुआ । आप उदार ह्रदय से मुक्त-हस्त दान देकर पुण्य अर्जित करने में प्रयत्नशील हैं आपके द्वारा समय-समय पर अन्यत्र भी दान राशि देकर ख्याति अर्जित की है । आपका व्यवसाय अजमेर मैं तो है ही किन्तु अहमदाबाद में भी व्यवसाय स्थापित कर काफी प्रगति की हा व व्यवसाय निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर है ।

श्री अशोक कुमार जैन, स्व. मांगीलाल जी के तृतीय सुपुत्र है आप बचपन से ही समाज के युवा संगठनों से सम्बंध रहते आये हैं । आप भी पिता श्री की तरह निष्ठ व गुरुभक्त हैं श्री 108 आचार्य सुमति सागर दिग. जैन औषधालय के वर्षों तक मंत्री पद पर रहकर अऔषधालय की प्रगति का सुचारू संचालन किया है तथा वर्तमान में भी आप औषधालय में व्यवस्थापक के पद पर सेवाएं प्रदान कर रहे हैं । आपकी भावना पिता श्री के अनुरुप औषधालय का ध्रौव्य फनु को सुद्रढ़ करने में सदा तत्पर रहते हैं । पूर्व में आपके नेतृत्व में समाज की युवासकित "युर्वाच" के नाम से पूर्णत: संगठित रही । समय-समय पर समाज के व धार्मिक निभिन्वन कार्यों में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । धार्मिक कार्यों में आप उदारमन से दान देकर पुण्यार्जन अर्जित करते रहे हैं । आप भी स्थानीय अच्छे व्यवसायी है और समय-मसय पर जब भी सामाजिक या धार्मिक कार्यों में सहयोग चाहा उसे कभी निराश नहीं किया ।

श्री अभय कुमार जैन स्व. मांगीलाल जी के सबसे छोटे चतुर्थ पुत्र हैं आप स्वभाव से कामल, समादर भावी एवं धार्मिक प्रवृति के हैं । आपका बचपन से ही क्रीडा (खेल कूद) में रुचि रही है । अपने समय के कबड्डी के अच्छे जाने माने प्लेयरों में आपकी गिनती होती थी व अच्छी ख्याति अर्जित की थी । आप संगीत में रुचि रखते हैं पार्श्वनाथ संगीत मंडल में आपने सराहनीय भूमिका निभाई है । आपका आवास जब तक अजमेर मैं रहा आप युवा संगठनों से बराबर जुड़े रहे तथा धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में अपनी सेवाऐं देते रहे । अपने बड़े भ्राताओं की आज्ञा को सिरोधार्य करते हुए किंचित मात्र भी अवज्ञा का भाव प्रदर्शित नहीं करते यही कारण है कि आपको पूरे परिवार का स्नेह प्राप्त होता रहता हैं ।

मन का खेत, मनन के बीज

किसान खेत में बीज फेंकता है सो केवल फेंक देने के उद्देश्य से ही वह नहीं फेंकता है । एक दाने के अनेक दाने उत्पन्न करने के लिए वह बीज फेंकता है । स्वाध्याय करने वाले को भी यह बात सदैव स्मरण में रखनी चाहिये कि मैं स्वाध्याय करके हृदय-क्षेत्र में जिस बीज का आरोपण करता हूँ, वह विशेष फल की प्राप्ति के लिए कर रहा हूँ ।

॥ जय श्री ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥
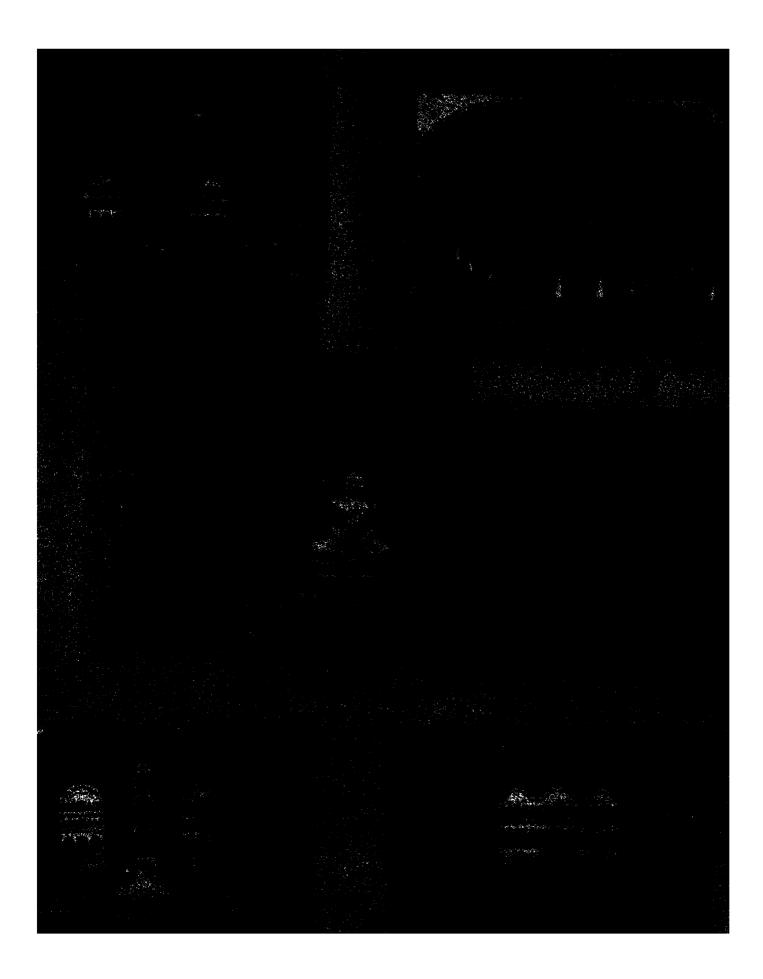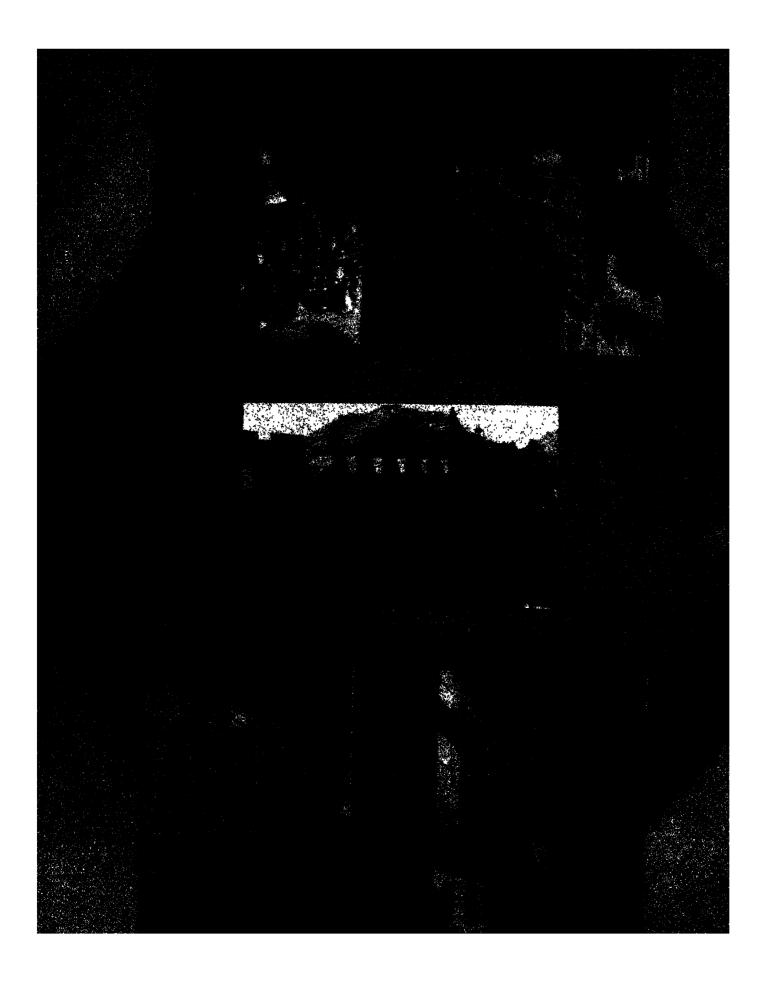
गुरुवर आ. विद्यासागर जी के श्रेष्ठ शिष्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ससंघ को

शतशत नमन

धर्मनिष्ठ, गुरुभक्त, समाजसेवी, सद्प्रेरणास्रोत्
पूज्य पिता श्री मांगीलाल जैन शाहबाज अजमेर की

पुण्य-स्मृति में

उदय 1908
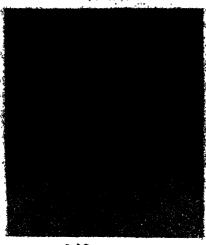
तिरोहित: 1992

श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जैसवाल जैन मंदिर कमेटी के निवर्तमान अध्यक्ष
औषधालय व जैन भवन (धर्मशाला) के भू. पू. अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जैन उच्च प्राथ. विद्यालय के निवर्तमान मंत्री तथा
सामाजिक गतिविधियों में प्रमुख प्रेरणा दायक
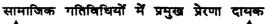
पल्लवित - पुष्प

- श्री महेन्द्र कुमार जैन 'निराले'
- श्री राजेन्द्र कुमार जैन
- श्री अशोक कुमार जैन
- श्री अभयकुमार जैन

पिता श्री के पद् चिन्हों पर अग्रसर रहते हुए वर्तमान में समाज की संस्थाओं में
सदस्य एवं विभिन्न पद पर रहते हुए समाज सेवा में क्रिया शील

विश्ववंद्य, सर्वोनिधि, परम् पूज्य परम् आध्यात्मिक आचार्य १०८ श्री विद्यासागर जी
महाराज के परम शिष्य
मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज ससंघ के

मंगल-पदार्पण

दिनांक 15 जुलाई 1994

सुधासिन्धु ऋषिराज को वन्दू बारंबार ।
क्षुल्लक श्री गम्भीर अरु धैर्य को नमन हमार ।।
दनगसिया धारम धरा धन्य करी मुनिराज ।
मंगलकारी चरणरज करे सुमंगल काल ।।
शत शत नमन-वंदन

दनगसिया फार्म

ग्राम घूघरा, जयपुर रोड़ अजमेर

-: सौजन्यता :-
सुपार्श्व इलैक्ट्रो प्रौडैक्ट कं.
महावीर मार्ग, केसर गंज
अजमेर - 305 001
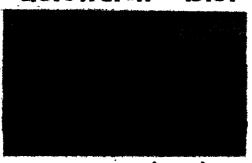
किरन बैटरी कं.
खाईलैण्ड मार्केट
अजमेर

हार्दिक शुभकामनाएँ :-
श्री ज्ञानचन्द जी जैन, श्री नरेशचन्द जैन, श्री नागेन्द्र जैन (दनगसिया)
फोन : (O) 21475 (R) 424656

हार्दिक शुभकामनाएँ :

तिलक मार्बल्स प्रा. लि.

रिको इन्डस्ट्रीयल एरिया, हरमाड़ा रोड़
मदनगंज - किशनगढ़
फोन (नि.) 3308, 2367
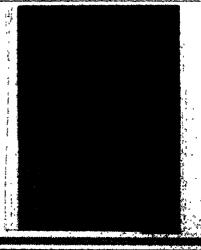
मुनि श्री सुधासागरजी महाराज का अजमेर में

अभूतपूर्व चातुर्मास

स्थापना 21.7.94 निष्ठापन 3.11.94

-: प्रस्तुति :-

इन्दरचन्द पाटनी

रंग-महल, अजमेर

प्रो: सुशील पाटनी

सरावगी मौहल्ला, अजमेर

दैनिक नवज्योति अजमेर, मंगलवार 11 अक्टूबर 94

यथा वचन, तथा आचरण

धर्म का अस्तित्व मानव के लिए है अथवा मानव स्वयं धर्म के हाथों एक खिलौना है? इस प्रश्न के उत्तर में संभवतः धर्म के सृष्टा आदि पुरुष भी यही कहेंगे कि धर्म का अस्तित्व मानव की रक्षा, मानव के कल्याण और मानव के उत्थान के लिए है। इस सत्य के ज्ञान के बावजूद समय इस बात का साक्षी है कि धर्म के नाम पर जितना अधर्म हुआ है तथा धर्म की आड़ बनाकर मानव ने मानव का जितना अहित किया है उतना संभवतः किसी और माध्यम से नहीं हुआ। हर दूसरे दिन किसी धर्म स्थल को लेकर, किसी धर्म विशेष के विरुद्ध की गई। किसी टिप्पणी को लेकर या किसी धर्माधिकारी के मान या अपमान को लेकर, कहीं न कहीं से किसी अधार्मिक घटना का समाचार मिल ही जाता है। दुर्भाग्य यह है कि धर्म को अपनी मूंछ का बाल बनाकर अज्ञानी इन्सानों को एक दूसरे का खून बहाने के लिए खुद साधु-सन्यासी और मुल्ला-मौलवी ही प्रेरित करते रहे हैं। अयोध्या का विवाद इस कथन का जीता जागता प्रमाण है।

दो दिन पूर्व अजमेर शहर के एक पवित्र धार्मिक स्थल सोनी मंदिर, नसियांजी पर भी एक ऐसी घटना घटित हुई जिसकी परिणति किसी भी हिंसक दुर्घटना में हो सकती थी। कहते हैं कि नसियाँजी के पास ही स्थित एक मकान से, अर्द्ध रात्रि के दौरान पत्थर बरसाए गए। अगले दिन सुबह श्रावकों को जैसे ही इस घटना का ज्ञान हुआ वे भी मानव सुलभ उत्तेजना से भर उठे और दिन ढलते-ढलते, बंद, प्रदर्शन और जुलुस की तैयारिया हो गई, किन्तु इस तैयारी के अगले दिन पूरा शहर देखकर अवाक् रह गया कि इतनी गंभीर घटना के बावजूद शहर में न कोई बाजार बंद हुआ, न कोई जुलुस निकला और न ही कहीं उत्तेजना के कोई अवशेष ही नजर आए।

संभव है, कुछ लोगों ने जैन समाज की कमजोरी समझा हो, किन्तु ऐसा वे ही लोग समझ सकते हैं, जो कि वीरता के वास्तविक अर्थ से अनभिज्ञ हैं। जैन मुनि सुधा सागर जी ने आधुनिक साधुओं की धारा के विपरीत, बजाय आग में घी डालने के, सोमवार की सुबह अपना सम्पूर्ण प्रवचन क्षमा और अहिंसा पर दिया तथा अन्त में सम्पूर्ण जैन समाज को स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी-

मुनिश्री ने समय की मांग को देखकर अत्यन्त तार्किक ढंग से भड़कती ज्वाला पर यह कह कर पानी छिड़क दिया कि, जैन धर्म ने क्षमा और अहिंसा का पाठ पढ़ाया है किन्तु यदि हम स्वयं अपने व्यवहार में इसे चरितार्थ नहीं करेंगे तो हममें और अन्य में क्या भेद रहेगा। मुनिश्री का यह कहना निश्चय ही हर साधु सन्यासी के लिए अनुकरणीय है कि मुनि व श्रावक का कृत्य धर्म की रक्षा के लिए होता है, यह स्वयं धर्म नहीं है। पथराव की उक्त घटना पर उन्होंने सकल समाज को संयम बरतने की सलाह देते हुए कहा कि कर्म से बड़ा दण्ड मनुष्य भी नहीं दे सकता। वीतरागी के समता भाव से पापियों का मन स्वयमेव शुद्ध हो जाता है।

मुनिश्री का कथन न सिर्फ जैन समाज के लिए अपितु किसी भी धर्म में आस्था रखने वाले प्रत्येक धर्माधिकारी और धर्मानुयायी के लिए अनुकरणीय है। साधुओं, सन्यासियों, धर्म गुरुओं और काजी-मौलवियों के प्रवचन और आचरण में यदि यही समभाव स्थापित हो सके तो इस देश में अयोध्या जैसी दुर्घटनाओं और साम्प्रदायिक दंगों जैसी अनहोनियों के लिए कोई जगह शेष न रहे

मुनि सुधासागरजी के 'सुधा वर्षण' से इस नगर में एक चिंगारी, भड़कने से पहले ही शान्त हो गई, किन्तु इस शान्ति से पुलिस, प्रशासन और सरकार को वीतरागी बनकर दण्ड व्यवस्था को कर्मों के भरोसे छोड़ देने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं हो पाता। दोषी व्यक्ति को दण्डित न कर राज्य व्यवस्था यदि न्याय से मुख मोड़ती है तो प्रकृति की न्याय व्यवस्था उसे इसके अकर्म का दण्ड देने में भी नहीं चूकेगी।

- रमेश अग्रवाल

अध्यात्म प्रवक्ता, युवा मुनि १०८ श्री सुधासागर जी महाराज को
शत-शत नमन-अभिवन्दन

दैनिक नवज्योति 23.11.94

मंगलवार को अजमेर में दिगम्बर जैन समाज की रथयात्रा में हाथियों पर सवार इन्द्र-इन्द्राणी, भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा लिए स्वर्ण रथ तथा जूलुस में चलते मुनि सुधासागरजी महाराज प्रेस फोटो - इन्द्र नटराज

इन्द्र ध्वज मंडल विधान महोत्सव

एरावत हाथी के साथ भव्य रथयात्रा निकली

विश्व शांति की कामना के साथ महोत्सव सम्पन्न

(नगर संवाददाता)

अजमेर, 22 नवम्बर। सोनीजी की नसियां में दिगम्बर जैन समाज द्वारा आयोजित इन्द्रध्वज मण्डल विधान महोत्सव मंगवार को शहर में निकली भव्य और विशाल रथयात्रा के साथ सम्पन्न हो गया। रथयात्रा में जिले भर के पन्द्रह हजार से अधिक श्रृद्धालु शामिल हुए।

रथयात्रा प्रारम्भ होने से पूर्व नसियां में यज्ञ एवं हवन हुआ। प्रात: 6.30 बजे शुरू हुए इस कार्यक्रम में छह सौ से भी अधिक पुजारियों ने हवन कुण्डों में धूप व धृत की आहुति देते हुए विश्व शांति प्रसार की मंगल कामना की। हवन के दौरान नसियां में जैन समाज के हजारों नर-नारी मौजूद थे।

इस कार्यक्रम के पश्चात् प्रात: 8.30 बजे नसियां से रथ यात्रा जुलुस रवाना हुआ। इसमें सबसे आगे घोड़ों पर नक्कारे बजाते हुए उद्घोषक चल रहे थे इसके पीछे दो एरावत हाथी तथा रथ था। रथ के बाद पहले हाथी पर सपरिवार सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणियाँ परिवार सहित सवार थे। करीब डेढ़ किलोमीटर से लम्बी यह रथयात्रा महावीर सर्किल, गंज, देहली गेट, नला बाजार, मदार गेट, घंटाघर, चुड़ी बाजार, नया बाजार व आगरा गेट होती हुई करीब 5 घंटे बाद पुन: नसियां पहुँचकर शांति पाठ के साथ विसर्जित हुई।

रथयात्रा का मुख्य आकर्षण पीले वस्त्रों में सजे-संवरे छह सौ से अधिक इन्द्र-इन्द्राणी थे। जो हाथों में भक्ति के प्रतीक केसरिया ध्वज, गले में मालाएं तथा सिर मुकुट धारण करके चल रहे थे। जुलुस में शामिल बच्चों से लेकर वृद्ध तक सर्दी की परवाह किए बिना नंगे पैर चल रहे थे इनमें महिलाएं भी शामिल हैं जिन लोगों ने जूते चप्पल पहन भी रखे थे वह लोग अजमेर के आस- पास से जुलुस में शामिल होने आए थे। नंगे पैर श्रृद्धालुओं का करीब पाँच किलोमीटर तक चलना अजमेर के इतिहास में पहली बार हुआ है।

रथयात्रा देखने के लिए पूरे रास्ते लोगों की भारी भीड़ लगी थी जगह-जगह सैंकड़ों तोरण द्वार लगाकर व पुष्प वर्षा करके इसका स्वागत किया गया। रथयात्रा में सोने की नक्काशी से सजे रथ एवं ऐरावत हाथी आकर्षण का केन्द्र बने हुए थे। पूरे जूलुस में आधा दर्जन से अधिक बैण्ड मधुर धुनें बजा रहे थे। जुलूस में मुनि श्री सुधा सागर महाराज, क्षुल्लक गंभीर सागर, क्षुल्लक धैर्यसागर, ब्रह्मचारी संजय व अजीतजी भी चल रहे थे। अंतिम छोर पर नसियाँ के विश्व प्रसिद्ध स्वर्ण रथ में श्री जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा विराजमन थी इसे सोनी परिवार के वरिष्ट सदस्य सेठ निर्मल कुमार सोनी चला रहे थे। रथयात्रा में नसीराबाद, ब्यावर, केकड़ी, किशनगढ़, पुष्कर, पीसांगन व आस-पास के कई कस्बों व गावों के जैन समाज के लोग भी शरीक हुए। जिले भर में जैन समुदाय के अधिकांश व्यापारियों ने आज अपने प्रतिष्ठान भी बन्द रखे। आठ दिवसीय इन्द्रध्वज मण्डल विधान महोत्सव के सफल आयोजन में संयोजक कैलाशचन्द पाटनी, इन्द्रचन्द जैन, भीकमचन्द पाटनी, राजुकमार बज, प्रमोद सोनी आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा। रथयात्रा की व्यवस्था में श्री दिगम्बर जैन वीरदल तथा अन्य सामाजिक संगठनों की भूमिका रही।

अजमेर में इन्द्र ध्वज मण्डल विधान महोत्सव से समापन पर इन्द्र ध्वज लेकर रथ यात्रा में चल रहे महिला पुरुष ।

पत्रिका 22.11.94
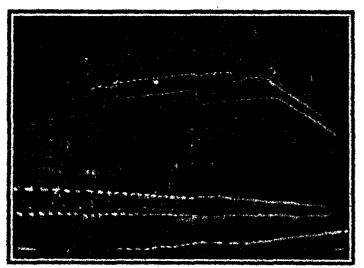
अजमेर में इन्द्र ध्वज मण्डल विधान महोत्सव के उपलक्ष में बिजली की रोशनी से जगमगाती सोनीजी की नसिया

इन्द्रध्वज मंडल विधान के समापन पर रथयात्रा

अजमेर, 22 नवम्बर(नि. सं.) । दिगम्बर जैन समाज द्वारा सोनीजी की नसियां में आयोजित आठ दिवसीय इन्द्रध्वज मंडल विधान महोत्सव के समापन पर मंगलवार प्रातः प्राचीन रथ पर नसियां से भव्य रथ यात्रा निकाली गई

हवन पश्चात शुरू हुई रथ यात्रा ग्यारह-ग्यारह हाथी, घोड़े व ऊंट, इन्द्र गाड़ी, ऐरावत हाथी तथा भजन मंडलियां थी सोलह इन्द्र तथा कुबेर हाथियों पर बैठकर चल रहे थे । पांच सौ इन्द्र-इन्द्रणी हाथों में भक्ति की प्रतीक केसरिया पताकाएं लेकर चल रही थी । हजारों नर नारी नंगे पांव चल रहे थे । नसियां से शुरू होकर रथयात्रा सर्किल, गंज, देहली गेट, दरगाह बाजार, नला बाजार, मदार गेट, घंटाघर, चूड़ी बाजार, नया बाजार होते हुए नसियां पर विसर्जित हुई मार्ग में स्थार-स्थान पर स्वागत द्वार बनाए गए थे तथा पुष्प वर्षा हुई. ।

स्वतन्त्र जैन चिन्तन अजमेर

अविस्मरणीय रहा 'श्रावक संस्कार शिविर'

श्रावकों में जैन धर्म के संस्कारों को पुष्पित व पल्लवित करने के लिए सोनी जी की नसियां में 9 से 18 सितम्बर तक प्रथम बार वृहद स्तर पर "श्रावक संस्कार शिविर" का आयोजन किया गया । इस शिविर में लगभग सात सौ शिविरार्थियों ने भाग लिया । प्रस्तुत है इस शिविर के उद्देश्य व क्रियाकलापों पर दृष्टिपात करने वाली एक रपट:

अजमेर। परम् पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के परम् शिष्य श्री सुधासागर जी महाराज संसघ की प्रेरणा और उन्हीं के सान्निध्य में पर्युषण पर्व के पावन अवसर पर भारत के कौने-कौने से आये विभिन्न आयु वर्ग के श्रावकों का 'श्रावक संस्कार शिविर' अजमेर में आयोजित किया गया ।

श्रावकों में जैन धर्म के संस्कार पुष्पित और पल्लवित करने वाले इस शिविर ने धर्म की जो ज्योति प्रज्वलित की, वह वर्षों तक चिरस्मरणीय बनी रहेगी।

इस वर्ष अजमेर में प्रथम बार ही यह शिविर आयोजित किया गया । इस शिविर में स्थानीय और बाहर के कोई सात सौ शिविरार्थियों ने भाग लिया।

शिविर की प्रक्रिया के अनुसार 8 सितम्बर को इसमें भाग लेने के लिए शिविरार्थियों ने अपने घर के सदस्यों की आज्ञा लेकर तथा उनसे क्षमा मांगते हुए श्वेत धवल धोती व दुपट्टा पहनकर नंगे पैर नसियां की ओर प्रस्थान किया ।

'श्रावक संस्कार शिविर' क्या है ?

जैन धर्म का मर्म 'श्रावक' शब्द का आशय क्या है ? बहुत कम लोग जानते हैं और जो लोग जानते हैं उनके अनुभव में इसका महत्व अभी तक नहीं आया है। मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने अजमेर के बंधुओं को इस शब्द से साक्षात्कार कराते हुए 'श्रावक संस्कार शिविर' का आयोजन किया। जैन मान्यता के अनुसार सच्चा जैन वही है जो सच्चा श्रावक हो और सच्चा श्रावक वह है जिसने ऐसे 'श्रावक संस्कार शिविर' में भाग लेकर श्रावक की दैनिक चर्याओं का ज्ञान हासिल ही न किया हो बल्कि उन पर अमल भी किया हो। जैसे देवदर्शन, स्वाध्याय, गुरु उपासना, संयम, पूजन, सामयिक आदि का साक्षात् व्यावहारिक अनुभव भी इस शिविर में प्राप्त किया हो।

इस प्रकार के शिविरों के माध्यम से जो श्रावक जन्म लेंगे निश्चय ही उनसे न सिर्फ जैन धर्म का प्रचार-प्रसार होगा बल्कि उनका स्वयं का कल्याण भी होगा और वे निकट भविष्य में निश्चय ही अपने मोक्ष के मार्ग पर आरूढ़ होकर अपना जीवन सफल बना सकेंगे ।

साप्ताहिक: जैन गजट

दीक्षा दिवस समारोह

अजमेर दिनांक 22 सितम्बर, 94 से 24 सितम्बर, 94 तक सोनी जी की नसियां में परम पूज्य मुनिश्री सुधासागर जी महाराज का दीक्षादिवस समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। मुनिश्री सुधासागर जी के साथ पूज्य क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी एवं गम्भीर सागर जी भी नसियां जी में विराजमान हैं ।

दिनांक 24 सितम्बर को दोपहर डेढ़ बजे से एक विशाल अखिल भारतीय जैन आध्यात्मिक कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें देश भर से पधारे ख्याति प्राप्त सुप्रसिद्ध जैन कवियों ने भाग लिया इनमें सर्वश्री मिश्रीलाल जैन (गुना) डॉ. सुनीता जैन (दिल्ली), श्रीमती किरण भारतीय (बम्बई) प्रो. सरोजकुमार (इन्दौर), राजेन्द्र अनुरागी (भोपाल), विनोद कुमार 'नयन' (सागर) प्रसन्नकुमार सेठी (अजमेर), चन्द्रसेन जैन (भोपाल), सुंदरलाल (पटेरा), निर्मलचन्द निर्मल (सागर) कैलाश तरल (उज्जैन) वीरेन्द्र जैन (पड़वार), राकेश राकेन्दु (जबलपुर), सरेश बैरागी (मन्दसौर), श्रेयांस मोदी (पनागर), श्रीमती निर्मला जैन (अजमेर) और ऋषभ समैया 'जलज' (सागर) ने भाग लिया। इस कवि सम्मेलन का सफल संचालन जबलपुर के प्रसिद्ध कवि अजित कुमार जैन एडवोकेट ने किया ।

इस कवि सम्मेलन की यह विशेषता रही कि इसमें पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी, क्षुल्लक धैर्यसागर जी तथा ब्रह्मचारी संजय ने भी आचार्य श्री विद्यासागर महाराज को समर्पित अपनी रचनाओं का पाठ किया।

स्वचिंतना ही स्वयंभ है-

श्री सुधासागर

मुनि सुधासागर महाराज का चातुर्मास निष्ठापन

अजमेर 6 नवम्बर (वि.) मुनि सुधासागर ने चातुर्मास निष्ठापन करते हुए कहा है कि आज मेरी मुक्ति का दिन है बंधन किसी को भी अच्छा नहीं लगता है लेकिन कभी-कभी उपादेय कि दृष्टि से बंधन भी अच्छा लगने लगता है। साधु कोई लोभ, भय, मूच्छा वासना के कारण से बंधन में नही बंधता बल्कि मात्र दया करुणा से ही बंधन में बंधता है।

नसियां में प्रवचन के दौरान उन्होनें कहा कि साधु यदि एक स्थान पर ज्यादा समय तक ठहरता है तो लोगों में गलत धारणाएं पैदा होती है और यह बात आगम के अनुकूल भी नही हैं।

इसलिए साधु मुल्क के कल्याण की भावना करता है।

साधु चातुर्मास की स्थापना मात्र इसलिए करता है कि बारिश के मौसम में जीवों की उत्पत्ति होती है। विहार के कारण उन जीवों की विराधना न हो और निष्ठापन आज के दिन करता है क्योंकि सभी जीव अपने-अपने स्थान पर चल देते हैं। इसी कारण से भगवान महावीर ने भी आज के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

उन्होंने कहा कि पापी पाप को छोडते वक्त रोता है। आज का व्यक्ति अपने अंदर के सुख को छोड़कर पर पदार्थों में सुख को ढूंढता है। उसे साधु सावधान करता है कि ठोकर खा जाओगे। इस दुनियां में कोई भी व्यक्ति पूर्ण तृप्त होकर नहीं मरा। इसी को ही भटकन कहते हैं।

महान विज्ञानी भारतीय योगी

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

न्याय 3.12.94

वेदी प्रतिष्ठा में उपस्थित जन समूह के समक्ष आशीर्वचन देते हुए जैनाचार्य श्री सुधासागर जी महाराज

भव्य वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव प्रारम्भ

साधु वचन नहीं प्रवचन देते है – सुधासागर

अजमेर 2 दिसम्बर (क्रांस) श्री शांतिनाथ मंच दिगम्बर जैन वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव शुक्रवार को सर्वोदय कालोनी स्थित जिनालय में हर्षोल्लास पूर्वक प्रारम्भ हुआ।

इस तीन द्विवसीय महोत्सव के प्रथम दिन भव्य मंगल नान्दी विधान जुलुस निकाला गया, जो राजेन्द्र कुमार दनगसिया के निवास स्थान से प्रारम्भ होकर जिनालय पहुंचा। इससे पूर्व 16 इन्द्र इन्द्राणियों के अतिरिक्त ईशान इन्द्र व इन्द्राणी रुपचन्द जी व श्री मती सुशीला देवी छाबड़ा सहित विशाल जन समूह गाजे बाजे के साथ सो धर्म इन्द्र-इन्द्राणी व अन्य इन्द्राणियों के साथ स्वर्णकलश लेकर जुलुस के रुप में जिनालय पहुंचे।

जिनालय में कलश स्थापित वेदी की शुद्धि विधान से की गयी। वेदी शुद्धि के पश्चात् मन्दिर जी से श्री जी को पालकी में विराजमान करके पण्डाल में लाया गया एवं श्री जिनेन्द्र देव का अभिषेक किया गया। मध्यान्ह पंचपरमेष्ठी मण्डल पूजन सांय जिनेन्द्र भक्ति मंच अजमेर द्वारा नेमीनाथ वैराग्य नाटक आयोजित किया गया।

शुक्रवार को प्रात: आठ बजे जिनालय के पास बनाये गये पाण्डाल के बाहर समाज शिरोमणी निर्मल जी सोनी द्वारा झण्डारोहण किया गया। इससे पूर्व विशाल जनसमूह को आशीर्वचन देते हुये मुनीश्री सुधासागर जी महाराज ने वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव पर प्रकाश डालते हुये कहा कि इससे हमें अपने स्वभाव मत गणों की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा मिलती है, स्वभाव को प्राप्त करने के लिये देव, शास्त्र, गुरु से ही मार्गदर्शन उपदेश व विश्वास मिलता है इसीलिये कुन्द कुन्द आचार्य जैसे महान आचार्यों ने भी इस बात पर जोर दिया कि अपने स्वभाव को प्राप्त करने के लिये सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान व सम्यक चारित्र को प्राप्त करना होगा ओर सम्यक दर्शन प्राप्ति के लिये देशना विधी प्रथम मानी गई है। मुनि श्री ने साधुता की स्वतन्त्रता के लिये कहा कि साधु कभी वचन नहीं देते हैं प्रवचन देते हैं। क्योंकि वचन परतन्त्रता का कारण है। गुलामी का प्रतीक है प्रवचन की मार सम्यक होती है जब कि वचन की मार विनाशकारी होती है।

शनिवार को प्रात: मुनि श्री के प्रवचनोपरान्त योग मण्डल पूजन एवं घट यात्रा व शोभा यात्रा आयोजित की जायेगी। घटयात्रा संयोजक नोरतमल बोहरा शोभायात्रा संयोजक, सुभाष पाटनी एवं सर्वश्री छीतरमल गंगवाल व मुन्नालाल पाटनी ने बताया कि शोभायात्रा पंचायत नया धड़ा की नसियां से प्रारम्भ होकर जिनालय पहुंचेगी। इसमें महिलाएं पीले वस्त्र पहन कर सिर पर कलश लेकर चलेगी एवं इन्द्र इन्द्राणियां व कुबेर हाथियों पर बैठ कर पुष्प वृद्धि करेंगे। इसमें कुबेर सुजानगढ़ निवासी व अजमेर प्रवासी मानमल पाण्ड्या होंगे। मध्यान्ह वेदी शुद्धि शिखर शुद्धि, ध्वज दण्ड शुद्धि व कलश शुद्धि होगी एवं रात्रि 7.30 बजे भरत बाहुबली का नाटक एवं श्री दिगम्बर जैन संगीत मण्डल अजमेर द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश किया आएगा।

दैनिक नवज्योति 4.12.94

वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव के अंतर्गत निकाली गई घट यात्रा में कलश ले जाती हुई इन्द्राणियाँ एवं गज पर सवार इन्द्र-इन्द्राणी की जोड़ियां

वेदी प्रतिष्ठा समारोह

भव्य शोभायात्रा, जो देखते ही बनती थी

अजमेर 3 दिसम्बर (क्रांस) श्री शांतिनाथ दिगम्बर जिनालय सर्वोदय कॉलोनी में आयोजित वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव के अंतर्गत दूसरे दिन शनिवार को घट एवं शोभायात्रा निकाली गई ।

मध्यान्ह सवा बारह बजे बाबाजी की नसियां से प्रारंभ हुई घट व शोभायात्रा में ढोल बैण्ड, इन्द्र गाडी, ऐरावत हाथी, सहित दस हाथी शोभायमान थे। कुबेर के हाथी पर श्री मति व श्री मानमल पाण्ड्या, सौधर्म इन्द्र के हाथी पर श्री मति व श्री विजय कुमार दनगसिया, इशान इन्द्र के हाथी पर श्रीमति व श्री रुपचन्द छाबड़ा तथा अन्य हाथियों पर इन्द्र इन्द्राणियों के रुप में समाज के प्रमुख व्यक्ति सपत्नीक विराजमान थे। मुनि श्री सुधासागर की प्रेरणा से जुलुस में शामिल सभी लोग नंगे पांव चल रहे थे। यह शोभायात्रा नया बाजार, कचहरी रोड, रेवन्यु बोर्ड होता हुआ सर्वोदय कालोनी स्थित जिनालय में पहुंचा । शोभायात्रा के संचालन की व्यवस्था जैनवीर दल के कार्यकर्ताओं ने संभाल रखी थी।

शोभायात्रा के बाद जिनालय में वेदी शुद्धि ध्वज दण्ड शुद्धि एवं कलश शुद्धि का कार्यक्रम किया गया । रात्रि को प्रोफोसर सुशील पाटनी के निर्देशन में भरत बाहुबली का नाटक एवं श्री दिगम्बर जैन संगीत मण्डल का सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया ।

प्रात: जिलान्य के बाहर पाण्डाल में श्रद्धालुओं को प्रवचन देते हुए मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने कहा कि मंदिर बनवाना, वेदी प्रतिष्ठान करवाना व भगवान के ऊपर छत्र ध्वज लगवाना इत्यादि धार्मिक कार्य तो आसान है लेकिन मंदिर बनवाना तभी सार्थक है जब उसमें भक्तों की संख्या नियमित रुप से बढे और लोगों में धर्म की भावना बढ़े ।

जिनालय समिति के अध्यक्ष कैलाशचन्द पाटनी ने बताया कि रविवार 5 दिसम्बर को प्रात: रथयात्रा व वेदी प्रतिष्ठा होगी ।इससे पूर्व प्रात: सवा आठ बजे मुनि सुधासागर के प्रवचन होगा । तत्पश्चात् रथ यात्रा पण्डाल से निकाली जायेगी । जो पुलिस लाइन चौराहा, कलक्टर निवास होते हुए शास्त्री नगर जैन मन्दिर तक पहुंचेगी ।

गुरु कृपा के बिना सम्यक दर्शन की उपलब्धि नहीं

राजा प्रजा व साधु के विचारों में अनुरूपता ही रामराज्य है- मुनि श्री सुधासागर

दैनिक : संत सरिता

15 हजार लोगों का सामूहिक भोज

इन्द्रध्वज महामंडल विधान एवं रथ यात्रा महोत्सव के समापन के अवसर पर जनकपुरी गंज में मंगलवार को 15 हजार लोगों का सामूहिक भोज दिया गया है ।

प्रचार प्रसार संयोजक हीराचंद बड़जात्या के अनुसार अजमेर शहर में पहली बार धार्मिक आयोजन के तहत इतना बड़ा भोज दिया गया है ।

उन्हें शिविर ने बताए गए मार्ग पर चलने का संदेश दिया। उन्होंने कहा कि जब राजा, समाज और साधु की सोच प्रवृति एक ही रहे तो हर घर राममय हो जाए और ऐसी त्रिवेणी बह निकले कि हर घर में राम ही राम नजर आए। उन्होंनें शिविरार्थी के अर्थ की व्याख्या को स्पष्ट करते हुए बताया कि ऐसा साधक जो शिव को प्राप्त करने के लिए उद्यम करें शिविरार्थी कहलाता है । उन्होनें कहा कि जब व्यक्ति संसार से लौटने लगता है तो वह मोक्ष मार्ग पर उद्यत होता है ।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रुप में उपस्थित हुये राज विधान सभा के अध्यक्ष श्री हरीशंकर भाभड़ा ने मनुष्य जीवन में आत्मा के उत्थान के लिए साधना का मार्ग को जीवन का लक्ष्य बनाने, अपनी आत्मा के स्वरुप को पहचानने और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए पाश्चात्य संस्कृति के मूल्यों को त्यागने का आव्हान किया ।